
सरस्वती
मार्च
१९५९



३७ वनस्पति युक्त तत्त्वों से बनाया हुआ

कामिनिया आईल (रजिस्टर्ड)

यह केश तेल विशुद्ध और प्रसन्नता वर्धक जड़ी, बूटियों और औषधियों से बनाया गया है। यह सुन्दरता को बढ़ाता, बालों को गिरने से बचाता तथा आकार प्राकृतिक रंग कायम रखता है और मस्तक के लिए शीतल सुगन्धि में अद्वितीय है उसके अलावा इसकी सुगन्ध अत्यन्त मीठी और मनमोहक है।

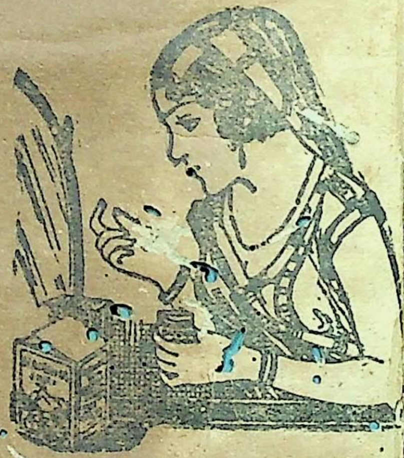
इत्रों का बादशाह

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

यह बड़े सुन्दर ताजे फूलों से बनाया गया है जो मोहित कर देनेवाली खुशबू देता है। रूमाल पर केवल दो बूँद गिरा देने से ही आपके चारों ओर हाल के चुने हुए फूलों की खुशबू फैल जायगी।

चेहरे की खूबसूरती तथा मोहकता बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक इलाज

कामिनिया-स्नो (रजिस्टर्ड)



हिम-शीकरसा शीत और श्वेत तथा चकचकित यह क्रीम चेहरे के ऊपर मालिश करने से खील फुन्सियाँ, दाग, श्यामता आदि दूर करके चमड़ी चमकीली, स्वच्छ और चेहरा आकर्षक बनता है। सुन्दरता प्रिय स्त्रियों के लिए अत्यन्त आवश्यकीय सिद्ध हो चुका है। पुरुषों को भी हजामत बनाने के बाद इस क्रीम को चेहरे पर मालिश करने से चर्म हमेशा के लिए रेशम-सा मुलायम रहता है। एक बार इस्तेमाल कर परख कीजिए।

'नहाने के लिए उम्दा खुशबूदार साबुन'



कामिनिया व्हाइट रोज सोप (रजि०) गुलाब की खुशबू का साबुन।
कामिनिया सन्डल सोप (रजि०) चन्दन की खुशबू का साबुन।
कामिनिया लवेण्डर सोप (रजि०) फूलों की खुशबू का साबुन।
दिल बहार सोप (रजि०) बेला चमेली की खुशबू का साबुन।

इनके इस्तेमाल से चमड़ी स्वच्छ और मुलायम बनती है और मधुर खुशबू से तबीयत भी प्रसन्न रहती है।

एँग्लो इण्डियन ड्रग एंड केमिकल कम्पनी,
२८५ जुमा मसजिद, बम्बई



शुद्ध बादामरोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इञ्च वृद्धि।
६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश।

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है।

दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं।

चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इञ्च बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

केशों को आश्चर्यजनक
गति से बढ़ानेवाला
केश-तैल

मूल्य एक शीशी का २।।) है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिङ्ग पृथक्। ६ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जाएँगी। अधिक के लिए ५)

पेशगी भेजिए और अपने रेलवे स्टेशन का नाम लिखिए।

महिलाओं की सम्मतियों की बाढ़

26. 1. 46.
अनेक कम्पनियों की लम्बी-चौड़ी तारीफें पढ़कर मेरा विश्वास उठ चुका था, पर आपकी अलकपरी को मैंने प्रशंसा के अनुरूप ही गुणकारी पाया। इसके लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें और तीन शीशियाँ शीघ्र भेज दें।
—राजकुमारी लालन, राजसदन, मैनपुरी।

11. 2. 47.
Alak Pari is giving much much satisfactory improvement, kindly despatch 6 Phials of it more.
Chadra P. Sethi B. A.
Ramnagar, Lahore.

15. 2. 47.
अपनी पत्नी के लिये अलकपरी मँगाई थी। बहुत लाभ हुआ और बाल बढ़े भी खूब! कृपया १२ शीशियाँ और भेजें।
—गोस्वामी मुकुन्द शर्मा, बड़ा मन्दिर, बम्बई २।

17. 2. 47.
I found Alak Pari to be one of the excellent oils. In fact it has shown well progress in the hair and satisfied me to the most. Kindly despatch 6 Phials more.
Miss Malini V. Nagpurkar, Dadar.

19. 2. 47.
पूर्व आपके यहाँ से अलकपरी मँगाई थी। बहुत लाभकारी प्रमाणित हुई। १ दर्जन शीशियाँ और भेज दें।
—गोस्वामी श्री० १०८, श्री गिरधारीलाल जी महाराज, मथुरा स्टेशन

प्रत्येक बड़े शहर में दूकानदारों के पास मिलती है। न मिलने पर इस पते से मँगाइए—

व्यवस्थापिका—'अलकपरी', नया कटरा, इलाहाबाद।

१०००) रु० माहवार कमाइए

इस 'दौलत की खान' पुस्तक में १६२ हुनर छपे हैं, जिससे लोग लखपती हो गये, जो बेकार थे। इस पुस्तक में हर तरह के तेल, साबुन, बाल उड़ाने का साबुन, बाल काले करने का खिजाब, हर तरह के अचार, खानी तम्बाकू, कुलफी की बर्फ, पेटेंट दवाएँ आदि बनाने का नुस्खा छपा है। इन्हें लोग हजारों खुशामद करने पर मरते वक्त तक नहीं बतलाते हैं। कीमत फी पुस्तक २।) डाक-खर्च व पैकिंग माफ।

अमेरिकन पिस्तौल

यह पिस्तौल अमेरिका से बनकर आई है। बिलकुल असली पिस्तौल के मानिन्द मालूम होती है। इसे बखूबी कोट की जेब में रख सकते हैं। इसमें ६ खाने हैं। घोड़ा दबाते ही चरखी खुद घूमती है। इसकी आवाज निहायत डरावनी है। चोर, डाकू, शत्रु और जंगली खूँख्वार जानवर इसकी शक्ल ही देखकर भाग जाते हैं। इसके रखने में सरकार से लाइसेन्स लेने की जरूरत नहीं पड़ती। बाज वक्त यह पिस्तौल जान-माल की रक्षा करने में बहुत अच्छी साबित हुई है। इसको हर एक मनुष्य रख सकता है। मूल्य मय २५ स्पेशल कारतूस के फी पिस्तौल ४।) डाक-खर्च प्रतिपिस्तौल १।–) अलग। कारतूस फी सैकड़ा ४)

असली कलीद सट्टा

यदि आप सट्टा-लाटरी का शौक रखते हैं और लाटरी सट्टा का नम्बर जानकर फायदा उठाना चाहते हैं, तो हमारी असली कलीद सट्टा नामक पुस्तक मँगाकर मालामाल बनिए। इसका नम्बर कभी खाली नहीं जाता। सिर्फ गुणा-भाग करने से ही नम्बर निकल आता है। कीमत फी पुस्तक २।) डाक-खर्च व पैकिंग माफ।

ओटो पुष्पलता

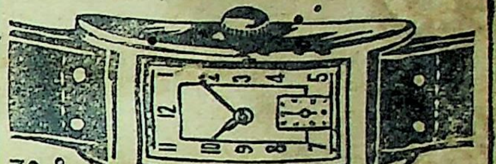
यह ओटो तमाम सेंटों का सरताज है। लगाते ही आपकी तबीअत मस्त हो खुशबू से बागबाग हो जायेगी। इस ओटो को लगाकर आप जिस रास्ते निकल जाएगे पास के लोगों को ताज्जुब होगा कि यह खुशबू किस बगीचे से आ रही है। रूमाल में लगा लेने से महीनों खुशबू नहीं जाती है। कीमत प्रतिशीशी ।।=) दर्जन का ५।।) डाक-खर्च १।–) एक दर्जन एक साथ मँगाने पर एक जोड़ी हाथ व गले के बटनों का सेट व एक बम्बई फैशन सोने की तरह चमकनेवाली अँगूठी, एक फैन्सी रूमाल व एक खूबसूरत शीशा मय कंघी के इनाम में मुफ्त दिया जाएगा। इस ओटो का प्रचार करने की वजह से यह ऐलान निकाला है। दो दर्जन एक साथ मँगाने पर ऊपर दिए हुए सामान के अलावा एक बढ़िया फाउन्टेनपेन और दिया जाएगा।

इंडियन जनरल ट्रेडिंग कम्पनी, नं० १० कानपुर

पोस्ट बक्स १३१

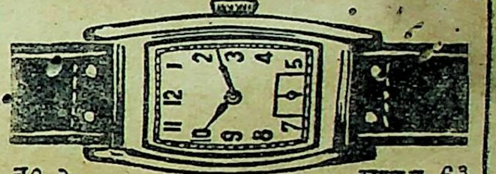
नया चालान, नई डिजाइन

ये घड़ियाँ स्वीटजरलैंड की मशहूर कम्पनियाँ ओरीस, पीअर्स आदि की बनी हुई हैं। देखने में हुबहू चित्र जैसी। लीभर मशीन। प्रत्येक घड़ी को गारंटी ३ साल।



न० १ साइज $7\frac{3}{4}$

५ जुएल क्रोम केस—३२) रोल्ड गोल्ड—४०)
७ „ „ केस—३५) रोल्ड गोल्ड—४५)
१५ „ „ केस—५२) रोल्ड गोल्ड ६२)



न० २ साइज $6\frac{3}{4}$

५ जुएल क्रोम—३५) रोल्ड गोल्ड—४२)
७ „ „ —३८) रोल्ड गोल्ड—४७)
१५ „ „ —५५ रोल्ड गोल्ड—६५)



न० ३ साइज $10\frac{1}{2}$

५ जुएल क्रोम केस—२४) ७ जुएल—३०)
१५ „ „ „ —४८) रोल्ड गोल्ड—६०)
१५ वाटर प्रूफ—७०) रोल्ड गोल्ड—८७)



न० ४ साइज $11\frac{1}{2}$

क्रोम केस—१६) सेकण्ड कांटा की—१८)
सेण्टर सेकेण्ड की २०) सुपीरियर—२२)
१५ जुएल क्रोम—३०) सुपीरियर—३५)
एलार्म टाइमपीस—१६) सुपीरियर-२०)
बेस्ट २४) पोस्टेज अतिरिक्त। कोई [illegible] घड़ी [illegible] साथ लेने से १२॥) प्रति सैकड़ा कमीशन।

एच० डेविड ऐन्ड को,

पो० ब० ११४२४ कलकत्ता

महात्माजी का चमत्कार

प्रेमवटी ने अपनी खूबी से सारी दुनिया में तहलका मचा दिया

कांग्रेस की राय

(प्रेमवटी वास्तव में एक अद्वितीय औषधि है, पहले हमें इस औषधि पर इतना विश्वास न था, किन्तु जब हमने इसका परीक्षण किया तब हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह औषधि विज्ञापन में दिये गये तमाम रोगों की केवल एक मात्र अचूक धि है। हम आशा करते हैं कि भविष्य में यह कम्पनी इससे भी उत्तम औषधियों का निर्माण कर जनता को लाभ ायेगी।—कांग्रेस देहली)

भारत के योगियों ने वनों और पर्वतों की कन्दराओं में रहकर वह चमत्कार दिखलाये हैं जिससे बड़े-बड़े वैज्ञानिक और त्सक हैरत में आ गये हैं। आधुनिक चिकित्सकों को जब कोई रोग की औषधि से सफलता नहीं मिलती तब वह लाइलाज घोषित देते हैं। परन्तु महात्मा लोग जड़ी-बूटियों की सहायता से मुर्दे को भी जिला देने का दावा करते हैं। भाइयो, इसे ध्यान से पढ़ो अपने इष्ट-मित्रों को सुनाओ। यह लेख जो लिखा गया है, कोई गप्प नहीं है बल्कि मेरे जीवन की चन्द घटनाएँ हैं जो आपके ख रखता हूं। मेरा जन्म एक धनी परिवार में हुआ। अपने पिता का लाडला पुत्र होने के कारण मैं धन और व्यसन में घिरा ा था, लेकिन फिर भी मैं सुखी नहीं था। कुसंगत में पड़कर मुझे जरियान और प्रमेह रोग हो गया। पहले तो एक दो साल मैंने लाज के कारण अपना भेद छिपाये रखा परन्तु रोग ने भयानक सूरत अख्तियार कर ली। अब मैं घबड़ा उठा, संसार में चारों ओर ा मालूम होने लगा तब मेरी आँखें खुलीं। इलाज शुरू किया गया बड़े-बड़े डाक्टरों, हकीमों, वैद्यों के फ़ीस रूप में रुपये और ती दवाइयों के खरीदने में पानी की तरह रुपया बहाने लगा फिर भी मैं निराश ही रहा। अब मैं घबरा उठा और चारों तरफ से धकार दिखलाई देने लगा और सोचने लगा कि इस दुःखमय जीवन से मर जाना बेहतर है।

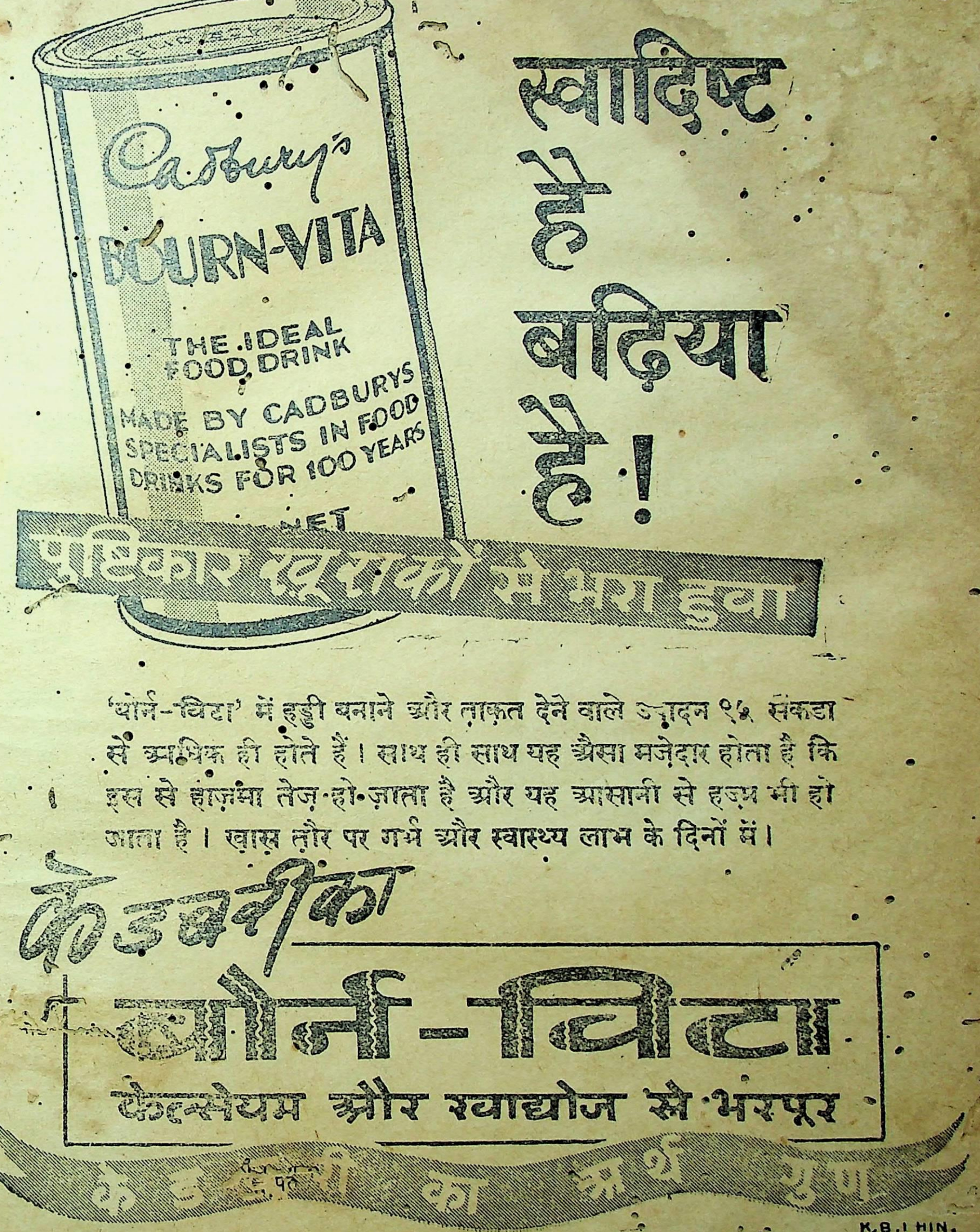
पर यह बीस साल पहले की बात है। अब आज मैं खुश हूँ। आज उस परमात्मा की कृपा से आरोग्य हूँ और मेरे तीन थ बच्चे भी हैं जो बिलकुल आरोग्य हैं।

हुआ क्या! मुझमें इतना परिवर्तन कैसे हो गया? यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि मैंने एक दवा सेवन की। जो मैंने सेवन की, वह एक महान् त्यागी परोपकारी साधु की बनाई हुई थी, जो समय काटने के लिए गाँव से कुछ दूर एक ईंट के पर रम रहे थे। यह मेरा सौभाग्य था कि और लोगों के साथ मैं भी दर्शनों के लिए जा पहुँचा। दैवी शक्ति से मेरे दुःखी जीवन पिछले अध्याय उनके हृदय-पट पर खिंच गये और मेरी आँखों ने हृदय का सारा भेद अपने आप उस महान् पुरुष पर प्रकट कर ा। मेरी कच्ची उम्र पर महात्मा को दया आई और उन्होंने मुझे कुछ जड़ी-बूटियाँ एकत्र करने की आज्ञा दी। मैंने वैसा ही किया तब उनके सम्मुख ही मुझे उनके आदेश और निजी देख-रेख में 'प्रेमवटी' तैयार करनी पड़ी। यद्यपि मुझसे ४० दिन लगातार वटी' का सेवन करने को कहा गया था, तथापि केवल बीस दिन के सेवन से ही मुझमें परिवर्तन हो गया। मेरी कमजोरी और म गुप्त बीमारियाँ जड़ से दूर हो गईं। पीले और उदास मुख पर लाली दौड़ने लगी, आँखों में उन्माद झूमने लगा और हृदय में नी का जोश उमड़ आया। महात्माजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के साथ ही अपने वादे को पूरा करने के लिए दुःखी जनों के मत्त पिछले बीस साल से लगातार मैं इस प्रयोग को मुफ्त बाँट रहा हूँ। यह अनेक पत्र-पत्रिकाओं में भी छप चुका है। मुझे हर्ष है इस अमृत तुल्य प्रयोग ने सैकड़ों की प्राण-रक्षा की, हजारों को मौत के मुँह से निकाला और लाखों का इससे भला हुआ। महात्मा- त 'प्रेमवटी' का नुस्खा इस प्रकार है; नोट कर लें—

शुद्ध त्रिफला ५ तोला, त्रिकुट चूर्ण ५ तोला, शुद्ध सूर्यतापी शिलाजीत ५ तोला, शुद्ध बङ्ग भस्म ६ माशा, असली सूर्यछा र ३ माशा, असली अकरकरा ६ माशा, असली नेपाली कस्तूरी ३ रत्ती। इन सब औषधियों को कूट-छानकर खल में डालकर र से शीतल चीनी का तेल २० बूँद, सन्दल तेल २० बूँद, बिरोजे का तेल २० बूँद एक-एक करके मिलाये। उसके बाद ताजी ी बूटी के अर्क में १२ घण्टा घोंटकर झरबेरी बेर के बराबर गोलियाँ बनावें और छाया में सुखा लें। एक-एक गोली सुबह-शाम पाव गाय के दूध में एक तोला शकर मिलाकर सेवन करें। इसकी प्रशंसा हम अपने ही मुँह से नहीं करते बल्कि बड़े-बड़े वैद्यों, डाक्टरों, ीमों, सेठ-साहूकारों तथा रईसों, जमींदारों, सरकारी आफिसरों तक ने इसकी सराहना की है। वैद्यराज श्री जमुनादत्त शर्मा, भोंकर कहना है कि यह वटी धातु का पतलापन, २० प्रकार के प्रमेह के लिए अक्सीर है।

'प्रेमवटी' में कोई हानिकारक चीज नहीं पड़ती और गुणकारी चीजें नुस्खे से ही प्रकट हैं। यह औषधि वीर्य का पतलापन, ों, प्रकार के प्रमेह, पेशाब के साथ चूने की तरह वीर्य का जाना, पाखाने के समय धातु का जाना, स्वप्नदोष, सुस्ती, कमजोरी, नामर्दी, ाइबिटीज, मधुमेह, सूजाक, जवानी में बुढ़ापे की-सी हालत हो जाना, असली ताकत की कमी, स्मरण-शक्ति कमजोर पड़ जाना तथा ियों के भी प्रदर-सम्बन्धी रोग दूर करके अत्यन्त ताकत देती है और नस-नस में नवजीवन का सञ्चार करती है। अन्त में उन ाइयों को जिन्हें फ़ुरसत नहीं मिलती या शुद्ध औषधि प्राप्त नहीं कर सकते यह प्रयोग स्वयं बनाकर दाम के दाम में भेजने की वस्था की है। ४० दिन के लिए पूरी खुराक विधिवत् ८० गोलियों का मूल्य ५॥=) रु० और २० दिन के लिए ४० गोलियों के म ३=) डाक खर्च ॥-)

पता—बाबू श्यामलाल जी रईस, प्रेमवटी आफिस नं० ५०, धनकुट्टी, कानपुर।


Cadbury's
BOURN-VITA
THE IDEAL FOOD DRINK
MADE BY CADBURYS SPECIALISTS IN FOOD DRINKS FOR 100 YEARS
स्वादिष्ट है बढ़िया है !
पुष्टिकर तत्वों से भरा हुआ
'बोर्न-विटा' में हड्डी बनाने और ताक़त देने वाले उपादन ९५ सैकड़ा से अधिक ही होते हैं। साथ ही साथ यह ऐसा मज़ेदार होता है कि इस से हाज़मा तेज़ हो जाता है और यह आसानी से हज़म भी हो जाता है। ख़ास तौर पर गर्भ और स्वास्थ्य लाभ के दिनों में।
केडबरी का
बोर्न-विटा
कैल्सियम और ग्लाइकोज से भरपूर
केडबरी का अर्थ गुण
K.B.I HIN.

मुफ़त

यदि आप यौवन या बुढ़ापे में किसी प्रकार के रोग से दुखी हों तो हमें शीघ्र ही विस्तारपूर्वक लिखें। हम आपको अपनी स्वच्छ तथा फलदायक औषधि भेजेंगे। जिसके सेवन से आप शीघ्र ही आरोगी बनकर जीवन का आनन्द प्राप्त करेंगे।

हर प्रकार का पत्र-व्यवहार गुप्त रक्खा जाता है।

पत्र-व्यवहार करते समय अपना नाम और पता पूरा और सुलेख लिखें।

इम्पीरियल चैम्बर आफ साइंस, दुर्ग्याना, (P. B. 61) अमृतसर

आश्चर्यजनक और नवीन आविष्कार

बे फायदा साबित करने पर १०० इनाम की गारण्टी

सफेद बाल काला

हमारे आयुर्वेदिक "हिमकान्ती" तैल के इस्तेमाल से बाल पकना रुककर पका बाल जड़ से काला होकर काला ही उगता है। यह तैल आँखों की रोशनी को बढ़ाता, शिरदर्द को आराम करता, दिमागी काम करने वालों के लिए अकसीर है और स्मरण-शक्ति बढ़ाने में अद्वितीय है। मूल्य कम पके के लिए २॥) इससे ज्यादा के लिए ३॥) सब पके के लिए ५)

प्रदर रोग या लिकोरिया

इस बीमारी में स्त्रियों के गुप्त शरीर से लाल, काला, धूमैला या श्वेत रंग का बदबूदार पानी या लेस सा निकलता रहता है, महीना ठीक समय पर नहीं होता है। जिसके कारण कमर, रीढ़, सिर में दर्द, शरीर में जलन, मन मलीन, उठने, बैठने में थकावट, भूख का कम लगना बदन दुबला और कमजोर हो जाना, मुर्छा, बेहोशी आदि रोग हो जाते हैं और सन्तान नहीं होती ऐसी अवस्था में हमने "नारी सुधा" नामक औषधि को तैयार किया है। जिसके द्वारा हजारों स्त्रियों को इस भयानक शत्रु से छुड़ाया है। मूल्य ४)

श्वेतकुष्ट की बनौषधि

चाहे कितने ही दिन का श्वेतकुष्ट हो या किसी भी कारण से सफेद दाग हो गया हो इस बनौषधी के सिर्फ ७ दिन के सेवन से पूर्ण लाभ होता है। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों और विज्ञापनदाताओं की दवा से निराश हो चुके हों तो इसे एक बार मंगाकर अवश्य आराम होवें। मू० ४) तीन पैकट ११)

स्तम्भक बटी

शीघ्रपतन की शिकायत को फौरन नष्ट करके वीर्य स्तम्भन करती है। एक गोली शाम को खा लेने से आश्चर्यजनक स्तम्भन होता है। मू० २४ गोली १॥) ५० गोली का २॥) १०० गोली का ४)

जीवन शक्ति

इसके सेवन करते ही बदन में वह शक्ति लाता है जो चढ़ती जवानी को मात करती है। पानी के समान पतले धातु को पुष्ट करने में रामबाण है। सुस्ती, नामर्दी, धातु क्षीणता, स्वप्नदोष, प्रमेह, मूत्र के साथ पैखाने के आगे या पीछे धातु का निकलना बहुमूत्र रोग [डायबीटीज] इत्यादि दूरकर शरीर में नया वीर्य उत्पन्न कर अपूर्व शक्ति लाती है। और नया खून सञ्चार करता है। मू० ५)

पता :—**हिमालय आयुर्वेदिक फार्मेसी, (५१८) पो० कटनी; सी० पी० इन्डिया।**

बिना चीर फाड़ के अण्डकोष का शर्तिया इलाज

किसी प्रकार का फ़ोता हो, चाहे पानी उतर आया हो, बादीका हो या पोतेके ऊपर गोश्त उतर आया हो या चोट लग गई हो, नस उतर आई हो या पोते में दर्द होता हो, पोता बढ़कर कितना ही वजनी क्यों न हो गया हो, आंत उतर आई हो इस दवा के लेप करने से तमाम बादी का पानी सूख-सूखकर पोता अपनी असली हालत पर बगैर किसी तकलीफ के आ जायेगा। क़ीमत फी टीन ४) रु० महसूल डाक अलावा। मिलने का पता :—

दि अमृतसीगर ऐन्ड को० नं० २, मथुरा (यू० पी०)

फ़ोटो खींचने का अपूर्व साधन!



ओरियंटल कैमरा

सुन्दर, सस्ता, और विश्वसनीय

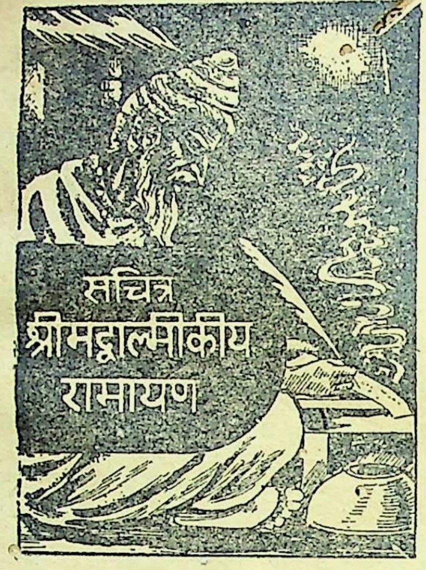
इस कैमरे से आप चाहे जिस चीज का मनोहर फोटो नं० १२० के फिल्म पर २॥×३॥ इंच साइज का खींच सकते हैं। फोटो खींचने की तरकीब मुफ्त। मूल्य ६॥) रु० पोस्टेज पैकिङ्ग १॥), बढ़िया फोटो के खिंचे से दाम वापिस।

ओरियंटल कैमरा हाउस,

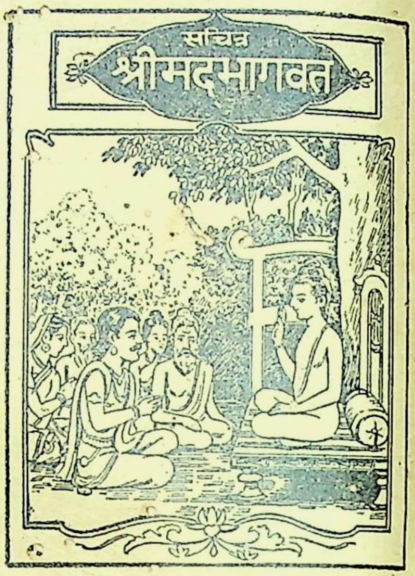
(V. G. O. 119) अलीगढ़ सिटी।



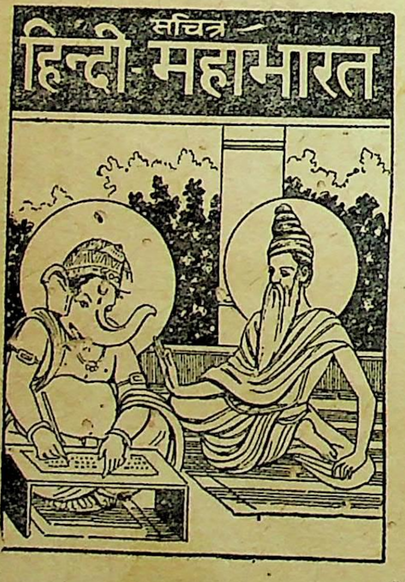
टीकाकार—रायबहादुर डाक्टर श्यामसुन्दरदास। यह संस्करण अपने ढंग का एक ही है। प्रामाणिक पाठ है। सीधी सरल भाषा में अर्थ है। रंगीन और सादे चित्रों की भरमार है। बढ़िया जिल्द है। मूल्य १२) बारह रुपये।



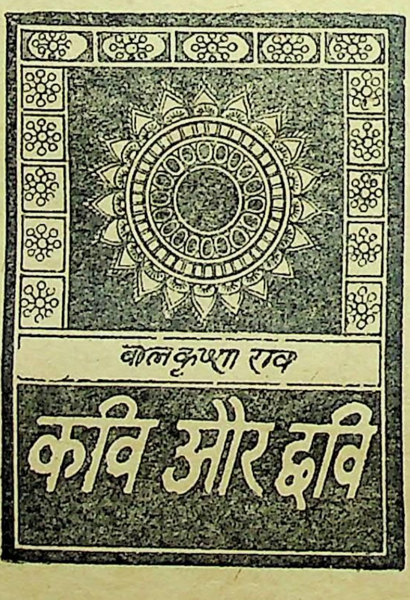
यह आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि के प्रसिद्ध ग्रन्थ का हिन्दी रूप है। हिन्दुओं में तो इसका मान है ही, संसार के विद्वानों में भी इसका आदर है। भाषा सुबोध और मनोहर है। दो भागों में ग्रन्थ समाप्त हुआ है। सजिल्द प्रति का प्रत्येक भाग का मूल्य ६।।) छः रुपये आठ आने।



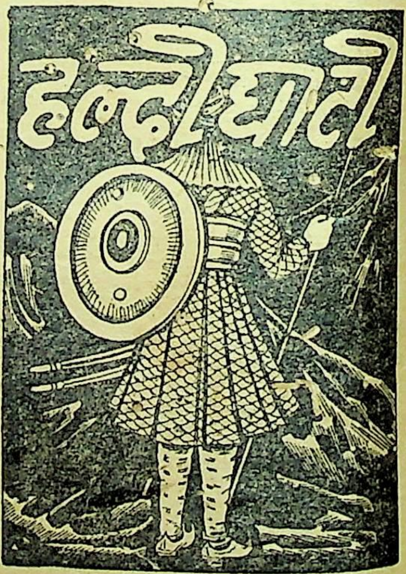
(दो जिल्दों में) महर्षि वेदव्यास के श्रीमद्भागवत का सरल सुबोध भाषा में रूपान्तर। स्त्री, पुरुष, बूढ़े और युवक, सभी के लिए उपयोगी। अच्छे कागज पर बढ़िया छपाई। सैकड़ों सादे और रंगीन चित्रों से युक्त सजिल्द पुस्तक का मूल्य १६) सोलह रुपये।



यह व्यास भगवान् के प्रसिद्ध महाभारत का हिन्दी रूप है। सरल भाषा में कठिन विषय समझाया गया है। रंगीन और सादे चित्र मन को मुग्ध कर लेते हैं। पुस्तक १० जिल्दों में पूर्ण हुई है। मूल्य ८०) अस्सी रुपये।

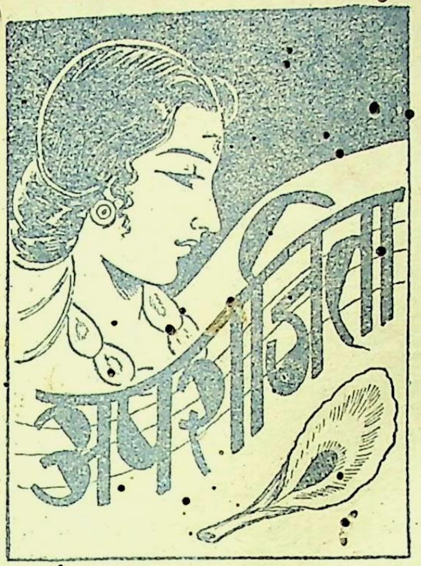


यह प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव के नये गीतों का संग्रह है। प्रत्येक गीत भावना, अनुभूति, आकांक्षा, कल्पना और अन्तर्द्वन्द्व से पूर्ण है। छपाई सफाई नयनाभिराम। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य २) दो रुपये।

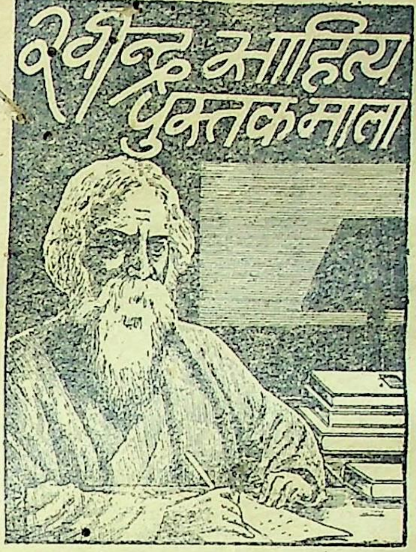


यह श्री श्यामनारायण पाण्डेय की प्रसिद्ध रचना है। इसमें महाराणा प्रताप के हल्दी घाटी वाले समर का वीरता-पूर्ण वर्णन श्रेष्ठ छन्दों में है। सजिल्द प्रति का मूल्य २।।।) दो रुपये बारह आने।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।



कवि अञ्चल की मादक-मधुर कविताओं का अनूठा संग्रह। भाषा-सौष्ठव, अनुभूति की तीक्ष्णता और कल्पना की उड़ान की दृष्टि से ये कविताएँ अनुपम हैं। सजिल्द प्रति का मूल्य ३) तीन रुपये।



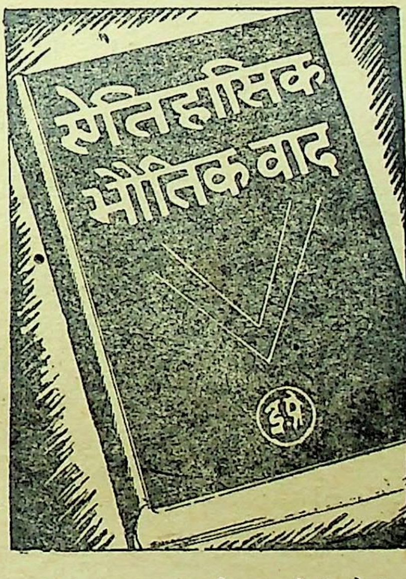
रवीन्द्र-साहित्य पुस्तक-माला के (१) योगायोग, (२) विश्व-परिचय, (३) रूस की चिट्ठी और (४) चार अध्याय का ब्योरा विज्ञापन में अन्यत्र पढ़िए।



शान्त शिष्ट सत्याग्रही प्रताप ने अपने मधुर व्यवहार से विरोधियों को किस प्रकार कट्टर देशभक्त बना दिया और उनको अपना अनुगत बना लिया, इस उपन्यास में पढ़िए। मूल्य १॥) एक रुपया आठ आने।



किस प्रकार उन्नति करने पर पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड के साथ राजा बहादुर की बेटी एना का विवाह हो सका, इसका विचित्र वर्णन इस उपन्यास में पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २॥≡) दो रुपये ग्यारह आने।



लेखक भूतपूर्व काकोरी कैदी श्री मन्मथनाथ गुप्त और रमेन्द्र वर्मा। समाजवाद के अध्ययन के लिए इसे अवश्य पढ़िए। मार्क्सवाद के दर्शनों में यह सब से गहन है। एक दर्जन अध्यायों में विषय का प्रतिपादन हुआ है। मूल्य ६) छः रुपये।



लेखक कुँवर सुरेशसिंह। पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। मन बहलाव के साथ साथ विविध जानवरों की जानकारी के लिए इसे पढ़िए। १०० से अधिक चित्र। सजिल्द प्रति का मूल्य ४) चार रुपये।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड प्रयाग।

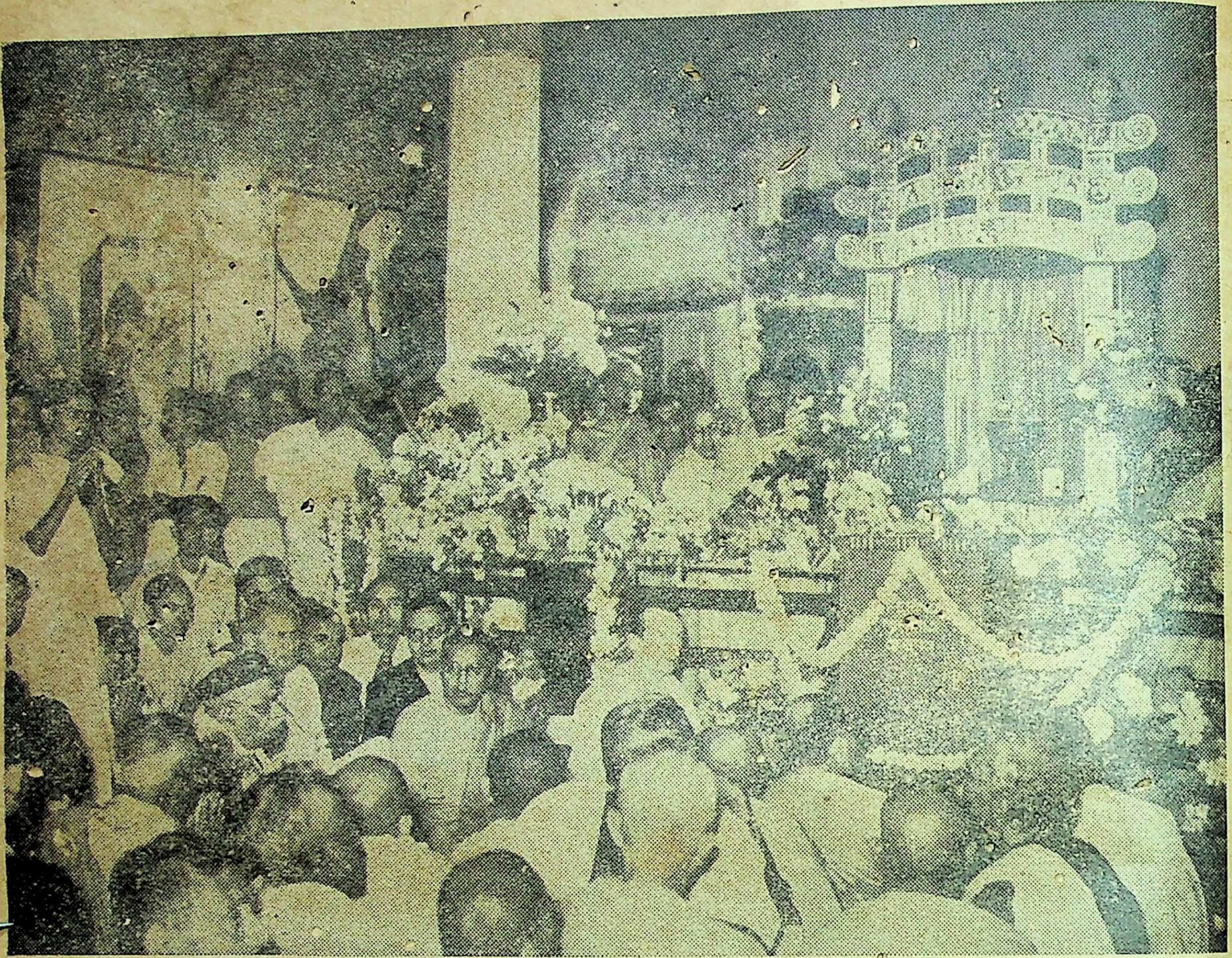
लेख-सूची

चित्र-सूची

विश्ववंद्य बापू



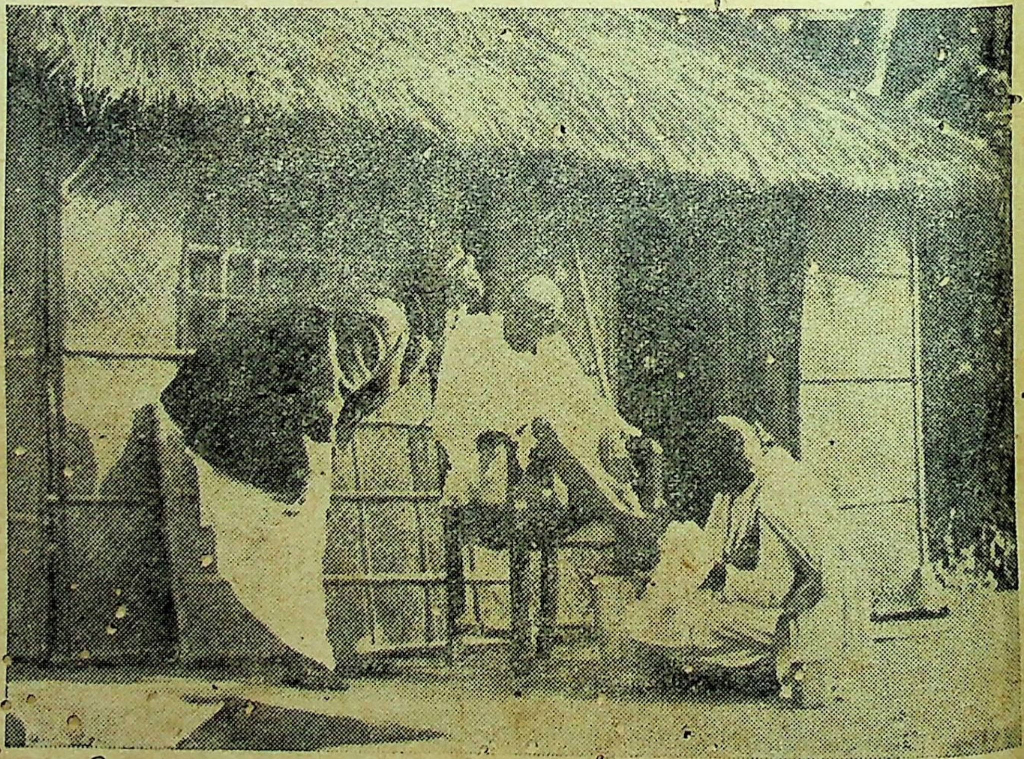
विगत ३० जनवरी को महात्मा गांधी की पुण्य वर्षी व्यापक रूप से देश-विदेश में मनाई गई।



ऊपर—

पवित्र बौद्ध अवशेष

कलकत्ता के महाबोधि परिषत् भवन में बिहार के गवर्नर पवित्र बौद्ध अवशेषों के पूजन-समारोह का आरंभ कर रहे हैं।



दाहनी ओर—

मनस्वी बापू

नोआखाली की निरंतर पैदल यात्रा से श्रांत बापू कुटिया के बाहर विश्राम ले रहे हैं।



सम्पादक—हरिकेशव घोष : उमेशचन्द्र मिश्र

मार्च १९४९ फाल्गुन २००५; भाग ५०, खण्ड १; संख्या ३ पूर्ण संख्या ५९१

सम्पादकीय

'रूस के चेले'

भारत के विभिन्न प्रान्तों की और कुछ रियासतों की पुलिस ने 'रूस के चेलों' की सामूहिक गिरफ्तारी सर्वत्र एक साथ प्रारम्भ कर दी। फरवरी के दूसरे पक्ष की सब से सनसनीदार खबर सम्भवतः यही है। कम्यूनिष्टों का आतंक पिछले कुछ वर्षों से भूगोल में लगातार बढ़ रहा है। गत महायुद्ध में रूस की सफलता ने इसमें चार चाँद और लगा दिए हैं। जब से महायुद्ध समाप्त हुआ तब से रूस का फौलादी पंजा योरप में अबाध गति से बढ़ता दिखाई देने लगा है और इससे प्रजातंत्र के हामी अमेरिका और इँग्लैण्ड का अन्न हजम नहीं हो रहा है। उनके सामने कम्यूनिज्म और रूस एक विभीषिका के रूप में प्रतिक्षण और पदे-पदे उपस्थित रहते हैं।

इधर पिछले ही दिनों भूगोल पर कुछ ऐसी घटनाएँ और हो गई हैं जो प्रजातंत्र के पोषकों और ठेकेदारों के लिए खतरे की सूचना हैं। एशिया का पुराना और सब से बड़ा आबाद देश चीन लाल झण्डे के चरणों में झुका दम तोड़ रहा है। अमेरिका और ब्रिटेन के टानिक और पेन्सिलीन उसकी प्राण-रक्षा नहीं कर सके। इस अन्ताराष्ट्रीय रस्साकशी में प्रजातंत्र इस प्रकार मुँह की खाएगा, ऐसी कल्पना बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों ने भी नहीं की थी। पर हुआ वही; अमेरिका का एटम बम-रूस के कल्पित एटम बम के भय में रक्खा ही रह गया और जनरलिस्मो की सरकार ने घुटने टेक दिए। और चीन ही क्यों, ब्रह्मा, इण्डोचीन और मलय भी अब तक कम्यूनिज्म के घेरे में आचुके हैं और अब-तब कर रहे हैं।

आज का संसार अन्ताराष्ट्रीय है। भूमंडल के किसी सुदूर देश में कोई घटना घटती है तो उसका प्रभाव थोड़ा-बहुत प्रत्येक देश पर पड़ता है। भारत तो चीन, मलय और इण्डोचीन का सर्वथा पड़ोसी ही है, ब्रह्मा तो भारत का अंग ही है। चीन और ब्रह्मा कम्यूनिज्म के प्रभाव में आ जाएँ, इण्डोचीन रूस के चेलों से आतंकित हो जाए, पर भारत अछूता रहे, ऐसी कल्पना स्वप्नद्रष्टा ही कर सकता है; सजग और सचेतन नहीं।

भारत में भी इधर कुछ ऐसी घटनाएँ घटने लगी हैं, जो स्पष्टतया सूचना दे रही हैं कि यहाँ भी कम्यूनिष्ट आतंक बढ़ता ही जा रहा है। जब से कांग्रेस ने देश का शासनभार सँभाला है, तब से इन घटनाओं की शृंखला में प्रतिदिन एक कड़ी जुड़ती जा रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इस कम्यूनिज्म की विष-वल्लरी के लिए भारत उर्वरक्षेत्र बन गया है। ऐसा किसी कारण से हुआ हो, पर है यह नग्न सत्य! और कारण! उन्हें खोजने के लिए भी दूर जाने की आवश्यकता नहीं है।

गत महायुद्ध में भारत ने विशेष और प्रत्यक्ष भाग नहीं लिया, यह सत्य है। पर यह भी सत्य है कि इस

महायुद्ध ने भारत की आर्थिक और नैतिक रीढ़ तोड़ दी है। भारत आज अन्न और कपड़े के लिए मोहताज है। भ्रष्टाचार की जड़ें यहाँ काफी गहरी जम चुकी हैं। जन-साधारण का नैतिक स्तर बहुत नीचा हो चुका है। जिनके संबंध में यह आशा थी कि ये अग्रणी हैं, इनका चरित्र ऊँचा है, इनके रहते हुए देश की नैतिकता गिरने न पाएगी और जो कुछ गिर चुकी है वह भी सँभल जाएगी; वे स्वयं दलबन्दी के दलदल में बुरी तरह फँस गए हैं और इसीलिए अपना उच्चनैतिक स्तर अक्षुण्ण नहीं रख सकते। परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ चुकी है कि हमारी राष्ट्रीय महासभा में आचरण-सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित होता है, और बहुमत से पास भी होता है। यही नहीं, राष्ट्रपति को निर्देशक निकालने पड़ते हैं और नेताओं को अपनी वक्तृताओं का विषय भी यही बनाना पड़ता है। जब नेताओं की नैतिकता प्रश्नचिह्न से अलंकृत हो जाए, तब जनता की दशा की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

जनता में सत् और असत् में विवेक करने की सहज बुद्धि नहीं होती। यदि होती तो प्रजातंत्र के सारे कार्यक्रम निष्पाप और निर्दोष रहते। पर ऐसा है कहाँ? 'बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय' को लक्ष्यविन्दु माननेवाला प्रजातंत्र दलबन्दी में फँस जाता है और उसकी समर्थक जनता चुनाव समाप्त होते ही अलग जा पड़ती है।

कम्यूनिज्म के लिए यही उर्वर भूमि है। जब देश का, शासनतंत्र का, नैतिकस्तर नीचे की ओर खिसकने लगता है तभी कम्यूनिज्म की लता लहराने लगती है। भारत की परिस्थिति भी बहुत कुछ इसी प्रकार की है। यहाँ का किसान बढ़ते हुए करभार और बढ़ती हुई महँगी से कराह रहा है। मजदूर अलग से बेचैन है। तनख्वाह की वृद्धि और महँगी की वृद्धि में परस्पर प्रतिद्विन्द्विता चल रही है और दोनों छोर मिलाने में असमर्थ होकर वह हड़ताल का अस्त्र सँभाल रहा है। देश के किसी-न-किसी कोने से हड़ताल के समाचार आते रहते हैं, कभी आंशिक रूप में, कभी सम्पूर्ण रूप में। मिलों और फेक्टरियों को जाने भी दीजिए; जब डाक और रेलवे जैसे सार्वजनिक विभाग हड़ताल पर उतारू हो जाते हैं तब सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि हम कहाँ पर हैं, हमारी सरकार कहाँ पर है और ये नगण्य रूसी चेले कहाँ पर हैं! हैदराबाद-स्थित तिलंगाना और नारगोंडा ज़िलों में कम्यूनिस्टों का आतंक, मद्रास सूबे भर में तोड़-फोड़ और गुप्त कार्यवाहियों का प्रसार, अस्त्र-शस्त्रों का संकलन और कांग्रेसकर्मियों की हत्याएँ एक विशेष दिशा की ओर संकेत कर रही हैं और यदि उस ओर से आँखें बन्द रक्खी गईं तो कोई आश्चर्य नहीं, यदि भारत को एक दूसरे गृहयुद्ध का क्षेत्र बनकर वही नतीजा भोगना पड़े, जो आज चीन को भोगना पड़ रहा है।

सारे देश में कम्यूनिस्टों की धर-पकड़ आरंभ हो गई है। इससे केवल यही पता लगता है कि हमारी सरकार और उसके कर्णधार 'रूसी चेलों' के खतरे से आगाह हैं और उन्होंने उचित समय पर ठीक दिशा की ओर कदम उठाया है। पर क्या यह रोग का ठीक इलाज है? कुशल डाक्टर रोग के कीटाणुओं को मार डालने की चिन्ता नहीं करता। वह तो क्षेत्र के परिष्कार का यत्न करता है; जिससे कीटाणु उत्पन्न ही न हो सकें और यदि बाहर से उनका संक्रमण हो भी जाए तो क्षेत्र में उन्हें आत्मपोषण के लिए उपयुक्त तत्त्व न मिल सकें। हमारी पुलिस को, हमारे नेताओं को और हमारी सरकार को बुद्धिमान् डाक्टर की भाँति इस ओर बहुत ध्यान देना है। जहाँ तक रोग की रोकथाम का संबंध है, वह तो कोई नीम हकीम भी कर सकता है और हमारी सरकार की ओर से भी उसमें कोताही नहीं की जाएगी।

देशी चिकित्सा-प्रणालियाँ

सन् १९४४ में, जब कि लार्ड वेवल भारत के वायसराय थे, ब्रिटिश सरकार ने सर जोजेफ भोर के नेतृत्व में एक जाँच कमेटी बैठाई थी। कमेटी का नाम था "हेल्थ सर्वे एण्ड डिवलपमेण्ट कमेटी" और उद्देश्य था—'देश की स्वास्थ्यसम्बन्धी परिस्थिति की छानबीन और जन-साधारण के स्वास्थ्य-स्तर की उन्नति के लिए उपयुक्त साधनों तथा प्रणालियों की सिफारिश करना।' उक्त भोर कमेटी ने यथासमय अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिसका देश में स्वागत हुआ था। 'सरस्वती' के इसी स्तम्भ में इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में यथासमय हमने प्रकाश डाला था। इस भोर कमेटी की रिपोर्ट में हमारी दृष्टि से सब से बड़ी त्रुटि यह थी कि आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा-प्रणालियों की इसमें सर्वथा उपेक्षा की

गई थी। इन दो प्राचीनतम चिकित्सा-प्रणालियों ने जन० साधारण की स्वास्थ्य-रक्षा में कितना योगदान किया है, इसकी चर्चा भी अपनी रिपोर्ट में कमेटी ने आवश्यक नहीं समझी थी।

इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि इस युग में भी, जब कि एलोपैथी अपने पूरे जोम पर है, होमियोपैथी का जाल बिछा हुआ है, प्राकृतिक चिकित्सा, किरण चिकित्सा और न जाने कितनी अन्य प्रणालियाँ प्रसार प्रचार पा रही हैं, देश की अस्सी प्रतिशत से अधिक जनता आयुर्वेदिक और यूनानी दवाओं के सेवन से ही स्वास्थ्य-लाभ कर रही है। नागरिक क्षेत्रों को यदि छोड़ दें--क्योंकि हमारे देश की अधिकांश आबादी ग्रामों में बसती है--तो देहात में तो डाक्टरी सहायता वैद्यक और यूनानी के रूप में ही उपलब्ध है। इस दशा में यदि कोई स्वास्थ्य-योजना देश की इन दो महती प्रणालियों की उपेक्षा पर आधारित होती है तो वह अवश्य त्रुटिपूर्ण है।

भारतीय स्वास्थ्य दशा पर विचार करने के लिए हमारी नई सरकार ने पिछले दिनों एक नई कमेटी और बिठाई थी जिसकी रिपोर्ट आज (ता० १६ फरवरी को) प्रकाशित हुई है। यह कमेटी श्री आर० एन० चोपरा के प्रधानत्व में अपना कार्य कर रही थी। पाठकों को यह जानकर सन्तोष होगा कि जिन तथ्यों की उपेक्षा करने के कारण भोर कमेटी की रिपोर्ट त्रुटिपूर्ण और अनुपयोगी कही गई थी, उन तथ्यों पर चोपरा कमेटी ने पूर्ण सहानुभूति के साथ विचार किया है।

रिपोर्ट के अनुसार चोपरा कमेटी के सम्मुख बयान देते हुए कुछ विशेषज्ञों ने ऐसी सम्मति प्रकट की थी कि देशी चिकित्सा-प्रणालियाँ अवैज्ञानिक, दकियानूसी और अनुपयोगी हैं, अतः उनके पुनरुद्धार की आवश्यकता नहीं है। ऐसे मतों के उत्तर में चोपरा कमेटी ने ठीक ही कहा है कि 'विज्ञान सार्वभौमिक होता है। चिकित्सा-विज्ञान भी इसका अपवाद नहीं है। यह कहना ठीक नहीं कि पाश्चात्य और पौरस्त्य चिकित्सा-विज्ञान एक दूसरे से भिन्न हैं। इस वैविध्य में वही लोग विश्वास कर सकते हैं जो भारतीय ऋषियों की विचार-पद्धति से अनभिज्ञ हैं। ये तथाकथित विविध प्रणालियाँ चिकित्सा-विज्ञान की दिशा में विविध मार्ग और विभिन्न दृष्टिकोण के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। अन्तर केवल देश और काल के कारण है। इनमें मानवता के कल्याण के लिए जहाँ और जो कुछ मूल्यवान् तत्त्व हो, उसका उपयोग सम्पूर्णतया और निस्संकोचतया करना चाहिए।'

आयुर्वेद और यूनानी प्रणालियों में ग्रहणीय तत्त्व बहुत अधिक है, इसे पाश्चात्य विशेषज्ञ भी स्वीकार करते हैं। सर पारडे ल्यूकस ने जो भारतीय मेडिकल सर्विस के डाइरेक्टर-जनरल थे, आज से ३३ वर्ष पूर्व लिखा था—'भारतीय हकीमों की चिकित्सा-पद्धति में अनेक बहुमूल्य तत्त्व हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि उनके पूर्वज ऐसी बहुत-सी बातें युगोंपूर्व जानते थे, जिन्हें आज का विज्ञान 'नवीन अनुसंधान' के लेबिल में सामने रख रहा है!' दुर्भाग्य से ब्रिटिश शासन ने अपना कुप्रभाव जहाँ भारत की अन्य वस्तुओं पर डाला, वहाँ चिकित्सा-विज्ञान को भी उसने अछूता नहीं छोड़ा। गत २०० वर्ष में एलोपैथी तथा अन्य पाश्चात्य पैथियों ने तो काफी प्रोत्साहन प्राप्त किया, पर आयुर्वेद सर्वथा उपेक्षित बना रहा। इसे राजाश्रय तो प्राप्त हुआ ही नहीं; केवल जनता-जनार्दन के बल-बूते पर ही यह अपनी सत्ता बनाए रह सका। यही छोटी बात नहीं है। इस राजकीय उपेक्षा का ही यह परिणाम हुआ कि आयुर्वेद व यूनानी के आठ अंगों में से कुछ अंग नितान्त निर्बल हो गए। शल्य-चिकित्सा उनमें अन्यतम है। इसी कारण जनता के निकट ये दोनों प्रणालियाँ सर्वांशतः उपादेय नहीं रह सकीं। और इस दशा में यदि जनता अधिक संख्या में आयुर्वेद और यूनानी की ही ओर अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिए देखती रही तो इसका कारण केवल यही था कि रोग-निवारण में जो अमोघता आयुर्वेदिक और यूनानी योगों को प्राप्त है, उसका सौ में एक अंश भी अन्य पैथियों के पल्ले नहीं पड़ा है।

हमें यदि चिकित्सा-विज्ञान को पूर्णता की ओर ले जाना है तो इसमें किसी को सन्देह नहीं है कि इन दोनों देशी प्रणालियों को अपने अविकसित और अल्प विकसित अंगों की पूर्ति के लिए एलोपैथी से सहायता लेनी होगी और एलोपैथी को कार्य-चिकित्सा के क्षेत्र में इन दोनों पद्धतियों से; संक्षेप में पौरस्त्य और पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणालियों को मिल जाने की आवश्यकता है।

पर ऐसा मेल किस प्रकार सम्भव हो सकता है? इस सम्बन्ध में चोपरा कमेटी ने जो सुझाव दिए हैं, वे ध्यान

देने योग्य हैं। 'हम यह मानते हैं कि पाश्चात्य और पौरस्त्य चिकित्सा-विज्ञानों का समीकरण समयापेक्षी भले ही हो, पर असम्भव कदापि नहीं है। यह भी निश्चित है कि इनका मिला-जुला रूप मानवता के लिए अत्यधिक सहायक होगा। इसके लिए आवश्यक यह है कि भारत में चिकित्सा-विज्ञान की शिक्षा के लिए जो कालिज हैं उनका नूतनीकरण हो जाए।'

भारत में आज अनेक आयुर्वैदिक और यूनानी कालिज चल रहे हैं। उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो आयुर्वेद और यूनानी के साथ साथ पाश्चात्य ढङ्ग से शवच्छेद, शल्यचिकित्सा व नेत्र-चिकित्सा आदि विषयों की शिक्षा भी देते हैं। यदि सरकार की विशेष कृपादृष्टि इन कालिजों पर हो जाए तो कोई कारण नहीं है कि ये अल्पकाल में ही पूर्ण उपयोगी और समृद्ध न बन जाएँ। स्वतन्त्र भारत के नागरिकों को उनकी रुचि और प्रकृति के अनुकूल उच्च कोटि की डाक्टरी सहायता मिलनी चाहिए। पर यह तभी सम्भव हो सकता है जब सरकार चोपरा कमेटी की सिफारिशों को कार्यरूप देने के लिए कृतसंकल्प हो जाए।

दक्षिण अफ्रीका में—

अभी कुछ ही दिन पूर्व दक्षिण अफ्रीका की पार्लियामेंट में वहाँ की 'मलान-सरकार' के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित किया गया था। प्रस्तावक थे भारतीयों के सुपरिचित जनरल स्मट्स। पाठकों को स्मरण होगा कि गत मास अफ्रीकावासियों ने दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी भारतीयों पर सामूहिक रूप से आक्रमण कर दिया था जिसके कारण भारतीयों की धन-जन की अपार हानि हुई थी। यह प्रस्ताव उसी घटना की प्रतिध्वनि था। प्रस्ताव पर जो भाषण हुए वे काफी स्पष्ट और आँखें खोलनेवाले हैं। उनमें स्पष्टरूप से ध्वनित है 'रंगीन ज़ातियों के प्रति गोरों की घृणा।' गोरों ने अफ्रीकावासियों को भी बख्शा नहीं है, भारतीयों की तो बात ही क्या है? उदाहरणार्थ भूमि मंत्री के भाषण का कुछ अंश उद्धृत कर देना पर्याप्त होगा। आप फर्माते हैं—"रङ्ग की समस्या हमारी सभी समस्याओं को आच्छादित किए हुए है। कारण, सब से अधिक गम्भीर प्रश्न यह है कि गोरी जातिवाला इन अगणित विषमताओं के बीच अपनी स्थिति को सुरक्षित रख सकेगा?"

विषमताएँ सचमुच अगणित हैं। बाईस या साढ़े बाईस लाख गोरों को २८०००० भारतीयों और अस्सी लाख अफ्रीकनों के बीच रहना पड़ रहा है! यदि इन बयासी लाख अस्सी हजार रङ्गीनों को एड़ी के नीचे दबाकर नहीं रखा जाएगा तो बाईस लाख को खुल-खेलने का अवकाश कैसे प्राप्त होगा? इसी विचार से उक्त मंत्री महोदय ने सुझाव उपस्थित किया है—"गोरों को पदाक्रान्त होने से बचाने के लिए केवल एक उपाय है, और वह यह कि मताधिकार को अपने हाथ में रक्खा जाए।"

सुझाव सीधा है। दक्षिण अफ्रीका की पार्लियामेंट में रङ्गीनों की संख्या अब भी इतनी है कि वह मतों के बल पर गोरे सदस्यों के किसी वांछनीय बिल को पास होने से रोक नहीं सकती। पर रङ्गीनों का इतना अल्प प्रतिनिधित्व भी गोरों को अब खटक रहा है। उन्हें यह कैसे सह्य हो सकता है कि रङ्गीन—वे चाहे हिन्दुस्तानी हों अथवा अफ्रीकन—उनके बराबर कुर्सियों पर एक ही मेज के इर्द-गिर्द बैठें। उनकी दृष्टि में तो रङ्गीनों की जगह गोरों की एड़ियों के नीचे है न!

डाक्टर मलान ने विरोधीपक्ष के आक्षेपों का उत्तर देते हुए अविश्वास-प्रस्ताव पर अपना जो संशोधन पेश किया वह भी मूल प्रस्ताव का ध्वन्यन्तर मात्र है। उद्देश्य वही है, अन्तर केवल यह है कि नाक सीधी न पकड़ कर जरा घुमाकर पकड़ी गई है। संशोधन इस प्रकार है:—

"सदन सरकार में अपना पूर्ण विश्वास प्रकट करता है। साथ ही यह आशा करता है कि सरकार अपनी पृथक्ता की नीति को और अग्रसर करेगी जैसा कि पिछले आमचुनाव में जनता की ओर से उपस्थित किए गए 'मेनडेट' में कहा गया था।"

अभिप्राय स्पष्ट है। रंग-भेद की नीति को अब वहाँ अधिक लगन के साथ बरता जाएगा और रंगीनों को उस थोड़े से सम्मान से भी भविष्य में वंचित कर दिया जाएगा जो उन्हें पार्लियामेण्ट के सदस्य की हैसियत से प्राप्त है। रंगीनों के साथ न्याय करने की भावना न मूल प्रस्ताव में है जो स्मट्स की ओर से उपस्थित किया गया है और न उसके संशोधित रूप में जो वर्त्तमान मलान

सरकार के बहुमत के बल पर पास होगया है और अब कार्यरूप में दूनी तेजी के साथ परिणत होगा।

जब दक्षिण अफ्रीका की शासन-सत्ता जनरल स्मट्स के हाथों में थी तब जनरल स्मट्स ने रंग-भेद की नीति को पूरी तरह प्रवर्तित किया था। उन दिनों उन्होंने भारतीय-विरोधी और अफ्रीकन-विरोधी ऐसे-ऐसे कानून प्रचलित किए थे जिन्हें देखकर सभ्य संसार दंग रह गया था। मलान-सरकार के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित करने में, यह तो स्पष्ट है, जनरल स्मट्स का मंशा यह नहीं था कि मलान सरकार अपनी जाति-मूलक या रंग-मूलक नीति को छोड़ दे या उसमें कुछ ढिलाई करदे। वह तो स्पष्टतः डरबन के दंगे से लाभ उठाकर मलान-सरकार को बदनाम करना चाहते थे, अपना उल्लू सीधा करने के लिए।

डरबन के दंगों के विषय में 'सरस्वती' के पाठक समाचारपत्रों में बहुत कुछ पढ़ चुके होंगे। इन दंगों का मूल कारण मलान-सरकार के द्वारा अफ्रीकनों को भारतीयों के विरुद्ध भड़काया जाना था। मलान-सरकार को इधर पिछले दिनों से यह भ्रम होगया था कि अफ्रीकन और भारतीय परस्पर मिल रहे हैं और गोरों के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा स्थापित करने के प्रयत्न में हैं। इसी कारण यह 'फूट डालो और राज्य करो' की पुरानी गोराशाही नीति वहाँ प्रयोग की गई, जो गोरों की आशा से भी अधिक वहाँ फलवती होरही है। अफ्रीकन और भारतीय अब वहाँ एक दूसरे के कट्टर विरोधी बन गए हैं। अफ्रीकन अब भारतीय दूकानदारों से सौदा नहीं खरीदते। फलस्वरूप भारतीयों का व्यापार ७५ प्रतिशत घट गया है। अफ्रीकन अब भारतीयों की बसों पर सवारी नहीं करते। यही नहीं, अब वे गोरों के तलवे चाटने में परस्पर प्रतिस्पर्धा-सी कर रहे हैं।

गोरों की ओर से उपस्थित प्रस्ताव की अफ्रीकनों पर क्या प्रतिक्रिया होती है, अब यह देखना शेष है। यह तो निश्चित ही है कि मलान-सरकार की नीति सफल होरही है और उसने अफ्रीकनों को भड़काकर वहाँ के भारतीयों का जीवन दुर्वह कर दिया है। अफ्रीकन अब भी भ्रम में बने रहेंगे और भारतीयों को अपना शत्रु तथा गोरों को अपना हितू समझते रहेंगे, यह बहुत कुछ अफ्रीकनों की समझदारी पर निर्भर करता है, यदि भगवान् ने उन्हें इतनी समझ दी हो कि पार्लियामेंट में उपस्थित प्रस्ताव, संशोधन और उनपर होनेवाले वाद-विवाद को वे पढ़ और समझ सकें!

यहाँ, इतनी दूर से, हमारी समझ में यह नहीं आ सकता है कि अफ्रीकन जिनके स्वार्थ गोरों की अपेक्षा भारतीयों से अधिक संबद्ध हैं—जो भारतीयों के एक प्रकार से समानधर्मा हैं—भारतीयों को अपना विरोधी कैसे समझ सकते हैं! पर गोरी शासक जाति अपनी प्रजा की दो विभिन्न जातियों में पारस्परिक घृणा और विद्वेष के बीज बोने में कितनी पटु है, यह भी हम जानते हैं। इन बीजों से उत्पन्न वृक्ष कितने दृढ़मूल होते हैं, इसका हमें प्रत्यक्ष का अनुभव है। भेद-बीज बोनेवाले गोरे भारत से चले गए, पर वृक्ष अभी तक लह लहा रहा है। प्रमाण के लिए डरबन के दंगे के संबंध में उत्कंठा प्रकट करते हुए पाकिस्तानी सरकार की ओर से जो तार 'मलान-सरकार' को भेजा गया है, उसे उपस्थित किया जा सकता है। तार की शब्दावलि का अनुवाद इस प्रकार है—"आपसे प्रार्थना है कि आप डरबन के दंगे के कारणों से हमें अवगत कराएँ और यह भी सूचित करें कि दंगे से मुसलमानों की विशेषतया पाकिस्तानियों की, जान-माल की कितनी हानि हुई है।"

जब पाकिस्तान की यह दशा है तब अफ्रीकनों के संबंध में कहाँ तक आशा की जा सकती है जहाँ गोरे अभी मौजूद हैं!

— —

जनता बनाम पुलिस

फरवरी के प्रथम सप्ताह में बदाऊँ में 'जिला राजनैतिक कान्फ्रेंस' हुई थी। कान्फ्रेंस का उद्घाटन करते हुए हमारे प्रान्त के प्रधानमन्त्री माननीय पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त ने जनता से अपील की थी कि वह अपराधों के अनुसन्धान में तथा कानून व व्यवस्था की रक्षा में पुलिस को अपना अधिक-से-अधिक सहयोग प्रदान करे। अपने मन्तव्य की व्याख्या करते हुए माननीय पन्त ने यह भी कहा था कि स्वतन्त्र देश में जनता और जन-सेवक (पुलिस!) के बीच संघर्ष का कभी अवसर ही नहीं आता और यही कारण है कि लन्दन जैसे बड़े नगर में पुलिस का एक सिपाही कई लाख जनता के बीच कानून

और व्यवस्था की रक्षा के लिए पर्याप्त समझा जाता है। इसी प्रकार आपका (जनता का) सहयोग हमारी पुलिस को प्राप्त होना चाहिए जिससे वह प्रान्त में शान्ति रख सके।

लखनऊ में हड़ताली छात्रों और छात्राओं पर पुलिस-द्वारा लाठीचार्ज हुए तब कुछ ही समय बीता था और उक्त भाषण करते समय माननीय प्रधानमन्त्री के मस्तिष्क में उक्त अवाञ्छनीय घटना की स्मृति ताजी ही होगी। यहाँ इस संबंध में हम पाठकों को एक और भाषण का स्मरण दिलाना चाहते हैं जो लाठीचार्ज के थोड़े ही समय बाद सुनने को मिला था। हमारे महामात्य पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लखनऊ में ही विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में कहा था—"आज कुछ विद्यार्थी और अध्यापक यह समझ रहे हैं कि उनका काम झुंड बनाकर सड़कों पर घूमना, प्रदर्शन करना और हड़तालें कराने के लिए नारे लगाना भर है। हड़तालों और प्रदर्शनों की उपयोगिता उस समय थी जब हम गुलाम थे। आज भी उनकी कुछ उपयोगिता हो सकती है, परन्तु जनता के प्रत्येक सदस्य को यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसका प्रत्येक कार्य लोकतन्त्र-प्रणाली से अनुप्राणित हो। आज जो हड़ताल और प्रदर्शनों का आयोजन कर रहे हैं, वे लोकतन्त्र के हामी हैं, यह नहीं माना जा सकता। उनमें से अधिकांश बलपूर्वक शासन-तन्त्र को स्वायत्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। छात्रों का कर्तव्य है कि वे अपने को ऐसे व्यक्तियों से पृथक् रक्खें। आज भारत के समक्ष सब से बड़ी आवश्यकता उत्पादन-वृद्धि की है, जिसकी पूर्ति हड़तालों, नारों और प्रदर्शनों से नहीं हो सकती। इसके लिए सहकारिता और सहयोग की प्रवृत्तियों का विकास होना चाहिए।"

प्रधानमन्त्री और महामन्त्री दोनों के कथन का सारांश यही है कि जनता सरकारी पुलिस तथा अन्य शासन-मशीनरी से पूर्ण सहयोग करे और इस प्रकार शासनतन्त्र के संचालन में सहायता करे, उसमें रुकावट न डाले। स्वतन्त्र भारत का प्रत्येक नागरिक भी हृदय से यही चाहता है कि उसकी पुलिस और अधिकारी उसे अपने प्रतीत हों, यम के दूत नहीं, जैसे कि वे हैलट-शाही के दिनों में प्रतीत होते थे। परन्तु क्या जनता के सहयोग-मात्र से इस उद्देश्य की पूर्ति संभव है? या पुलिस तथा सरकार का भी इस दिशा में कोई कर्त्तव्य है? यह भी प्रश्न सामने आता है कि क्या हमारे माननीय प्रधान-मन्त्री और महामन्त्री की यह धारणा वस्तु-स्थिति पर आधारित है कि उनकी पुलिस और उसके अधिकारी डेढ़ साल की शासनविधि में ही ऐसे बन गए हैं कि जनता उन पर विश्वास कर सकती है और उन्हें अपना सगा-संबंधी और मित्र समझ सकती है? यदि ऐसा नहीं है—क्योंकि कोई विचारशील व्यक्ति यह नहीं मान सकता कि हैलटशाही के युग में जिन्होंने जनता का सब प्रकार से खून चूसा था, वे अब सच्चे अर्थों में शांति-रक्षक और जन-सेवक बन गए हैं, केवल इस कारण कि वे अब कांग्रेसी मंत्रि-मण्डल के नीचे काम कर रहे हैं—तो बार-बार जनता से पुलिस से सहयोग करने की अपील का फल क्या होगा? विश्वास विश्वास से पैदा किया जा सकता है, अपीलों से नहीं!

हमारे मत से माननीय पंत जी की यह धारणा है कि जनता पुलिस का विश्वास नहीं करती या उससे सहयोग करने को तैयार नहीं है। यह धारणा ठीक है। पर इसमें दोष जनता का ही नहीं है। सच बात यह है कि तपे लोक-सेवकों के हाथ में शासन-सूत्र होते हुए भी पुलिस की गति-विधि में अभी कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं दिखाई दे रहा है। प्रांत में पुलिस की वृद्धि हो रही है तो अपराधों की वृद्धि भी हो रही है। राष्ट्रीय सरकार के ये कैसे सिपाही हैं जो अपराधों की संख्या को घटा नहीं पाते? डाके बढ़े, चोरियाँ बढ़ीं, रिश्वतें बढ़ीं, भ्रष्टाचार और बलात्कार के मामले बढ़े! इस दशा में यदि पुलिस की संख्या बढ़ी, उसके वेतन के लिए जनता पर टैक्स का बोझ बढ़ा और उसकी अशरणता बढ़ी तो जनता क्या समझे कि यह पुलिस-विभाग उसका अपना है? या यह वही नहीं है जिसका काम हैलट-युग में रोब-दाब और आतङ्क की रक्षा करना भर था, जन कष्ट निवारण नहीं!

इस तथ्य को सरकारी अधिकारी अस्वीकार करते हैं, यह बात नहीं है। श्री जगनप्रसाद रावत ने अभी हाल ही में फतेहगढ़ में पुलिस-अधिकारियों की सभा में कहा था—

"मुझे यह देखकर खेद होता है कि यद्यपि हमें स्वाधीन हुए लगभग डेढ़ वर्ष का समय हो गया है पर

जनता का पूर्ण विश्वास अभी तक पुलिस को प्राप्त नहीं हुआ है। पुलिस के आफिसरों के दृष्टिकोण में निस्सन्देह अब तक बहुत परिवर्त्तन हो चुका है, पर अभी और अधिक परिवर्त्तन की आवश्यकता है — इसलिए कि आप लोगों (पुलिस) के कारनामें जनता में पूर्ण विश्वास की भावना भर सकें। आप लोगों को जनता के हृदयों पर प्रेम और भक्ति से शासन करना चाहिए, भय और आतंक से नहीं।"

इस सन्दर्भ में क्या उस कारण की ओर संकेत नहीं है जिसके होते हुए जनता पुलिस में पूर्ण-विश्वास कर ही नहीं सकती ?

पुलिस में चौकीदार से लेकर उच्चतम अधिकारियों तक एक संख्या ऐसे 'लोक-सेवकों' की है जो हैलट-शाही से विरासत के रूप में प्राप्त किए गए हैं, और जिन्हें ट्रेनिंग-स्कूलों में गालियाँ बारहखड़ी की भाँति रटाई गई थीं। इन पुराने घाघों की सूरतें जनता अभी तक भूली नहीं है, जिन्होंने कल ही उसके नौनिहालों की छातियाँ अपनी पिस्तौलों से चलनी की थीं। इन खूँख्वारों की मनोवृत्ति में भी क्या सचमुच अकस्मात् परिवर्त्तन हो गया है ? क्या प्लेटफार्म से झाड़े गए भाषणों में और कल से निकलनेवाले 'पुलिस के अखबार' में इतनी क्षमता है कि वे व्याघ्र को तपस्वी बना सकें ? उन्हें खादी की वर्दी भी तो सरकार अभी तक नहीं दे पाई है, जिससे उनके बाहरी रूप में परिवर्त्तन हो जाता और जनता उनके निकट आने में भय न खाती ! हमारे प्रधानमंत्री ने इसके बाद पड़रौना में बिहार और युक्तप्रान्त के पुलिस अधिकारियों को संबोधित करते हुए स्वयं स्वीकार किया है कि "पुलिस के ढंग में मौलिक परिवर्त्तन अनिवार्य है। कारण अपराधों की वृद्धि हो रही है और पुलिस उन्हें रोकने में अयोग्य सिद्ध हुई है। सूबे की पुलिस में भ्रष्टाचार और अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासीनता इस मात्रा में है कि उसकी ओर से आँखें बन्द नहीं की जा सकतीं। कांग्रेस के शासन के १॥ वर्ष के भीतर-भीतर लगभग एक हजार पुलिस कर्मचारियों को भ्रष्टाचार या कर्त्तव्यच्युति के अपराध में दण्डित किया जा चुका है।"

जब तक पुलिस-विभाग में आमूलचूल परिवर्त्तन नहीं होता, जब तक पुराने अर्द्धशिक्षित घाघों की कुर्सियों पर विश्वविद्यालयों से निकले शिक्षित देश-भक्त सुशोभित नहीं हो जाते तब तक घृणा को विश्वास में नहीं बदला जा सकता। इस कायाकल्प में जितनी देर होगी, अपराधों की संख्या में भी उतनी ही वृद्धि होगी; जनता तथा पुलिस के बीच की खाई भी उसी अनुपात से चौड़ी होती जाएगी।

माननीय पंत जी ने पड़रौना के भाषण में यह संकेत कर दिया है कि वे पुलिस-विभाग में 'नया ढंग' लाने का विचार कर रहे हैं। उस 'नए ढंग' की रूप-रेखा का परिचय यद्यपि उन्होंने अभी नहीं दिया है, देना भी नहीं चाहिए था, फिर भी हमारा विश्वास है कि उनका 'नया ढंग' पुलिस को अनतिकाल में 'राष्ट्रीय सरकार' की योग्य पुलिस बना देगा और तब जनता पुलिस को सहयोग प्रदान करने में गर्व का अनुभव करेगी।

पण्डित नेहरू और हिन्दी

राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में अपने विचार पंडित नेहरू ने, व्यक्ति की हैसियत से, प्रधान मंत्री की हैसियत से नहीं, एक लेख के द्वारा अभी हाल ही में प्रकट किए हैं। लेख सभी समाचारपत्रों में छप चुका है अतः हमें आशा है कि 'सरस्वती' में पाठकों ने उसे अवश्य पढ़ा होगा। विचारार्थ मोटे रूप से उक्त लेख को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—प्रथम भाग में राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में अपनी व्यक्तिगत मान्यता पर नेहरू जी ने प्रकाश डाला है; दूसरे भाग में प्रथम भाग के आधार पर हिन्दुस्तानी का समर्थन किया है और तीसरे भाग में लिपि पर विचार किया है। राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में वे लिखते हैं—

"मेरा विश्वास है कि किसी अन्य वस्तु की तुलना में राष्ट्र की भाषा ही उसके चरित्र की कसौटी है। यदि भाषा सबल और सशक्त है तो उसका प्रयोग करनेवाले भी वैसे ही होंगे और यदि भाषा बनावटी, अलंकारयुक्त तथा जटिल है, तो वह भी उसे प्रयोग करनेवालों का प्रतिबिम्ब मात्र है।" बात सोलहों आना ठीक है। इसी प्रकार राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में उन्होंने जो कसौटी दी है वह भी सर्वग्राह्य है। उनका कहना है—"राष्ट्रभाषा सरल हो, सुबोध हो ! नए विचारों को अभिव्यक्त करने की

उसमें क्षमता हो ! विदेशी भाषाओं के प्रचलित शब्दों का बहिष्कार न किया जाए; आदि ।

ये विशेषताएँ पंडित नेहरू हिन्दुस्तानी भाषा में ही पाते हैं, यह सचमुच आश्चर्य की बात है । वस्तुतः ये विशेषताएँ और ऐसी ही अन्य विशेषताएँ हिन्दी में ही पाई जाती हैं, हिन्दुस्तानी में नहीं, जिसका न निर्धारित रूप है, न कोई साहित्य । हिन्दुस्तानी के पीछे कोई सांस्कृतिक परम्परा भी तो नहीं है जिसे नेहरू जी ने राष्ट्र-भाषा के लिए अनिवार्य माना है । निश्चित भावों को व्यक्त करने की कितनी क्षमता हिन्दुस्तानी में है, इसका पता 'नया हिन्द' और विधान के मसविदे का हिन्दुस्तानी-अनुवाद पढ़नेवालों को आप-ही-आप लग जाता है ।

लेख में पंडित नेहरू यह तो स्वीकार करते हैं कि संस्कृत हमारे प्राचीन की सबसे मूल्यवान् धरोहर है अतएव वह राष्ट्रभाषा का आधार होनी चाहिए, पर दूसरी ओर वे फारसी और अँग्रेजी से शब्द लेने का आग्रह भी करते हैं । यह मोह है; अन्य कुछ नहीं । अँग्रेजी और फारसी के प्रचलित शब्द हिन्दी ने काफी अपना लिए हैं, अब अधिक नए शब्द अपनाना उसके रूप को विकृत करना होगा--जैसा कि कुछ लेखकों द्वारा किया जा रहा है । रही पारिभाषिक शब्दों की बात, सो अदालती भाषा का संशोधन तो करना ही होगा । अरबी-फारसी के शब्द केवल इसीलिए चिरंजीवी नहीं बनाए जा सकते, क्योंकि उनका अदालतों में उपयोग होता है । अदालती कार्य-वाही में इससे झंझट पैदा नहीं होगी । ग्वालियर आदि देशी राज्यों में अदालती कार्यवाही आज भी हिन्दी शब्दों के माध्यम से ही होती है ।

रही दस्तावेजों के पढ़ने के लिए उर्दू की लिपि को राजलिपि बनाने की बात; उसके सम्बन्ध में यही कहना पर्याप्त है कि यदि शिलालेखों-ताम्रपत्रों को पढ़ने के लिए प्राकृत और खरोष्ट्री को राजलिपि मानना आवश्यक नहीं रहा, तो पुराने दस्तावेजों को पढ़ने भर के लिए उर्दू लिपि को लटकाए रहने की जरूरत नहीं है । लिपि-विशेषज्ञ यह कार्य सदियों तक आसानी से करते रहेंगे ।

पूर्ण राशन का निर्णय

गत कुछ सप्ताहों से हमारे प्रान्त में खाद्यान्न की स्थिति विशेष चिन्ताजनक हो चली थी । जो गेहूँ साधारणतः बाजार में २५) या २६ मन मिलता था, उसका भाव बढ़कर अचानक ४०) मन तक पहुँच गया था । कदन्नों के मूल्य में भी इसी अनुपात से वृद्धि हो गई थी । अन्न की महँगी का प्रभाव अविलम्ब दूसरी उपभोग्य वस्तुओं पर भी पड़ता है अतः यह आशंका होने लगी थी कि महँगी की एक नई लहर फिर से जन-जीवन को त्रस्त करने के लिए उठने ही वाली है ।

महँगी के सद्यः कारणों पर विचार करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है । कहा जा सकता है कि इसका कारण प्रान्त में खाद्यान्न की अपर्याप्तता है । पर यह बात समझ में आनेवाली नहीं है । मण्डियों में जो गेहूँ इस समय ऊँचे दामों पर बिकता दिखाई दे रहा है, वह निश्चयतः १९४७ की फसल का है, जो प्रायः अखाद्य हो चुका है । पर भूखी जनता क्या करे ! वह उसी को ड्योढ़े-दूने दामों पर खरीदकर खा रही है, बनियों की तिजोरियाँ भर रही हैं और अपनी राष्ट्रीय सरकार की जय बोल रही है । बाजार में पुरानी फसल के अन्न का आना और बिकना क्या स्पष्ट प्रमाणित नहीं करता कि खाद्यान्न की कमी प्रान्त में वस्तुतः उतनी नहीं है जितनी कि आँकड़ा-शास्त्रियों के दिमागों में है । सच बात यह है कि प्रयत्न करने पर भी हमारी सरकार अभी तक संग्रहकारों और मुनाफाखोरों के विषदन्त नहीं तोड़ पाई है ! भविष्य में भी तोड़ सकेगी या नहीं, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है ।

जनता को इस परिस्थिति से बचाने के लिए सरकार ने राशनिंग व्यवस्था में कुछ और विस्तार कर दिया है, यह सन्तोष की बात है । इस सबंध में तत्परता भी दिखाई जा रही है, यह शुभ लक्षण है । अनावश्यक और अवि-चारपूर्ण काम इस संबंध में यह हुआ है कि हमारे खाद्यमंत्री ने, न जाने क्या समझकर, यह ढिंढोरा पीट दिया है कि 'सरकार अन्न का संग्रह जहाँ पाएगी, वहाँ उस पर कब्जा कर लेगी ।' अनुभव यह कहता है कि सरकार को, जैसा उचित समझ पड़े, कर गुजरना चाहिए; ढिंढोरा पीटकर ग्रामकंटकों को पूर्व ही सचेत नहीं कर देना चाहिए । कारण, वे वस्तु को पाताल भेज देने में जितने चतुर होते हैं, सरकारी कर्मचारी उसे खोद निकालने में उतने कुशल नहीं हो सकते ।

नई दिल्ली की कला-प्रदर्शनी

श्री शिवकुमार विद्यालंकार

दिसम्बर १६४७ से फरवरी १६४८ तक लन्दन में भारतीय कला की एक प्रदर्शनी हुई थी। इसके लिए हमारे देश की कलापूर्ण वस्तुओं के २३६ सन्दूक लन्दन भेजे गए थे। भारत के तमाम अजायबघरों और प्राइवेट संग्रहालयों से इन वस्तुओं का चुनाव किया गया था। भारत सरकार ने सोचा कि लन्दन में प्रदर्शित भारत की कलात्मक वस्तुओं के वापस आने पर यहाँ भी उनकी प्रदर्शनी का आयोजन किया जाए। इसी निश्चय के अनुसार छः नवम्बर १६४८ से गवर्नमेंट-हाउस, नई दिल्ली में उक्त वस्तुओं की प्रदर्शनी शुरू हुई जो मार्च १६४६ तक जारी रहेगी। समूचा प्रबन्ध भारत सरकार के शिक्षा-सचिवालय की ओर से किया जा रहा है। गवर्नमेंट हाउस अभी तक सर्वसाधारण जनता की पहुँच से बाहर था। लन्दन प्रदर्शनी के बहाने लोगों ने इस विशाल भवन को देख लिया। लोग तरह तरह के विचार प्रकट कर रहे थे। किसी समय इस भवन में ब्रिटिश वायसराय रहा करते थे। किन्तु आज गांधी जी के अनुयायी इस भवन में रह कर क्या करें? क्यों न इस भवन में पंजाब के शरणार्थियों को बसा दिया जाए? क्यों न वर्त्तमान परिस्थिति को देखते हुए 'डिग्निटी' की परिभाषा को ही बदल दिया जाए? उपयोगिता का नाम ही 'डिग्निटी' होना चाहिए। यदि यह भवन शरणार्थियों के काम न आया तो इसकी 'डिग्निटी' कैसी? ऐसी और इससे मिलती-जुलती अनेक टीका-टिप्पणियों को सुनते-सुनते हम उस दिन कला-प्रदर्शनी देखने चले गए। चार आने और दो आने (बच्चों के लिए) के टिकट लेकर हम लोग भवन में प्रविष्ट हुए। वहाँ हमने समस्त कलापूर्ण वस्तुओं को निम्न पाँच श्रेणियों में विभक्त पाया—मूर्त्तिकला, कांसे की प्रतिमाएँ, चित्रकला, वस्त्र-कला तथा कला-सम्बन्धी विभिन्न वस्तुएँ।

(१) मूर्त्तिकला

गवर्नमेंट-हाउस में दाखिल होते ही बायीं ओर एक अलमारी में हमें हड़प्पा और मोहेञ्जोदड़ो की मुद्राएँ, छोटी-छोटी मूर्त्तियाँ और मिट्टी के खिलौने देखने को मिले। मिट्टी के छोटे-बड़े बर्त्तन और सोने-चाँदी के आभूषण भी एक शो-केस में रखे हुए हैं। इन सबसे ईसा से २५००० वर्ष पूर्व के भारतीय शिल्पियों की प्रतिभा, उनकी रुचि और उनके साधनों का हमें परिचय प्राप्त होता है। गहनों से लदी एक मातृ-देवी और उछलते-कूदते पशु-पक्षी इस काल की मूर्त्ति-कला के आदर्श नमूने हैं।

इसी स्थान पर हमें भारतीय खिलौनों के उत्तरोत्तर विकास के इतिहास का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। पहिले हमारे देश के शिल्पी हाथ से ही खिलौने तैयार किया करते थे। तब तक उनके पास साधन कम थे। ईसा से दो सदी पूर्व अर्थात् शुंग-काल में सर्वप्रथम शिल्पियों ने साँचों से खिलौने बनाने शुरू किए। कौशाम्बी नगरी शुंग-कालीन खिलौनों का केन्द्र थी। इस युग का एक खिलौना देखकर हमारा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। एक ताँगे पर स्त्री-पुरुष सवार हैं और गाने-बजाने व खाने-पीने की मौज कर रहे हैं। इससे ज्ञात होता है कि उस समय हमारा समाज आध्यात्मिक नहीं, भौतिक भी था। वह दुनिया की ऐशो-आराम की कीमत को पहिचानता था।

आगे चलकर इन्हीं छोटे-छोटे खिलौनों ने बड़ी-बड़ी मूर्त्तियों के रूप में विकास किया। गुप्त-काल में यह विकास अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था। सबसे पहिले पत्थर की पट्टियों पर उकेरी मूर्त्तियाँ तैयार की गईं। उन्हें पत्थर के चौखटों में डालकर या उनके बड़े-बड़े टिकरे तैयारकर घरों की दीवारों, ओसारों और बरामदे के खम्भों को सजाने के काम में लाया जाता था। मथुरा, पटना, गऊघाट, अहिच्छत्र, कौशाम्बी, आदि नगर ऐसी मूर्त्तियों के प्रधान केन्द्र थे। पाटलिपुत्र अथवा पटना की भक्त नर्त्तकी, कौशाम्बी का विलास करती हुई दम्पति और मथुरा की मधुपान में उन्मत्त दम्पति तथा अहिच्छत्र का मिथुन देखने योग्य था।

गुप्तकाल में ही युवती की शुक क्रीड़ा, सलीलरासि मुद्रा में युवती, निर्झर-स्नान करती हुई युवती, पत्र लिखती युवती, शीशे में मुँह देखती हुई युवती की मूर्त्तियों का भी प्रदर्शन किया गया। आजकल की छुई-मुई सभ्यता में इस तरह की मूर्त्तियों के प्रदर्शन पर तरह-तरह की टीका-टिप्पणियों का होना स्वभाविक था। किन्तु जब

हम गुप्त-कालीन शिल्पियों एवं जनता के आचार-विचार के प्रहरियों की रचनाओं का अध्ययन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि इस तरह की मूर्त्तियाँ क्यों बनाई जाती थीं। इन मूर्त्तियों के प्रदर्शन का वास्तविक अभिप्राय यह था कि हम लोग सौन्दर्य अथवा कला जहाँ भी हो उसका निरीक्षण करें, किन्तु वासना को अपने पास भी न फटकने दें।

महात्मा बुद्ध की प्रस्तर-मूर्त्तियाँ भी गुप्तकाल की विशेष वस्तुएँ हैं। इनमें सबसे अधिक सुन्दर बौद्ध मूर्त्ति वह है, जो मथुरा से लाई गई है। कला की दृष्टि से इसका महत्त्व यह है कि महात्मा बुद्ध के शरीर पर पड़ा हुआ बारीक वस्त्र स्पष्ट भाव से झलक रहा है। गान्धार की कुछ बौद्ध मूर्त्तियाँ भी देखने को मिलीं। किन्तु मथुरा की और गांधार की मूर्त्ति में फर्क यह है कि पहिली मूर्त्ति के वस्त्र की धारियाँ समानान्तर हैं तो दूसरी की नहीं। गुप्तकाल में अभय-मुद्रा में बुद्ध की मूर्त्ति का निर्माण अर्थशून्य न था। उन दिनों भारतीय जनता ने बौद्ध-धर्म के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया था। बौद्धधर्म का विरोध करते हुए भी ब्राह्मणधर्म के अनुयायियों ने महात्मा बुद्ध की प्रतिष्ठा को कम नहीं होने दिया। तत्कालीन शिल्पी उनकी प्रतिष्ठा को स्थायित्व देने के लिए लोगों को यह बताना चाहते थे कि भगवान् बुद्ध से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं, वह तो अभय-मूर्त्ति हैं; बोधिसत्व हैं।

विभिन्न मूर्त्तियाँ

गुप्तकालीन मूर्त्तियों के अतिरिक्त प्रदर्शनी में कुछ अन्य मूर्त्तियाँ भी हमें देखने को मिलीं। वाग्देवी सरस्वती की मूर्त्ति संगमरमर की बनी हुई है। यह बीकानेर से लाई गई है। यह १२ वीं या १३ वीं सदी की है। यह मूर्ति कितनी सुन्दर है, इसका वर्णन क्या किया जाए? मूर्ति का सिर, उसके कान, उसकी भुजा और उसके कटि-प्रदेश और उसके पैरों के आभूषण बड़े ही मनोहारी हैं। एक हाथ में पुस्तक थामे हुए यह प्रतिमा हमें त्रिकाल में भी अध्ययन-अध्यापन जारी रखने का सन्देश देती है। लम्बे-लम्बे नाखूनों की शोभा तो न्यारी है। उस समय का शिल्पी २०वीं सदी का था अथवा २०वीं सदी ने नाखून लम्बे रखना शोभा का अंग समझना अपने पुरखों से सीखा, यह हम क्या कहें! कहने का अभिप्राय यह था कि नाखूनों की शोभा न्यारी थी।

गान्धार कभी भारत का अंग था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण वहाँ से मिली प्रस्तर मूर्त्तियाँ हैं। मोहरा मुराद से मिली बोधिसत्व की एक प्रस्तर मूर्त्ति देखनेयोग्य है। ५वीं सदी की एक बौद्ध मूर्त्ति दर्शनीय है। इसमें भगवान् बुद्ध व्याख्यान-मुद्रा में बैठे हैं और उसका गच रंगीन है।

दक्षिणी भारत की मूर्त्तियाँ

प्रदर्शनी में कुछ ऐसी प्रस्तर-मूर्त्तियाँ भी हैं, जिनसे दक्षिण भारत के धार्मिक आन्दोलन का परिचय प्राप्त होता है। बौद्ध धर्म के बाद उत्तर भारत में ही नहीं, अपितु दक्षिण भारत में भी ब्राह्मण धर्म का प्रचार हुआ था। योगिराज शिव (१००० ई०), भैरव-मूर्त्ति (मैसूर-१२वीं सदी), महिषासुरमर्दिनी (मैसूर ६ वीं सदी), ऐरावत हाथी पर इन्द्र-इन्द्राणी (मैसूर १२वीं सदी), वेणुगोपाल कृष्ण (१२ वीं सदी), कृष्ण की मोहनी मुरली (होयसाल १२ वीं सदी); कालिय-मर्दन अर्थात् कृष्ण-द्वारा कालिय साँप का दमन और विष्णु-लक्ष्मी की मूर्त्तियाँ यही प्रमाणित करती हैं। इन सब मूर्त्तियों को देखने से ज्ञात होता है कि १२वीं सदी तक दक्षिण भारत में पौराणिक धर्म का काफी प्रचार हो चुका था।

बोधिसत्व वज्रपाणि की एक मूर्त्ति भी हमें देखने को मिली। यह ८वीं सदी में ललितागिरि (उड़ीसा) में एक खास प्रयोजन से तैयार की गई थी। भगवान् बुद्ध के हाथ में वज्र देकर बौद्ध धर्म के शून्यवाद को प्रमाणित किया गया है। जैसे वज्र के टुकड़े नहीं हो सकते वैसे ही शून्य के भी खंड नहीं हो सकते। अश्व-मूर्त्ति उड़ीसा की मूर्त्तिकला का एक और नमूना है। यह मूर्त्ति १३वीं सदी की और कोणार्क की है।

यह तमाम मूर्त्तियाँ प्रदर्शनी-भवन के बाहर आँगन में रखी हुई थीं।

(२) कांस्य-मूर्त्तियाँ

प्रस्तर-मूर्त्तियाँ देखने के बाद हम और आगे बढ़े। बगल में एक सजा हुआ कमरा था। वह झाड़-फानूस से जगमगा रहा था। इसमें बाहर की गैलरी से ज्यादा गर्मी थी। इसमें कांस्य मूर्त्तियों का संग्रह किया गया था।

इनमें भी चोलकालीन मूर्तियाँ सबसे बढ़िया और अर्थपूर्ण थीं। चोलकाल ईसा की १०वीं से १३वीं शती का है। मूर्ति की रचना सदैव किसी टिकाऊ चीज़ से की जाती है। सबसे पहिले शिल्पी लोग पकी हुई मिट्टी से मूर्तियाँ बनाते थे। बाद में उन्हें मिट्टी से भी ज्यादा टिकाऊ प्रस्तर दिखाई देने लगा। अतएव समस्त मूर्तियाँ प्रस्तर की बनाई जाने लगीं। आगे चलकर प्रस्तर से भी काँसा ज्यादा टिकाऊ प्रतीत होने लगा। इसलिए शिल्पियों ने काँसे की मूर्तियों का निर्माण आरम्भ कर दिया। काँसा ताँबा, सोना, चाँदी, पीतल और सफेद शीशे से मिलकर बनता है। इसलिए काँसे का नाम संस्कृत में 'पंच-लौह' है।

काँसे की मूर्ति तैयार करने के लिए सबसे पहिले शिल्पी मोम की मूर्ति तैयार कर लेता था। बाद में इसी मोम की मूर्ति पर वह मिट्टी का लेप दे देता था। फिर इस मिट्टीवाली मूर्ति को वह आग में रख देता था। अग्नि के ताप से मोम पिघल जाती थी और साँचा तैयार हो जाता था। इस साँचे से काँसे की मूर्तियाँ तैयार की जाती थीं। प्रदर्शनी में पड़ी काँसे की मूर्तियों को देखने से शिल्पी का अनुभव, उसके मन की धारणा और हाथ की निपुणता का बहुत अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

काँसे की सबसे पुरानी प्रतिमा मोहेंजोदड़ो से मिली है। यह एक नटी की है। उसकी नृत्यमुद्रा ललित और अर्थपूर्ण है। तक्षशिला से भी कुछ काँसे की मूर्तियाँ मिली हैं। गुप्तकाल में भी काँसे की मूर्तियों का पर्याप्त निर्माण हुआ था।

किन्तु काँसे की मूर्तियों का जो विकास दक्षिण भारत में और वह भी चोलकाल में हुआ है, वैसा अन्यत्र देखने में नहीं आया। दक्षिण के कुशल शिल्पियों ने जिस बारीकी से नटराज शिव की मूर्तियाँ बनाई हैं, उससे उनका नाम अमर हो गया है। एक मूर्ति में नृत्य के समस्त हाव-भाव और क्रिया-कलापों का समन्वय कर देना एकदम प्रवीणता का काम है। सृष्टि और प्रलय इस विश्व के दो अवश्यम्भावी परिणाम हैं। नटराज शिव के तांडव-नृत्य में विश्व के एक पहलू प्रलय का दिग्दर्शन कराया गया है। इसमें बताया गया है कि जब विश्व में मूर्खता का आधिपत्य हो जाता है तो बस सिवाय प्रलय के और कुछ नहीं होता। इसीलिए नटराज की मूर्ति में शिव एक पुरुष पर एक पैर के सहारे खड़े हैं। वे नृत्य आरंभ करते हैं। उनके एक हाथ में डमरू है और दूसरे में प्रलय की आग। इस तरह अज्ञान के ऊपर नृत्य करते हुए वे समूचे विश्व को प्रलय की आग से भस्म कर देते हैं।

(३) भारतीय चित्रकला

फोटोग्राफी और टेलीविजन के युग में भारतीय चित्रकला का प्रदर्शन हमारे प्राचीन गौरव का स्मारक है। कैमरे से फोटो लेने की अपेक्षा अपने भावों को तूलिका से भित्तियों, भोजपत्रों और कागज पर उतारना कहीं अधिक सुन्दर और कलापूर्ण है। भारत के प्राचीन चित्रकारों ने इस कला में कितनी उन्नति कर ली थी, इसका परिचय हमें चित्रकला-प्रदर्शनी से प्राप्त होता है। इन चित्रों की रेखाओं, रंगों और भावों का सौन्दर्य दर्शनीय है। यह चित्र उस लम्बी गैलरी में कलापूर्ण तरीके से लटकाए गए हैं, जो काँस्य मूर्तियों के कमरे के एकदम सामने है।

भारतीय चित्रकला में अजन्ता के भित्ति-चित्र सब से प्राचीन हैं। बौद्ध धर्म की शिक्षाओं और लोकजीवन पर प्रकाश डालना इन चित्रों का उद्देश्य प्रतीत होता है। रूप-सौन्दर्य और आध्यात्मिक गूढ़ार्थ इन चित्रों की विशेषता है। उदाहरणार्थ पद्मपाणि अवलोकितेश्वर के भित्ति-चित्र की एक प्रतिलिपि हमें प्रदर्शनी में देखने को मिली। भगवान् बुद्ध का रूप कितना सुन्दर था! उनके हाथ में कमल का फूल बड़ा सुन्दर प्रतीत होता था। फूल खिला हुआ, उसकी एक-एक पत्ती देख लीजिए। यह चित्र संसार की असारता का ज्ञापक है। भगवान् बुद्ध के दर्शनों को उत्सुक माता और पुत्र शीर्षक चित्र भी अजन्ता-कला का सुन्दर नमूना है।

भित्ति-चित्रों के अनन्तर पुस्तक-चित्रों, भोजपत्र-चित्रों और कागज-चित्रों का विकास हुआ। भारतीय इतिहास में ऐसे समस्त चित्रों को निम्न ६ शैलियों में विभक्त किया गया है :—(क) पाल शैली (ख) पश्चिमी भारत की गुजराती शैली (ग) राजस्थानी शैली (घ) पहाड़ी शैली (ङ) मुगल शैली और (च) दक्षिण की व उड़ीसा की शैली। अब हम एक-एक शैली का परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

(क) पाल शैली

भारतीय चित्रकला की पाल शैली ११ वीं १२ वीं सदी में प्रचलित थी। काठमांडू, पटना, नालन्दा और

विक्रमशील इसके केन्द्र थे। इस युग के चित्रकार बौद्ध धर्म के ग्रन्थ लिखना चाहते थे। किन्तु उस समय आजकल की लेखनशैली प्रचलित न थी। उन दिनों चित्रों के साथ अपने भावों को लेखबद्ध करने की प्रथा प्रचलित थी। इसलिए चित्रकारों ने बौद्ध ग्रन्थ लिखे और साथ में चित्र भी दिए। प्रदर्शनी में ऐसी पुस्तकों के सफों का प्रदर्शन किया गया है। यह सफे भोजपत्रों के हैं। अधिकांश सफे 'प्रज्ञापारमिता' के हैं। चित्रों में व्यक्तियों की मुखाकृति पूरी-पूरी दिखाई देती है। इनका रंग नीला ही नीला है। यह स्वाभाविक है, मिश्रित नहीं। पुस्तक की लिपि देवनागरी का पूर्वरूप प्रतीत होती है।

(ख) गुजराती शैली

गुजराती शैली पश्चिमी भारत में ११ वीं सदी के अन्त से शुरू होकर लगभग १६ वीं सदी के प्रारम्भ तक जारी रही। अहमदाबाद, पाटन और बड़ौदा इसके प्रधान केन्द्र रहे।

गुजराती शैली के चित्रों में जैन कल्पसूत्र लिखने का प्रयत्न किया गया है। कल्पसूत्र ताड़पत्र और कागज दोनों पर सुनहरी स्याही से लिखे गए हैं। पुस्तक के स्वर्णाक्षर बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं। इस शैली के चित्रों में मुखाकृति में दोनों आँखें पूरी दिखाई नहीं देतीं। गाल बाहर को निकल गए हैं। पीले रंग का श्रीगणेश हुआ है। वेश-भूषा और शृंगार-सामग्री दर्शनीय है।

इन चित्रों में केवल धर्मग्रन्थों को ही स्थान नहीं दिया गया। उस समय की प्रणयलीला भी देखने को मिलती है। इस लीला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण "चौर पंचाशिका" है। यह ५० श्लोकों की एक छोटी सी पुस्तक है। इसमें कवि बिल्हण और उनकी प्रेयसी चम्पावती के प्रेम-प्रसंग का चित्रण किया गया है। एक-एक चित्र बहुत सुन्दर, साफ और सार्थक है। चाँदनी रात्रि की छटा, बाग-बगीचे, राजप्रासाद और ऐसे ही स्थानों में कवि बिल्हण के चम्पावती को मनाने और उसे अपने प्रेम-पाश में फँसा लेने के चित्र मनोहारी हैं। इसके बाद राधा-कृष्ण की लीला को भी इन चित्रों में स्थान दिया गया है।

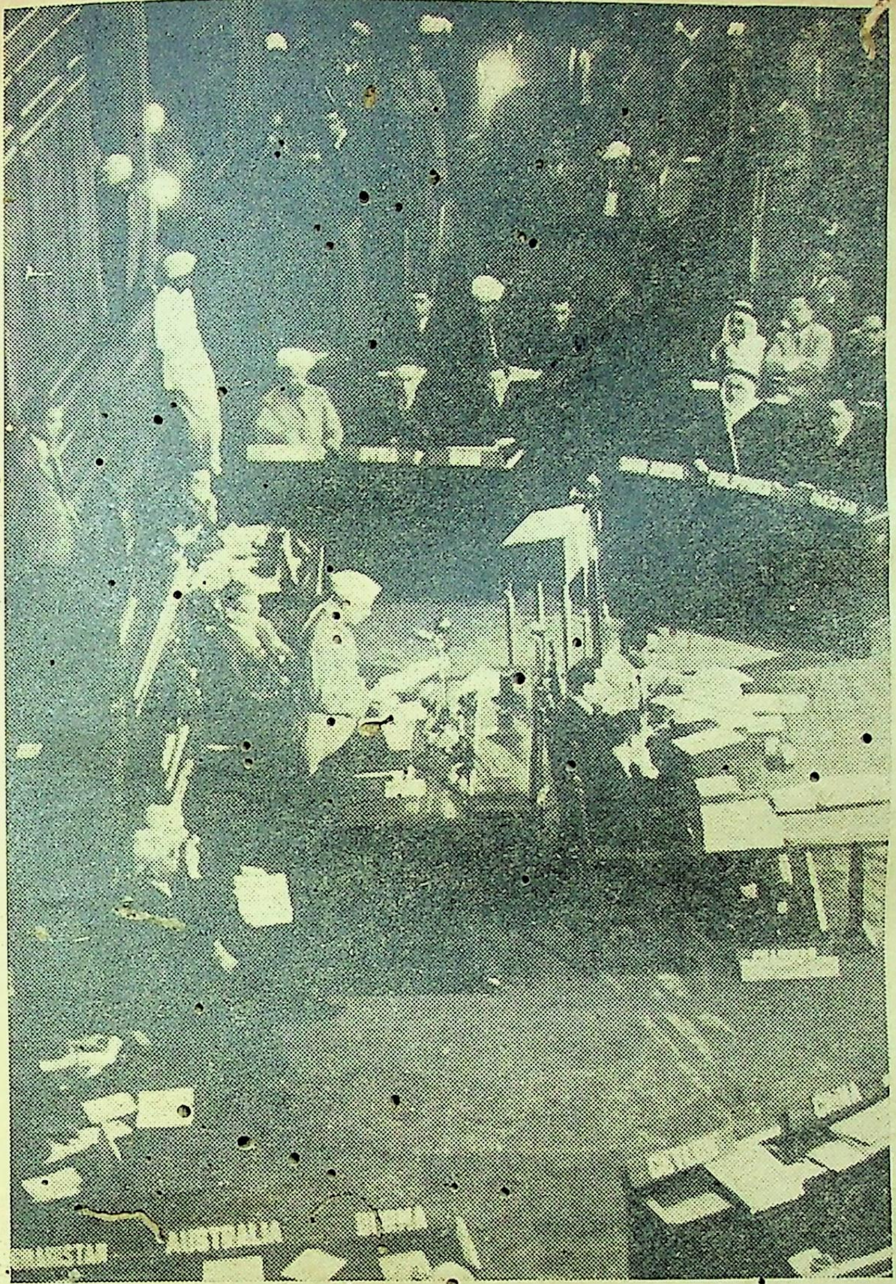
(ग) राजस्थानी शैली

राजस्थानी शैली का काल १६ वीं से १८ वीं सदी तक का है। किशनगंज, मारवाड़, बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर, बूंदी तथा जयपुर इसके केन्द्र रहे हैं। राजस्थानी शैली पौराणिक धर्म-गाथाओं तथा महाकाव्यों के विषयों तक सीमित है। कृष्ण तथा राम-सम्बन्धी कथाओं, राग-रागनियों, नायक-नायिकाओं के विषय इस कला के प्रधान अंग हैं। इस शैली के चित्रों के रंग चटकदार हैं और भावों का प्रकाशन उत्कृष्ट।

कृष्ण के लीला-सम्बन्धी अनेक चित्र इस शैली में पाए जाते हैं। एक चित्र है 'उद्धव-गोपी-संवाद' एक समय गोपियों को कृष्ण से मिलने की आशा न रही थी। उद्धव ने उन्हें धैर्य दिलाया और कहा कि अब उन्हें कृष्ण से मिलने की आशा छोड़कर उनके सन्देशों का जहाँ-तहाँ प्रचार करना चाहिए। इसमें उद्धव का वेश दर्शनीय है। उनकी मूँछें मथुरा के रहनेवालों जैसी नहीं हैं। वे तो राजपूताना के लोगों की जैसी हैं। 'गोधूलि वेला' शीर्षक एक और चित्र है। इसमें भगवान् कृष्ण सायंकाल गौएँ चराकर वापस आ रहे हैं। नगर के नर-नारी गौओं के लिए रास्ता छोड़ने को इधर-उधर हो रहे हैं। आकाश में धूलि-ही-धूलि है और अस्त होते सूर्य की किरणें उसमें मिलकर देखनेवाले के दिल में गोधूलि-वेला की पूर्ण अनुभूति उत्पन्न कर देती हैं। कृष्ण के सम्बन्ध में एक और चित्र है, जिसमें पुर-नारियाँ कंस से प्रार्थना कर रही हैं कि वह कृष्ण को क्षमा-प्रदान कर दें। कंस और पुर-नारियों की आकृतियाँ बड़ी सुन्दर बनाई गई हैं।

कृष्ण के अतिरिक्त राम के जीवन के सम्बन्ध में भी अनेक चित्र दर्शनीय रहे। एक चित्र में राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत शिकार खेल रहे हैं। क्षत्रिय सपूतों की दौड़, हाथ में धनुष-बाण, जंगल और जंगल में भागते मृगों व मृगशावकों का दृश्य बड़ा सुन्दर है। इसी तरह एक चित्र में राम, लक्ष्मण और सीता तीनों वन जाने के लिए ऋषि से आज्ञा ले रहे हैं। इसमें तीनों की विनय-भावना और ऋषि की बुजुर्गी की झलक बहुत सुन्दर रहीं।

राग-रागिनियों और नायक-नायिकाओं-विषयक चित्रों के रङ्ग सचमुच आश्चर्यजनक हैं। उन चित्रों के रङ्ग चित्रकारों ने कैसे तैयार कर लिए होंगे और उनका प्रयोग ऐसी सुन्दरता से कैसे आरम्भ कर दिया; यह सोचकर सभी को आश्चर्य होता था। एक राजकुमार पानी पीने के लिए कुएँ पर गया। वहाँ एक सुन्दरी को देखकर वह



एशियाई राष्ट्र-सम्मेलन

भारत के प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से एशिया के समस्त प्रमुख राष्ट्रों ने पिछले दिनों दिल्ली में एकत्र होकर महत्त्वपूर्ण विचार-विमर्श किया। एशियाई राष्ट्रों के उसी सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए पंडित नेहरू चित्र में दिखाई दे रहे हैं।



स्वागत

एशियाई राष्ट्र-सम्मेलन में आए हुए विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का अपने आवास-स्थान पर स्वागत करते हुए पंडित नेहरू।



एशियाई राष्ट्र-सम्मेलन का एक दृश्य

श्रम-निवारण

सम्मेलन के व्यस्त कार्य-क्रम-जनित श्रम का निवारण प्रतिनिधि हास-विनोद-द्वारा कर रहे हैं।



उस पर मोहित हो गया। यह चित्र एकदम सादा है। इसकी पृष्ठभूमि हरी है। कुएँ की और सुन्दरी की स्वाभाविक सुन्दरता सहसा मन को हर लेती है। एक और चित्र देखा, जिसमें नायिका एकान्त में स्नान कर रही है। वह निश्चिन्त है। उसे पता है कि वह एक निर्जन स्थान में स्नान कर रही है। किन्तु उसका नायक उसे कैसे छोड़ सकता था? वह स्नानागार के ठीक ऊपर एक छज्जे में बैठकर अपनी नायिका को प्रेमभरी आँखों से देख रहा है। राग-रागनियों में वसन्त राग की छटा देखने योग्य है। रागनियों के चित्रों में पीले, हरे और काले रङ्ग का समन्वय बहुत सुन्दर सिद्ध हुआ है। इसी तरह चित्रकारों ने इन रङ्गों से पुरुष-प्रकृति तथा सत, रज और तम के मर्म को भी समझाने का प्रयत्न किया है।

राजस्थानी चित्रकार अपने समकालीन नरेशों के चित्र भी बनाया करते थे। जयपुर के सवाई माधोसिंह घोड़े पर सवार हैं। सुन्दर घोड़ा और उस पर सवार सवाई माधोसिंह का वेश हिन्दू नरेशों का सा नहीं है। उस पर मुगलों की छाप साफ दृष्टिगोचर होती है। एक और चित्र में बूँदी-कोटा के राजकुमार को बहँगी में ले जाया जा रहा है।

(घ) पहाड़ी शैली

पहाड़ी शैली का काल १७वीं सदी से १८वीं सदी तक का है। भारत का इतिहास बताता है कि कुछ राजपूत नरेश राजस्थान छोड़कर पंजाब के पर्वतीय प्रान्तों में जा बसे थे। वहाँ उन्होंने अपनी रियासतें कायम कीं। वे अपने साथ महाकाव्यों तथा धार्मिक साहित्य का अपना प्रेम भी ले गए थे। उन्हें राजस्थानी चित्रकला से प्रेम था। यहाँ आकर उन्होंने अपनी चित्रकला का विकास जारी रखा। विकास करते-करते यह शैली पहाड़ी शैली के रूप में उन्नत हो गई। जम्मू की शैली और बसौली की शैली पहाड़ी शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं। किन्तु राजस्थानी शैली का चरम उत्कर्ष कांगड़े की शैली में हो पाया है। पहाड़ी शैली के समस्त चित्रों में आध्यात्मिक एवं मानवीय दृष्टिकोणों का सुन्दर समन्वय किया गया है। अब हम पहाड़ी शैली के कुछ चित्रों का संक्षिप्त परिचय देते हैं।

पहाड़ी शैली के अनेक चित्र बड़े सुन्दर हैं और वे प्रायः पौराणिक कथाओं के आधार पर बनाए गए हैं। शिव-पार्वती का चित्र बड़ा सुन्दर है। रंगों का समन्वय बहुत सुन्दर रहा। असुरों पर विजय प्राप्त करने के बाद कृष्ण-नारद-संवाद का चित्र दर्शनीय है। एक चित्र में नारद जी वाल्मीकि ऋषि से राम-चरित सुनाने की प्रार्थना कर रहे हैं। इन्द्र देवता आँधी-वर्षा के साथ गोकुल को डुबाने के लिए आते हैं। उसका चित्र भी बहुत मनोरम रहा। आँधी, वर्षा और बादल के साथ इन्द्र देवता की भव्य मूर्ति दर्शनीय है। चित्र को देखते ही वर्षाकाल की समस्त कल्पनाएँ जाग्रत् हो जाती हैं। गोकुल के चिन्तित नागरिकों की अवस्था भी दर्शनीय है। चाँदनी रात में राधा और कृष्ण का चित्र कितना सुन्दर है! रात की चाँदनी की छटा निहारने योग्य है। कृष्ण और बलराम एक वृक्ष के नीचे दोपहरी काटते दिखाई दे रहे हैं। दोपहरी और छाया में भेद दिखाने में चित्रकार ने अपनी कला की सूक्ष्मता का परिचय दिया है।

इन चित्रों में कृष्ण ही नहीं, राम के जीवन-सम्बन्धी चित्र भी सम्मिलित हैं। एक चित्र में दिखाया गया है कि राम, लक्ष्मण और रानी सीता एक ऋषि की कुटिया में बैठे हैं। कुटिया की सादगी दर्शनीय है। इसकी हरियाली किसे मोह न लेगी? किन्तु ऋषि की दाढ़ी-मूँछ किसी मुगल की प्रतीत होती है। इससे स्पष्ट होता है कि पहाड़ी चित्रकला पर मुगलों का प्रभाव पड़ चुका था। एक चित्र में दशरथ दिखाए गए हैं और उधर उनके पुत्र भरत अपने ननिहाल जा रहे हैं। राजा दशरथ की वेश-भूषा पर भी मुगलों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

पहाड़ी शैली में आध्यात्मिक ही नहीं, लौकिक चित्र भी उपलब्ध होते हैं। 'विप्रलब्धा' और 'उत्कंठिता' शीर्षक चित्र भाव-अभिव्यक्ति की दृष्टि से बहुत बढ़िया हैं। विप्रलब्धा नारी वह नारी है, जो चिरकाल से अपने प्रेमी की प्रतीक्षा कर रही थी। किन्तु जब उसे अपने प्रेमी के दर्शन नहीं होते तो वह निराश हो जाती है। निराश होकर वह अपने एक-एक आभूषण को उतारना शुरू करती है। उसकी मुख-मुद्रा देखने योग्य है। उत्कंठिता नारी वह नारी है जो अपने प्रेमी से मिलने के लिए आतुर है। उसकी भाव-भंगी दर्शनीय है।

एक मकान में आग लग गई थी। उस समय उसमें

रहनेवालों की भगदड़ के दृश्य देखने योग्य हैं। एक व्यक्ति सीढ़ी लगाकर मकान से निकलने की कोशिश में है तो दूसरी ओर कई औरतें अपना घरेलू सामान लेकर भागने की कोशिश में हैं। सभी को अपने चर्खों और चारपाइयों की फिक्र है। इधर कुछ गौएँ भी आग से अपनी जान बचाने को बाहर निकल रही हैं। यह चित्र बड़ा सुन्दर है। बसौली के चित्र चटकीले और पीत रंग प्रधान हैं। 'नरक का दृश्य' चित्र बसौली शैली का आदर्श नमूना है।

(ङ) मुगलशैली

मुगल शैली का काल १६ वीं सदी के मध्य से १६ वीं सदी के आरम्भ तक का है। इस शैली का जन्म अकबर के काल में और विकास जहाँगीर तथा शाहजहाँ के काल में हुआ था। इस शैली के चित्रों का प्रधान रंग हरा है। राजस्थानी शैली का प्रधान रंग लाल था। इसका अभिप्राय यह है कि मुगल काल में भारतीय चित्र-कला पर ईरानी प्रभाव पड़ने लगा था।

मुगल शैली के चित्रों में विभिन्न विषयों का सुन्दर समन्वय किया गया है। उनमें जहाँ महाभारत और पुराणों की कथाओं को स्थान दिया गया है, वहाँ मुगल-कालीन सम्राटों द्वारा हाथ से लिखाई पुस्तकों, बादशाहों व राजकुमारों के चित्र और पशु-चित्र भी पाए जाते हैं।

मंकी ऋषि का चित्र बहुत सुन्दर है और यह महाभारत के आदिपर्व की एक कथा के आधार पर बनाया गया है। मंकी ऋषि को गौ के बछड़े पालने का शौक था। वे उन दोनों को एक रस्सी से बाँधकर चरने छोड़ दिया करते थे। एक दफा न जाने क्या हुआ, वे अपने बछड़ों पर आँख नहीं रख सके। एक ऊंट आया और वह दोनों बछड़ों को भगाकर ले गया। बछड़ों का सौन्दर्य, ऊँट का सरपट दौड़ना और मंकी ऋषि का चिन्तित चेहरा दर्शनीय है। इसी तरह एक स्थान पर चण्डी देवी और मार्कण्डेय ऋषि दोनों को बैठे हुए दिखाया गया है। छाते के नीचे ऋषि की मुखाकृति ऐसी है कि मानो कोई मुगल बादशाह हो।

मुगल बादशाहों के काल की जिन हस्तलिखित पुस्तकों के नमूने इस प्रदर्शनी में हैं, वे निम्न हैं :—तैमूर-नामा, रमजानामा (महाभारत का फारसी उलथा), हमजा-नामा, तारीख अलकी, इयारे दानिश (फारसी का पंचतंत्र)। इन पुस्तकों की लिखाई और सजावट बहुत सुन्दर है। एक-एक हरूफ साफ-साफ पढ़ा जा सकता है। कागज भी ऐसा बढ़िया है कि आज तक बिगड़ने में नहीं आया।

मुगल शैली के चित्रकारों को पशु-चित्र बनाने का भी काफी शौक था। दो ऊँटों की लड़ाई का चित्र कितना सुन्दर है! दोनों ऊँट हृष्ट-पुष्ट हैं और एक दूसरे को पछाड़ देने के लिए दाँव-पेच चलाते दिखाए गए हैं। एक और चित्र में बादशाह जहाँगीर एक सुन्दर घोड़े पर सवार हैं। उनके सामने ही एक मकड़ी एक साँप को अपने जाल में फँसाने की कोशिश कर रही है। चित्र में साँप की टेढ़ी-मेढ़ी आकृति, मकड़ी का जाल और मकड़ी आदि सभी दृष्टिगोचर होते हैं। मकड़ी का जाल तूलिका से बनाना कितना बारीक काम है। उसमें जाल की तन्तुएँ तक दिखाई देती हैं। इस चित्र के सौन्दर्य और कला की जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है।

मुगल काल में फोटोग्राफी नहीं थी। लेकिन उस समय के चित्रकार अपने सम्राटों का नाम अमर रखने के लिए उनकी तस्वीरें हाथ से बनाने में काफी प्रवीण थे। जहाँगीर, शाहजहाँ, दारा शिकोह और औरंगजेब की तस्वीरें इसी प्रयोजन से बनाई गई थीं। यह चित्र एकदम सादे हैं। अधिकांश काम सुनहरी स्याही से किया गया है। आजकल मुगल बादशाहों के जो चित्र हमें इतिहास की पुस्तकों में मिलते हैं, वे सब इन्हीं हाथ से बनी तस्वीरें के आधार पर तैयार किए गए हैं। इन चित्रों में मुखाकृति एकदम मुस्लिम है। लेकिन उस पर हिन्दुओं की कल्पना भी साफ दृष्टिगोचर होती है। औरंगजेब के चेहरे के चारों ओर तेज अथवा प्रभा-मंडल का जो चित्रण किया गया है, वह हिन्दुओं की कल्पना का प्रतीक है। इसका अभिप्राय यह है कि मुगलकालीन चित्रकारों पर हिन्दू-कल्पनाओं का भी काफी प्रभाव पड़ा था। इसी तरह इन बादशाहों को दुशाले ओढ़ाना भी हिन्दू-प्रभाव का परिचायक है।

मुगलकाल में शराब और ताश भी खूब चलती थी। इसका परिचय देने के लिए प्रदर्शनी में दो चीजें देखने को मिलीं। उन्हें भी उसी स्थान पर लटकाया गया है, जहाँ मुगल शैली के विभिन्न चित्र लटक रहे हैं।

इनमें से एक चित्र सींग के प्याले का है। इसमें शराब पी जाती थी। शीशे के एक फ्रेम में ताश के पत्ते देखे गए, जो हाथी दाँत से बनाए गए थे। उनमें इक्की, दुक्की, नहला, दहला अथवा बादशाह व मलका की तस्वीरें न थीं। वह किस तरह खेली जाती थीं, इस सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं हो सका। फिर भी ये हैं ताश ही।

(च) दक्षिण की व उड़ीसा की शैली

दक्षिण की शैली का काल १७वीं सदी से १९वीं सदी तक का है। हैदराबाद, गोलकुंडा और औरंगाबाद इसके प्रधान केन्द्र रहे हैं। यह शैली कोई स्वतंत्र शैली नहीं है। यह तो मुगल शैली का एक प्रान्तीय रूप है।

दक्षिण शैली के दो चित्र दर्शनीय हैं। ये दोनों ही कपड़े पर बनाए गए हैं। चाँदबीबी एक पलंग पर लेटी है। सामने एक दासी वीणा बजा रही है। चाँदबीबी उसे बड़े गौर से देख रही है। लेटे-लेटे उसने मस्तक ऊपर उठा रखा है। रानी की अन्य दासियाँ भी मौजूद हैं। लेकिन वे रानी की मस्ती में कोई दिलचस्पी नहीं ले रही हैं। वे नौकरानियाँ हैं। उनके दिल में यह चीज काँटे की तरह चुभ रही है कि चाँदबीबी सिर्फ वीणा बजानेवाली पर ही लट्टू क्यों हो रही है। इसलिए वे सब बड़े उपेक्षा-भाव से अपने में ही मस्त हैं। दो दासियाँ तो आपस में गप्पें हाँकने में लगी हुई हैं तो कुछ दासियाँ जल में केलि कर रही हैं। उन्हें पता है कि चाँदबीबी मस्त हो रही है और वह उनकी तरफ आँखें भी उठाकर न देखेगी। चित्र के वृक्ष, पानी और दूसरी वस्तुएँ देखने योग्य हैं।

एक और चित्र है एक बादशाह की सवारी का। इसमें बादशाह, उसकी सवारी, उसके दरबारियों और चारों ओर के प्राकृतिक दृश्य का बहुत ही मनोरम चित्र खींचा गया है।

दक्षिण शैली के कुछ अन्य चित्र भी देखने को मिले। दक्षिण की नवाबी, छत्रपति शिवा जी, दो लड़कियाँ वृक्ष के नीचे, शीर्षक चित्र इन्हीं चित्रों में से हैं। इन सब चित्रों के रङ्ग साधारण हैं। वे विदेशी नहीं, स्वदेशी हैं। दो लड़कियों की चुन्नियाँ काफी बारीक हैं, फिर भी चित्र में ध्यान से देखने पर दिखाई पड़ जाती हैं।

उड़ीसा की चित्र-शैली का काल १७ वीं से १९ वीं सदी तक का है। कटक इसका मुख्य केन्द्र रहा है। इन चित्रों में गीत-गोविन्द सचित्र लिख दिया गया है। मुखाकृति में एक ही आँख दिखाई गई है। लिखाई और चित्रों के रङ्ग सुन्दर हैं।

(४) भारत की वस्त्र-कला

भारत की प्राचीन वस्त्रकला भी उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। इसके नमूने सारी प्रदर्शनी में दीवारों पर लटक रहे हैं। एक-एक नमूना अपनी अनोखी विशेषता रखता है। १८ वीं सदी तक इस प्रकार के भारतीय वस्त्र संसार के बाजारों में सुविख्यात रह चुके हैं। बनारस, अहमदाबाद और सूरत में तैयार सुनहरे कमखाब तथा जरीदार वस्त्र, चंडेरी तथा तंजोर की रेशमी साड़ियाँ; बालूचा (मुर्शिदाबाद) की रेशमी साड़ियाँ; गुजरात के पटोरी, कच्छ व काठियावाड़ का जरी का काम, पंजाब की फुलकारी और काश्मीर के दुशाले देखने योग्य हैं। जयपुर के मुगलकालीन कुछ गलीचे भी बहुत बढ़िया हैं। एक जरीदार कालीन भी हमें देखने को मिला, जिसे नाना फड़नवीस इस्तेमाल कर चुके हैं।

वस्त्रकला-प्रदर्शनी में हमें ढाका की प्रसिद्ध मलमल भी देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस मलमल पर फारसी के विद्वान् इतने लट्टू हो गए थे कि उन्होंने इसके अनेक नाम रख दिए थे। आबेरवाँ (बहता पानी), बाफ्त हवा (बुनी हुई हवा) और शबनम् (रात की ओस) ये सब ढाके की मलमल के नाम रखे गए थे। प्रदर्शनी में जिस मलमल का प्रदर्शन किया गया है, वह २०० वर्ष पुरानी है। यह हाथकती और हाथबुनी है। इसकी लम्बाई १० गज है और इसका वजन सिर्फ १८ तोले है। इसके सूत का नम्बर ५४० है।

कच्छ का एक घाघरा भी भारतीय वस्त्रकला का एक आदर्श नमूना है। इसका सूत हाथकता, कपड़ा हाथबुना, इस पर छपे हुए चित्र हाथ से बने हुए हैं और इसकी सिलाई भी हाथ से की गई है। छपाई के रङ्ग पक्के हैं और आज भी यथापूर्व विद्यमान हैं। घाघरे की सिलाई सिंगर मशीन की सिलाई को भी मात करती है।

(५) कला-सम्बन्धी विविध वस्तुएँ

कला-प्रदर्शनी की जिस गेलरी में भारतीय चित्रों का प्रदर्शन किया गया है, उससे बाहर होते ही भारतीय कलापूर्ण वस्तुओं के विविध नमूने एक शो-केस में बन्द पड़े

हैं। एक स्थान पर कुछ चित्रित से कागज देखने को मिले। जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि यह १५ वीं और १६ वीं सदी की पुस्तकों की जिल्दों के नमूने हैं। इन पर जैन कल्प-सूत्र के कुछ शीर्षक लिखे हुए हैं। उड़ीसा और बङ्गाल में ऐसी जिल्दें तैयार करने का काफी प्रचार था।

एक दूसरे शो-केस में भोजपत्र पर लिखा गया समूचा कोकशास्त्र देखने को मिला। यह १७ वीं १८ वीं सदी में लिखा गया था और वह भी उड़ीसा में। इस पुस्तक को लिखने में २६५ भोज-पत्र लिए गए हैं। इस पुस्तक में केवल लिखने से ही काम न चला, मगर जो कुछ लिखा गया है, उसे चित्र में भी प्रदर्शित कर दिया गया है। इस तरह भोजपत्र पर लिखा यह सचित्र कोकशास्त्र दर्शनीय है।

इसी गेलरी में दो किवाड़ रखे हुए हैं। यह मैसूर के अम्ब-विलास के हैं। लकड़ी के दोनों किवाड़ों पर हाथी दाँत जड़े हुए हैं। इन दोनों किवाड़ों पर नायक-नायिका की प्रणय-लीला का कलापूर्ण चित्रण किया गया है। कहीं नायक नायिका को और कहीं नायिका अपने नायक को मनाने में लगी हुई है। नायिका के रूठने के भेद और नायक के मनाने के भेद और इसी तरह नायक के रूठकर बैठ जाने और नायिका के उसको मनाने के तौर-तरीके अध्ययन करने योग्य हैं।

इस शैली की कलापूर्ण वस्तुओं को देखने के उपरान्त हम एक छोटे से कमरे में दाखिल होते हैं। यहाँ भी अनेक दर्शनीय वस्तुओं का संग्रह है। सबसे पहिले हमारी दृष्टि कुछ हस्तलिखित पुस्तकों की ओर पड़ी। जहाँगीर को न केवल अरबी और फारसी की बल्कि संस्कृत की पुस्तकें लिखने का भी शौक था। उसने संस्कृत में जैन कल्पसूत्र लिखाया था। इस पर ७००० रु० खर्च हुए थे। इसकी लिखाई सुनहरी है। सोने को पिघलाकर उसी से यह पुस्तक लिखी गई। यह करीब १५वीं सदी में लिखी गई थी मगर आज ५ सदी के बाद भी लिखाई की चमक वैसी-की-वैसी है।

एक और शो-केस में उर्दू की भी अनेक पुस्तकें देखने को मिलीं। किसी बादशाह ने अपने समय में किसी खास मामले की जाँच करने के लिए अपना कोई अफ़सर नियुक्त किया था। उसने अपनी जो जाँच-रिपोर्ट लिखकर दी थी, वह वैसी-की-वैसी सम्हालकर रख ली गई थी। यह रिपोर्ट काफी लम्बी है। इसी तरह कुरान शरीफ की आयतें भी लिखी हुई देखने को मिलीं।

इसी भवन में हाथी दाँत के बने हुए पलँग के दो पाए भी हमें देखने को मिले। दोनों पाए कला की दृष्टि मूर्त्ति हैं। इनको तैयार करनेवाला शिल्पी शिकार का दृश्य उपस्थित करना चाहता था और इसमें वह सफल हुआ है। एक घोड़े पर एक शिकारी सवार है। वह तमाम हथियारों से लैस है। वह नेवाल में जाता है और शेर का शिकार खेलना चाहता है। शेर आगे-आगे दौड़े और शिकारी उसके पीछे। कलाकार को शिकारी की यह मेहनत दिखानी मंजूर न थी इसलिए उसने शिकार का एक ऐसा तरीका सुझाया कि बिना ज्यादा मेहनत के शिकार हाथ लग जाता है। उसने वह समय दिखाया है जब कि एक शेर एक हिरणी को दबोच बैठा है और उधर मृग-शावक हिरणी का दूध पी रहा है। ऐसे समय यदि शिकारी घोड़े से उतरकर नेजे से शेर पर वार करे तो वह जरूर मर जाएगा। इस तरह शिकार का यह मनोवैज्ञानिक चित्र एक पाए में अंकितकर कलाकार ने कमाल ही कर दिया है।

इसी भवन में सम्राट् अकबर और जहाँगीर के कुछ हथियार भी देखने को मिले। अकबर की एक ढाल दर्शनीय थी। यह लोहे की बनी हुई है। इस पर की गई चित्रकारी भावपूर्ण है। ढाल के मध्य में सूर्य है और उसके चारों ओर एक वृत्त में मीन, मकर आदि नक्षत्र राशियाँ हैं। ज्योतिष शास्त्र का एक छोटा-मोटा नमूना है। इससे ज्ञात होता है कि अकबर सूर्य का कितना उपासक था। उसके 'दीन इलाही' धर्म की यही विशेषता थी। वह सूर्य और शिव दोनों की पूजा किया करता था। इस ढाल से ज्ञात होता है कि टोडरमल आदि हिन्दू दरबारियों का सम्राट् अकबर पर कितना प्रभाव था। ढाल के साथ-साथ अकबर की एक तलवार भी देखने को मिली। यह भी कलापूर्ण तरीके से बनाई गई है।

जहाँगीर की तलवार और उसके दूसरे हथियार भी कलापूर्ण हैं। हाथी दाँत का एक उछलता हुआ हिरण देखने को मिला। इसमें बारूद रखा जाता था। इसी तरह बारूद रखने का एक मयूराकृति केस भी यहीं

रखा हुआ था। जहाँगीर की दो बन्दूकें काफी लम्बी और अपने काल में काफी दूर तक मार करनेवाली थीं। यह दोनों लकड़ी और लोहे से मिलाकर बनाई गई थीं। इनकी चित्रकारी बहुत सुन्दर है। जहाँगीर की दो कटारें भी देखने को मिलीं। एक कटार का फलका तिरछा है और उससे पेट चीरने का काम लिया जाता था। दूसरी कटार का फलका सीधा है और उससे पीठ-पीछे से गर्दन पर वार करने का काम लिया जाता था।

इन्सान की मौत

पंडित श्रीराम शर्मा 'राम'

जिन्दगी के उतार-चढ़ाव पर चढ़ते-उतरते लाला छेदीलाल के पैर तो थके ही, शरीर और मन भी थक गया। एक दिन लाखों का कारबार था, वह बिगड़ गया। छोटी-सी दुकान रह गई और उसी के दुर्बल कन्धों पर उनके बड़े कुटुम्ब का भार पड़ गया। कई लड़के, लड़कियाँ, विधवा भावज और पत्नी के अतिरिक्त एक बूढ़े चाचा भी थे कि जिनका भार-वहन उन्हीं को करना पड़ता था। रोटियों का काम तो किसी प्रकार चला चलता था, परन्तु शादी-गमी में सम्बन्धियों से लेन-देन का जब प्रश्न उठता तो लाला छेदीलाल का मन भारी, अशान्त और उद्विग्न बन जाता। उन क्षणों में निश्चय ही उन्हें मृत्यु का आलिंगन याद आता। उस कल्पना में ही परम सुख और शांति का आभास मिलता। एक दिन बड़ा घर था, बड़ी प्रतिष्ठा। इसलिए जब इज्जत की साख रखने के हेतु वह निर्जीव और असमर्थ दीखते, तो वह जीवन को शाप मानते—अपने आपको हीन !

उन्हीं दिनों एकाएक उनकी लड़की का विवाह-सम्बन्ध निश्चित हुआ। उनका बड़ा लड़का सैलानी था। काँग्रेस में एक वर्ष की सजा काट आया था। अब, देश की स्वतन्त्रता के साथ-साथ मानो उसके जीवन का स्वातन्त्र्य यज्ञ भी अपनी ऊँची लौ उठाकर धधक उठा था। उसे अपने जीवन में धन का उपार्जन करना है, घर चलाना है, माता-पिता-द्वारा अनेक बार कह-सुन लेने पर भी वह मानो उसके कानों के पास से निकल कर ही हवा में मिल गया था; निदान, ला० छेदीलाल ने कहना बन्द कर दिया था। सोच ही लिया उन्होंने कि लड़का नालायक निकला... उनके जीवन का पाप...।

परन्तु जब पिता ने उसकी बहन के लिए लड़का देख लिया और विवाह निश्चित कर लिया तो एक दिन जब वह सदा की तरह, प्रातः ही घर से जाने लगा, तो अतिशय हीन भाव में मा ने उसका मार्ग रोककर कहा—"बेटा सतीश—"

मा का स्वर रुक गया। लगा कि उस स्वर में उद्वेग भी छलछला आया।

किन्तु सतीश बोला—'मा, क्या बात है।'

'सुन तो लिया न तूने, कमला का विवाह—'

सुनते ही, जल्दी से सतीश बोला—'हाँ मां ! कमला का विवाह है। सुना, अगले महीने का मुहूर्त रखा है।'

मा ने कहा—'हां, अगले महीने का।'

लेकिन सतीश ने मा की उस अवस्था को देख, सुगमता से पा लिया कि मा के मन में कोई बात है, चिन्ता है, कथा है, कोई ! अतएव, उसने पूछा—तो मा, कोई और बात ? क्या तुम्हें कोई चिन्ता है ?'

इतना सुन, मा ने इस प्रकार सतीश की ओर देखा कि जैसे उसे लगा कि यह उसका पुत्र है, अब जवान हो गया व दुनिया की रीत-नीति को भी समझने लगा है, परन्तु घर की अवस्था को देखकर भी नादान बना है...बच्चा ! निदान, विस्मय, खेद और वेदना के साथ उसने सतीश की ओर देखकर कहा—'बेटा, पैसा नहीं और इज्जत का सवाल है। बड़े का रिश्ता किया है। लड़का तो रोक लिया, पर विवाह......

किन्तु मा की बात पूरी होने से पूर्व ही सतीश उस समय भी अपने स्वभाव के अनुरूप हँस दिया। मा के कन्धे पर हाथ रखकर बोला—मा, कमला मेरी बहिन है। वह अच्छे घर जाए, यही मेरी कामना है। परन्तु तुमने अपनी इज्जत की मौत की है। कमला के भविष्य पर भी चोट पहुँचाई है। जब पैसा नहीं, तो क्या जरूरत थी बड़े का सम्बन्ध करने की ?'

विस्मय से जैसे चौंककर मा ने कहा—'अरे तू कहता है, अपनी बहिन के लिए! तू ही अपने घर की इज्जत को उछालता है!'

इतना सुनकर सतीश इच्छा करके भी नहीं हँस सका। अर्थात् वह अधिक गम्भीर बन गया। माथे में बल पड़ गए। भवें चढ़ गईं। वह अपनी मा की उस मानसिक वेदना को अनुभव करके ही नितान्त आतुर भाव में उसकी ओर देखकर बोला—'मा, भूलो मत, मैं तुम्हारा बेटा हूँ, कमला का भाई! मुझे भी इस घर की प्रतिष्ठा का ध्यान है। बस, अन्तर इतना है कि जिस प्रतिष्ठा के बोझ से तुम दब रही हो, मैं उसे अनुभव नहीं कर पाता। मैं ऐसा नहीं सोचता। मैं तो देखता हूँ, प्रतिष्ठा और है। वह मनुष्यता पाने में है। पैसे के लिए जीवन परेशान नहीं किया जा सकता। यों आत्मा को भी नहीं मारा जाता।'

उसी समय लाला छेदीलाल घर में आए। सतीश के पास उसकी मा को खड़ा देख, वह एकाएक ही क्षुब्ध होकर बोले—'क्या कह रही है, अपने लाडले से! कहती होगी, रुपया ला...कमाई कर ला!'—उन्होंने तब सतीश की ओर देखकर कहा—'न, बाबू जी! यह तो पगली हो गई है; तुम जाओ सैर करो। कमला की बरात न आएगी, तो मेरी लाश तो निकल जाएगी, उस दिन! मन में आए, तो दुनियादारी का हाथ लगा देना।'

इतनी बात सुनकर तो सतीश से न बोला गया, न सिर उठाकर पिता की ओर देखा गया। वह निश्चित रूप से समझ गया कि मर्ज बढ़ गया है, मरीज का जीवन कठिन है, मृत्यु सुगम और प्राप्य! उसे लगा कि जैसे उसका आदर्श उसके सामने खड़ा था,—नग्न और मूर्त! यह आदर्श जहां चीख-चीखकर बोलता, उस समय यह शक्तिहीन बन गया था, निर्मम और निरुद्देश! और सतीश कह रहा था, हाँ, पैसा तो चाहिए! पिता चिन्तित हैं, मा परेशान। कमला बहिन का विवाह तो होगा। अच्छा सम्बन्ध करना है। किन्तु तदन्तर ही, वह फिर अपनी बात पर आया और तीव्र तथा पतले स्वर में मुँह उठाकर बोला—'पिताजी, आपको अधिकार है कि मुझे बालक समझिए। परन्तु इतना तो बतलाइए, जब पैसा नहीं तो इतने बड़े का सम्बन्ध करके आप कैसे क्या करेंगे? मैं कहता हूँ, यह घर की इज्जत नहीं। कमला के साथ भी न्याय नहीं। हम क्यों न गरीब लड़का देखें। सुन्दर और स्वस्थ। वह मजदूरी करेगा और—'

तड़पकर लाला छेदीलाल ने कहा—'बस, बस! आदर्श अपने पास रख। जिन्दा हूँ तो मुँह पर स्याही नहीं लगवाऊँगा। शरीर का रोम-रोम बेच दूँगा।

सतीश ने कहा—तो यह बुद्धि का व्यापार नहीं। उसकी हत्या है।

'जी!—उन्होंने रोष में भरकर कहा—'अभी ऊँट पहाड़ के नीचे से नहीं निकला है।

सतीश की मा ने कहा—तो बिगड़ते क्यों हो! शांति से बात करो।

उन्होंने फिर तड़पकर कहा—'शांति मेरे जीवन में कहाँ है! पता है रात भर करवटें बदलता हूँ, तारे गिनता हूँ, असमान के—

पत्नी ने कहा—हमारे भाग्य में यही लिखा है।

उसी समय, चिढ़कर सतीश ने कहा—जो मनुष्य बुद्धि से काम नहीं लेता, वह इसी तरह रहता है। उसने कहा और बाहर न जाकर अपने कमरे में चला गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि कमला द्वार के पास खड़ी है। उसकी आँखें भरी हैं। यह देख, सतीश रुक गया। उसने तब कमला की आँखों से अपनी दृष्टि हटाकर ऊपर आसमान की ओर देख, एकाएक साँस भरकर कहा—बहन कमला—

तब बलात्, चोट पड़े पंछी की तरह तड़पकर कमला फूट-फूटकर रो पड़ी। उसी अवस्था में वह बोली—'भैया, मुझे मार दो।

इतना सुन, सतीश ने उसकी ओर देखा। उसके सिर पर हाथ रखा और बोला—'इस घर में और तो कोई मुझे नहीं समझता, पर तू समझती है। अब बता तू, मैं क्या करूँ? तेरे लिए मैं अपना श्रेष्ठतम प्रयत्न करना चाहता हूँ, कमला।'

कमला ने अपनी रोती हुई वेदनापूर्ण आँखें ऊपर उठाईं और सतीश की आँखों पर टिका दीं। उसी अवस्था में वह बोली—'भैया, यह विवाह रोक दो।'

सतीश ने साँस भरी और अपनी दृष्टि दूर आकाश की ओर ले जाकर कहा—'यह नहीं होगा!' वह तभी फिर कमला की ओर देखकर बोला—'विवाह जरूर होगा, कमला। उसी घर होगा। उसी लड़के से।' उसने स्थिर

और दृढ़ स्वर में कहा--'मैं पिता जी को नहीं समझा पाता। मा से भी नहीं कह पाता। पर समाज से कहूँगा, उस लड़के के पिता को भी बताऊँगा कि कमला मेरी बहिन है, मैं भाई हूँ उसका; विवाह करना है, तो रुपया नहीं दूँगा। मैं विवाह में चाँदी-सोने का व्यापार नहीं चलने दूँगा। जानता हूँ, यह लालच की बात है। यही त्याग है। परन्तु जब तक समाज में, मनुष्य में, यह त्याग की भावना नहीं आएगी, तब तक यह जीवित नहीं रहेगा। यह मर जाएगा। इज्जत का जो बोझ आज के मनुष्य ने अपने सिर पर उठाया है, उसमें दुःख है, क्षोभ है और अहंकार है। उसमें मनुष्यता नहीं, सत्य नहीं, एकात्म्य की भावना नहीं, कमला रानी!'

कमला ने कहा--'तो मैं क्या करूँ भैया!'

'तू मेरा साथ देगी। मेरे कहने पर चलेगी,--बस! कमला बहिन, जीवन एक पाठशाला है, अध्ययन है एक; जो हम-तुमको जीवन-जीवनान्तर करते रहना है। वैज्ञानिक अनुसन्धान करते हैं न, कभी टेढ़े, कभी सीधे; तो इसी प्रकार का एक परीक्षण मुझे और तुम्हें करना है। सत्य हमारा पक्ष है,—समाज के दुराग्रह और अहंभाव के विपरीत; हम सफल होंगे, मुझे भरोसा है। जिस प्रतिष्ठा को हमारे पिताजी ने संचित किया है, मैं उसे बखेर दूँगा!

कमला--'पिताजी को कष्ट होगा, भैया!'

सतीश—'नहीं, उन्हें सुख होगा। वह मृत्यु के मुँह में जा रहे हैं, मैं उन्हें जीवन दूँगा!'

कमला—पिताजी चिन्तित हैं। परेशान रहते हैं।'

सतीश—मैंने रोग पा लिया है। उपचार करूँगा।

कमला—'तुम जिद करोगे?'

सतीश—'न, न, मैं डाक्टर बन कर सर्जरी का भी काम करूँगा। जो अंग सड़ गया है, उसे काट दूँगा।'

चौंककर कमला ने कहा—'भैया—'

'बहिन, मैं अब नई परम्परा के अनुसार ही इस पर की प्रतिष्ठा करूँगा'--सतीश ने कहा--'देखती तो है तू, मैं विवाह नहीं करता,--नहीं करूँगा। आज पैसेवालों ने दुनिया को महँगा बना दिया है, मनुष्य बहुरूपिया हो गया है। मैं कहता हूँ, यह पाप है,--यही ढोंग! आज क्या, मैं कल भी पैसे के पीछे नहीं चलूँगा। मैं पैसे की हीनता में अपनी प्रतिष्ठा जाती हुई नहीं देखूँगा। मैं समाज से यह कहते हुए संकोच नहीं करूँगा कि मेरे पास पैसा नहीं...मैं ढोंगी और धूर्त नहीं बनूँगा।' वह कमला की आँखों में झाँकता हुआ, सरस स्वर में बोला—'मेरे पिता जी चोर हैं, कमला, इन्होंने भी समाज को लूटा, पथभ्रष्ट किया; जब पैसा चला गया, तो अपना भाग्य फूटा हुआ मान लिया। जीवन निरुद्देश्य! मैं कहता हूँ, यही जड़ता है। अनुराग की अज्ञानता...

कमला ने साँस भर कर कहा—'भैया, पैसे से काम चलता है। पेट के लिए अन्न आता है।'

सतीश बोला—'मैं कहता हूँ। मैं पैसे की उपयोगिता भी पहचानता हूँ। परन्तु जितनी मुझमें शक्ति है, बुद्धि है, मुझे उसी के अनुसार पैसा पाना है। लेकिन मैं तो ऊपर देखता हूँ। धनपतियों का सोना-चाँदी देख पाता हूँ। कँगलों और अपाहिजों की झोपड़ियाँ नहीं...मजदूरों का जीवन नहीं देख पाता मैं! मैं भी उनसे घृणा करता हूँ। मैं भी उन्हें हीन मानता हुँ।' उसने अपने हाथों की मुट्ठियाँ बाँधकर कहा--'हाय हाय! यह कैसी दीनता है...कैसी पराधीनता; पैसे के लिए ही मनुष्य ठगता है,–ठगा जाता है। चोरी, डाका, लूट, छल और फरेब ऊँचे-से-ऊँचे स्तर पर बैठकर करता है,—यह समाजवादी, यह क्रांतिकारी व्यक्ति! बता तो, यह कैसी कायरता है! संसार है,--मनुष्यों का समाज है,--परन्तु जिस अधिकार-भावना से लिप्त यह मानव भेड़िया बन गया है, इसे-केवल चाहिए सोना, चाँदी, हीरे-पन्ने! हाँ, मैं इस पद दलित समाज को क्या कहूँ,--क्या कहूँ अपने पिता को; मैं तो उन क्रांति-दूतों को भी देखता हूँ कि जो समाज के चौराहे पर खड़े हुए, धन को वासना कहते हैं, धनिकों को जहरीला साँप; परन्तु वे भी उन्हीं धनिकों की गुर्राहट पर खेलते हैं। उनसे याचना करते हैं। और वे धनिक रुपया उछालने के साथ उन्हें भी उँगलियों पर उछाल देते हैं।

कमला की दृष्टि उस समय आसमान की ओर थी। भैया की बात सुन वह फिर उसकी ओर देख कर बोली—'भैया, मैं दुर्बल हूँ,--मैं—

सतीश ने मुसकराकर कहा--'मैं जनता हूँ।'

*   *   *

विवाह का दिन धीरे-धीरे समीप आ रहा था। लाला छेदीलाल को भले ही नगर के कम व्यक्ति जानते हों,

परन्तु उनका पुत्र सतीश नगर के धूमिल अन्धकार में दीपक के समान प्रकाश-स्तम्भ बना था। उसने चाहा कि वह कमला के विवाह की बात लेकर उन सज्जन के पास जाए, कि जिनके पुत्र के साथ कमला का विवाह होना था। परन्तु वह तो जानता था कि उस व्यक्ति के लिए भी धन का त्याग करना सुगम नहीं। मानो उस समाज भर के लिए यह बन गया था कि पैसा है, तो जीवन है, प्रतिष्ठा है, नहीं तो पाप और एक बोझ हो रह गया है, यह जीवन! सतीश को इस बात का भी पता चल गया कि उसके पिता ने मकान गिरवीं रखकर दस हजार रुपया लिया है। वह चाहता तो कानूनी रूप से पिता की उस व्यवस्था को रोक देता। क्योंकि मकान पुश्तैनी था। पिता द्वारा निर्मित कराया हुआ नहीं था। वह सोचता और मुसकराकर रह जाता कि पिता जी ने एक कमला के विवाह के निमित्त यह भुला दिया कि सन्तानें और भी हैं,—लड़कियाँ; भला उनका विवाह किस प्रकार होगा। उसे अनुभव हुआ कि लोग जिस इज्जत का पेट भरने की बात सोचते हैं, वह आत्मघाती नीति है, जैसे विष-धर साँप को दूध पिलाए जाओ, वह जब भी अवसर पाएगा, काटेगा और अन्त कर देगा। किन्तु मनुष्य की जो इज्जत है,—आबरू—प्रतिष्ठा; उसके प्रति जैसे सच-मुच ही ये उदासीन हैं। उसकी मृत्यु करते हैं। वह कहने लगा, हाय! अजीब स्थिति है यह कि परमेश्वर भुला दिया, मनुष्यता का ईमान खो दिया, समाज टुकड़े-टुकड़े हो गया,—दूर-ही-दूर हो गया, यह मनुष्य; विपन्न बन गया। दासत्व के पाश में बँध गया।

विवाह के अब केवल चार ही दिन शेष रह गए थे। सम्बन्धी-नातेदार आ ग ए थे। कमला के बदन पर हल्दी के उबटन मले जाने लगे थे। कंगन बँध गया था। घर में ढोलक बजती, गीत होते। किसी और को पता हो या न हो, परन्तु कमला को इस बात का पता था कि भैया चिन्तित हैं और उदास! इसका परिणाम यह हुआ कि कमला भी उदास थी। वह अपनी सखियों में भी न बैठ पाती। ज्यों-ज्यों विवाह की तिथि समीप आती जाती, त्यों उसकी छाती धड़कती। वह सोचती कि जाने भैया के मन में क्या है! खोया-खोया सा और चिन्तन लिए सा ही बना रहता है, भैया!

किन्तु उस दिन जब रात में, बहुत देर बाद, सतीश घर आया, उसकी बगल में एक बण्डल था। वह सीधा अपने कमरे में चला गया। वह द्वार पर खड़ी हो, क्षण भर सतीश की ओर देखने लगी। जब सतीश ने उसकी ओर देखा, तो कहा—अरी, तू कमला! आ, आ, बैठ!

कमला आगे बढ़ गई। वह भैया के पास बैठ गई।

सतीश ने उसकी ओर देखकर कहा—'अच्छा, हल्दी चढ़ने लगी। देख तो, तू अब कितनी भली लगने लगी। और यह क्या,...कँगना; अच्छा, अच्छा, विवाह का चिह्न!' कहते हुए सतीश मुसकराया। हँस भी दिया। वह फिर बंडल उठाकर उसे खोलने लगा और बोला—'देख, मैं भी तेरे लिए लाया हूँ, यह धोती!' कहते हुए उसने खद्दर की सादी धोती निकाली और कहा—'यह मेरी मेहनत के पैसों की खरीद है। बोल, तू पहनेगी इसे, विवाह के अवसर पर? यह भाई की चीज है। तू पहनना। उन रेशमी साड़ियों से इसे श्रेष्ठ मानना। उन साड़ियों में तो गरीबों की आह है, खून है, याचना है। और इस धोती में है उनका आशीष, प्रेम, सद्भाव! कमला बहिन, आज एक बात कहता हूँ, उसे मानना! जीवन की चादर में लपेटकर रखना। प्राणों के स्पन्दन के साथ,—'गरीब का दिल न दुखाना! उसका आशीष लेना! यही पूजा है...यही ईश्वरीय आराधना! देवालयों में तो पाप होता है, दम्भ का प्रदर्शन! मेरे जीवन की जितनी साधना है, तप है, उसका आशीष मैं सब तुझे भेंट में देता हूँ। पैसा नहीं दूँगा। है भी नहीं। भाई हूँ, बहिन को आशीष दूँगा, सुखी रहे, सदा प्रसन्न!'

कमला ने कहा—'पर भैया, तुमने सोचा क्या! तुमने—'

सतीश बोला—'मैंने सोच लिया है। मेरा आदेश मानना। मैं समय पर बता दूँगा।'

सुनकर कमला ने सिर झुका लिया।

सतीश बोला—'कल विवाह है।'

कमला ने कहा—'भैया, पिताजी का ध्यान रखना।'

तब सतीश ने मत नहीं दिया। वह मौन बन गया।

लेकिन दूसरे दिन जब बारात आई, तो उससे पूर्व, लाला छेदालाल को यह देखकर चकित रह जाना पड़ा कि शहर के विशिष्ट व्यक्ति वहाँ आकर एकत्र हुए। उनमें

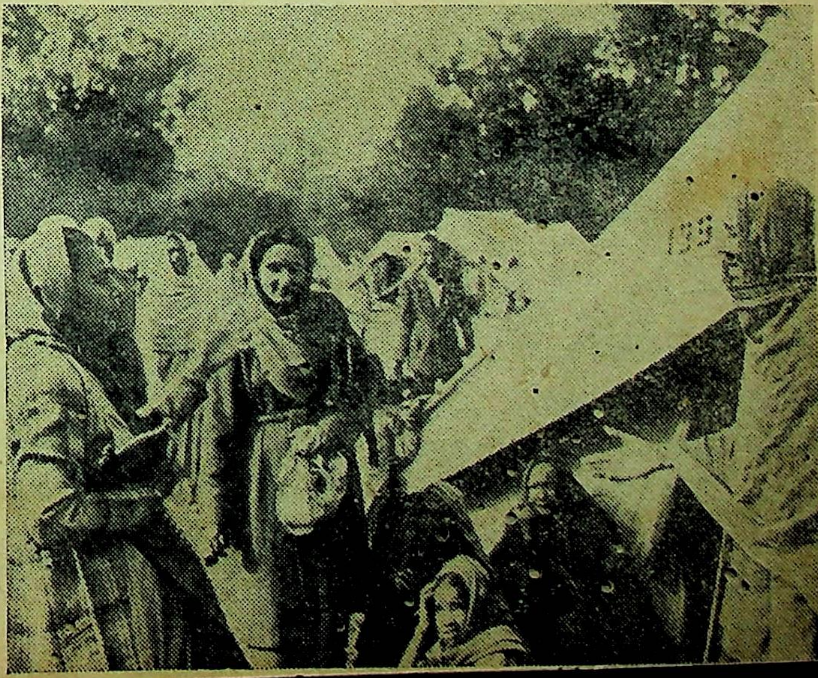


देशभक्त निजाम

रजाकारों के नियंत्रण से छुटकारा पा जाने पर निजाम अपने वास्तविक स्वरूप में जनता के समक्ष आ चुके हैं। चित्र में वे पंडित नेहरू और मेजर जनरल चौधरी के साथ प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं।

मुस्लिम शरणार्थिनी महिलाएँ

पूर्वी पंजाब के गवर्नर की धर्मपत्नी श्रीमती त्रिवेदी शरणार्थिनी मुस्लिम महिलाओं से बातें करती हुई।





ऊपर—

सेंट जान ऐंबुलेंस

बंबई में सेंट जान ऐंबुलेंस के वार्षिक समारोह के अवसर पर सर महाराजसिंह उसके मुस्लिम महिला-दल का निरीक्षण कर रहे हैं।



दाहनी ओर—

पुरस्कार

दिल्ली विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह के अवसर पर पुरस्कृत स्नातकों को पुरस्कार देते हुए श्री राजा जी।

समस्त-सुधारक और कांग्रेसी। सरकार के अधिकारी भी। वे सभी सतीश के निमन्त्रण पर आए थे।

बारात द्वार पर आ गई। द्वार पर लड़के की पूजा-विधि सम्पन्न हो गई। तभी, बारात तथा अन्य अभ्यागतों के समक्ष सतीश ने लड़के के पिता को सम्बोधित करते हुए कहा—'लालाजी, मुझे पता है कि आपने इस विवाह पर इसलिए स्वीकृति दी कि आपको रुपया मिलेगा, दहेज! लेकिन मैं सबके सामने यह बताना पसन्द करूँगा कि विवाह धार्मिक और नैतिक प्रथा है, व्यावसायिक लेन-देन नहीं। अतएव, मेरी बहिन का विवाह विशुद्ध सांस्कृतिक ढंग से होगा, चाँदी-सोने का व्यापार करके नहीं। आइए, विवाह-मण्डप तैयार है।

लड़के का पिता चुप था। वह जैसे जड़ बन गया था। लाला छेदालाल कुछ कहना चाहते थे, परन्तु वह शक्तिहीन बन चुके थे। वह दौड़कर घर में गए और पागल की तरह सभी की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे।

विवाह आरम्भ हुआ। कमला सतीश-द्वारा लाई गई धोती पहनकर बैठी।

जब विवाह सम्पन्न हुआ, तो सतीश लड़के के पिता को सुनाकर बोला—'लाला जी, मैं नहीं जानता कि आपने जीवन में कितने सत्कार्य किए, परन्तु आज आपने जो त्याग किया, वह निश्चय ही समाज के लिए कल्याणकारी रहेगा। देखते हैं आप, मेरे पिता जी को यह पसन्द नहीं आया, इसलिए उनके न आने पर कन्यादान भी मेरे ऊपर पड़ गया। लेकिन मैं दान नहीं करता, मैं अपनी बहिन को थाती के रूप में देता हूँ, जो आपके घर में यश और गौरव की भावना प्रसारित करेगी। वह दया, ममता, प्रेम की पूजा करेगी और [illegible] की सीख देगी।

कमला बिदा हुई, तो सतीश बोला—'ससुराल जा रही है, पगली! हँस कर जा! वही कर्मक्षेत्र है तेरा; गम्भीर और चिन्ताशील बन कर जा!'

कमला चली गई, किन्तु जिस हृदय-रोग के कारण अगले दिन लाला छेदालाल की मृत्यु हुई, उसे देखकर बार-बार सतीश के मन में आया—क्या उसने ठीक किया! उसे लगा कि इज्जत तो मरती नहीं; परन्तु आदमी मरता है। जीवन में जाने कितनी बार मरता है, यह आदमी,—यह इन्सान!

'भारत भूमि और उसके निवासी'

श्री उदयवीर शास्त्री

यह पुस्तक संवत् १९८७ विक्रमी में रत्नाश्रम आगरा के प्रकाशित हुई थी। इसके लेखक हमारे पुराने मित्र पंडित जयचन्द्र जी विद्यालंकार हैं। पंडित जी ने लहौर रहते हुए, इसी विषय पर पहिले एक और छोटी सी पुस्तक "भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार" लिखी थी, उसी का परिवर्द्धित संस्करण यह प्रस्तुत पुस्तक है। पहली पुस्तक को उन्हीं दिनों मैंने पढ़ा था, और वह मुझे अति रुचि-कर मालूम हुई थी।

इस पुस्तक को भी प्रकाशित हुए सत्रह-अठारह वर्ष बीत गए, पर इच्छा रहते भी मुझे इसके पारायण का अवकाश न मिल सका। अचानक ही पिछले दिनों यह पुस्तक हाथ लगी। प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाना है। कोई भी विद्वान् जो इस पुस्तक को पढ़ेगा, पंडित जी की सराहना किए बिना नहीं रह सकता।

पढ़ते-पढ़ते पुस्तक में कई बातें मुझे ऐसी मालूम हुईं, जिसके सम्बन्ध में कुछ लिखने की लालसा का संवरण न कर सका। उनका निर्देश केवल इसी कारण किया जा रहा है, कि उन विषयों पर और अधिक विचार किया जा सके।

१—पुस्तक में 'प्राचीन काल' का अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है, जो पुरानी घटनाओं या भौगोलिक स्थितियों को बतलाने के लिए आवश्यक है। परन्तु पंडित जी ने सम्पूर्ण पुस्तक में इस बात का कहीं निर्देश नहीं किया, कि 'प्राचीनकाल' से कौन सा काल उनको अपेक्षित है। अभी तक इसका सर्वात्मना निर्णय नहीं हो-

सका है, कि कब से कब तक के समय को 'प्राचीन काल' कहा जाए। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने इस सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किए हैं, उनको इस प्रकार दिखलाया जा सकता है—

प्राचीनकाल	किसके मत से
बुद्ध के प्रचार से—ईसा जन्म तक	कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया,
,, —गुप्त वंश के प्रारम्भ तक, लगभग ईस[illegible] की [illegible] सदी के मध्य तक,	के० डी० बी काडरिंग्टन
,, —६०० ईसवी तक	चिन्तामणि विनायक वैद्य,
,, —हर्ष की मृत्यु तक	ईश्वरीप्रसाद

बुद्ध के प्रचार से पूर्व का काल, उक्त विद्वानों ने 'इतिहास-पूर्वकाल' माना है, तथा अधिक-से-अधिक हर्ष की मृत्यु के बाद 'मध्यकाल'। इससे प्रतीत होता है, कि साधारणतया आधुनिक विद्वानों की दृष्टि से भारतीय-इतिहास का 'प्राचीन-काल' बुद्ध से हर्ष तक माना जाना चाहिए।

ग्रन्थ के चतुर्थ परिशिष्ट में लेखक ने यह बताना चाहा है, कि 'प्राचीन काल' से उनका क्या अभिप्राय है। परन्तु न मालूम क्यों, वहाँ भी वे उस बात को स्पष्ट करने का साहस नहीं कर पाए। उन्होंने यह स्पष्ट कहीं नहीं किया, कि अमुक काल से पहले का काल 'प्राचीन काल' समझना चाहिए। उनके लेख से प्रतीत होता है, कि वे वराह मिहिर और कालिदास की गणना 'प्राचीन काल' में करते हैं। जब कि उन्होंने कालिदास का समय गुप्तकाल में माना है। इसके अतिरिक्त बुद्ध से पूर्व की घटनाओं को भी उन्होंने 'प्राचीन-काल' में ही रक्खा है। इससे प्रतीत होता है, बुद्ध से पहले काल को वे 'प्रागैतिहासिक काल' या 'इतिहासपूर्व काल' नहीं कहते। यहाँ तक कि उन्होंने वेदों के उल्लेखों को भी उसी कोटि में रक्खा है।

'प्राचीन काल' को इतना लम्बा मानकर, उतने ही काल में अनेक भौगोलिक-परिवर्तन हो सकते हैं, भूगोल की परिभाषाएँ बदल जाती हैं, उन सब को हम एक ही 'प्राचीन काल' में रख दें, तो हम उन परिवर्तनों के पौर्वापर्य क्रम का कभी संशोधन नहीं कर सकते। और इस प्रकार इतिहास में एक बहुत ही गड़बड़-घोटाला हो जाता है, पहिले की भूगोल परिभाषाएँ पीछे और पीछे की पहले जा पड़ती हैं। इसके उदाहरण के लिए इसी ग्रन्थ के चतुर्थ परिशिष्ट से एक सन्दर्भ उद्धृत करता हूँ—

> मध्य देश की पूर्वी सीमा काव्य-मीमांसा में वाराणसी कही है, किन्तु कभी-कभी वह प्रयाग तक होती थी······[बृहत्संहिता १४, ७]···परन्तु बौद्ध 'विनय' में विदेह और मगध निश्चित रूप से मध्य देश में हैं [महावग्ग ५]······। मध्य देश के दो लक्षणों का अन्तर बौद्ध और अबौद्ध लक्षणों का अन्तर नहीं, प्रत्युत पुरानी और नई परिभाषाओं का अन्तर है।"

[पृष्ठ २५०]

लेखक ने यहाँ यह स्पष्ट नहीं किया, कि इनमें से कौन सी परिभाषा पुरानी और कौन नई है? पाठक इतना पढ़कर किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकता। हम अब पंडित जी से पूछते हैं, कि 'मध्य देश' की इन दो परिभाषाओं में कौन सी नई और कौन सी पुरानी समझनी चाहिए?

एक उदाहरण और लीजिए—"खड़ी बोली··· मेरठ के चौगिर्द इलाके में, दोआब के पूरब रुहेलखण्ड तक तथा पश्चिम अम्बाला जिले में घग्गर नदी तक बोली जाती है। वही प्राचीन उत्तर पंचाल और स्रुघ्न देश है।"

[पृष्ठ २०२]

अम्बाला का यह प्रदेश कौन के प्राचीन काल में स्रुघ्न देश था? यह लेखक ने स्पष्ट नहीं किया। प्राचीन काल में इसका नाम 'ब्रह्मावर्त्त' भी है। कब इसका नाम 'ब्रह्मावर्त्त' रहा है, और कब 'स्रुघ्न देश? इसका निर्णय होना चाहिए, अन्यथा इतिहास का संशोधन नहीं होता तथा पाठक संदेह में पड़ा रहता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रंथ में ही भौगोलिक परिभाषाओं के तथा भौगोलिक परिवर्तनों के कारण भौगोलिक स्थितियों के पौर्वापर्य क्रम में, बहुत गड़बड़ हुई है। कहीं-कहीं तो ऐसा मालूम होता है, कि जैसे बल्लाल के भोजप्रबन्ध में सब आगे-पीछे के कवियों को भोज दरबार में उपस्थित

कर दिया गया है, इसी प्रकार भौगोलिक परिभाषाओं को आगे-पीछे से समेट एक जगह इकट्ठा कर दिया है। ब्रह्मावर्त ब्रह्मर्षि देश की परिभाषाओं से लेकर वर्तमान हिन्दी खण्ड का संतुलन इसी प्रकार का है। अनवतप्पसर से चार नदियों के उद्गम का वर्णन भी उसी कोटि में रक्खा जा सकता है। हमारे विचार से भौगोलिक परिभाषाओं तथा उनके परिवर्तनों का कालक्रम के अनुसार विवेचन अथवा निर्देश किया जाना चाहिए था।

(२)--ग्रंथ के सातवें प्रकरण में, बाँगरु, खड़ी बोली, व्रज भाखा, कन्नौजी और अवधी बोलियों के क्षेत्र को 'अन्तर्वेद' प्रान्त कहा है, और उसके सम्बन्ध में लिखा है कि "जिसे हमने अंतर्वेद कहा है उसकी समानता की स्पष्ट सूचना पहले-पहल हमें मनुस्मृति [लगभग १५० ई०पू०] से मिलती है, जिसके अनुसार वह ब्रह्मावर्त+ब्रह्मर्षि देश है।" इसके आगे लिखा है—"हमारे अन्तर्वेद तथा मनुस्मृति के ब्रह्मावर्त+ब्रह्मर्षि देश में केवल इतना अंतर है, कि अंतर्वेद में हमने मत्स्य को नहीं गिना, और प्रयाग प्रदेश [वत्स-भूमि] को भी शामिल कर लिया है।

वस्तुतः मनुस्मृति के अनुसार 'ब्रह्मावर्त' कौन-सा प्रदेश है, अभी तक इसका ठीक निर्णय नहीं हो पाया। मनुस्मृति में सरस्वती और दृषद्वती इन दो नदियों के मध्यगत प्रदेश को 'ब्रह्मवार्त कहा है, परन्तु अभी दृषद्वती नदी का ही निश्चय नहीं है [इसका विस्तृत वर्णन हम (३) नम्बर में करेंगे]। तब मनुस्मृति के 'ब्रह्मावर्त'+ब्रह्मर्षि देश के साथ अन्तर्वेद की समानता निराधार है।

इसके अतिरिक्त मनुस्मृति में 'मध्य देश' की सीमाओं का स्पष्ट निर्देश किया है, हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य, तथा विनशन् से पूरब और प्रयाग से पच्छिम का देश 'मध्य देश' है [मनु० २।२१], इसके अनुसार हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य का मैदानी इलाका तथा विनशन से पूरब और प्रयाग से पच्छिम उतना ही प्रदेश आता है, जिसका नाम आप अंतर्वेद रखना चाहते हैं। इस प्रकार मनुस्मृति का मध्यदेश और आपका अंतर्वेद; प्रायः एक ही भूभाग होता है। उसकी समता के लिए ब्रह्मावर्त+ब्रह्मर्षि का निर्देश युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। पश्चिमी सीमा में विनशन उस स्थान का नाम है, जहाँ सरस्वती नदी अति प्राचीन काल में समुद्र में गिरती थी। इस विचार को पंडित जी ने भी अपने ग्रंथ में स्वीकार किया है।

ऊपर की पंक्तियों में पंडित जी ने मनुस्मृति का समय ईसा से १५० वर्ष पूर्व माना है। यह समय लगभग पुष्यमित्र के राज्य-काल के समीप आता है। महाभाष्यकार पतञ्जलि का वही समय माना जाता है। पतञ्जलि ने महाभाष्य में जो अपने समय की 'आर्यावर्त्त' की सीमा लिखी है [२।४।१० तथा ६।३।३ पृष्यो दरादीनि०] उसका सामञ्जस्य मनुस्मृति [२।२२] से नहीं होता। यदि मनुस्मृति का समय उसी के आसपास माना जाए, जो पण्डित जी ने ऊपर निर्देश किया है, तो एक ही समय में 'आर्यावर्त्त' की दो प्रकार की सीमाओं का वर्णन समझ में नहीं आता। इसके दो ही परिणाम निकाले जा सकते हैं—(१) या ये दोनों वर्णन, या दोनों में से कोई एक, अशुद्ध है, (२) अथवा ये दोनों भिन्न-भिन्न वर्णन, एक समय के नहीं हो सकते। हमारे पास इन दोनों के, या दोनों में से किसी एक के अशुद्ध होने का कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए दूसरे विकल्प को ही स्वीकार किया जा सकता है।

अब यह मान लेने पर कि ये दोनों वर्णन भिन्न-भिन्न समयों के हो सकते हैं, मनुस्मृति का हम वह समय नहीं रख सकते, जो पण्डित जी ने अपने ग्रन्थ में निर्दिष्ट किया है। क्योंकि महाभाष्यकार पतञ्जलि का समय अनेक कारणों के आधार पर अधिक निश्चित है। उसको वहाँ से हिलाना कठिन है। अभी इस बात को हम विद्वानों के विचाराधीन छोड़ते हैं, कि मनुस्मृति को उससे पहिले माना जाए या पीछे?

पतञ्जलि के व्याकरण महाभाष्य में 'स्रुघ्न' का अनेक स्थलों पर उल्लेख आता है। ऐतिहासिक विद्वानों ने निर्णय किया है, कि यह स्रुघ्न अम्बाला जिले की तहसील जगाधरी कस्बे से पूरब की ओर बूड़िया के पास था। अब भी वहाँ 'सुग' नामक एक गाँव है जो प्राचीन विशाल-नगर स्रुघ्न का अवशेष है। महाभाष्य के लेखों से प्रतीत होता है, कि उसके समय यह स्रुघ्न नगर अपने अभ्युदय के शिखर पर था। यह नगर जिस प्रदेश की राजधानी रहा होगा, उस सम्पूर्ण प्रदेश को भी इसी नाम से पुकारा जाता रहा होगा। उतने प्रदेश का नाम 'स्रुघ्न देश' कहा जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्रुघ्न देश का

बहुत सा भू-भाग मनुस्मृति वर्णित 'ब्रह्मावर्त्त' के अन्तर्गत था। प्रतीत यह होता है कि महाभाष्यकार पतञ्जलि के समय मनुस्मृति-वर्णित सीमाओं से परिवेष्ठित 'ब्रह्मावर्त्त' अपनी प्राचीन भौगोलिक परिभाषाओं के साथ व्यवहार में नहीं रहा था, उसका कुछ भाग स्रुघ्न देश में तथा शेष अन्य पड़ौसी प्रदेशों में सम्मिलित कर लिया गया होगा। इस विचार से भी यह अनुमान किया जा सकता है कि महाभाष्यकार पतञ्जलि से पहिले ही मनुस्मृति का समय होना चाहिए, जब कि ब्रह्मावर्त्त प्रदेश की सीमाओं में स्रुघ्न देश की गणना नहीं हो पाई थी। फलतः मनुस्मृति-वर्णित ब्रह्मावर्त्त + ब्रह्मर्षि देश के साथ अन्तर्वेद की समानता प्रामाणिक नहीं कही जा सकती।

(३)—पण्डित जी ने प्राचीन साहित्य में वर्णित 'दृषद्वती' नदी को वर्त्तमान घग्गर नदी [पृष्ठ १६६, २०३ आदि] बताया है, जो अम्बाला नगर के उत्तर-पूर्व में, शिवालक की पहाड़ियों से निकलकर एक पतली रेखा में बहती है और राजपूताने के रेगिस्तान की ओर चली जाती है।

श्री नन्दूलाल दे महोदय ने भी अपने 'भौगोलिक कोष' में घग्गर [कग्गर] को ही प्राचीन दृषद्वती नदी बताया है, जो सिंमले की पहाड़ियों से निकलकर अम्बाला, सरहन्द होती हुई राजपूताने की मरुभूमि में अन्तर्निहित हो जाती है। दे महोदय ने अपने लेख का आधार, ऐल्फिन्टन और टॉड के उल्लेखों को माना है, संभवतः पं० जयचन्द्र जी ने भी इन्हीं आधारों पर घग्गर को दृषद्वती लिखा हो।

हमारे विचार से वर्त्तमान घग्गर नदी, प्राचीन दृषद्वती नहीं हो सकती। इसके लिए जो प्रमाण हमें उपलब्ध हुए हैं, यथाक्रम यहाँ उपस्थित किए जाते हैं :—

(क)—महाभारत के वर्णनों के अनुसार दृषद्वती नदी, सरस्वती नदी से दक्षिण-पूर्व की ओर होनी चाहिए। वहाँ लिखा है—

"दक्षिणेन सरस्वत्या दृषद्वत्युत्तरेण च।
ये वसन्ति कुरुक्षेत्रे ते वसन्ति त्रिविष्टपे॥"
[वन० ८१।४, २०४]

यहाँ सरस्वती से दक्षिण और दृषद्वती से उत्तर की ओर फैले हुए कुरुक्षेत्र में निवास करना, स्वर्ग में निवास करने के समान बताया गया है। यह उल्लेख उसी समय संभव हो सकता है, जब सरस्वती से दक्षिण-पूर्व की ओर दृषद्वती की स्थिति मानी जाए। वर्त्तमान घग्गर नदी की स्थिति उक्त सरस्वती से पश्चिम की ओर है। ऐसी स्थिति में घग्गर को दृषद्वती मानना कठिन होगा। घग्गर को दृषद्वती मानने के लिए और भी कोई सुपुष्ट प्रमाण नहीं है।

(ख)—कनिंघम ने थानेसर के वर्णन में प्रसंगवश जो दृषद्वती का उल्लेख किया है, उससे भी दृषद्वती की वास्तविक स्थिति पर कोई स्पष्ट प्रकाश नहीं पड़ता। परन्तु उसने महाभारत के उल्लेखों को पूर्णरूप से ध्यान में रक्खा है, इसीलिए कनिंघम के विचार से भी घग्गर नदी, दृषद्वती नहीं कही जा सकती।

मैक्डॉनल और कीथ द्वारा संगृहीत 'वैदिक इण्डेक्स' में बताया गया है, कि "दृषद्वती नदी कुछ दूर तक सरस्वती नदी के बराबर बहकर उसमें मिल जाती थी। ऋग्वेद [३।२३।४], ब्राह्मण ग्रन्थ [पञ्च विं० ब्रा० २५।१०। १३॥ ताण्ड्य० २५।१०।१६] और श्रौत सूत्रों [लाट्या० १०।१६।४॥ कात्या० २४।६।६-३६] में भी इसका उल्लेख है। मनुस्मृति [२।१७] में लिखा है, कि ये दो नदियाँ मध्यप्रदेश की पश्चिमी सीमा को बनाती हैं।"

'वैदिक इण्डेक्स' के वर्णन से भी यह बात स्पष्ट नहीं होती कि सरस्वती नदी के किस किनारे की ओर अथवा किस दिशा में दृशद्वती नदी बहती थी, न वहाँ पर इस नाम से किसी वर्त्तमान नदी की पहिचान बताई गई है।

(ग)—यह अभी लिखा जा चुका है, कि महाभारत वनपर्व के अनुसार सरस्वती से पूर्व-दक्षिण की ओर दृशद्वती होनी चाहिए। इस विचार की पुष्टि ब्राह्मण ग्रन्थ [ताण्ड्य० २५।१०। १२-२३] और श्रौत सूत्रों [कात्या० २४।६। ३०-३६, लाट्या० १०।१६।४] के वर्णनों से भी होती है। वहाँ लिखा है, सत्रयाजी व्यक्ति विनशन में दीक्षित होकर सरस्वती के दक्षिण तट पर उसके उद्गम की ओर चले। सरस्वती-दृषद्वती का संगम आने पर संगम से ऊपर की ओर सरस्वती को पार करके दृषद्वती के दक्षिण तट पर पहुँचे। पार करने के पूर्व ही संतरण के दोषों से बचने के लिए अपोनप्त्रिय चरु दे, और पार होकर वहीं से अष्टाकपाल पुरोडाश के द्वारा आग्नेय इष्टि का प्रारम्भ करे, पुनः दृषद्वती के दक्षिण तट पर उद्गम की ओर चले।

इस वर्णन में यज्ञिय अंश को छोड़कर विद्वानों का ध्यान हम केवल इस ओर आकृष्ट करना चाहते हैं कि सरस्वती-दृषद्वती के संगम के ऊपर, सरस्वती के दक्षिण तट से बाएँ तट की ओर पार होकर दृषद्वती के दक्षिण तट पर पहुँचना इस बात को सिद्ध करता है कि सरस्वती से पूर्व-दक्षिण की ओर ही दृषद्वती होनी चाहिए। क्योंकि यदि सरस्वती के पश्चिम की ओर दृषद्वती हो, तो दृषद्वती के दक्षिण तट पर जाने के लिए सरस्वती को पार करना अनावश्यक होगा, और संतरण के दोषों से बचने के लिए चरु का विधान निरर्थक, इस कारण से भी घग्गर नदी को दृषद्वती नहीं कहा जा सकता। क्योंकि घग्गर सरस्वती से पश्चिम की ओर बहती है। तब सरस्वती के पूर्व-दक्षिण की ओर 'दृषद्वती' नदी कौन सी है? इस पर अन्यत्र विचार किया जाएगा, अभी हम इसको विद्वानों के विचाराधीन छोड़ते हैं।

(४)--पृष्ठ १२६ पर लिखा है—"प्राचीन भारतवासियों की यह धारणा थी, और उनसे चीनवालों ने भी उसे ले लिया था, कि गंगा, सिन्धु, वंक्षु और सीता ये चारों नदियाँ अनवतप्त सरोवर से निकली थीं।"

इसके आगे पृष्ठ ३०३ पर लिखा है—"एक विशेष काल के प्राचीन भारतीय विश्वास के अनुसार सीता और गंगा का स्रोत एक ही अनवतप्त सरोवर था। सीता उसके उत्तर और गंगा पूर्व निकलती थी।"

पण्डित जी ने 'सीता' नाम की नदी की पहिचान 'यारकन्द' नदी से की है, जिसके दूसरे नाम रस्कम और जरफशां भी हैं। पण्डित जी के विचारानुसार इस नदी को "चीनी लोग उसके प्राचीन संस्कृत नाम 'सीता' के अनुसार अब तक 'सी-तो' कहते हैं, [पृष्ठ १२३]।" इस नदी का उद्गम-स्थान कारकोरम और क्युनलुन पर्वतमालाओं के मध्यवर्ती प्रदेश में है। अपने उद्गम-स्थान से इसका बहाव कुछ दूर तक पश्चिम-उत्तर को है, उसके बाद काशगर सरीकोल तथा क्युनलुन की पर्वत शृंखलाओं को पृथक् करता हुआ, उत्तर-पूर्व की ओर झुक जाता है।

पण्डित जी ने अपने इस दावे को प्रमाणित करने के लिए संस्कृत-साहित्य से एक भी प्रमाण नहीं दिया, कि 'यारकन्द' नदी का नाम संस्कृत में 'सीता' था। उनके लेख से केवल इतना प्रतीत होता है कि इस नदी के चीनी नाम 'सी-तो' के आधार पर उन्होंने इस नदी के संस्कृत नाम की कल्पना कर डाली है। अनवतप्त सर से गंगा, सिन्धु, वंक्षु और सीता नाम की चार नदियों के निकास की जो प्राचीन भारतवासियों की धारणा का उल्लेख किया गया है, उसके आधार पर भी यह निर्णय नहीं होता कि वर्त्तमान 'यारकन्द' का नाम 'सीता' था। हम यहाँ केवल सीता नामक नदी के सम्बन्ध में ही कुछ विचार उपस्थित करना चाहते हैं।

रामायण [बाल० ४३।११-१४], महाभारत [सभा० ३।११॥ भीष्म० ६।४ ... ४८-४६] और पुराणों [पद्म० आ० ख० ३।५६-६६ ...] में यह उल्लेख आता है, कि 'विन्दुसर' से सात नदियाँ निकलती थीं। विन्दुसर को कहीं ब्रह्मसर और कहीं विष्णुसर भी लिखा गया है। सातों नदियों के नाम सब जगह एक-से नहीं हैं, उनके नामों में एक दूसरे स्थल से थोड़ा-थोड़ा अन्तर भी है, परन्तु सबको सम्मिलितरूप में विचारकर देखने से निम्नलिखित सात नाम उपलब्ध होते हैं—सिन्धु, सीता, सरस्वती, जम्बू नदी, गंगा, पावनी और नलिनी।

हमारे विचार से विन्दुसर एक कल्पना ही न थी। पश्चिम से पूर्व तक की हिमालय पर्वतमाला के मध्य में एक छोटा-सा प्रदेश ऐसा है, जहाँ कि उतने ही प्रदेश में से उत्तर भारत की सबसे बड़ी सात नदियों का निकास है। हमने यहाँ हिमालय पद से उन सब ही पर्वत-शृंखलाओं को लिया है, जो कैलास शृंखला, लदाख शृंखला, जङ्स्कर शृंखला तथा बड़ी-छोटी हिमालय शृंखला के नाम से, पश्चिम से पूर्व तक फैली हुई हैं। इस लम्बाई के मध्यभाग में कैलास शिखर के दक्षिण की ओर फैला हुआ एक छोटा-सा प्रदेश है, जिसमें मानस सरोवर और राक्षस ताल नामक दो झीलें अब भी विद्यमान हैं। इस प्रदेश के आसपास ही उत्तर भारत की जिन बड़ी सात नदियों के उद्गम-स्थान हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—सिन्धु, सतलज, सरस्वती [विनष्ट], जमुना, गंगा, सरयू, ब्रह्मपुत्र। यदि रामायण, महाभारत और पुराणों में कथित नामों की इनसे तुलना करें, तो उन नामों को यथाक्रम यहाँ लिखे नामों से मिलान कर लीजिए, इनमें सिन्धु, सरस्वती, जमुना [जम्बू नदी] और गंगा ये चार नाम बिल्कुल वे ही हैं। सतलज का प्राचीन नाम सीता, सरयू का पावनी और ब्रह्मपुत्र का नलिनी प्रतीत होता है। यदि हम हिमालय में इन नदियों के उद्गम-स्थानों पर एक रेखा खींच ले जाएँ, तो हमारे

सामने प्राचीन बिन्दुसर का एक नक्शा आ जाता है। इसके द्वारा हम कुछ अनुमान कर सकते हैं कि अति प्राचीन काल में बिन्दुसर का कितना घेरा रहा होगा। यह हम देखते हैं कि उक्त सात नदियों में से एक सरस्वती नदी, न मालूम कब, नष्ट हो चुकी है। यह किसी भारी भौगोलिक उथल-पुथल का परिणाम है। प्रतीत होता है कि उन्हीं कारणों से विशाल बिन्दुसर संकुचित होकर आज मानस सरोवर और राक्षस ताल के रूप में अवशिष्ट है।

कालान्तर में कदाचित् इसी बिन्दुसर को ही तो कहीं अनवतप्त सर नहीं कहा गया? हम कह चुके हैं, कि यहाँ केवल 'सीता' नदी के सम्बन्ध में ही विवेचन किया जाएगा। पण्डित जी ने बताया है कि अनवतप्त सर से 'सीता' नदी उत्तर की ओर निकलती थी। परन्तु रामायण में बिन्दुसर से पश्चिम की ओर बहनेवाली नदियों में सीता का नाम है। संस्कृत-साहित्य के अनुसार सिन्धु और सरस्वती के अतिरिक्त आजकल सतलज ही पश्चिम समुद्र में गिरनेवाली नदी है। अति प्राचीन साहित्य में इस नदी का नाम 'शुतुद्रि' अथवा 'शतद्रु' भी आता है।

कैलास मानसरोवर में तेरह-चौदह वर्ष व्यतीत कर अनुसन्धान करनेवाले अनुपम साहसी श्री स्वामी प्रणवानन्द जी ने अपनी पुस्तक 'कैलास मानसरोवर' के पृष्ठ ६६ पर मानस खण्ड से निकलनेवाली चार नदियों का एक चार्ट दिया है। यह वैसी ही बात है, जिसको पण्डित जी ने अनवतप्त सर से चार नदियों का निकास बताने के रूप में प्रकट किया है। बिन्दुसर से सात नदियों का उद्गम तथा अनवतप्त सर या मानस खण्ड से चार नदियों का उद्गम है, इनके सामंजस्य पर हम अन्यत्र प्रकाश डालने का यत्न करेंगे। स्वामी प्रणवानन्द जी के चार्ट में एक नाम 'सीता', सिन्धु नदी का लिखा गया है। यदि यह सीता रामायण, महाभारत आदि की सीता नदी ही हो, तब सीता को सिन्धु नहीं पहिचाना जाना चाहिए, क्योंकि रामायण आदि में सीता के अतिरिक्त सिन्धु का स्वतन्त्र रूप से उल्लेख है। श्री स्वामी जी ने ये नाम तिब्बती कैलास पुराण से दिए हैं।

इन लेखों का यह निष्कर्ष निकलता है—

(अ) पण्डित जी के लेखानुसार चीनी यारकन्द नदी को 'सीता' कहते हैं।

(आ) तिब्बती कैलास पुराण के आधार पर ज्ञात होता है, कि तिब्बती लोग सिन्धु नदी को 'सीता' कहते हैं।

(इ) संस्कृत-साहित्य के आधार पर यह प्रतीत होता है कि सतलज का नाम 'सीता' होना चाहिए।

इन विवरणों से हम एक परिणाम पर पहुँचते हैं। संस्कृत-साहित्य में यह कहा गया है, कि 'सीता' नदी अपने उद्गम स्थान से पश्चिम को बहती है, इससे यह बात स्पष्ट है, कि भारतीय परम्परा में यह विचार स्थिर था, कि 'सीता' नदी पश्चिम को बहनेवाली है। भारतीय जानकारी के आधार पर तत्कालीन तिब्बती और चीनी व्यापारी यात्रियों में यह परम्परा पहुँच गई कि अपने उद्गम से पश्चिम को बहनेवाली नदी का नाम 'सीता' है। अथवा यों कहिए कि 'सीता' नदी अपने उद्गम-स्थान से पश्चिम को बहती है। तिब्बती व्यापारियों ने सिन्धु को अपने उद्गम स्थान से पश्चिम की ओर बहता देख उसी को भारतीय 'सीता' नदी समझ लिया। इसी प्रकार चीनी व्यापारियों ने यारकन्द नदी को अपने उद्गम स्थान से पश्चिम की ओर बहते देख, उसी को भारत की 'सीता' नदी समझा, और वे उसी नाम से उसका व्यवहार करते रहे। आधुनिक खोज करनेवालों ने खोज करने पर मालूम किया कि चीनी यारकन्द नदी को 'सी-तो' या 'सीता' कहते हैं, अथवा तिब्बती सिन्धु को। उन्होंने समझ लिया, कि बस यारकन्द ही भारतीय 'सीता' नदी है। किसी ने सिन्धु को 'सीता' बताया। परन्तु उन खोजियों ने भारतीय साहित्य के साथ इसका सामंजस्य करने का कोई यत्न नहीं किया।

इसी ढंग का एक उदाहरण स्वामी प्रणवानन्द जी की पुस्तक के आधार पर हम यहाँ और उपस्थित करते हैं। मानसरोवर से एक नाला निकलकर राक्षस ताल में मिलता है, जिसका नाम 'गंगा-छू' है। राक्षस ताल से पश्चिम की ओर सतलज का उद्गम है। इस कारण वहाँ के पर्वतीय लोगों का यह विचार है, कि यह 'गंगा-छू' नामक नाला ही राक्षस ताल से पश्चिम की ओर सतलज के रूप में निकल जाता है। इसलिए वे लोग सतलज को भी गंगा कहते हैं। जब वे ही लोग कभी हरद्वार में आकर वहाँ की नदी का नाम गंगा सुनते हैं, तो वे यही समझते हैं, कि हमारी मानस की गंगा [सतलज] ही

यहाँ घूमती बहती आ गई है। स्वामी जी ने [पृष्ठ ६८ पर] लिखा है, कि इसी भ्रमपूर्ण धारणा पर संभवतः तिब्बती पुराण में गंगा [सतलज] का वर्णन अशुद्ध हो गया है। इसी प्रकार सिन्धु का भारतीय नाम 'सिता' भी अशुद्ध लिखा गया मालूम होता है। इसका एक संभावित कारण हम ऊपर दिखा चुके हैं। यही स्थिति 'यारकन्द' के चीनी 'सी-तो' नाम की भी समझनी चाहिए।

अनेक भारतीय विद्वानों को ब्रिटिश मनोवृत्ति की यह देन है कि यदि चीन या तिब्बत में या कहीं अन्यत्र, हम किसी उल्टी-सीधी भारत-सम्बन्धी बात को पा जाते हैं, तो उसके पीछे ऐसे ललककर पड़ते हैं कि उसकी सचाई-झुठाई की परख करना भी आवश्यक नहीं समझते और उसको एक पत्थर की लकीर की तरह पक्का मान लिया जाता है तथा अपने प्रामाणिक भारतीय साहित्य की भी या तो उपेक्षा कर दी जाती है, या उसे सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगता है।

वायुपुराण के एक लेख से भी यह स्पष्ट होता है कि सतलज का ही 'सीता' नाम होना चाहिए। वहाँ का पाठ है—

"कृत्वा द्विधा सिन्धुमरुं सीताऽगात् पश्चिमोदधिम्।"
[४७।४३]

सिन्धु देश और मरु देश को विभक्त करती हुई 'सीता' नदी पश्चिम समुद्र में जा मिलती है। यह स्थिति आज भी हम वर्त्तमान सतलज में पर्याप्त सीमा तक पाते हैं। वायुपुराण के इस वर्णन से साधारणतया यह भी अनुमान किया जा सकता है कि यह लेख किस समय का होना चाहिए, और इस नदी का 'सीता' नाम किस काल में रहा होगा।

मार्कण्डेय पुराण [५५।३] में एक 'शीतोदा' नदी का उल्लेख आता है जिसका उद्गम स्थान मेरु पर्वत बताया गया है। मत्स्य पुराण [१२०।१६।१८] में लिखा है कि 'शैलोदा' नामक नदी, कैलास के पश्चिम अरुण पर्वत से निकलकर, पश्चिम समुद्र में गिरती है। महाभारत [उपायन पर्व [illegible]८] में वर्णन है, कि 'शैलोदा' नदी मेरु और मन्द[illegible] पर्वतों के बीच से निकलती थी। कुछ आधुनिक विद्वानों का विचार है कि चीनी एवं तिब्बती में इसको 'शीतो' अथवा 'सी-तो' कहा जाता है।

यद्यपि मेरु और मन्दर नामक पर्वतों की पहिचान अभी तक ठीक-ठीक नहीं हो पाई है। तथापि पुराणों के उक्त वर्णनों का सामंजस्य निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है—

सतलज का अति प्राचीन नाम 'शुतुद्रि' है, वह 'शतद्रु' बना, और वही कालान्तर में 'शीतोदा' हो गया। उसी को प्रादेशिक भाषाओं में 'शीतो' अथवा 'सीतो' नाम प्राप्त हुआ, जो पुराणों में अधिक कालान्तर में जाकर 'सीता' नाम से प्रसिद्ध हो गया। 'शीतोदा' का ही अन्य पुराणों में 'शैलोदा' अपपाठ हुआ है। इन्हीं नामों का प्रतीक रूप अब 'शतलुज' या 'सतलुज' अथवा 'सतलज' है।

इन नामों में कालक्रम की परम्परा का भी कुछ भान होता है, जिसका निम्नरूप में निर्देश किया जा सकता है—

शुतुद्रि [वैदिक काल]
|
शतद्रु [अन्तर काल]
|
शीतोदा [प्रारम्भिक पुराण काल]
|
शीतो अथवा सीतो [चीनी या तिब्बती में] — शैलोदा [मध्य पुराण काल]
|
सीता [चीनी आदि के आधार पर फिर पुराणों में]
|
सतलुज या सतलज [वर्त्तमान]

कालान्तर में विद्वानों को यह निश्चय न रहा कि ये नाम एक ही नदी के हैं। इस कारण कई स्थानों पर ऐसे वर्णन हो गए हैं; जिनसे यह भ्रान्ति हो सकती है, कि ये नाम अनेक नदियों के हैं।

मत्स्यपुराण के अनुसार कैलास के पश्चिम अरुण पर्वत से 'शैलोदा' नदी निकलती है। वर्त्तमान सतलज के विकास का केन्द्रस्थान ठीक इसी प्रदेश में है। परन्तु मार्कण्डेय पुराण में 'शीतोदा' का विकास मेरु पर्वत से बताया है। यदि कैलास पर्वत को मेरु मान लिया जाए, और उस प्रदेश में यह एक ... पर्वतशिखर होने के कारण उस सम्पूर्ण प्रदेश को 'मेरु' नाम ही दे दिया जाए, तो मार्कण्डेय पुराण का लेख भी असंगत नहीं कहा सकता। महाभारत में मेरु और मन्दर के मध्य में 'शैलोदा' का उद्गम अथवा बहना लिखा है, जो सर्वथा युक्त है, क्योंकि वर्त्तमान सतलज कैलास और उसके पश्चिम के पर्वत शिखरों के मध्य में होकर ही बही है। संभव है, कैलास को मेरु तथा मत्स्यपुराण में कैलास से पश्चिम के जिस पर्वत-शिखर को 'अरुण' नाम से कहा गया है, उसको महाभारत में 'मन्दर' लिखा हो। अथवा 'मन्दर' की कोई दाईं श्रृंखला या बाँह 'अरुण' हो। लदाख श्रृंखला को 'मन्दर' कहा जा सकता है।

देवासुर संग्राम को रोकने के लिए, मन्दराचल के द्वारा समुद्रमंथन और उससे चतुर्दश रत्नों की प्राप्ति का जो पुराणों में उल्लेख आता है, वह एक महान् तथा अति प्राचीन ऐतिहासिक घटना का ही निर्देश करता प्रतीत होता है। संभवतः वह मन्दर पर्वत, वर्त्तमान लदाख श्रृंखला और उससे सम्बन्ध रखनेवाला समुद्र, वही समुद्र होगा, जिसका वर्णन कालान्तर में 'बिन्दुसर' नाम से किया गया है। मन्दर पर्वत लदाख श्रृंखला कही जा सकती है, क्योंकि वह उस काल में विन्दुसमुद्र को मध्य से विभक्त करती थी। उसी को एक मध्यगत रेखा मानकर आर्यजाति के दोनों युद्धोद्यत संघों ने उसका विभाग कर लिया होगा और झगड़ों की समाप्ति कर उसमें पारस्परिक व्यापार एवं परिश्रम के द्वारा रत्नों का संग्रह किया गया होगा। अन्य किसी पर्वत श्रृंखला को सुपुष्ट आधारों पर 'मन्दर' मना जाना कठिन होगा।

इसी का दूसरा नाम 'मैनाक' भी है, जिसके सम्बन्ध में यह पौराणिक अनुश्रुति है कि वह समुद्र के मध्य में सिर उठाकर खड़ा हो गया था। महाभारत में कैलास से दक्षिण मैनाक के होने का उल्लेख मिलता है। संभवतः यह विन्दुसर के दक्षिणी भाग को उत्तरी भाग से पृथक् करता होगा। महाभारत में कैलास और बिन्दुसर के समीप स्वर्णबालुका और हिरण्यशृंग पर्वत का भी उल्लेख है, जो तिब्बती मैदान चाङ्थङ् के दक्षिण-पश्चिमी भाग की स्वर्णखानों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है, जो 'थोकजालुङ्' की सोने की खान कही जाती हैं। यह प्रदेश अब भी 'मानस-खण्ड' में समझा जाता है।

अब हमारे सम्मुख यह स्पष्ट हो जाता है कि 'यारकन्द' नदी को 'सीता' मानना रामायण और पुराणों के 'सीता' सम्बन्धी वर्णनों के सर्वथा विपरीत है। रामायण, वायुपुराण और मत्स्यपुराण में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि 'सीता' [मत्स्य०--'शैलोदा'] नदी पश्चिम समुद्र में जाकर गिरती है। महाभारत में 'सीता' के उद्गम-प्रदेश का जो वर्णन किया गया है, वह कैलास मानस खण्ड के साथ ही सामञ्जस्य रखता है। ये दोनों बातें 'यारकन्द' में नहीं घटतीं। महाभारत में उल्लिखित 'शैलोदा' के उद्गम-प्रदेश का वर्णन भी, 'यारकन्द' के उद्गम-प्रदेश के साथ सामञ्जस्य नहीं रखता। काराकोरम और क्युनलुन पर्वतमाला के मध्य में 'यारकन्द' का उद्गमस्थान है। यदि इन दोनों पर्वतों में से एक को 'मेरु' और दूसरे को 'मन्दर' माना जाए, तो उसके लिए अन्य पुष्ट प्रमाण होने चाहिए तथा मेरु और मन्दर सम्बन्धी अन्य पौराणिक अनुश्रुतियों का उनके साथ पूरा सामंजस्य भी होना चाहिए, जो उक्त दोनों पर्वतमालाओं में पूरा उतरना कठिन है।

इन सब आधारों पर शीतोदा, शैलोदा, शीतो अथवा सीतो या सीता एक ही नदी के नाम हैं, जिसको अति प्राचीन काल में शुतुद्रि अथवा शतद्रु कहा जाता था, और आज सतलुज या सतलज।

महाभारत में 'शैलोदा' नाम से, इस नदी के दोनों ओर जिन जातियों के बसने का उल्लेख किया गया है, उसका सन्तुलन पुराने इतिहास और आज की स्थिति से स्पष्ट रूप में किया जा सकता है। जिनमें से कुणिंद और खश जातियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनकी अधिक-से-अधिक आबादी जमुना और सतलुज तथा सतलुज और व्यास के मध्यगत प्रदेशों में है। इससे निश्चित होता है,

कि उपर्युक्त सब नाम 'शुतुद्रि' नदी के ही हैं, जो कालान्तरों में परिवर्तित होते रहे हैं, जिनका अन्तिम रूप आज सतलुज या सतलज है।

प्रस्तुत पुस्तक में और भी अनेक ऐसी बातें हैं, जिनके सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक पुनः विचार होना चाहिए। यथावकाश उन पर फिर कभी प्रकाश डालने का यत्न किया जाएगा। कालिदास-वर्णित रघु-यात्रा के सम्बन्ध में शीघ्र ही हम कुछ लिखने का यत्न करेंगे।

बट-वृक्ष

श्रीभारतीय

सामाजिक प्राणियों के ईर्ष्या-द्वेष-भरे व्यवहार से खिन्न विमनस, मानव-समाज से विरक्त मेरा मन जब जब कभी ऊबकर---उनसे दूर—बहुत दूर, विश्व के कोने-कोने में भटकता हुआ किसी से कुछ कहने-सुनने के लिए आतुर हो जाता है, उस समय गंगा के उस पार निर्जन, मरुभूमि में खड़ा एकाकी वह बूढ़ा बट-वृक्ष मुझे अपनी सूखी टहनियों को हिलाकर इंगित करता हुआ जान पड़ता है--और मेरा मन वायुवेग से चलकर उसके समीप पहुँच, उसके रूखे-सूखे तने के चारों ओर बाहें डाल उससे कुछ कहने-सुनने के लिए लिपट जाता है। उस समय वह वृक्ष मानो क्षणभर निश्चल होकर—मेरे हृदय के मधुर भार को हल्का करने के लिए–अपनी कहानी सुनाने लगता है—और मुझे स्पष्ट सुनाई पड़ने लगती है उसकी नीरव वाणी।

वह बूढ़ा बट-वृक्ष क्षणभर निश्चल होकर अपनी दो-चार सूखी-पीली पत्तियाँ गिरा देता है—टप! टप! टप! और फिर मेरे कानों में साफ सुनाई पड़ने लगती है उसकी धीमी पर स्पष्ट वाणी। कहता है वह बट-वृक्ष—"कवि! मेरी एक छोटी सी कहानी है; बहुत ही छोटी। क्या तुम उसे सुनना चाहोगे? वर्षों से खड़ा मैं केवल प्रतीक्षा कर रहा हूँ---किसी ऐसे की जो सहृदय होकर मेरी आप-बीती सुन सके। कवि! स्मरण नहीं आता, कब और कहाँ से मैं आया, परन्तु जिस समय चैतन्य होकर प्रथम बार मेरी आँखें खुलीं, मैंने अपने को उजड़ी हुई एक पुरानी वाटिका के एक टूटे-फूटे कूप के विध्वस्त जगत की दरार से चिपके हुए पाया। कैसा सुहावना था वह दिन! आकाश में नीले मेघ के चादर में ढँका हुआ सूर्य्य कैसा आँख-मिचौनी खेलता-सा जान पड़ता था। सारी वाटिका की विपत्ति दशा उस वर्षा के उपरान्त और भी निखरी जान पड़ती थी। दिन के संध्य वायु के झकोरे और बूँदों की झड़ी के आघात से उस उपवन की दीवारें धीरे-धीरे फिसल-फिसलकर नीचे खिसकती रहती थीं—रात को दादुर-कुल का कठोर कलरव सुनाई पड़ता था—संध्या समय कौशिकगणों का चीत्कार! परन्तु उस भीषण वातावरण में भी मैं आनन्द-विभोर हुआ करता था। उस समय सच पूछो तो दुख की अनुभूति मुझमें नहीं आ पाई थी--सारा विश्व, उसके सारे पदार्थ मेरे लिए कुतूहल के विषय थे--सुख के आगार थे। सच है—प्रारम्भ का प्रत्येक अनुभव सुखकारी होता है। इस प्रकार आसपास के वातावरण का सुख लूटता हुआ मैं बढ़ने लगा। देखते-देखते वर्षा का अन्त हुआ, शरद् ऋतु आ पहुँची और फिर ग्रीष्म का आरम्भ हुआ। अब मुझे अपनी अवस्था का ज्ञान होने लगा। मेरे आसपास की सारी वनस्पति धीरे-धीरे सूख रही थी। सारी वाटिका उजाड़ सुनसान मरुभूमि-सी हो रही थी। दिन भर मार्तण्ड देव सिर पर अपने प्रखर तेज से चमकते थे, ग्रीष्म की तप्त वायु 'हूँ-हूँ' करती हुई पिशाचिनी-सी चारों ओर दौड़ा करती थी—और मैं यह सब देखता हुआ अपने दिन गिना करता था—मेरी नसें सूख रही थीं। दिन भर की लू और आतप की मार से मरा हुआ मैं कहीं रात में कुछ विश्राम कर पाता था। परन्तु ओस के कण भी मुझे प्यास बुझाने को न मिलते थे। प्यास का मारा मैं ईश्वर से यही मनाता रहता था कि वह मेरे प्राण लेकर मुझे मुक्ति प्रदान करे।

"कवि उस दिन की बात अभी याद है। उषा की अरुणिमा प्राची दिशा में फैल रही थी। पक्षिगण अपने बसेरों से उठकर उसके स्वागत में कण्ठ खोल रहे थे। मैं इस समय प्रातःकाल की मन्द वायु में हिलोरें लेता

हुआ मुग्ध हो रहा था। परन्तु मेरे मन में कहीं से दुख का कीट पीड़ा दे रहा था। रह-रहकर मुझे अपनी अनाथ असहाय दशा का स्मरण हो आता था। कौन था मेरा संरक्षक, जो मुझे इस कोटर में ग्रीष्म के कठोर आघात से बचाता। अपने भविष्य को अन्धकारमय देख मैं दुखी हो रहा था, इतने में मुझे ऐसा लगा मानो किसी के कोमल प्रेम-भरे करों ने मुझे स्पर्श किया है। अपने कोमल लाल कोपलों को खोलकर मैंने देखा—देखा उस कृश-काय, भस्मभूतधारी तपस्वी को, सन-सी सफेद दाढ़ी और लटों को। लम्बी-लम्बी जटाओं से आच्छादित, सफेद दाढ़ी के बालों से ढकी उसकी झुर्रियों के बीच उसकी ज्योतिपूर्ण आँखों में कितना प्रेम था—कितना वात्सल्य भरा था! आज तक मुझे कभी ऐसी आँखें नहीं देखने को मिली थीं। महात्मा ने कितनी सावधानी से मुझे उस कूप की जगत की दरार से अलग किया। तनिक भी कहीं से मुझे कोई आघात न पहुँचा। हाँ, एक बार अपनी जन्मभूमि से पृथक् होते समय मुझे कष्ट का अनुभव अवश्य हुआ। पर इतना कष्ट प्रकृति-सिद्ध था।

"महात्मा के कमण्डल के भीतर बैठकर मैं उनके साथ चल पड़ा। मुझे इसका पता न था कि मेरी यात्रा कहाँ समाप्त होगी। पर मैं प्रसन्न था। जीवन के प्रत्येक अनुभव उस समय मुझे सुख ही प्रदान करते थे। मेरा उद्देश्य स्थान क्या था—मेरी यात्रा किस ओर की थी इसके प्रति कुतूहल होते भी मैं उदासीन था। मुझे जाने कहाँ से कैसे इसका विश्वास हो रहा था कि अब मैं निराश्रय नहीं हूँ—संरक्षक-रहित नहीं हूँ। मेरा अभिभावक अपनी बैसाखी टेकता हुआ आगे बढ़ रहा था, उसकी प्रेम भरी आँखें मेरी ओर बराबर लगी रहीं। प्रखर धूप से मुझे बचाने के लिए उस महात्मा ने मेरे ऊपर अपनी भीगी रामनामी डाल दी थी। फिर मैं उसके भीतर ठंढक पाकर ऊँघने लग गया। मेरी आँखें खुलीं तो मैंने अपने को उस स्थान में पाया जहाँ आज तुम मुझे देख रहे हो, कवि!

"कवि! आवेष्टन से मुक्त होकर उस समय मैंने अपने चारों ओर देखा। देखता हूँ तो ऊपर नीले आकाश का विस्तृत प्रदेश है। दिशाओं में क्षितिज तक फैली हुई सपाट मरुभूमि है, और मेरे समीप नीचे उतरकर कल-कल निनादिनी जाह्नवी की पावन धारा, मेरे निकट थोड़ी दूर पर मेरे संरक्षक की फूस की छोटी कुटिया, जिसमें धूनी को घेरकर उनके दो-एक भक्त बैठे थे। देखते-देखते गंगा की गीली मिट्टी से मेरा आलवाल निर्मित हुआ।

अनेक अंजलियों और छोटे-छोटे पात्रों से मुझे स्नान कराया गया। मेरे समीप ही दो-चार अण्डाकार चिकने पत्थर रख दिए गए। कितनों ने उनके ऊपर फूल-अक्षत चढ़ाए। उनकी इस श्रद्धा और भक्ति का कारण मैं नहीं समझ सका; पर मैं अपने को प्रसन्न और भाग्यशाली अवश्य समझ बैठा। इस प्रकार आनन्द से मेरे दिन बीतने लगे और मैं दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ने लगा।

"इन कतिपय वर्षों में मैंने क्या-क्या देखा। उस विस्तृत गंगा के कछार में खड़े-खड़े मैंने कितने सुन्दर वसन्तों के प्रभातों के स्वागत किए; ग्रीष्म की हू-हू करती हुई पगली तप्त लू के साथ अट्टहास किया; वर्षा की झड़ी के ताल के साथ झूमा; शरद् की ठंढी वायु के झोकों की पर्वा न कर निर्द्वन्द्व खड़ा रहा। प्रकृति के प्रत्येक पट-परिवर्तन का आनन्द मैंने उल्लासपूर्ण हृदय से लिया। सभी मुझे विलास की सामग्री-सी जान पड़ी। अब मेरी शाखाएँ घनी हो चली थीं। मेरे शरीर में कान्ति थी, स्फूर्ति थी। जब कभी मैं अपनी ऊँची चोटी उठाकर आस-पास का सिंहावलोकन करता था, उस समय मेरी दृष्टि बहुत दूर क्षितिज के उस पार के अज्ञात देश तक पहुँचने के लिए उत्सुक हो उठती थी।

"कवि! पता नहीं कैसे क्या हुआ। एक दिन प्रातःकाल मैंने देखा मेरे संरक्षक महात्मा की कुटी सूनी पड़ी है। कई दिन वह इसी तरह पड़ी रही—फिर मुझे कोई मनुष्य देखने को नहीं मिला। धीरे-धीरे वह कुटी भूमि से लग गई—कुछ दिनों पश्चात् उसका नाम-निशान भी मिट गया। अब मैं अकेला अपनी जगह पर खड़ा था। गंगा की धारा बहते-बहते मेरे बहुत निकट आ पहुँची थी। मैं उसके तट पर खड़ा था। मेरी जड़ें मोटे सर्प की भाँति तट से नीचे जल की ओर लटक रही थीं। रात-दिन मैं पतित-पावनी गंगा की अनंत रागिनी सुनता रहता था और अपनी निरीह दशा पर विचार करता रहता था। कौन था मेरा साथी! किससे मैं अपने हृदय की दो बातें कर सकता था! मेरी मानसिक कष्टकर अवस्था का अनुमान कौन कर सकता था!

"एक दिन मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों मेरे शरीर में

मधुर कंपन हो रहा है, जैसे कोई अपने कोमल करों से मुझे गुदगुदा रहा हो। कौन है ऐसा ? मैंने ध्यान से देखा। देखता हूँ तो नन्ही-नन्ही दो प्यारी-प्यारी चिड़ियाँ मेरी शाखाओं पर कूद-कूदकर जाने क्या ढूँढ़ रही हैं। कवि ! उस समय मैं एकदम निश्चल हो गया--एकदम शान्त। मुझे भय था, कहीं ये नवागंतुक चौंककर अपना मार्ग न पकड़ें। कितनी प्रसन्नता हो रही थी मुझे इस विचार पर कि मैं अकेले से दुकेला हो रहा हूँ। मेरे भाग्य से उन सुन्दर अतिथियों ने मेरे यहाँ ठहरना निश्चय कर लिया। दम्पति ने बड़ी सावधानी से मेरे दो कोमल पत्तों को एक साथ जोड़कर उसमें अपना आवास बनाया। कैसा प्यारा था उनका नीड़, कितना सुखदायी--कितनी आशाओं से पूर्ण। उन दो पत्तों के भरोसे उनका सारा संसार टँगा था। अपने कोमल किसलयों से बने उनकी नीड़ की रक्षा करता हुआ मैं अपने को उत्तरदायित्वपूर्ण अनुभव करने लगा।

"समय-समय पर मैं उनके नीड़ के भीतर झाँक लेता था। एक दिन देखता हूँ तो उसके भीतर दो छोटे-छोटे--श्वेत अण्डे पड़े थे जो गजमुक्ता से कम ज्योतिपूर्ण न थे। कितनी सावधानी से मुझे उस दिन से हिलना-डुलना करना पड़ा, कितनी जिम्मेदारी मुझ पर आ पड़ी थी। जिस समय दोनों पक्षी चहकते, कुलेल करते, आहार की खोज में निकल जाते थे, उस समय उनकी सारी आशाओं की थाती मेरे सुपुर्द रहती। लौटकर अपने अण्डों को सुरक्षित पाकर जिस समय दोनों अपनी मधुर वाणी में गाने लगते। उस समय उनकी प्रसन्नता देख मैं कंटकित हो जाता था। एक दिन प्रातःकाल उनकी मधुर रागिनी में मुझे कुछ नवीनता जान पड़ी। उनकी ऐसी प्रसन्नता मुझे पहले पहल देखने को मिल रही थी। मैंने देखा, उनके नीड़ के भीतर। देखता हूँ तो उसमें दो छोटे-छोटे मुख चोंच खोले पड़े थे। उनकी चीं-चीं सुन मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। मेरा कुटुम्ब बढ़ रहा था। अब हम पाँच प्राणी हो गए थे। उन शिशुओं की कितनी लाड़-प्यार मैं करने लगा। माता-पिता की अनुपस्थिति में मैं अपनी कोमल टहनियों को हिला-हिलाकर उन्हें पालने झुलाता था--कोमल पत्तियों से थपथपाकर उन्हें लोरियाँ सुनता हुआ सुलाया करता था। वे बड़े हो चले। उनके पर निकल रहे थे। एक दिन दोनों माँ के पीछे लगे अपने घोंसले से निकलकर मेरी डालों पर रेंगने लगे। कितनी गुदगुदी हो रही थी उस समय मेरे हृदय में। मेरी प्रसन्नता का अनुमान कौन कर सकता है, कवि !

"सारे ग्रीष्म भर दोनों माता के साथ चुगते फिरे। बीच-बीच में कभी दम्पति, दोनों शिशुओं को मेरे शरण छोड़ कहीं चुँगने चला जाता। फिर लौटकर उन्हें सही सलामत पाकर प्रसन्न हो मेरी डालों पर फुदकता हुआ गाता फिरता। वर्षा के आरम्भ होते ही मुझे ऐसा जान पड़ा मानो मुझ पर भारी विपत्ति आने वाली है। नदी की धारा मेरे बगल से गरजती हुई बहने लगी थी। कुछ ही दिन बाद मेरे आस-पास जल-ही-जल दिखाई पड़ने लगा। धीरे-धीरे मेरा आधा शरीर जलमग्न हो गया। मेरे अतिथि--वे चारों पाहुन अभी तक मेरे साथ थे। मेरी डालों में छिपे वे बैठे रहते। जल बढ़ता ही जा रहा था। मेरे चारों ओर बहे हुए गावों के फूस, छप्पर, बहते हुए निकल जाते थे। पानी बढ़ता ही जा रहा था। अब मेरी गर्दन तक जल आ पहुँचा था। मैं अपने से अधिक अपने अपनी शरण में आए उन पखेरुओं के लिए चिंतित हो रहा था। अन्त में एक दिन वह दुर्दिन भी आ पहुँचा, जब मुझे ऐसा जान पड़ने लगा मानो मैं अब डूबा--अब डूबा। अपनी असहाय अवस्था देख मैंने आँखों में आँसू भरकर उन प्यारे पक्षियों को सम्बोधन कर कहा, "अब मेरी आशा छोड़ो-अपनी रक्षा के लिए निकल जाओ--विश्व में जहाँ भी स्थान मिले--रहना। मुझे इसी में प्रसन्नता होगी कि जहाँ भी रहो प्रसन्न रहो।" मुझे जल में डूबते हुए देख मेरे अतिथि एक बार आकाश में उड़े--फिर मेरी ओर निराशा भरी निगाह से देखकर अपने प्राणों की रक्षा के निमित्त उड़ चले। मैं उनकी ओर आर्द्र दृष्टि से तब तक देखता रहा जब वे क्षितिज के गर्भ में अन्तर्धान नहीं हो गए। हा ! मेरी बेबसी का अनुमान कौन कर सकता है, कवि !

"कवि, मैं मरा नहीं--यदि ऐसा होता तो मैं कितना भाग्यशाली होता। गंगा की बाढ़ दो ही चार दिन में दब गई और मैं फिर साँस लेने लगा। परन्तु फिर न मेरे वे दिन लौटे और न वह भाग्य ! नदी के कगार पर खड़ा--अकेला--इस निर्जन प्रदेश में मैं अपने भाग्य पर रोता रहता हूँ। मेरी जड़ें पानी से धुलकर धमनियों सी उभड़

आई हैं—मेरी कमर झुककर मुझे नित्य गंगा के निर्मल जल में आत्मनिरीक्षण करने का अवसर प्रदान कर रही हैं। सोचता हूँ—भागीरथी की पवित्र धारा में जलमग्न हो अपने दुख का अन्त कर दूँ—पर नहीं; आत्महत्या का साहस नहीं होता। जीवन के प्रति उदासीन होकर भी पता नहीं ये पामर प्राण किस आशा से उससे मुक्त होने का साहस नहीं करते!"

और यह कहकर वह बट-वृक्ष जैसे क्षण भर निश्चल हो जाता है। अपनी बूढ़ी शाखाओं से पीले, सूखे पत्ते वह गिरा देता है टप! टप! टप! अनायास इसी के साथ मेरी आँखों से भी आँसुओं की बूंदें टपक पड़ती हैं टप! टप! टप! क्षण भर मैं निर्विचार हो जाता हूँ—फिर सोचता हूँ—इस बट-वृक्ष के और मेरे जीवन में—क्या कोई साम्य है। है—नहीं—है!—शायद—कदाचित्!

प्राचीन भारतीय संस्कृति

श्री चंद्रिकाप्रसाद जिज्ञासु

'संस्कृति' शब्द का अर्थ और परिभाषा

'संस्कृति' एक ऐसा शब्द है जिसकी कोई सर्ववादी या सर्वसम्मत परिभाषा नहीं मिलती। अपने-अपने मतानुसार लोग उसका विभिन्न अर्थों में प्रयोग करते हैं। कोषकारों ने 'संस्कृति' शब्द का अर्थ शुद्धि, सफ़ाई, संस्कार, सुधार, सजावट, सभ्यता, शाइस्तगी, तमद्दुन आदि किया है। विशेषज्ञों में कोई 'संस्कृति' का अर्थ जीवन के विकास का अनुशीलन करते हैं, कोई जीवन के प्रति दृष्टिकोण, कोई पूर्वजन्म की बातों का आत्मा के साथ लगा हुआ असर, कोई शिक्षा और उपदेशों का मन पर प्रभाव और कोई भाव-भाषा-भेस का समवाय। एक विद्वान् ने बताया कि किसी देश या जाति विशेष के लोगों के रहन-सहन, चलन व्यवहार, खान-पान, वेश-भूषा, आदि जीवन-व्यवहार का नाम 'संस्कृति' है, जैसे कि योरपीय संस्कृति, अमरीकी संस्कृति, रूसी संस्कृति, चीनी संस्कृति, जापानी संस्कृति भारतीय संस्कृति, यूनानी संस्कृति, मिस्रानी संस्कृति, रोमी संस्कृति, बर्मी संस्कृति, काश्मीरी संस्कृति अथवा नागरिक संस्कृति और ग्रामीण संस्कृति, इत्यादि। किन्तु साधारणतः हमारे देश में लोगों की यह धारणा है कि संस्कृति का आधार धर्म है, जैसे वैदिक संस्कृति, पौराणिक संस्कृति, जैन संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, मुसलिम संस्कृति, सिख संस्कृति, ईसाई संस्कृति और पारसी संस्कृति, इत्यादि।

व्याकरणी पंडित कहते हैं कि 'संस्कृति' शब्द संस्कार शब्द से उसी भाँति बन जाता है जैसे आकार से आकृति। 'संस्कार' का अर्थ है सुधार, परिष्कार, विशुद्धीकरण और वैदिक धर्म के अनुसार वे १६ कृत्य, जो जन्म से लेकर मरण पर्यंत आर्य- द्विजातियों के यहाँ किए जाते हैं, जैसे कि गर्भाधान, पुंसवन, अन्नप्राशन, कर्णवेध, चूड़ाकर्म, उपनयन, विवाह और अन्त्येष्टि, इत्यादि। किसी म्लेच्छ आदि विधर्मी संस्कारहीन अस्पृश्य को जब स्नानदि-द्वारा शुद्ध करके वैदिक धर्म की सविधि दीक्षा दी जाती है, तो उसे 'शुद्धि-संस्कार' कहा जाता है। इस विचार-धारण के अनुसार वैदिक धर्मानुसार समस्त-आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा, चलन-व्यवहार, और परलोक-संबंधी विश्वास को वैदिक संस्कृति कहा जा सकता है। इसी प्रकार मुसलिम व ईसाई धर्म के अनुसार उन धर्मों के अनुयायियों के समस्त आचार-विचार, रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा, चलन-व्यवहार और परलोक-संबंधी विश्वास को मुसलिम व ईसाई संस्कृति कहा जा सकता है।

संस्कृति के दो रूप—दैशिक और धार्मिक

इस व्याख्या से हम इस परिणाम पर पहुँच सकते हैं कि 'संस्कृति' के दो रूप हैं: एक दैशिक संस्कृति और दूसरी धार्मिक संस्कृति।

दैशिक संस्कृतियाँ प्रायः देश की प्रकृति और सदाचारिक परंपरा के अनुसार बना व विकास किया करती है और उनमें प्रकृतिगत भिन्नता होती है। उदाहरणः साइबेरिया और तिब्बत जैसे शीतप्रधान बर्फीले देशों के मानव-समाज की संस्कृति अफ्रीका-जैसे विषुवत रेखा के

निकटवर्ती उष्णप्रधान देशों की संस्कृति से सर्वथा भिन्न है, अरब-जैसे जलविरल और मरुप्रधान देश की मानवीय संस्कृति से गंगा के किनारे बसे जलप्लावित भारतीय देशों की संस्कृति भिन्न है, सागरतटीय देशों से पार्वत्य प्रदेशों की संस्कृति में भी अंतर है एवं राजपूताना और बंगाल की दैनिक संस्कृति में भी समता नहीं है। किन्तु एक ही देश और एक ही स्थान के मानव समाज की समान स्वाभाविक संस्कृति में व्याघात धार्मिक विचारों के कारण पड़ जाया करता है। भारत में हम देखते हैं, यहाँ की दैशिक और स्वाभाविक संस्कृति पर धार्मिक संस्कृतियों ने राजसत्ता बल से विजय प्राप्त कर ली है। आज भारतीय मानव-समाज में संघर्ष दैशिक संस्कृति में नहीं, अपितु धार्मिक संस्कृतियों के कारण है। यह संकीर्ण धार्मिकता या साम्प्रदायिकता यहाँ की भाषाओं और लिपियों के भीतर भी अड्डा जमाएं बैठी है। दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि लिपि और भाषा के प्रश्न को भी जो कि विशुद्ध वैज्ञानिक और औपादेयिक था, क्षुद्र वैयक्तिक स्वार्थवश अथवा अदूरदर्शिता के कारण 'सांस्कृतिक' बना दिया गया।

संस्कृति की आड़ में साम्प्रदाकिता-प्रचार का प्रयत्न

अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति पाने के बाद हमारा देश अब जब कि स्वनिर्मित विधान के अनुसार सर्वतंत्र स्वतंत्र अपने पैरों पर खड़ा हो रहा है, तो समस्त राष्ट्र की एक संस्कृति, एक राष्ट्र-लिपि तथा एक राष्ट्र-भाषा का प्रश्न उठना भी स्वाभाविक था, और संस्कृति, लिपि तथा भाषा के प्रश्न पर वैज्ञानिक व ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाना वांछनीय था, किन्तु खेद है कि अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर भी लोग संकीर्ण धार्मिक साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से निर्णय करना चाहते हैं, और राष्ट्रधर्मानुसार दैनिक संस्कृति को ही राष्ट्र की संस्कृति बनाने के स्थान में लोग राष्ट्र-धर्म के विपरीत अपनी साम्प्रदायिक संस्कृति को देश पर लादने के लिए प्रयत्नशील हैं। साम्प्रदायिक पक्षपात में लोग इतने अज्ञानांध हो रहे हैं कि अपने सम्प्रदाय को तो विश्वजनीन माने बैठे हैं और दूसरे सम्प्रदायों को संकीर्ण, भ्रांत, अवैज्ञानिक और एक देशीय कहने में नहीं हिचकते। केवल कहते ही नहीं, एतदर्थ खंडन-मंडन, शास्त्रार्थ, डंडेबाजी, दंगा-फसाद, लूट-फूँक, बलात्कार, अपहरण, हत्या और विनाश इत्यादि भीषण अनर्थ करने को तैयार हैं। अपने आपको कांग्रेसी लिखनेवाले दिल्ली के एक हिन्दी दैनिक ने अपने अग्रलेख में विरोधियों को चैलेंज देते हुए लिखा है:

"भारत की एक संस्कृति है प्राचीन वैदिक संस्कृति, और अब भारत में वहीं लोग रह सकेंगे जो उस संस्कृति से प्यार करते हैं, इसे मानते हैं। हिन्दू हों अथवा मुसलमान, सिक्ख हों या ईसाई, यदि वे अपने आपको भारतीय कहते हैं, तो उन्हें भारत की ही संस्कृति (वैदिक संस्कृति) को अपनाना होगा। किसी दूसरे की संस्कृति, वेश-भूषा अथवा भाषा अब यहाँ सहन नहीं की जा सकती। यह सब बातें हमने (संपादक कहते हैं) कांग्रेसी होते हुए लिखीं, और आज भी इन्हें दोहराते हैं।"

साम्प्रदायिक राज्य स्थापन के लिए सैनिक संगठन

बात केवल विचार-जगत् तक परिसीमित नहीं है, धार्मिक वितंडावादियों ने स्वाधीन भारत में अपने-अपने सम्प्रदाय का राज्य बलपूर्वक स्थापित कर लेने के लिए अपने सैनिक संगठन बना लिए हैं और अवसर की ताक में घात लगाए बैठे हैं। सिखों का शाही जत्था व अकाली दल, मुसलमानों का खाकसार व मुसलिम नेशनल गार्ड और हिन्दुओं का राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ इसी प्रकार के सैनिक संगठन हैं। इस साम्प्रदायिकता के फलस्वरूप देश का विभाजन होकर दो राष्ट्रों की स्थापना हुई, भयानक साम्प्रदायिक विनाश हुआ, करोड़ों मानव प्राणी बेघर-द्वार हुए और महात्मा गांधी के समान महामानव राष्ट्रपिता की हत्या हो गई जो कि अहिंसावादी भारत के भाल पर अमिट ऐतिहासिक कलंक है!

देश के महान् नेताओं एवं देश की महान् राजनीतिक संस्था ने बार बार यह घोषित किया है और भारतीय विधान में भी यह बात मान ली गई है कि हिन्द का लोकतंत्र सर्वथा असाम्प्रदायिक होगा। उसमें धर्म, मत, मजहब, मिल्लत, वर्ण, वर्ग, जाति, नस्ल और वंश की कोई विशिष्टता न होगी, विशुद्ध मानवता ही उसका आधार होगा। फिर भी धार्मिक कट्टरता और सम्प्रदायवादी मित्रगण चुप नहीं हुए, वे इस असाम्प्रदायिक राज्य

को उलटकर यहाँ हिन्दू राज्य, मुसलिम राज्य या सिक्ख राज्य स्थापित करने के प्रयत्न में हैं। इसीलिए हमारी लोकप्रिय सरकार ने देश की शांति-रक्षा के लिए इन साम्प्रदायिक सैनिक संगठनों को गैर-कानूनी घोषित कर दिया है; किन्तु इधर जब से 'भारत की एक संस्कृति' की आवाज उठी है, तब से हिन्दूसभावादियों, आर्य-समाजियों, धर्म-संघियों, सनातन-धर्मियों तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेताओं में इसकी एक नई प्रतिक्रिया हुई है। अब यह कहा जाने लगा है कि ये संस्थाएँ अब सांस्कृतिक क्षेत्र में काम करेंगी। किन्तु इनकी संस्कृति क्या है और वह भारत की लोकतांत्रिक सरकार की नीति के कहाँ तक अनुकूल या प्रतिकूल है, यह एक रहस्य और एक गंभीर समस्या ही है, क्योंकि जनता के समक्ष इनका कोई समयानुकूल, सर्वानुमोदित एवं सर्वप्रिय सामाजिक विधान नहीं है। अनुमान यही होता है कि 'संस्कृति' से इनका तात्पर्य दैशिक संस्कृति नहीं अपितु धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्कृति है जिसके भीतर वह सारा खुराफात भरा है जिसके कारण भूतकाल में भारत विदेशियों का गुलाम हुआ और अब, अपार कष्टों के सहने के बाद, स्वतंत्र हो जाने पर अपनी स्वतंत्रता कायम न रख सकेगा। यह कैसी विडंबना है कि अब उस महा अनर्थ का [illegible] 'भारतीय संस्कृति' के नाम से होने जा रहा है। अतएव, यह अत्यन्त आवश्यक हो पड़ा है कि 'प्राचीन भारतीय संस्कृति' के सम्बन्ध में कुछ तथ्य और विचार-सामग्री बुद्धिमान् देशभक्तों एवं सर्वसाधारण की सेवा में उपस्थित की जाए।

भारत की प्राचीनता और उनकी महान् संस्कृति

विशेषज्ञों के मत से भारत की अपनी एक स्वतंत्र संस्कृति है, जिसका यहाँ अति प्राचीन काल में ही स्वभावतः उदय हुआ था और जो समय-समय पर उत्पन्न होने, उठने एवं बाहर से आनेवाले मतवादों के झोंकों और थपेड़ों से टक्कर लेती हुई अब तक वर्तमान है, और भविष्य में भी जीवित व विद्यमान रहेगी, क्योंकि उसका उपादान नैसर्गिक सत्य है। इतिहास और पुरातत्त्व की खोजों से यह सिद्ध हो गया है कि भारत भूतल का अति प्राचीन देश है, यहाँ मानव सभ्यता का सर्वप्रथम विकास हुआ था। वेदों के विषय में कहा जाता है कि पृथ्वीतल के पुस्तकालय की सब से प्राचीन पुस्तक हैं, किन्तु उन्हीं वेदों की ऋचाओं से यह सिद्ध है कि वैदिक आर्यों का आर्येतर लोगों से बहुत काल तक संघर्ष रहा है और ये आर्येतर लोग आर्यों से 'प्रतिस्पर्धी' करते थे। जो 'स्पर्द्ध- मान' है, जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते है (योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म),उसे, द्वेष के कारण, हम भले ही दस्यु, दास,शूद्र, वृषल, व्रात्य, अव्रती, अयज्वान्, क्रव्याद, दैत्य, दानव, असुर, राक्षस, निशाचर आदि कुछ भी कहते रहें किन्तु उनके अस्तित्व को तो हम स्वीकार करते हैं, और जब आर्येतर मनुष्य थे तो निःसंदेह उनके कुछ अपने रीति-रवाज, रहन-सहन, चलन-व्यवहार, आचार-विचार और वेश-भूषा भी अवश्य रहे होंगे। दूसरे पुरातत्त्व-विभाग द्वारा सिंधुघाटी की खोदाई में हरप्पा और मोहंजोदरो के ऐसे भग्नावशेष मिल गए हैं जिनके सम्बन्ध में एक गुरुकुलीन स्नातक श्री प्राणनाथ के अतिरिक्त शेष समस्त निष्पक्ष पुराविद् विचारकों ने स्वीकार किया है कि वह आर्यपूर्व लोगों की उच्चकोटि की सभ्यता के अवशेष हैं। तीसरे वैदिक आर्यधर्म के मुकाबले में खड़े हुए जैन और बौद्ध नाम के दो महान् धर्म हैं जिन्होंने वैदिक धर्म की अपेक्षा अपने उपदिष्ट धर्म के आदिम और सनातन सत्य होने का दावा किया है। अतएव इन तीन जबर्दस्त प्रमाणों से यह सिद्ध है कि वैदिक संस्कृति के प्रसार के पूर्व एक संस्कृति यहाँ मौजूद थी, जिसे 'प्राचीन भारतीय संस्कृति' कहा जाता है।

वर्तमानकाल में भारत में चार प्रधान संस्कृतियाँ

वर्तमान काल में जिन प्रधान संस्कृतियों को भारत-भूमि पर विद्यमान देखा जाता है, वे निम्नांकित चार हैं:-

१. प्राचीन भारतीय संस्कृति।
२. वैदिक आर्य संस्कृति।
३. मुसलिम संस्कृति।
४. ईसाई संस्कृति।

इस वर्गीकरण में जैन और बौद्ध संस्कृति तथा मध्ययुगीन संतमत--अर्थात् गोरख, कबीर, नानक, दादू, रैदास, राधास्वामी आदि पंथ--सब प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक माने गए हैं; सनातनधर्म, आर्यसमाज, वर्णाश्रम स्वराज्य संघ अथवा धर्मसंघ आदि सब वैदिक संस्कृति के अंतर्गत हैं, मुसलिम और ईसाई दोनों बाहर से आई संस्कृतियाँ हैं जो धर्म के आधार पर टिकी होने के

कारण अपना भिन्न अस्तित्व रखती हैं। यदि हमारे मुसलमान और ईसाई भाई अरब और योरुशलम की ओर तकना त्यागकर हिन्द को ही अपना प्यारा वतन समझकर भारत की प्राचीन दैशिक संस्कृति के साथ शुद्ध हृदय से अपना प्रेम-भाव बढ़ा लें, तो वे अपने धार्मिक विश्वासों के साथ आराम से इस देश में रह सकते हैं और देश की राष्ट्रीय उन्नति के प्रयत्न में जुटकर भारत को भूतल का सर्वश्रेष्ठ देश बना सकते हैं। ईसाइयों के धर्मग्रंथ पहले से ही हिंदी में मौजूद हैं, केवल मुसलमानों को ही हिंदी-दक्षता प्राप्त करके अपने धर्मग्रंथों के हिन्दी में सुन्दर अनुवाद कर लेने हैं। वे अपने पवित्र कुरान, हदीस और अंबिया की पुनीत कथाओं को हिन्दी में अध्ययन करके आत्मिक आनन्द लाभ कर सकते हैं। सब से कठिन समस्या वैदिक संस्कृति की है, जो अन्य सभी संस्कृतियों को कुचलकर, सब पर अपना आतंक जमाकर, धर्म के नाम से इस देश पर अपना निष्कंटक और एकच्छत्र शासनाधिकार चाहती है। अतएव, इस महान् समस्या को हल कर लेना निष्पक्ष न्यायनिष्ठ मनीषियों का अत्यावश्यक कर्तव्य है। क्योंकि इसी के हल पर भारत का भावी निर्माण, अभ्युदय, सुख और शांति निर्भर है।

जैन और बौद्ध धर्मों की वैदिक धर्म से भिन्नता

जैन और बौद्ध संस्कृतियों के सम्बन्ध में वैदिक धर्मियों की यह स्थापना सत्य सिद्ध नहीं होती कि ये दोनों संस्कृतियाँ वेदों से निकली हैं, अपितु सिद्ध यह होता है कि ये दोनों धर्म ब्राह्मणप्रधान वैदिक धर्म के वर्णभेद, जातिभेद, अधिकारभेद, ऊँच-नीचवाद एवं हिंसापूर्ण यज्ञादि कर्मकांड के जाल और अनाचार के विरुद्ध खड़े हुए। इन दोनों के धर्मग्रंथ अलग हैं, सिद्धांत अलग हैं और भाषा भी इनके धर्मग्रंथों की संस्कृत से भिन्न पाली और प्राकृत है जो कि हिन्दी की जननी मानी गई है। सैद्धांतिक दृष्टि से वैदिक धर्म की रीढ़ सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, इंद्र आदि वैदिक देवता या ईश्वर, ईश्वरीय वाणी वेद, यज्ञादि कर्मकांड और वर्ण-व्यवस्था आदि हैं। इससे नितांत भिन्न जैन-धर्म न ईश्वर को मानता है, न ईश्वरीय ज्ञान वेद को, केवल आत्मा को मानता है, सो भी एकात्मवादी नहीं अपितु नानात्ववादी है। बौद्धधर्म ईश्वर, ईश्वरीय ज्ञान वेद तथा शाश्वत आत्मा तीनों को नहीं मानता, अपितु शून्यवादी व क्षणिकवादी है। जैन और बौद्ध दोनों धर्मों का मूलाधार दया, करुणा, मैत्री, समता, सद्ज्ञान और सदाचार है और जन्मगत अधिकार भेद-हीन होने के कारण मनुष्यमात्र के लिए इनका द्वार खुला है। ये दोनों धर्म संसार को दुखमय मानकर मोक्ष और निर्वाण के खोजी और तदर्थ यत्नशील हैं। जैनधर्म केवल तीन सम्यक्तियों—सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन सम्यक्चारित्र्य—को मोक्ष का मार्ग मानता है और बौद्धधर्म आठ सम्यक्तियों—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मात, सम्यक् अतीत, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि—को निर्वाण का पथ बताता है। इन दोनों धर्मों में जहाँ तृष्णा के त्याग की प्रेरणा है, वहाँ वैदिक धर्म में यज्ञादि कर्मकांड द्वारा सांसारिक भोगैश्वर्य की प्राप्ति और मरने पर स्वर्गलोक और ब्रह्मलोक के अपरिमित सुखभोगों व आनन्द की प्राप्ति की अप्रतिहत अभिलाषा है। अतएव, इस मौलिक भिन्नता एवं सैद्धान्तिक मतभेद के रहते हुए जैन- बौद्ध धर्मों को वैदिक धर्म की शाखा कहना-समझना नितांत असंगत और बुद्धि-विपरीत है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति

बुद्ध की वाणी में हम उन्हें उपदेशांत में नाना स्थलों पर वैदिक धर्म के उपेक्षापूर्वक यह कहते हुए पाते हैं, यह है सनातन से चला आया धर्म (एष धम्मो सनन्तनो), जिसका तात्पर्य यह होता है कि प्रचलित वैदिक धर्म 'सनातन धर्म' नहीं; बुद्ध जो कहते हैं वह है मानव का सदा से चला आया आदि सनातन प्राचीन भारतीय धर्म। अगणित प्रमाण इस बात के लिए मिलते हैं कि जैन और बौद्ध-धर्मों के प्रवर्तकों ने अपने-अपने धर्मों का प्रवर्तन वैदिक कर्मकांड के विरोध में किया और अपने उपदिष्ट धर्म को आदि सनातन मानव धर्म बताया। ये दोनों धर्म श्रावकधर्म और श्रमणधर्म कहलाते हैं, और विद्वद्वर्य आचार्य नरेंद्रदेव के मतानुसार रामानंद, कबीर, नानक, दादू, रैदास आदि संतों द्वारा उपदिष्ट ज्ञान का मूलाधार श्रमणधर्म ही है। यही कारण है कि इन संतों ने भी अपनी वाणी और शब्द-साखियों में, नाना स्थानों में, वेद और वैदिक धर्म की तीव्र उपेक्षा व अवहेलना की, वैदिक

धर्म के अधिकार-भेद एवं वर्ण-विधान के विरुद्ध मानव-मात्र के लिए निर्विकल्प भाव से परमार्थ-साधन के लिए उपासना और साधना का द्वार खोल दिया तथा अपने आत्मबल, तपोबल व चरित्रबल से वैदिक धर्मी ब्राह्मण गुरुओं एवं उनके जन्ममूलक वर्णविधान का डटकर मुकाबला किया और विशाल-संख्यक जनता ने अनन्य अनुयायी बनकर इस संघर्ष में उनका साथ दिया। निस्सन्देह संतधर्म यहाँ का राजधर्म नहीं बन सका, क्योंकि इसे स्वीकार करने में राजाओं के सामन्तशाही शोषण, प्रभुत्व और भोग-विलास को धक्का लगता था, अतएव राजा और उनके साथी सामन्त दरबारी राजपुरुष आदि भोगैश्वर्यसाधक श्रौतस्मार्त धर्म को ही दृढ़तापूर्वक पकड़े रहे; परन्तु वे लोग सन्तधर्म की प्रशंसा अवश्य करते रहे, क्योंकि इसके द्वारा जनता में जो सन्तोष का भाव बढ़ता था, वह शोषक राज-व्यवस्था के पक्ष में अत्यन्त लाभदायक था।

गवर्नर-जनरल श्री राजगोपालाचारी की सम्मति

यह केवल हमारा मत नहीं, अभी १५ नवम्बर की बात है जब भारत के गवर्नर-जनरल श्री राजगोपालाचारी महोदय ने भी गुरु नानक के जन्मदिवसोत्सव पर सन्देश देते हुए कहा था—"गुरु नानक का जन्म लगभग ५०० वर्ष पूर्व हुआ और उन्होंने जयदेव, रामानन्द, कबीर द्वारा भारतीय धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों की गवेषणा करने तथा उन्हें मानवीय जीवन में प्रतिष्ठित करने के कार्य को जारी किया। गुरु नानक ने यह महान् कार्य उस समय किया जब जनता वैदिक कर्मकांड के चक्कर में धर्म के सच्चे अर्थ को भूल चुकी थी।"

प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू की सम्मति

और देखिए, हमारे प्रधान मन्त्रीजी भी, जिनका हृदय महात्मा गांधी के मतानुसार स्फटिक मणि के समान उज्ज्वल है, अपनी गवेषणा एवं पांडित्यपूर्ण पुस्तक "दी डिसकवरी आफ इण्डिया" (The Discovery of India) में लिखते हैं:—

Sanatan dharma, meaning the ancient religion, could be applied to any of the ancient Indian faiths (including Buddhism and Jainism), but the expression has been more or less monopolized to-day by some orthodox sections among the Hindus who claim to follow the ancient faith.

Buddhism and Jainism were certainly not Hinduism or even vedic dharma. Yet they arose in Indian life, culture and philosophy. A Budhist or Jain in India is a hundred per-cent product of Indian thought and culture, yet neither is a Hindu by faith. It is therefore entirely misleading to refer to Indian culture as Hindu culture. (page 52)

अर्थ—"सनातनधर्म का अर्थ है प्राचीन धर्म, और इस सनातनधर्म शब्द का प्रयोग सभी प्राचीन हिन्दुस्तानी मतों के लिए (जिनमें बौद्ध और जैनधर्म भी सम्मलित हैं) हो सकता है; किन्तु इस शब्द पर आजकल हिन्दुओं के कुछ कट्टर दलों ने एकाधिकार कर रक्खा है जिनका दावा है कि वे ही इस प्राचीन मत के अनुयायी हैं।

बौद्धधर्म और जैनधर्म यह निश्चित है कि हिन्दूधर्म नहीं हैं और न वेदिक धर्म ही हैं। फिर भी उनकी उत्पत्ति हिन्दुस्तान में ही हुई और वह हिन्दुस्तानी जीवन, संस्कृति और दर्शन के अंग हैं। हिन्दुस्तान में बौद्ध और जैनी हिन्दुस्तानी विचारधारा और संस्कृति की सौ फीसदी उपज हैं, फिर भी इनमें से कोई भी, मत के विचार से, हिन्दू नहीं है। इसलिए हिन्दुस्तानी संस्कृति को 'हिन्दू संस्कृति' कहना एक सरासर गलतफहमी और भ्रम फैलानेवाली बात है।

इस स्पष्टोक्ति में पाठक देखेंगे कि पंडित नेहरू ने वर्तमान वर्णविधान-सम्पन्न वैदिक संस्कृति का नाम 'हिन्दू संस्कृति' दिया है और प्राचीन भारतीय संस्कृति को वे हिन्दुस्तानी संस्कृति (Indian culture) कहते हैं तथा जैन और बौद्ध-धर्मों को इसी हिन्दुस्तानी विचार-धारा और संस्कृति की सौ फीसदी उपज बताते हैं।

पुरातत्त्व की खोज में प्राप्त प्राचीन भारतीय सभ्यता

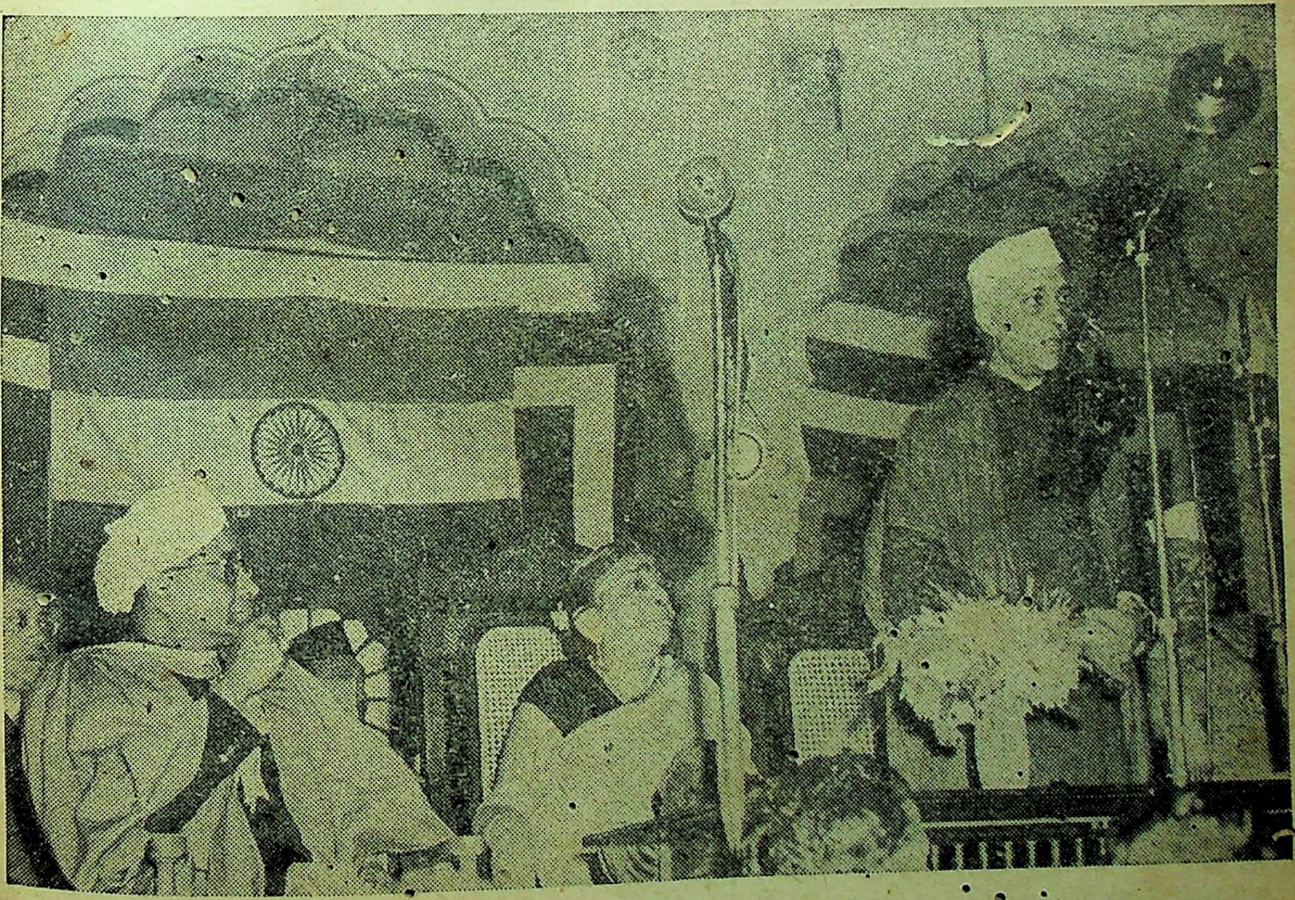
और देखिए, प्रधान मंत्री जी अपनी "पिता के पत्र पुत्री के नाम" पुस्तक में, भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में, पुरातत्त्व-विभाग द्वारा की गई हरप्पा और मोहंजोदरो की खोदाई का जिक्र करते हुए लिखते हैं:—

"मोहंजोदरो के भग्नावशेषों में, जैसा हम देखते हैं, वह एक ऐसे समृद्धिशाली महानगर के रूप में हमें

गणेश-पूजन

मध्यप्रान्त में 'भूमि - उन्नति - योजना' का आरंभ श्री जयरामदास दौलतराम गणेश-पूजन करके कर रहे हैं।





भारतीय विज्ञान-सम्मेलन

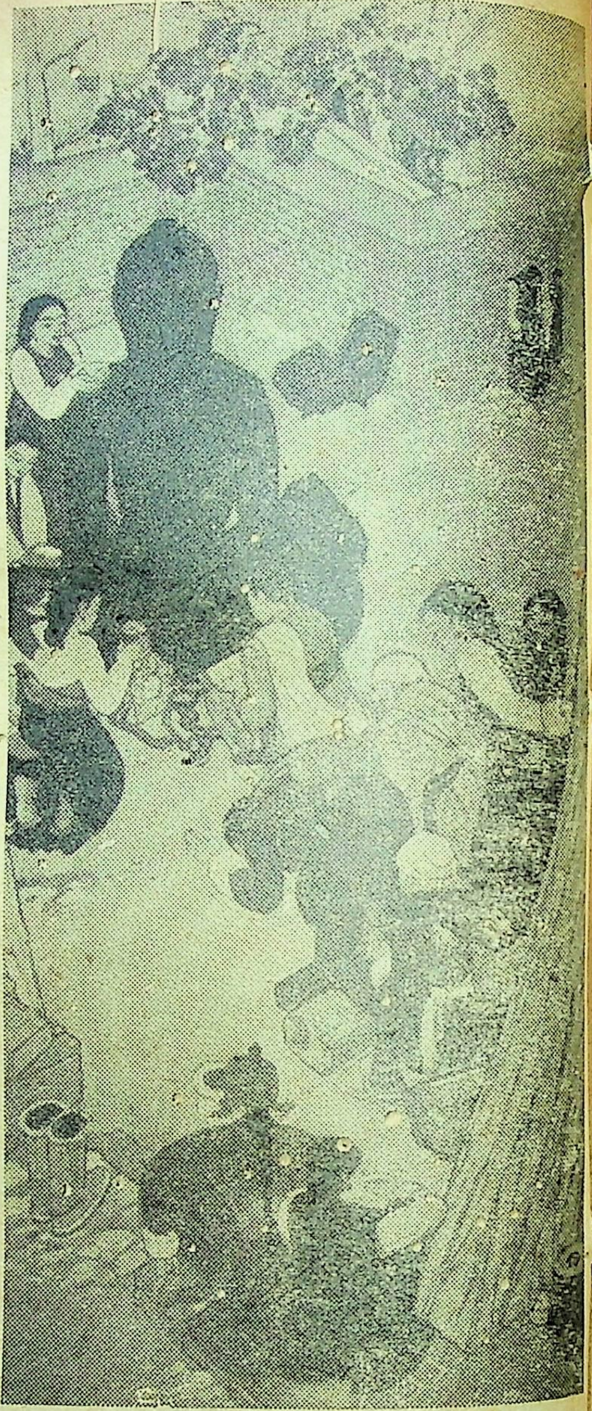
पिछले दिनों प्रयाग में हुए भारतीय विज्ञान-सम्मेलन में भाषण करते हुए पंडित नेहरू।

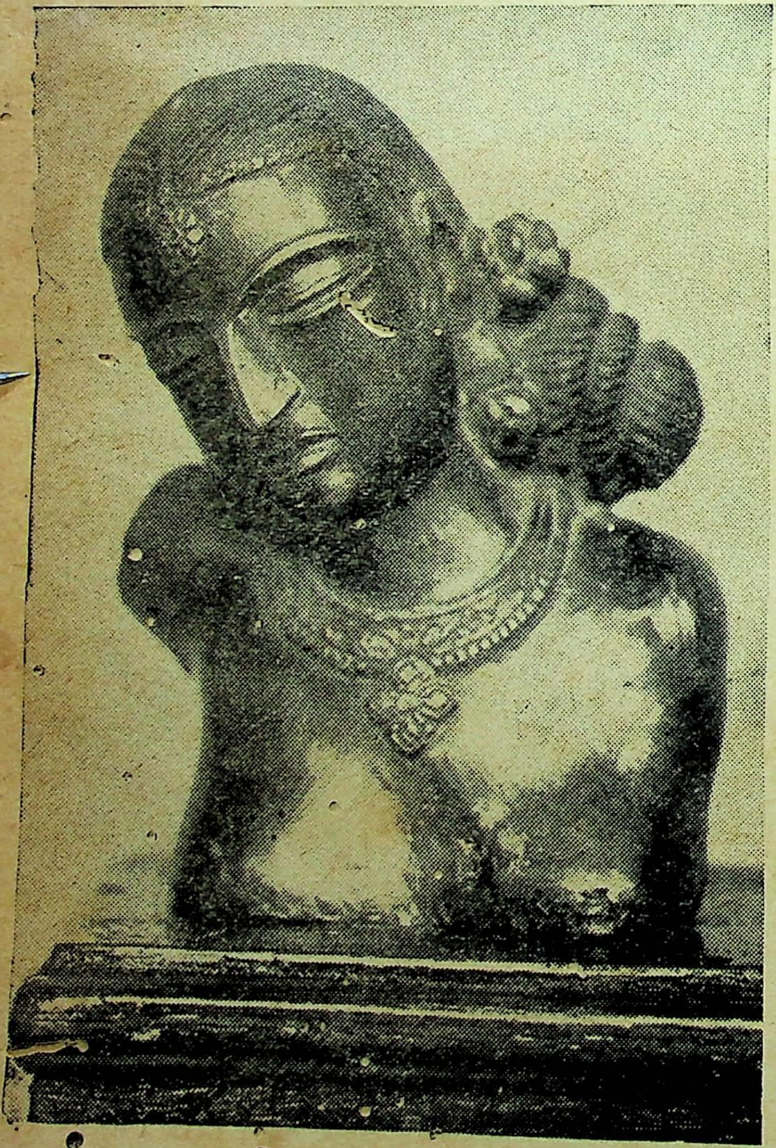
कला-दर्शन

[१]

नालंदा में महात्मा बुद्ध की काली मूर्ति

'सुन्दर कला परिषत्' के एन० एस० बेंद्रा के इस रेखाचित्र में नालंदा-स्थित महात्मा बुद्ध की मूर्ति का सुन्दर दृश्य अंकित है।





[२]

प्रसाधन

विभूति सेन द्वारा गढ़ी गई इस प्रस्तर-मूर्ति प्रसाधन कला का आकर्षक रूप दर्शनीय है।

दिखाई देता है जिसके निवासी उच्च कोटि के सुसंस्कृत और सुसभ्य पुरुष रहे होंगे। इसमें संदेह नहीं कि इस नगर के इतिहास में पाँच हजार वर्ष पहले के इस युग से भी पूर्व विकास का एक सुदीर्घ महायुग रहा होगा? यही बात इस पुस्तक से हमें मालूम होती है। सरजान मार्शल, जिनकी देख-रेख में मोहंजोदरों की खोदाई का काम हुआ, लिखते हैं:—

"एक बात जो मोहंजोदरो और हरप्पा में स्पष्टतया निर्विवाद रूप से हमें दिखाई देती है, यह है कि इन दोनों स्थानों में हमें जिस सभ्यता के दर्शन होते हैं, वह ऐसी सभ्यता नहीं है, जो अभी अपनी शैशवास्था में हो। वास्तव में जिस सभ्यता का हम यहाँ साक्षात्कार करते हैं, वह एक युग की प्राचीन सभ्यता है, जिसकी अमिट छाप भारत के प्रत्येक रजःकण में अंकित है। युग-युगांतरों तक लाखों-करोड़ों मनुष्यों के अनवरत श्रम और अभ्यास के बाद कहीं वह अपने इस रूप को पा सकी है। अतः आज से ईरान, ईराक और मिस्र के साथ-साथ हमें भारत की भी गणना सभ्यता की उन महत्त्वपूर्ण आदिम जन्म-भूमियों में करनी पड़ेगी, जहाँ सर्वप्रथम मानव सभ्यता का अंकुर प्रस्फुटित हुआ।

"इस प्रकार तुम देखागी (नेहरू जी अपनी पुत्री से कहते हैं) कि सिंधु घाटी में हम न केवल पाँच हजार किन्तु हजारों-लाखों वर्ष पूर्व के युगों और महाकल्पों के उस पार पहुँच जाते हैं जहाँ अंत में हमारी गति रुक जाती है और मनुष्य के आविर्भाव के आदिम युग के नीहार में हमें मार्ग नहीं मिलता। मोहंजोदरो की यह सभ्यता जिस समय फल-फूल रही थी, उस समय भारत में आर्यों ने कदम भी न रक्खा था"

(विश्व इतिहास की झलक, पृष्ठ २८७)

भारतीय संस्कृति और वैदिक संस्कृति में विरोध

भारतीय संस्कृति का इससे अधिक प्रामाणिक स्पष्टीकरण और क्या हो सकता है, इसका नाम चाहे 'हिन्दुस्तानी संस्कृति' रख लिया जाए अथवा इसे 'प्राचीन भारतीय संस्कृति' कहा जाए। वैदिक संस्कृति के विकास के पहले यह भारत में प्रौढ़रूप में विद्यमान थी। इसमें सामाजिक समता थी जैसी कि उपयुक्त खोदाई में मिले मकानों की एकसां बनावट से सिद्ध हो गया है। आज जिस वैदिक आर्य संस्कृति को जबर्दस्ती भारत पर लादने का अवांछनीय प्रयत्न किया जा रहा है, एक तो वह भारत की प्राचीन दैशिक संस्कृति नहीं है, दूसरे वह भेद-भाव पर आधारित विषमतापूर्ण है। उसमें आर्य-दस्यु का भेद, आर्य-अनार्य का भेद, वर्ण-वर्ण का भेद, जाति-वंश का भेद, ऊँच-नीच का भेद इत्यादि ऐसा असमानता का भाव है जो वर्गविहीन लोकतंत्रीय राष्ट्रीयता का घोर रूप से बाधक है। उसका सामाजिक विधान तो नाजी फासिस्टवाद का प्रतीक है जो एक वर्ण विशेष का दूसरे वर्णों पर एवं एक जाति या वंश विशेष का दूसरी जातियों पर श्रेष्ठत्व व प्रभुत्व स्थापन करता है तथा जिसमें भोगों के लिए छीना-झपटी और संघर्ष है। यही कारण है कि यह सदा मुट्ठी भर द्विजातियों का तो धर्म रहा, बहुसंख्यक भारतीय जनता ने कभी उसे स्वीकार नहीं किया। देश के दस करोड़ हरिजन इस वैदिक व्यवस्था और विधानों का ही परिणाम हैं; इनकी सृष्टि मुसलमानों, ईसाइयों अथवा अंग्रेजों-द्वारा नहीं हुई, न आर्यपूर्व प्राचीन भारत में ही इनके अस्तित्व के प्रमाण पाए जाते हैं।

प्राचीन भारतीय संस्कृति और बौद्ध

प्राचीन भारतीय संस्कृति प्राचीन भारत में सत्पुरुषों में स्वतः आविर्भूत हुई। उसकी न कोई इलहामी किताब है, न कोई अवतार या नबी विशेष उसका प्रवर्तक। वह एक मनोवैज्ञानिक सामाजिक सत्य है जिसकी अनुभूति समय-समय पर सत्पुरुषों को होती रही। बुद्ध ने इसी प्राचीन सत्य का "एष धम्मो सनन्तनो" कहकर जन्ममूलक वैदिक वर्णविधान एवं हिंसापूर्ण कर्मकांड के मुकाबले में बहुजन-हिताय-बहुजनसुखाय मानवमात्र को निर्विकल्प भाव से उपदेश किया। बुद्ध ने मानव समाज के कल्याणार्थ सर्वसाधारण को पंचशील की प्रतिज्ञा करने का आदेश किया था, जो आज भी हमारे राष्ट्रीय अभ्युदय के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। बुद्ध ने प्रत्येक नर-नारी को आदेश किया कि तुम प्रतिज्ञा करो और इस प्रतिज्ञा को प्रतिदिन शुद्धात्मा गुरुजनों के समक्ष दोहराते रहो, कि:—

(१) तुम हिंसा नहीं करोगे (अर्थात् 'नानवायुलेंट' रहोगे),

(२) तुम झूठ नहीं बोलोगे।

(३) तुम बिना दिए किसी की कोई वस्तु नहीं लिया करोगे ।

(४) तुम अवैध कामाचार नहीं करोगे, और

(५) तुम किसी भी प्रकार के नशे का सेवन नहीं करोगे ।

प्राचीन भारतीय संस्कृति और राष्ट्रपिता गांधी

हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार और नशों के त्याग की प्रतिज्ञा किए बिना समाज की शुद्धि नहीं हो सकती, और बिना सामाजिक विशुद्धि के राष्ट्र का उत्थान व विकास सम्भव नहीं है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी इस सत्य का अनुभव किया और स्वाधीनता के मूल्य में उन्होंने भी, बुद्ध की भाँति, जनता के समक्ष कुछ प्रतिज्ञाएँ रखीं। "मैं तुम्हें आजादी दिलाता हूँ," कहकर महामानव गाँधी ने राष्ट्र को आदेश किया कि तुम प्रतिज्ञा करो कि—

(१) तुम हिंसा नहीं करोगे ।

(२) तुम सत्य से नहीं डिगोगे ।

(३) तुम नशों का त्यागन करोगे ।

(४) तुम सदा शुद्ध खादी ही पहनोगे ।

(५) तुम अछूतपन का सामाजिक पाप मिटा दोगे, और

(६) तुम साम्प्रदायिकता त्याग व मानवता ग्रहण करके हिन्दू-मुसलिम का भेदभाव शेष नहीं रखोगे ।

यह बात सब को मालूम है कि राष्ट्रपिता की इन्हीं शर्तों पर देश को आजादी मिली और इन्हीं पर आरूढ़ रहने से आजादी कायम रह सकती है। चरित्र के उत्थान से राष्ट्रों का उत्थान और चरित्र के पतन से राष्ट्रों का पतन हुआ करता है; यह एक शाश्वत सत्य है ।

सबसे बड़ी माँग

श्री 'रावी'

किसी समय दो नदियों के बीच बसा हुआ एक शहर था ।

एक बार ऐसा हुआ कि दोनों नदियों में जोरों की बाढ़ आई और सारे शहर के डूबने की नौबत आगई ।

पहले तो लोगों से जहाँ तक बन पड़ा, उन्होंने बचने-बचाने का प्रयत्न किया, लेकिन जब उन जान-माल की प्यासी नदियों का पानी उनकी ऊँची कगारों तक चढ़ आया और उनकी छातियों का उभार उन कगारों के काबू से बाहर होने लगा तो लोगों के हाथ-पैर फूल गए और उन सबने बीच शहर के बड़े बाग में इकट्ठे होकर देवताओं से प्रार्थना की ।

देवता लोग वैसे तो बहुत रहमदिल होते हैं और प्रार्थना करनेवालों की माँगें पूरी करने में उन्हें प्रसन्नता भी होती है, लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि लोगों की प्रार्थनाएँ देवताओं के सोचे हुए इरादों और कामों के विरुद्ध पड़ जाती हैं और तब वे पत्थर-सा दिल करके उनकी प्रार्थनाओं को किसी-न-किसी बहाने टाल भी जाते हैं ।

लोगों ने देवताओं से प्रार्थना की, लेकिन देवताओं का मतलब इस बाढ़ से कुछ और ही था। इसलिए उन्होंने लोगों को जवाब दिया—

"इस विपत्ति से बचने का उपाय यह है कि आप सब लोग अपने घरों को लौट जाएँ और आप में से जितने जवान और नौजवान लोग हों वे सब जी खोलकर सच्चे दिल से अपनी पत्नियों से, और जिनकी अभी पत्नियाँ न हों वे अपनी प्रेयसियों से प्यार करें । बाकी का प्रबन्ध हम कर लेंगे ।"

उस मुसीबत और पास आई मौत के समय में प्रेयसियों और पत्नियों को प्यार करना बहुत कठिन काम था और शहर के बड़े-बूढ़ों और पंचों की दृष्टि में बहुत बुरा और स्वार्थपूर्ण भी था। असलियत तो यह थी कि जब से लोगों को अपनी जान खतरे में दीखने लगी थी तब से जवानों और नौजवानों ने अपनी पत्नियों और प्रेयसियों को प्यार करना छोड़ दिया था और शहर के जान-माल के बचाव की दौड़-धूप में लग गए थे ।

देवताओं की इस न पूरी होनेवाली, चालाकी की शर्त पर लोग बड़बड़ाते हुए सभा से उठ आए ।

लेकिन उस शहर में एक खूबसूरत नौजवान ऐसा

था जो अपनी प्रेयसी के प्रेम में बराबर शराबोर था और इस बाढ़ की मुसीबत से उसके प्रेम-व्यवहार में कोई कमी या अन्तर नहीं आया था। उसकी इस मस्ती और शहर की तरफ से लापरवाही पर लोगों ने उसकी बहुत लानत-मलामत भी की थी, मगर यह अपनी प्रेयसी का पुजारी टस-से-मस न हुआ था।

और जब इन दोनों प्रेमियों ने देखा कि अब शहर के डूबने में अधिक देर नहीं है तो उन्होंने निश्चय किया कि वे दोनों अपने सदा-मीठे प्रेम की कुछ बख्शीश अपने शहर के लोगों को भी देंगे और प्रेम का कुछ चमत्कार उन्हें दिखाएँगे।

वे दोनों रातों-रात शहर के उस कोने पर चुपचाप जा पहुँचे जहाँ दोनों नदियों के बीच का फासला सबसे अधिक था और जहाँ से शहर के किनारे-किनारे आगे बहकर दोनों नदियाँ संगम पर, यानी शहर के दूसरे छोर पर मिल जाती थीं।

उस नौजवान की प्रेयसी ने नदी के किनारे काठ के एक बड़े तख्ते पर बैठकर एक बड़ी मसाल अपने हाथों में ले ली और उस नौजवान ने रस्सियों से अपनी प्रेयसी को और उस मसाल को जकड़कर उस तख्ते से बाँध दिया और उसे नदी में तैराकर एक लम्बी रस्सी के सहारे नदी किनारे के एक पेड़ से उस तख्ते को अटका दिया।

नौजवान ने उस खूबसूरत लड़की को एक बार और प्यार किया और उस प्यार की मस्ती में डूबा हुआ शहर को लौट आया। उस समय उसका प्यार शायद सबसे ज्यादा उमड़ आया था।

बस्ती में आकर उसने लोगों को खबर कर दी कि आज सबेरे अँधेरा रहते ही एक बड़ा जहाज बस्तीवालों को यहाँ से निकाल ले जाने के लिए आरहा है।

शहर के सब लोग उस सुबह अँधेरा रहे ही, नदी के किनारे उस बड़े जहाज के इन्तिजार में इकट्ठा होगए।

उधर उस खूबसूरत लड़की ने कुछ रात और अँधेरा रहे, निश्चित समय पर पेड़ से तख्ते को अटकाए रखनेवाली रस्सी को काट दिया और उस बड़ी मसाल को जला लिया।

वह तख्ता तेजी से पानी में बह चला।

बीच शहर के नदी किनारे पर इकट्ठे हुए लोगों ने देखा; बीच धार में बहती हुई एक रोशनी जारही है। उस नौजवान ने आवाज लगाई— "वही है जहाज" और नदी में कूद पड़ा।

जान बचाने के लालच और बेकली में शहर के सभी लोग उसके पीछे नदी में कूद पड़े कि कुछ दूर तैरकर ही उस जहाज तक पहुँच जाएँ।

लेकिन लकड़ी का वह तख्ता, जिसे लोगों ने जहाज समझा था, पानी की लहरों में उलट-पुलटकर डूबता-उतराता आगे बह रहा था और उसकी मसाल बुझ चुकी थी और वह खूबसूरत लड़की भी न जाने कब की मर चुकी थी।

फिर भी, इस बेतहाशा तैराकी की दौड़ में मिलकर शहर के करीब पचास प्रतिशत लोग नदी के पार जा पहुँचे, क्योंकि वे सभी लोग आमतौर पर अच्छे तैराक थे।

शहर की आधी आबादी की जान का बचाव उन दो खूबसूरत नौजवानों के आपसी प्रेम की उस शहरवालों के लिए बख्शीश थी; और सचमुच यह एक काफी बड़ा चमत्कार भी था।

इसके बिना उन लोगों की कभी इस तरह नदी को पार करने की हिम्मत न पड़ती, और यह सब उस शहर में प्रेमियों के सिर्फ एक जोड़े की मौजूदगी की ही करामात थी।

इस कथा को मैं आज से कई बरस पहले एक कहानी के रूप में, जरा दूसरी तरह से विस्तार के साथ लिख चुका हूँ और वह मेरे कहानी-संग्रह में मौजूद है।

और इन दिनों मुझे मालूम हुआ है कि हर मुसीबत और हर समस्या का हल प्यार में ही है और वही लोगों की हर समय, हर मौके की सबसे बड़ी जरूरत है।

उस शहर के लोगों की तरह, मुमकिन है आप भी अभी इस बात को असम्भव और बेकार और बकवास समझें, लेकिन अगर आप ऐसा समझेंगे तो इसकी वजह यही होगी कि आप अभी प्यार करने में कुछ डरते-झिझकते हैं।

लेकिन जिन दिनों कोई मुसीबत और उलझन न हो उन दिनों प्यार और प्रेम करना एक बहुत ही मीठे अनुभव की चीज है, उसे करीब-करीब सभी लोग मान लेंगे।

अपने-अपने 'जन्म' के अनुसार किसी सुन्दर स्त्री या सुन्दर पुरुष को प्यार करना जिन्दगी का एक बड़ा ही मीठा, रस-भरा अनुभव है, इसे सभी समझदार लोग थोड़ा-बहुत स्वीकार करेंगे, चाहे वे पढ़े-लिखे हों चाहे अनपढ़ हों। जवान खूबसूरती का आकर्षण एक ऐसा ही कुछ न टाला जा सकने वाला 'थूल' होता है!

आप भी मन से मेरी इस बात का करीब-करीब समर्थन करेंगे ही!

और मैं समझता हूँ कि इस तरह का प्यार करना, अगर उसमें कोई खास उलझन की बात न पड़ती हो; बुद्धिमानी का भी काम है।

लेकिन दुनिया में ऐसे बेवकूफों की कमी नहीं है जो इस तरह का प्यार न करते हैं, न कर सकते हैं और न इसकी कदर जानते हैं।

सुन्दर-से-सुन्दर युवती या सुन्दर-से-सुन्दर युवक आप उनके सामने खड़े कर दीजिए, उनका मन उनकी तरफ नहीं जाएगा।

मोटी तौर पर पन्द्रह साल से नीचे के सभी आदमी और सभी औरतें इसी तरह के बेवकूफ होते हैं, और उनकी तादाद दुनिया की आबादी की एक चौथाई तो कही ही जा सकती है।

"लेकिन दुनिया की उस एक चौथाई आबादी को आप बेवकूफ नहीं कह सकते। वे सिर्फ अभी बच्चे हैं। जवानी की उम्र आने पर जरूर उनके दिलों में रूप और यौवन की ओर आकर्षित होने का रुझान पैदा होगा—यह तो एक कुदरती बात है।" मेरे एक मित्र की राय है।

"वे बेवकूफ नहीं, बहुत अच्छे और शुद्ध हृदय के हैं कि वासना के पाप और उसकी पीड़ाओं-परेशानियों से बचे हुए हैं। अगर यह वासना लोगों के दिलों में पैदा ही न हो तो संसार कितना पवित्र बन जाए!" एक दूसरे अधेड़ अवस्था के सज्जन कह रहे हैं।

दुनिया की उस एक चौथाई आबादी के बारे में मैं अपने उस कुछ अनुचित-से शब्द को वापस लेता हूँ। मैं अपने पहले कहे मित्र की राय से सहमत हूँ, यद्यपि दूसरे अधेड़ अवस्था के सज्जन की बात मुझे कुछ अधिक नहीं जँची है।

और दुनिया की बाकी तीन चौथाई आबादी के बारे में भी मैं अपने इस शब्द को वापस लेता हूँ—छिपाऊँ क्यों, मैं उनके बारे में भी इस शब्द का प्रयोग करने जा रहा था।

दुनिया की बाकी तीन चौथाई आबादी—यानी १६ से ३० और ३१ से ४५ और ४६ से ६० या उससे कुछ ऊपर उम्र के लोग भी किसी-किसी मौके पर जवानी और खूबसूरती की तरफ से आँखें फेरकर प्यार करने और प्यार निभाने के अयोग्य हो जाते हैं। ऐसे मौके की एक मिसाल ऊपर की बाढ़वाली चर्चा में दे ही चुका हूँ और बीमारी, तंगहाली, कमजोरी, निरादर, परेशानी या किसी चीज के लिए दौड़-धूप की उलझनों के समय ऐसे मौके लोगों के सामने बने ही रहते हैं और वे अपने ज्यादातर वक्त में प्यार करने और निभाने के नाकाबिल रहते हैं।

लेकिन ठीक भरी जवानी और ठीक जुटी जोड़ी के आपसी प्यार में ये बाधाएँ कुछ भी अड़चन नहीं डाल पातीं।

और जिनके आपसी प्यार में बाधाएँ अड़चन डाल सकती हैं उनके बारे में एक नई बात अभी-अभी मेरे मित्र ने सुझाई है—उनकी अड़चन का कारण यही है कि वे अभी सिर्फ बच्चे ही हैं।

पन्द्रह साल से नीचे के ही नहीं, उससे ऊपर के भी, किसी भी उम्र के लोग भरी जवानी के दृष्टिकोण से सिर्फ बच्चे ही हो सकते हैं, ऐसी मिस्टर वी० की राय है।

मिस्टर वी० का कहना है कि जो लोग अविचलित रूप में, यानी जमकर किसी को प्यार नहीं कर सकते और जवानी और खूबसूरती का आकर्षण जिनके लिए ढीला हो-हो जाता है वे बचपन की अरिथमेटिक (अंकगणित) से चाहे कितनी ही उम्र के हों, जवानी की अरिथमेटिक से बच्चे ही हैं, और जिस तरह बचपन के बाद एक उम्र ऐसी जरूर आती है जिसमें वे अपने आप किसी को भरपूर प्यार करना सीख जाते हैं, उसी तरह उन सबकी जिन्दगियों (?) में एक वक्त जरूर ऐसा आएगा जब वे भरपूर और जमकर प्यार करना सीख जाएँगे।

बचपन की अरिथमेटिक वह अरिथमेटिक है जिससे कोई भी आठ साल से ऊपर की उम्र का बच्चा किसी की उम्र बता सकता है। ऐसे बच्चे को आप किसी के भी पैदा होने का साल बता दीजिए और वह मौजूदा साल

की संख्या में से उस साल की संख्या को घटाकर उसकी उम्र बता देगा। यह लोगों की उम्र निकालने के लिए बचपन की अरिथमेटिक है।

और उम्र निकालने के लिए जवानी की अरिथमेटिक क्या चीज है, यह मैं नहीं बता सकता; लेकिन मि० वी० का कहना है कि वह उम्र दहाइयों में नहीं बल्कि लाखों-करोड़ों की संख्या में निकलती है और उसका अन्दाज आदमी के स्वभाव और समझ को देखकर भी किया जा सकता है।

उनका कहना है कि बचपन और बुढ़ापा मनुष्य की अस्थायी और गुजरती हुई अवस्थाएँ हैं और जवानी ही उसकी असली स्थायी अवस्था है।

यह बात कुछ अजीब-सी मालूम पड़ती है। है न? फिर भी इसपर कुछ विचार किया जा सकता है। लेकिन इस जगह ऐसा करने की मेरी इच्छा नहीं है।

अगर मिस्टर वी० के कहने के अनुसार जवानी ही मनुष्य की स्थायी अवस्था है (जिस तक लोग अभी स्थायी रूप में नहीं पहुँच पाए हैं) तब निस्सन्देह प्रेम करना, सुन्दरता और जवानी की ओर आकृष्ट होना मनुष्य का असली, स्थायी स्वभाव और उसकी स्थायी आवश्यकता साबित की जा सकती है।

मिस्टर वी० की राय में चूँकि मेरा विश्वास है, इसलिए मैं सोच रहा हूँ कि मेरी, आपकी और हर एक की स्थायी अवस्था अगर जवानी ही हो और हम सबकी सबसे बड़ी जरूरत 'प्यार करना' ही हो तो यह कोई अनहोनी बात नहीं है।

नागरी लिपि के दोष

डाक्टर ब्रजमोहन, एम० ए०, एल-एल० बी०,पी-एच० डी०

पाठक इस लेख का शीर्षक पढ़कर चौंकेंगे। हम लोग आज तक नागरी लिपि के गुणों का ही बखान सुनते आए हैं। ऐसी लिपि के दोषों का वर्णन करना, जिसे आज तक जनता सम्पूर्ण और वैज्ञानिक समझती आ रही है, दुस्साहस ही कहा जाएगा। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु का भी वास्तविक मूल्यांकन तभी होता है जब उसके गुणावगुणों पर निष्पक्ष भाव से दृष्टि डाली जाए। नागरी-प्रेम के बहाने नागरी के दोषों पर––यदि उसमें वास्तव में कुछ दोष हों तो––पर्दा डालना न्यायोचित न होगा। जब मैं नागरी लिपि के 'दोषों' का उल्लेख करता हूँ तो 'दोष' का वास्तव में वही अर्थ नहीं है जो फार्सी और रोमन लिपि के 'दोषों' से व्यक्त होता है। नागरी के 'दोषों' की तुलना इन अवैज्ञानिक लिपियों के 'दोषों' से हो ही नहीं सकती। इन लिपियों में महान् दोष हैं। नागरी लिपि के दोष इन दोषों की तुलना में सर्वथा महत्त्वहीन और नगण्य हैं। ऐसी लिपियों की तुलना में तो नागरी प्रायः पूर्णतया वैज्ञानिक है। फार्सी और रोमन लिपियाँ तो इतनी अवैज्ञानिक हैं कि उन्हें तोड़-मरोड़कर किसी भी प्रकार वैज्ञानिक बनाया ही नहीं जा सकता। नागरी लिपि के दोष इतने लघु हैं कि यदि उन्हें किसी प्रकार दूर कर दिया जाए तो नागरी पूर्णतया वैज्ञानिक और संसार की आदर्श लिपि बन जाए। इन्हीं दोषों का इस लेख में उल्लेख किया जाएगा।

वर्णमाला और लिपि में अन्तर है। वर्णमाला का सम्बन्ध उच्चारण से है, लिपि का लिखावट से। मान लीजिए कि रोमन लिपि हमारी नागरी वर्णमाला को अपना ले। तो उसके वर्ण इस प्रकार के हो जाएँगे:––

ka, kha, ga, gha, na
cha, chha, ja, jha, na

यह नागरी वर्णमाला कहलाएगी परन्तु लिपि रोमन ही है। इसके विपरीत यदि अंग्रेजी भाषा हमारी नागरी लिपि को अपना ले तो उसके वर्ण इस प्रकार लिखे जाएँगे:––

ए, बी, सी, डी, ई

यह नागरी लिपि कहलाएगी परन्तु यह वर्णमाला रोमन ही है। अस्तु वर्णमाला और लिपि में वास्तविक अन्तर है। यदि यह कहा जाए कि 'नागरी वर्णमाला पूर्णतया वैज्ञानिक है' तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिस ढंग का ध्वनि-विन्यास, स्वर-क्रम,

व्यंजन-क्रम नागरी वर्णमाला का है, कदाचित् ही संसार की किसी अन्य वर्णमाला का हो। जितने प्रकार की ध्वनियाँ आज तक इस देश में प्रयुक्त होती रही हैं, उन सबका आदर्श अनुक्रम कदाचित् नागरी वर्णमाला ही है। यह बात दूसरी है कि संसार की बहुत सी भाषाओं की कुछ ध्वनियाँ नागरी वर्णमाला में नहीं मिलतीं। परन्तु किसी वर्णमाला का कर्म संसार भर की ध्वनियों का संग्रह करना नहीं है, वरन् किसी विशिष्ट प्रदेश की प्रचलित ध्वनियों का विन्यास करना है। अतएव यह किसी वर्णमाला का दोष नहीं माना जा सकता कि उसमें अन्य भाषाओं की ध्वनियाँ व्यक्त नहीं हो सकतीं। यह तो वर्णमाला का कर्म ही नहीं है। अतएव संसार की बहुत सी भाषाओं में ऐसी ध्वनियाँ विद्यमान हैं, जिनका नागरी लिपि में अभाव है। परन्तु इस बात से नागरी वर्णमाला की वैज्ञानिकता का तनिक भी ह्रास नहीं होता। तथापि "नागरी वर्णमाला पूर्णतया वैज्ञानिक है" इस कथन से यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि 'नागरी लिपि पूर्णतया वैज्ञानिक है।' इसी बात पर मैं इस लेख में अपने विचार व्यक्त करूँगा।

नागरी लिपि में कुछ दोष तो मुद्रण और लेखन सम्बन्धी हैं। इन दोषों पर तो आज तक बहुत से लेख निकल चुके हैं, और यदा-कदा निकलते ही रहते हैं। एक महत्त्वपूर्ण लेख 'सरस्वती' के जनवरी १९४८ के अंक में डा० गोरखप्रसाद का निकला है। उस लेख में इन दोषों को दूर करने के कुछ वांछनीय उपाय बताए गए हैं। इस सम्बन्ध में तो सम्प्रति मुझे कुछ कहना नहीं है। नागरी लिपि में कुछ अन्य दोष हैं, जिनका सम्बन्ध उच्चारण और लिखावट से है। ऐसे ही दोषों पर मुझे इस समय विचार करना है। मैंने अपने एक अभिनव लेख में* इनमें से कुछ दोषों की ओर संकेत किया था। इस समय मेरा अभिप्राय उन बातों की पुनरावृत्ति करने का नहीं है। परन्तु प्रसंगवश कहीं-कहीं पर उनका उल्लेख कदाचित् करना ही पड़ेगा।

(१) किसी लिपि की वैज्ञानिकता का यह लक्षण है कि जैसा लिखें वैसा ही पढ़ें और जैसा पढ़ें वैसा ही लिखें। इस दृष्टि से फ़ार्सी लिपि बहुत ही अवैज्ञानिक समझी जाती है। इस लिपि का पहिला वर्ण बोला जाता है 'अलिफ' परन्तु शब्दों में इसका उच्चारण प्रायः 'अ' का सा होता है। अवैज्ञानिकता का इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण मिलना कठिन है। बच्चे ने वर्णमाला का पठन आरम्भ ही किया, उसे पता भी नहीं चला कि 'ल' और 'फ' किस प्रकार की ध्वनियाँ हैं और उसके द्योतक कौन से चिह्न हैं कि उसके ऊपर 'अलिफ' लाद दिया गया। वर्णमाला में इसके कहीं आगे चलकर 'ल' और 'फ' आते हैं। और 'अलिफ' की ध्वनि 'अ' से 'ल' और 'फ' का सम्बन्ध ही क्या है? न जाने क्या सोचकर उक्त वर्ण का नाम 'अलिफ' रक्खा गया। इससे तो 'अ' नाम अधिक सार्थक होता। यद्यपि समस्त स्थानों पर 'अलिफ' की ध्वनि 'अ' की नहीं होती, फिर भी यदि इसका नाम 'अ' रखा गया होता तो इतना अवैज्ञानिक और अनुचित न होता जितना 'अलिफ'।

नागरी लिपि में अधिकतर जो हम बोलते हैं वही लिखते हैं, और जो लिखते हैं वही बोलते हैं। परन्तु अब तनिक 'इ' की मात्रा 'ि' पर विचार कीजिए। यह लिखी जाती है पहिले और बोली जाती है पीछे। इस उच्चारण-क्रम को कोई भी व्यक्ति वैज्ञानिक नहीं कह सकता। और यह अवैज्ञानिकता और भी स्पष्ट हो जाती है जब हम इस प्रकार के शब्द लिखते हैं:—

शान्ति, भ्रान्ति, उद्भिज, स्वप्निल।

'शान्ति' में पहले 'न' बोला जाता है, फिर 'त' और अन्त में 'ि'। इसी प्रकार का उलट-फेर उपरिलिखित और शब्दों में भी है।

(२) नागरी लिपि में प्रायः प्रत्येक वर्ण का एक ही उच्चारण होता है। परन्तु, अब तनिक 'व' के उच्चारण पर ध्यान दीजिए। 'व' का एक उच्चारण तो 'वल्कल' 'गवन' और 'अभिनव' में दिखाई देता है। यह उच्चारण ऐसा ही है जैसा अंग्रेजी के शब्द 'वैल्यू' में 'वी' का। 'व' का उच्चारण 'श्वास', 'स्वप्न' और 'क्वाँर' में दृष्टिगोचर होता है। यह उच्चारण ऐसा है जैसा अंग्रेजी के शब्द 'स्विम' में 'डब्ल्यू' का। एक बात यह ध्यान देने योग्य है कि जब कभी 'व' किसी शब्द के आरम्भ में आएगा, उसका उच्चारण सदैव पहले उदाहरण का सा, अर्थात् 'वी' का सा होगा, 'डब्ल्यू' का सा कदापि नहीं होगा। यही कारण है कि अंग्रेजी के जो शब्द 'वी' अथवा 'डब्ल्यू' से

---

* ब्रजमोहन—नागरी लिपि में संशोधन, 'विशाल भारत', सितम्बर १९४६

आरम्भ होते हैं उनका हिन्दी उच्चारण करने के लिए सदैव 'व' का ही प्रयोग करना पड़ता है। इन पंक्तियों के लेखक को स्मरण है कि वह एक बार इंगलैण्ड में एक लड़की को नागरी लिपि पढ़ा रहा था। वह यह जानकर चकित रह गई कि हमारी लिपि में 'वी' और 'डब्ल्यू' दोनों के उच्चारण के लिए एक ही चिह्न 'व' है। उसने कहा कि ये दोनों उच्चारण तो एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। जब हम अंग्रेजी का शब्द 'वी-ए-एल-वी-ई' लिखते हैं तो उसका उच्चारण 'वाल्व' होता है। परन्तु जब हम अंग्रेजी शब्द 'डब्ल्यू-ए-ऐल-एल' लिखते हैं तो इसका उच्चारण 'वाल' नहीं होता। मान लीजिए, कि हम 'उआल' लिखें और 'उ आ' को मिलाकर जल्दी से पढ़ जायँ तो जो उच्चारण इस शब्द का होगा, वही उच्चारण अंग्रेजी शब्द 'डब्ल्यू-ए-एल-एल' का है यदि 'व' के दोनों प्रकार के उच्चारण एक साथ देखने हों तो इन शब्दों पर विचार कीजिए।

विल्व,　　विश्व,　　विश्वेश्वर,　　विज्वरी।

इन शब्दों में पहले 'व' का उच्चारण 'वी' का-सा है, शेष 'व' का उच्चारण 'डब्ल्यू' का-सा। अतएव, यह मानना पड़ेगा कि हमारा वर्ण 'व' उस नियम का पालन नहीं करता, जिसका उल्लेख इस प्रकरण के आरम्भ में किया गया है।

(३) अब तनिक इन अक्षरों पर विचार कीजिए:—
ज जा जि जी जु जू जे जै जो जौ जं जः

भाषा-वैज्ञानिक हमें बताते हैं कि 'ज' की रचना इस प्रकार है:—ज=ज्+ अ।

अर्थात् 'ज' में ही 'अ' निहित है। 'अ' की सहायता के बिना कोई व्यंजन बोला ही नहीं जा सकता। दूसरे शब्दों में, 'ज' शुद्ध व्यंजन नहीं है, वरन् एक व्यंजन और एक स्वर का योग है। वास्तविक शुद्ध व्यंजन तो 'ज्' है जिसका उच्चारण बिना किसी स्वर की सहायता के हो ही नहीं सकता। इस प्रकार जी =ज् +अ+ ई। अतएव, जी=ज+ ई। अतः 'जी' का उच्चारण होना चाहिए 'जई' न कि 'जी'। इस तर्क के अनुसार 'जी' लिखने की शुद्ध विधि होगी 'जी'। इसी प्रकार यदि ऊपर लिखे अक्षरों की तालिका बनाई जाए तो ऐसी बनेगी:—

वर्तमान अक्षर	उच्चारण	अक्षर का शुद्ध स्वरूप
जि	जइ	जि
जी	जई	जी
जु	जउ	जु
जू	जऊ	जू
जे	जए	जे
जै	जऐ	जै

पता नहीं, भाषा-वैज्ञानिक मुझसे इस विषय में कहाँ तक सहमत होंगे।

(४) जब कभी 'अ' की बारहखड़ी का प्रश्न उठाया जाता है, भाषा-वैज्ञानिक चिल्ला उठते हैं कि 'यह सर्वथा अवैज्ञानिक होगा'। उनका तर्क इस प्रकार है 'यदि हम 'ऊ' के स्थान पर 'अू' लिखें तो 'अू' में 'अ' भी सम्पूर्ण है और 'ू' भी सम्पूर्ण। अतएव 'अू' का वास्तविक उच्चारण हुआ 'अ ऊ'। इसी प्रकार 'अी' का उच्चारण होगा 'अई'। अतः 'अ' की बारहखड़ी सर्वथा अवैज्ञानिक होगी।'

अब तनिक इसी तर्क को 'ओ' और 'औ' पर लगाइए। 'ओ' में 'अ' भी सम्पूर्ण है, 'ो' भी सम्पूर्ण। अतएव इसका उच्चारण होना चाहिए 'अओ,' न कि 'ओ'। इसका ये लोग यह उत्तर देते हैं कि 'ओ' वास्तव में सन्ध्यक्षर है जिसकी रचना इस प्रकार है: ओ=अ+ उ। अतएव 'ओ' पर वह नियम लागू नहीं हो सकता। परन्तु क्या यह उत्तर संतोषजनक है? इस उत्तर से उपरिलिखित शंका का समाधान कहाँ होता है? 'ओ' सन्ध्यक्षर हो चाहे एकाकी अक्षर, इसका भाग 'ो' तो सम्पूर्ण है ही। तब 'ओ' को 'अओ' क्यों नहीं पढ़ा जाता?

(५) नागरी लिपि में अर्धाक्षर बनाने की भी कोई एक निश्चित रीति नहीं है। निम्नलिखित २१ वर्णों के अर्धाक्षर खड़ी पाई को हटाने से बनते हैं:—

ख ग घ च ज ञ ण त थ ध न
प ब भ म य ल व श ष स　　(अ)

निम्नलिखित ६ वर्णों के आधे बनते ही नहीं:—

छ ङ ट ठ ड ढ द र ह　　(आ)

मैं इस समय युक्ताक्षरों क्ष त्र ज्ञ पर विचार नहीं करूँगा। उनके सम्बन्ध में तो मैं पिछले लेख में अपने विचार व्यक्त कर चुका हूँ। 'क' से 'ह' तक ३३ वर्ण होते

हैं। इनमें से ३० ऊपर दिए जा चुके हैं। अब केवल 'क, झ, फ' बच रहते हैं। इनकी स्थिति निराली है। 'क' का अर्धाक्षर होता है 'क'। 'क' के अन्त में पूरी खड़ी तो है ही नहीं, केवल आधी खड़ी रेखा है। अर्धाक्षर बनाने के लिए इसी को हटा देते हैं, परन्तु इस नियम का भी समस्त स्थानों पर पालन नहीं होता। इस नियम का पालन इन शब्दों में होता है:—

क्यारी, क्लान्ति, क्वाँरा।

परन्तु अब तनिक इन शब्दों पर विचार कीजिए:—

क्रान्ति, क्रन्दन, क्रम।

'क्र' की रचना इस प्रकार है : क्र = क + ्र (र)। जब इन दोनों को मिलाते हैं तो नियमानुसार बनना चाहिए 'क ्र' परन्तु बनता है 'क्र'। इसका कारण यह है कि इस योग में आधे 'क' को 'क' से निरूपित नहीं किया जाता, वरन् 'क' के बीच की खड़ी रेखा को तोड़कर आधा 'क' बनाया जाता है। और इसमें 'र' के लिए '्र' जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार 'क्र' बन जाता है। 'फ' और 'झ' के आधे भी प्रायः इसी प्रकार बनते हैं।

अतः हम देखते हैं कि नागरी लिपि में आधे अक्षर बनाने के लिए कोई सर्वसाधारण नियम नहीं हैं। 'क' के लिए तो कोई निश्चित नियम है ही नहीं, कुछ योगों में एक नियम लगता है, कुछ योगों में दूसरा। जो २१ अक्षर (अ) में दिए गए हैं, उन सबके लिए एक निश्चित नियम है; शेष वर्णों में से ९ के, जो (आ) में दिए गए हैं, आधे होते ही नहीं। जहाँ कहीं इनके आधे अक्षरों की आवश्यकता पड़ती है, या तो अन्त में हल चिह्न लगा दिया जाता है या अगले अक्षर से मिलाकर युक्ताक्षर बना दिया जाता है।

(६) नागरी लिपि में 'ऋ' की मात्रा ' ृ ' अधिकतर वर्ण के अन्तिम भाग के नीचे लगाई जाती है; जैसे, 'गृह, घृत, हृदय' में। परन्तु अब तनिक इन शब्दों पर विचार कीजिए:—

कृश, कृषि, कृमि।

स्पष्ट है कि जब हम 'क' में 'ऋ' का चिह्न मिलाते हैं तब उसके अन्तिम भाग के नीचे नहीं लगाते वरन् खड़ी रेखा के नीचे लगाते हैं। इसी प्रकार 'उच्छृंखल' में भी 'ऋ' की मात्रा 'छ' के नीचे के अन्त में नहीं, वरन् मध्यभाग में लगाई जाती है। मुझे पता नहीं कि हिन्दी या संस्कृत में कोई शब्द ऐसा है या नहीं जिसमें 'झ' में 'ऋ' लगाई जाती हो। परन्तु यह निश्चित है कि यदि किसी दिन 'झ' में 'ऋ' लगाने की आवश्यकता पड़ ही गई तो वह भी इस प्रकार लगेगी—'झृ'—न कि इस प्रकार 'झृ'। अतएव, स्पष्ट है कि 'ऋ' की मात्रा लगाने का कोई एक नियम ऐसा नहीं है जो समस्त स्थानों पर लागू हो।

(७) नागरी लिपि में युक्ताक्षर बनाने के कई ढंग हैं:—

(क) कुछ युक्ताक्षर तो ऐसे हैं जिनमें दोनों वर्णों का रूप स्पष्ट अथवा प्रायः स्पष्ट रहता है, जैसे निम्नलिखित शब्दों के युक्ताक्षरों में:—

काव्य, जाड्य, पद्म, बाह्य, डाक्टर, आह्वान, चिह्न, प्रह्लाद।

(ख) कुछ युक्ताक्षर ऐसे हैं जिनमें वर्णों का रूप अस्पष्ट हो जाता है। जैसे; इन शब्दों में,

क्रम, रक्त, वाद्य, चित्त, त्रास, आश्रय, विश्व।

(ग) कुछ युक्ताक्षरों में वर्ण ऊपर-नीचे लिखे जाते हैं; जैसे,

गुप्त, कष्ट, अद्भुत, गड्ढा, लट्ठ

(घ) कुछ युक्ताक्षर लिखने का ढंग तो सर्वथा अवैज्ञानिक है; जैसे,

द्वेष, द्वीप, द्वैत, उच्छ्वास, ह्रास।

'द्वेष' के उच्चारण में 'द' आधा बोला जाता है, 'व' पूरा परन्तु 'द' का आधा होता नहीं। अतएव यह उपाय निकाला गया है कि 'द' और 'व' का एक संयोग बना दिया जाए—'द्व'। इसी प्रकार 'ह्रास में 'ह्र' की रचना इस प्रकार है: ह्र = ह् + र, अर्थात् 'ह' आधा है और 'र' पूरा। परन्तु 'ह' का भी आधा हो नहीं सकता। अतएव पूरे 'ह' में '्र' (र) का आधा रूप ' ्र ' जोड़ दिया और 'ह्र' बना दिया। इसी प्रकार के और भी बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं।

(ङ) जब किसी प्रकार बस नहीं चलता तो वर्ण के आधे रूप को व्यक्त करने के लिए पूरे वर्ण के नीचे हल चिह्न लगा दिया जाता है; जैसे—

वाङ्मय, पराङ्मुख

इन शब्दों के लिखने की केवल एक ही रीति और है : वाङ्मय, पराङ्मुख।

उपरिलिखित से स्पष्ट है कि युक्ताक्षरों के बनाने का कोई ऐसा एक नियम नहीं है, जो समस्त स्थितियों पर लागू हो।

(८) कुछ छोटी-छोटी बातें ध्यान देने योग्य हैं। 'घ' की शिरोरेखा को तोड़कर 'ध' बनाने में क्या तुक है ? यदि इस प्रकार अन्य वर्ण बनाने ही हों तो उनका कोई नियम होना चाहिए। प्रथम दृष्टि डालने से एक अस्पष्ट-सा नियम दिखाई देता है। 'घ' कवर्ग का चौथा वर्ण है और 'ध' तवर्ग का चौथा वर्ण। कह सकते हैं कि एक वर्ग के चौथे वर्ण से दूसरे वर्ग का चौथा वर्ण बनाने के लिए हमने यह नियम बनाया है। परन्तु 'झ, ढ, भ' तो इस प्रकार नहीं बनते। इसके अतिरिक्त 'म' की शिरोरेखा तोड़कर 'भ' क्यों बनाया जाता है ? ये दोनों तो क्रमशः एक ही वर्ग के पंचम और चतुर्थ वर्ण हैं।

'ड' और 'ङ' के उच्चारणों में तो इतनी समानता नहीं है कि एक के आगे बिन्दी लगाकर दूसरा बनाया जाए। 'व' का पेट चीरकर 'ब' क्यों बनाया जाता है ? 'ख' और 'रव' में क्यों समानता रक्खी गई है ? 'रा' और ए (आधा 'ण') क्यों इतने मिलते-जुलते रक्खे गए हैं। यह सब प्रश्न विचारणीय हैं।

(९) नागरी लिपि में महाप्राण के लिए भी कोई निश्चित चिह्न नहीं है। केवल दो वर्ण हैं 'प' और 'ट' जिनमें पूँछ लगाने से महाप्राण 'फ' और 'ठ' बनते हैं। और समस्त महाप्राणों में कोई एक नियम दिखाई नहीं देता, वरन् नियम का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। एक और बात ध्यान देने योग्य यह भी है कि 'ज' के प्रथम भाग में उसी पूँछ का विकृत रूप लगाने से 'ञ' बनता है, अर्थात्, पंचमाक्षर बनता है, महाप्राण 'झ' नहीं बनता। और 'प' और 'ट' में पूँछ अन्त में लगाई जाती है, परन्तु 'ज' के आरम्भ में लगाई जाती है। इसके अतिरिक्त 'व' में पूँछ लगाने से 'क' बनता है। भला इसमें क्या तुक है ?

(१०) नागरी लिपि में पंचमाक्षर बनाने का भी कोई एक नियम नहीं है। इस विषय पर मैं पिछले लेख में अपने विचार विस्तारपूर्वक व्यक्त कर चुका हूँ।

आशा है लिपि-सुधार-सम्बन्धी विचारक इन तथ्यों पर ध्यान देंगे।

निष्ठुर प्रेरणा

श्री नामगुप्त शर्मा

(१)

निरंजन

मेरा एक मित्र है—मित्र वैसे तो बहुत से हैं पर वैसा एक ही है। जब पिता जी की बदली मसूरी हो गई तो हमारा सारा परिवार वहीं चला गया और हम एक छोटा-सा घर किराए पर लेकर वहीं रहने लगे। मुझे अब भी याद आता है कि जिस दिन हम गए ही थे, एक लड़का, जिसकी उम्र तब १०-११ वर्ष से अधिक न रही होगी, हमें—और विशेषतः मुझे बड़ी उत्सुकता से देख रहा था। उसका व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था कि मैं अनायास ही उसकी ओर आकर्षित हो गया। पिता जी ने मुझे बम्बई के विषय में कई बातें पहले से बता रखी थीं। वहाँ पहुँचने पर मेरी उत्सुकता और भी बढ़ गई थी और 'नगरियों की रानी' की गोद में खेलनेवाले उस लड़के के प्रति तो मेरे हृदय में अनायास ही प्रेम की भावना जाग उठी। मैंने उसे निकट बुलाया। बम्बई के विषय में दो-चार बातें पूछीं और मैं उसे 'मित्र' शब्द से संबोधित करने लगा। वस्तुतः मैं 'सप्तपदी मैत्री' के सिद्धान्त पर विश्वास करता था और मेरी दृष्टि में अल्पकालीन वार्तालाप भी मित्रता स्थापित करने के लिए पर्याप्त था। जान-पहचान मित्रता में परिणत हुई और मित्रता घनिष्टता में। तब से हम दो शरीर एक प्राण बने रहे। यद्यपि कभी सैद्धान्तिक मतभेद या रुचि-वैचित्र्य के कारण हममें लड़ाई-झगड़ा हो जाने की नौबत भी आ जाती थी पर आश्चर्य तो यह था कि दूसरे दिन से ही हम एक दूसरे को दूनी शक्ति से प्रेम करने लगते !

एक दिन विपिन ने कहा, 'काश ! मुझे हमेशा तुम्हारा साथ मिलता, निरंजन !'

'भगवान् चाहेगा तो ऐसा ही होगा, भैया !'—मैंने उसे सांत्वना देते हुए कहा, 'तुम एक प्रेस खरीदोगे, जिससे हम एक पत्र निकालेंगे। तुम उसके संचालक होगे और मैं सम्पादक !'

'पर पहले तो तुम कहते थे कि तुम किसी 'कम्पीटीशन' में बैठोगे। अब विचार क्यों बदल दिया ?'—उसने पूछा था।

'जीवन में ऐसी घटनाएँ कभी हो जाती हैं जो जीवन की दिशा को बदल देती हैं।'—मैंने उत्तर दिया था।

'वह घटना कौन-सी है, निरंजन ?'—उसका प्रश्न था।

'विपिन ! तुम सच मान गए क्या ?'—मैं अपनी बात की सत्यता की गम्भीरता को छिपाने के लिए खिलखिल कर हँसा। उलटा उसको बेवकूफ बनाते हुए बोला, 'विपिन, तुम सचमुच कितने भोले हो ! मेरे जीवन में भी भला कोई घटना हो सकती है ? मैं तो केवल इतना ही कहना चाहता था कि मुझे लिखना—पत्रकारकला—पसंद है।'

'मैंने तो तुम्हारी कविताएँ देखी नहीं पर शीला···।' उसके मुख पर विचित्र 'घबराहट' और संकोच था 'शीला' कहते हुए। यद्यपि घबराने की कोई बात न थी—शीला उसकी छोटी बहिन थी और मैं उसका अभिन्न मित्र। शायद यही उसने भी बाद में सोचा हो, जब वह पुनः साहस समेटकर बोला, 'शीला···कहती थी कि तुम अच्छी कविता लिखते हो। पारसाल तक तो गुरु जी के दिए हुए निबंध भी न लिखते थे—यों ही टाल देते थे। अब कैसे लिख लेते हो ?'

'मानसिक स्थिति मुझे लिखने की प्रेरणा देती है।'—मैंने कहा, 'पारसाल तक टाल देता था, क्योंकि तब मानसिक स्थिति ही वैसी थी।'

बहुत देर तक कमरे में स्तब्धता रही। विपिन मेरे नंगे मेज पर पेन्सिल से रेखाएँ खींचता रहा। कभी दृष्टि उठाकर मेरी ओर देख लेता और फिर अपने उसी अर्थहीन कार्य में संलग्न हो जाता। मैं समझ गया कि विपिन का हृदय किसी बात की अभिव्यक्ति के लिए विकल है किन्तु उसका संकोची स्वभाव उसका साथ नहीं दे रहा है।

'क्या सोच रहे हो, भाई !'—मैंने उसे कहने को प्रोत्साहित किया।

'यही कि काश, हमारी यह घनिष्टता स्थायी हो पाती। न जाने क्यों मेरा हृदय तुम्हारे प्रति···। मैं सोचता हूँ यदि मैं स्त्री होता तो···।'

'तो क्या ?'—मैंने गम्भीरतापूर्वक पूछा।

'मैं तुमसे व्याह कर लेता !'—उसने कहा।

'मैं तब भी तुम से व्याह न करता !'—मैंने कटुतापूर्वक कहा।

'यदि तुम ऐसा करने के लिए तब मेरे हृदय में अपने लिए जगह खोजते भी तो तुम वहाँ किसी और को बैठा हुआ पाते।'

चार-पाँच साल तक हम साथ पढ़ते रहे। विपिन हाईस्कूल में आया और मैं इंटर में। उसी वर्ष मेरे जीवन में एक वज्रपात हुआ। नगर में भीषण महामारी फैली जिससे मेरे पिता जी और चार वर्ष की एक छोटी बहिन की मृत्यु हो गई। पिता जी की मृत्यु हमें विशेषरूप से खली क्योंकि अपनी जीविका के लिए हम उन्हीं पर निर्भर थे। अब परिवार का सारा भार मेरे ऊपर आ पड़ा। माँ ने कालेज छुड़ा दिया। मैं नौकरी की खोज में मेरठ चला गया। वहाँ मेरे नजदीक के चाचा रहते थे। उनके प्रयास से मुझे पोस्ट आफिस में नौकरी मिल गई।

अब मेरा जीवन कैसा कटता होगा—इस बात का अनुमान लगाना कठिन नहीं। पोस्ट आफिस की नौकरी थी। दर्जी की तरह जोड़ना-घटाना मुझे पसन्द न था। मुझ जैसा युवक जो जीवन में रंगीन आशाओं को लेकर इस संसार में आया था यदि वह इससे विरक्त भी हो जाता तो आश्चर्य न था। पर शुक्र है मेरे जीवन में ऐसी बातें न हुईं। न मैंने कभी आत्महत्या की बात सोची न साधु या संन्यासी बनने की। मेरे लिए वे अपरिचित काँटे अब परिचित कुसुम बन गए थे जिनसे मैं अभ्यस्त होता जा रहा था। इसीलिए दुख से भी अधिक प्रिय लगी मुझे उसकी अभिव्यक्ति। मैं शांतिमूर्ति बना रहता था यद्यपि मेरे जीवन में झंझा आता; मेरे हृदय में भावों का ज्वार उठता। मैं अकेले पथ पर घूमने निकल जाता और मन-ही-मन कुछ गुनगुनाता हुआ पथिकों के दल जाते देखता। एक दिन ऐसे ही घूमते हुए एक मित्र मिल गया। मेरी भावमयी मुद्रा देखकर वह बोला, 'कवि

पागल होते हैं। मुझे उनसे घृणा है।' 'क्यों?'—मैं पूछना चाहता था पर वह इतने में आगे बढ़ गया। मैंने मन-ही-मन सोचा—तो मैं पाप कर रहा हूँ? आखिर मैं कुछ लिखूँ ही क्यों? नौकरी पर भी इसीलिए जी नहीं लगता। मित्र भी धमकाते हैं—तुम खोए-से रहते हो। सब उपहास करते हैं। स्वयं मेरे दुखों का कोष बढ़ता है।

शाम को कविताएँ एकत्र कीं। जलाने के लिए दियासलाई निकाली। सहसा किसी ने मेरे हाथ पीछे खींच लिए—'नहीं!' मुझे किसी के शब्द याद आ गए। वे मुझे आज भी याद हैं और आजीवन याद रहेंगे। जब मैं नई रचना लिखने के लिए कोई प्रेरणा चाहता हूँ तो अपने सामने उन शब्दों को रख लेता हूँ। अभी से मैंने विचार कर लिया है कि अपनी पुस्तक के मुखपृष्ठ पर उन्हें उद्धृत करूँगा।

एक मेरी लेखन की प्रवृत्ति और दूसरी विपिन की मित्रता, ये दोनों बातें थीं जो बहुत समय तक मेरे जीवनतंतु को दृढ़ बनाए रहीं। यह अवश्य था कि अब हमारे बीच स्थान की दूरी आ गई थी पर इतने सामीप्य का अनुभव इससे पहले हमने कभी न किया था। विशेषतः विपिन के पत्रों से मुझे बहुत शांति मिलती थी। उसका पहला पत्र, जो मुझे मेरठ जाने के बाद मिला, यह है—

'हृदयस्थ निरंजन,

तुम सोचोगे कि विपिन भी क्या लड़कियोंवाली बात करता है। पर विश्वास करो, नीरू भैया, तुम्हारे बिना मेरा जीवन भार हो गया है। ...खैर, अपनी दशा का वर्णन कर मैं तुम्हारा जी नहीं दुखाना चाहता। यदि 'वह' नहीं होती तो... ।'

स्त्रीलिंग का प्रयोग देख मैंने दृष्टि पीछे लौटाई। 'वह' के बाद कोष्ठ में लिखा था—'कल्पना, जिससे शायद आप परिचित नहीं।'

'कल्पना!' मेरे मुख से निकला—'परिचित नहीं... कितना मूर्ख समझा विपिन ने मुझे?' मेरी भावनाएँ विद्रोह कर रही थीं। मेरी स्मृतियाँ मुझे एक बार अपने जीवन का इतिहास दुहराने का आमंत्रण दे रही थीं। मैंने झुँझलाकर वह पत्र मेज पर पटक दिया और दूसरा पत्र झट से फाड़ते हुए पढ़ने लगा। वह माँ का था। एक ही साँस में सारा पत्र पढ़ लिया। फिर पत्र को फेंकते हुए एक निःश्वास ली—

'अच्छा! यह बात है!.....माँ की मर्जी!'

पुनः विपिन का पत्र उठाकर पढ़ने लगा।—

'मैं तुमसे कई बार इस बात को कहने को तैयार हुआ पर समझ में ही न आया कि किस प्रकार बात छेड़ूँ। शायद तुम्हें ज्ञात न हो, शीला तुम्हें कितना प्यार करती है। यदि तुम उसके विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार करलो तो... ।'

मैंने उसे मोड़कर फेंक दिया।

'माँ और विपिन दोनों ने मिलकर क्या षड्यंत्र रचा है?'—

मैंने कहा—'विपिन मेरा मित्र है पर इसका यह मतलब नहीं कि मैं स्वेच्छा को मित्रता के हाथ बेच दूँ।'

उसी समय विपिन को मैंने कड़ा-सा जवाब लिखा, जिसके लिए मुझे पीछे पाश्चात्ताप हुआ—मुझे कुछ शिष्टतापूर्वक लिखना चाहिए था। पर कटुतापूर्वक पत्रोत्तर का एक अच्छा परिणाम यह अवश्य हुआ कि दूसरे पत्र में उसने उस विषय की कोई चर्चा न की। विशेष बात उसमें यही थी कि उसने मुझसे पूछा था कि उसके और कल्पना के संघर्ष के विषय में मेरे क्या विचार हैं। वस्तुतः यदि उसने विचार किया होता तो उसे जानना चाहिए था कि मैं ऐसी बात पर सम्मति देने का क्या अधिकारी था। पर चूँकि वह मेरा मित्र था और एक ऐसा मित्र था जिसकी मित्रता का 'स्टैंडर्ड' बहुत ऊँचा था। अतः मुझे उसके प्रश्न का कुछ-न-कुछ उत्तर अवश्य भेजना था।

'पर मुझ से ऐसा पूछने का विपिन का क्या अभिप्राय होगा?'—मैंने सोचा, 'क्या उसे ज्ञात है कि मैं... । नहीं, वह नहीं जानता और न उसे अब जानना ही चाहिए।' मैंने पत्र का उत्तर लिखना प्रारंभ किया—

'मैं समझता हूँ, प्रिय विपिन, कि कल्पना ही एक ऐसी शक्ति है जो तुम्हारे जीवन में मेरे अभाव की पूर्ति कर सकती है।'

मेरे शरीर में सिहरन उठी। मैं निश्चय ही न कर सका आगे क्या लिखूँ, इसलिए बरबस मुझे पत्र यहीं पर समाप्त कर देना पड़ा। लिफाफा बंद किया। उसी समय विचार आया, 'क्या मैंने ठीक लिखा है?'

ठीक ही तो लिखा है—मैं सोचता—दो हृदयों को ठेस पहुँचाना अमानवीय है।

(२)

विपिन

निरंजन की अनुमति पाकर मुझे कल्पना के संपर्क में आने का अधिक अवसर मिला। वह मेरी सहपाठिनी थी। कल्पना के पिता मुझसे पहले से परिचित थे। कल्पना को मेरे साथ देखकर कभी वे कुपित न हुए वरन् उनकी हँसी मुझे अपनी पुत्री के साथ संपर्क बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करती-सी प्रतीत होती थी। फिर भी मैं उनके यहाँ न जाता था। कल्पना मुझे कहीं भी मिल जाती थी। पर वह बहुत लज्जाशील और संकोची प्रकृति की थी। अतः हम एक दूसरे हृदय की बातें पत्रों के द्वारा प्रकट करते थे। इस प्रकार पत्र-व्यवहार खूब बढ़ा और एक दूसरे के विषय में जो ज्ञातव्य बातें थीं सब हमें ज्ञात हुईं; साथ ही जैसा कि प्रेमियों में होता है, दोनों ने एक दूसरे की प्रशंसा कर प्रेमी उर को तृप्त किया।

जाड़ों के अवकाश में मैं निरंजन से मिलने मेरठ गया। वे पोस्ट ऑफिस के निकट एक छोटे-से कमरे में रहते थे। लिपाई-पुताई की दृष्टि से कमरा स्वच्छ और सुन्दर था पर उसमें रखी हुई वस्तुएँ प्रायः अस्त-व्यस्त थीं! जिधर देखो, कागज के टुकड़े फैले हुए मिलते थे!

मेरे आने पर उन्हें खुशी अवश्य हुई पर उस खुशी को शब्दों के द्वारा प्रकट करने का उन्होंने कभी प्रयास न किया। अब वे बोलते कम थे, सोचते अधिक! इसीलिए पड़ोस के लोगों में वे 'वीपिंग फिलासफर' के नाम से ख्यात हो गए थे। इसके अतिरिक्त उनके स्वभाव में संकोचशीलता और वीतरागता आ गई थी जो मैंने उनमें इसके पहले कभी न देखी थी। उनके जीवन में यह परिवर्तन देखकर मुझे बहुत दुख हुआ। मैंने कहा, 'भैया! तुम क्या थे, अब क्या हो गए!'

'ऐसी याद न दिलाओ, विपिन! मैं वही हुआ जो मैंने होना चाहा था।'

'आखिर इस शरीर के प्रति यह उदासीनता क्यों?'

'इसलिए कि यह मिथ्या है।'— उनका उत्तर था।

'यह निराशावादी दृष्टिकोण अनिष्टकारी है, भैया! यदि तुम यह सोचने लगे कि यह शरीर तथा सांसारिक अस्तित्व मिथ्या है और तुम्हारी फिलासफी ही सत्य है तो इससे अधिक अनिष्ट क्या हो सकता है? एक युवक जो शृंगार की रंगस्थली में पाला गया हो, उससे मुझे ऐसी आशा न थी। तुम तो पक्के संत बन गए... ब्याह करने को भी...।'

'मेरे सामने ब्याह की बात न निकालो!'—पहले वह झुँझलाके फिर शान्त होकर बोले, 'मैं पहले ही कह चुका हूँ, विपिन, मैं आजीवन ब्याह न करने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।'

'क्यों?'— मैंने प्रश्नभरी मुद्रा से उनकी ओर देखा।

'इसका कारण जानकर क्या करोगे?'—उन्होंने कहा, 'इससे तुम्हारा कोई हित न होगा।'

'तो तुमने मुझे क्यों कल्पना के संपर्क के लिए अनुमति दी जब कि स्वयं...।'—मैंने आवेश में पूछा।

भैया निरंजन न जाने क्या सोचते रहे। बहुत देर तक स्तब्धता रही। मैंने कल्पना के पत्रों को, जो मेरे लिए भेजे गए थे, निकाला और उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा, 'भैया, मुझे सलाह दो! इन्हें पढ़कर बताओ कि मुझे कल्पना के विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेना चाहिए या नहीं?'

उन्होंने उन्हें पढ़ना शुरू किया। मैं वहीं उनके कागज-पत्रों को देखने लगा! कविताओं की कई कापियाँ थीं; कुछ एकांकी और कहानियाँ भी थीं। वहीं मुझे उनकी एक डायरी भी मिली। कई पन्ने पलटकर मैंने देखा तो न मालूम मेरे हृदय में यह बात कैसे बैठ गई कि उसमें कई रहस्यमय बातें हैं। मैंने चुपके से उसे उठा लिया। परंतु निरंजन भैया ने मुझे देख लिया और उन्होंने उसे मुझसे उसी दम छीन लिया।

(३)

निरंजन

आजकल मैं बहुत बीमार हूँ। डाक्टर कहते हैं, मुझे क्षय-रोग हो गया है और उन्होंने मुझे सलाह दी कि मेरठ का जलवायु मेरे अनुकूल नहीं। अतः मैं फिर उसी मसूरी में चला आया हूँ जहाँ मैंने अपने बचपन के दिन काटे थे। यह स्थान भी मुझे अब अच्छा नहीं लगता। ऊँची-ऊँची पर्वतमालाएँ, घुमड़ते हुए घन, वन की हरीतिमा, फूलों की हँसी—कोई भी चीज अब मेरे खोए हुए आनंद को लौटा नहीं सकतीं!

अब मुझे किसी से राग नहीं, द्वेष नहीं; खोई हुई वस्तु का पश्चात्ताप भी नहीं; संतोष है कि कल्पना मुझे श्रद्धा की दृष्टि से देखती है। पिछले दिनों विपिन ने मुझे

जब उसके सब पत्र दिखाए तो मैंने देखा कि उनमें मेरे लिए कई ऐसी सम्मानपूर्ण बातें लिखी हैं जिन पर मैं आज भी गर्व कर सकता हूँ। वह मुझ पर श्रद्धा रखती है, स्पष्ट है, पर प्रेम करती है - इस बात का उल्लेख वहाँ नहीं। पर श्रद्धा भी तो प्रेम का ही परिष्कृत रूप है। प्रसन्नता है कि मुझे एक ऐसी वस्तु मिली जिसका स्थान प्रेम से भी ऊपर है। वह कल्पना ही थी जिसने विपिन को यह सम्मति दी थी कि उसके सभी काम मेरी (निरंजन की) अनुमति से होने चाहिए। यही कारण था कि विपिन बिना मेरी अनुमति लिए छोटे-छोटे काम भी न करता था। मैं स्वयं ही नहीं समझता, कल्पना ने किस दृष्टि से उसको मेरी सम्मति पर आश्रित किया।

हाँ, आज शहनाइयाँ बज रही हैं; दीपमालाएँ जल रही हैं। मधुर गीत और मोहक नृत्य हो रहा है। सुना है विपिन की वधू आ रही है।

हा! मैंने भी तो अपने जीवन का वैभव खोजा था! मैंने भी तो मणिदीपों से अपना कक्ष सजाना चाहा था! कौन जानता था—मैं खंडहर बनकर भूमि पर इस दशा में पड़ा रहूँगा? आज तक बड़े दुख झेले, आपत्तियों को सहन किया, केवल इस आशा से कि जीवन की इन कँटीली लताओं के लिए भी कभी मधुमास आएगा।—ये भी कभी फूलेंगी। किन्तु अब शरीर की सारी शक्तियाँ क्षीण होती जा रही हैं। जीने की भी अब आस नहीं। मृत्यु ने मुझ पर अपनी पीली छाया डाल दी है। न जाने निष्ठुर मरण कब मेरे कोमल हृदय को मसल दे? मैं देखता हूँ अब मैं एक ऐसे लोक में पहुँच रहा हूँ जहाँ से मानवीय संसार बहुत दूर है और जहाँ जीवन-यात्रा के श्रांत पथिक ही विश्राम करते हैं। मैं अब अधिक जीना नहीं चाहता। दवा के लिए भी पैसा नहीं। दो किताबें प्रकाशक को बेंचकर जो पैसा मिला था वह भी समाप्त हो गया।

दूसरे दिन निरंजन भैया अपनी नववधू को लेकर मेरे पास आए। मैं शैय्या पर कराह रहा था। विपिन और विशेषतः उसकी वधू को देखकर मैं बिस्तर पर बैठ गया। विपिन मेरी नब्ज देखने लगा। उसकी वधू मुझे नमस्कार करने के उद्देश्य से मेरे पैरों पर पड़ गई।

'उठो! हटो, कल्पना!'—मैंने कहा, 'मेरे प्राणों के पास न आओ। इस खंडहर को अकेले ही साँसें भरने दो!' वह बहुत देर तक स्तब्ध होकर मेरी ओर करुण दृष्टि से देखती रही। उसका मुख क्षण में मुरझा गया। तब मैंने अपने स्वर की कटुता का अनुभव कर अपने को कोसा। मैं खंडहर था—कोई बात न थी—उसे भी मैंने एक क्षण खंडहर होते देखा। मुझे दया आ गई, ओह! मैंने कितनी गलती की थी उसको दुतकारने में।

(४)

विपिन

मैं रो उठता हूँ जब कभी निरंजन भैया की याद आती है। मृत्यु कितनी निष्ठुर होती है, मैंने यह तब समझा; परंतु इससे भी निष्ठुर है प्रेम—इस बात को मैंने बहुत बाद में समझा उनकी किताबों को पढ़कर! संतोष की बात यही है कि वे हिन्दी के लिए एक बहुत बड़ा साहित्य छोड़ गए हैं और वही उनका अमर स्वरूप है। यद्यपि उनकी छिपे रहने की प्रवृत्ति के कारण उनका वह स्वरूप उनके जीवन-काल में ही जनता के सम्मुख पूर्णतः न आ सका फिर भी भविष्य में उनका स्थान उच्चकोटि के कवियों में होगा—यह मेरा ध्रुव विश्वास है। उनकी पहली पुस्तक 'प्रेरणा' छप चुकी है और शेष छपने को हैं। इन सब किताबों के प्रकाशन का और संपादन का भार वे मुझ पर छोड़ गए हैं। कविता पुस्तकों के अतिरिक्त उनकी एक डायरी भी है जिसको मैं संपादित कर प्रकाशित कराने का इच्छुक हूँ। यद्यपि निरंजन भाई ने उसे अपने ही साथ जलाने को कहा था, पर मैं मानता हूँ कि साहित्य जलाने को नहीं होता!

उस डायरी को पढ़कर मैं आज पछताता हूँ कि मैंने कल्पना को अपनी ओर आकर्षित कर अच्छा नहीं किया। और इससे भी अधिक बुरा किया बार बार उसको यह सूचित करने में कि मैं कल्पना को प्यार करता हूँ और कल्पना मुझे प्यार करती है। यद्यपि मैंने यह निरंजन का जी दुखाने के उद्देश्य से न किया पर इसका प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर अच्छा न पड़ा। पर इसमें निरंजन की भी गलती थी। उन्होंने मुझे कभी मित्रता के नाते यह न बताया कि वह कल्पना से प्रेम करते हैं। इस सत्य को वे कृपण की भाँति छिपाए रहे। यदि मुझे ज्ञात होता तो न मैं शीला के साथ विवाह करने को उससे प्रस्ताव करता और न स्वयं ही कल्पना से प्रेम करने की बात सोचता! यदि उनका विवाह कल्पना से हो जाता तो वे इतनी जल्दी

कभी मरते नहीं पर हाँ, उस अवस्था में एक बात अवश्य होती—वे कवि न बन पाते। निरंजन ने अपनी डायरी में सत्य को स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त उसमें उन्होंने कल्पना के साथ अपने प्रेम-प्रसंगों का कई स्थानों पर वर्णन किया है। जब मैं उनको पढ़ता हूँ तो मैं चिढ़ उठता हूँ। वे स्थल ये हैं—

'१९-५-४० मैं डिबेटिंग सोसायटी का सेक्रेटरी चुना गया हूँ। डिबेट का विषय बताने के बहाने कल्पना से मिलने का सौभाग्य मिल जाता है। मेरे हृदय में उसके प्रति आकर्षण पैदा हो गया है। मॉल रोड पर जब कभी वह घूमते हुए मिल जाती है तो उसकी आँखें मुझे बातें करती हुई दिखाई देती हैं। क्या यह पर्याप्त प्रमाण नहीं कि वह मुझसे प्यार करती है?'

❀ ❀ ❀

'२७-७-४० मैंने 'हिन्दू समाज की बुराइयों' पर भाषण किया। जाते हुए कल्पना अकेली मिल गई। कहने लगी—'आपको हिन्दू समाज और उसके बंधनों से चिढ़ क्यों है? क्या समाज को नियंत्रण की आवश्यकता नहीं पड़ती?' मैंने उत्तर दिया—'नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है कल्पना देवी! पर नियंत्रण का अर्थ मनुष्य की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं है। मान लीजिए, इस समय मैं आपके साथ बातें कर रहा हूँ, चल रहा हूँ और यदि मेरा आपके प्रति और आपका मेरे प्रति कोई आकर्षण है—।' कल्पना ने मेरी ओर उस हतप्रभ दृष्टि से देखा जिस दृष्टि से कोई मनुष्य अपने गुप्त भेद को प्रकट करने-वाले की ओर देखता है। 'क्षमा कीजिए, कल्पना देवी'—मैंने कहा, 'आप इसे 'सीरियस' न समझें; मैंने तो एक काल्पनिक दृष्टांत लिया है। कल्पना हँस गई। यह मेरी कम विजय न थी!'

❀ ❀ ❀

'१३-३-४३ कल्पना मेरी कविता की बड़ी प्रशंसा करती है। यह मेरे लिए कम प्रोत्साहन नहीं।'

❀ ❀ ❀

'१५-६-४३ आज का दिन मेरे जीवन के इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। बुद्ध को जिस प्रकार ज्योति मिली, मुझे प्रेरणा मिली। कालेज में 'फेयरवेल' हुआ। हमारी बिदाई में कई भाषण और कविताएँ हुईं। कल्पना ने भी एक कविता—जिसे तुकबंदी कहना चाहिए—सुनाई। उसकी चार पंक्तियाँ विशेषतः मुझसे संबंध रखती हैं। यद्यपि वह कविता उसने सबके सामने सुनाई थी और उसमें मेरा व्यक्तिगत उल्लेख या नाम न था पर फिर भी यह जानना कठिन न था कि यह संकेत मेरी ओर है। पंक्तियाँ मेरे हृदय में प्रेरणा बनकर बैठी हैं।'

इन स्थलों को मुझे डायरी से हटाना पड़ेगा, क्योंकि उनमें कल्पना का—मेरी पत्नी का—नाम है। जब संसार को यह पता चलेगा कि निरंजन की मृत्यु के लिए कल्पना का वियोग उत्तरदायी है तो लोग उसे दोषी कहकर धिक्कारेंगे! कल्पना भी स्वयं ऐसे अंशों को पढ़कर दुखी होगी। संसार उसे दोषी कहे न कहे पर कल्पना के हृदय में स्वयं एक प्रतिक्रिया हो सकती है जिससे संभव है कि वह जीवन से विरक्त हो जाए और मुझसे भी। अतः मुझे ये अंश हटाने ही पड़ेंगे।

(५)

कल्पना

निरंजन की पहली पुस्तक छपकर आ चुकी है। जनता में उसका जैसा स्वागत हुआ है उससे स्पष्ट है कि वह अच्छी पुस्तक है। पुस्तक का नाम—'प्रेरणा' ही पाठक के हृदय में उत्सुकता पैदा कर देता है। पुस्तक का आवरण ध्यान से देखने के पश्चात् जब मैंने उसे खोला तो मेरे सामने दूसरा पृष्ठ आया जिस पर सुन्दर शब्दों में लिखा था—'मेरी 'प्रेरणा' उसको, जिसने मुझे प्रेरणा दी है, समर्पित!'

और नीचे कविता की चार पंक्तियाँ हैं! उन्हें पहली बार पढ़ते ही वे मुझे पूर्व-परिचित लगीं। बहुत देर बाद मुझे भान हुआ कि वे पंक्तियाँ शायद मेरी ही हैं। कुछ समय पहले मैं जब यहीं हाई स्कूल की छात्रा थी तब इंटर के विद्यार्थियों को 'फेयरवेल' के अवसर पर मैंने एक कविता सुनाई थी, जिसकी ये पंक्तियाँ हैं।

प्रसंगवश मुझे अपने विद्यार्थी-जीवन की याद आ जाती है। जब निरंजन जी डिबेटिंग सोसायटी के सेक्रेटरी थे और वे मुझसे मिलते थे। मैं उनकी ओर आकर्षित हो गई थी और आजीवन साथ रहने के स्वप्न देखती रहती थी। पर जब पिता जी को यह मालूम हुआ तो बहुत कुपित हुए और उन्होंने मुझे बाध्य किया विपिन जी से प्रेम करने को और पीछे व्याह करने को भी।

अब मेरा व्याह विपिन जी से हो गया है। विपिन

जी और निरंजन जी पहले से ही घनिष्ट मित्र थे--यह मैं कभी से जानती थी। जब मैं उनसे मिलने गई तो उन्होंने मुझे अपलक दृष्टि से देखा। मुझे वे आँखें याद हैं। वर्षा के आरंभ में जब नभ वर्षा के बादलों से घिर जाता है तो मुझे वे आँखें व्यथा-भरी आँखें--याद आ जाती हैं। मैं काँप उठी जब उन्होंने कहा था--'जाओ, मेरे प्राणों के पास ने आओ! इस खंडहर को अकेले ही साँसें भरने दो!'—इन शब्दों से भी अधिक याद हैं मुझे वे आँखें! जीवन की चिन्ताओं में सब कुछ भूल जाती हूँ पर उन आँखों को नहीं भूल पाती। मैं नहीं जानती कि जब मैं इस संसार से चली जाऊँगी तब भी मैं उन आँखों को भूल पाऊँगी या नहीं? मुझे बार बार तुम्हारे ये शब्द याद आते हैं--'जाओ, मेरे प्राणों के पास......'

परंतु मैं कुछ कहना चाहती हूँ। हे अन्य देश के वासी! मैं कुछ कहना चाहती हूँ। क्या तुम सुनोगे? मैं माँ-बाप की मर्जी की जंजीरों से बँधी थी। जिस समय तुमने अपने को खंडहर कहा था, क्या तुमने मुझे खंडहर होते न देखा था?-क्या तुमने मेरी ओर न देखा था?--मेरा अंतर क्या कह रहा था? तुमने मेरे प्रति ऐसे शब्द कहकर मेरे साथ अन्याय किया; मेरा अपमान किया। फिर मेरी पंक्तियाँ अपनी पुस्तक में उद्धृत कर और उसके साथ ये बातें लिखकर मेरा यह उपहास क्यों? मेरी ओर संकेत कर यह समर्पण किसलिए? मैंने तुम्हें दुख दिया, मृत्यु दी, पर क्या सचमुच प्रेरणा भी दी? इसमें मुझे संदेह है और यदि किसी रूप में दी भी है तो वह निष्ठुर प्रेरणा थी, जिसने तुम्हारे लिए मृत्यु बुलाई—वह निष्ठुर प्रेरणा थी।

प्लास्टिक्स

श्री सुरेशचन्द्र जैन

मैंने जब अपने मित्र को बतलाया कि जिस प्याले में वह चाय पी रहे हैं वह दूध का बना है, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। दूध से प्लास्टिक्स का आविष्कार कैसे हुआ, इसके बारे में एक बड़ी मनोरञ्जक कहानी है। रसायनशाला में बिल्ली चूहे के पीछे दौड़ रही थी। एक बोतल से कुछ फार्मल्डीहाइड एक पनीर के टुकड़े के ऊपर गिर पड़ी। प्रातः वैज्ञानिक ने देखा कि पनीर का टुकड़ा लोहे से भी अधिक कड़ा था। जिन लोगों ने प्लास्टिक्स की बनी केवल ऐश-ट्रे ही देखी हैं वे नहीं जानते कि प्लास्टिक्स फौलाद से भी अधिक दृढ़ और सुन्दर हो सकते हैं। खट्टे दूध और रुई से जो प्लास्टिक्स बनाए गए हैं वे बहुत ही दृढ़ और मोटर के बहुत से भागों के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। श्रीयुत हैनरी फोर्ड ने कहा भी था कि वह दिन अब दूर नहीं जब पूरी मोटर खेती से बनाई जा सकेगी और हुआ भी वही। आज मोटर के प्रत्येक भाग के लिए उचित प्लास्टिक्स मिल जाता है। अमरीका में तो पूरा वायुयान प्लास्टिक्स का बनाया जा चुका है। इस वायुयान में लागत भी कम लगी और परिश्रम तो असाधारण तौर से कम पड़ा। वायुयान के निर्माण में प्लास्टिक्स लकड़ी के साथ मिलाकर भी प्रयोग में लाए जाते हैं।

आपको विश्वास नहीं होगा कि आप स्वयं भी प्लास्टिक्स बना चुके हैं। क्या आपने कभी आयल पेण्ट का प्रयोग नहीं किया? किसी भी वस्तु को रंग देने के पश्चात् जब आप कहते हैं कि रंग सूख रहा है तो वास्तव में रंग सूखता नहीं, किन्तु उस वस्तु के ऊपर प्लास्टिक्स की एक पतली तह जम जाती है। यह प्लास्टिक्स हवा की आक्सीजन और पेण्ट के मिलने से बनता है। सन् १८७० में सैल्यूलौयड नामक प्लास्टिक्स पहली बार बना। यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। सन् १९०९ में डाक्टर वेकलैण्ड ने थिनोल फार्मल्डीहाइड रेजिन प्लास्टिक्स बनाया जिसे अब वैकेलाइट कहते हैं। यह पदार्थ भी बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ और बहुत से उद्योग-धंधों में इसके कारण बहुत शीघ्र उन्नति हुई। यह पदार्थ विद्युत् की भी बहुत सी मशीनों में काम आया। विद्युत इसके अन्दर प्रवेश नहीं कर सकती और इसको किसी भी प्रकार का रूप बहुत ही सुविधा के साथ दिया जा सकता है। इसके बाद तत्काल ही बहुत से नए

नए प्लास्टिक्स बने। आज किसी भी प्रकार की वस्तु बनाने के लिए उचित प्लास्टिक्स मिल सकते हैं। प्रायः प्रत्येक मास नए-नए प्लास्टिक्स की सूची निकलती है जिनमें अद्भुत और आश्चर्य में डाल देनेवाले गुण होते हैं। प्रति मास सात लक्ष टन से अधिक प्लास्टिक्स बनते हैं।

कोयला, दूध, जल और चूना इत्यादि से इतने सुदृढ़ और सुन्दर पदार्थ कैसे बन जाते हैं, यह बात बड़ी ही रोचक है और साथ ही इसका जानना नितांत आवश्यक है। आज अधिकतर बच्चे मिकैनो (Meccano) नामक मनोरञ्जक आविष्कार से परिचित हैं। इस खेल में धातु की कुछ पट्टियाँ, पहिए, कोए और प्लेटें होती हैं जो पेंच से एक दूसरे से जोड़े जा सकते हैं। इन थोड़े से भागों से कई भिन्न प्रकार के खेल जैसे मोटर, रेल, हवाईजहाज और रेल का पुल इत्यादि बन जाते हैं। प्लास्टिक्स के बनने में भी कुछ ऐसा ही होता है। सात या आठ प्रकार के परमाणु मिलकर सहस्रों प्रकार के प्लास्टिक्स बनाते हैं। इनमें हाइड्रोजन, कारबन, नाइट्रोजन और आक्सीजन मुख्य हैं।

सब प्लास्टिक्स दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं। एक तो वह जो मुलायम होते हैं और गरम करने पर द्रव्य में परिणत हो जाते हैं और दूसरे वह जो फौलाद की भाँति सख्त होते हैं और जिन पर ताप का कोई प्रभाव नहीं होता। कार्बन जैसे साधारण परमाणुओं से इतने लाभदायक पदार्थ कैसे बन जाते हैं, इसको समझने के लिए मैं एक और दृष्टान्त देता हूँ। बालनृत्य (Ball-dance) में एक स्त्री और एक पुरुष का जोड़ा साथ रहता है जो एक दूसरे के दोनों हाथ पकड़े रहते हैं। एक जोड़े का दूसरे जोड़े से कोई सम्बन्ध नहीं होता और इस प्रकार सब जोड़े चल-फिर अथवा नाच सकते हैं। अब सोचिए कि यदि प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपना एक-एक हाथ छोड़ दें तो प्रत्येक जोड़े के पास दो हाथ खाली बचेंगे। यदि एक जोड़ा अपने दोनों हाथ इधर-उधरवाले जोड़े के एक-एक हाथ में पकड़ा दें और प्रत्येक जोड़ा ऐसा ही करे तो सब स्त्री-पुरुष एक-दूसरे से इस प्रकार मिल जाएँगे कि किसी भी प्रकार का चलना-फिरना सम्भव न रहेगा। पहले जो जमाव तरल पदार्थ की भाँति था वह अब एक ठोस पदार्थ बन गया। कार्बन के परमाणुओं में भी ठीक यही होता है। दो कार्बन परमाणु आपस में दो कड़ियों से जुड़े होते हैं। ये कड़ियाँ मनुष्य के हाथ की भाँति हैं। ताप-क्रम बढ़ाने से दोनों परमाणुओं की एक-एक कड़ी अलग हो जाती है और पासवाले परमाणुओं से जुड़ जाती है। यदि परमाणुओं में केवल दो ही कड़ियाँ हुईं तो पहली प्रकार के यानी मुलायम और यदि अधिक कड़ियाँ हुईं तो फौलाद की भाँति सख्त प्लास्टिक्स बनते हैं।

युद्ध के समय में प्लास्टिक्स ने बहुत उन्नति की जिसका हमको अब पता चल रहा है। इनमें सबसे महत्त्व-पूर्ण घर्षण शक्ति का प्रयोग है। दो प्लास्टिक्स अथवा एक प्लास्टिक्स और एक काँच इत्यादि की वस्तु को परस्पर घिसने से जो गर्मी उत्पन्न होती है उसी से वे दोनों वस्तुएँ जुड़ जाती हैं। इस प्रकार एक प्लास्टिक्स का बना भाग किसी भी दूसरे भाग से सुविधा तथा दृढ़तापूर्वक जोड़ा जा सकता है। इन सबका विस्तार-पूर्वक वर्णन रौबर्ट्स एन० फायर ने किया है। युद्ध से पहिले प्लास्टिक्स से वस्तुएँ बनाने में बहुत अधिक दबाव-वाली मशीनों की आवश्यकता पड़ती थी। अब नए-नए तरीके निकाले गए हैं जिनमें उतने अधिक दबाव की आवश्यकता नहीं पड़ती। अधिक दबाववाले तरीकों में साँचे और मशीनें बनाने में व्यय भी काफी पड़ जाता है। किन्तु अभी तक जो कम दबाववाली मशीनों से प्लास्टिक्स बने हैं वह उतने उच्च कोटि के नहीं हैं। इस ओर पूरी सफलता मिलते ही उद्योग-धन्धों में कितनी उन्नति होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन है।

प्लास्टिक्स से लड़ाकू वायुयानों के भागों के अतिरिक्त और भी बहुत-सी वस्तुएँ बनीं जो युद्ध में काम आईं। बन्दूक और छर्रों में भी प्लास्टिक्स का प्रयोग किया गया। गत दस वर्षों में रेडियो ने जितनी उन्नति की है उसका मुख्य कारण प्लास्टिक्स ही है। १९३७ में लग-भग नौ हजार रेडियो के खोल प्लास्टिक्स के बने थे जब कि १९४५ में डेढ़ लाख से अधिक खोल प्लास्टिक्स के बने! प्लास्टिक्स ने रेडियो में और दूसरे रूप में भी सहायता की है। रेडियो के डायल पारदर्शक प्लास्टिक्स के बहुत ही अच्छे सिद्ध हुए हैं। भविष्य में रेडियो में प्लास्टिक्स का इससे भी कई गुणा अधिक प्रयोग होगा। अन्दरूनी भाग बनाने के लिए भी प्लास्टिक्स काम में लाए जा रहे हैं। विद्युत् के तारों पर तो रबड़

या कपड़े के स्थान पर प्लास्टिक्स चढ़ाया ही जाने लगा है।

युद्ध में लड़ते समय जिन सिपाहियों के शरीर के कुछ अंग भंग हो गए हैं वे भी प्लास्टिक्स के कारखानों में कुछ-न-कुछ कार्य कर सकते हैं। इन कारखानों में कठिन-से कठिन और सरल-से-सरल, दोनों प्रकार के कार्य रहते हैं और प्रत्येक प्रकार के मनुष्य को अपनी सुविधा के अनुसार काम मिल जाता है। प्लास्टिक्स की एक ऐसी जाली बनी है जो किसी भी प्रकार के जखम अथवा चोट पर बाँध दी जाती है। इससे बहुत शीघ्र आराम होता है। इससे युद्ध के घायल सिपाहियों को बहुत सहायता मिली। युद्ध से पहिले बड़े-बड़े कारखाने अपने बनाए हुए सामान का प्रचार करने में सहस्रों रुपया व्यय करते थे। युद्ध के बाद विज्ञापन और प्रचार-कार्य में फिर उतना ही रुपया व्यय होने लगा है। इस प्रचार-कार्य में प्लास्टिक्स ने बहुत सहायता की है क्योंकि प्लास्टिक्स की छोटी और सुन्दर वस्तुएँ बहुत सस्ती बन जाती हैं। अमरीका के कारखाने नौ करोड़ डालर प्रति वर्ष प्लास्टिक्स के सामान पर प्रचार-कार्य के लिए व्यय करते हैं।

कुछ विशेष गुणों के कारण कहीं-कहीं पर प्लास्टिक्स धातु से अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। कुछ प्लास्टिक्स ऐसे बन चुके हैं जिन पर तेज-से-तेज तेजाब से भी कोई प्रभाव नहीं होता। ऐसे प्लास्टिक्स के पम्प बनाए गए हैं जिन्होंने विज्ञान की उन्नति में बहुत सहायता की है। इन पम्पों में तेजाब उसी प्रकार इस्तेमाल किया जा सकता है जैसे किसी भी काँच के बर्तन में, किन्तु काँच के बर्तन दबाव पड़ने पर टूट जाते हैं। पेंच और कब्जे बनाने में भी लोहे के स्थान पर प्लास्टिक्स का प्रयोग होने लगा है। शीशे लकड़ी में जड़ने के लिए प्लास्टिक्स के पेंच बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। लोहे के पेंच देखने में सुन्दर नहीं लगते और जड़ते समय शीशा टूटने का भी भय रहता है। प्लास्टिक्स के पेंचों से शीशे को कोई क्षति होने का भय नहीं रहता। अभी हाल में ऐसे प्लास्टिक्स बने हैं जिनमें चमड़े के सभी गुण वर्तमान हैं और जो चमड़े से अधिक चलते हैं। इन पर धूप अथवा वर्षा का कोई प्रभाव नहीं होता। बच्चे की गाड़ियों की ऊपर की हुड, जूते, बटुवे इत्यादि बहुत-सा सामान ऐसे ही प्लास्टिक्स का बनता है।

कमरे को सजाने तथा इसी प्रकार की दूसरी आवश्यक वस्तुओं के निर्माण करने में प्लास्टिक्स ने बहुत सहायता की है। अमरीका के होटेल, रेस्टोरैण्ट तथा बाल काटने की दूकानों जैसे स्थानों में तो प्लास्टिक्स ने जान डाल दी है। होटेल में प्लास्टिक्स की तश्तरियाँ, प्याले और दूसरे बर्तन गिर जाने पर टूटते नहीं। प्लास्टिक्स की मेज पर कोई भी तरल पदार्थ क्यों न गिर जाए, सेवक एक भीगे कपड़े से लापरवाही से पोंछ देता है और मेज का धरातल पहले से भी अधिक स्वच्छ, सुन्दर और आकर्षक हो जाता है। इन होटलों में अभी भी सहस्रों डालरों की प्लास्टिक्स की बनी हुई मेजें तथा दूसरे सामान की आवश्यकता है जो प्रति वर्ष खरीदा जाता है।

अपने दैनिक जीवन में प्लास्टिक्स के महत्त्व को हम सभी जानते हैं। किसी भी कमरे में चले जाइए, आपको ऐश-ट्रे, दरवाजे की मूठ, टेलीफोन, फूलदान, साबुनदानी, किताबदान, प्याले, तश्तरियाँ, बिजली का सामान तथा दूसरी बहुत-सी प्लास्टिक्स की बनी हुई वस्तुएँ देखने को मिल जाएँगी। ज्यों-ज्यों प्लास्टिक्स की उन्नति होगी त्यों-त्यों प्लास्टिक्स से बड़ी-बड़ी वस्तुएँ बनाई जाएँगी। फर्नीचर तो प्लास्टिक्स का बनने ही लगा है। इसमें विशेष लाभ यह है कि बार-बार पालिश की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्लास्टिक्स की मेजें एनेमिल, काँच या फौलाद सभी से अच्छी रहती हैं। यह छूने में ठंढी नहीं लगतीं और इन पर कोई दाग-धब्बा भी नहीं पड़ता। खाने-पीने के सामान में जो प्लास्टिक्स प्रयुक्त होता है उसमें एक विशेषता और होती है। स्वच्छ और सुन्दर होने के साथ-साथ उसमें किसी भी प्रकार की गंध नहीं आती और खाने की वस्तुओं पर किसी प्रकार का रासायनिक प्रभाव नहीं होता। युद्ध के समय सैल्यूलोज प्लास्टिक्स का बड़ा ही अनोखा इस्तेमाल किया गया। इस प्लास्टिक्स से कागज पर युद्ध के नक्शे इत्यादि बनाए जाते थे। पश्चिमी देशों में इस प्लास्टिक्स ने कलाकारों को बड़ा प्रोत्साहन दिया है। पहिले इस प्लास्टिक्स की किसी भी रंग की एक पतली झिल्ली बनाई जाती है; स्प्रे चित्र (Spray painting) बनाते समय चित्र का जो भाग रंग से बचाना हो उस पर यह झिल्ली लगा दी जाती है और फिर अंत में उतार दी जाती है। इस झिल्ली के सुन्दर-सुन्दर अक्षर आदि काट-कर पुस्तकों में लेखों के शीर्षक दिए जाते हैं। इससे किसी

प्रकार की ड्राइंग अथवा चित्र सुविधापूर्वक बना लिया जाता है।

मोटरकार और वायुयान के निर्माण में प्लास्टिक्स का प्रयोग होता है, यह मैं बता चुका हूँ। अमरीका में तो पूरे मकान प्लास्टिक्स के बनाए जा चुके हैं। यदि साँचे तैयार हों तो एक पूरा मकान दो मनुष्य मिलकर दो दिन में बना सकते हैं। किन्तु साँचे तैयार करना उतना आसान काम नहीं है। इसमें कठिनाई भी पड़ती है और लागत बहुत लगती है। प्लास्टिक्स के मकानों में दृढ़ और सुन्दर होने के अतिरिक्त एक विशेषता और भी है; यह गर्मी में गर्म और जाड़ों में ठंडे नहीं होते। रात्रि के समय मकान के भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। प्लास्टिक्स की सहायता से विद्युत् दीपों के प्रकाश को हलका या धीमा और किसी रंग का बिना किसी कठिनाई के बनाया जा सकता है। अभी तक इमारतें, सड़कें, मोटरें और रेलें बनाते समय इंजीनियर के मस्तिष्क में यह समस्या रहती थी कि अमुक रंग के प्रकाश का अमुक प्रबन्ध कैसे किया जाए। किन्तु प्लास्टिक्स ने यह समस्या हल कर दी है। ऐसे बल्बों का आविष्कार हो ही चुका है जिनमें से फ्लोरैसैण्ट (एक प्रकार की ठंढी रोशनी) प्रकाश निकलता है। ऐसे बल्ब और प्लास्टिक्स मिलकर घर के लिए बहुत अच्छा प्रकाश देते हैं। ठीक दोपहर के समय का, जब कुछ बादल हो रहे हों, प्रकाश अच्छा माना जाता है। प्लास्टिक्स और फ्लोरैसैण्ट बल्बों की सहायता से कमरे के अन्दर किसी समय ऐसा ही प्रकाश किया जा सकता है। पता लगा है कि पश्चिमी देशों की लगभग सत्तर प्रतिशत स्त्रियाँ अपने घरों में इसी प्रकार का प्रकाश चाहती हैं। प्लास्टिक्स के रात्रि-दीपक बहुत सुन्दर और लाभदायक बने हैं। ये रात को सोते समय जलाए जाते हैं। इनका प्रकाश नेत्रों को न तो हानि पहुँचाता है और न सोने में कोई बाधा डालता है। पारदर्शक प्लास्टिक्स और बहुत से दूसरे काम आते हैं। ये सर्वप्रथम ब्रिटेन में बने थे। इनके गुण किसी भी प्रकार के शीशे से मिलते हुए हो सकते हैं। विशेषता यह है कि इनके अन्दर से 'अल्ट्रावायलेट लाइट' भी जा सकती है। इनका भार साधारण शीशे से आधा होता है और यह उतनी जल्दी टूटते भी नहीं। कैमरे के शीशे और चश्मे इत्यादि इनसे बनाए जाते हैं। वायुयान की खिड़कियों में इनका विशेष प्रयोग होता है। बाल और धागे की तरह की वस्तुएँ भी प्लास्टिक्स की बनने लगी हैं। 'टूथब्रश' में अब बालों के स्थान पर निलोन (Nylon) प्लास्टिक्स का प्रयोग होता है।

अन्त में प्रश्न यह उठता है कि लकड़ी, लोहा, पत्थर शीशा, रबड़, गटापर्चा, हड्डी और बाल सभी का स्थान प्लास्टिक्स ने कैसे ले लिया? पहली बात तो यह कि प्लास्टिक्स की कोई भी वस्तु साँचे में ढालकर कम परिश्रम तथा कम समय में बनाई जा सकती है। जब एक पूरा मकान दो आदमी मिलकर दो दिन में बना सकते हैं तो आप स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं कि प्लास्टिक्स से वस्तुएँ निर्माण करने में परिश्रम कितना कम हो जाएगा। प्लास्टिक्स को भी रंग दिया जा सकता है जो सदैव उसी प्रकार चमकता रहता है। प्लास्टिक्स की वस्तुएँ अधिक स्वच्छ, अधिक दृढ़ और हलकी होती हैं। ये वस्तुएँ टिकाऊ भी कम नहीं होतीं। प्लास्टिक्स का घनत्व भी इच्छा के अनुसार रक्खा जा सकता है।

भविष्य में प्लास्टिक्स से हमको कितनी सहायता मिलेगी, इस पर जितने भी विचार दौड़ाए जाएँ, थोड़े हैं। मनुष्य के नाक, कान, और बाल इत्यादि के अतिरिक्त नेत्र के अन्दर का कोमल-से-कोमल भाग भी देखने में बिलकुल वैसा ही बनाया जा सकेगा। प्रयोगशाला में बच्चे पैदा करने में (Test tube babies) वैज्ञानिक यदि सफल हो गए तो मनुष्य-शरीर का निर्माण करने के लिए उनको प्लास्टिक्स की ही शरण लेनी पड़ेगी।

इस समय नौकरों की समस्या अन्ताराष्ट्रीय समस्या बन रही है। हम अपना कार्य स्वयं करने के अभ्यस्त होते जा रहे हैं। किन्तु ऐसे भी तो काम चलना कठिन है। यदि वैज्ञानिक प्रयोगशाला को साफ करने और अपनी चाय बनाने में ही व्यस्त रहे तो हम उससे क्या आशा रख सकते हैं! यही बात कलाकारों तथा दूसरे क्षेत्रों में काम करनेवाले पुरुषों के विषय में भी सत्य है। इस कठिनाई को दूर करने में विज्ञान ने बहुत सहायता दी है। उदाहरण के लिए विद्युत् को ही ले लीजिए। विद्युत् के पंखों के आविष्कार से पहले आपको एक कुली की आवश्यकता केवल पंखा खींचने के लिए पड़ती थी। बड़े-बड़े कारखानों में कुछ मनुष्य मिलकर जो सामान कुछ सप्ताहों में तैयार कर लेते हैं, विद्युत्-शक्ति से पहले उतने ही सामान इससे

कहीं अधिक मनुष्य वर्षों में तैयार कर पाते थे। पिछली शताब्दी के मध्य तक मनुष्य के काम करने का औसत लगभग सोलह घंटे प्रति दिन था जब कि आज कोई भी मनुष्य ६ घंटे से अधिक काम नहीं करता। प्लास्टिक्स की सहायता से सेवकों की रही-सही कमी भी दूर हो जाएगी। अमरीका में प्लास्टिक्स के, विद्युत् की सहायता से, नकली नौकर बनाने का प्रयोग हो रहा है। कुछ विशेष कार्यों में तो ये सेवक बहुत ही सफल होंगे। दृष्टान्त के लिए अतिथि-सत्कार ऐसा कार्य है जिसको ये नकली सेवक सफलतापूर्वक कर सकेंगे। जैसे ही मिलने के लिए आनेवाला मनुष्य विद्युत् की घंटी का बटन दबाएगा, यह सेवक दरवाजा खोलकर उसको ड्राइंग-रूम की ओर ले जाएगा और कहेगा, "कृपया बैठ जाइए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?" उसके पश्चात् अतिथि का संवाद अपने मालिक तक पहुँचाएगा और उसका उत्तर लाकर अतिथि को देगा। अतिथि को चाय इत्यादि बनाकर पिलाना इस मनुष्य के लिए कोई बड़ा काम न होगा। हो सकता है कि यह बात आज आपको असम्भव-सी प्रतीत हो किन्तु रेडियो, टेलीविजन इत्यादि के आविष्कार से पहिले क्या आप कभी सोच सकते थे कि यह सब वस्तुएँ आपके व्यवहार में आ सकेंगी ? प्लास्टिक्स से तो इससे भी अधिक आश्चर्यजनक वस्तुओं के आविष्कार होने की सम्भावना है। भारत-सरकार को चाहिए कि 'प्लास्टिक्स इण्डस्ट्रीज' की उन्नति की ओर ध्यान दे। जो भारतीय वैज्ञानिक अपने ज्ञान की सहायता से राष्ट्र की सेवा करना चाहें उनके लिए यह बड़ा अच्छा अवसर है। इतना होने पर भी प्लास्टिक्स में काफी उन्नति की आवश्यकता है। अभी तक ऐसे प्लास्टिक्स नहीं बने जिनका घनत्व अधिक हो या जिन पर ठोंकने-पीटने का बिलकुल असर न हो। निश्चय ही पाषाण-युग और धातु युग से अब हम प्लास्टिक्स-युग में प्रवेश कर रहे हैं।

गीत

श्री नीरव, एम० ए०

तुमने ही तो पथ रोक दिया।

यह हृदय रक्त या पानी है
स्वप्नों की एक कहानी है
अब कह न सकूँगा क्यों तुमने
कहने से पहिले टोक दिया।

अथ अथवा उपसंहार लिए
मैं रहा पीर या प्यार लिए
तुम जानो बात तुम्हारी है
उल्लास दिया या शोक दिया।

अब सुख की राह सुभग न रही
चरणों की वह डगमग न रही
मैं तम का पंथी था भूला
तुमने मुझको आलोक दिया।

जिसने न कूल का मुँह देखा
बनना मिटना जिसका लेखा
तूफान रहा जिसका संगी
उसको हँसकर अवलोक दिया।

सत्रह सौ उनतीस

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

वजीर ने विश्वास कर लिया कि युवक उन्हीं बुर्कापोशों में से है और उसके जीवनचरित में ज्यादा घुस-बैठ की जरूरत नहीं है। तो भी कुतूहलशान्ति के लिए उसने दो-एक सवाल करना जरूरी समझा।

वजीर—"इस शायरी का पता आपको कब और कैसे लगा?"

गुलाब—"इसको बहुत लोग जानते हैं। कोकीजू को भी पता है। इसके अलावा दक्खिन में निजाम के लिए कुमुक भेजने की बात भी जाहिर हो गई है।"

वजीर—"खैर, वह तो कोई बात नहीं। मुगलिया इलाकों में मराठों के ऊधम रोकने के लिए दिल्ली से मदद तो भेजनी ही पड़ेगी।"

गुलाब—"मगर हुजूर जिस सरदार को निजाम की मदद के लिए भेजेंगे, उसके खिलाफ बादशाह किसी ऐसे सरदार को पीछे लगाएँगे जो मराठों से मिलकर निजाम को परेशान करता रहे ताकि निजामुलमुल्क दक्खिन में कोई आजाद सल्तनत न कायम कर सकें।"

वजीर उस पीतवर्ण युवक की जानकारी पर मुग्ध होने लगा; परन्तु वह अपना पूरा विश्वास उसके हवाले नहीं करना चाहता था। बोला,

"निजाम बादशाह के सेवक हैं। उन पर इस किस्म का शक करना गलत है, लेकिन फिर भी आप जो कह रहे हैं इस पर गौर किया जाएगा।"

गुलाब ने समझा वजीर ढुलमुल रहा है। कहा, "हुजूर के पीछे जासूस लगाए गए हैं जो इस बात की तलाश करेंगे कि हुजूर कितने, और कौन कौन से सरदार किस कदर फौज के साथ दक्खिन को रवाना कर रहे हैं। सवाई राजा जयसिंह मालवा के सूबेदार होने की फिक्र में हैं। वह आपके दोस्तों में नहीं गिने जा सकते। मराठों से टक्कर लेने के लिए सिर्फ निजामुलमुल्क हैं। उनकी शतरंज को बिगाड़ने के लिए वहाँ सवाई राजा का कतर-ब्योंत तो चल ही रहा है। यहाँ से भी कोई और भेजा जाएगा। जैसे ही निजाम की ताकत कमजोर हुई आप पर वार पड़ेगा। रोशनुद्दौला वजीर होंगे, 'गन्दी औरत' हकीकत में तख्त-ताऊस पर बैठेगी, राजाओं का बोलबाला होगा और हम लाखों परदेसी खाक में मिला दिए जाएँगे।"

वजीर को अपने भ्रम और सन्देह के बाहर पूरी तौर पर निकल आना पड़ा। बोला, "आपका नाम क्या है प्यारे नौजवान?"

उसने जवाब दिया, "गुलाबखाँ हुजूर।"

वजीर—"नाम में हिन्दुस्थानियत है।"

गुलाब—"मगर जिगर में कतई नहीं। मैं असल में ईरानी हूँ।"

वजीर—"आप जैसा कहते हैं, बाहरवालों के हमदर्द कितने अमीर होंगे?"

गुलाब—"अमीर आजमखाँ, बड़े तोपखाने के मीर आतिश और उनके हजारों सिपाही, हजारों जूताफरोश, हजारों ईरानी, तूरानी, ईराकी वगैरह।"

वजीर—"इसमें शक नहीं कि इस वक्त सीधे रास्ते पर चलनेवाले मुसलमान बड़ी मुश्किलों में हैं और गुमराह लोग मजे उड़ा रहे हैं, लेकिन दूरन्देशी से काम लेना अच्छा होगा। आम लोगों का ख्याल कैसा है?"

गुलाब—"आम लोगों में ज्यादातर वे हैं जो मजहब के पाबन्द हैं और आलमगीरी हकूमत का जलवा दिल्ली में फिर से देखना चाहते हैं। वे किसी भी मुनासिब मौके पर अपनी जान की बाजी लगा सकते हैं।"

वजीर—"कितनी तादाद होगी ऐसे लोगों की ?"

गुलाब—"खास दिल्ली में ही एक लाख से ऊपर होंगे जो हथियार बाँध सकते हैं और जिनका हथियार जौहर दिखला सकता है।"

वजीर स्वयं मजहबी न था, परन्तु उसने ऊपर को आँखें उठाई, थोड़ी देर किए रहा और बोला, "इन्शा अल्लाह! आपको मैं एक खास परवाना देता हूँ। जब जरूरत पड़े और आप चाहें, मुझसे मिलते रहें। आप जहाँ रहते हैं वहाँ अगर कोई खतरा हो तो मीर आतिश की कोठी में चले आइए। आपको तोपखाने में उहदा भी दिए देता हूँ।"

गुलाब ने स्वीकार किया। वजीर का परवाना लेकर वह खुशी खुशी लौट आया।

(८)

सन्ध्या होते ही मुअज्जिन ने अजाँ दी। लोगों ने नमाज पढ़ी। हिन्दुओं ने अपने मन्दिरों में हौले हौले घण्टियाँ बजाई, आरती की और मार्गों की भीड़ कम होगई। एक ताम झाम रोशनुद्दौला के मकान पर आया। उसमें से निकलकर कोकीजू भीतर चली गई। फिर कुछ सरदार पालकियों पर आए और बैठक में मसनदों पर तकियों के सहारे बैठ गए। अपने अपने हुक्के और पानवाले साथ।

रोशनुद्दौला की अन्य बीबियों से अभिवादन लेने-देने के बाद कोकीजू शबनम से मिली। कुशलवार्ता के उपरान्त बातचीत हुई।

कोकी ने पूछा, "गुलाब से फिर कभी मुलाकात हुई?"

इस सीधे सवाल से शबनम जरा मुर्झाई। हड़बड़ाकर बोली,

"नहीं तो? क्यों? क्या बात है?"

उसकी हड़बड़ाहट को स्वाभाविक समझकर कोकी ने कहा, "यों ही पूछा। तुम्हारे मायकेवाले मकान में नहीं है।"

अपनी हड़बड़ाहट को पीकर शबनम बोली, "क्या वह सरकारी नौकरी में नहीं है?"

कोकी—"कई दिन से लापता है। कुछ सरकारी गबन किया है। पकड़े जाने पर सजा पाएगा।"

शबनम—"जरूर पकड़ा जाए और सजा पाए। कमीना है।"

कोकी—"क्यों? कुछ पता लगा कहाँ है?"

शबनम—"मुझको तो हुजूर, कुछ पता नहीं है। ऐसा आदमी भी गुनाह करके सजा न पाए तो फिर कौन पाएगा? कितने का गबन किया उसने?"

कोकी—"कुछ न पूछो बेगम! हिसाब करवा रही हूँ। हिसाब हो जाने पर पता चलेगा। जब पकड़ा जाएगा सख्त सजा दी जाएगी। सरे बाजार जूतों से पिटवाया जाएगा।"

यह बात कोकीजू ने महल में भी कई लोगों के सामने कही थी और अनेक गुप्त मंत्रणाओं की तरह वह महल के बाहर कुछ लोगों में फैल भी गई थी। शबनम के जानने के पहले गुलाबखाँ को कोकीजू की इस सद्भावना का पता लग गया था!

गुलाबखाँ के मन में उसकी प्रतिक्रिया ने बेहद हिंसा जगा दी, आत्म-रक्षा की प्रेरणा ने उसको वजीर के संसर्ग में भेज ही दिया था।

उसी समय एक खवासिन ने सूचना दी कि बैठक में सलाह-सम्मति के लिए आने की उपस्थित सरदार प्रार्थना कर रहे हैं।

कोकी बैठक से लगे हुए एक कमरे में चिक के पीछे जा बैठी। वहीं उसके लिए पान, सुराही, इत्र, हुक्का इत्यादि पदार्थ रक्खे हुए थे।

बैठक में जफरखाँ रोशनुद्दौला आतिथ्य-सरकार के अभिप्राय से नीचे की तरफ बैठा हुआ था। एक ऊँचे आसन पर सवाई राजा जयसिंह और शेर अफगन इत्यादि सरदार यथास्थान बैठे हुए थे। कोकीजू जैसे ही अपने कमरे में आई, चर्चा शुरू हो गई।

रोशनुद्दौला ने सवाई जयसिंह के प्रति मुँह फेरकर कहा, "महाराज, निजामुलमुल्क यहाँ से मराठों के मिटाने का बीड़ा उठाकर गए थे, अब खबर आई है कि वे बाजीराव पेशवा से मिल गए हैं।"

जयसिंह—"नवाब साहब, उनका विचार पहले मराठों के खिलाफ था, क्योंकि राजा गिरधरबहादुर से मालवे की सूबेदारी छीन लेने की उनको आशा थी। राजा गिरधरबहादुर को मराठों ने पूस के महीने में लड़ाई में हराकर मार डाला। अब निजाम अपनी सल्तनत कायम करने की चिन्ता में हैं, इसलिए मराठों से मेल कर लेना चाहते हैं।"

कोकी—"मुहम्मदखाँ बंगश को इलाहाबाद की

सूबेदारी दे दी गई है। वह बुंदेलखंड से फारिग होकर मालवे की ओर चले जाएँगे।"

जयसिंह—"लेकिन हुजूर ने राजा गिरधरबहादुर के कुमार राजा दयाबहादुर के नाम सनद निकलवा दी है और मराठों को मालवे से निकाल बाहर करने का फरमान भिजवा दिया है।"

कोकी—"इसलिए कि नवाब मुहम्मदखाँ बंगश अपने पठानों के साथ बुंदेलखंड में बुड्ढे छत्रसाल से ही अभी उलझे हुए हैं।"

जयसिंह ने मन में कहा, "बुड्ढे छत्रसाल! नाहर बूढ़ा हो जाने पर भी गीदड़ों के लिए बहुत होता है। बुंदेलखंड बनेगा नवाब बंगश का कब्रिस्तान।"

रोशनुद्दौला—"बुंदेलखंड को खतम करने के बाद नवाब बंगश जब मालवा पहुँचेंगे तब दयाबहादुर के पहाड़ को शायद ही मालवे से हटा सकें।"

शेर अफगन—"राजा दयाबहादुर मालवे में अपना राज्य कायम करना चाहते हैं।"

जयसिंह—"इसीलिए मैं और राजस्थान के अन्य राजा उनकी सहायता नहीं करना चाहते।"

कोकी—"तो क्या आपका यह मतलब है महाराज, कि दयाबहादुर और मराठों को आपस में कट मरने दिया जाए और जब दोनों आपस में लड़कर कमजोर पड़ जाएँ तब हम लोग दखल दें?"

जयसिंह—"हुजूर, मेरा बिलकुल यही प्रयोजन है। गिरधरबहादुर तक गनीमत थी, पर दयाबहादुर की जो चिट्ठियाँ हाल में मैंने देखी हैं उनसे साफ पता चलता है कि दयाबहादुर शाही मदद अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए ही चाहते हैं।"

कोकी—"जरा परेशानी की बात है महाराज! नवाब बंगश बुंदेलखंड को छोड़कर मालवे की तरफ कूच कर नहीं सकते। निजामुल्क अपनी गरज में बावले हो रहे हैं, इसलिए राजा दयाबहादुर की मदद करेंगे नहीं। आप उनको इसलिए छोड़ देना चाहते हैं कि कहीं वे अपना राज्य कायम न कर बैठें। बतलाइए क्या किया जाए?"

रोशनुद्दौला—"सवाई महाराज को खुद मालवे की सूबेदारी का बोझ और जिम्मा सिर पर लादना पड़ेगा।"

शेर अफगन—"मेरी समझ में भी इसके सिवाय और कोई इलाज नहीं।"

कोकी—"बादशाह सलामत को इससे बढ़कर खुशी और किसी बात से नहीं मिल सकती। मालवे के हिन्दू लुटने पिटने पर भी मराठों के तरफदार हो जा रहे हैं। अगर महाराज की सूबेदारी में मालवा चला गया तो मराठे दब जाएँगे और मालवे में अमन-चैन हो जाएगा, मगर—"

रोशनुद्दौला—"मगर क्या हुजूर?"

कोकी—"महाराज के चले जाने पर दिल्ली खास में कमजोरी आने का अन्देशा है।"

शेर अफगन—"मुझको इस पहलू का ख्याल न रहा था। हाल ही में एक बात और सुनने में आई है। वह यह कि राजा छत्रसाल की साजिश और दोस्ती नवाब बंगश से हो गई है और वह बंगश को दिल्ली के तख्त पर बिठलाना चाहते हैं। इसमें निजाम उनकी मदद करेंगे। सच झूठ की खुदा जाने।"

कोकी—"मैंने इस अफवाह को एक कान से सुना और दूसरी से निकाल दिया। गैरमुमकिन है। परदेसियों की उड़ाई खबर जान पड़ती है।"

रोशनुद्दौला—"ये कमबख्त ओछे और चौड़े हर तरफ के हथियार हम लोगों के खिलाफ काम में लाते हैं। देखिए, अगर यकीन कर लें तो आपस में न जाने कितनी बदगुमानी न फैले।"

जयसिंह—"हम लोग ऐसी खबरों पर कोई ब्योहार नहीं करते।"

कोकी—"इन्दोर के चौधरी लाला नंदलाल मंडलोई के बारे में मैंने अजीब बातें सुनी हैं। उनके जिम्मे नर्मदा के घाटी की हिफाजत सुपुर्द थी। खबर आई है कि वह मरहठों से मिल गए और उन्होंने हाथ में काफी फौज के होते हुए भी तरह दे दी और मराठों को आराम के साथ नर्मदा पार करके घुस आने दिया।"

जयसिंह—"मराठे इतने काफी मजबूत और तेज हैं कि उनको किसी की नजर-अन्दाजी की जरूरत नहीं है।"

कोकी—"यह भी खबर आई है कि नंदलाल को तरह देने में सवाई महाराज का इशारा मिला था।"

जयसिंह—"मेरा इशारा!"

शेर अफगन—"महाराज का!"

कोकी—"जी हाँ, मगर मुझको यकीन नहीं हुआ। मैंने बादशाह को समझा दिया। वह मान गए।"

जयसिंह--"मेरे ऊपर आपका अनुग्रह हुआ।"

मन में कहा, "तुम तो गिरधरबहादुर और दयाबहादुर को फरमानों में लिखवाओ 'दक्खिन के काफिरों का मुकाबिला करने के लिए ही आपको मालवे की सूबेदारी अता की गई है, और मैं मराठों की सहायता के लिए नंदलाल को इशारा भी न करूँ!"

रोशनुद्दौला--"सवाल यह है कि अब क्या करना चाहिए ? इन ईरानियों-तूरानियों ने हमारे इस सब्ज मुल्क को बेतरह घेर रक्खा है। यहाँ के बनकर ये रहना नहीं चाहते हैं। जब देखो तब गरूर में भरे हुए ईरान-तूरान की हाँका करते हैं, और निगाह रहती है यहाँ की धन दौलत। पर कब हाथ लगे और यहाँ से रफू-चक्कर हों। महाराज के बहुत कहने-सुनने पर बादशाह ने तख्त्ताऊस पर बैठने के बरस दो बरस पीछे जजिया बन्द कर दिया। निजाम ने उसको फिर से लगवाया। वह सब उसी तूरानी गुट्ट को खुश करने के लिए। खैर हुई कि हम लोगों ने निजाम वगैरह की चलने नहीं दी।"

जयसिंह--"सारे हिन्दू आप लोगों के अनुग्रह को मान रहे हैं।"

कोकी--"हम तो और भी बड़े काम कर गुजरें, मगर वजीर की वजह से कदम कदम पर ठेस लगती है।"

शेरअफगन--"मैं तो चाहता हूँ एक दिन इन परदेसियों से हम लोग निबट लें।"

जयसिंह—"नवाब साहब, सब काम मौके पर ही होने चाहिए। इस वक्त सबसे ज्यादा जरूरी काम है कमरुद्दीन को हटाकर नवाब रोशनुद्दौला को वजीर बनाना।"

कोकी—"आपने बिलकुल मेरे मन की कही। मन्जूर करिए नवाब साहब"

रोशनुद्दौला—"मैं तो किसी काबिल नहीं, हुजूर। दिल्ली का वजीर होना काँटों की टोपी सिर पर रखने के बराबर है।"

जयसिंह--"आपका तुर्रा सब तरफ के काँटों को हजम कर जाएगा।"

सब हँस पड़े। सब उपस्थितों ने समर्थन किया।

रोशनुद्दौला ने कहा, "मुझसे भरसक जितनी बनेगी, अपने दोस्तों की खिदमत करूँगा और इन परदेसियों को ऊधम करने से बाज रक्खूँगा।"

सब लोगों ने रोशनुद्दौला को प्रस्ताव की स्वीकृति पर धन्यवाद दिया।

कोकी ने कहा, "अमीर आजमखाँ से मुझको बहुत उम्मेद थी। वह हम लोगों में अब तक शामिल नहीं हुए। न जानें क्यों ?"

रोशनुद्दौला--"जरा सीधे सच्चे बुजुर्ग हैं। वह इस बात को शायद जानते ही न होंगे कि हम लोग भीतर भीतर वजीर कमरुद्दीन से नाराज हैं। उनका कुछ ज्यादा असर भी नहीं है।"

कोकी--"खैर कोई चीत नहीं। ज्यादा सीधे-सच्चे आदमी की, जिसका असर भी कम हो इस वक्त हमको बहुत ज्यादा जरूरत नहीं है। और फिर उनकी लड़की तो हमारे घर में ही है।"

शेर अफगन—"मालवे की सूबेदारी के बारे में और तै कर लीजिए।"

कोकी—"तै ही सा है। सवाई महाराज के सिवाय मालवे को सँभालने का और किसमें बूता है ? मगर जब तक नवाब रोशनुद्दौला साहब को वजीर नहीं बना पाया तब तक महाराज दिल्ली को नहीं छोड़ सकेंगे।"

जयसिंह—"हुजूर ने ठीक फरमाया। अभी मालवे के सवाल को हल करने की उतनी जल्दी नहीं है। अपने लोगों का जहाँ वजीर मुकर्रर हुआ कि वहीं बादशाह की मर्जी हाथ में आई और सल्तनत भर की सारी उलझनें दूर हुईं।"

उसी समय जयसिंह, रोशनुद्दौला और शेर अफगन के मन में यकायक वजीर का बनाया हुआ वह शेर उठ आया—

'आज आलमगीर के तख्त ताऊस पर एक गन्दी स्त्री बैठी हुई है।' और साथ ही प्रतिवाद भी मन में जगा--

'वह गन्दी नहीं है, बादशाह से ज्यादा अच्छी है, हमारा सञ्चालन करने योग्य है।'

कोकी ने दाँत पीसकर सोचा, "कमबख्त कमरुद्दीन कहता था--गन्दी स्त्री तख्त ताऊस पर बैठी है ! अभी तो नहीं बैठी हूँ, पर किसी दिन बैठूँगी, जब कमरुद्दीन को कान पकड़कर—निकाल दूँगी।"

[क्रमशः



हमारा राष्ट्रीय गीत

मनुष्यों का व्यक्तित्व विभिन्न होता है, पर उनका हिताहित एकता में निहित होता है। इस विभिन्नता को एकता में सन्निहित करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है, राष्ट्रीय झण्डा, राष्ट्रीय गीत और राष्ट्र-भाषा। परतन्त्र देशों के विदेशी शासक इन तीनों तत्त्वों को पनपने नहीं देते। यही हमारे साथ भी हुआ था। पर आज हम स्वतंत्र हैं, अतएव इन तत्त्वों के संबंध में स्वतंत्रता-पूर्वक विचार करने के अधिकारी हैं। राष्ट्रीय झण्डे का प्रश्न हमारी कांग्रेस बहुत कुछ पहले ही निर्णय कर चुकी है। हमारी सरकार ने उसमें अशोक का चक्र-चिह्न लगाकर उसे सर्वप्रिय बना दिया है। राष्ट्रीय गीत और राष्ट्र-भाषा के प्रश्न हमारी सरकार की तुष्टीकरण-नीति के कारण अभी तक हल नहीं होसके। यदि बहुमत पर ये प्रश्न छोड़ दिए जाएँ, जनता की सरकार इन पर डिक्टेटरी न करे, तो बहुत शीघ्र इनका भी निर्णय हो जाए। किन्तु खेद है कि इस मामले में हमारी सरकार को जितना अल्पमत का ध्यान है उतना बहुमत का नहीं!

अस्तु; यहाँ हमारा अभिप्राय केवल राष्ट्रीय गीत से है। बंगाल, युक्तप्रान्त और मध्यप्रान्त की सरकारों के 'वन्देमातरम्' गीत को राष्ट्रीय गीत मानने के पक्ष में सम्मति देने पर भी हमारी केन्द्रीय सरकार ने इसे राष्ट्रीय गीत न मान कर अस्थायी रूप से रवीन्द्र बाबू के 'जन-मन-गण-अधिनायक' गीत को राष्ट्रीय गीत स्वीकार किया है; क्योंकि वन्देमातरम् में हमारे मुसलमान भाइयों को संस्कृत शब्दों की अधिकता तथा 'बुतपरस्ती' दिखाई देती है और हमारी वर्तमान सरकार को मुसलमान अल्पसंख्यकों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावना का बहुत बड़ा ध्यान है।

यहाँ दोनों गीतों की तुलना कर लेना ठीक होगा। हमारा बंग प्रान्त जिस प्रकार पहले पराधीन हुआ था, उसी प्रकार वहाँ पहले स्वतन्त्रता की भावना भी उत्पन्न हुई थी। वहीं के साहित्यकारों ने पहले पहल पुरानी शैली त्यागकर स्वतन्त्र-साहित्य की रचना की। स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चटर्जी का 'आनन्दमठ' उपन्यास ऐसी रचनाओं का प्रतीक है। उसकी रचना अपने देश को स्वतन्त्र करने की भावना से हुई थी। उसी के पात्रों, देश-भक्त संन्यासियों (त्यागियों) की मण्डली, से गवाने के लिए वन्देमातरम् गीत की रचना हुई है। उसका स्वरूप यह है:—

वन्देमातरम्।
सुजलाम् सुफलाम् मलयजशीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम् वन्देमातरम्।
शुभ्र ज्योत्स्नापुलकित यामिनीम्,
फुल्ल कुसुमित द्रुम-दल शोभिनीम्,
सुहासिनीम् सुमधुरभाषिणीम्,
सुखदाम् वरदाम् मातरम्, वन्दे मातरम्।
त्रिंश* कोटि कल-कण्ठ निनाद कराले,
द्वित्रिंश कोटि भुजैधृ्त करवाले,
के बोले मा तुमि अबले?
बहुबलधारिणीम् नमामि तारिणीम्।
रिपु-दल वारिणीम् मातरम् वन्देमातरम्।
तुमि विद्या तुमि धर्म तुमि हृदि तुमि मर्म त्वं हि प्राणाः शरीरे,
तोमारई प्रतिमा गड़ि मन्दिरे-मन्दिरे मातरम् वन्देमातरम्।

१—बंगाली भाइयों की प्रान्तीयता के अनुसार आनन्दमठ की रचना बंगाल को स्वतन्त्र करने के लिए हुई थी। इससे उसमें उस समय की बंगाल की जनसंख्या के अनुसार चतुष्कोटि पाठ था जिसे उस समय की भारत की जनसंख्या के अनुसार 'त्रिंशकोटि' कर दिया गया, अब तो 'चत्वारिंश' करना चाहिए।

—लेखक

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणीम् कमला कमल-दल
विहारिणीम्,
वाणीविद्यादायिनीं नमामि त्वाम्,
सुस्मिताम् भूषिताम् धरणीम् भरणीम् मातरम् वन्देमातरम्।
—आदि

प्रत्येक राष्ट्र के राष्ट्रीय गीत में अपने देश के स्वरूप, स्वतन्त्रता, शक्ति, सुन्दरता एवं आत्माभिमान का वर्णन आवश्यक होता है। अथवा यह कहना चाहिए कि इन्हीं भावों के मिलने से राष्ट्रीय गीत बनता है। इस वन्देमातरम् गीत में ये सब भाव भरे हुए हैं और देश में राष्ट्रीय भावना के प्रारम्भ से अब तक बराबर यही गीत गाया जाता रहा है। इसी गीत को गाते हुए न जाने कितने भारतीय देशभक्त देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना बलिदान दे चुके हैं।

दूसरे गीत 'जन-गण-मन अधिनायक' की रचना कवीन्द्र ने सम्राट् पंचम जार्ज की भारत-यात्रा के समय उनके स्वागत में की थी; जिसका आभास इस गीत के पद-पद में पाया जाता है। उसका स्वरूप इस प्रकार है :—

जन-मन-गण-अधिनायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता!
पंजाब-सिन्ध-गुजरात-मराठा-द्राविड़-उत्कल-बंगा।
विन्ध्य-हिमाचल-यमुना-गंगा उच्छल जलधि-तरंगा।
तव शुभ नामे जागे तव शुभ आशीष माँगे गाए तव जय
गाथा। जन मन गण० ! १
अहरह तव आह्वान प्रचारित सुनि तव उदार वाणी।
हिन्दु-बौद्ध-सिख-जैन पारसी-मुसलमान-कृस्तानी।
पूरब-पश्चिम आसे तव सिंहासन पासे प्रेम-हार हय गाथा।
जन-गण-ऐक्य विधायक जय हे भारत-भाग्य विधाता! २
पतन अभ्युदय बन्धुर पन्था युग-युग धावति यात्री।
तुम चिर सारथि तव रथ-चक्रे मुखरित पथ दिन-रात्री।
दारुण विप्लव माझे तव शंखध्वनि बाजे संकट दुःखत्राता।
जन-गण-पथ-परिचायक जय हे भारत-भाग्य विधाता! ३
घोर तिमिर घन निविड़ निशीथे पीड़ित मूर्छित देशे।
जाग्रत तव छिल अविचल मंगल नतनयने अनिमेषे।
दुःस्वप्ने आतंके रक्षा करिले अंके, स्नेहमयी तुमि माता।
जन-गण-दुःखत्रायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता! ४
रात्रि-प्रभातिल उदित रविच्छवि पूर्व उदय-गिरि-भाले।
गाहे विहंगम पुण्य समीरण नव जीवन रस डाले।
तव करुणारुण रागे, निद्रित भारत जागे, तव चरणे नत
माथा।
जय जय जय हे जय राजेश्वर भारत-भाग्य-विधाता! ५

मान लिया कि इसमें स्पष्ट रूप से सम्राट् पंचम जार्ज का नाम नहीं आया है, पर इसके भारत-भाग्य-विधाता और राजेश्वर आदि सम्बोधन किसके लिए माने जाएँगे? क्या फिर से देश में एकतन्त्री शासन की प्रतिष्ठा होगी? इससे यह राष्ट्रीय गीत कहा ही नहीं जा सकता। यह तो एक विदेशी बादशाह की चाटुकारी से भरा हुआ गीत है। वन्देमातरम् जिस प्रकार स्वतन्त्रता की भावना भरता है उसी प्रकार यह परतन्त्रता की भावना भरता है। इसमें राष्ट्रीय गीतों का प्राण, आत्माभिमान, कहीं है ही नहीं। न जाने किस विचार से इसे (अस्थायी रूप से ही सही) राष्ट्रीय गीत स्वीकार किया गया है! ज्ञात होता है इसमें कथित भारत के प्रान्तों और जातियों के नाम पर ही मुग्ध होकर इसे राष्ट्रीय गीत मान लिया गया है। इस पर ध्यान नहीं दिया गया कि इन सबसे भारत-भाग्य-विधाता की जय-गाथा गवाने के लिए और उनके सिंहासन के आस-पास बिठाने के लिए ही इनका नाम लिया गया है। अब तक यह गीत भावुक विद्यार्थियों द्वारा अभिनीत बंगाली नाटकों के अनुवाद में यदा-कदा सुन लिया जाता था। यह नहीं सुना गया कि इसके द्वारा कोई देश-कार्य कभी हुआ हो। इससे इसकी तुलना वन्देमातरम् गीत से हो ही नहीं सकती। यह अस्थायी नहीं एक क्षण के लिए भी हमारा राष्ट्रीय गीत होने के योग्य नहीं है। इससे अच्छा तो रवीन्द्र बाबू का यह गीत है:—

आर्य भुवन-मनमोहिनी,
निर्मल सूर्य करोज्वल धारिणि जनक जननि जननी।
नील सिन्धु-जल धौत चरण-तल,
अनिल विकम्पित श्यामल अंचल,
अम्बर चुम्बित भाल हिमांचल,
शुभ्रतुषार किरीटिनी। आर्य भुवन मनमोहिनी।
प्रथम प्रभात उदित तव गगने,
प्रथम सामरव तव तपोवने,
प्रथम प्रचारित तव वन भुवने,
ज्ञान धर्म कत काव्य काहिनी। आर्य०।
[illegible]कल्याणमयी तुमि धन्या,
देश विदेशे वितरिछ अन्ना,

जाह्नवि-यमुना-विगलित करुणा,

पुण्य पियूष स्तन्यवाहिनी। आर्य०।

राष्ट्रीय गीत में देश के प्रधान पर्वत या नदी का नाम आवश्यक होता है। वन्देमातरम् गीत में इसकी न्यूनता है। इस गीत में वह सब है। अस्तु;

वन्देमातरम् गीत में संस्कृत शब्दों की बहुलता का दोष लगाया जाता है; किन्तु यही उसका वह गुण है, जिसके कारण वह अपने आप एक प्रान्त से देश भर का राष्ट्रीय गीत बन गया है। क्योंकि भारत जैसे विशाल देश में संस्कृत ही ऐसी भाषा है जो सब प्रान्तों में समझी जाती है। जिन्हें वन्देमातरम् या किसी भी भारत के राष्ट्रीय गीत में संस्कृत शब्दों की बहुलता खलती है वे लोग क्या भारत के राष्ट्रीय गीत में अरबी फारसी के शब्द देखना चाहते हैं, जिनका भारतीय संस्कृति से कुछ भी संबन्ध नहीं है। विदेशी शब्दों से भरे गाने से देश में कौन सी स्वाधीनता एवं एकता की भावना की वृद्धि होकर राष्ट्रीय गीत का उद्देश्य पूरा होगा? अस्तु; कुछ भी हो, बिना संस्कृत शब्दों के कोई भी गीत भारत का राष्ट्रीय गीत हो ही नहीं सकता।

दूसरा दोष जो वन्देमातरम् गीत में हमारे मुसलमान भाइयों को दिखाई देता है वह मूर्ति या प्रतिमा का है। ईश्वर अमूर्त है, इससे उसकी मूर्ति बनाना इसलाम धर्म में पाप माना जाता है। पर हमारा देश तो मूर्त है, प्रत्यक्ष है, साकार है। उसके रूप-रंग आकार-प्रकार का वर्णन उतना ही उचित है जितना उसमें रहना और उसका दर्शन करना (देखना)। यदि इसी में किसी को मूर्ति की गन्ध आती है तो विवशता है।[1] और फिर वन्देमातरम् का प्रतिमावाला अंश निकाला या छोड़ा जा सकता है।[2]

—लाल श्री भानुसिंह बाघेल

१—कोई भी धर्म मूर्ति-पूजा की इस सूक्ष्म भावना से बच नहीं सकता; क्योंकि किसी भी धर्म के महत्पुरुषों के चित्र या मूर्ति बनाकर यदि उसका अपमान किया जाए तो उस धर्मवालों को कभी सह्य न होगा। इससे उस मूर्ति या चित्र पर उनकी श्रद्धा प्रकट होती है।

२—कांग्रेस में कदाचित् इस गीत का प्रथमार्ध ही गाया जाता था, प्रतिमावाला अर्धांश छोड़ दिया जाता था —लेखक।

निष्ठुर!

तू जल रहा है उसी गति से। तेरे उदय होने से पूर्व बेचारा पतंगा सभी ओर तेरे लिए भ्रमण करता है, तेरे दर्शन की प्यास को लिए; सुखद मिलन की आशा को लिए। स्वप्नों की दुनिया में विचरण करता हुआ, उम्मीद और आशा की भावना हृदय में रखता हुआ बेचारा चारों ओर चक्कर लगाता है। आखिर दूर कोने में तेरा प्रकाश दीख पड़ता है, खिल उठता है उसका जी। मानो उसकी जन्म-जन्मान्तर की इच्छा पूर्ण हुई हो। विकसित हो उठता है उसका नन्हा-सा कोमल हृदय, आखिर क्यों? उसकी मुराद जो पूरी होती है। तुरन्त बढ़ जाता है और चाहता है गाढ़ आलिंगन। वास्तव में उसके लिए इससे बढ़कर और क्या सुखकर हो सकता है! लेकिन निष्ठुर! तू गर्व से उसी तरह अपने मस्तक को ऊँचा किए हुए है। तुझे उसके दर्शन की चाह भी नहीं! यह कैसी विडम्बना! भोले-भाले पतंगे को इसका किंचित् मात्र भी भान नहीं कि जिससे वह प्रेम करता है, जिसके दर्शन मात्र से महती प्रसन्नता का अनुभव होता है, वही निर्भय उसका उपहास कर रहा है। उसके जीवन से क्रीड़ा कर रहा है! पर बेचारा पतंगा! वह यही समझा है कि उसके जीवन का लक्ष्य प्रेमी के साथ आलिंगन करना ही है। वही तो है उसके प्रणय का मूल्य!

प्रसन्नता के मारे फूला नहीं समाता वह। प्रेमी को रिझाने की दृष्टि से पूरे हाव-भाव से नृत्य कर उसे श्रद्धा के फूल भेंट कर उसकी अर्चना-आराधना करता है, उसके हृदय को जीतने की आशा से, उसे अपना बनाने की अभिलाषा से। किन्तु दीपक के लिए उसका मूल्य ही क्या! आखिर मदोन्मत्त हो खुशी से झूमता हुआ थक जाता है वह। आखिरी आलिंगन की चाह में उससे लिपट जाता है और सो जाता है अपने प्रेमी की गोद में। मानो इसी में उसका सारा सुख निहित है। कितना उच्च आदर्शमय जीवन है उसका! अमर होजाता है वह अपने आदर्श प्रेम के कारण! कितना बड़ा बलिदान है उसका! कवि उसका गुण-गान करते नहीं थकते!

किन्तु उस निष्ठुर दीपक की ओर भी तो देखो। इसी गर्व से अपनी ज्वाला को प्रदीप्त करता हुआ अपना मस्तक ऊँचा किए हुए है मानो उसने विजय पाली हो। ओह! पतंगे के निर्जीव शरीर को देखकर भी उसे उससे

किंचित् सहानुभूति पैदा नहीं होती ! अपने सच्चे प्रेमी के अस्तित्व को मिटा देने के बाद भी यह अभिमानी उसी गति से जल रहा है। मानो उसकी दिवंगत आत्मा का भी परिहास कर रहा हो !

किन्तु वह निष्ठुर दीपक भूल जाता है कि एक का अस्तित्व मिटा देने के बाद स्वयं का अस्तित्व भी क्या आज तक टिका रहा है ! शायद गर्व और अभिमान में वह यह भी भूल जाता है कि जिसके सहारे वह जी रहा है उसको वह स्वयं अपनी ही ज्वाला से भस्म कर रहा है। आखिर होता भी वही है, उसका एकमात्र सहारा एकमात्र अवलम्बन भी समाप्त होजाता है। शायद पतंगे के साथ संवेदना व सहानुभूति दिखाने के लिए इस निष्ठुर की निष्ठुरता का सदैव के लिए अन्त हो जाता है ! दुखमय अन्त है यह !

कहाँ पतंगे का वह आदर्शमय जीवन और कहाँ दीपक का वह दर्दनाक अन्त !

पूँजीपतियों और गरीबों की कहानी में भी इससे कितना सामंजस्य है !!

—हीराचन्द बोहरा, बी० ए०

गीत

यह जग तुमको जान न पाया !
तुमने तो जग को पहिचाना, जग तुमको पहिचान न पाया !

(१)

तुमने करुणा की झोली ले,
हँसकर जग की पीर बटाई ;
ममता के शीतल जल से ही
स्नेह-प्यार की प्यास बुझाई ।
पर दुनिया फूटी आँखों भी
स्नेह-दान यह देख न पाई !
स्नेह-दान अपराध हो गया,
जग ने तुम पर धूल उड़ाई !!
तुमने तो जग को अपनाया, जग तुमको निज मान न पाया !
यह जग तुमको जान न पाया !

(२)

नारी नहीं, लता हो कोमल
सहज तुम्हारा झुक-रुक जाना ;
एक बार भी तुम न झुकीं पर
कभी न दुनिया ने यह माना ।
तुमने तो जीवन में हँसकर
सीखा केवल प्यार लुटाना ;
प्यार स्वयं वरदान नहीं क्या
सीखे कोई प्यार निभाना !
प्यार पुण्य-वरदान जगत का उसमें कहाँ पाप की छाया !
यह जग तुमको जान न पाया !

(३)

स्नेह-निर्झरी, हँसकर तुमने
दोनों हाथों प्यार लुटाया,
शीतलता जग में बिखरा दी
ज्वाला को हँस गले लगाया ।
किन्तु वासनामय इस जग ने
तन देखा, मन जान न पाया ;
मधु यौवन पर हाथ पसारा
अन्तर्मन पहिचान न पाया ।
इसीलिए जग-पथ से तुमने अलग निराला पंथ बनाया !
यह जग तुमको जान न पाया ।

(४)

मानव को अपनी पूजा से
तुमने देव बनाना चाहा,
पाप-पुण्य की दुनिया में ही
तुमने स्वर्ग बसाना चाहा ;
सजनि, चुनौती दे दुनिया को
तुमने स्नेह निभाना चाहा,
अपने अंचल की छाया में
जग शिशु को दुलराना चाहा ;
जिस जग पर की तुमने छाया उसने तुमको ठुकराया !
यह जग तुमको जान न पाया !

—नर्मदाप्रसाद खरे

विदेशों में भारतीय संस्कृति

श्री श्रीदत्त भारद्वाज

भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य—आज सर्वत्र पश्चिमी सभ्यता या संस्कृति का बोलबाला दिखाई देता है; परन्तु यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि अत्यंत प्राचीन काल में तमाम संसार में भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य था। उक्त प्रागैतिहासिक काल में आधुनिक भौतिक साम्राज्यों की स्थापना का प्रारंभ भी नहीं हुआ था, भू-मण्डल का बहुत कम भाग आबाद था, मनुष्य की आवश्यकताएँ कम थीं और उनकी पूर्ति प्रायः स्थानीय रूप में ही हो जाया करती थी। जनपदों का कभी-कभी कोई शासक अश्वमेध या राजसूय यज्ञ के उद्देश्य से दिग्विजय के लिए निकलता था। अन्य निर्बल राज्य उसकी सर्वोपरि सत्ता को स्वीकार करके इन यज्ञों में शामिल हो जाते थे। तदुपरान्त प्रायः उनका किसी प्रकार का आर्थिक या राजनैतिक शोषण स्थायीरूप में नहीं होता था। वास्तव में भारत का साम्राज्य एक सांस्कृतिक साम्राज्य था, जो समस्त लोकों में फैला हुआ था।

पश्चिमी संसार पन्द्रहवीं शताब्दी तक पाताल लोक (अमरीका) से अपरिचित था तथा आकाशवर्ती चन्द्र, मंगल और सूर्य आदि लोकों से आज भी अनभिज्ञ है। भारत के तमाम वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत तथा पौराणिक ग्रंथों में सर्वत्र इन तीनों लोकों में आर्य महर्षियों और राजाओं के जाने का उल्लेख मिलता है। यह सब कपोलकल्पित नहीं है। जिस प्रकार एक शताब्दी पूर्व कोई व्यक्ति रामचंद्र जी के पुष्पक विमान की कल्पना को सत्य स्वीकार नहीं करता था, उसी तरह आज भी अपनी सभ्यता के गर्व में चूर्ण पश्चिमी विद्वान् यह स्वीकार नहीं करते कि आर्य महर्षि भारतीय संस्कृति के प्रचार के लिए अमरीका आदि पाताल लोक के देशों और आकाशवर्ती चन्द्रमा आदि लोकों में पहुँच जाया करते थे, प्राचीन भारतीय ग्रंथों में प्राप्त उल्लेखों तथा इस युग में अमरीका व आस्ट्रेलिया में प्राप्त प्राचीन भारतीय संस्कृति के चिह्नों से यह निर्विवाद सिद्ध है कि भारतीय इतिहास में एक समय अवश्य ऐसा था जब कि भारतीय संस्कृति का प्रसार आर्यावर्त्त की सीमा पार करके तात्कालिक समस्त जम्बू द्वीप (एशिया महाद्वीप), हरिवर्ष (वर्तमान योरप) अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमरीका (पाताल लोक) तक हो गया था।

सांस्कृतिक प्रसार के प्राचीन साधन—यदि यह ठीक मान लिया जाए कि १९वीं शताब्दी के अंतिम भाग से पूर्व द्रुतगामी यातायात के साधन प्राप्त नहीं थे, तो इन दूरवर्ती भूखंडों में भारतीय संस्कृति का प्रचार होना संभव दिखाई नहीं देता। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में तीन प्रकार के साधनों का उल्लेख मिलता है; नौका, रथ, अश्व तथा गज आदि से जल-थल यात्रा, देवजाति-द्वारा निर्मित विशिष्ट प्रकार के रथों और विमानों से आकाशयात्रा तथा ऋषि-मुनियों-द्वारा प्रयुक्त योग-साधन। इनमें अंतिम साधन आज अत्यंत संदिग्ध और अप्रामाणिक प्रतीत होता है, क्योंकि अधिकांश पश्चिमी विद्वान् इसको कोरी कल्पना ही समझते हैं। कुछ भी हो, उपर्युक्त तीनों साधनों से आर्य महर्षि देश-विदेश की यात्रा करते थे और आर्य संस्कृति का प्रचार करते थे। तत्कालीन भारत का संन्यासी वर्ग आज की तरह निष्क्रिय और निश्चेष्ट नहीं था। उस युग के संन्यासी और महात्मा अपना तमाम समय वैदिक ग्रंथों के अध्ययन, नए नए अन्वेषणों की खोज, भारतीय संस्कृति के प्रचार तथा जन-साधारण के कष्ट कम करने के उपाय ढूंढ़ने में व्यतीत करते थे। उनमें से जो देशाटन के लिए जाते थे, वे प्रायः पूर्ण सिद्ध, योगी और आयुर्वेद आदि लोक-हितकारी विज्ञानों के ज्ञाता होते थे और अपने सुख तथा स्वार्थ की चिन्ता न करके निःस्वार्थ भाव से जनता में इहलोक और परलोक में सुख देनेवाले उपदेश देते थे। इनमें नारद जी, व्यास और शुकदेव आदि कई मुनियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, इतिहास प्रसिद्ध सप्तर्षियों का प्रशिक्षण यही काम रहता था।

भारतीय संस्कृति का क्रमिक ह्रास—इस स्वर्ण-युग के बाद भारत के राजनैतिक पतन के साथ साथ भारतीय संस्कृति का ह्रास भी प्रारंभ हो गया। महाभारत युद्ध के बाद कलियुग-आगमन के भय से तमाम ऋषि-मुनि योग-क्रिया से शरीर त्यागकर इस संसार से अन्तर्धान हो गए। चामत्कारिक विद्याएँ प्रायः एक साथ लुप्त हो गईं। मन्त्रकाल का अंत हुआ। आकाशयान केवल कल्पना की वस्तु रह गए। योग की क्रिया से दूरवर्ती देशों में पहुँचनेवाले महात्मा विदा हो गए। महाभारत के बाद किसी भी ग्रंथ में पाताल या आकाश-लोक की यात्रा का कोई वर्णन नहीं मिलता। इस प्रकार अमरीका आदि देशों से लगभग ५००० वर्ष पूर्व भारत का संबंध-विच्छेद हुआ। महाभारत और जैन-बौद्धकाल के बीच का लगभग दो-अढ़ाई हजार वर्ष का इतिहास प्रायः अन्धकार में है। इसके बाद बौद्ध-धर्म की उन्नति के साथ-साथ अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, तिब्बत, चीन, ब्रह्मा, श्याम, हिन्दचीन, समस्त हिन्द पूर्वी द्वीपसमूह तथा सुदूर जापान में भारतीय संस्कृति का पुनर्जागरण हुआ और मुस्लिम संस्कृति के भारत में आगमन तक इन देशों के साथ किसी-न-किसी रूप में भारत का सांस्कृतिक संबंध बना रहा। भारतीय संस्कृति के इतिहास में यह भी एक अत्यंत उज्ज्वल समय था।

मुसलमानों के आते ही भारतीय संस्कृति के साथ मुस्लिम संस्कृति की भीषण टक्कर हुई। मध्य एशिया की प्राचीन संस्कृति को नष्ट करके अग्रसर होनेवाली इस भयंकर आँधी से जात-पाँत और एकता के अभाव से जर्जरित भारतीय संस्कृति लड़खड़ा उठी। भारतीय संस्कृति-प्रधान पूर्वी देशों से भारत का संबंध टूट गया, राजबल और शक्ति के प्रयोग से अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग तथा हिन्द पूर्वी द्वीपसमूह में भारतीय संस्कृति का पराभव हुआ और मुस्लिम संस्कृति की नींव दृढ़ हो गई। औरंगजेब के शासनकाल में उत्पीड़ित भारतीय संस्कृति में पुनः नए उत्साह का संचार हुआ और उसने दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए मुस्लिम संस्कृति के खतरे का प्रायः सदा के लिए अंत कर दिया।

अभी भारतीय संस्कृति सँभलने का प्रयत्न कर ही रही थी कि पश्चिम से एक अत्यंत जबर्दस्त सभ्यता ने भारतीय संस्कृति को धर दबाया। भारत के शिक्षित वर्ग का पूर्ण-तया पश्चिमीकरण हो जाने की आशंका उत्पन्न हुई, परन्तु महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी आदि महापुरुषों ने भारतीय संस्कृति को बचा लिया।

नवयुग का अविर्भाव—गत १५ अगस्त १९४७ से भारत में नवयुग का प्रादुर्भाव हुआ है। भारतीय संस्कृति पुनः जाग उठी है और उसका तेजी से जीर्णोद्धार हो रहा है। सर्वसाधारण की भाषा विदेशी भाषाओं का स्थान ग्रहण करती जा रही है। पश्चिमी सभ्यता में रंगे हुए युवकों का ध्यान भारतीय संस्कृति की ओर आकर्षित हो रहा है। ऐसी स्थिति में यह देखना आवश्यक है कि विदेशों में इस समय भारतीय संस्कृति की क्या स्थिति है और उसके पुनर्जीवन के लिए क्या कदम उठाने की आवश्यकता है।

विस्मृत 'लाल भारतीय'—प्राचीन काल में भारतीय संस्कृति का प्रसार अमरीका आदि अत्यंत दूरवर्ती देशों तक हो गया था; परन्तु हजारों वर्ष से किसी प्रकार का संबंध न रहने के कारण अमरीका के आदिमवासी यह भी सर्वथा भूल गए हैं कि उनका भारत से किसी प्रकार का संबंध कभी था या नहीं। १४वीं शताब्दी तक ये लोग कई लाख की संख्या में वर्तमान संयुक्तराज्य अमरीका, मैक्सिको, दक्षिणी अमरीका के चिल्ली आदि प्रदेशों तथा हिन्द पश्चिमी द्वीपसमूह में बसे रहे। १५वीं शताब्दी में कोलम्बस ने अमरीका पहुँचकर वहाँ के आदिवासियों को 'रेड इन्डियन' या लाल भारतीय नाम दिया। इसके बाद स्पेन के शासन-काल में इन आदिमवासियों का नृशंस नरसंहार हुआ और उनकी बस्तियों को नष्ट कर दिया गया। उन्हें बीहड़ जंगलों में जाकर अपने प्राणों की रक्षा करनी पड़ी। हिन्द पश्चिमी द्वीपसमूह और संयुक्त राज्य में उन पर अपेक्षाकृत अधिक अत्याचार हुए। इसलिए वहाँ उनकी संख्या कुछ हजारों में ही रह गई है; परन्तु मैक्सिको, मध्य अमरीका और दक्षिणी भारत में उनकी संख्या कुल मिलाकर कई लाख तक पहुँचती है। उन पर पश्चिमी सभ्यता का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है; परन्तु अब वहाँ के ईसाई मिशनरियों और वहाँ की ईसाई सरकारों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। इसलिए यदि, कुछ समय और उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया गया, तो इस प्राचीन हिन्दू अमरीका का सांस्कृतिक परिवर्तन हो जाएगा।

इस हिन्दू अमरीका में समय का विभाजन हिन्दू-युगों के अनुसार है और विश्व की आयु का मैक्सिकों का सिद्धान्त भारतीय सिद्धान्त से मिलता है। लाल भारतीयों में जो इंका लोग हैं, वे आज भी 'रामसीतव' (राम-सीता) त्यौहार धूमधाम से मनाते हैं। मैक्सिको में प्रायः भारतीय ढंग की रोटी और शाक-भाजी का व्यवहार है और उनकी प्राचीन नृत्यकला भारतीय नृत्यकला से बिलकुल मिलती-जुलती है। हिन्दुओं के समान मन्दिरों का निर्माण, हिन्दू धार्मिक रस्मों का अनुकरण, गणेश, इन्द्र आदि देवताओं की पूजा, हिन्दू-शिक्षा-पद्धति का अनुकरण, पुरोहितों की व्यवस्था, दाह संस्कार और आज भी कुछ सीमा तक सती-प्रथा में विश्वास रखना इस बात के स्पष्ट द्योतक हैं कि वे कभी हिन्दू थे और दोनों अमरीका महाद्वीपों में भारतीय संस्कृति का बोलबाला था। इस संबंध में श्री चमनलाल ने पूरी छान-बीन के बाद 'हिन्दू अमरीका' नामक पुस्तक अभी हाल ही में प्रकाशित की है तथा भारतीयों का ध्यान इन चिरकाल से विस्तृत लाखों हिन्दुओं की ओर आकर्षित किया है। आज भी मैक्सिको को लाल भारतीय महिला को देखकर उसके भारतीय होने पर कौन सन्देह कर सकता है। उसका धोती का पहनावा बिलकुल भारतीय महिलाओं-जैसा है।

आस्ट्रेलिया के द्राविड़ आदिमवासी—योरप के निर्दयी प्रारंभिक आगन्तुकों ने आस्ट्रेलिया के आदिम-वासियों को भी नहीं छोड़ा। उन्हें मारकर तटवर्ती क्षेत्रों से आन्तरिक भाग की ओर भगा दिया गया। आस्ट्रेलिया के आदिवासी निश्चित रूप से द्राविड़ हैं। उनका रंग-रूप, डील-डौल तथा आचार-व्यवहार दक्षिणी भारत के द्राविड़ों से मिलता-जुलता है; परन्तु वे इस बात को भूल गए हैं कि उनका भारत से किसी समय संबंध था। इनकी संख्या अब कुछ हजार ही रह गई है। वे प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं और अब उनकी अधिक अवहेलना उचित नहीं है।

लगभग ७०० वर्ष पूर्व तमाम हिन्द पूर्वी द्वीपसमूह में भारतीय संस्कृति थी, परन्तु आज वहाँ इस्लाम का बोलबाला है। केवल एक छोटे द्वीप बाली में किसी न-किसी रूप में विशुद्ध भारतीय संस्कृति विद्यमान है। बाली द्वीप के हिन्दुओं से सम्पर्क कायम करने के लिए अभी तक कोई प्रयास नहीं किया गया है।

ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीय—अमरीका और आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त संसार के अनेक भागों में फैले हुए ब्रिटिश साम्राज्य के अधिकांश उपनिवेशों में लाखों ऐसे भारतीय हैं, जो १६ वीं शताब्दी में वहाँ गोरों की नई बस्तियाँ बसाने के लिए श्रमिकों के रूप में गए थे और बाद में ठेके की अवधि समाप्त होने पर वहीं बस गए थे। ये भारतीय सुदूर ट्रिनीडाड, जमैका, दक्षिणी अफ्रीका, पूर्वी अफ्रीका, फिजी, मारिशस, लंका, ब्रह्मा तथा मलाया आदि में कई-कई लाख की संख्या में हैं। भारत की पराधीनता के कारण उपर्युक्त देशों में इन भारतीयों के राजनैतिक अधिकारों की सर्वथा अवहेलना की जाती रही है। अधिकांश स्थानों में समाज से बहिष्कृत व्यक्तियों की तरह उन्हें अलग बस्तियों में रहना पड़ रहा है।

ट्रिनीडाड में भारतीय संस्कृति का भीषण ह्रास—भारत से बहुत कम सम्पर्क रहने के कारण इन उपनिवेशों के भारतीयों पर पश्चिमी सभ्यता का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है और कहीं-कहीं तो भारतीय सभ्यता नाममात्र के लिए शेष रह गई है। भारत से १०००० मील से अधिक दूरी पर हिन्द पश्चिमी द्वीपसमूह में ट्रिनीडाड द्वीप में लगभग ४ लाख भारतीय निवास करते हैं। लगभग एक शताब्दी से उनका भारत से बहुत कम सम्पर्क रहा है। इसलिए इन भारतीयों का लगभग ६० प्रतिशत पश्चिमीकरण हो चुका है। महिलाओं तक ने पश्चिमी वेष-भूषा को अपना लिया है। भारतीय भाषाओं को जाननेवाले केवल कुछ इने-गिने व्यक्ति ही रह गए हैं और छोटे बच्चों में उनकी संख्या सर्वथा नगण्य है। भारतीय नृत्य, गायन और कविता के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं रह गया है। भारतीय संस्कृति या भारतीय भाषाओं के लिए वहाँ कोई विद्यालय नहीं है। उनकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी में ही होती है। यदि एक शताब्दी और इसी प्रकार बीत गई तो ये भारतीय भी अमरीका के भारतीयों की तरह विस्मृत हो जाएँगे। भारतीय इस द्वीप की कुल जनसंख्या का एक तिहाई भाग हैं परन्तु अमरीका के निकट होने के कारण उन पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव तेजी से पड़ रहा है।

मारिशसः—यह द्वीप हिन्द महासागर में स्थित होने

के कारण भारत से अधिक दूर नहीं है, परन्तु यहाँ भी संस्कृति की स्थिति चिन्ताजनक है। यहाँ भारतीयों की जन-संख्या लगभग ३।। लाख है, जो द्वीप की कुल जनसंख्या का ७० प्रतिशत है; शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। और किसी सरकारी विद्यालय में भारतीय भाषाओं के पढ़ाने की व्यवस्था नहीं है। अधिकांश भारतीय जनता अशिक्षित है और शीघ्रता से पश्चिमी सभ्यता को अपनाती जा रही है। सामाजिक या सांस्कृतिक प्रचार के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। इस दिशा में आर्यसमाज की ओर से कुछ प्रयास किया गया है, परन्तु वह पर्याप्त नहीं है।

फिजी, दक्षिणी अफ्रीका, पूर्वी अफ्रीका, लंका, बर्मा और मलाया के भारतीय यद्यपि भारतीय संस्कृति को भूल नहीं गए हैं, परन्तु वहाँ भी भारतीय संस्कृति का दिन-प्रति-दिन ह्रास हो रहा है। स्वदेश से दीर्घकाल से सम्बन्ध-विच्छेद भारतीय भाषाओं के शिक्षणालयों व भारतीय साहित्य के अभाव की स्थिति में और आशा ही क्या की जा सकती है! इन सभी देशों में भारतीयों की संख्या कई लाखों में है।

भारतीय साहित्य का अभाव—भारत में हिन्दुओं के पास जितना धार्मिक तथा सांस्कृतिक साहित्य है, उतना शायद ही अन्य किसी धर्म में हो; परन्तु मुख्य समस्या उसके प्रकाशन की है। वेद, उपनिषद्, दर्शन-शास्त्र, रामायण, महाभारत और गीता भारतीय संस्कृति के मुख्य ग्रन्थ हैं; परन्तु रामायण और गीता को छोड़कर शेष ग्रंथों का प्रकाशन विदेशी भाषाओं में तो क्या, भारतीय भाषाओं में भी बहुत कम हुआ है। आज योरप की सभी भाषाओं में बाइबिल की पुस्तकें काफी संख्या में मिल सकती हैं, परन्तु भारत की राजधानी दिल्ली में भी वेद या उपनिषद् की हिन्दी में प्रतियाँ मिलनी असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य हैं। भारत के सांस्कृतिक तथा राजनैतिक पतन का एक मुख्य कारण यह भी है। ज्यों-ज्यों जन-साधारण की भाषा संस्कृत से भिन्न होती चली गई, जनता प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अमूल्य ज्ञान से वंचित होती गई। सामयिक भारतीय भाषाओं में प्राचीन ग्रंथ सुलभ नहीं थे और संस्कृत का अध्ययन केवल एक वर्ग-विशेष के कुछ व्यक्तियों का ही कार्य रह गया। अतः भारतीय संस्कृति की उन्नति के लिए प्राचीन ग्रंथों का सरल आधुनिक भाषाओं में अधिकतम प्रकाशन आवश्यक है। इन पुस्तकों को कम दामों पर उपनिवेशों में जहाँ जहाँ भी भारतीय रहते हैं, काफी अधिक संख्या में भेजा जाए।

योरप व अमरीका की जनता आज भी भारत की महान् संस्कृति से सर्वथा अपरिचित है, क्योंकि उन तक भारतीय संस्कृति का संदेश पहुँचाने का बहुत कम प्रयास किया गया है। जर्मन, रूसी या अंग्रेजी भाषाओं में प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का उल्था करने का प्रयास उन्हीं देशों के विद्वानों ने अभी तक किया है। परन्तु भारत की किसी संस्था ने प्राचीन भारतीय ग्रन्थों को उपर्युक्त भाषाओं में प्रकाशित करके उन देशों में वितरण करने की अभी व्यवस्था नहीं की है। जब तक ऐसा साहित्य उन देशों में नहीं पहुँच जाता तब तक हम उनकी दृष्टि में अत्यन्त हीन बने रहेंगे। ऐसा होने पर भारत का बौद्धिक जीवन योरप के क्षुब्ध जीवन पर सहसा प्रभाव डाल सकेगा।

विदेशों से सम्पर्क—गत ८०० वर्ष से अर्थात मुसलमानों के भारत पर छा जाने के उपरान्त भारत का निकटवर्ती पूर्वी देशों से भी सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। जिसका परिणाम यह हुआ है कि विदेशी संस्कृतियाँ तो भारत पर प्रभाव डालती रहीं, परन्तु भारत अपना संदेश दूसरे देशों तक नहीं पहुँचा सका।

अब समय बदला है। विदेशों से सांस्कृतिक तथा राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए स्वतंत्र भारत की सरकार दनादन विदेशों में भारतीय दूतावास खोलती जा रही है। यह कार्य सराहनीय होने के अतिरिक्त आवश्यक भी है; परन्तु इन दूतावासों के सांस्कृतिक प्रसार-विभागों में कार्य करने के लिए भारतीय संस्कृति के प्रकाण्ड पंडितों तथा साथ-साथ उक्त विदेशों की भाषाओं के विद्वानों की अत्यन्त कमी है। सौभाग्य की बात है कि भारत सरकार और भारतीय विश्वविद्यालयों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है; तथापि इसके लिए अभी पर्याप्त प्रयत्न नहीं किया गया है। वास्तव में विदेशों में भारतीय दूतावासों को भारत के सांस्कृतिक केन्द्र बना देने की आवश्यकता है।

अमरीका और आस्ट्रेलिया के आदिवासियों का भारतीय संस्कृति से सम्बन्ध स्थापित करना सहज कार्य नहीं है। इसके लिए सरकार और जनता के संयुक्त प्रयास की आवश्यकता है। महान् त्यागी, तपस्वी और

सर्वस्व की बाजी लगाकर कार्य करनेवाले महात्माओं द्वारा ही यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। विदेशों में बसे हुए भारतीयों में धर्म और संस्कृति का प्रचार करने का कार्य आर्यसमाज, सनातनधर्म, महासभा आदि धार्मिक संस्थाओं को उन देशों में स्थित भारतीय दूतावासों का सहयोग लेकर करना चाहिए।

भारत-सरकार की योजना—यह अत्यन्त सौभाग्य की बात है कि भारत की केन्द्रीय सरकार ने भारतीय संस्कृति, कला और साहित्य की उन्नति के लिए शीघ्र ही भारतीय सांस्कृतिक समिति (ट्रस्ट) की स्थापना की घोषणा की है। उक्त प्रस्तावित समिति कला-साहित्य और गायन तथा नृत्य और नाटक की उन्नति के लिए तीन अखिल भारतीय शिक्षणालय खोलेगी।

भारत-सरकार पड़ोसी राष्ट्रों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने की योजना तैयार कर रही है और हिन्देशिया में स्थित प्राचीन हिन्दू मन्दिरों के भग्नावशेषों के जीर्णोद्धार के प्रश्न पर विचार करने के लिए शीघ्र ही एक भारतीय मिशन हिन्देशिया भेजा जाएगा। भारत सरकार दक्षिण पूर्वी एशिया के अन्य देशों को भी सांस्कृतिक मिशन भेजने के प्रश्न पर विचार कर रही है।

भारत और भारतीय संस्कृति का भविष्य उज्ज्वल है। आशा है मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगीराज श्रीकृष्ण, महात्मा बुद्ध तथा सत्य और अहिंसा के उपासक पूज्य महात्मा गांधी की भारतीय संस्कृति वैज्ञानिक चकाचौंध से भ्रम में पड़े हुए संसार का पथ-प्रदर्शन करेगी।

—:०:—

वैदिक देवता उषस्

श्री यादवकृष्ण अवधिया, बी० ए०

वैदिक-साहित्य में कवित्व की दृष्टि से 'उषस्' को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। जिन २० पद्यों में 'उषस्' की स्तुति की गई है, वे गीति-काव्य की दृष्टि से अमूल्य ठहरते हैं। ऋग्वेद में लगभग ३०० बार 'उषस्' का निर्देश किया गया है, जिससे यह जाना जा सकता है कि उस समय के कवि तथा जनता पर 'उषस्' के सौंदर्य का कितना अधिक प्रभाव पड़ा होगा! इसी ऋग्वेद में दी गई शुनःशेप की कथा से भी उषा देवी की महत्ता प्रकट होती है। शुनःशेप बलि के लिए बाँध दिए जाते हैं। वे क्रमशः अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देवताओं की स्तुति करते हैं पर वे उसे बन्धन-पाश से मुक्त करने में असमर्थ रहते हैं। अन्त में वे उषा देवी की प्रार्थना करते हैं और वही वात्सल्यमयी माता की तरह उन्हें वरुण-पाश से मुक्त करती है। तभी से शुनःशेप भी मन्त्रद्रष्टा ऋषि माने जाने लगते हैं। अस्तु!

पाठकों के समक्ष मनोरंजनार्थ कुछ ऋचाएँ और उनके अनुवाद नीचे दिए जाते हैं—

उषः। भद्रेभिः। आ। गहि। दिवः। चित्। रोचनात्। अधि। वहन्तु। अरुणप्सवः। उप। त्वा। सोमिनः। गृहम्॥

हे उषे! अपने भद्र अश्वों पर चढ़कर तुम स्वर्ग के प्रकाशमान लोकों से आओ। तुम्हारे रक्तवर्णवाले अश्व तुम्हें सोमयज्ञ करनेवाले यजमान के घर पहुँचाएँ।

सुपेशसम्। सुऽखम्। रथम्। यम्। अधिऽस्थाः। उषः। त्वम्। तेन। सुऽश्रवसम्। जनम्। प्र। अव। अद्य। दुहितः दिवः॥

हे स्वर्ग की पुत्री उषे! अपने मनोहर सुवर्ण-रथ पर चढ़कर आज उस व्यक्ति के पास जाओ, जो तुम्हारी स्तुति कर रहा है।

वयः। चित्। ते। पतत्रिणः। द्विऽपत्। चतुःऽपत्। अर्जुनि। उषः। प्र। आरन्। ऋतून्। अनु। दिवः। अन्तेभ्यः। परि॥

हे शुभ्रवर्णवाली उषे! तुम्हारा आगमन देखकर मनुष्य, चौपाए तथा आकाश के छोर से पक्षीगण तीव्रता से गमन कर रहे हैं।

विऽउच्छन्ती। हि। रश्मिभिः। विश्वम्। आऽभासि। रोचनम्। ताम्। त्वाम्। उषः वसुऽयवः। गीःऽभिः। कण्वाः। अहूषत॥

हे उषे! तुम अपनी किरणों से अन्धकार दूर करती हुई, अपने तेज से सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशयुक्त करती हुई प्रकाशित होती हो। तेज और कान्ति की इच्छा रखने-वाले कण्व ऋषिगण स्तुति से तुम्हारी प्रार्थना करते हैं।

विश्वम्। अस्याः। ननाम। चक्षसे। जगत्। ज्योतिः। कृणोति। सूनरी। अप। द्वेषः मघोनी। दुहिता। दिवः। उषाः। उच्छत्। अपः। सिधः।

हे स्वर्ग की मनोहर पुत्री उषे! सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे तेज के प्रति नतमस्तक होता है। हे ज्योतिर्मयी तुम हमारे शत्रुओं और विघ्नकारियों को दूर करो।

——

सामयिक साहित्य

कांग्रेसजन और जनता का संघर्ष

सहयोगी 'वीर अर्जुन' में श्री शिवचरणलाल शर्मा लिखते हैं—

कांग्रेसजन और जनता का संघर्ष आज इतना बढ़ चला है कि उसका प्रभाव देश के शासन पर प्रत्यक्षः दृष्टिगोचर हो रहा है। देश की लोकप्रिय सरकार के इतने थोड़े समय में अप्रिय हो जाने के अनेक कारणों में से यह एक मुख्य कारण है। कांग्रेसजन तो अपने को शासकवर्ग समझते हैं। वे अपने लिए विशेषाधिकार चाहते हैं। वे जनसाधारण से अपने को ऊँचा भी समझते हैं। वे उन कांग्रेसजनों को कांग्रेसजन नहीं मानते जो सन् १९४२ में जेल नहीं गए। उनकी पूर्व की सारी सेवाएँ, सारी तपस्याएँ उनकी दृष्टि में बेकार हैं। वे इन्हें अविश्वसनीय समझते हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण उस समय देखिए जब कोई कांग्रेसी नेता किसी जिले या नगर में पधारते हैं। मिनिस्टरों के आने पर तो यह उग्र रूप धारण कर जाता है। किसी नेता, सभा-सचिव या मिनिस्टर के आने पर कार्यकर्ताओं की बैठक होती है। उसमें दो बातें होती हैं। एक तो अधिकारीवर्ग की शिकायतें और दूसरा उनका कार्यकर्ताओं को उपदेश। यहाँ कोई गोपनीय बात नहीं होती। वह तो केवल सम्पर्क बनाए रखने का साधन होता है। यह आवश्यक भी है, लेकिन इसी पर इतनी रोक-थाम, धक्कामुक्की होती है कि बहुत से लोग फटकने तक नहीं पाते।

लखनऊ में एक कांग्रेसजन हैं। किसी समय वे प्रान्त के सुपरिचित देशभक्तों में थे। आज नहीं हैं। उन्हें कांग्रेस के किसी कार्य में बुलावा नहीं दिया जाता। उनकी गणना कांग्रेसजनों में नहीं रही। वे सन् १९४२ में अपने ऊपर छाप नहीं लगवा सके। सन् ४२ के ब्रांडवाले उनकी गणना किसी में नहीं करते। वैसे पन्त जी से लेकर प्रान्त के अनेक प्रमुख नेताओं से उनके गहरे सम्बन्ध हैं। परन्तु आज वे कांग्रेसजन नहीं हैं।

जनता का झगड़ा

एक ओर पद पाकर मद बढ़ता है तो दूसरी ओर उसे देखकर ईर्ष्या होती है। यह स्वाभाविक है। जनता की माँग है कि इस समय कोई अछूत नहीं है। पहले दो वर्ग थे। एक अँग्रेजों का हिमायती और दूसरा देशभक्तों का साथी। जनता कहती है, डंके की चोट कहती है, कि अब अँग्रेज चले गए, तो सारा देश स्वतन्त्र हो गया। इस स्वतन्त्र भूमि पर सब को समानाधिकार प्राप्त है। पुराने देशभक्तों की पूजा की जाए, उन्हें पेंशनें दी जाएँ, इसमें जनता को उज्र नहीं है, लेकिन जनता इस भेद-भाव को सहन करने को तैयार नहीं है कि हर मामले में कांग्रेस के पैमाने से नापा जाए।

उदाहरण के लिए युक्तप्रान्त में जिला बोर्ड के चुनाव हुए। कांग्रेसजनों को जनता ने वोट दिए, सभी की विजय हुई; लेकिन अनेक जिलों में बोर्ड के सदस्य अपढ़ जैसे चुने गए। आज कितने ही जिला बोर्डों की शिक्षा कमेटियों के चेयरमैन अपढ़ हैं। उन्हें ज्ञान नहीं कि शिक्षा क्या है, उसके प्रचार व प्रबन्ध के लिए क्या-क्या किया जाता है। एक जिले की शिक्षा की बागडोर अपढ़ व्यक्ति के हाथ में होना जनता सहन करने को तैयार नहीं है। फिर चाहे वह सन् १९४२ के ब्रांड के हों या उससे भी कोई ताजा ब्रांड के।

जनता कहती है कि जिन्होंने त्याग किए थे, देश के लिए यातनाएँ भोगी थीं, क्या वह सब इसीलिए था कि उससे उन्हें देश पर हुकूमत करने का विशेष सर्टीफिकेट मिल जाएगा? फिर तो यह एक वर्ग का शासन हुआ। स्वतन्त्र देश में जनता अपना शासन चाहती है। या यों कहिए कि छुआछूत को मिटाना चाहती है। इसमें जहाँ एक ओर पद का मोह है वहाँ दूसरी ओर निश्चय ही ईर्ष्या भी है। राजनैतिक चेतना के युग में आप इसकी अवहेलना नहीं कर सकते। यदि कांग्रेस को जीवित रहना है तो आप को चुनाव में उम्मेदवार खड़े करते समय अपना दायरा बढ़ाना होगा और सिद्ध करना होगा कि कांग्रेसजनों ने अपने हाथ में सत्ता

हथियाने के लिए नहीं, बल्कि जनता को उसे सौंप देने के लिए स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा था।

कल की बात है। मथुरा में नेता जी दिवस मनाया गया था। उसके संयोजक कांग्रेस के पुराने योद्धा होने के साथ-साथ सन् ४२ के ब्रांड होने का सौभाग्य भी रखते थे। ये जिला कांग्रेस के उप-सभापति भी हैं। उन्हें एक नई सूझ सूझी। उन्होंने इस दिवस को मनाने के लिए पुराने टोडी आज के समाजवादी, आर्यसमाजी, कांग्रेसी तथा अकांग्रेसी सभी दलों के कुछ व्यक्तियों की एक मीटिंग बुलाई। फलतः यहाँ जो नेता जी दिवस मनाया गया वह अभूतपूर्व था—उससे यहाँ की कांग्रेस में पुनः जान-सी आ गई। लेकिन संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचय भी मिला। एक कांग्रेसीजन ने एक कांग्रेस के पुराने सेवक से जो जेल से हमेशा भागे पर कांग्रेस की सदैव सेवा की, धीरे से कहा कि सभा में ये अमुक रायबहादुर की ओर से बोलेंगे। इन्हें बड़ा क्रोध आया और गालियाँ देने लगे। इतने में वही रायबहादुर साहब आ गए और वे बोले। उनका भाषण मार्मिक था। कांग्रेस ने उन रायबहादुर को पहली बार अवसर दिया और किन्हीं अंशों में उनकी छूत को हटाया, लेकिन अनेक कांग्रेसियों को यह अप्रिय था।

इस वातावरण में लोगों को आप अपने से कोसों दूर रखना चाहते हैं, जो आप के निकट आना चाहते हैं, लेकिन आपकी विजय-दुन्दुभि कितने दिन तक बजेगी? कांग्रेस के सन् ४२ के ब्रांडवालों की कितनी संख्या है? उनके बल पर आप कितने दिन तक टिके रहना चाहते हैं? प्रश्न साफ और सीधा है। इस वातावरण में कांग्रेस को जीवित रखने और देश पर कांग्रेस का राज्य रखने के लिए आपको फासिस्टवाद की शरण लेनी पड़ेगी। डंडे के जोर से तब तक राज करना होगा जब तक आपको जोरदार धक्का देनेवाली किसी दूसरी पार्टी का प्रादुर्भाव नहीं हो जाता। और या फिर जनता का बिना भेदभाव के पूर्ण सहयोग प्राप्त करना होगा, राजनैतिक छुआछूत मिटानी होगी, लोगों को अपनाना होगा, उन पर यह गहरी और अमिट छाप बिठानी होगी कि आप में और उनमें कोई अन्तर नहीं है।

सफलता बनाम असफलता

हैदराबाद, काश्मीर तथा एशियाई कान्फ्रेंस से भारत की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी है कि आश्चर्य होता है। इसके लिए हमें अपने नेताओं पर गर्व है। इनसे अधिक सफल नेताओं की कल्पना नहीं की जा सकती। लेकिन जहाँ इनकी धाक विदेशी राजनैतिक क्षेत्रों में बढ़ी है वहाँ घर में घटी। 'बाहर मियाँ जिल्लेदार, घर में बीवी झोंके भाड़' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। देश की जनता में राष्ट्रीय सरकार के प्रति घोर असन्तोष है जिसका आधार अधिकांश में भ्रम ही है। सरकार का प्रचार-विभाग निकम्मा है। सरकारी नीति का स्पष्टीकरण जनता तक नहीं पहुँचता। वह अँधेरे में रहती है और गलत अटकलें लगा कर टीका-टिप्पणी करती है। यह असन्तोष सरकार की जड़ों को निर्बल करता है।

आज देश में मँहगाई के कारण, आर्थिक संकट और उससे पैदा होनेवाली स्थिति से हड़तालों का बवंडर हमारे सिर पर है। आवश्यकीय वस्तुओं के न मिलने से लोगों को घोर कष्ट है। भ्रष्टाचार पहले से अधिक प्रतीत होता है।

आज सरकार ने अनेक नई योजनाएँ एक साथ चालू कर दी हैं, जब कि उनको पूरा करने या कार्यान्वित करने की क्षमता है नहीं। इसीलिए अधिकारी परेशान हैं। इतना काम बढ़ गया है कि कोई काम पूरा ही नहीं हो पाता और कार्य पूरा न होने तथा अत्यधिक देर के कारण जनता में असन्तोष और बढ़ता है।

कार्य पूरा न होने का एक कारण है सभा-सचिवों तथा मंत्रियों का दौरा। कभी कभी तो प्रति सप्ताह एक के आने का औसत हो जाता है। बस एक के आने पर शासन की मशीन का कार्य दो-दो तीन-तीन दिन तक रुक जाता है और एक दिन का कार्य रुक जाने से सारी अवस्था गड़बड़ में पड़ जाती है।

मिनिस्टरों को जो दावतें दी जाती हैं उनसे भी शासन पर बड़ा कुप्रभाव पड़ता है। जो सज्जन दावत देते हैं उन्हें शासक हाकिम समझते हैं कि इनकी पहुँच मिनिस्टरों तक है। अतः सब उनसे घबराते हैं। इसलिए नेताओं, मंत्रियों और सभा-सचिवों को इसका ध्यान रखते हुए यह देखना आवश्यक है कि "घर में बीवी झोंके भाड़" वाली बात दूर हो और देश के आन्तरिक शासन का स्तर ऊँचा उठे। यह जनता की तत्त्व की आवश्यकता है और सरकार के प्रति बढ़ते हुए असन्तोष का भी बहुत बड़ा कारण है।

काम की किताबें



१—अचल मेरा कोई (उपन्यास)—लेखक, श्री वृन्दावनलाल वर्मा; प्रकाशक, मयूर प्रकाशन, झाँसी; पृष्ठ २८२; मूल्य ३॥।) रु०।

ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में वर्माजी बेजोड़ हैं। उनके उपन्यासों की भाषा सरल, प्रवाहमयी और शैली रोचक तथा प्रभावोत्पादक होती है। प्रस्तुत उपन्यास में भी यही सब विशेषताएँ हैं।

इस उपन्यास का परिचय स्वयं लेखक ने दिया है, "जो लोग दैनिक या साप्ताहिक पत्र पढ़ते रहते हैं, उन्हें १९४५ के दिसम्बर से लेकर १९४८ तक की विशेष घटनाओं पर कल्पना को घुमाने से उपन्यास की मुख्य मुख्य घटनाओं का स्मरण हो आएगा।" इस प्रकार हम देखते हैं कि यह उपन्यास ऐतिहासिक न होते हुए भी समय-विशेष का चित्रण लेकर उपस्थित हुआ है।

जेल में कुछ देश-सेवी युवक बन्द हैं। उनके साथ ही अन्य अभियोगों के अभियुक्त भी हैं। देश-सेवी युवकों के त्याग, जेल-जीवन के उनके कार्य कलाप और मुक्ति-वेला में उनके प्रचुर अभिनन्दन का अन्य अभियुक्तों पर पड़नेवाले नैतिक प्रभाव का सुन्दर चित्र इस उपन्यास में अंकित है।

निशा और कुन्ती के रूप में आधुनिक शिक्षित नारी का चित्र प्रस्तुत किया गया है। अचल और सुधा आधुनिक तरुण पीढ़ी के प्रतीक हैं और पंचम तथा गिरधारी ग्रामीणों के प्रतिनिधि। अचल और कुन्ती के स्नेह-सूत्र का हृदयस्पर्शी चित्रण, पाठक को रोमांचित कर देने की दिशा में जिन गहराइयों का स्पर्श कर रहा है, वह वर्माजी जैसे कुशल कथा-शिल्पी के यशोनुरूप है। संक्षेप में उपन्यास मनोरंजक और उपादेय है।

२—पनघट (कहानी-संग्रह)—लेखक, श्री सुदर्शन; प्रकाशक वोरा एण्ड कंपनी, ३ राउण्ड बिल्डिंग, बम्बई; पृष्ठ २३६; मूल्य ३॥) रु०।

सुदर्शनजी की चौदह कहानियों का यह संग्रह तीसरी बार प्रकाशित हुआ है। प्रायः सभी कहानियाँ सुन्दर हैं। समाज के विभिन्न रूप और चित्र सजीव-से प्रतीत होते हैं। काव्य-कल्पना, बाप का हृदय और मजदूर शीर्षक कहानियाँ अत्यन्त सुन्दर और कलात्मक हैं।

'धर्म की वेदी पर' कहानी में लेखक ने ऐतिहासिक तथ्यों का जो उल्लेख किया है, वह भ्रमोत्पादक और गलत है। लेखक ने लिखा है—"सोलह सौ साल गुजरे, सिसली में रोमन कैथोलिक लोगों का राज्य था। प्रोटेस्टेण्ट ईसाई होना उस जमाने का सब से बड़ा अपराध था।" पता नहीं, सुदर्शनजी ने किस आधार पर यह लिखा है। इतिहास का जहाँ तक संबंध है, ३१ अक्टूबर, सन् १५१७ ई० में मार्टन लूथर (जर्मन) ने प्रोटेस्टेण्ट धर्म के ७५ सिद्धान्त प्रस्तुत किए थे और इनके अनुयायियों को सन् १५२९ में पहली बार 'प्रोटेस्टेण्ट' संज्ञा प्रदान की गई थी। परन्तु सुदर्शनजी की इस कहानी के अनुसार इस ऐतिहासिक तथ्य की एकदम हत्या हो रही है।

हम स्वीकार करते हैं कि कहानी में सभी बातें सत्य नहीं होतीं; किन्तु आधुनिक कहानी के विकास को देखते हुए पाठकों को ऐतिहासिक झमेले में डूबने-उतराने की स्थिति उत्पन्न कर देना भी मान्य नहीं। यदि किसी ऐतिहासिक तथ्य का हमें पता नहीं, तो सालों की गिनती न देना ही श्रेयस्कर कहा जाएगा। 'सोलह सौ साल गुजरे' के स्थान पर यदि 'जमाना गुजरा' दिया जाता, तब यह भ्रम होने की गुंजाइश ही न रह जाती। आशा है, ऐसी त्रुटियों को सुदर्शनजी आगामी संस्करण में सुधार देंगे।

मुद्रण, कागज और जिल्द सुन्दर है। प्रूफ की अशुद्धियाँ खटकती हैं।

३—गन्दगी (कहानी-संग्रह)—लेखक, श्री छेदीलाल गुप्त; प्रकाशक, पुष्प-साहित्य-मन्दिर, १२३, चितरंजन ऐवन्यू, कलकत्ता; पृष्ठ १४६; मूल्य २)

लेखक की २२ छोटी-छोटी कहानियों का यह संग्रह सामाजिक पतन की गली में जमा हो रही गन्दगी पर प्रकाश डाल रहा है। कहानियों के सम्बन्ध में 'गन्दगी' के भूमिका-लेखक श्री मोहनसिंह सेंगर ने लिखा है 'जिनका विवेक भ्रष्ट एवं दृष्टिकोण भ्रान्त हो चुका है, सदाचार के उन दिखावटी ठेकेदारों को ऊपर से इन कहानियों में शायद कुछ तथाकथित गन्दगी दिखाई दे; किन्तु दर-असल छेदीलालजी ने लेखनी द्वारा उस पर तीव्र प्रकाश डालकर उसे दूर करने की ओर ही स्पष्ट संकेत किया है।'

सेंगरजी के शब्दों से हम बहुत-कुछ सहमत हैं; किन्तु पूर्णतः नहीं। हम स्वीकार करते हैं कि समाज की गन्दगी को दूर करने के लिए उस पर प्रकाश डालना वांछनीय है; किन्तु यह प्रकाश उन लोगों को ही राह दिखा सकेगा, जो भटक चुके हैं और जान-बूझकर इस गन्दगी की ओर से आँखें बन्द किए हुए हैं। परन्तु जो युवक-युवतियाँ इस गन्दगी से सर्वथा अपरिचित हैं, उनके हाथों में पहुँचकर यह 'गन्दगी' कितनी हानिकर सिद्ध होगी, इस पहलू पर भी लेखक और भूमिका-लेखक का कुछ विचार कर लेने की नितान्त आवश्यकता थी। हमारे विचार से ऐसी पुस्तकों पर स्पष्टतः और बड़े-बड़े अक्षरों में आवरण-पृष्ठ पर ही ऐसा कोई वाक्य मुद्रित रहना चाहिए, जिससे यह पता चल जाए कि यह पुस्तक केवल वयस्कों के लिए है—कुमार-कुमारियों के लिए नहीं। ऐसा न होने पर ऐसी पुस्तकों से हमारे समाज का कल्याण कम; किन्तु अकल्याण अधिक होता है। यों इस संग्रह का नाम ही यथेष्ट चौंका देनेवाला है और इसे खरीदनेवाले स्वयं यह समझ लेंगे कि पुस्तक कैसे पाठकों के लिए है; फिर भी सभी खरीदनेवालों में इन बातों को समझने की क्षमता नहीं होती।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई अत्यन्त साधारण है। आवरण पृष्ठ में भी कोई आकर्षण नहीं है। प्रूफ़ की अशुद्धियाँ तो पाठक में खीझ उत्पन्न कर देती हैं। पहली ही कहानी 'गन्दगी' की प्रारंभिक परिचयात्मक पंक्तियों में देखिए: "हँसूगा, त्तर ूर, ँका, हू।" इसी तरह पृष्ठ २ पर "अन्यमनष्क, ऊँगलियाँ"; पृष्ठ ३ पर "ज्योत्सना।"

—देवीदयाल चतुर्वेदी

४—भारत की सांस्कृतिक दिग्विजय:

लेखक, श्री प्रो० हरिदत्त वेदालंकार; प्रकाशक, सर्वोदय साहित्य संसद्, रीगल बिल्डिंग्स, नई दिल्ली; प्रथम संस्करण, दिसम्बर १९४८, पृष्ठ ७६, मूल्य १२ आने।

इस पुस्तिका में प्रो० हरिदत्त जी ने बृहत्तर भारत (Greater India) की प्राचीन और मध्यकालीन सांस्कृतिक प्रसार की स्थिति का अत्यन्त संक्षेप में प्रामाणिक विवेचन किया है। इसके द्वारा साधारण पाठकों को अपने गौरवमय अतीत के समझने में पर्याप्त सहायता मिलेगी, इसमें सन्देह नहीं। इसमें क्रमशः लंका, बर्मा, मलाया, स्याम, कम्बुज, चम्पा, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, बालि, अफ़गानिस्तान, मध्यएशिया, चीन, कोरिया, जापान, तिब्बत, तुर्की, ईराक, मिस्र, यूनान और रोम आदि देशों में भारतीय संस्कृति (धर्म, साहित्य एवं कला) के प्रसार का उल्लेख हुआ है; यद्यपि सूत्ररूप में होने के कारण इसके द्वारा उन देशों के भारत के साथ निकट-तम सम्पर्क का संकेत भर किया गया है। सूक्ष्म, वैज्ञानिक और विशद विवेचन के लिए हमें इस विषय के बृहत्काय ग्रन्थों की रचना की आवश्यकता है।' ऐसी स्थिति में प्रो० वेदालंकार की यह कृति इस दिशा में एक प्रेरक अध्ययनमात्र समझी जाएगी।

मुझे यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि वस्तु की दृष्टि से काफी ज्ञातव्य बातों का समावेश होते हुए भी अप्रत्याशित ढंग से पश्चिमी देशों के साथ भारत के सांस्कृतिक सम्पर्क का अंश प्रायः अधूरा छोड़ दिया गया है और इस छोटी सी पुस्तिका में भी भाषा तथा मुद्रण की अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं, जो अत्यन्त क्षोभजनक है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रूफ़-संशोधन के लिए न तो समय दिया गया है और न कुछ भी विशेष ध्यान जो उसके लिए अपेक्षित है। इसी कारण 'शलिन्स' के लिए शलिन्सन, 'चरैवेति' के लिए कहीं चरैवेति और कहीं चैरेवेति तथा 'अनिन्द्य' के लिए निन्द्य आदि त्रुटियों के अतिरिक्त एक ही पंक्ति में कहीं 'कज्ज-मुर' के स्थान पर कंजुक और कहीं कंजुर! अङ्क तथा वाक्य-विन्यास सम्बन्धी दोषों से पुस्तिका भरी पड़ी है। दूसरे संस्करण में उनका निराकरण आवश्यक है।

—चन्द्रचूड़, एम० ए०

मुद्रक और प्रकाशक के० मित्र, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

विविध विषयों की चुनी हुई पुस्तकें

सोहराब रुस्तम

फारसी भाषा में शाहनामा नाम की एक बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है, जिसमें बहुत से शूरवीरों की कहानियाँ लिखी गई हैं। यह कहानी उसी में से ली गई है। मूल्य ।।।-) तेरह आने।

कुलबोरन

श्री चन्द्रभूषण वैश्य ने इस उपन्यास को सत्य घटना के आधार पर लिखा है। समाज की अन्ध-परम्पराओं से देश की जो हानि हो रही है उसका इसमें सजीव चित्र है। सुधार करनेवाले को रूढ़ियों के अन्ध-भक्तों से जैसा लोहा लेना पड़ता है उसका नमूना उपन्यास का मुख्य पात्र 'कुलबोरन' है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।।) दो रुपये आठ आने।

नवीन संन्यासी

इस उपन्यास में ग्राम्य और नागरिक जीवन का यथार्थ और सुन्दर चित्रण प्रभात बाबू ने किया है। हास्य और विनोद की सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में है। मूल्य ४।।≡) चार रुपये ग्यारह आने।

छुटकारा

एक निठल्ले और बेरोजगार भाई की सहायता उपार्जनशील भाई को किस प्रकार करनी चाहिए, यह बात इस उपन्यास से भली भाँति सीखी जा सकती है। मूल्य १।-) एक रुपया पाँच आने।

शीला देवी

महास्थान-राजकुमारी शीलादेवी की बुद्धिमत्ता, शूरता और सुजनता का वर्णन इसमें पढ़िए। योगिनी माता का कार्य-कौशल विचित्र है। चिह्लन का पतन और मित्र मुराद की सचाई आदर्श स्थानीय है। विचित्र उपन्यास है। मूल्य २।।≡) दो रुपये ग्यारह आने।

कथा-सरित्सागर

इस पुस्तक में आद्योपान्त बड़ी सुन्दर कथाएँ संगृहीत हैं। प्रत्येक कथा अपने साथ कुछ न कुछ दृष्टान्त रखती है। मूल्य २।।≡) दो रुपये ग्यारह आने।

सोहाग-बिन्दी नाटक

यह पुस्तक कुछ एकांकी नाटकों का संग्रह है। इन सभी नाटकों में सामाजिक समस्याओं पर विचार किया गया है। मूल्य १।-) एक रुपया पाँच आने।

पुरातत्त्व-निबन्धावली

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस पुस्तक में समाविष्ट किये गये निबन्धों के लिखने में देश-विदेश के कितने ही दुष्प्राप्य ग्रन्थों के अध्ययन तथा दुर्गम स्थानों के भ्रमण से प्राप्त की गई [illegible]राशि का उपयोग किया है। मूल्य २।।≡) दो रुपये ग्यारह आने।

माधव मिश्र-निबन्धमाला

हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक काल के प्रतिभाशाली लेखक पंडित माधव मिश्र के चुने हुए निबन्धों का संग्रह। मूल्य ३।-) तीन रुपये पाँच आने।

व्यंग्य कौतुक

इस पुस्तक में कवीन्द्र रवीन्द्र बाबू के द्वारा व्यंग्य और विनोदमयी भाषा में लिखे गये कुछ निबन्धों का संग्रह है। मूल्य ।।≡) ग्यारह आने।

मेरी आत्म-कहानी

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के जन्मदाता बाबू श्यामसुन्दरदास जी की आत्म-कहानी एक प्रकार से हिन्दी-साहित्य के वर्तमान युग का इतिहास है। इस पुस्तक में बाबू साहब ने केवल अपनी जीवन-घटनाओं का विवरण ही नहीं लिखा वरन् अपने समय के उन सभी साहित्य-सेवियों के कार्यों की विवेचना भी की है, जिन्होंने हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि में योगदान किया है। मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्म-कथा

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के एक प्रतिष्ठित विद्वान् मुंशी लुत्फुल्ला की आत्म-कथा का सारांश। इसमें विलायत-यात्रा तथा मार्ग में पड़नेवाले स्थानों का तत्कालीन वर्णन दिया गया है। मूल्य २) दो रुपये।

मैनेजर बुकडिपो इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारी नई पुस्तकें

सङ्गति

आकाशरंजन मेहता नामी डाक्टर थे। उनकी खासी आमदनी थी। किन्तु उनकी अर्द्धाङ्गिनी सुशिक्षित हेमप्रभा यह समझती थी कि डाक्टर मेहता सिर्फ आविष्कार की धुन में रहते हैं; मेरे पिता के दिये धन से ही गुजर होता है। इससे वह सिर-चढ़ी स्त्री बन गई थी। और डा० मेहता उसकी फटकार सुनकर भी भीगी बिल्ली बने हुए अपने काम में लगे रहते थे। उनका मित्र जौहरी कई वर्ष बिलायत में रह आया था। उन्होंने हेमप्रभा से उसका परिचय करा दिया। परिचय इतना घनिष्ठ हो गया कि उससे बचने को डा० मेहता आँखों का इलाज कराने के बहाने दूसरे प्रान्त में चले गये। इधर उसका रंग गहरा होता गया। कई महीने बाद डा० मेहता नकली अन्धे बनकर लौटे और इसी रूप में उन्होंने हेमप्रभा के खोये हुए प्रेम पर अधिकार किया। लेखक ने विलक्षण कथानक की सृष्टि करके गिरते हुए चरित्र को समुन्नत बनाया है। मूल्य १।।) एक रुपया आठ आने।

यात्री

श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बी० ए० ने इस पुस्तक में लिखा है कि हम सभी अनन्त पथ के यात्री हैं। यह जीवन-यात्रा कब आरम्भ हुई और कहाँ इसकी समाप्ति होगी। लेखक ने क्यों लिखूँ, जीवन-पथ पर, स्मृति और शिक्षक-जीवन आदि २० शीर्षकों में विभिन्न विषयों पर परिमार्जित भाषा में उच्च विचार प्रकट किये हैं। यात्री अपने ढंग की अनुपम पुस्तक है। सचित्र आवरण की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

अनातोले फ्रांस की चुनी हुई कहानियाँ

फ्रांस के इस नामी कहानी लेखक की प्रतिभा का अनुमान पाठकों को छाया-सुन्दरी, उसका पति, रूप की परी, मदारी, पेरिस की सुन्दरी और माल आदि कहानियों से लगेगा। प्रत्येक कहानी बेजोड़ है। ये कहानियाँ मनोरंजन के साथ ही उपकार भी करेंगी। मूल्य १) एक रुपया।

विषवृक्ष

यह सुप्रसिद्ध उपन्यास-प्रणेता रायबहादुर बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का बढ़िया उपन्यास है। इसका हिन्दी रूपान्तर किया है कृतविद्य श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने। इस उपन्यास में विषवृक्ष कुन्दनन्दिनी जो थोड़ी अवस्था में अनाथ हुई और नगेन्द्र बाबू का आश्रय पाकर उनके रिस्तेदार से ब्याही गई। फिर सत्रह साल की उम्र में विधवा हो गई। इसके रूप पर नगेन्द्र बाबू ऐसे रीझे कि उसके साथ विधवा-विवाह कर लिया। उपन्यास की भाषा और कथानक सभी विचित्र है। मूल्य २) दो रुपये।

नवदुर्गा

नवदुर्गा बंगाली पण्डित की बेटी थी। उसके विवाह की चिन्ता में माँ-बाप और बेटी तीनों घर से कलकत्ते के लिए चले। रास्ते में केदारेश्वर तीर्थ में ठहर गये। वहाँ के महन्त अम्बिकाचरण पुरी ने नवदुर्गा को प्राप्त करने के लिए जाल रचा। अन्त में महन्त का चपरासी चाकर अधरचन्द्र मुखोपाध्याय 'मियाँ की जूती और मियाँ का सिर' की कहावत के अनुसार महन्त जी से खासी रकम ऐंठकर और नवदुर्गा को विधि से पत्नी बनाकर चलता हुआ। लेखक ने महन्त जी की जो दुर्गति काशी में लाकर कराई है उससे पाठक विस्मित और खिन्न हुए बिना न रहेंगे। मूल्य १।) एक रुपया चार आने।

हार या जीत

इस उपन्यास में लेखक डा० ब्रजेश्वर वर्मा एम० ए०, डी० फिल० ने एक देहाती लुहार की अल्पवयस्क बेटी को घटनाक्रम से, अनाथ दशा में, देहात से महराजगंज की रानी पृथाकुँवरि के आश्रय में पहुँचा दिया है। वहाँ रानी की कृपा से इस लड़की ने विद्या पढ़ी। फिर इसमें उन गुणों का विकास हुआ जिससे मनुष्य सभ्य होकर सम्मान पाता है। इसने असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और अन्त में कलकत्ता जाकर नौकरी कर ली। कई पुस्तकें लिखीं, विदेश-यात्रा के बाद रानी के कुँवर की प्रार्थना पर उससे विवाह किया। मूल्य २) दो रुपये।

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद

py -/10/- annas and Annual 7/8/- SARASWATI—Regd. No. A—248

"मैं नित्यप्रति कम से कम दो बार चाय पीता हूँ— यह जान डाल देती है। मुझे पता नहीं कि इसने मेरे स्वास्थ्य पर कोई बुरा असर भी डाला है। सबेरे चाय पीकर मेरा तो दिल खुश हो जाता है और काम शुरू करने की इच्छा होने लगती है।"

(ह०) डा० मेघनाद साहा

कलकत्ता विश्वविद्यालय के पालित प्रोफेसर और पदार्थ विज्ञान विभाग के सर्वोच्च अधिकारी डाक्टर मेघनाद साहा, डी. एस-सी., एफ. आर. एस. भारत के सर्वोच्च विज्ञान वेत्ताओं में से हैं। पदार्थ विज्ञान में परमाणु केन्द्र सम्बन्धी खोज के कारण ही वे संसार भर में विख्यात हैं। खास कर नक्षत्रों के वर्ण विश्लेषण पर उनके सिद्धान्तों के कारण ही रॉयल सोसाइटी की सदस्यता ने उन्हें वरण किया। रसियन ऐकेडेमी ऑफ साइन्सेज के २२० वें वार्षिकोत्सव में जो १९४५ ई० में हुआ था उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया था।



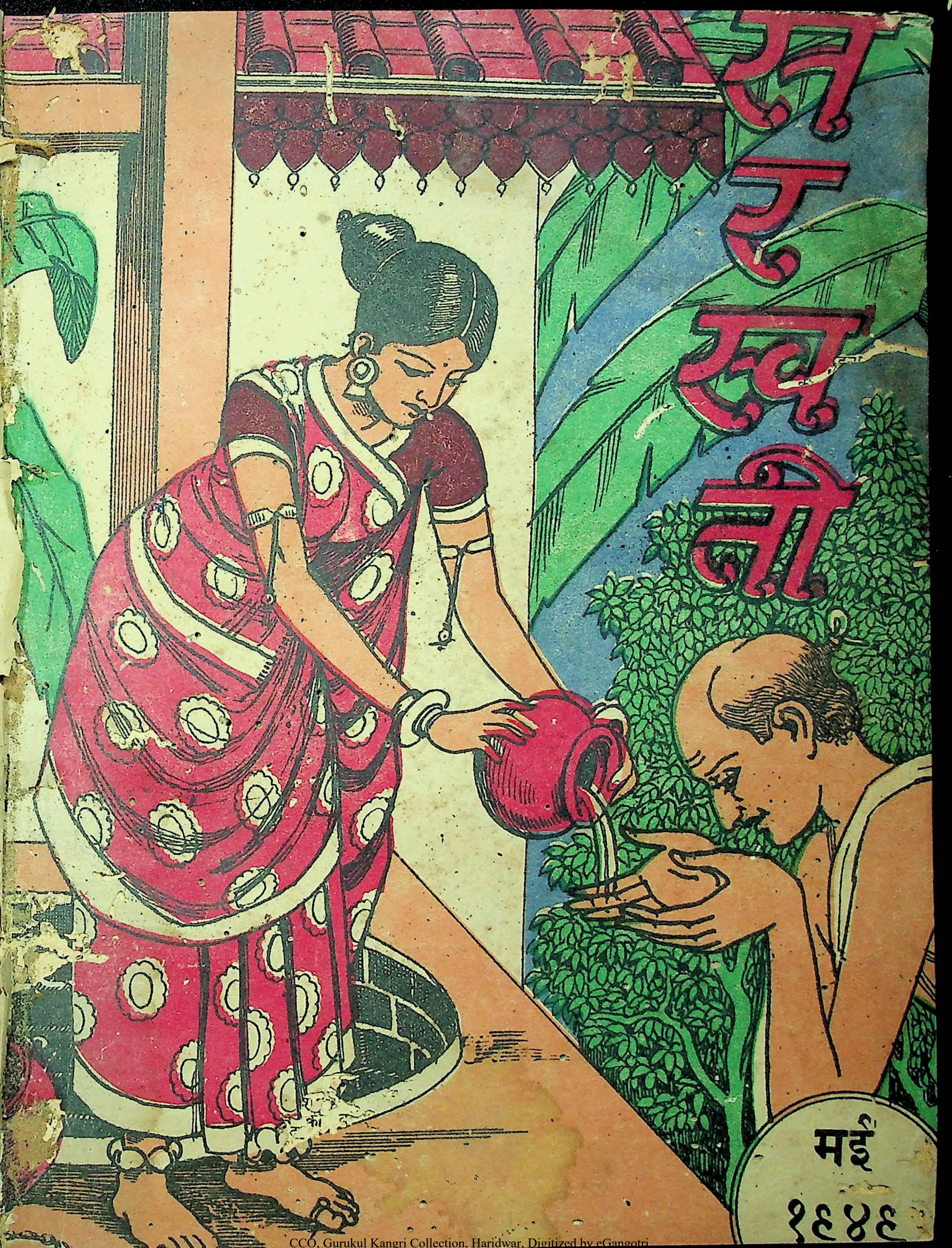
चाय



प्रेरणादायक

इण्डियन टी मार्केट एक्सपैन्शन बोर्ड द्वारा प्रचारित

ITX 32


सरस्वती
मई
१९४९

दुखी भाइयों को हमारा शुभ सन्देश

प्रिय पाठको आप लोगों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आज मैंने लगभग २० साल से प्रेमवटी औषधि देकर जिस प्रकार से आप लोगों की सेवा की है। वह किसी से छिपा नहीं है। क्योंकि हमारा उद्देश्य धन कमाना ही नहीं बल्कि सेवा और सचाई का विश्वास दिलाकर प्रत्येक घर और मनुष्यमात्र के हृदय में उच्च स्थान पाने की आशा रखता है और इसी में अपना कल्याण समझता हूँ ताकि इस तुच्छ सेवक की याद आप लोगों के हृदय-पटल पर सदैव अंकित बनी रहे यही मेरी हार्दिक इच्छा है। कागज के अभाव के कारण हम अब आपको अधिक क्या विश्वास दिलावें हाँ किसी समय हमारे कार्यालय में पधार कर देश और विदेश से आये हुए प्रशंसा-पत्रों को देखिये स्वयं ही विश्वास हो जायगा ग्राहकों की इच्छा देखकर हमने और भी उच्चकोटि की औषधियाँ निर्माण की हैं। जिन्हें सैकड़ों रोगियों पर परीक्षित कर अपने परिश्रम को सफल बनाया इन औषधियों का निर्माण योग्य अनुभवी कर्मचारियों-द्वारा होता है यदि आप हर प्रकार से हताश हो चुके हों और अपने जीवन से हाथ धो बैठे हों तो एक बार दवाइयाँ मँगाकर अवश्य परीक्षा करें।

सत्य प्रभा सुर्मा

मनुष्य के शरीर की आँख एक अमूल्य वस्तु है आँख बिगड़ गई तो तमाम जिन्दगी बेकार हो जाती है। हमारे इस सुर्मे को प्रतिदिन लगाने से साधारण जाला, माड़ा, फूली, धुन्धी, रोहे, नाखूना, नजर से कम दिखाई देना आदि दूर होते हैं। कीमत एक शीशी ॥-), तीन शीशी १॥) डाक खर्च अलग।

सत्य संजीवन तिला

यह तिला अन्य तिलाओं की भाँति नुकसान नहीं पहुँचाता है। बल्कि एक ही हफ़्ता सेवन करने से कमजोरी, सुस्ती, नपुंसकता तथा गुप्तेन्द्रिय की शिकायतों को दूर करके रग और पुट्ठों में बिजली की भाँति ताकत पहुँचाता है। कीमत एक शीशी २), तीन शीशी ५) डाक खर्च ।।।-)।

सत्यामृत घुटी

हमारे यहाँ की घुटी अब तक फेल नहीं हुई है। बच्चों के हरे-पीले दस्त का होना, नजला व जुकाम हो जाना, दाँत निकलते समय कष्ट होना, बुखार बना रहना, पेट फूलना आदि रोगों को दूर करने में राम-बाण साबित हुई है। क़ीमत एक शीशी ॥), तीन शीशी १।≈) डाक खर्च अलग।

सत्य सुन्दरी रक्षक

स्त्रियों के हर प्रकार के प्रदर रोग महीना ठीक समय पर न होना लाल काला धुमैला पानी-सा रज निकलता हो आदि रोगों को दूर कर सन्तान पैदा करने योग्य बनाता है। कीमत आधी खुराक २), पूरी खुराक ३॥) डाक खर्च अलग।

सत्य सरोवर तेल

आपने बहुत से बाजारी तेल इस्तेमाल किये होंगे किन्तु यह तेल अपनी शानी नहीं रखता है। विद्यार्थी वकील, क्लर्क आदि दिमागी काम करनेवाले इसे धड़ाधड़ मँगा रहे हैं। कीमत एक शीशी ।॥), तीन शीशी २-) डाक खर्च अलग।

रूप रक्षक

इसके लगाने से चेचक के काले काले दाग, मुँहासा, झाँई, फुंसी, खुश्की, बदरौनकी आदि दूर होकर चेहरे पर गुलाबी छटा दमकने लगती है। कीमत एक डिब्बी २), तीन डिब्बी ५) डाक खर्च अलग।

※ सत्य सखा ※

इसकी जितनी प्रशंसा की जाय वह बहुत कम है पेट दर्द, जी मिचलाना, कफ, खाँसी, शूल, संग्रहणी, हैजा, प्लेग, अतीसार आदि रोगों में [illegible] लाभ होता है। कीमत एक श[illegible]), ती[illegible]शी २-) डाक खर्च अलग एक [illegible] का [illegible] खर्च माफ।

※ सुजाक बिन्दु ※

कैसा नया-पुराना भयानक सुजाक क्यों न हो मवाद आता हो, किसी तरह चैन न मिलता हो रो-रोकर रात व्यतीत होती हो इसकी एक ही खुराक से आराम मिलता है। कुछ दिन सेवन करने से पुराने से पुराना सुजाक हमेशा के लिए नष्ट हो जाता है। कीमत एक शीशी २।) डाक खर्च अलग।

बाबू श्यामलाल जी रईस, प्रेमवटी आफिस नं० ५०, धनकुट्टी कानपुर

आश्चर्यजनक और नवीन आविष्कार

बे फायदा साबित करने पर १०० इनाम की गारण्टी

सफेद बाल काला

हमारे आयुर्वेदिक "हिमकान्ती" तैल के इस्तेमाल से बाल पकना रुककर पका बाल जड़ से काला होकर काला ही उगता है। यह तैल आँखों की रोशनी को बढ़ाता, शिर दर्द को आराम करता, दिमागी काम करनेवालों के लिए अकसीर है और स्मरण-शक्ति बढ़ाने में अद्वितीय है। मूल्य कम पके के लिए २॥) इससे ज्यादा के लिए ३॥) सब पके के लिए ५)

प्रदर रोग या लिकोरिया

इसी बीमारी में स्त्रियों के गुप्त शरीर से लाल, काला, धूमैला या श्वेत रंग का बदबूदार यानी या लेस सा निकलता रहता है, महीना ठीक समय पर नहीं होता है। जिसके कारण कमर, रीढ़, सिर में दर्द, शरीर में जलन, मन मलीन, उठने, बैठने में थकावट, भूख का कम लगना, बदन दुबला और कमजोर हो जाना, मुर्छा, बेहोशी आदि रोग हो जाते हैं और सन्तान नहीं होती। ऐसी अवस्था में हमने "नारी सुधा" नामक औषधि को तैयार किया है। जिसके द्वारा हजारों स्त्रियों को इस भयानक शत्रु से छुड़ाया है। मूल्य ४)

श्वेतकुष्ट की वनौषधि

चाहे कितने ही दिन का श्वेतकुष्ट हो या किसी भी कारण से सफेद दाग हो गया हो इस वनौषधि के सिर्फ ७ दिन के सेवन से पूर्ण लाभ होता है। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों और विज्ञापन-दाताओं की दवा से निराश हो चुके हों तो इसे एक बार मँगाकर अवश्य आराम होवें। मू० ४) तीन पैकट ११)

स्तम्भक बटी

शीघ्रपतन की शिकायत को फौरन नष्ट करके वीर्य स्तम्भन करती है। एक गोली शाम को खा लेने से आश्चर्यजनक स्तम्भन होता है। मू० २४ गोली १॥) ५० गोली का २॥) १०० गोली का ४)

जीवनशक्ति

इसके सेवन करते ही बदन में वह शक्ति लाता है जो चढ़ती जवानी को मात करती है। पानी के समान पतले धातु को पुष्ट करने में रामबाण है। सुस्ती, नामर्दी, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, प्रमेह, मूत्र के साथ पैखाने के आगे या पीछे धातु का निकलना बहुमूत्र रोग [डायबीटीज] इत्यादि दूर कर शरीर में नया वीर्य उत्पन्न कर अपूर्व शक्ति लाती है। और नया खून सञ्चार करती है। मू० ५)

पताः—पं० ईश्वरदयाल जी, पो० लखीसराय (मुंगेर)

कशीदा काढ़ने की मशीन

कपड़े पर हर प्रकार के बेलबूटे, फूल, पत्ती, सीक, सीनरी, आदि डिजाइने बनाने की ४ सुइयोंवाली मशीन मूल्य ३) डाक-खर्च ।॥) तरकीब मुफ्त।

कशीदा-सम्बन्धी सैट (भेट देने योग) जिसमें कशीदा मशीन, कशीदाकारी पुस्तक, रङ्गीन रेशमी लच्छियाँ, उम्दा कैंची, फ्रेम, अक्सी कढ़े हुए कागज, मय तसवीर के हैं। सुन्दर लकड़ी के बक्स में मूल्य १२॥) डाक खर्च १) तरकीब मुफ्त।

कसीदाकारी पुस्तक—कशीदा सम्बन्धी सैकड़ों वेल बूटे, फूल पत्ती आदि सुन्दर ड़िजाइनों से सज्जित मूल्य २।॥) डाक खर्च ।=)।

सिलाई-कटाई विज्ञान (सचित्र)—हर प्रकार के कपड़े काटना व सीना सिखानेवाली मूल्य ।॥=) डाक-खर्च।=)

कन्या पाकशाला (सजिल्द)—हर प्रकार के भोजन, अचार, चटनी, दाल शाक, मुरब्बे आदि, बनाना सिखाने की सरल पुस्तक मूल्य केवल १।=) डाक-खर्च ।=)

बंगाली मिठाई और नमकीन—बनाना सीखिये। २) डाक-खर्च ।=)

(महिला) हरमोनियम गाइड (सचित्र):—कन्याओं व स्त्रियों को बिना गुरु सुगमता से बाजा सिखाने की उत्तम व एकमात्र पुस्तक मूल्य १) डाक-ख० ।=)

पता—कुमार ब्रदर्स (१४) अलीगढ़ (यू०पी०)

जादू का शीशा

ये शीशे अमेरीकन साइन्सदानों के तजुर्बों की रोशनी में तैयार होकर हाल ही में आए हैं। तरकीब ईस्तेमाल के मुताबिक इसमें से देखने पर आपको एक बहुत बूढ़ा दिखलाई देगा, जो आपकी किस्मत सम्बन्धी भविष्य में होनेवाली सारी बातों, नफा, नुकसान, रोजगार, तिजारत, नौकरी, उन्नति, अवनति, बीमारी, देश-विदेश की यात्रा, सन्तान, किसी से नया मेल जोल, दिलपसन्द सगाई, शादी, जमीन में गड़ा धन, लाटरी, सट्टा, किसी नामालूम जरिये से धन का मिलना, गुमशुदा चीज या चोरी का पता लगाना, गर्ज यह है कि आपके हर एक सवाल का जवाब बताएगा, साथ ही हर एक मुश्किल का उपाय बताएगा, हर एक कामना पूरी करेगा, जल्द मँगा लें, फिर ऐसा मौका हाथ न आयेगा। एक शीशे का मूल्य चार रुपया खर्च ।॥) अलग। थोड़े दिनों के बाद इस शीशे की कीमत बीस रुपये होगी। तीन शीशे एक साथ मंगाने पर डाक खर्च माफ! अपना नाम व पता आर्डर देते समय साफ लिखे।

एँग्लो अमेरिकन ट्रेडर्स, (टी)
पोस्ट बाक्स ७०, मेरठ, यू० पी०

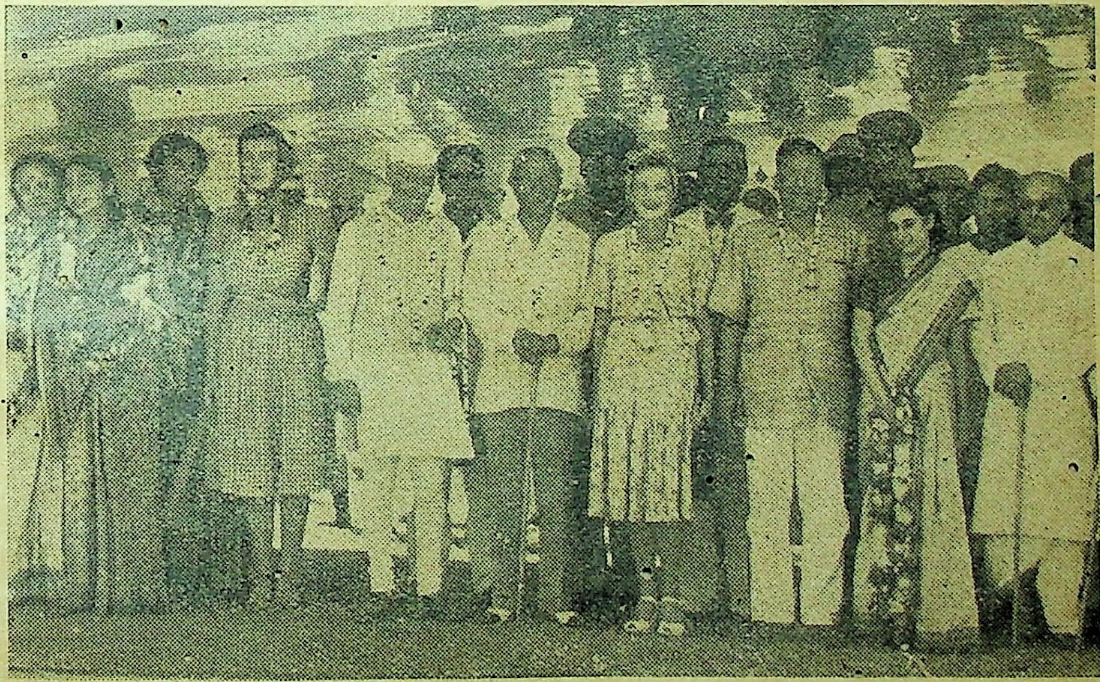
विषय-सूची

चित्र-सूची

चिरस्मरणी यात्रा



नोआखाली की चिर-स्मरणीय पैदल यात्रा में विश्ववंद्य महात्मा गांधी।

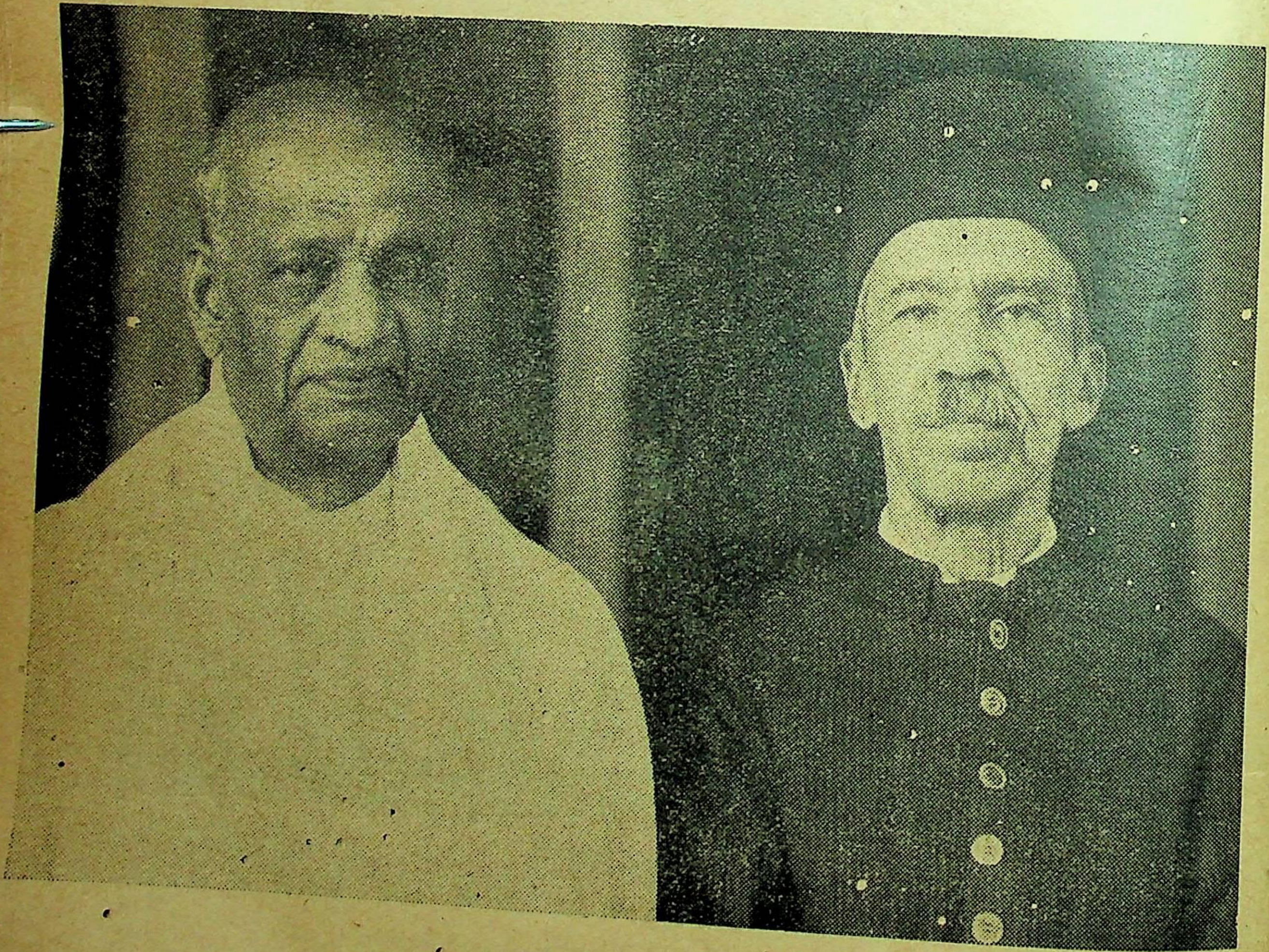


दक्षिण भारत में

सुश्री पामेला माउण्टबेटन के साथ पंडित नेहरू दक्षिण भारत की यात्रा पर अभी हाल में गए थे। चित्र में वे उड़ीसा के विशिष्ट व्यक्तियों के मध्य दिखाई दे रहे हैं।



अभिनन्दन



सरदार पटेल और निज़ाम



सम्पादक—हरिकेशव घोष : उमेशचन्द्र मिश्र

मई १९४८ वैशाख २००५; भाग ५० खण्ड १; संख्या ५ पूर्ण संख्या ५९३

सम्पादकीय

नूतन परम्परा

सिन्ध का मंत्रिमण्डल अपने अस्थायित्व के कारण बहुत दिनों तक बदनाम रहा था। एक ही वर्ष में दो-दो बार तक मंत्रिमण्डल का परिवर्त्तन उस प्रान्त की राजनीति के लिए असाधारण बात नहीं मानी जाती थी। सिन्ध सदैव से मुस्लिमलीग का प्रान्त रहा है और उस परिवर्त्तन की पृष्ठभूमि लीगी नेताओं की दलबन्दी व मौकापरस्ती मानी जाती थी। पर इधर कुछ समय से मंत्रि-मण्डलों का उलट-फेर उन प्रान्तों में भी हो रहा है, जो भारतीय संघ में हैं, अतएव जहाँ शुद्ध कांग्रेसी मंत्रि-मण्डल हैं। यह निस्सन्देह 'खतरे की घण्टी' है, जैसा कि कुछ सहयोगियों ने कहा भी है।

पिछले कुछ महीनों में ही भारतीय संघ के चार प्रान्तों के मंत्रि-मण्डलों में उलट-फेर हो चुका है। सर्व-प्रथम मद्रास का मंत्रिमण्डल परिवर्तित हुआ; फिर विन्ध्यप्रदेश का; फिर पंजाब का और अब सुनते हैं कि मध्यप्रान्त का मंत्रि-मण्डल भी डाँवाडोल है। यही नहीं, राजस्थान ने अब नया रूप धारण किया है, अतएव मंत्रिमण्डल-सम्बन्धी उलझनें वहाँ भी उपस्थित हो रही हैं।

यदि ये उलट-फेर कालान्तर में हुए होते और किन्हीं असामान्य कारणों को लेकर, तो उधर ध्यान देने की अधिक आवश्यकता नहीं थी। पर ये सब अकस्मात् हुए हैं और कोई ऐसा स्पष्ट कारण भी सामने नहीं है, जो इनमें किसी परिवर्त्तन का औचित्य समझा सके। ऐसी वस्तुस्थिति में चिन्ता होजाना स्वाभाविक ही है। प्रतीत तो यह हो रहा है कि यह किसी ऐसी व्याधि का प्रकट रूप है, जो कालान्तर से हमारी राष्ट्रीयता में भीतर-ही-भीतर पनप रही थी और अब उचित समय पाकर फूट निकली है।

इस प्रकार की घटनाओं को मामूली कहकर नहीं टाला जा सकता। आज भारत स्वतंत्र है और उसका नया विधान बन रहा है। शासन और विधान से सम्बंधित नूतन परम्पराओं का विकास भी यहाँ होगा ही। जब तक हम स्वाधीन नहीं थे, हमारे यहाँ वैधानिक परम्परा का प्रश्न भी नहीं था। अब यदि ऐसी घटनाएँ होती हैं तो ये सब मिलकर एक नूतन परम्परा को जन्म देंगी।

कहा जा सकता है कि यदि मद्रास ने रेड्डी मंत्रि-मण्डल को अपदस्थ करके, व्यवस्थापिका सभा के कांग्रेसी दल के बहुमत से, श्री कुमार स्वामी को नेता न चुना होता और उनके प्रधान मंत्रित्व में नया मंत्रि-मण्डल न बनाया होता, तो परम्परा या शृंखला की पहली कड़ी का निर्माण नहीं होता। मद्रास का उदाहरण लेकर ही पंजाब में मंत्रि-मण्डल बदला गया है। पंजाब का उदाहरण दो

और प्रान्तों ने लिया है। और जब परम्परा स्थापित हो गई है तब अन्य प्रान्त भी आज या कल उसका पालन करने को स्वतन्त्र हैं। यह परंपरा हमारे शासन को कितना कमजोर कर देगी, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

सैद्धान्तिक स्तर पर यदि मंत्रिमण्डल बदले जाएँ, तो उसका औचित्य समझ में आ सकता है। परन्तु जब यही कार्य व्यक्तिगत और अल्प कारणों की आड़ में होता है, तब एक निकृष्ट परम्परा की स्थापना होती है, जो राष्ट्र के जीवन को विपन्न कर देती है।

फ्रान्स का उदाहरण हमारे सामने है। प्रजातंत्रवाले देशों में एक फ्रांस ही ऐसा है, जहाँ छोटे-छोटे कारणों पर मंत्रिमण्डल बदल देने की परम्परा चल रही है। वहाँ राजनैतिक पार्टियाँ आठ या दस हैं। फ्रांसीसी विचार-स्वातंत्र्य का हामी है अतएव सार्वजनिक-हित के सिद्धान्त को या समस्त राष्ट्र के सामूहिक कल्याण को वह अधिक महत्त्व नहीं देता। थोड़ा सा मतभेद हुआ कि वह अपनी पार्टी को छोड़ या तो दूसरी पार्टी में जा मिलता है या फिर एक नई पार्टी खड़ी कर लेता है। इस दैनंदिन जोड़-तोड़ का परिणाम मंत्रिमण्डल पर पड़ता है। यही कारण है कि गत महायुद्ध के चलते हुए फ्रांस के मंत्रिमण्डल में जो परिवर्त्तन होते रहे, वे तो होते ही रहे और उन्हें युद्धकालिक परिस्थिति में उचित भी कहा जाता रहा, युद्ध-समाप्ति के तीन साल के भीतर-भीतर वहाँ एक दर्जन बार मंत्रिमण्डल बदला जा चुका है। यह परम्परा फ्रान्स में इतनी दृढ़ हो चुकी है कि पराजय भी उसे तोड़ नहीं सकी। यही कारण है कि युद्धोत्तर पुनर्निर्माण-कार्य में फ्रान्स उस प्रकार अग्रसर नहीं हो पाता है, जिस प्रकार अग्रसर होने की उसे आवश्यकता है।

प्रजातन्त्र के प्रधान समर्थक देश अमेरिका और इंगलैण्ड हैं। इन दोनों देशों के मंत्रिमण्डलों में यदि दृढ़ता है और वहाँ विकास और पुनर्निर्माण की योजनाएँ यदि दृढ़तापूर्वक अग्रसर हो रही हैं, तो इसका एकमात्र कारण यही है कि इंगलैण्ड या अमेरिका का नागरिक अपने व्यक्तिगत विचार की उतनी परवाह नहीं करता जितनी सामूहिक और सार्वजनिक हित की करता है। अमेरिका का विधान मंत्रिमण्डलात्मक नहीं है, वह प्रधानात्मक है। वहाँ दो स्पष्ट राजनैतिक दल हैं। चुनाव के समय दोनों दलों की प्रतिद्वन्द्विता देखने योग्य होती है। पर जहाँ चुनाव समाप्त हुआ और एक दल का प्रधान चुन लिया गया, वहीं दूसरे दल का सदस्य पार्टी के विचार को ताक पर रख देता है और सरकार के साथ सहयोग करता हुआ समूचे राष्ट्र के हित की बात सोचने लगता है। पार्टियों में तोड़ फोड़ या परिवर्त्तन तो वहाँ होता ही नहीं। बीसों वर्ष हो गए पर दोनों पार्टियाँ वहाँ ज्यों-की त्यों चली आ रही हैं।

ब्रिटेन के नागरिक की विचारशक्ति में भी स्थिरता पाई जाती है। वह छोटे-छोटे या व्यक्तिगत कारणों को लेकर अपनी पार्टी या अपने नेतृत्व में परिवर्तन नहीं करता। आजकल वहाँ मजदूर दल की सरकार है। विस्तार की बातों को लेकर इस दल के सदस्यों में थोड़ा-बहुत मतभेद अवश्य है, पर इसी मतभेद को लेकर कोई सदस्य दूसरी पार्टी से गँठबन्धन करने नहीं जाता। यही कारण है कि वहाँ का मन्त्रिमण्डल स्थायी रहता है। प्रायः एक दल की सरकार चार वर्ष से लेकर १०-१० वर्ष तक सत्तारूढ़ रहती है।

फ्रान्स और इँगलैण्ड-अमेरिका—प्रजातंत्र के इन दो नमूनों में से हमारा नव स्वतन्त्र भारत किस नमूने को अपनाने जा रहा है? तीन चार महीनों के भीतर नगण्य बातों को लेकर चार-चार प्रान्तों के मंत्रिमण्डलों में उलट-फेर कर देना क्या यह प्रमाणित नहीं करता कि हमारे देश का नागरिक आज 'अहंप्रधान' हो गया है! वह फ्रांसीसी की तरह अपने मत को, अपने विचार को, महत्त्व देता है, प्रान्त या राष्ट्र के हित को नहीं। पंजाब के मंत्रिमण्डल-परिवर्त्तन को किसी दृष्टि से अध्ययन किया जाए, परिणाम यही निकलता है कि यह परिवर्त्तन केवल इस कारण हुआ है कि वहाँ पदों का बँटवारा ठीक-ठीक नहीं हुआ था। सभी सदस्य कांग्रेसी थे; सबने त्याग और बलिदान किया था, प्रत्येक अपने बलिदान को दूसरे से अधिक नहीं, तो कम भी नहीं समझता था। कभी का त्यागी और बलिदानी कांग्रेसी पद को उसी दृष्टि से देखता है, जिस दृष्टि से डाकू लूट में पाई सम्पत्ति को देखता है। लूट के बँटवारे में डाकू एक-दूसरे के शत्रु बन जाते हैं। कांग्रेसी भी बहुत कुछ वैसा ही उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। 'अमुक व्यक्ति को यह पद क्यों दिया गया और अमुक को क्यों नहीं दिया गया,'

यह विवाद आज हमारे किस मंत्रिमण्डल में नहीं सुनाई पड़ता है? फिर पंजाब ही इसका अपवाद कैसे हो सकता है और दूसरे प्रान्त भी इस छूत से कब तक बचे रह सकते हैं? एक बार जो परम्परा बन गई, वह बन गई!

गुटबन्दी व्यक्ति और गुट के स्वार्थ को देखती है, जनता और समाज के स्वार्थ को नहीं। पार्टीबाजों को पार्टीबन्दी और तोड़फोड़ से इतना अवकाश ही कब मिलता है कि वे जनता के हित को देख सकें! मन्त्रियों—बनने और बिगड़नेवाले मंत्रियों—के हाथों में पड़े हुए पंजाब जैसे प्रान्त स्वराज्य का सुख भी नहीं पा सकते; रामराज्य तो सचमुच स्वप्न की बात है।

कांग्रेसी हाईकमाण्ड का कर्त्तव्य

ऐसी वस्तुस्थिति में जब कि नेता पद-लोलुपता के शिकार हो रहे हों; अपनी कुर्सी की रक्षा के लिए मजबूत गुट बना रहे हों; पदों का वितरण सुशासन के लिए योग्य व्यक्तियों में न किया जा रहा हो प्रत्युत गुटों को पद-वितरण द्वारा खरीदा जा रहा हो; जब शासन का उद्देश्य सेवा न रहकर व्यक्तिगत आय हो रहा हो और जब नेता पारस्परिक वैमनस्य को पोषण दे रहे हों तथा सार्वजनिक, प्रान्तीय और राष्ट्रीय हित की उपेक्षा कर रहे हों; तब जनता का धर्म हो जाता है कि वह अपने इन पथ-भ्रष्ट और तपोभ्रष्ट नेताओं को ठीक मार्ग पर लाने के लिए आवाज बुलन्द करे। हमारे देश को स्वाधीनता मुफ्त में नहीं मिली है! अतएव शासन में उन्हीं व्यक्तियों का हाथ होना चाहिए, जो खून देनेवाले मजनूँ हों, दूध पीनेवाले मजनूँ नहीं। स्वाधीनता-प्रेमी जनता के प्रतिनिधि 'कांग्रेसी हाईकमाण्ड' के रूप में संगठित हैं। हाईकमाण्ड की जिम्मेदारी आज बहुत बड़ी है। यह उसका कर्त्तव्य है कि वह ऐसी परम्पराओं को देश में स्थापित होने न दे, जो हमारे राष्ट्र को कुछ ही काल में निर्बल और खोखला बना दें। जिस प्रान्त में ऐसी परम्पराएँ पनपती दिखाई दें, वहाँ 'हाईकमाण्ड' को अविलम्ब हस्तक्षेप करना चाहिए और उन व्यक्तियों को, जो केवल पद पाने के लिए जनता में फूट के बीज बो रहे हों, तत्काल अपदस्थ कर देना चाहिए। यदि सतर्कता के साथ ऐसा न किया गया तो कांग्रेसी मंत्रिमण्डल शीघ्र ही बदनाम हो जाएँगे और कांग्रेस-विरोधियों को सिर उठाने का सुअवसर प्राप्त होगा।

'विजयी विश्व तिरंगा....'

गाँधी जी के असहयोग-आन्दोलन का सूत्रपात तिरंगे के आधार पर हुआ था; इससे पूर्व, जहाँ तक हमें स्मरण है, झण्डे का रंग कहीं भगवा था, कहीं केसरिया! तिरंगा के रंगों के क्रम में भी अनेक बार परिवर्त्तन हुए और उसका मध्यवर्ती प्रतीक भी कम-से-कम दो बार बदला ही गया। फिर भी तिरङ्गा तिरङ्गा ही रहा और अपनी जानें देकर भी वीरों ने तिरंगे की शान रक्खी।

इधर कुछ समय से तिरंगे का दुरुपयोग होने लगा था, जो देश-प्रेमियों को खटकता था। सार्वजनिक स्थानों को छोड़ भी दें, लोग छोटी-छोटी दूकानों पर भी उसे लगाने से नहीं चूकते थे और वह भी अस्तव्यस्त दशा में। कहीं रङ्ग उड़ गया है तो कहीं डंडी आधी टूटी हुई है। भारत के स्वाधीन हो जाने के बाद से तो तिरङ्गा का सम्मान बहुत बढ़ गया है। अब वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र की शान की वस्तु बन गया है। ऐसी दशा में उसका अपमान-जनक उपयोग न होने पाए, इसका ध्यान रखना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है, और जनता की सरकार का भी।

इस सम्बन्ध में अभी हाल की ही एक घटना की ओर हमारा ध्यान हठात् आकर्षित हो जाता है। पत्रों में छपा था कि एक महाशय अपने बीमार कुत्ते को तिरङ्गा में लपेटे हुए लखनऊ के किसी सार्वजनिक स्थान में खड़े थे। कुछ कांग्रेसियों को यह दृश्य अशोभन लगा। फलतः उन्होंने इस पर आपत्ति की। कुछ शब्दों की अदला-बदली भी हुई। अतः पुलिस को सूचना दी गई; पर उसके पहुँचने के पूर्व ही वे महाशय कुत्ता-सहित नौ-दो-ग्यारह हो चुके थे। लखनऊ के कुछ कट्टर पत्रों ने इस प्रसंग को लेकर पुरजोश सम्पादकीय नोट भी छापे थे, जिनमें प्रायः यह मान लिया गया था कि राष्ट्रीय झण्डे का इस प्रकार अपमान करने का साहस कोई कम्यूनिस्ट ही कर सकता है, दूसरा नहीं।

बीमार कुत्ते को तिरङ्गा उढ़ाने का जघन्य अपराध उस कुत्ता-स्वामी ने कम्यूनिज्म की झोंक में किया या अपनी नादानी से अथवा कुत्ते और तिरंगे के मध्यवर्ती अपने सहज स्नेहभाव के कारण, इस पर विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है। कारण, पक्ष और विपक्ष में अनेक

दलीलें दी जा सकती हैं, और यदि कुत्ता-मालिक मिल जाता और उसे अदालत में भेजा जा सकता तो पक्ष और विपक्ष के वकीलों के उर्वर मस्तिष्कों की चोजभरी कानूनी दलीलें इस मामले को आवश्यकता से अधिक रोचक बना देतीं, पर वैसा हुआ नहीं, और इसी कारण 'भारतीय दण्ड-विधान' की मोटी पुस्तक का संभावित नवीन संस्करण एक नई 'नजीर' से वञ्चित रह गया।

जनान्दोलन के इस पहलू ने संभवतः हमारी केन्द्रीय सरकार को भी सतर्क कर दिया है। इसलिए उसने तिरङ्गा के प्रयोग-सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियम संशोधित रूप में अभी प्रकाशित कराए हैं। नियम इस प्रकार हैं :—

(१) केन्द्रीय सरकार के सचिवों को अपने निवास-स्थानों तथा मोटरगाड़ियों पर राष्ट्रीय झंडा लगाने का अधिकार है।

(२) केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सभाओं के स्पीकरों, जहाँ अपर चेम्बर हों वहाँ उनके प्रेसीडेंटों, को अपने निवास-स्थान तथा मोटरगाड़ियों पर राष्ट्रीय झंडा लगाने का अधिकार है।

(३) केन्द्रीय सरकार के उपसचिवों को अपनी मोटर-गाड़ियों पर राष्ट्रीय झंडा लगाने का अधिकार है किन्तु उन्हें अपने निवास-स्थान पर झंडा लगाने का अधिकार नहीं है।

(४) डिवीजनों के कमिश्नरों, जिलों के डिप्टी कमिश्नरों तथा कलक्टरों को अपने निवास-स्थान पर झंडा लगाने का अधिकार है।

(५) रियासती और रियासती संघों की धारा सभाओं के सचिवों एवं प्रेसीडेंटों अथवा स्पीकरों को अपने निवास-स्थानों और अपनी मोटरगाड़ियों पर झंडा लगाने का अधिकार है।

(६) राष्ट्रीय झंडा साधारणतया प्रमुख सरकारी इमारतों, जैसे हाईकोर्ट, सचिवालयों, कमिश्नरों के दफ्तरों, कलक्टरियों, जेलों तथा जिला बोर्ड और म्युनिसिपल बोर्डों के दफ्तरों पर ही फहराया जा सकता है।

(७) चीफ कमिश्नर भी अपने निवास-स्थानों और अपनी मोटरगाड़ियों पर झंडा लगाने का अधिकारी है।

(८) विदेशों और रियासतों में भारतीय प्रतिनिधि अपने निवास-स्थानों तथा मोटरगाड़ियों पर झंडा फहरा सकते हैं।

(९) सीमा-स्थित क्षेत्रों में विशेष स्थानों पर ही झंडा फहराया जा सकता है।

(१०) रियासतों के राजा और राज-प्रमुख अपने निवासस्थानों पर राष्ट्रीय झंडा लगा सकते हैं तथा यदि चाहें तो उसे अपने रियासती झंडे के साथ प्रयोग में ला सकते हैं।

(११) स्थल, जल तथा वायुसेना के द्वारा झंडे का प्रयोग किए जाने के विषय में विशेष नियम बनाए गए हैं और वे ही इस सम्बन्ध में लागू होंगे।

(१२) गवर्नर-जनरल तथा गवर्नरों के अपने विशेष झंडे हैं।

(१३) स्वतन्त्रता दिवस-समारोह, राष्ट्रीय सप्ताह, जनवरी २६, तथा महात्मा गांधी जन्म-दिवस और राष्ट्रीय उत्सवों के विशेष अवसरों पर झंडे के प्रयोग पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

(१४) संयुक्तप्रान्त में जिला और सेशन जजों की कचहरियों तथा रिजर्व पुलिस लाइनों पर भी झंडा फहराया जा सकता है। इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट और डेवलपमेंट बोर्ड कानपुर, म्युनिसिपल और जिला बोर्डों के समकक्ष समझे जाएँगे।

यह देखा गया है कि विज्ञापनों आदि में भी झंडे का असंगत प्रयोग हुआ है। स्मरण रहे कि भारत सरकार ने जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि इस प्रकार का दुरुपयोग राष्ट्र-पताका के सम्मानानुकूल नहीं है।

जहाँ तक नियमों का सम्बन्ध है, यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि सरकार ने ये प्रतिबन्ध लगाकर तिरंगे के सम्मान की न केवल रक्षा की है, उसकी वृद्धि भी की है। यही नहीं, नियम नम्बर (२)—(८) से राष्ट्रीय झण्डा 'अनन्य सामान्यता' का प्रतीक भी बन गया है। अर्थात् अब यदि कोई मोटर राष्ट्रीय झण्डा फहराती हुई निकलेगी तो उस सड़क के पथचारी के दिमाग में यह बात सहज ही में घुस जाएगी कि यह मोटरगाड़ी किसी ऐरे-गैरे की नहीं है, यह किसी 'साहब' की मोटर है, जो गवर्नर-जनरल से लेकर सूबे का मिनिस्टर तक कोई हो सकता है। चौराहों या नाकों पर नम्बर नोट करने के लिए खड़े सिपाही की आँखें छिपाने के लिए भी

तिरंगे की चकाचौंध काफी हो सकती है, जिसके कारण उसकी पेंसिल और डायरी अनायास छूट पड़ा करेगी और 'पालीवाल-काण्ड' की पुनरावृत्ति होने का अवसर न आ पाएगा।

फिर भी नियमों की एक त्रुटि की ओर हमारा ध्यान हठात् आकृष्ट हो जाता है। कुछ कांग्रेसी यह वसीयत करके मरते हैं कि उनके शव को तिरंगा उढ़ाकर श्मशान ले जाया जाए। यदि वसीयत न भी की गई हो, तब भी कुछ राष्ट्रकर्मियों के घरवाले मृतक की भावना के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए कभी-कभी ऐसा करते हैं। शहीदों के शव-जलूस तो तिरंगे से ढँककर अब से पूर्व प्रायः निकाले जाते थे। इन नियमों के बाद क्या होगा, यह स्पष्ट नहीं है। अर्थात् किसी स्वभावतः कांग्रेसी को कफन की जगह यदि तिरंगा उढ़ाकर श्मशान पहुँचाया जाएगा तो नए विधान के अन्तर्गत यह कार्य दण्डनीय माना जाएगा, या नहीं!

अच्छा हो यदि हमारे स्वाधीनता-संग्राम के दूसरे प्रतीक 'गांधी टोपी' को भी उक्त विशेष अधिकारियों के प्रयोग के लिए सुरक्षित कर दिया जाए! उसका अपव्यवहार भी कम नहीं हो रहा है—विशेषतः 'चोर बाजारियों' के हाथों!

अस्यामेव शताब्द्याम्....!

स्वप्न प्रायः रोचक होते हैं, क्योंकि वे हमारा संबंध एक ऐसे जगत् से जोड़ देते हैं जो गतिशील होते हुए भी अस्तित्वहीन होता है। दिवास्वप्न या जाग्रत्स्वप्न स्वप्नों की श्रेणी में सब से अधिक रोचक माना जाता है, क्योंकि वह किसी 'पश्यन्मुनि' की क्रिया होता है—व्याकरण की दृष्टि से सकर्मक होते हुए भी व्यवहार में अकर्मक; फलतः उसमें अद्भुत रस की द्विगुण मात्रा रहती है। ऐसे स्वप्न साधारण मनुष्य नहीं देखते, बड़े-बड़े दिग्गज प्रतिभाशाली देखते हैं।

काशी या अयोध्या के कुछ दिग्गज संस्कृततीर्थों ने अब से एक दशाब्दि पूर्व एक दिवास्वप्न देखना प्रारम्भ किया था—'अस्यामेव शताब्द्यां संस्कृतं राष्ट्रभाषा भवेदिति।' शताब्दि का दशमांश व्यतीत होचुका है, पर संस्कृत अभी तक राष्ट्रभाषा के सिंहासन की ओर एक कदम भी अग्रसर नहीं हुई है। उस आन्दोलन को संस्कृत के उन विद्वानों का सहयोग अत्यल्प मात्रा में प्राप्त हुआ था जो विश्वविद्यालयों के पीठों को अलंकृत कर रहे हैं, जिन्हें संस्कृत के साथ-साथ अँग्रेजी का या किसी अन्य विदेशी भाषा का भी उच्च ज्ञान है, अतएव जिनका ज्ञान और चिन्तन वैज्ञानिक हैं। ऐसे उभयज्ञ विद्वान् शुद्ध संस्कृतज्ञों को 'शुक्ल' कहते हैं—शुक्ल इसलिए, क्योंकि उनकी परंपरा शुद्धत्व—'शुक्लत्व' की पोषक है और वह परंपरा उभयज्ञों को पल्लवग्राही भर मानती है—मूल का अधिकारी विद्वान् नहीं। पंडितों के उस दल ने इन तथाकथित वैज्ञानिकों का नाम रख छोड़ा है—'भाव मिश्र।' तो इन 'भावमिश्रों' की दृष्टि में 'शुक्लों' का वह दावा दिवास्वप्न से अधिक कुछ नहीं था; कारण, उनकी वैज्ञानिक शोध के अनुसार संस्कृत राष्ट्रभाषा किसी शताब्दि में नहीं रही—उस शताब्दि में भी नहीं, जब वह जीवन के उच्चतम स्तर पर प्रतिष्ठित थी; फिर इस शताब्दि में तो वह राष्ट्रभाषा हो ही कैसी सकती हैं!

पर अब हम देख रहे हैं कि 'भावमिश्र' भी कुछ-कुछ उसी प्रकार का स्वप्न देखने का अभ्यास कर रहे हैं। अभी हाल ही में उन्होंने एक स्वप्न देखा है—'हिन्दी समस्त एशिया की मातृभाषा हो।' और इसी के साथ—'देवनागरी समस्त एशिया की अन्तर्देशीय लिपि स्वीकार की जाए। अधिक नहीं, तो यह स्वप्न देश कालानुकूल तो है ही, अतः इसकी वैज्ञानिकता स्वयंसिद्ध है। भारत आजकल अखिल एशियाई आन्दोलनों का केन्द्र है। एक-दो वर्ष के भीतर-भीतर यहाँ तीन-तीन अखिल एशियाई सम्मेलन हो चुके हैं और कुछ सन्निकट भविष्य में होने जा रहे हैं। इण्डोनेशिया के मामले में संयुक्त राष्ट्र संघ के कान पर जूँ इतना शीघ्र नहीं रेंगती, यदि दिल्ली का एतत्संबन्धी सम्मेलन अपनी संयुक्त आवाज न उठाता। यह भी अनेक मुखों से कहा जा रहा है कि भारत समस्त एशिया का नेतृत्व करेगा। इस दशा में नेता की भाषा और नेता की लिपि सीखने का लालच प्रत्येक एशियाई के लिए स्वाभाविक होगा। हिन्दी के अखिल एशिया की 'मातृभाषा' होने के पक्ष में यह प्रथम राजनैतिक + वैज्ञानिक युक्ति है।

इस पक्ष में दूसरी वैज्ञानिक दलील भारत के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त भाषा-विज्ञानाचार्यों की ओर से यह उपस्थित की गई है कि हिन्दी भाषा अन्य प्रमुख एशि-

याई भाषाओं–जैसे चीनी, जापानी, अरबी, फारसी, आदि की अपेक्षा अधिक सरल है। अतः इसे शीघ्रता से सीखा जा सकता है। यही बात देवनागरी के पक्ष में भी है। फिर एशिया की सभी प्रमुख भाषाओं, यहाँ तक कि अरबी के भी शब्दकोषों, में संस्कृत के शब्द तत्सम अथवा तद्भव रूप में विद्यमान हैं। हिन्दी यदि संस्कृत की बहन (प्राकृत की पुत्री होने के कारण) या सुपुत्री है, तो अन्य भाषाएँ भी इसी नाते हिन्दी की बहनें हैं। बहनों में बाह्य अन्तर भले ही कुछ दिखाई दे, रुधिर-साम्य तो होता ही है। कुछ प्रमुख भाषाएँ जैसे पश्तो, फारसी और सिंहली तो हिन्दी के इतना निकट हैं कि विचार करने पर उनमें बाह्यावरण का ही भेद-भाव दिखाई देता है, इससे अधिक नहीं। अतएव उन भाषाओं के भाषी हिन्दी को बिना कठिनाई के अपना लेंगे क्योंकि उनके निकट हिन्दी के शब्द सर्वथा अपरिचित नहीं होंगे।

इन दोनों, और ऐसी ही कुछ अन्य, वैज्ञानिक युक्तियों के विरोध में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि जो स्वतन्त्र भारत समस्त एशिया का नेतृत्व करने का दावा करने जा रहा है, उसकी सरकार ढाई वर्ष में यह निर्णय नहीं कर पाई है कि उसकी राष्ट्रभाषा का नाम-रूप क्या है? हिन्दी-हिन्दुस्तानी का द्वन्द्व समाप्त होने नहीं आ रहा है। देवनागरी वर्णमाला भी सर्वाधिक वैज्ञानिक अवश्य है, पर 'टाइप राइटिंग, 'टेली प्रिंटर' और 'मोनो' की दृष्टि से वह अधिक उपयोगी नहीं है; फिर आज के भागते-दौड़ते युग में एशिया कब तक इन दोनों के निर्णीत और आधुनीकृत रूपों के लिए प्रतीक्षा कर सकता है। हिन्दी अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक सरल है, इसका दावा हिन्दी भाषा-भाषी करें तो यह स्वाभाविक है; पर वह चीनी भदन्त नहीं कर सकता, जो तीन वर्ष तक सारनाथ में रहकर और एक भव्य भारतीय भदन्त का शिष्यत्व अङ्गीकार करके भी 'अच्छा' शब्द से अधिक और कुछ नहीं सीख सका! लिङ्गों और कारकों का मायाजाल भी हिन्दी में सबसे अधिक जटिल है, जिस पर पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी प्रान्तों में अब तक मतभेद चला आ रहा है। एक मद्रासी छात्र को जब यह सिखाया जाता है कि कुछ विभक्तियों में 'लड़का' का 'लड़के' और 'कलकत्ता' का 'कलकत्ते' हो जाता है, तब वह यह प्रयोग कर बैठता है—'लड़के ने कलकत्ते से केले-रसगुल्ले लिए, आगरे से पेठे, मथुरे से पेड़े और अयोध्ये से खरबूजे!' कलकत्ता, मथुरा, आगरा और अयोध्या में इस भिन्न रूपता का आधार उसे समझाया भी किस प्रकार जाए? क्या यह सरलता है? तत्समता और तद्भवता की कसौटी पर वह संज्ञाओं को कैसे कसे?

पक्ष और विपक्ष में यद्यपि बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर इससे स्वप्न-दर्शन में तो अन्तर नहीं आता। अध्यवसायी और मनस्वी स्वप्न देखते हैं तो उन्हें सत्य का रूप देने का यावज्जीवन प्रयत्न करते हैं। फिर संसार उन्हीं स्वप्नों को प्रस्तुतरूप प्राप्त करते देख आश्चर्यचकित रह जाता है। ऐसे पुरुषार्थी, जो अप्रत्यक्ष, अतः असत्य, को प्रत्यक्ष सत्य में परिवर्त्तित कर सकने का दम रखते हैं, धन्य हैं। हमारे विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में साधारण धारणा यह है कि वहाँ के दिग्गज नदी की गहराई का लेखा-जोखा उपस्थित करने में जैसे पटु होते हैं, नदी को पार करने में उतने दक्ष नहीं होते। वे पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं, उस पर चलने को कोई दूसरा चाहिए। और तो और, वे हिन्दी के अध्यापक और समर्थक होते हुए भी आज, जब कि अङ्गरेज हिन्दुस्तान को छोड़ गए हैं, अङ्गरेजियत से सम्बन्ध तोड़ने में अपने को समर्थ अनुभव नहीं करते। श्रद्धेय टंडन जी के शब्दों में 'अङ्गरेजों के ये मानस पुत्र' जब व्यवहाररूप में कुछ कर दिखाएँ, तभी हमें कुछ आशा हो सकती है; अन्यथा 'पश्यन्मुनि' के रूप में तो ये हमारे चिरपरिचित हैं ही।

उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी

'भारतीय साहित्य परिषद्' का वार्षिक अधिवेशन गत २४, २५, २६ अप्रैल को प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में हुआ था। कुछ वर्ष के अपने अल्प वय में ही इस परिषद् ने हिन्दी-क्षेत्र में जो लोकप्रियता प्राप्त कर ली है, उसे देखकर प्रसन्नता होती है। इस अधिवेशन में चार महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किए गए, जिनमें से एक की ओर हमारा ध्यान हठात् आकर्षित हुआ है। इस प्रस्ताव में हिन्दी प्रदेश के उन विश्वविद्यालयों से जिन्होंने हिन्दी के माध्यम के द्वारा उच्च शिक्षा देना सिद्धान्त-रूप

.में स्वीकार कर लिया है, यह माँग की गई है कि वे अपने यहाँ इसकी व्यवस्था शीघ्र करें। इस व्यवस्था को शीघ्र कार्य-रूप देने के लिए कुछ सुझाव भी उपस्थित किए गए हैं। उदाहरणार्थ एक सुझाव यह है कि विश्वविद्यालयों में उच्च-शिक्षोपयोगी पाठ्यपुस्तकें हिन्दी में तैयार कराई जाएँ। दूसरा सुझाव यह है कि भविष्य में ऐसे विश्वविद्यालय अपने यहाँ ऐसे अध्यापकों की ही नियुक्ति विशेषतया करें जो अपने-अपने विषयों को हिन्दी-माध्यम के द्वारा पढ़ा सकें साथ ही यदि किसी अहिन्दीभाषी अध्यापक को उसकी विशेष योग्यता के कारण कोई विश्वविद्यालय अपने यहाँ नियुक्त ही करना चाहे, तो ऐसे विशेषज्ञ को एक विशेष अवधि के लिए ही नियुक्त किया जाए; उस अवधि के भीतर यदि वह हिन्दी पर आवश्यक अधिकार प्राप्त करले तो उसकी नियुक्ति स्थायी कर दी जाए, अन्यथा नहीं।

युक्तप्रान्तीय सरकार ने हिन्दी को राजभाषा मान लिया है। इस प्रान्त के अलावा मध्यप्रान्त, विहार आदि ५-६ अन्य प्रान्त भी हिन्दी को राजभाषा घोषित कर चुके हैं। ये प्रान्त हिन्दी-प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं। सिद्धान्ततः इस हिन्दी-प्रदेश में जितने विश्वविद्यालय हैं, उन सभी को हिन्दी के माध्यम द्वारा शिक्षा देना अविलम्ब प्रारंभ कर देना चाहिए। प्रस्तावक ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि इस प्रदेश के 'अधिकांश' विश्वविद्यालय सिद्धान्त-रूप में हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर चुके हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि इस हिन्दी-प्रान्त में भी अभी कुछ विश्वविद्यालय ऐसे हैं, उनकी संख्या यद्यपि छोटी ही है, जिन्होंने हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम अभी तक स्वीकार नहीं किया है। ऐसे विश्व-विद्यालयों से भी प्रस्ताव में अपील की गई है कि वे भी अपने यहाँ हिन्दी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर लें।

इस प्रस्ताव की उपयोगिता, सामयिकता और आव-श्यकता के सम्बन्ध में कुछ कहने की गुंजायश नहीं है। मातृभाषा-द्वारा शिक्षा प्राप्त करने में जो शीघ्रता और सरलता होती है, वह दूसरी भाषा-द्वारा शिक्षा प्राप्त करने में नहीं हो सकती। अब तक अँगरेजों का हमारे देश पर राज्य था, और विश्वविद्यालयों में जो छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से जाते थे, उनका लक्ष्यबिन्दु 'उच्च सरकारी पद' होता था, ज्ञान नहीं। ऊँचा सरकारी पद उस दशा में योग्यता या ज्ञान की कसौटी थी। ऐसे उच्च शिक्षितों के लिए अँगरेजी का अच्छा ज्ञान होना पहली शर्त थी जिससे वे न केवल रहन-सहन में, बातचीत में भी अँग्रेजियत को पूरी तरह अपना सकें और इस प्रकार शासनयंत्र के 'फिट पुरजे' बन सकें। इसी कारण अब तक भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी ही थी। यहाँ तक कि अरबी, फारसी, संस्कृत और हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों के मूल पाठ यद्यपि उन-उन भाषाओं में ही छापे जाते थे, पर उनकी व्याख्याएँ अँग्रेजी में रहती थीं, प्रश्नपत्र अँग्रेजी में आते थे और उनके उत्तर छात्र अँग्रेजी में लिखते थे।

इधर भारत जब से स्वाधीन हुआ है, विश्वविद्यालयों में एक आन्दोलन यह भी चलने लगा है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय अपने-अपने प्रदेश की भाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाए। प्रान्तीयता और छात्रों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए इस आन्दोलन की उप-योगिता समझ में आ सकती है; पर इस में एक बड़ी हानि यह होगी कि विभिन्न विश्व विद्यालयों की एक-सूत्रता भंग हो जाएगी ; वे एक-दूसरे से दूर जा पड़ेंगे। एक विश्वविद्यालय के छात्रों और अध्यापकों के पास ऐसा कोई सूत्र नहीं रहेगा, जिससे वे अपना सम्पर्क दूसरे विश्वविद्यालयों से स्थापित कर सकें और विचार-विनिमय, मंत्रणा तथा अन्तर्विश्वविद्यालय-परिषदों में योगदान कर सकें।

अब तक ऐसा सूत्र अँग्रेजी थी। अँग्रेज चले गए तो अँग्रेजी कब तक हमारा काम निकाल सकती है, और उसका मोह हमें क्यों होना चाहिए, जिसने हमें अन्ता-राष्ट्रिय क्षेत्र में हीन बनाया है! यह भी एक प्रकार से निश्चित ही है कि भारतीय संघ की राष्ट्र-भाषा हिन्दी ही बनेगी, कोई अन्य भाषा नहीं; हिन्दुस्तानी ही बनें, तब भी इस उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता। ऐसी वस्तु-स्थिति में विश्वविद्यालयों के लिए उचित तो यही होगा कि वे अपनी प्रान्तीय भाषाओं को अन्य क्षेत्रों में समुचित प्रोत्साहन देते रहें, पर उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी को ही बनाएँ। साथ ही जो विश्वविद्यालय हिन्दी-प्रदेश के अन्तर्गत हैं, उन्हें तो इस दिशा में अविलम्ब कदम उठाना चाहिए।

हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने में कुछ कठिनाइयाँ भी हैं, जिन पर प्रस्तावक तथा वक्ताओं ने प्रकाश डाला है। जहाँ तक हिन्दी और संस्कृत विभागों का सम्बन्ध है, इन दोनों विभागों में इस प्रकार की कोई अड़चन नहीं है। हिन्दी-प्रदेश के प्रमुख विश्वविद्यालयों में हिन्दी और संस्कृत के जो अध्यापक कार्य कर रहे हैं, वे हिन्दी के भी विद्वान् हैं। और इसीलिए अपने-अपने विषयों की व्याख्या हिन्दी में सुविधापूर्वक कर सकते हैं। इन दोनों विभागों के छात्रों को प्रश्नों के उत्तर हिन्दी या अँग्रेजी तथा संस्कृत एवं अँग्रेजी में लिखने की सुविधा प्राप्त है। इन विभागों के प्रश्नपत्र यदि अब भी अँग्रेजी में छापे जाते हैं तो यह सचमुच आश्चर्य की बात है! 'भाषा' और 'संस्कृत' के पण्डितों को अँग्रेजियत का ऐसा मोह क्यों?

कठिनाई विशेषतः गणित, रसायन, प्राणिशास्त्र, भौतिक विज्ञान तथा अन्य ऐसे ही विषयों को पढ़ाते समय उपस्थित होती है, और इस प्रगति में यदि कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष विरोध उपस्थित किया जा रहा है तो इन्हीं विषयों के अध्यापकों की ओर से। कारण यह है कि इन विषयों के अध्यापन का कार्य जो विद्वान् कर रहे हैं, उन्होंने अपने-अपने विषयों का ज्ञान अँग्रेजी के माध्यम से प्राप्त किया है। लम्बे-लम्बे पारिभाषिक लैटिन शब्द उन्हें रटे हुए हैं और उनकी व्याख्या के न केवल वाक्य और पैराग्राफ, पुस्तकें की पुस्तकें उनको कंठाग्र हैं। पाठनकार्य की सुविधा के लिए उन्होंने अपने १५-२० वर्ष के अध्यापक-जीवन में जो नोट तैयार किए हैं, वे भी अँग्रेजी में ही हैं। अब यदि वे अँग्रेजी के स्थान में हिन्दी को ग्रहण करते हैं तो उन्हें :—(१) पारिभाषिक शब्दों को नए सिरे से घोखना पड़ेगा, जिसमें शायद उनके विद्यार्थी उनसे अधिक तेज सिद्ध होंगे, क्योंकि 'साठे' और 'पाठे' के वयों में स्मरणशक्ति की दृष्टि से बड़ा अन्तर होता है; (२) उनके तैयार किए नोट बेकार हो जाएँगे और उन्हें इसके लिए नए सिरे से फिर परिश्रम करना पड़ेगा जो परिणत वय में अभिशाप-सा प्रतीत होगा; (३) अंग्रेजी पर उनका अधिकार है, जिसके बल पर वे छात्रों पर अपनी धाक जमा लेते हैं, हिन्दी में ऐसा कम संभव होगा। विशेषतया उन अध्यापकों के लिए जो अहिन्दीभाषी प्रान्तों के निवासी हैं; इस दृष्टि से वे काफी घाटे में रहेंगे।

ये तो बाहरी और छोटी-छोटी कठिनाइयाँ हैं। सबसे मुख्य कठिनाई है उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों के अभाव की। पाठ्यपुस्तकें तब तक नहीं लिखी जा सकतीं जब तक पारिभाषिक शब्दों के सर्वमान्य हिन्दी रूप न बन जाएँ। यह कार्य दुष्कर है और समयापेक्षी भी। सर्वप्रथम एक वैज्ञानिक शब्दकोष बनना चाहिए और इसके लिए यह पहले से ही निर्णय हो जाना चाहिए कि जो नए शब्द गढ़े जाएँगे, उनके धातु और प्रत्यय किस भाषा पर आधारित होंगे। इस सम्बन्ध में विद्वानों का झुकाव संस्कृत की ओर अधिक है, क्योंकि उसका धातुकोष और प्रत्यय-कोष अक्षय्य है और अनन्त भी। वह लेटिन के मुकाबले ठहर सकती है। पर हिन्दुस्तानी के पक्षपाती और अलीगढ़ विश्वविद्यालय इसे इन दिनों स्वीकार कर लेंगे और उस्मानिया यूनीवर्सिटी कालान्तर में स्वीकार कर लेगी, यह विचारणीय है।

कोष जैसे महत्कार्य के लिए पुष्कल धन की आवश्यकता होगी, पाठ्यपुस्तकों के निर्माण के लिए उससे भी अधिक की। धनराशि के लिए किसका द्वार छेका जाए? विश्वविद्यालयों के पृथक्-पृथक् या सम्मिलित कोष इसके लिए पर्याप्त क्षम नहीं हैं। प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों की ओर इसके लिए निहारा जा सकता है; पर उनके आशयों का संचित जल बहिर्गत करने के लिए ऐसे मोटे-मोटे नल पहले से ही लगे हुए हैं कि उनमें 'बिन्दु-शेष' भी नहीं है। हाँ, किसी एक विदेशी दूतावास को एक वर्ष के लिए भी यदि बन्द कर दिया जाए या सेलटैक्स से होनेवाली आय का ५ प्रतिशत भी प्रान्तीय सरकार इस पुण्यकार्य के लिए निश्चित करदे तो बी० ए० तक की पाठ्य पुस्तकें एक वर्ष के भीतर-भीतर और एम० ए० तक की पाठ्य पुस्तकें दो वर्ष के भीतर-भीतर प्रस्तुत करके सभी विश्वविद्यालयों को दी जा सकती हैं, जैसा कि प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष और प्रोफेसर डाक्टर श्री धीरेन्द्र वर्मा का विश्वास है।

—०—

दशाब्दी में आर्थिक प्रगति

भारत राष्ट्र की आय

श्री अवनीन्द्रकुमार, विद्यालंकार

भारत एक महान् राष्ट्र है। जन-शक्ति, प्राकृतिक सम्पत्ति और भौगोलिक स्थिति ने उसको महत्ता प्रदान की है। प्रधान मन्त्री का दावा है कि भारत ने स्वाधीन होने के बाद अन्ताराष्ट्रीय जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर ली है। सुनने में ये बातें बहुत अच्छी मालूम होती हैं! अपनी गौरव-गाथा सुनकर किसको नशा नहीं चढ़ता? पर क्या कोई गरीब, दरिद्र और अकिंचन राष्ट्र महत्त्वपूर्ण अन्ताराष्ट्रीय स्थिति प्राप्त कर सकता है? कभी हम सुनते हैं कि भारत को एशिया, विशेषतः आग्नेय एशिया का नेता होना चाहिए। एशियाई परिषद्-द्वारा उस ओर कदम भी बढ़ाया गया है, पर प्रश्न यह है क्या भारत उनका नेतृत्व करने की क्षमता रखता है? जिस देश की आय घट रही है, उस देश का नेतृत्व क्या कोई दूसरा देश स्वीकार कर सकता है? आग्नेय एशिया के देश आर्थिक सहायता की आवश्यकता होने पर, मैशीनरी और प्लाण्ट की जरूरत होने पर, वाशिंगटन की ओर देखेंगे, या दिल्ली की ओर! आन्तरिक शक्ति न होते हुए कोई भी राष्ट्र विश्व की महती शक्ति नहीं हो सकता। यह आन्तरिक शक्ति सैनिक और सामरिक शक्ति के द्वारा प्राप्त होती है। आज के युग में कोई देश आर्थिक सम्पदा के बिना अजेय सामरिक शक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। वस्तुतः शक्ति का मूल अर्थ है। अतः स्वभावतः प्रश्न उठता है कि इस क्षेत्र में भारत की क्या अवस्था है?

युद्ध-काल में देश ने अनेक स्वप्नों, मनोरथों और आकांक्षाओं को संजोकर रखा। अनेक योजनाएँ बनीं। पाँच, दस और पन्द्रह वर्ष के अन्दर समस्त राष्ट्र की पाँच गुनी और प्रति व्यक्ति की दुगनी आय बढ़ाने की स्कीमें बनीं। लड़ाई समाप्त होने के लगभग चार साल बाद आज अवस्था क्या है?

क्यों? आज सहसा मालूम हुआ है कि भारत की और प्रत्येक भारतीय की आय घट रही है! क्या सहसा इस पर विश्वास होगा? पर अर्थ-शास्त्रियों और 'ईस्टर्न इकनामिस्ट' मण्डली के अध्ययन का परिणाम चौंका देनेवाला है। वे अपने अध्ययन-द्वारा इस परिणाम पर किस प्रकार पहुँचे, क्या यह जानना अप्रासंगिक और अरुचिकर होगा?

पहले के प्रयत्न—

भारत और प्रति भारतीय की आय जानने के प्रयत्न १८६८ से किए जा रहे हैं। इस दिशा में पहला प्रयत्न करने का श्रेय ऋषिकल्प दादाभाई नौरोजी को है। उन्होंने बताया कि भारत सबसे अधिक गरीब देश है, और प्रति भारतीय की आय केवल २०) रु० है। उस समय से बराबर समय-समय पर अर्थ-शास्त्री यत्न करते रहे हैं। उनके युद्ध-पूर्व के प्रयत्नों का परिणाम इस प्रकार है :—

द्रष्टा	वह काल जिसके लिए अनुमान लगाया गया	अनुमानित प्रतिव्यक्ति आय रु० आ०
दादाभाई नौरोजी	१८६८	२० ०
बेरिंगव बारबूर	१८८२	२७- ०
लार्ड कर्जन	१८६७-६८	३० ०
विलियम डिग्बी	१८६६	१८ ०
एटकिंसन	१८७५	२७- ३
एटकिंसन	१८६५	३५- २
बी० एन० शर्मा	१६११	५०- ० *
वाडिया व जोशी	१६१३-१४	४४- ३
वकील व पुरेजन	१६१०-१४	५८- ५
फिडले शिराज	१६२१	१०७ ०
के० टी० शाह वश्वम्मात	१६२१	७४ ०
राव	१६२५-२६	७६ ०
राव	१६३१-३२	६२ ०

*समस्त भारत; औरों ने केवल ब्रिटिश भारत का ही हिसाब लगाया है।

युद्ध-काल की आय का डा० राव ने हिसाब लगाया है। उनकी गणना के अनुसार १९३९-४० से १९४५-४६ तक प्रत्येक भारतीय की आय इस प्रकार है :—

प्रतिव्यक्ति आय

	रु०
१९३९-४०	६७
१९४०-४१	७०
१९४१-४२	७८
१९४२-४३	११२
१९४३-४४	१३९
१९४४-४५	१३९
१९४५-४६	१३७

'एक अर्थ-शास्त्र के विद्यार्थी' ने 'कॉमर्स' में १९३८-३९ और १९४२-४३ के लिए प्रतिव्यक्ति आय का अनुमान क्रमशः ६६) रु० और १४२) रु० लगाया था। पर अवस्थिति बदल गई है। भारत विभक्त हो गया है। रियासतें भारतीय यूनियन में सम्मिलित हो गईं हैं। पर इसके साथ प्रति व्यक्ति की आय की गणना करने के साधनों में वृद्धि नहीं हुई है और न प्राप्त सामग्री की प्रामाणिकता बढ़ी है। देश के कृषि-प्रधान होने और उसकी पैदावार का ठीक-ठीक हिसाब न होने से आय का ठीक-ठीक ज्ञान होना सम्भव नहीं है। यह होते हुए भी 'ईस्टर्न इकनामिस्ट' और 'कॉमर्स' ने राष्ट्रीय आय और प्रतिव्यक्ति की आय जानने का सराहनीय प्रयत्न किया है। वास्तविक स्थिति से परिचित होने के लिए उन परिणामों से अविगत होना आवश्यक है। क्योंकि भूठा भ्रम दूर हो जाने पर यह बहुत सम्भव है कि हम अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने की ओर अपने सारे प्रयत्न केन्द्रित कर दें।

आर्थिक जीवन का केन्द्रविन्दु क्या है? अभाव और उस अभाव को दूर कर सन्तुष्टि प्राप्त करना। वितरित की जानेवाली आय वस्तुतः नवीन उत्पादन का स्रोत होती है। यह शाश्वत चक्र है, जिसमें उत्पादन और वितरण परस्पर एक-दूसरे से बँधे हुए हैं। इसलिए इतना ही जानना पर्याप्त नहीं है कि प्रति व्यक्ति की आय क्या है? उसका स्रोत उत्पादन कितना है? पर यह भी जानना आवश्यक है कि उसका वितरण किस प्रकार हो रहा है। कोई आर्थिक पद्धति और आर्थिक तंत्र जिन तत्त्वों के आधार पर चलती है, वे राष्ट्रीय लाभ या मुनाफा-डिविडेण्ड-और वह तंत्र है; जिसके द्वारा बचत की जाती है और बचत को—संचित व अर्जित सम्पत्ति को—पुनः नए धंधों और उद्योगों में लगाया जाता है। इसलिए राष्ट्रीय आय के साथ-साथ इनको भी जानना चाहिए। मुद्रास्फीति के कारण साधारणतः समझा जाता है कि हमारी आय बढ़ी है। १९३९ में ब्रिटिश भारत की कुल आय लगभग १९३४ करोड़ रु० थी, और वह १९४६-४७ में बढ़कर ४५०७ करोड़ रु० हो गई। ये चकाचौंध उत्पन्न करने-वाले अंक हैं। पर हरेक जानता है कि मुद्रा में वह भी कागजी मुद्रा में—हमारी आय अवश्य बढ़ी है, वास्तविक अर्थ में नहीं। युद्ध से पहले १०) पानेवाला कम्पोजीटर और ५०) रु० पानेवाला सम्पादक अपने को सुखी मानता था। यद्यपि आज १००) रु० पानेवाला कम्पोजीटर और १००) रु० से सम्पादकीय जीवन आरम्भ करनेवाला सम्पादक भी अपने को महीने के अन्त में खाली हाथ पाता है। बचतकी तो बात ही दूर रही। यही अवस्था क्या हमारी राष्ट्रीय आय की नहीं? इसलिए इसकी परीक्षा और विवेचना आवश्यक है।

राष्ट्रीय आय

राष्ट्रीय आय क्या है? वर्ष भर में देश के समस्त उद्योगों और खेती की उपज का कुल परिमाण और सेवाओं के कुल योग के सिवाय और क्या है? ये अङ्क हमारे आर्थिक जीवन की प्रगति और अवनति को सूचित करते हैं। राष्ट्र की बढ़ी आय से केवल अन्न, वस्त्र और जनता के जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुएँ ही नहीं, अपितु मानवीय भावना के वे समस्त फल भी प्राप्त होने चाहिए, जिनसे जीवन और अधिक प्राणवान् बनता है। इन अङ्कों से हमें आर्थिक जीवन के मूलतत्त्वों को ढूँढ़ निकालना है।

युद्ध समृद्धि लाया है, यह साधारण जनता का विश्वास है। बंगाल के भीषण अकाल (१९४३) में भी इस धारणा को दूर नहीं किया है। पर सचाई यह नहीं है। १९४३-४४ तक भारत का औद्योगिक उत्पादन बराबर बढ़ता गया और अगस्त १९३९ की अपेक्षा २६ विन्दु बढ़ गया। इसी वर्ष—बंगाल में जिस साल अकाल

आया—आश्चर्य है कि खेती की पैदावार भी १६३६-३६ तक के तीन वर्षों की औसत पैदावार से ६ प्रतिशत अधिक हुई। इसके बाद उत्पादन कम होता गया। १६४७-४८ में उत्पादन में कमी का होना सबके अनुभव में आया। १६४८-४६ में स्थिति कुछ और बिगड़ गई। राष्ट्रीय आय का हिसाब अविभक्त भारत में ब्रिटिश भारत का है। पाकिस्तान बनने के साथ रियासतें भारतीय यूनियन में आ गई हैं। यदि रियासतों की आय और पाकिस्तान की आय बराबर मानलें, तो भारतीय यूनियन की आय का मोटा अनुमान हो जाएगा। पर इसमें भूल होने का मार्जिन रखकर ही इसको मानना चाहिए।

१६३६-४० से १६४७-४८ तक ब्रिटिश भारत की आय

भारत की मुद्रा-आय

(लाख रु० में)

	१६३६-४०	१६४०-४१	१६४१-४२	१६४२-४३	१६४३-४४	१६४४-४५	१६४५-४६	१६४६-४७	१६४७-४८ [एक मात्र भारत]
कृषि और इससे सम्बन्धित पेशों से आय	६५२७	१०३६५	११०४८	१७४०२	२११८१	२२६३८	२२२४५	२५६६२	२११६३
उद्योगों से आय	३७६०	४०६२	६०२०	६५६०	१२४००	११११०	१०३३८	६३८२	६८००
अन्य आय	६०२६	६१२६	६२६२	६७७२	८६५१	८६५१	६७६६	६७६८	८३२८
कुल आय	१६३४३	२०५८३	२३३६०	३३७३४	४२२३२	४२७०६	४२३८२	४४८७२	३६४२१

कीमतों के बढ़ने से राष्ट्रीय आय भी बढ़ी और फूली हुई दीखती हैं। यह वास्तविक चित्र नहीं है। बम्बई-जीवन-निर्वाह-व्यय की निर्देशिका संख्या भारत के सब शहरों के लिए भी उपयुक्त नहीं। भारतीय गाँवों के लिए तो वह उपयुक्त हो ही नहीं सकती। पर ग्राम्य-जीवन-निर्वाह-व्यय की कोई प्रामाणिक निर्देशिका संख्या उपलब्ध नहीं है। इसलिए बम्बई के ही जीवन-निर्वाह-व्यय की निर्देशिका संख्या से काम चलाना चाहिए।

संयुक्त भारत के प्रान्तों की प्रति-व्यक्ति का आय

	१६३६-४०	१६४०-४१	१६४१-४२	१६४२-४३	१६४३-४४	१६४४-४५	१६४५-४६	१६४६-४७	१६४७-४८ [एक मात्र भारत]
कुल आय (लाख रु० में)	१६३४३	२०५८३	२३३६०	२३७३६	४२२३२	४२५०६	४२३८२	४४२७२	३६४२१
जन-संख्या (लाखों में)	२६	२६४	२६८	३०२	३०५	३०६.५	३१०	३१४	२४६
प्रतिव्यक्ति की आय (रु० में)	६७	७०	७८	११२	१३६	१३६	१३७	१४३	१६०
जीवननिर्वाह-व्यय की निर्देशिका संख्या बम्बई) (आधार वर्ष १६३६-१००	१००	१०५	११७	१६०	२१७	२१६	२१६	२४२	२५८
जीवन-निर्वाह-व्यय (बम्बई की निर्देशिका संख्या के साथ मिलान करने पर) [रु० में]	६७	६७	६६	७०	६४	६४	६३	५६	६२

ये भारत के वैभव और सम्पत्ति को नहीं बल्कि उसकी गरीबी को ही सूचित करते हैं। युद्ध-काल में भारत ने जो सम्पत्ति बचाई वह स्टर्लिंग-भावना में परिणत हो गई। वह भारत की मुद्रा-आय को बढ़ाने में सहायक नहीं

हुई। इसका भारतीय जीवन के मानदण्ड पर—जो अन्न-वस्त्र की खपत से प्रगट होता है, और जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ हैं—प्रभाव पड़ा है। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है :—

प्रति-व्यक्ति अन्न-वस्त्र की खपत

	१९३९-४०	१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६	१९४६-४७	१९४७-४८
प्रतिव्यक्ति अन्न की खपत (पौं०)	३८८	३६६	३४८	३७८	३७९	३९०	३४०	२५८	३५७
वस्त्र की प्रतिव्यक्ति खपत (गजों में)	१६	१६	१४	१०	१४	१४	१२	१२	११

यह धारणा बन गई है कि युद्ध के बाद से भारतीय अधिक अच्छा खाने और पहनने लगे हैं। पर ये आंकड़े इस धारणा को भ्रमपूर्ण सिद्ध करते हैं। बात यह है कि उत्पादन बढ़ नहीं रहा है, पर हमारी जन-संख्या बराबर बढ़ रही है। यही कारण है कि अन्न-वस्त्र की प्रति-व्यक्ति खपत प्रतिवर्ष से कम होती जाती है।

अन्य देशों से तुलना—

१९४७-४८ की प्रति-व्यक्ति की आय का एक अन्य अर्थ-शास्त्री लेखक ने भी हिसाब लगाया है। डा० राव ने भारत की कुल आय १२२४० करोड़ रु० कूती थी और प्रतिव्यक्ति को ६१) रु० आमदनी बताई थी, इसी हिसाब से १९४७-४८ में—विभाजन और निष्क्रमण के वर्ष में—भारतीय यूनियन की आमदनी और प्रतिव्यक्ति की आय का हिसाब इस प्रकार लगाया गया है:—

	(लाख रु० में)	कुल का प्रतिशत
कृषि की कुल पैदावार	१९००००	४०·४
पशुधन	६७०००	१३·६
मछली	२०००	०·४
शिकार	५२०	०·१
जंगल	१०००	०·४
खनिज	६५००	१·३
आयकर लगी आय	६१४०८	१२·४
उद्योगों में लगे मजदूरों की आय पर जो कर नहीं दे रहे हैं	६६६००	८·५
नौकरियों में लगे कर्मचारियों की आय पर जो कर नहीं दे रहे हैं	१७०००	३·५
व्यापार और संवाहन (ट्राँसपोर्ट) में लगे श्रमिकों की आय पर जो कर नहीं दे रहे हैं	१००००	६·०
पेशों में लगे श्रमी जनों की आय पर जो कर नहीं दे रहे हैं	७५०८	१·४
	(लाख रु० में)	कुल का प्रतिशत
घरेलू नौकरों की आय	६८४०	१·०
विविध मदों से आय	२८१२०	६·०
सर्वयोग	४९३२८०	१००·०

इस गणना के अनुसार भारतीय यूनियन की कुल आय ४९३२८० लाख रु० हुई। इसमें यदि उस आय को भी जोड़ दिया जाए जो गिनी नहीं गई है, तो कुल आय ४९७२८० लाख होगी। १९४७ में भारत की आबादी २३३ लाख रु० होगी। इस हिसाब से प्रति भारतीय की आय २१३) रु० हुई। १९३९ में जब प्रति व्यक्ति की आय ६१) रु० थी, उस समय से यदि मुद्रा की क्रय-शक्ति के अनुसार देखें तो स्पष्ट हो जाएगा कि युद्ध-पूर्व की अपेक्षा प्रति व्यक्ति की आय घट गई है। इसके मुकाबले अन्य देशों में १९४७ के अन्दर प्रति व्यक्ति की आय इस प्रकार थी :—

	रु०
आस्ट्रेलिया	२१६०
कनाडा	२८२०
डेन्मार्क	२६४७
ग्रेटब्रिटेन	२३५६
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	४६४३
सीलोन	३००

पाकिस्तान	२२५
फिलिपाइन्स	•२२८
भारत	२१३

एक भारतीय की अपेक्षा एक अमरीकी की आय २१ गुणा अधिक है, एक अँगरेज, एक आस्ट्रेलियन, एक डेंस और एक कनाडियन की ११ गुणा अधिक है। एक सीलोनी की प्रतिव्यक्ति आय भारतीय से ४२ प्रतिशत अधिक है। पाकिस्तान की कुछ ज्यादा है, क्योंकि उसकी भूमि अधिक उपजाऊ है। इसका कारण यह है कि पाकिस्तान में खेती की ३८ प्रतिशत जमीन नहरों-कुओं के द्वारा सींची जाती है, जब कि भारत में २० प्रतिशत ही सींची जाती है।

अगस्त १६३६ से यदि प्रतिव्यक्ति की आय की तुलना करें, तब चित्र दूसरा ही नजर आएगा। आर्थिक सलाहकार की निर्देशिका संख्या के अनुसार १६४७-४८ में थोक कीमतें ३०७ थीं—अर्थात् १६३६ की अपेक्षा ३०७ गुणा दाम बढ़े हुए थे। इस हिसाब से १६४७-४८ में प्रति व्यक्ति की आय ७०) रु० पड़ेगी। इस आय की वृद्धि का कारण आबादी की वृद्धि है। १६३१-३२ में भारतीय यूनियन की आबादी १६८ लाख थी और सोलह वर्षों में बढ़कर २३३० लाख हो गई। सोलह वर्ष में आबादी ३५० लाख अर्थात् १८ प्रतिशत बढ़ गई। युद्ध-पूर्व के मूल्यों के अनुसार प्रतिव्यक्ति की आय ६१) रु० से ७०) रु० तक पहुँची है। इसका अर्थ हुआ कि माल और सेवाओं का उत्पादन केवल आबादी की वृद्धि के अनुसार हुआ है, अधिक नहीं।

आय का आज भी सबसे बड़ा स्रोत खेती है जो १६४७-४८ में ५६.२ प्रतिशत हुई। उद्योगों का भाग गौण है। खेती से कुल आय २७४३२० लाख रु० हुई और प्रतिव्यक्ति आय ११८) रु०, । इसका अर्थ यह हुआ है कि प्रतिव्यक्ति की २१३) रु० की आय में २१५) रु० खेती से आते हैं। उद्योगों की आय २१.३ प्रतिशत है। उद्योगों और धंधों की कुल आय है १०४७६० लाख रु०, और इससे प्रतिव्यक्ति ४५) रु० आय आती है। नौकरियों से ८४५६० लाख रु० अर्थात् १७.२ प्रतिशत होती है। प्रतिव्यक्ति आय इस भाग से ३५) रु० हुई। अन्य धंधों और पेशों से ३३६०० लाख रु० हुई और प्रतिव्यक्ति १५) रु० आय हुई।

१६३१-३२ की आय से तुलना करें, तो मालूम होता है कि मनुष्य खेती पर पहले से अधिक आश्रित हो गए हैं। १६३१-३२ में खेती का आय में ५२.८ प्रतिशत भाग था और १६४७-४८ में ५६.२ प्रतिशत रहा। नीचे की तालिका से दोनों का तुलनात्मक विवरण ज्ञात होगा :—

कुल आय का प्रतिशत

	१६३१-३२	१६४७-४८
खेती, चराई शिकार, मछली	५२.८	५६.२
उद्योग	१६.६	२१.३
व्यापार, संवाहन-समेत नौकरी, पेशे और घरेलू नौकरी	२२.६	१७.२

यदि इस आय का शहर और देहात के हिसाब से पुनः वर्गीकरण किया जाए तो परिणाम यह दिखाई देता है :—

	१६३१-३२	१६४७-४८
	रु०	रु०
देहात	१०८४१	३४२६४
शहर	३६४७	१५४३४

१६४७-४८ में शहरी श्रमिकों ने ३१.० प्रतिशत आय उपार्जित की जब कि १६३२-३८ में उनका भाग २५.२ प्रतिशत था। शहरी और देहात के श्रमिक की आय में बहुत अन्तर है। १६४७-४८ में शहरी श्रमी ४४३) रु० कमाता था और देहात का १४१) रु०। देहात की अपेक्षा शहरी श्रमी की आय लगभग ढाई गुणी अधिक है।

उत्पादन

आय का मुख्य और प्रधान स्रोत उद्योग और कृषि है। इनका उत्पादन यदि घट रहा है, तब समझना चाहिए कि आय घट रही है, और यदि इनका उत्पादन बढ़ रहा है, तब समझना चाहिए की बढ़ रही है। १६३६-४० से १६४८-४६ के बीच हुए औद्योगिक उत्पादन पर निम्न तालिका से अच्छा प्रकाश पड़ता है :—

भारतीय औद्योगिक उत्पादन

(आधार वर्ष—अगस्त १९३९ = १००)

	भारतीय रूई की खपत	जूट का तैयार माल	इस्पात शलाका	ढला लोहा	दिया-सलाई	कागज	पेण्ट	गन्धक काम्ल	सीमेण्ट	चीनी	विद्युत शक्ति	कोयला	निर्देशिका संख्या
भार	४०	१७	८	७	२	२	१	१	३	१०	५	५	१००
१९३९-४०	९६.८	११५.३	१०८.०	१०९.५	१९९.५	१९८.३	१२१.४	११०.८	१०३.०	१९१.१	१०५.०	१०२.०	११०.३
११४०-४१	१०६.७	१००.०	१२९.७	११६.७	१७४.५	१४०.८	१३७.१	१३९.९	१०३.०	१७१.१	११४.२	१०५.७	११४.२
१९४१-४२	१२५.९	११५.३	१३५.५	१२०.२	७४.७	१५५.८	१८६.०	१५४.३	१३२.१	११७.१	१३७.५	१०७.७	१२३.२
१९४२-४३	१२८.८	११२.६	१३१.५	१०७.१	६७.०	१५१.७	१६८.८	१४६.२	१२९.८	१६०.८	१४०.८	१०३.७	१२५.५
१९४३-४४	१३८.७	९६.४	१३७.८	१००.६	८१.४	१६१.७	१९५.९	१२५.७	१५२.६	१६०.०	१५५.०	९१.६	१२६.८
१९४४-४५	१३१.०	१००.०	१२७.७	७७.४	७७.८	१६६.७	१९२.३	१२९.९	१२१.४	१६०.०	१६५.८	९८.४	१२१.७
१९४५-४६	१३२.३	१००.०	१३१.२	८३.९	९०.५	१४०.०	१२४.२	८६.५	१२८.०	१२५.२	१६७.५	१०७.७	१२०.०
१९४६-४७	१०४.८	९३.७	११८.०	८१.०	७१.९	११९.२	८७.९	१०७.६	१२०.२	११९.३	१५३.३	१०६-५	१०५.०
१९४७-४८ (दिसम्बर)	११५.३	१०१.२	१३३.८	९०.०	७६.३	१००.५	९९.०	१०४.३	११०.०	११६.८	१६७.६	११०.२	११२.७
१९४८-४९ (सितम्बर)	१२७.२	१०६.९	१०९.७	८२.१	७८.००	१४२.६	१०१.०	१०१.०	८५.०	१४६.०	१८६.८	११६.६	११८.९

(क) १९४५-४६ और १९४७-४८ और १९४८-४९ के अङ्क पक्के नहीं है।

'ईस्टर्न इकनामिस्ट'-द्वारा तैयार की गई तालिका को देखने से स्पष्ट हो जाएगा कि १९४३-४४ में औद्योगिक उत्पादन शिखर पर था। इसके बाद उतार आ गया। १९४७-४८ में युद्ध-पूर्व की अपेक्षा २७ प्रतिशत कम उत्पादन था। इस समय युद्ध-पूर्व की अपेक्षा १५ प्रतिशत हम अधिक उत्पादन कर रहे हैं। सूती वस्त्रों में जुलाई १९४८ के अन्त तक ४०१० लाख गज कपड़ा, और १३१० पौ० सूत तैयार हुआ। वर्ष की तीन तिमाहियों में क्रमशः १६१६०, १०६००, और ११५१० लाख गज कपड़ा तैयार हुआ। इस हिसाब से वर्ष भर में वस्त्र ४५००० लाख गज से अधिक तैयार न होगा। १९४३-४४ में वस्त्र ४८२६० लाख गज तैयार हुआ था। साल की तीन तिमाहियों में ३३१०, ३५६० और ३६३० लाख पौ० सूत तैयार हुआ। अतः वर्ष भर में १४७५० लाख पौ० सूत तैयार होगा। यह औसतन १६२५० लाख पौ० से कम ही रहेगा। १९४३ से १९४५ तक के औसत से हम अभी पीछे हैं, पर १९४६ और १९४७ से आगे हैं। युद्धोत्तर काल की हमारी योजना ८०००० लाख गज कपड़ा तैयार करने की थी। स्पष्ट है कि हम इस दृष्टि से बहुत पीछे हैं।

इस्पात का १९४८ की पहली तिमाहियों में उत्पादन क्रमशः २९४००० टन, २०१७०० टन और २११०५० टन हुआ। इस हिसाब से साल भर का उत्पादन ८१०००० टन से अधिक न होगा। यह १९४४ के उत्पन्न ८९८५८० टन से कुछ कम है। भारतीय इस्पात-उद्योग की उत्पादन करने की क्षमता १२६४००० टन है। इस दृष्टि से इस वर्ष का उत्पादन दो-तिहाई है। भारत की वार्षिक आवश्यकता २५ लाख टन की है। ताता और स्कोब प्लाण्ट दोनों अपनी उत्पादन-क्षमता के अनुसार उत्पादन नहीं कर रहे हैं। अक्टूबर १९४७ से सितम्बर १९४८ तक ताता ने ६७०००० टन उत्पादन किया, जबकि उसकी उत्पादन-क्षमता ८५०००० टन है। स्कोब प्लाण्ट ने १८६००० टन उत्पन्न किया, जबकि उसकी उत्पादन क्षमता ३५०००० टन है। श्रम की कमी, कोयले की कमी और संवाहन [ट्राँसपोर्ट] का अवरोध, ये कुछ कारण उत्पादन की कमी के लिए दिए जाते हैं। इन दोनों की उत्पादन-क्षमता क्रमशः १५०००० और १००००० टन बढ़ाने के लिए सरकार प्रयत्नशील है। इसके अतिरिक्त भारत सरकार १० लाख टन इस्पात उत्पन्न करनेवाला कारखाना स्थापित करने का विचार कर रही है।

जूट-उद्योग में कुछ तेज़ी आई है। मई १९४८ में तो उत्पादन घटकर ६३३४७ टन ही रह गया था। अगस्त और सितम्बर १९४८ में बढ़ कर ८७००० टन और ९५२०० टन हुआ। इससे पहले मार्च १९४८ में ९४६३७ टन उत्पन्न हुआ था। १९४७ के बाद से यह सर्वोच्च उत्पादन माना जाता था। पर सितम्बर का उत्पादन इससे भी आगे बढ़ गया है। हैसियन और सैकिंग का जुलाई १९४७ से जून १९४८ तक उत्पादन २०१९८०० टन हुआ जब कि उससे पिछले वर्ष की इसी अवधि में ९९२००० टन हुआ था। जूट-उद्योग का विकास निर्यात पर निर्भर है। पहले ५० प्रतिशत निर्यात होता था, अब घटकर २५-३० प्रतिशत रह गया है। कारण संयुक्त राष्ट्र अमरीका जूट के बोरों की जगह कागज के बोरे व्यवहार करने लगा है। जूट का बोरा उसको बहुत महंगा पड़ता है। इसके अतिरिक्त डण्डी के साथ भारी प्रतियोगिता है।

सीमेण्ट का उत्पादन पहले दो तिमाहियों में ३७५००० टन की रेट से हो रहा था, पर वह बाद में गिर कर ३५६००० टन रह गया। वर्ष भर का उत्पादन अनुमानतः १०४६ टन होगा जो कि १९४७ के उत्पादन के समान है। विभाजन का इस उद्योग पर असर पड़ा है। सीमेण्ट की पाँच फैक्टरियाँ पाकिस्तान में चली गईं हैं। भारत में कुल १९ बची हैं। सीमेण्ट-उद्योग की उत्पादन क्षमता २२ लाख टन है। इस समय वह अपनी कुल शक्ति का दो-तिहाई काम कर रहा है। माँग भी ११ पौ० प्रति व्यक्ति से बढ़कर १६ पौ० प्रति व्यक्ति हो गई है। सीमेण्ट-उत्पादन की ३२ स्कीमें हैं। उनके पूरा होने पर सीमेण्ट का उत्पादन बढ़कर ५७२५००० टन हो जाएगा।

कोयले के उत्खनन और रफ्तनी की अवस्था पर निम्न तालिका से अच्छा प्रकाश पड़ेगा:—

	पहली तिमाही (टनों में)	दूसरी तिमाही (टनों में)	तीसरी तिमाही (टनों में)
उत्खनन	८०३५४०२	७७७२५०९	६७१३३८१
रफ्तनी	६४६६६६६	६४४३६६१	६३५८१७३

इस हिसाब से कोयला वर्ष में ३००००००० टन निकल सकेगा। यह १९४७ के समान है। १९३८ में २८३००००० टन ही निकला था। १९४३ में २५०००००० टन तक ही पहुँचा था। प्रतिव्यक्ति कोयले का उत्पादन घट गया है। १९३८ में प्रतिव्यक्ति १४१ टन था, १९४७ में ९३·७ टन अर्थात् ३५ प्रतिशत कम हो गया। कोयले के उत्पादन को बढ़ाने के लिए २०० मील रेलवे लाइन बनाई जा रही है। पर जब तक कोयले के उत्खनन और उसको खान के ऊपर पहुँचाने के लिए नई मैशीनरी नहीं आती और उद्योग का 'रैशनाइलेजेशन' न होगा, उत्पादन बढ़ने की सम्भावना नहीं।

कागज का उत्पादन बराबर घटता गया। पहली तिमाही में २४२६८ टन, दूसरी में २३१५० टन और तीसरी में २२९७० टन कागज तैयार हुआ। १९४४ में सबसे अधिक १०३७८३ टन तैयार हुआ था।

चीनी १९४७-४८ में १०७७३६१ टन तैयार हुई। १९५० में १६ लाख टन तैयार करने की योजना थी, पर इस दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है।

औद्योगिक उत्पादन के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ट्राँसपोर्ट-संवाहन की गति तेज करने और श्रमिकों की उत्पादन-क्षमता बढ़ाने से औद्योगिक उत्पादन और अधिक बढ़ाया जा सकता है। पर वास्तविक उन्नति नवीन साहस से ही सम्भव है। सरकार ने इसके लिए अनेक रियायतें दी हैं। ३१ मार्च १९५१ से पहले स्थापित उद्योग पर पहले पाँच साल तक ६ प्रतिशत तक लाभ को आय कर से मुक्त कर दिया गया है। प्लाएट और मैशीनरी पर आयात-कर १० प्रतिशत से घटा कर ५ प्रतिशत कर दिया गया है। नए प्लाएटों के लिए घिसाई की मात्रा में भी उदारता दिखाई गई है। कुछ औद्योगिक उपयोग के कच्चे माल पर भी आयात कर घटा दिया गया है। पर पूंजी का बाजार अब भी निष्क्रिय है और वह करभार में कमी चाहता है।

कृषि की पैदावार

उत्पादन का दूसरा मोर्चा कृषि का है। १९४२ से 'अधिक अनाज उपजाओ' का आन्दोलन चल रहा है। पर स्थिति अच्छी होने की जगह पर बिगड़ती जा रही है। यह निम्न तालिका से भली-भाँति ज्ञात होगा।

भारतीय कृषि-उत्पादन की निर्देशिका संख्या

	१९३६-३७ से १९३८-३९ का औसत	१९३९-४०	१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६	१९४६-४७	१९४७-४८
अन्न धान्य	१००	९९	९५	९३	१०३	१०७	१०४	९५	९७	९८
चावल	१००	९८	८८	९२	९९	१०९	१०२	९६	१०४	९८
गेहूँ	१००	१०४	९८	९१	९९	९०	९७	८४	९७	७६
ज्वार-बाजरा	१००	९९	१०८	९९	११२	१११	११४	९९	९९	१०४
धान्य	१००	९४	९६	८६	१११	१२२	१०३	१००	११५	१३७
रेशा	१००	९०	१११	१०५	७८	८७	५५	५६	५३	५६
कपास	१००	८९	१०७	१०९	७६	८९	५४	५२	५१	५२
जूट	१००	९९	१३२	८२	८७	७७	९२	७८	९६	८३

	१९३६-३७ से १९३८-३९ का औसत	१९३९-४०	१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६	१९४६-४७	१९४७-४८
तेलहन	१००	१०६	१११	९४	९८	१०४	१०७	९७	१००	१०१
	१००	९६	१००	९५	१०६	१०२	८८	८८	८१	८३
मूंगफली	१००	१०१	११८	८२	९१	१२५	१२२	११०	११४	११०
राई-सरसों	१००	११७	११४	११३	१०२	९३	१११	९६	१०७	१०८
तिल	१००	१०६	९९	८१	९७	८६	८९	८३	७७	८५
विविध	१००	१०२	१०७	११२	११७	११६	११२	१२४	१२२	१२४
अन्न	१००	८८	११३	८३	१००	११४	१०६	१०२	११०	११८
तम्बाकू	१००	१००	१०४	१०३	८६	७५	९३	९७	९८	९७
चाय	१००	१०५	१०८	११९	१३३	१३४	१२१	१३६	१३५	१३७
काफी	१००	१००	८८	११३	१००	१०६	१०६	१५६	१०६	११३
आय निर्देशिका	१००	९९	९८	९५	१०२	१०६	१०१	९४	९६	९७

इससे स्पष्ट है कि १९४३-४४ में खेती की पैदावार सबसे अधिक हुई और १९४५-४६ सबसे कम रही। खेती की पैदावार में वृद्धि रुक जाने के ही कारण भारत की प्रति व्यक्ति की आमदनी नहीं बढ़ी है। प्रति व्यक्ति की आय बढ़ाने के विचार से भी कृषि की पैदावार बढ़ाना आवश्यक है। इससे यह भी प्रकट है कि प्रति व्यक्ति अन्न की खपत भी कम हो गई है। आबादी के बढ़ने के साथ-साथ अनाज की पैदावार नहीं बढ़ी है। १९३९-४० में ४६० लाख टन अन्न उत्पन्न हुआ था। १९४७-४८ में ४५० लाख टन ही उत्पन्न हुआ। उत्पादन की चरम-सीमा १९४३-४४ में—बंगाल का अकाल का वर्ष—पहुँची, जब वह ४८० लाख टन था। विभाजन का और भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अन्न की कमी को १९४६-४७ में २६ लाख और १९४७-४८ में २४ लाख टन आयात करके पूरा किया गया। इस वर्ष ४० लाख टन अन्न आयात करने की योजना है।

आयात-समेत कुल अन्न ४८० लाख टन है, जो १९३८-३९ के समान है। आबादी इस समय ३३ करोड़ ९० लाख है। इससे प्रकट है कि प्रति व्यक्ति अन्न की खपत कम हो गई। १९३९-४० में प्रति व्यक्ति अन्न की खपत ३८८ पौं० थी और अब ३५७ पौं० है। और १९४५-४६ में ३४० पौं० ही था। अन्न की पूर्ति लगभग दस साल से एक समान है पर आबादी बढ़ गई है। १९३९-४० में १९६० लाख एकड़ जमीन जोत में थी और १९४७-४८ में १८५० लाख एकड़। यह १९४४-४५ और १९४६-४७ से कम है जब कि क्रमशः १९६० और १९४० एकड़ जमीन जोत में थी। विभाजन के कारण भी खेती की अवस्था बिगड़ी है। विभाजन के कारण अविभक्त भारत की ७८ प्रतिशत आबादी भारतीय यूनियन में रही है, जब कि खेती का ७३ प्रतिशत ही रहा है। सिंचित जमीन का ७० प्रतिशत भाग ही भारत को मिला है। चावल की खेती ७३.५ प्रतिशत और गेहूँ की खेती का ७० प्रतिशत ही भारत को मिला है। अन्न का उत्पादन और उसकी खपत पिछले दस सालों में किस प्रकार हुई यह निम्न सारिणी से ज्ञात होगा—

अन्न का उत्पादन और खपत

	१९३९-४०	१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६	१९४६-४७	१९४७-४८
(१) अन्न धान्य का उत्पादन (००० टनों में)	४६०८३	४५०४१	४३६६५	४८०६३	४६६२२	४७६३७	४३८१४	४४९९९	४५६४३
(२) अन्न धान्य का आयात (००० टनों में, आयात + निर्यात---)	+२२२१	+९६३	+४३२	—२९२	+२९८	+६९३	+९३१	+२६५८	+२४००
(३) अन्न धान्य की कुल पूर्ति (००० टनों में १+२)	४८३०४	४६०१४	४४०९७	४७७७१	४८९२०	४८३३०	४४७४५	४७६१४	४८०४३
(४) बीज के लिए १० प्रतिशत घटाने के बाद शेष अन्न धान्य की पूर्ति (००० टनों में)	४३५००	४१४००	३९७००	४३०००	४४०००	४३५००	४०३००	४२९००	४३२००
(५) अन्न धान्य की खेती कुल जमीन (००० एकड़ों में)	१६६९९४	१६७३७१	१६७०४९	१७९९४८	१७८५७२	१९६१०१	१९०९३९	१९४४५७	१८५७९४
(६) कुल आबादी (लाखों में)	३१४·०	३१७·०	३२०·०	३२३·०	३२५·५	३२८·५	३३२·०	३३५·५	३३९·९
(७) आबादी वयस्क ईकाई (लाखों में)	२५१·०	२९३·५	२५६·०	२५८·५	२६०·०	२६३·०	२६६·०	२६८·५	२७१·०
(८) अन्न धान्य की खेती की जमीन प्रति व्यक्ति (एकड़ों में)	·६७	·६६	·६५	·६८	·६९	·७४	·७२	·७२	·६९
(९) आबादी के प्रति व्यक्ति अन्न की खपत (पौ० में)	३८८	३६६	३४८	३७८	३७९	३७०	३४०	३५८	३५७

पिछले दस सालों में अन्न धान्य की पूर्ति की क्या अवस्था रही है और प्रति व्यक्ति कितना खाने को मिलता रहा है, यह उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है। जब पेट भर खाने को न मिलेगा, तब प्रति व्यक्ति का औद्योगिक उत्पादन कैसे बढ़ सकता है? खेती की पैदावार की कमी शारीरिक और मानसिक शक्ति को घटाने के साथ साथ राष्ट्रीय आय भी घटा रही है। अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन पर केन्द्रीय गवर्नमेण्ट ने कर्ज और ग्राण्ट के रूप में १६ करोड़ रु० खर्च किया। ७० लाख ऐन्द्रियिक और अनैन्द्रियिक खाद, ३ लाख टन बीज दिया गया और ५०००० कुएँ खोदे गए। यह सब होते हुए भी कुल उत्पादन बढ़ने के बजाय घटा ही है। १९४७-४८ में २ करोड़ रु० की ग्राण्ट १.३६ करोड़ रु० कर्ज में दिया। प्रान्तों से आशा की गई कि इसी परिमाण में वे खर्च करेंगे। १९४७-४८ में पर लक्ष्य का ५ प्रतिशत भी प्राप्त नहीं हुआ। युक्तप्रान्त ने ३० लाख रु० की लागत से ६०० कुएँ बनाने का निश्चय किया था। इस साल वह ५०००० कुएँ बनाने का विचार कर रही है। बिहार की खेती की जमीन का केवल १२ प्रतिशत सींचा जाता है, शेष वर्षा की कृपा पर है। प्रति वर्ष ३०० लाख टन अन्न की कमी रहती है। मद्रास को प्रतिवर्ष १० लाख टन की कमी रहती है। किसानों से अब अनाज अधिक दाम देकर संग्रह किया जाता है। उनको दी जानेवाली कीमत ३५ से ५० प्रतिशत बढ़ा दी गई है। १२ औंस प्रतिदिन के राशन पर ७ करोड़ आबादी अपना जीवन बिता रही है।

शरीर को स्वस्थ, स्फूर्तिमय और सक्षम रखने के लिए एक निश्चित परिमाण में प्रति व्यक्ति को प्रतिदिन अन्न अवश्य मिलना चाहिए। एक व्यक्ति के लिए कितना अन्न चाहिए, यह उसके काम पर निर्भर है। पर साधारणतः इतना अन्न मिलना चाहिए, जिससे २०००-२५०० कैलोरीज शक्ति प्राप्त हो सके। अन्ताराष्ट्रीय अन्न व कृषिसंघ ने एक चार्ट बनाया है। युद्धपूर्व की अपेक्षा किन देशों में इसमें कमी आई है और किनमें वृद्धि हुई है। भारत का स्थान उस देश-समूह में है, जिसमें कमी हुई है। इस चार्ट को देखने से भारत में अधिक संख्या में मौतें होने का कारण स्पष्ट हो जाता है।

युद्धपूर्व की तुलना में १९४६-४७ के अन्दर प्रति व्यक्ति कैलोरीज की खपत में प्रतिशत अन्तर

	युद्धपूर्व प्रति व्यक्ति प्रतिदिन कैलोरीज की खपत	प्रतिशत वृद्धि की मात्रा	प्रतिशत घटी की मात्रा			योग
		०—९.९	१०—१९.९	२०—२९.९	३० व इससे ऊपर	
१	३००० व इससे अधिक	अर्जेण्टाइन, आस्ट्रेलिया, कनाडा, संयुक्तराष्ट्र, डेन्मार्क, आयर, न्यूजीलैण्ड, स्वीडन, स्विटजरलैण्ड, ब्रिटेन,				१०
२	२७५०-२९९९	यूरुग्वे, नीदरलैण्ड, नार्वे,	बेल्जियम फिनलैण्ड फ्रांस	आस्ट्रिया	जर्मनी युगोस्लेविया	९
३	२५००-२७४९					९
४	२२५०-२४९९	चीली, ब्राजील सीरिया लेबनान, चेकोस्लोवाकिया, तुर्की	बलगेरिया ग्रीस स्पेन	हंगरी इटली पोलैण्ड	रूमानिया	६
५	२०००-२२४९	मैक्सिको बर्मा पुर्तगाल मलाया		जापान		६
६	२००० से भी कम	कोलम्बिया पेरू फिलीपीन				
योग		२५	८	५	३	१

एक भारतीय को उतना भी अन्न प्रतिदिन नहीं मिलता, जो भारत जैसे गरम देश के लिए न्यूनतम आवश्यक है। अब भारत की आशा घोषित विशाल सिंचाई-योजनाओं पर टिकी हुई है। वे योजनायें और उन पर होनेवाला व्यय इस प्रकार है:—

	व्यय [करोड़ों रु० में]	सिंचाई [००० एकड़ों में]
तुंगभद्रा	१०	३००
राम पाद सागर	८६	२५००
कृष्णा-मेनार	७८	३०००
हीराकुण्ड डाम	४८	१०००
दामोदर	५५	८००
कोसी	९०	३०००
भाकरा दाम	७०	४६००
योग	४३७	१७७००

इन और प्रान्तिक योजनाओं के पूरे होने के बाद और २७० लाख एकड़ जमीन की सिंचाई हो सकेगी। इस समय ४८० लाख एकड़ की ही सिंचाई होती है। पर भारत में खेती १८५० लाख एकड़ में होती है। इसलिए इन बहुविध और बहुमुखी नई-योजनाओं के पूरे होजाने पर भी दस साल के बाद स्थिति में बहुत अन्तर आ जाएगा, प्रति॰व्यक्ति अन्न की खपत में भारी वृद्धि हो जाएगी यह आशा नहीं की जा सकती। इसलिए प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाने की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। यह गोबर की खाद की रक्षा, रात्रिदल की सहोद्योग के आधार पर रक्षा करने और सहोद्योग आधार पर खेती करने से यह सम्भव है।

राष्ट्रीय आय का वितरण

राष्ट्रीय आय के दो मुख्य स्रोतों की समीक्षा के बाद यह जानने की उत्सुकता बनी रहती है कि इसका कितना भाग किस वर्ग को मिलना है। नीचे की तालिका में राष्ट्रीय आय के वितरण को प्राथमिक, माध्यमिक और प्रतिशत तीन भागों में बाँटा गया है। १९३९ से १९४७ तक के आँकड़े ब्रिटिश भारत के हैं और १९४७-४८ के भारतीय यूनियन के हैं।

भारत की राष्ट्रीय आय

[लाख रु० में]

	१९३९-४०	१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६	१९४६-४७	१९४७-४८
खेती से आय	९५२७	१०३९५	११०४८	१७४०२	२१२८१	२२९३८	२२२४५	२५६९२	२१२९३
उद्योग से आय	३७९०	४०६२	६०२०	९५६०	१२४००	१११२०	१०३३८	९३८२	९८००
अन्य मदों से	६०२६	६१२६	६२९२	६७१२	८६५१	८६५१	९७९९	९७९८	८३२८
कुल आय	१९३४३	२०५८३	२३३६०	३३६७४	४२३३२	४२७०९	४२३८२	४४८७२	३९४२१

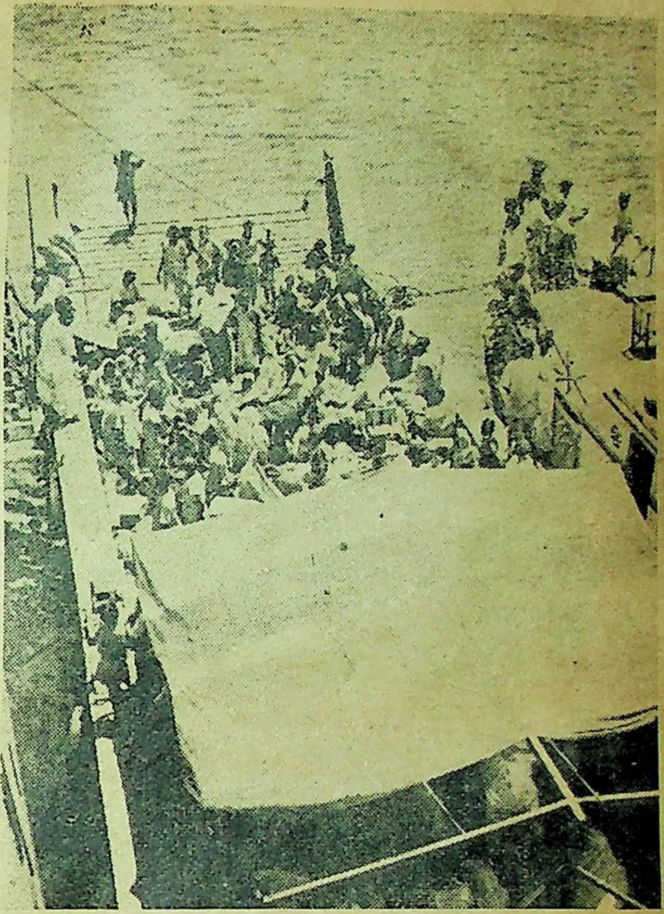
कुल राष्ट्रीय आय का प्राथमिक, माध्यमिक और प्रादेशिक में प्रतिशत वितरण

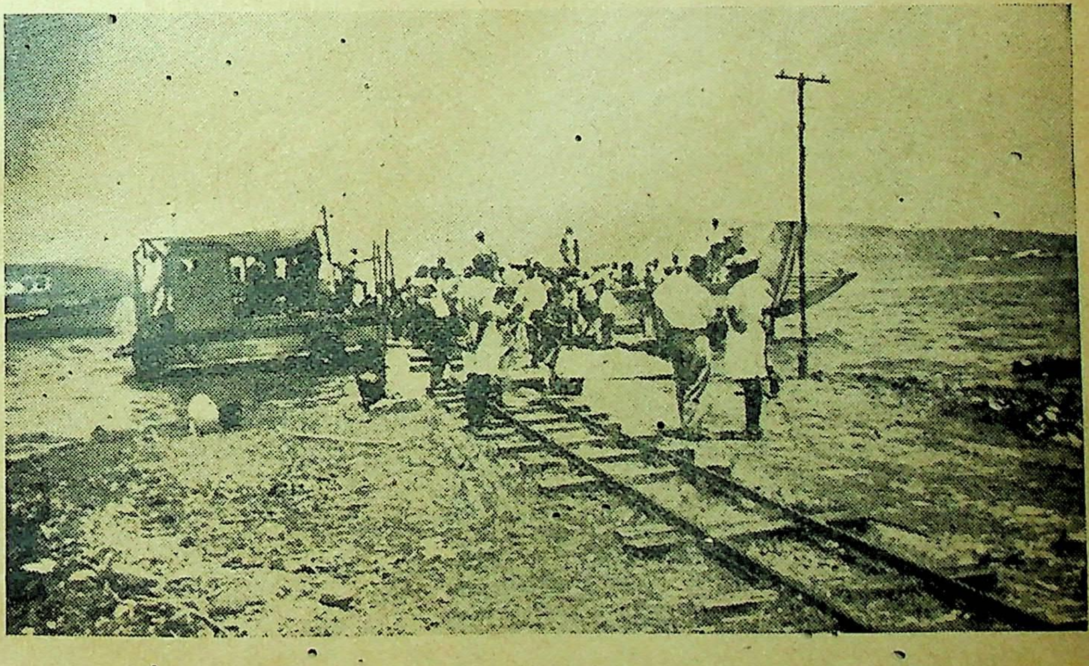
प्राथमिक	४९.२	५०.५	४७.५	५१.६	५०.३	५३.७	५२.५	५०.३	५४.०
माध्यमिक	१९.६	१९.७	२५.५	२८.३	२९.३	२६.०	२४.४	२०.९	२४.९
शेष	३१.२	२९.८	२७.०	२०.१	२०.४	२०.३	२३.१	२१.८	२१.१

इससे प्रकट है कि राष्ट्रीय आय की प्रवृत्ति प्राथमिक वर्ग की ओर है। १९४६-४७ में वह शिखर पर था और ३६० करोड़ रु० उसको मिला। देश का यह वर्ग दरिद्र-नारायण है। अत: भारतीय आर्थिक तन्द्रा में यह परिवर्तन शुभ है। कुछ लोग बचत के विचार से इसको शुभ नहीं समझते। क्योंकि भारतीय किसान हाथ में पैसा आने पर सामाजिक उत्सवों और समारोहों पर दिल खोल कर खर्च करता है। ये लोग इस बात को भूल जाते हैं कि भारतीय स्वर्ण-रजत सम्पति का जो संचय आज हमारे पास है, वह उन्हीं की मितव्ययिता का परिणाम है।

अन्दमान में

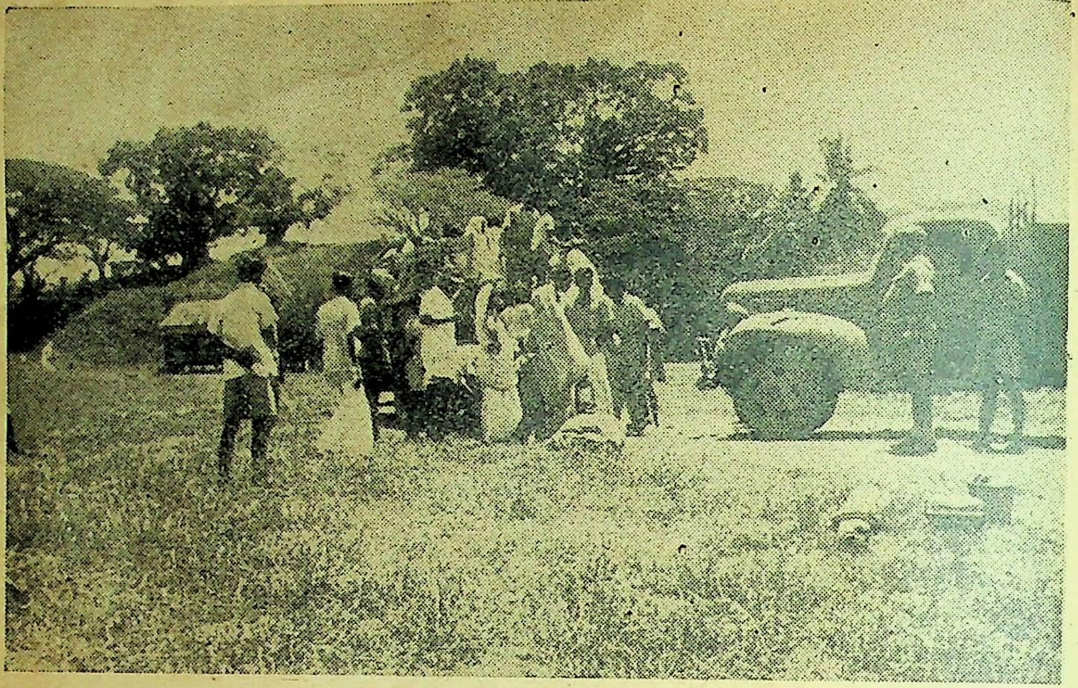
भारतीयों के इतिहास में अन्दमान द्वीपसमूह का अपना विशेष महत्त्व है। अँगरेजों के शासन-काल में 'कालापानी' के रूप में इससे सभी भयभीत रहते थे। परन्तु अब भारत के स्वतन्त्र होने के साथ-साथ उसका भी कायापलट हो रहा है। पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थियों को अन्दमान में बसाने की सुव्यवस्था की गई है। चित्र में शरणार्थियों का एक दल अन्दमान की ओर जाता दिखाई दे रहा है।





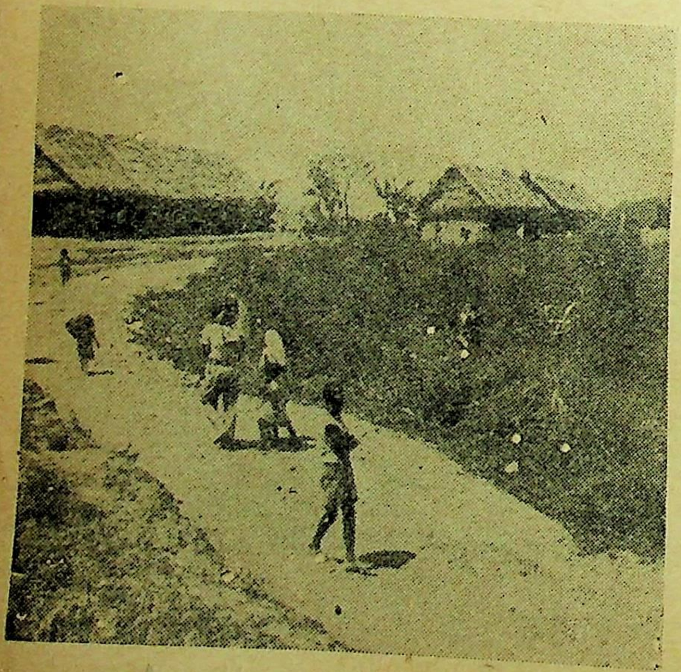
स्वागत

अन्दमान द्वीप के तट पर उतरे हुए शरणार्थियों का स्वागत किया जा रहा है।



यातायात का प्रबन्ध

शरणार्थियों को उनके सामान-सहित पूर्व-निश्चित स्थानों में पहुँचाने का अच्छा प्रबन्ध किया गया है। चित्र में स्वयंसेवक शरणार्थियों को लारियों पर बैठने में सहायता करते हुए अंकित हैं।



बस्ती

अन्दमान में शरणार्थियों की एक नई बस्ती का दृश्य।

आवश्यकता है कि उसके बचत और संचित पूँजी के उपयोग करने की दिशा में परिवर्त्तन करने की उसको प्रेरणा की जाए।

श्रमियों का भाग

राष्ट्रीय आय में श्रमियों का ठीक-ठीक भाग बताना कठिन है। पर संगठित उद्योगों में काम करनेवाले मजदूरों को मिलनेवाले वेतन से उसका कुछ अनुभव किया जा सकता है। १९३९ से १९४७-४८ तक का विवरण नीचे दिया जा रहा है। १९४७-४८ भारतीय यूनियन का है और पहले का संयुक्त भारत का है।

प्रति श्रमी की औसत आय

	१९३९-४०	१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६	१९४६-४७	१९४७-४८
संगठित उद्योगों की कुल आय (लाख रु० में)	१८१३	१९८५	३१७५	४७२७	६२२८	५३७६	४८९४	४०६६	४९०९
वेतनों का कुल बिल (लाख रु० में)	५०४	५६७	७०२	९६७	१२७९	१४८०	१५७५	१५५०	१६५६ (आ०)
कुल वेतनों का उद्योगों की कुल आय में प्रतिशत	३१	२९	२९	२०	२१	२८	३२	३८	३४ (आ०)
संगठित उद्योगों में लगे श्रमी (हजारों की संख्या में)	१७५१	१८४४	२१५६	२२८२	२४३६	२५२३	२६४३	२५०३	२२७४ (आ०)
प्रति व्यक्ति औसत आय (रु० में)	२८७·५	३०७·७	३२४·५	४२४·८ (आ०)	५२५·०	५८६·५	५९५·८	६१९·४	७२८·४
अखिल भारतीय जीवन-निर्वाह की निर्देश-संख्या	१००	१०५	११५	१४६	२४७	२५०	२५३	२६१	२६२
प्रति व्यक्ति वास्तविक आय (निर्देशिका को व्यवहार से घटा कर)	२८७·५	२९३·०	२८२·२	२९१·०	२१२·६	२३४·६	२३५·५	२३७·३	२४९·५

इस तालिका का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पिछले दो सालों को छोड़कर, जब राष्ट्रीय गवर्नमेंट के हाथ में शासन आ गया था, मजदूरों का उद्योग के लाभ में भाग सदा १९३९-४० से कम रहा। १९४५-४६ में भी एक प्रतिशत अधिक रहा है। १९३९-४० में उसकी औसत आय १८७.५ रु० थी। इन कीमतों के अनुसार १९४३-४४ में २१२.६ रु० ही आय रह गई थी, यद्यपि वह पीछे बढ़कर २४६५ रु० तक पहुँच गई पर युद्धपूर्व की अपेक्षा कम ही रही। इसका स्पष्ट अर्थ है कि लड़ाई के कारण भारतीय मजदूर की आय नहीं बढ़ी है। विभिन्न उद्योगों की आय अलग-अलग है। पर उनका एक सामान्य रूप नीचे की तालिका में मिल जाएगा:—

मुख्य उद्योगों की वार्षिक औसत आय

(रुपयों में)

नाम उद्योग	१९३९	१९४०	१९४१	१९४३	१९४४	१९४५	१९४६	१९४७ (आनु०)
रुई	२२०.२	३२५.१	३४३.६	६८३.३	७७२.२	७२३.४	७२१.८	८४७
जूट	२३०.२	२६५.९	२५६.२	३५५.५	३६३.२	३९०.५	४२५.०	४९७
इंजीनियरिंग	२६२.५	३४५.०	३७१.५	५२९.०	५८९.८	६५३.१	६६६.१	८२२
खनिज और धातु	४५७.२	४९१.५	४७६.१	५०२.१	५७३.५	६०१.९	५९९.८	७०६
रासायनिक द्रव्य व रंग	२४४.८	२२९.६	२३८.०	३९८	४८४.६	४४५.२	४९२.४	५८०
आर्डनैन्स फैक्टरी	३६१.९	४०८.५	४२९.४	५२७.४	५४६.८	६४२.८	७२१.२	८४७
सब उद्योग	२८७.५	३०७.७	३२४.५	५२५.०	५८६.५	५९५.८	६१९.४	७२८.४

विभिन्न उद्योग-केन्द्रों में जीवन-निर्वाह का व्यय अलग-अलग है। श्रमी की वास्तविक आय देखने के लिए विभिन्न उद्योग-केन्द्रों के जीवन-निर्वाह-व्यय पर भी दृष्टिपात करना चाहिए। श्रमिकों की अवस्था जानने के लिए इसका अध्ययन आवश्यक है।

अखिल भारतीय श्रमीवर्ग का जीवन-निर्वाह-व्यय

(अगस्त १९३९–१००)

	बम्बई	कानपुर	मद्रास	कलकत्ता	साधारण निर्देशिका
१९३९-४०	१०३	१०५	१०६	१००	१००
१९४०-४१	१०७	१११	१०९	१०७	१०५
१९४१-४२	११८	१२३	११४	११५	११५
१९४२-४३	१५०	१८१	१३६	१४४	१४६
१९४३-४४	२१९	३०६	१८०	२६१	२४७
१९४४-४५	२२६	३१४	२०७	२७९	२५०
१९४५-४६	२२४	३०९	२२८	२८३	२५३
१९४६-४७	२४६	३२६	२३९	२७५	२६१
१९४७-४८	२६५	३७८	२७७	३०९	२९२

इससे एक बात तो स्पष्ट है कि औद्योगिक श्रमिक र्ग का वेतन बढ़ा है; यद्यपि वस्तुतः १३ प्रतिशत आमदनी कम भी हो गई है। युद्ध-काल में बड़ी संख्या में मजदूरों को काम मिलने और बोनस आदि मिलने से

हुआ है। १९४५-३६ में मजदूरों का लाभ में भाग ३८ प्रतिशत पहुँच गया था। इसके बाद उसमें कमी आने लगी। इससे यह भी प्रकट है कि वेतन-बिल और नहीं बढ़ेगा और यह १९३९ की अपेक्षा बहुत अधिक नहीं है।

औद्योगिक कार्यक्षमता और वेतन

यह प्रश्न भी उठाया गया है कि क्या मजदूरी और वेतन बढ़ने के साथ औद्योगिक कार्य-क्षमता भी बढ़ती है? औद्योगिक कार्यक्षमता बढ़ने का अर्थ है एक श्रमी प्रति घण्टा कितना काम करता है। उसकी इस कार्य-शक्ति में, या वह जो कुछ उत्पादन करता है, उसमें क्या वेतन के साथ वृद्धि होती है। 'ईस्टर्न इकनामिस्ट' ने इसको दिखाने के लिए एक तालिका तैयार की है। वह देखने योग्य है :—

वेतन और श्रम-उत्पादन

वर्ष	औद्योगिक उत्पादन का 'ईस्टर्न इकनामिस्ट' निर्देशिका	काम पर लगे मजदूरों की संख्या (निर्देशिका)	काम हुए जन घण्टों की आनुमानिक संख्या (निर्देशिका)	प्रति मजदूर उत्पादन (निर्देशिका)	प्रति जन-घण्टा) उत्पादन (निर्देशिका) (२)	वास्तविक वेतन (निर्देशिका) (३)	वास्तविक वेतन प्रति मजदूर उत्पादन
१९३९-४०	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००
१९४०-४१	१०४	१०५	१०५	९९	९९	१०२	१०२
१९४१-४२	११२	१२३	१२६	९१	८९	९८	१०८
१९४२-४३	११४	१३१	१२५	८७	९१	१०१	११६
१९४३-४४	११५	१३९	१३४	८३	८६	७४	८९
१९४४-४५	११०	१४४	१३९	७६	७९	८२	१०८
१९४५-४६	१०९	१५१	१४५	७२	७५	८२	११४
१९४६-४७	९५	१३८	१२४	६९	७७	८३	१२०
१९४७-४८	९५	१३८	१२२	६९	७८	८७	१२६

ये अंक क्या बताते हैं? यह कि सच्चे अर्थों में प्रति-श्रमी उत्पादन घट गया है। मामूली नहीं घटा है ३१ प्रतिशत घट गया है। प्रति श्रमी उत्पादन घटने का एक बड़ा कारण काम के घण्टे कम करना भी है। पर इसके साथ उसकी कार्य करने की आन्तरिक क्षमता में भी कमी आ गई है। मजदूर की कार्यक्षमता के घट जाने पर विचार करते हुए यह न भूलना चाहिए कि उसको १९३९-४० के समान परिमाण में आज भोजन नहीं मिल रहा है। मानसिक प्रसन्नता जब तक मजदूर में उत्पन्न न होगी, तब तक उसकी कार्य-क्षमता नहीं बढ़ेगी। पर जो नोन-तेल जुटाने की चिन्ता से ही मुक्त नहीं है, वह मानसिक प्रसन्नता कैसे प्राप्त कर सकेगा?

मुनाफा

उद्योगों के अन्दर कितना मुनाफा हुआ है, यह जानना अधिक कठिन नहीं है। भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार-द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक उद्योग के मुनाफे की निर्देशिका विद्यमान है। पर उसका आधार-वर्ष १९२८ है। औद्योगिक मुनाफा जानने के लिए पच्चीस कम्पनियों को चुना गया है। इसलिए निम्न तालिका औद्योगिक मुनाफे का वास्तविक चित्र देती है, यह कहना कठिन है।

औद्योगिक मुनाफा

(आधार-वर्ष १९२८-१००)

वर्ष	सब उद्योग	जूट	सूती	चाय	चीनी	कागज	लोहा और इस्पात	कोयला
१९३९	७२·४	१३·६	१५४·५	९६·२	१७९·४	१५०·८	२७९·३	१३९·१
१९४०	९९·९	४८·८	२२९·१	९५·४	१८०·०	३५८·७	३००·७	१४०·२
१९४१	१३५·४	४६·८	४८९·१	१४१·३	२४७·३	४३२·२	३८७·३	११४·९
१९४२	१६९·१	४७·७	७५८·६	२१९·५	२२७·५	४८८·४	४०२·२	११२·९
१९४३	१७०·९	३७·५	९८८·६	१३७·०	२८३·१	५३५·८	३२३·८	१३४·१
१९४४	१६२·८	४१·८	७६०·५	१०६·०	२३२·४	४५१·१	३४१·४	३१६·८
१९४५	१६३·२	४४·४	६८१·१	१४४·५	१९३·१	४३४·५	३४८·३	३६०·६
१९४६	१५९·४	५८·१	६८०·५	१९०·४	१७५·०	३४१·७	३२४·७	२७८·८

इससे प्रकट है कि १९३९ के बाद से उत्तरोत्तर मुनाफा बढ़ता गया है। मुद्रास्फीति के कारण यह स्फीति कुछ भ्रमात्मक अवश्य है। वास्तविक लाभ मुद्रा-लाभ के परिमाण में नहीं हुआ। पर इसमें सन्देह नहीं है कि युद्ध का लाभ इस वर्ग को पूरा मिला है।

कर-भार

लाभ हुआ। इस लाभ में सरकार ने कितना लिया? सरकार करों के द्वारा लेती है। यह सरकार की करों से होनेवाली आय को देखने से स्पष्ट हो जाएगा। निम्न तालिका देखिए :–

	१९३९-४०	१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६	१९४६-४७	१९४७-४८
संगठित उद्योगों से आय	१८१३	१९८५	३१७५	४२२७	६२२८	५३७६	४८९४	४०६६	४९०९
प्रदेशिक स्रोतों से आय	६०२६	६१२६	६२९२	६७७२	८६५१	८६५१	९७९९	९७९८	८३२८
योग	७८३९	८१११	९४६७	१०९९९	१४०३७	१४६९३	१३८६४	१३८६४	१३२३७
प्रत्यक्ष कर	१६६	२१८	३६७	७४८	१०९७	१४२८	१२७१	१२७१	८५३
संगठित उद्योग और प्रादेशिक स्रोत में प्रत्यक्ष आय का प्रतिशत–	२·१	२·७	३·९	६·८	७·४	११·७	१०·२	९·२	६·४
कुल कर-अर्घ्य से आय कर का प्रतिशत	२·४	३·३	४·३	६·४	६·७	६·८	५·७	५·२	६·०

इसको देखने से पता चलेगा कि प्रत्यक्ष करों का क्षेत्र बराबर बढ़ता गया। वह २४ प्रतिशत से बढ़कर ६० प्रतिशत तक पहुँच गया और १९४४-४५ में तो ६८ प्रतिशत था। प्रत्यक्ष आय संगठित उद्योगों की आय का ६-४ प्रतिशत है। १९४४-४५ में यह भाग ११-७ प्रतिशत तक पहुँच गया। आय-कर समूह पर १९३९ से करों का भार बहुत बढ़ा है। इसका १९४५-४६ के बाद की बचत पर भी प्रभाव पड़ा है।

बचत और विनियोग

आय बढ़ने पर बचाना जैसे आवश्यक है, उसी प्रकार संचित पूँजी को बढ़ाने के लिए पुनः लगाना भी आवश्यक है। हमारी आर्थिक व्यवस्था के अन्दर इन दोनों

के बीच एकसूत्रता स्थापित करना एक कठिन समस्या है। भारत की कुल बचत और उसके विनियोग का ठीक-ठीक अनुमान करना कठिन है। 'इण्डस्ट्रियल कैपिटल इन इण्डिया' के लेखक डा० डीबेरिया और त्रिवेदी ने १९३८-३९ में फैक्टरी एक्ट के द्वारा नियन्त्रित फैक्टरियों में ६७४-८२ करोड़ रु० लगा होने का अनुमान किया था। प्रथम महायुद्ध के बाद से दूसरे महायुद्ध की समाप्ति तक ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनियों की पूँजी में कितनी वृद्धि हुई, यह निम्न तालिका से ज्ञात होगा :—

'ज्वाइण्ट स्टाक' कम्पनियों की पूँजी

(लाख रु० में)

	कुल संख्या		कुल चुकता पूँजी	
	ब्रिटिश भारत	समस्त भारत	ब्रिटिश भारत	समस्त भारत
१९१९-२०	३५००	३९६८	११९४६	१२३२१
१९२४-२५	४८२२	५२०४	२६६५०	२७५५३
१९२९-३०	६०९९	६६१५	२४९६७	२६१११
१९३४-३५	८६३४	९६२७	२६६६०	२७६२५
१९३९-४०	१०३६२	११३७२	२८८४४	३०६६८
१९४२-४३	११७८३	१२७७०	३१६३८	३३६१३
१९४३-४४	१२४९९	१३६८९	३२९७९	३५३७४
१९४४-४५	१३५५५	१४८५९	३६०७३	३८८९७

इसका अर्थ है कि प्रतिवर्ष १० से ११ करोड़ रु० उद्योगों में लगता रहा है। इस हिसाब से पिछले ६ सात वर्षों के अन्दर उद्योगों में ६६० करोड़ रु० लगा है। भारतीय रेलवे में १९३९ के अन्दर ७२५ करोड़ रु० लगा हुआ था और १९४७-४८ में यह बढ़कर ८३७ करोड़ रु० हो गया। विभाजन के बाद अब रेलवे में ७०० करोड़ रु० पूँजी रह गई है। प्रतिवर्ष १४ करोड़ रु० रेलवे में पिछले साठ वर्षों से लगाया जा रहा है। सिंचाई में १५९ करोड़ रु० लगे हुए हैं। इसका अर्थ है कि औसतन प्रतिवर्ष ३ करोड़ रु० और समस्त भारत में ३ करोड़ रु० सिंचाई में लगता रहा। विविध क्षेत्रों के अन्दर प्रतिवर्ष पूँजी किस प्रकार लगी इसका कुछ आभार नीचे की तालिका से मिल जाएगा :—

	करोड़ रु० में
बड़े परिमाण के उद्योग	११
रेलवे	२४
सिंचाई	५
खेती की उन्नति	५०
सरकारी और निज इमारती काम	६०
विविध	१०
योग	१५०

युद्ध से पूर्व खेती में प्रतिवर्ष ५० करोड़ रु० लगता रहा है। पर इसका अधिकांश भाग चाय, काफी के बागों और गन्ना और गन्ने की खेती में लगा रहा है। यह पूँजी अधिकतर बाहर से आती रही। इसलिए भारत की बचत का जो अनुमान विशेषज्ञों ने हिसाब लगाकर किया है, वह इस प्रकार है :—

बचत का अनुमान

(लाख रु० में)

	१९३९-४०	१९४०-४१	१९४१-४२	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६	१९४६-४७	१९४७-४८ (केवल भारत)
(क) औद्योगिक क्षेत्र की बचत	४६०	४५२	१९००	३५०४	४८६५	२८२२	१८२७	२५५	८७१

(ख) शेष अंचल की बचत	१४९१	१७६५	१०५९	२३१	९७७	५९५	१०७८	२०५	२६३
(ग) ब्रिटिश सरकार से वसूल होने-वाला व्यय	४०	५३०	१९४०	३०६०	३७८०	४११०	३४७०	४०	...
(घ) भारत सरकार की आमदनी	१०३९	११६४	१२६७	१५१५	१८०७	२२०८	२४५५	२५८३	१०४५
(च) भारत सरकार का व्यय	१२२९	१५८६	१८७४	४२५७	५५७३	६४१७	५८९१	५०७८	२६१७
बचत (क+ख +ग+घ--च)	१८०४	२३२५	४२९२	४०५३	५८५६	३३१८	२९३९	१९९५	--४३८
(छ) भारतीय प्रान्तों की राष्ट्रीय आय	१९३४३	२०५८३	२३२६०	३३७३४	४२३३२	४२७०९	४२३८२	४५०७२	३९४२१
(ज) बचत राष्ट्रीय आय का प्रतिशत	९.३	११.३	१८.५	१२.५	१३.८	१७.८	६.८	...	...

१९४६-४७ और १९४७-४८ में राष्ट्रीय आय में बचत का भाग कुछ नहीं है। यह भयप्रद चिह्न है। युद्धकाल के प्रतिबन्ध सहसा दूर हो गए थे। दूसरे ये वर्ष उग्र राजनीतिक उथल-पुथल के थे। इस वर्ष कृषि उत्पन्न आमदनी का भाग ५७.३ प्रतिशत है जब कि १९३९-४० में १९.२ प्रतिशत ही था। इसका अर्थ है कि राष्ट्रीय आय का ८ प्रतिशत भाग माध्यमिक और शेष क्षेत्र से पलटकर प्राथमिक अंचल में चली गई। १९४८ में १९४७ की अपेक्षा उत्पादन अधिक हुआ है। पर हमारी राष्ट्रीय आमदनी में उद्योग का भाग केवल २४ प्रतिशत है। दूसरे उद्योगों में लगी पूँजी का मूल्य भी गिर गया। युद्ध-पूर्व के आँकड़ों को देखने से पता चलता है कि १९३९ से पहले के बीस सालों में हम अपनी आय का एक प्रतिशत बचाते और उद्योगों में लगाते रहे हैं। कोलिन क्लार्क ने भारत की बचत और लगी पूँजी के सम्बन्ध में अन्ताराष्ट्रीय इकाई से आँक कर निम्न विवरण तैयार किया है। एक अन्ताराष्ट्रीय इकाई से अभिप्राय है कि एक डालर से संयुक्त राष्ट्र अमरीका के अन्दर १९२५-१९३४ के बीच किस परिमाण में माल वस्तु और सेवा प्राप्त की जा सकती थी।

भारत की बचत और लगी पूँजी

(अन्ताराष्ट्रीय ईकाई के हजार लाखों में)

	१९१९-२३	१९२४-२८	१९२९-३२	१९३४-३९
रेल, उद्योग और खान	०.४८	०.४४	०.१९	०.२०
अन्य लगी पूंजी	१.४०	१.५९	१.७०	२.४०
शेष	—०.१८	+०.०३	--०.०८	—०.०९
कुल बचत	१.७९	२.०६	१.८१	२.५१
अन्ताराष्ट्रीय इकाई प्रति व्यक्ति	२२.४	२४.५	२०.६	२७.१

कोलिन क्लार्क के अनुसार १९१९-२३ में १५० करोड़ रु०, १९२४-२८ में ११० करोड़ रु०, १९२९-३३ में ११४ करोड़ रु० और १९३४-३८ में १३९ करोड़ रु० बचत का उद्योगों में लगाया गया। १९३९ में हम अपनी आमदनी का ९ प्रतिशत बचा रहे थे और १९४१-४२ में १८.५ प्रतिशत बचा रहे थे। यह हमारे बचत की चरम सीमा है। इसके बाद बचत घटने लगी। १९४१-४२ में हम १८.५ प्रतिशत बचा सके हैं, यह भविष्य के लिए महान् आशा और उत्साह का कारण है। १९०८ से १९२४ के बीच जापान ने ५५ प्रतिशत तक बचाया था। उसके बचत का औसत २१ प्रतिशत था। भारत उसके निकट तक पहुँच गया था। पर १९४१-४२ की सतह पर पहुँचने के लिए हमें भगीरथ प्रयत्न करना होगा। वर्तमान जीवन-निर्वाह के मानदण्ड को बनाए रखने के लिए प्रति वर्ष ५०० करोड़ रु० की बचत करनी चाहिए। भारत की प्रति व्यक्ति की आमदनी कुछ वर्ष में दुगनी करने के लिए आज की कीमतों के अनुसार न्यूनतम ३०००० करोड़ रु० की पूँजी आवश्यक है। बम्बई योजना ने युद्ध-पूर्व की कीमतों के अनुसार १०००० करोड़ रु० की पूँजी आवश्यक बताई थी। बम्बई-योजना के निर्माता अत्यधिक आशावादी थे। वे युद्ध-पूर्व की कीमतों के अनुसार ४४८० करोड़ रु० से औद्योगिक उत्पादन पाँच गुणा करना चाहते थे और १२४० करोड़ रु० के व्यय से खेती का उत्पादन १३० प्रतिशत बढ़ाना चाहते थे। अनुभव ने बताया है कि हमको अपनी आर्थिक प्रगति के लिए नए सिरे से नई योजना बनानी चाहिए।

पिछले दो वर्षों में आर्थिक प्रगति की धारा सर्वथा रुक गई है। हमारे आर्थिक जीवन का यह निराशाजनक पहलू है। इधर ध्यान बहुत कम गया है। पिछले दो वर्षों में भारतीय आर्थिक-ढाँचे को भूकम्प के धक्के जैसे भयंकर धक्कों को सहना पड़ा है। यद्यपि ऊपर से नहीं मालूम होता कि धक्कों का उस पर प्रभाव पड़ा है, पर अन्दर से उसके सब जोड़ हिल गए हैं। आश्चर्य और सन्तोष का यह विषय है कि १९३९-४० की अपेक्षा हमारा उत्पादन आज भी अधिक मात्रा में हो रहा है। पर इसके साथ यह भी स्पष्ट है कि चालू बढ़े वेतनों पर आय-विस्तार की क्षमता भारतीय उद्योग में नहीं है। १९४२ में २५ करोड़ रु० भी हमने बचाए हैं, यह सन्दिग्ध है। यद्यपि प्रति वर्ष कम-से-कम ५०० करोड़ रु० हमारे राष्ट्र को अवश्य बचाना चाहिए, यदि आज का जीवन-धन भी बनाए रखना है। वर्तमान अवस्था में बचत का एक ही मार्ग है—खर्चों में सब ओर कमी। कर-योग्यता सीमित है, इसलिए राष्ट्रीय जीवन की प्रगति के लिए आवश्यक योजनाओं के अतिरिक्त सरकार को सब ओर से अपना हाथ खींचना चाहिए। भारतीय राष्ट्र आज आर्थिक संकट के कगार पर खड़ा है। आर्थिक मन्दी सिर पर है। १९५० से उसका आना अनिवार्य है, यदि अभी से उसको रोकने का व्यवस्थित रूप से प्रयत्न नहीं किया गया। विमानों की सीटें अब एक सप्ताह पहले 'रिजर्व' कराने की आवश्यकता नहीं रही है। अब विमानों की लगभग आधी सीटें भरती ही नहीं हैं। यह इस बात का सूचक है कि मन्दी सिर पर आ गई है। वर्तमान आर्थिक सकट एक महान् राष्ट्रीय विपत्ति सिद्ध न हो, इसका अभी से प्रयत्न करना चाहिए। आर्थिक प्रगति का यह चित्र हमें निराश करने के अपेक्षा आती विपत्ति को टालने के लिए हमारे संकल्प को दृढ़ बनानेवाला और हमको कर्तव्य-कर्म को करने के लिए प्रेरणा देनेवाला होना चाहिए। यदि हम आज की अवस्था से हतोत्साह न होकर दृढ़ता से आगे बढ़ेंगे, तो हम फिर भारत-भू को श्री-ऐश्वर्य सम्पदा और वैभव-सम्पन्न अपने जीवन ही में बनता हुआ देख सकेंगे। क्या हम इसके लिए कृत-संकल्प होकर आगे बढ़ेंगे ?

एकांकी नाटक—

रोगी के बच्चे

श्री प्रेमनारायण टंडन

स्थान—

मकान के बाहर का बरामदा, जो गली से लगभग चार फुट ऊँचा है। तीन सीढ़ियाँ चढ़कर बरामदे तक पहुँचना होता है। एक तखत बरामदे में पड़ा है, जो बिलकुल साफ है, जान पड़ता है, सबेरे धोया गया था। गली के किनारे होने से बरामदे में हर समय चहल-पहल रहती है। गली के दोनों तरफ ऊँचे मकान हैं। इसी से कड़ी धूप की तपन से झुलसा हुआ आदमी वहाँ पहुँचकर आराम की साँस लेता है। हर दस-दस, पंद्रह-पंद्रह मिनट बाद एक-न-एक सौदा बेचनेवाला वहाँ आया ही करता है। फल, मिठाई, खिलौने, गाने की किताबें, बरफ—मतलब यह कि जरूरत की सभी चीजें लोग बेंचते फिरते हैं। भिखारियों की भी कमी नहीं रहती। कभी कोई बूढ़ा अपाहिज आता है, कभी कोई जटाधारी बाबा। आधे वस्त्र पहने भिखारिनें भी गोद में बच्चा लिए या उँगली पकड़े इक्का-दुक्का दिखाई दे जाती हैं। कुत्ते, गदहे, बकरियाँ और गाएँ भी गली में हर समय घूमती रहती हैं, जिनके साथ लड़के अपनी शक्ति और सामूहिक एकता का ध्यान करके अवसर के अनुकूल व्यवहार करते हैं।

समय—

अप्रैल का अंतिम रविवार जब लखनऊ में काफी गरमी पड़ती है और लू भी चलने लगती है। जो बाबू रोज दफ्तर में आराम से खस की टट्टियों और बिजली के पंखों का आनन्द लेते थे, आज घर में तपते कमरों में पड़े हैं। धूप की तड़क से बचने के लिए जब वे दरवाजे बंद करते हैं तो पसीना परेशान करता है और जब उन्हें खोल देते हैं तो आँख सामने नहीं की जाती।

बच्चों के लिए यह समय स्वतंत्रता का है। बाबू जी कमरे में आराम कर रहे हैं, माता जी दहलीज में लेटी हैं; अब उन्हें कोई टोकनेवाला नहीं है। दो-तीन घंटे तक उनकी बुलाहट नहीं हो सकती, यह वे अच्छी तरह जानते हैं।

पात्र—

शीला—रोगी की पुत्री, दसवर्षीय बालिका। दुबली-पतली; रंग खुलता हुआ। चेहरा-मोहरा साधारण। आँखें और बाल कुछ भूरापन लिए हुए। रंगीन फिराक और सफेद जाँघिया पहने है।

सतीश—रोगी का सातवर्षीय दुबला-पतला बालक। रंग बहन शीला से मिलता-जुलता। बनियायन और नेकर पहने। स्वभाव से सीधा, बुद्धि में अवस्था से अधिक चतुर और समझदार।

हरी—ग्यारह-बारह वर्ष का लड़का, जो पड़ोस के धनी दूकानदार का पुत्र है। अच्छे हाथ-पैर; चंचल, तेज और निष्ठुर। रंग साँवला है। मुख पर कांति है, जो देखने वाले का ध्यान आकर्षित कर लेती है।

दृश्य—

[कुछ लड़कों के साथ हरी गली में खेल रहा है। कभी एक से लड़ बैठता है, कभी दूसरे को पीट देता है। शीला और सतीश को उसकी प्रकृति का पूरा परिचय है। शायद इसी लिए दुबले-पतले ये दोनों भाई-बहन उससे डरकर बरामदे में आकर खड़े हो गए हैं और तखत पर बैठकर दो फुट ऊँचे छज्जे से झाँक रहे हैं। सामने गली में खिलौनों की डलिया लिए एक बूढ़ा बैठा है। लड़के उसे घेरे हुए हैं।]

सतीश—(बहन शीला के कान के पास मुँह करके) कितने अच्छे-अच्छे खिलौने हैं इसके पास!

शीला—अच्छे तो हैं, पर ये टूट बहुत जल्दी जाते हैं—बाबू जी ने उस दिन कहा था। याद है?

सतीश—याद है। कहा था—किताबों की अच्छी-अच्छी तसवीरें देखा करो हर रोज।

शीला—यह भी तो कहा था कि तसवीर देखनेवाले लड़के राजा होते हैं।

सतीश—हाँ, कहा था। मुझे तो वे राजा भैया पुकारते भी हैं।

[इसी समय हरी पास खड़े लड़के को बूढ़े पर

ढकेल देता है और स्वयं फुर्ती से पीछे हट जाता है। गिरनेवाले लड़के को बूढ़ा झकझोर देता है। शीला और सतीश बात करना बन्द करके खिलौनेवाले की तरफ देखने लगते हैं।

हरी—(बनावटी क्रोध करके) किसने धक्का दिया इस लड़के को? बूढ़े के चोट लग जाती तो?

मोहन—तुम्हीं ने तो धक्का दिया था।

हरी—मैंने? (कुछ आगे बढ़कर) देखा था तूने? झूठ बोलता है?

बूढ़ा—भैया लड़ो न। (खिलौना की डलिया सिर पर रख, उठ खड़ा होता है) जाओ, खेलो सब मिलकर।

शीला—(धीरे से) हरी बड़ा शैतान है। सबसे लड़ता है।

सतीश—बड़ा बुरा है वह; बूढ़े खिलौनेवाले को सताता है। मैं कभी नहीं सताता किसी को।

शीला—तू तो राजा है।

सतीश—राजा लोग भी तो लड़ते हैं आपस में।

शीला—वे राजा भैया थोड़े होते हैं। तू तो राजा भैया है।

सतीश—बूढ़ा चला गया; अबकी आएगा तो मैं भी उससे खिलौने लूँगा—अच्छे-अच्छे खिलौने।

शीला—मैं भी बड़ी-सी गुड़िया लूँगी।

[एक फलवाला आता है। संतरे, केले, ककड़ी, कसेरू, सभी कुछ उसके पास है। सुधा उसकी आवाज सुनकर दौड़ती हुई आती है।]

सुधा—

[आठ-नौ वर्ष की बालिका हरी की छोटी बहन है। धनी की कन्या होने के कारण लाड़-प्यार से पली है। रँग साँवला है, नाक-नक्स मोटा और अनाकर्षक। रेशमी फिराक के ऊपर महीन धोती पहने है। स्वभाव से लड़ाका, चिड़चिड़ी और हठीली है।]

सुधा—केलेवाले, ओ केलेवाले। एक केला दे दे। कितने का है?

फलवाला—(केला देकर) दो पैसे का बिटिया।

सुधा—(इकन्नी फेंककर) दो पैसे की ककड़ी भी दे दे।

[फलवाला दो छोटी-छोटी ककड़ियाँ देता है। लड़के-लड़कियाँ, सब उसकी तरफ देखने लगती हैं। हरी आगे बढ़कर दो संतरे, चार ककड़ियाँ उठा लेता है और दाम देता है। सुधा को दिखा-दिखाकर हरी खाने लगता है। और भी दो-एक लड़के फल लेते हैं।]

सुधा—(हरी से) मुझे भी संतरा दे।

हरी—(अँगूठा दिखाकर) ले सींगा। तूने एक केला लिया, मैंने दो; तूने दो ककड़ी लीं, मैंने चार। और (संतरे दिखाकर) दो संतरे लिए मैंने घाटे में। (जल्दी-जल्दी खाता और मुँह चिढ़ाता है। फिर संतरे का छिलका उसकी तरफ फेंककर) ले, और लेगी संतरा?

[सुधा के छिलका लगता है; हरी खिलखिलाकर हँसता है। सुधा रोती हुई घर जाती है। हरी उसी तरह खाता रहता है।]

सतीश—संतरे बड़े रसदार और मीठे होते हैं। उससे ताकत आती है।

शीला—तभी बाबू जी रोज संतरा खाते हैं।

सतीश—मुझे भी एक फाँक रोज देते हैं।

शीला—मुझे भी। (हरी की तरफ इशारा करके) हरी दो संतरे अकेले खा गया! सुधा बिचारी रोती रही।

सतीश—अकेले नहीं खाना चाहिए कुछ—उस दिन माँ ने बताया था, याद है?

शीला—मैं तो सब चीजें तुझे देकर खाती हूँ। तू कभी देता है; कभी नहीं देता।

सतीश—जो चीज जरा सी मिलती है, वह तुझे नहीं देता; बहुत मिलती है तो देता हूँ।

[एक फेरीवाला कपड़े की गठरी पीठ पर लादे आता है और निकल जाता है। लड़के उसकी ओर देखकर कानाफूसी करते हैं। कपड़ेवाला दूर निकल जाता है तो हरी आवाज देता है—कपड़ेवाले! ओ कपड़ेवाले! फेरीवाला लौटता है। पास आकर पूछता है—किसने बुलाया था? हरी मुँह फेरकर हँस पड़ता है। उसी के साथ सब हँसने लगते हैं। कपड़ेवाला हरी की शरारत समझकर उसे क्रोध से घूरता और बड़बड़ाता हुआ चला जाता है।]

शीला—अम्मा ने कहा था—साड़ी मँगा दूँगी। सो रही हैं, नहीं तो आज ले लेती।

सतीश—मेरे लिए भी कमीज का कपड़ा लेने को कहा था।

शीला—अबकी आएगा तो जरूर लूँगी।

सतीश—माँ तो कहती हैं कि कपड़े मिलते ही नहीं। यह तो गट्ठर लादे है। चाहे जितने कपड़े ले लो।

शीला—हैं तो बहुत से कपड़े इसके पास।

[एक गधा आता है; लड़के उसे ईंट-पत्थर और छड़ी से मारते हैं। गधा लँगड़ाता हुआ मुँह बचाता हुआ चला जाता है।]

सतीश—बड़े बुरे हैं ये लड़के। बेचारे गधे को मार रहे हैं।

शीला—उसके भी चोट लगती होगी, इन लड़कों को नहीं मालूम।

सतीश—बेचारा गधा मन में रोता होगा।

शीला—दूसरे जन्म में ये लड़के गधे होंगे और गधा लड़का। तब वह भी इन्हें मारेगा, इनसे बदला लेगा।

सतीश—तब ये लोग भी खूब रोएँगे।

[गन्ने का रस बेचनेवाला आता है। सारे मुहल्ले के लड़के धीरे-धीरे उसके पास जुट आते हैं। इसी समय घर से राकेश बाहर आता है।

राकेश—

रोगी का बड़ा पुत्र है। अवस्था बारह-तेरह वर्ष। रंग साँवला, मुख पर दीनता की छाप से युक्त भोलापन जो देखनेवाले के हृदय में स्नेह नहीं, दया उमड़ाता है। छोटे-छोटे रूखे बाल जो काफी दिनों से कटे नहीं जान पड़ते हैं। शरीर दुबला-पतला है, जिसने समय से पहले ही काफी कष्ट सह लिए हैं। खाकी नेकर के ऊपर आधी बाँह की कमीज पहने है जो न बहुत उजली है और न मैली, जिसकी सिकुड़नों से पता लगता है कि वह घर पर ही धोई गई है।

राकेश की दृष्टि गन्नेवाले पर पड़ती है, फिर वह भाई-बहनों की तरफ देखता है। क्षण भर वह कुछ सोचता रह जाता है। पश्चात् तख्त पर कुछ दूर हटकर इस तरह बैठता है कि गन्नेवाला दिखाई न पड़े और दोनों से कहता है—आओ, यहाँ बैठो। शीला और सतीश दोनों उसके पास जाकर बैठ जाते हैं। तीनों कुछ समय तक चुप रहते हैं। नेवाले के पास से 'पहले हमें दो, पहले मुझे दो' की आवाजें आती रहती हैं।

राकेश—बाहर की चीज नहीं खानी चाहिए। उस पर मक्खियाँ भिनभिनाती हैं। खानेवाले बीमार हो जाते हैं।

सतीश—बाबू जी तो बहुत दिनों से बीमार हैं। उन्होंने क्या बाहर की चीज खाई थी?

राकेश—(कुछ उत्तर न पाकर) हाँ, और क्या?

शीला—ये लड़के तो रोज बाहर की चीज खाते हैं। ये कभी बीमार नहीं होते?

राकेश—होते क्यों नहीं? तुम्हें याद नहीं है, उस दिन हरी खाट पर पड़ा चिल्ला रहा था?

सतीश—भैया उसके तो चोट लग गई थी। (जरा-सा उचककर गली की तरफ झाँकता है) गन्ने का रस होता खूब मीठा है। (शीला और राकेश भी बाहर की तरफ देखते हैं।) कल बाबू जी ने मुझे एक गँडेरी दी थी।

शीला—उसमें बरफ पड़ जाए तो कितना ठंढा हो जाता है।

सतीश—हमारा शरबत भी मीठा होता है, पर उसमें बरफ नहीं डाली जाती कभी।

राकेश—बरफ कितनी गंदी होती है, यह भी तो बाबू जी ने बताया था उस दिन?

शीला—सब लोग बरफ खाते हैं; हम माँगते हैं तो कह देते हैं कि गंदी होती है।

सतीश—बाबू जी ने आज अपने दोस्त के लिए भी मँगाई थी!

राकेश—(बात बदलकर) तुमने किताबों में छपी तसवीरें देखी हैं? कितनी बढ़िया होती हैं?

सतीश—मुझे तो हलवाई की दूकानवाली तसवीर अच्छी लगती है।

शीला—हाँ, कितने बड़े-बड़े थालों में मिठाई सजा रखी है उसने अपनी दूकान पर।

सतीश—हमें तो बहुत दिनों से मिठाई नहीं मिली है खाने को।

राकेश—मिठाई खाने से दाँत खराब हो जाते हैं।

सतीश—सभी लड़के तो खाते हैं। अभी हरी ने खाई थी, सुधा ने खाई थी। ये तो रोज खाते हैं।

[राकेश कुछ उत्तर नहीं देता; सुधा और सतीश दोनों उसकी ओर ताकते हैं। फिर एक बार गन्नेवाले को उचककर देख लेते हैं। लड़के गन्नेवाले को घेरे हुए हैं। राकेश अब भी चुप है।]

सतीश—(पुनः उसी स्वर से) बहन के दाँत तो खराब ही हैं। इन्होंने कब मिठाई खाई थी!

सुधा—मैंने तो कई दिनों से चक्खी भी नहीं है मिठाई। गुड़ कभी-कभी मिल जाता था। अब अम्मा कहती हैं, वह भी नही मिलता।

सतीश—हरी, सुधा, मोहन, सब शक्कर की मिठाई खाते हैं।

सुधा—हमें गुड़ क्यों नहीं मिलता, भैया?

राकेश—आजकल बहुत महँगी है।

सतीश—महँगी! महँगी क्या भैया?

राकेश—आजकल ज़रा-सी चीज खरीदने में बहुत से रुपए देने पड़ते हैं।

[गली में गन्नेवाले के चारों तरफ लड़के-लड़कियों की भीड़ है। एकाएक बड़े-बड़े सींगोंवाली एक गाय आकर गन्ने के चीफुरों में मुँह मारती है। रसवाला उसे छड़ी से मारकर भगाता है, डरकर लड़के भी भागते हैं। राकेश, शीला, सतीश, तीनों उठकर खड़े हो जाते हैं और जीने के ऊपर खड़े होकर देखने लगते हैं। थोड़ी देर बाद आकर तीनों भाई-बहन फिर खड़े हो जाते हैं।]

सतीश—हम भी दुबले हैं, यह गाय भी दुबली-पतली है।

शीला—सब हड्डियाँ निकली हुई हैं।

राकेश—इन्हें आजकल पेटभर खाना नहीं मिलता।

सतीश—दूध तो देती हैं ये। हम बाबू जी के लिए रोज लाते हैं।

शीला—मैं भी जब बीमार पड़ी थी, तब मैंने दूध पिया था।

राकेश—मैंने भी उस दिन पिया था जब वह काली बकरी घर में बंद कर ली थी। उस दिन अम्मा ने उसका दूध दुह लिया था।

सतीश—मुझे पहले मिलता था दूध आधी कटोरी; अब नहीं मिलता।

शीला—अब तो तू बड़ा हो गया है। दूध तो बच्चे पीते हैं।

सतीश—सात-आठ बरस का हूँ; कहती है, बड़ा हो गया!

राकेश—दूध आजकल अच्छा नहीं मिलता; निरा पानी होता है। ऐसे दूध से तो न पीना अच्छा।

शीला—अम्मा कहती थीं, सबको दूध तब मिले जब बहुत से रुपए हों। पर हमारे पास रुपए नहीं हैं, हम गरीब हैं।

सतीश—जिसके पास रुपए न हों, वह गरीब होता है?

शीला—और नहीं क्या! तभी तो अम्मा कहती थीं कि गरीबों के लड़कों को पैसे नहीं खरचना चाहिए।

राकेश—तुमने देखा है मुझे कभी एक पैसे की चीज खरीदकर खाते? ऐसे ही तुम लोग भी रहा करो।

सतीश—ऐसे ही तो रहते हैं। मैं तो पैसे जोड़ता हूँ।

शीला—मेरी भी गुल्लक में सात पैसे हैं।

सतीश—मेरी में आठ हैं। चार पैसे महीने में मिलते हैं। दो बचा लेता हूँ।

शीला—मैं कभी दो बचा लेती हूँ, कभी तीन।

सतीश—दूसरों को रुपए कहाँ से मिल जाते हैं?

शीला—उनके बाबू जी लाते हैं। हमारे बाबू जी बीमार हैं बहुत दिनों से।

सतीश—तो चलो, हम लोग ले आएँ। कहाँ मिलेंगे रुपए?

राकेश—हम लोगों को नहीं मिलेंगे; हम छोटे हैं अभी।

सतीश—छोटे हैं! अरे, सब काम तो करते हैं हम! रासन लाते हैं, आटा पिसाते हैं, तरकारी, दूध, दही, सब कुछ तो लाते हैं। क्यों नहीं मिलेंगे हमें?

राकेश—(फीकी हँसीहँसकर) रुपए उन्हीं को मिलते हैं जो (हाथ ऊँचा करके) इतने बड़े हो जाते हैं।

सतीश—बहन तो कहती है, मैं बड़ा हो गया। पर इतना बड़ा तो बहुत दिनों में होऊँगा।

राकेश—हाँ, तभी रुपए मिलेंगे।

सतीश—(कुछ देर सोचकर) देता कौन है रुपए?

राकेश—क्या करोगे यह जानकर?

सतीश—उनसे चलकर कहेंगे, हमारे बाबू जी बीमार हैं। उनके रुपए हमें दे दो।

राकेश—रुपए राम जी देते हैं। उनके यहाँ एक का रुपया दूसरे को नहीं दिया जाता।

शीला—राम जी कौन? कहाँ रहते हैं?

राकेश—(किताब खोलकर एक तसवीर दिखाता

हुआ) यह देखो हैं राम जी। ये ही सबको रुपए देते हैं।

[सतीश और शीला दोनों बड़े ध्यान से तसवीर देखते हैं। राकेश उनकी दृष्टि बचाकर गन्नेवाले की तरफ देखता है। गन्नेवाला धीरे-धीरे जाने लगता है। जाते-जाते आवाज देता है—'रस गन्ने का।' शीला और सतीश दोनों चौंक पड़ते हैं।]

सतीश—रहते कहाँ हैं?

राकेश—(ऊपर उँगली उठाकर) बादल में, आसमान में।

[शीला और सतीश, दोनों ऊपर देखते हैं। जब छत के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता, तो फिर तसवीर देखने लगते हैं।]

सतीश—(तसवीर पर ही दृष्टि गड़ाए हुए) बादल में रहते हैं राम जी! (राकेश की ओर देखकर) हवाई जहाज पर चढ़कर जाते होंगे लोग उनके पास?

राकेश—रामजी किसी से मिलते नहीं। उनसे जो कोई कुछ माँगता है, दे देते हैं।

शीला—कैसे माँगा जाता है उनसे? क्या देंगे वे?

राकेश—वह जो ठाकुरद्वारा है, वहाँ चलो। हाथ जोड़ो, आँख मूँदो। तब राम जी से जो कुछ माँगोगे, मिल जाएगा।

शीला—मैं तो अपनी गुड़ियों के लिए कपड़े माँगूगी रेशमी और अपने लिए बहुत अच्छी अच्छी साड़ियाँ।

राकेश—(मुस्कराकर) गहने नहीं माँगेगी तू?

शीला—गहने तो, अम्मा कहती हैं, ससुराल से मिलेंगे मुझे।

सतीश—मैं तो रुपए माँगूँगा खूब। रुपए से मिठाई फल, कपड़े, सभी मिल जाते हैं।

शीला कब चलोगे ठाकुरद्वारे?

राकेश—उस समय चलना जब कोई न देखे। किसी ने देख लिया तो राम जी कुछ न देंगे।

सतीश—अभी अम्मा सो रही होंगी। अभी चलो।

शीला—हाँ, हाँ, अभी चलो। मैं राम जी से गहने भी माँग लूँगी।

सतीश—भैया, तुम क्या माँगोगे?

राकेश—मैं? मैं तो माँगूँगा कि हमारे बाबू जी को अच्छा कर दो। पाँच साल से बीमार हैं। अच्छे हो जाएँगे तो सभी कुछ लाएँगे।

सतीश—(ध्यान से सुनकर) मैं भी यही माँगूँगा।

शीला—मैं भी यही माँगूँगी।

हिन्देशिया के संघर्ष की भूमिका

प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव, एम० ए०

दक्षिण-पूर्व एशिया के नाम से जो भूखंड प्रसिद्ध है, उसके अंगीभूत राज्यों में थाईलैण्ड (स्याम), हिन्द-चीन, मलाया और हिन्देशिया प्रधान हैं। यह भूखंड प्राचीनकाल में प्रथम शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक भारतीय इतिहास और संस्कृति से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहा है। १५वीं सदी के बाद भारत का प्रभुत्व सागर पर नहीं रह गया और अरबों और बाद में पुर्तगीजों का सामुद्रिक शक्ति के रूप में उदय होने के बाद, भारत अपना सम्बन्ध इन देशों के साथ कायम न रख सका। अब भी हिन्दचीन और हिन्देशिया का नाम हिन्द के प्रभाव की सूचना दे रहे हैं। बहुत समय तक इस प्रदेश को 'फर्दर इंडिया' या बृहत्तर भारत कहा जाता रहा है। अतः भारत का इस देश के राजनीतिक परिवर्तनों में दिलचस्पी लेना सर्वथा स्वाभाविक है। अलबुकर्क ने 'ईस्ट इंडीज' के सम्बन्ध में लिखा था कि उस पर भारत से ही अधिकार और शासन किया जा सकता है। टिन, रबर, तेल तथा चीनी आदि की अधिक पैदावार के कारण यह भूभाग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और ब्रिटेन, हॉलैण्ड, और फ्रांस के अधीन होने के कारण यह अन्तारर्राष्ट्रीय क्षेत्र बन गया है। डच और फ्रेंच शासन के कारण इस क्षेत्र का सदियों तक शोषण हुआ और इन देशों की प्रजा अशिक्षा और दरिद्रता से पीड़ित रही। गत युद्ध में जापान ने देखते-ही-देखते इस भाग को जीतकर अपने अधीन कर लिया और सिंगापुर का अजेय समझा जानेवाला नौदुर्ग टूट गया। भाग्य ने पल्टा खाया और सदियों से परतंत्र हिन्दचीन, हिन्देशिया और मलाया

प्रदेश को पुनः हारे हुए विदेशी शासकों की अधीनता स्वीकार करने को विवश होना पड़ा। किन्तु तीन वर्षों के जापानी शासन और राजनैतिक उलटफेरों ने इन देशों में राजनैतिक जागरण पैदा कर दिया। जो राजनीतिक चेतना १९०६ के बाद इन प्रदेशों में बढ़ रही थी और जो कभी वैधानिक और कभी अवैधानिक दिशाओं को ग्रहण करती थी, उसे अब एक निश्चित मार्ग दिखाई पड़ने लगा। एक सौ दिनों की अवधि में जापान ने हांगकांग, मनीला और सिंगापुर तथा बटेविया को जीत लिया। दक्षिण-पूर्व एशिया में केवल श्याम को ही स्वतंत्रता प्राप्त थी, पर वह एक दिन भी जापान से लड़ने को तैयार न था। वहाँ के अनेक राजनैतिक नेता जापान का स्वागत करने को तैयार थे, अतः उसने जापान के सामने घुटने टेक दिए।

डचों ने हिन्देशिया को इस प्रकार अरक्षित छोड़ रखा था कि स्वयं पराधीन हो जाने पर वे इस सुदूर-स्थित साम्राज्य की रक्षा में असमर्थ हो गए। नीदरलैंड की सरकार ने हिन्देशिया की स्थानीय सरकार पर ही उस देश को छोड़ दिया। पर वह अपने बल पर जापानियों का मुकाबला करने में असमर्थ थी। प्रजा ने जापानियों का स्वागत किया, कारण, उनके सामने त्राण का दूसरा रूप नहीं था। अंतिम समय में हो ही क्या सकता था? साम्राज्य का शोषण कर डचों ने प्रजा को इस प्रकार निर्बल बना दिया था कि वे इच्छा रहते हुए भी अपनी रक्षा करने में असमर्थ थे। स्थानीय गवर्नर जनरल को पूर्ण अधिकार सौंप दिया। अन्त में हॉलैण्ड की महारानी ने एक ऐतिहासिक घोषणा की। डच साम्राज्य का अन्त निकट देखकर यह घोषणा हुई कि हिन्देशिया का हॉलैण्ड के साथ 'सामान साझेदारी' का सम्बन्ध होगा और उसे युद्धोत्तरकाल में स्वराज का अधिकार प्राप्त होगा। इस घोषणा की तुलना हम 'क्रिप्स-योजना' से कर सकते हैं। इस तरह आसन्न संकट की अवस्था में हिन्देशिया को स्वराज का आश्वासन दिया गया। एक डच कामनवेल्थ की कल्पना की गई, जिसमें हिन्देशिया को समान अधिकार का आश्वासन मिला। नीचे हम महारानी विल्हेल्मिना की घोषणा के कुछ आवश्यक अंग उद्धृत करते हैं, जिससे आज की स्थिति की भूमिका स्पष्ट हो सकेगी।

'I am convinced and history as well as reports from the occupied territories confine me is this,, that after the war it will be possible to reconstruct the kingdom on the solid foundation of complete partnership which will mean the consumunation of all that has been developed in the past.

'I visualize without anticipating the recommendations of the future conference that they will be directed towards a commonwealth in which the Netherlands, Indonesia, Suriman and Curacao will participate, with complete self-reliance and free dom of conduct for each part regarding its internal affairs, but the readiness to render mutual assistance.'

"मुझे विश्वास है, और इतिहास तथा अधिकृत प्रदेशों से प्राप्त सूचनाओं से भी मेरा समर्थन होता है कि युद्ध के बाद पूर्ण समानता के आधार पर साम्राज्य का पुनः संगठन करना संभव होगा और उससे भूतकाल की सभी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। भावी परिषद् के सुझावों के सम्बन्ध में भविष्यवाणी न करते हुए भी मैं अनुभव करती हूँ कि उसके द्वारा एक ऐसे 'राष्ट्रमण्डल' का जन्म होगा, जिसमें नीदरलैण्ड, इंडोनेशिया, सुरमाना और कुराकाओ पूर्ण आत्म-निर्भरता एवं आंतरिक व्यवस्था के लिए पारस्परिक स्वातंत्र्य-भावना के साथ भाग लेंगे। साथ ही वे एक दूसरे की परस्पर सहायता करेंगे।"

इस घोषणा से यह स्पष्ट है कि युद्धकाल की परिस्थितियों ने हिन्देशिया को अपने कामनवेल्थ में स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में ग्रहण करने को डच राष्ट्र को बाध्य किया। उस आश्वासन को कार्यरूप में परिणत करने में अब अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित की जा रही हैं! जिसका फल वह भीषण संघर्ष है, जो इस क्षेत्र को इतना महत्त्व दे रहा है। महारानी विल्हेल्मिना की घोषणा के अनुसार पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज देने में नीदरलैण्ड के साम्राज्यवादी संकोच का अनुभव कर रहे हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रिटेन का स्वार्थ, बर्मा के बाद प्रत्यक्ष रूप से मलाया और बोर्नियो में ही है! बर्मा पूर्णतः स्वतंत्र हो गया, पर अब तक मलाया और बोर्नियो के सम्बन्ध में स्वराज की

कोई घोषणा नहीं हुई। मलाया को भी आत्म-निर्णय के सिद्धान्तानुसार शासनाधिकार प्राप्त होना चाहिए।

'नीदरलैंड ईस्ट इंडीज' या हिन्देशिया की समस्या ही दक्षिण-पूर्व एशिया की उग्र समस्या है, क्योंकि इसकी आबादी सात करोड़ है। इसमें जावा (यवद्वीप—संस्कृत) सबसे समृद्ध और सघन है। रबर, शक्कर, सिनकोना, पेट्रोलियम, मैंगानीज और टिन के उत्पादन के लिए तो यह पूर्वकाल से ही विख्यात रहा है। इसी के व्यापार के लिए पहले पोर्तगीज और बाद में डचों का यहाँ प्रवेश हुआ था। बाली में अब भी हिन्दूधर्म का अवशेष पाया जाता है। अन्य द्वीपों में अब इस्लाम ही प्रमुख धर्म है। १५वीं सदी में इस्लाम का आगमन यहाँ हुआ और शीघ्र ही सारा देश उसकी तलवार के आगे झुक गया। जावा में लगभग एक लाख योरपियन हैं, जो वहीं जन्मे और पले हैं। चीनी ऐतिहासिक उल्लेखों से यह प्रमाणित है कि इस्लाम के पूर्व यह देश समृद्ध और सभ्य था, एवं शिक्षा और संस्कृति में पिछड़ा नहीं था। सुमात्रा, जावा और बाली के संस्कृत नाम और राजाओं के भारतीय नाम इस बात के सूचक हैं कि ये द्वीपसमूह भारत के निकट सम्पर्क में थे। डचों के ४०० वर्षों के शोषण और उपेक्षा ने देश को अशक्त और अशिक्षित बना दिया। सारा व्यापार और उद्योग विदेशी शासकों के हाथ में आ गया और प्रजा का रक्त चूसा जाने लगा। २०वीं सदी के बाद कुछ हिन्देशियों को उच्च शिक्षा मिली और प्रगतिशील राजनैतिक चेतना का उदय हुआ। १९३८ तक प्रजा को किसी प्रकार की सैनिक शिक्षा नहीं दी गई, कारण, देश की सुरक्षा का ध्यान ही नहीं था। डच समझते थे कि ब्रिटिश नौ-शक्ति के बीच यह देश पूर्णतः सुरक्षित है। सिंगापुर, मनीला और हांगकांग के त्रिकोण के बीच अवस्थित होने के कारण डच साम्राज्य सुरक्षित मान लिया गया, पर आक्रमण होने पर अरक्षित प्रजा ने जापानी आक्रामकों का जिस रूप में स्वागत किया, उसे देखकर शासकों की आँखें खुल गईं। विदेशी शासकवर्ग के प्रति विद्वेष-भाव इस राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण उदय हुआ और प्रजा ने राजनैतिक अधिकारों की माँग उपस्थित की। ग्रामीण प्रजा मुख्यतः खेतिहर है, और धान और गन्ने की खेती करती है। कल-कारखाने और उद्योग-धंधे विदेशी कम्पनियों के हाथों में हैं। चीनी का व्यवसाय बहुत उन्नति पर है। इसकी आय का अधिकांश योरपीयों की जेब में जाता है। खाद्यान्नों की खेती कम है; कारखानों में उपयोगी वस्तुओं की उपज अधिक होती है। कुनैन के उत्पादन का एकाधिकार इस क्षेत्र को प्राप्त है। इंगलैण्ड, अमेरिका और हॉलैण्ड की पूँजी खानों में लगी है और जावा-सुमात्रा के तेलकूपों का उद्योग लन्दन और न्यायार्क की पूँजी के बल पर समृद्ध है।

युद्ध के बाद १७ अगस्त, १९४५ को 'इंडोनेशिया रिपब्लिक' का जन्म हुआ। पाँच वर्ष के जापानी शासन के बाद राष्ट्रनेताओं ने स्वराज की घोषणा की। मुक्त वायु में स्वतंत्रता की पताका फहराई। पुनः डच सेनाओं के आगमन तक देश में पूर्ण शान्ति बनी रही; प्रजातंत्र और पुनर्निर्माण के नवजीवन का आरम्भ हुआ। आज देश में एक राज्य है, एक राजछत्र है और अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक सबमें स्वराज की रक्षा की तीव्र भावना वर्तमान है। हिन्देशियन भाषा राजभाषा स्वीकार की गई है। इस नवराष्ट्र ने भाषा, संस्कृति और अल्पसंख्या की समस्याओं का उचित समाधान निकाला है और प्रगति-पथ पर यह दृढ़ पद रखते हुए बढ़ रहा है। पर ३०० वर्षों तक आर्थिक दोहन करनेवाले डच साम्राज्यवादी अब भी इस देश को ललचाई आँखों से देख रहे हैं। डच पूँजी-पति अपने बड़े-बड़े कारखानों, ट्रस्टों और कार्टेलों-द्वारा अब भी हिन्देशिया के आर्थिक जीवन पर किसी-न-किसी रूप में अपना आधिपत्य बनाए रखना चाहते हैं। अतः 'हिन्देशिया सरकार' के विरुद्ध तरह-तरह के प्रवाद फैला कर डच साम्राज्यवादी वहाँ की आजादी को समाप्त कर देना चाहते हैं। डचों ने 'पुलिस कार्रवाई' के नाम पर हिन्देशिया पर पुनः अधिकार करने की चेष्टा की, और दमन अत्याचार का भीषण चक्र चलाया। जब संघर्ष बढ़ा तब संयुक्त राष्ट्रसंघ ने एक तीन सदस्यों का कमीशन स्थिति का अध्ययन करने के लिए भेजा। कई महीनों तक कमीशन ने भ्रमण कर एक लम्बी रिपोर्ट दी, पर वह दोनों देशों के बीच उत्पन्न वैमनस्य और संघर्ष को रोक नहीं सकी। इधर परिस्थिति जटिल ही होती गई। 'सुरक्षा परिषद्' का प्रस्ताव दोनों पक्षों को सन्तुष्ट करने का प्रयास मात्र कहा जा सकता है। पर उस प्रस्ताव को भी स्वीकार करने को डच तैयार नहीं है। हॉलैण्ड का कथन है कि डच सरकार और सुरक्षा परिषद्

में, इंडोनेशिया संयुक्त राज्य (United States of Indonesia) की स्थापना के लक्ष्य में कोई मतभेद नहीं है। मतभेद इसी को लेकर है कि इस अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचने की विधि क्या हो? सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव को भी स्वीकार न करने की प्रवृत्ति इस बात का सूचक है कि हॉलैण्ड इंडोनेशिया को पूर्ण स्वतंत्र देखने को तैयार नहीं है। भारत ने इंडोनेशिया की समस्या पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन दिल्ली में बुलाया था, जिसका प्रस्ताव इंडोनेशियाई स्वतंत्रता का समर्थक था। अब डचों ने हॉलैण्ड में एक गोलमेज परिषद् बुलाई है, जिसमें इंडोनेशिया के नेताओं को आमंत्रित किया गया है। किन्तु इंडोनेशिया के प्रतिनिधि नेताओं ने इस गोलमेज परिषद् में भाग लेना अस्वीकार कर दिया है, क्योंकि उनका कथन है कि वे समानता के आधार पर निमंत्रण स्वीकार कर सकते हैं। अब सुरक्षा परिषद् को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि उसका प्रस्ताव डच सरकार अमान्य न कर सके। इंडोनेशिया अपने स्वातंत्र्य की रक्षा के लिए कटिबद्ध है और वह किसी प्रकार का बन्धन मान नहीं सकता। भारत की पूर्ण सहानुभूति हिन्देशिया के साथ है और उसे बल देने के लिए ही हिन्देशिया सम्मेलन का आयोजन किया गया था।

ऊँटवाला

श्री सुरेन्द्र

उसे मैंने जब पहली बार देखा था, तब मैं स्वप्न में भी इस बात का विचार न कर सकता था कि किसी दिन उसके प्रति मेरे हृदय में आदर पैदा होगा और असीम प्रेम भी। मिट्टी से सने हुए बड़े-बड़े बाल, पीले दाँत, निकला हुआ पेट और बदन पर की एक लगोंटी, सभी तो गंदे थे। उस समय वह बैठा खाना खा रहा था और मैंने एक छोटे लड़के को, जो उसे परोस रहा था, उसके खाने को लेकर उसे चिढ़ाते सुना। बाद में मुझे उसके बारे में कुछ बातें मालूम हुईं। मेरे जमींदार मित्र रामनाथ ने, जिनके यहाँ वह नौकर था, उसे अनाथ पाकर अपने यहाँ रख लिया था। वह किसी बंजारे का लड़का था। उसका बाप पुलिस के हाथों डकैती करते मारा गया था और यह लड़का अनाथ होकर इधर-उधर भटकता फिरता था। ऐसे में मेरे मित्र रामनाथ की उस पर निगाह पड़ी। उन्हें उस पर दया आई और उन्होंने उसे अपने यहाँ रख लिया।

उन्होंने उसे साफ कपड़े पहनाए और स्कूल भेजा। स्कूल में उसे दूसरे लड़के छेड़ते, क्योंकि यह उनसे बहुत बड़ा था और उनके साथ पढ़ने जाता था। यह उनसे झगड़ता। हर शाम को जब यह घर आता, तब अक्सर कपड़े फटे होते और बदन में कई जगह चोटें लगी होतीं। मतलब यह कि कुछ ही दिनों में उसका स्कूल छूट गया और गाँव के बदमाश लड़कों से उसका साथ हो गया। रामनाथ ने उसे और भी कई दूसरी तरह से सुधारना चाहा लेकिन सब बेकार हुआ। उसे जंगल और ऊँटों से बहुत प्रेम था। यह संभवतः उसे विरासत में मिला था। सुबह खाना खाकर ऊँट लेकर वह जंगल में निकल जाता और शाम को वापिस आकर खाना खाकर सो जाता। रामनाथ ने उसका नाम शिवदत्त रख दिया था।

रामनाथ के तीन लड़के थे। दो घर पर ही जमींदारी का काम देखते थे और एक अभी पढ़ रहा था। बड़े का नाम पारख था, छोटे का समर्थ और तीसरे का तीर्थ। पारख शांत स्वभाव का लड़का था और समर्थ बहुत तेज-मिजाज। उस दिन पारख को कहीं जाना था, इससे उसने शिवदत्त से कहा कि ऊँट दो बजे ले आए। ऊँट दो बजे के बजाय हमेशा के समय आए। पारख ने थोड़ी डाँट दिलाई, लेकिन शिवदत्त हँसता हुआ खाना खाने चला गया। दूसरे दिन समर्थ ने उसे ऊँट जल्दी लाने को कहा क्योंकि वह शिकार खेलने जाना चाहता था। ऊँट वक्त पर आगए लेकिन फिर भी शिवदत्त की पिटाई हुई, क्योंकि समर्थ का ख्याल था कि वह देर से आया है और अगर उसकी पिटाई नहीं की गई तो हमेशा देर करेगा। मुझे समर्थ पर कुछ क्रोध-सा आया, लेकिन मुझे

याद आया कि किस तरह पारख के समझाने का उस पर कोई असर नहीं होता था। मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि वह लातों का देव है सिर्फ डण्डे की भाषा समझता है।

तीसरे दिन मैंने नौकरों में कुछ मारा-पीटी की आवाज सुनी। रामनाथ से इसके बारे में पूछने पर शिवदत्त के बारे में एक और बात मालूम हुई—शिवदत्त किसी को दिल भी दे सकता है। जग्गू रामनाथ का एक नौकर है और उसने रामनाथ की एक नौकरानी से शादी कर रक्खी है। इसी नौकरानी से शिवदत्त भी शादी करना चाहता है और ऐसा कई दफे जमना (नौकरानी) से कह भी चुका है। इसको लेकर जग्गू और शिवा में दो-चार दफे झगड़े भी हो चुके हैं और बेचारे जग्गू को कुछ दिन बिस्तर पर निकालने पड़े हैं। अब जब कभी शिवा जमना से कहता है कि "जग्गू को छोड़कर मुझसे शादी कर ले" तब जग्गू उसकी मजाक उड़ाकर ही संतोष कर लेता है। लेकिन फिर भी जग्गू कभी-कभी शिवा के क्रोध का शिकार हो जाता है क्योंकि जमना जग्गू से बहुत प्रेम करती है और जग्गू की जरा सी अप्रसन्नता उसे रुलाने के लिए काफी होती है। जब कभी शिवा को यह खबर हो जाती है कि जमना रो रही थी, तो वह समझता है कि जग्गू ने उसे पीटा होगा और फिर जब तक वह जग्गू को जमना को रुलाने के लिए पीट नहीं लेता, उसे चैन नहीं पड़ती। फिर इसकी खबर समर्थ को लग जाती और वह शिवा की पिटाई करता—पति-पत्नी के झगड़े में दखल देने के लिए और जग्गू को पीटने के लिए। लेकिन शिवा को अपनी पिटाई की कोई चिन्ता नहीं थी। जमना के रोने के बाद जग्गू को पीटना वह अपना धर्म समझता था और जग्गू को पीटने की रस्म वह जरूर पूरी करता फिर चाहे उसे स्वयं को कितना ही क्यों न पिटना पड़े। रामनाथ से यह सब सुनकर मुझे शिवा से कुछ दिलचस्पी-सी होने लगी, लेकिन मैं उससे मित्रता कर सकूँ, उसके पहले ही मेरी छुट्टी खत्म हो गई और मैं अपने काम पर चला आया। कुछ दिन में ही मैं शिवा को भूल गया।

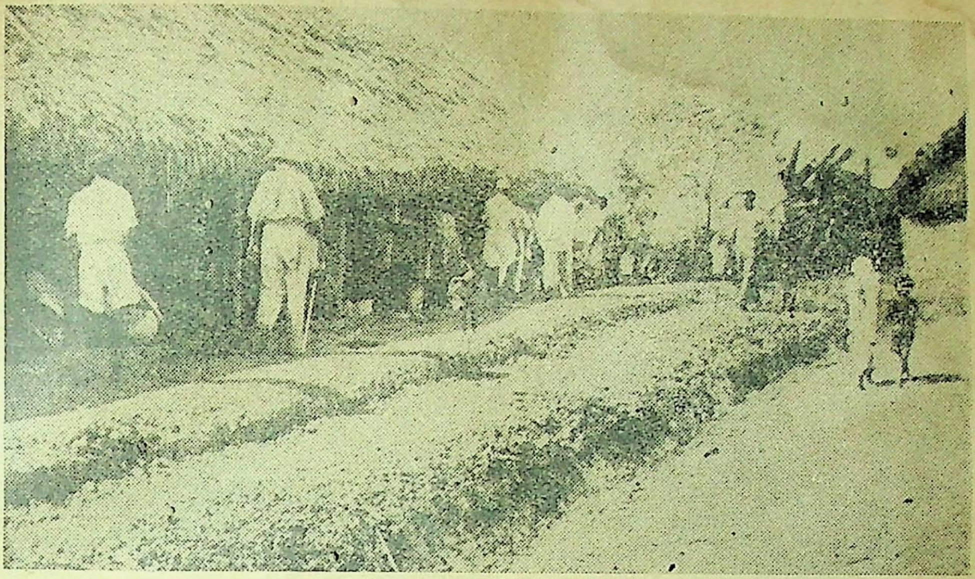
★ ★

मुझे रामनाथ के गाँव गए छः वर्ष होगए हैं यों मैं रामनाथ से इस बीच कई बार मिल चुका हूँ। पिछली बार जब मैं उनसे मिला था, तब उन्होंने कहा था कि मेरा स्वास्थ्य खराब मालूम पड़ता है और उन्होंने आग्रह किया कि मैं कुछ दिन उनके गाँव में बिताऊँ। मैं छुट्टी लेकर छः वर्ष के बाद फिर रामनाथ के गाँव पहुँचा।

गाँव में कोई विशेष परिवर्तन नहीं मालूम पड़ा। सिवाय इसके कि बच्चों की संख्या कुछ बढ़ गई थी। पारख, समर्थ और जग्गू सभी तो इस बीच में एक-एक, दो-दो बच्चों के बाप बन चुके थे। बच्चों की वजह से वहाँ काफी चहल-पहल थी। ऊँट अब भी उतने ही थे और समर्थ अब भी ऊँटों और बन्दूकों की तारीफ घण्टों किया करता था। ऊँटों को देखकर मुझे कुछ याद आ गया। वह ऊँटवाला कहीं दिखाई नहीं देता था। उसके और जग्गू के झगड़ों की याद आने से मुझे कुछ हँसी-सी आई और मैंने रामनाथ से पूछा कि 'शिवा कहाँ है।' जो जवाब मुझे मिला, उसके लिए मैं तैयार नहीं था। रामनाथ ने कहा, "शिवा मर गया है।" मुझे कुछ शोक-सा हुआ और मैंने शिवा का पूरा किस्सा जानना चाहा। मैंने जो कहानी सुनी, वह कुछ ऐसी है—

जमना से कभी-कभी शादी के लिए कहने के सिवाय भी शिवा एक और काम किया करता था और वह यह कि शाम को वह किसी ऐसी जगह बैठ जाता, जहाँ से वह जमना को देख सके। वह यहाँ तक बढ़ा कि वह कभी-कभी जमना के दरवाजे पर सबके सोने के बाद जाकर बैठ जाता, शायद इस आशा में कि जमना के कुछ शब्द उसके कानों में पड़ें। लेकिन वह ऐसा तभी करता, जब उसकी बेचैनी बहुत बढ़ जाती। इस तरह कभी-कभी उसके कानों में जग्गू और ज ना की प्रेमवार्ता भी पड़ जाती और इससे जमना के प्रति उसका आकर्षण और जग्गू के प्रति घृणा और भी बढ़ जाती। एक दिन वह ऐसे ही जग्गू के दरवाजे पर छिपकर बैठा था। उस दिन उसे उनकी प्रेमवार्ता न सुनाई दी, लेकिन गर्मागर्म वाद-विवाद सुनाई दिया-कुछ झगड़ा-सा। कारण था जमना के लिए कुछ जेवर बनाने के जग्गू के वादे का पूरा न होना। उन दोनों में कुछ झगड़ा-सा हो गया।

इससे शिवा को बड़ी खुशी हुई। उसे और भी खुशी हुई, जब उसने देखा कि जग्गू और जमना कुछ खिंचे-खिंचे से रहते हैं। इसको उसने अपने लिए ईश्वर-दत्त अवसर समझा। उसने सोचा कि बस थोड़े रुपयों की जरूरत है और जमना उसकी हो सकती है। मूर्ख शिवा! आखिर ऊँटवाला ही तो था। उसे क्या पता कि प्रेमियों



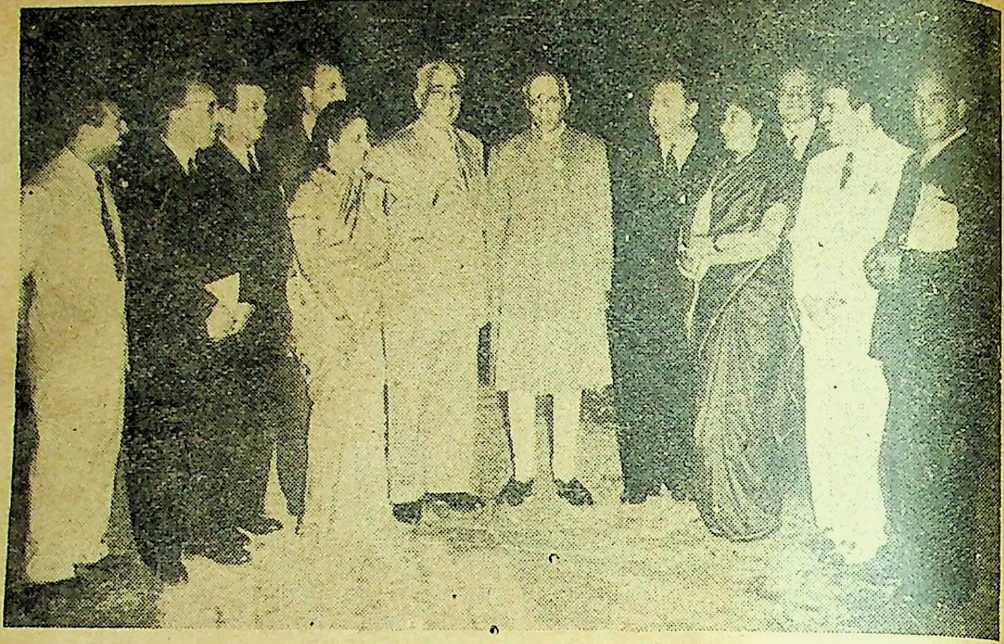
अस्थायी वासस्थान

शरणार्थियों के रहने के लिए अस्थायी रूप से झोपड़ियाँ बना दी गई हैं। बाद को वे निजी भूमि पर निजी मकान बना सकेंगे।



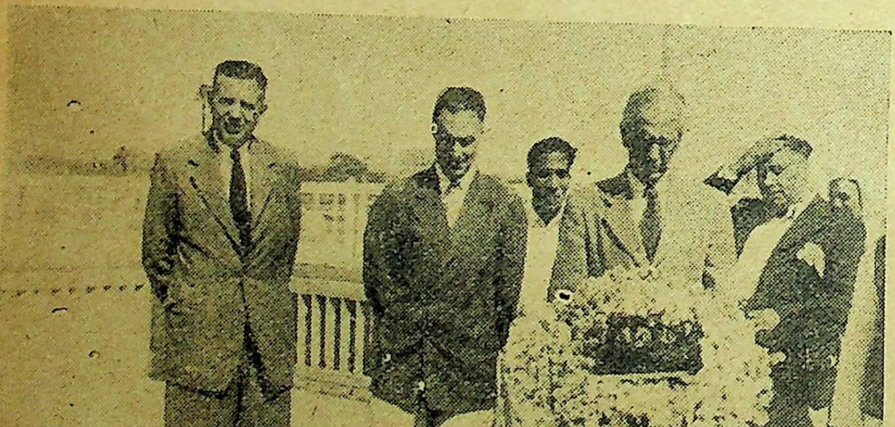
भोजन

शरणार्थी-केन्द्रों में शरणार्थियों को भोजन प्रदान किया जाता है। चित्र में एक ऐसे ही केन्द्र का दृश्य अंकित है जब कि स्वयंसेवक शरणार्थियों को भोजन करा रहे हैं।



पंडित नेहरू और मिस्र के पत्रकार

अभी हाल में मिस्र से पत्रकारों का एक दल भारत-भ्रमण के लिए आया था। चित्र में उसी दल के बीच में पंडित नेहरू दिखाई दे रहे हैं।



श्रद्धाञ्जलि

दिल्ली के राजघाट में रूटर के सद्भावना-दल के प्रमुख लार्ड लिटन गांधीजी की समाधि पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं।

के झगड़े जल्द ही निपट जाते हैं और ऐसे झगड़ों के बाद उनका प्रेम और प्रगाढ़ हो जाता है। उसे बस एक धुन सवार हो गई, किसी तरह से कुछ रुपए हथियाना और वह इसी चिन्ता में रहने लगा।

उसके दो-तीन दिन बाद ही वह गाँव की दुकान पर अपने लिए बीड़ी लेने गया। उसने देखा कि सेठ कुछ रुपए गिन रहा था। उसने पहले भी उसे इस तरह रुपए गिनते कई बार देखा था और कुछ खयाल नहीं किया था। लेकिन आज उसे सेठ की उस हरकत से कुछ खास दिलचस्पी हुई। रात को दो बजे के करीब वह उस दुकान में घुसा और वे रुपए चुरा लिए। डेढ़ सौ रुपए! उसे यह बहुत बड़ी रकम मालूम हुई और अपने और जमना के भविष्य के सुनहरे सपने देखते उसने जमना के दरवाजे के सामने बैठकर कुछ घण्टे बिताए।

जग्गू सुबह जल्दी उठकर काम पर चला जाया करता था। उसके जाते ही वह उसके मकान में घुसा और जमना को रुपए बताते हुए उससे भाग चलने का प्रस्ताव किया। वह अवाक् रह गई शिवा की अपने प्रति तत्परता देखकर। उसकी समझ में नहीं आता था कि वह किस तरह इस मूर्ख ऊँटवाले को समझाए कि वह कभी उसकी होकर नहीं रह सकती। शिवा ने उससे सारा किस्सा कह सुनाया कि किस तरह उसने उसी के लिए वे रुपए चुराए हैं। जमना ने साफ शब्दों में उससे कहा कि 'वह जग्गू को कभी नहीं छोड़ सकती है' और यह भी कि उसकी इस चोरी से उनके मालिक की बदनामी का डर है इससे वह इस बारे में उनसे फौरन कहेगी। शिवा बहुत डरा क्योंकि वह पुलिस के नाम से ही घबराता था। और जाने क्यों उसे एकदम ऐसा मालूम होने लगा कि उसकी इस सब मुसीबत का कारण जग्गू ही है। उसे जग्गू पर बड़ा क्रोध आया और अपने इस क्रोध में वह पुलिस का डर भी भूल गया। वह जग्गू की तलाश में खेतों की ओर चला।

जिस खेत पर जग्गू काम कर रहा था, उसके पास से जब एक दूसरे किसान की स्त्री निकली तो उसने देखा कि जग्गू खून में सना खेत के किनारे पड़ा था और शिवा पास में बैठा बीड़ी पी रहा था, शायद इस आशा में कि जग्गू के होश में आने पर उसकी फिर मरम्मत करे। जग्गू की नाक, घुटनों और कोहनियों से काफी खून निकल रहा था और जाने क्यों वह समझी कि शिवा ने उसे मार डाला है। और उसने इसी आशय के शब्दों में चिल्लाना शुरू कर दिया। शिवा ने अपने विचारों से निकलकर जग्गू की ओर देखा। जग्गू बिलकुल चुपचाप, निर्जीव-सा पड़ा था। औरत बड़ी जोरों से चिल्ला रही थी। खून और जग्गू का निर्जीव-सा शरीर देखकर शिवा को विश्वास हो गया कि उसने खून कर डाला है। उसने सुन रक्खा था कि खून करने पर आदमी को फाँसी दे दी जाती है। वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ। चोरी किए हुए डेढ़ सौ रुपए उसके पास थे। वास्तव में जग्गू चोटों से सिर्फ बेहोश ही हुआ था, उसके मरने का कोई डर नहीं था।

फिर चार साल तक शिवा का कोई पता नहीं चला। चार वर्ष बाद एक दिन गाँव के लोगों ने एक अजनबी को गाँव में घूमते देखा। वह एक ठीक-सा सूट पहने हुए था और आँखों पर धूप से बचने के लिए एक बड़ा-सा रंगीन चश्मा लगाए था। उसके बात करने के ढंग से ऐसा मालूम होता था कि वह शहर के किसी कालेज या स्कूल का लड़का है, जो गाँववालों से गाँव की भाषा में बात करने का प्रयत्न कर रहा है। किसी को यह भाव भी नहीं हो सकता था कि यह अजनबी चार साल पहले का शिवा ही है।

वह गाँववालों से, विशेष कर किसानों से मिलकर उनके सुख-दुख जानने का प्रयत्न करने लगा। शहर के लड़के अक्सर ऐसा ही किया करते थे, इससे किसी ने खास ध्यान नहीं दिया। ऐसे में ही उसने जग्गू को देखा। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। जग्गू को मरा समझकर ही तो वह भागा था। वह उसके पास गया और उससे बातें करने लगा। बातों में ही उसने पूछा कि उसके चेहरे पर यह एक-दो जख्मों के निशान कैसे हैं—'शायद तुम्हारे मालिक बहुत दुष्ट हैं और तुम्हें पीटते हैं?" जग्गू उसे शहर के किसी रईस का लड़का समझ रहा था, जो अक्सर अपना समय बिताने गाँवों में आया करते हैं। और उसे उम्मीद थी कि अगर उसकी बातों से बाबू खुश हो गए तो उसे काफी इनाम देंगे। शिवा ने जग्गू के लिए कुछ बीड़ी के बण्डल खरीदे और आप सिगरेट पीते हुए जग्गू का किस्सा सुनने लगा। जग्गू ने कहा कि किस तरह कुछ वर्ष पहले एक

ऊँटवाला उसके मालिक के यहाँ काम करता था। उसने कहा—"वह एक अनाथ लड़का था। इससे सब उस पर दया-सी करते थे और यद्यपि वह बहुत-सी गलतियाँ और बदमाशियाँ करता, मालिक उसे कुछ नहीं कहते थे। मालिक की इस रियायत का उसने नाजायज फायदा उठाया और गाँव के बदमाशों की संगत में पड़ गया। आखिर उसने एक दिन एक सेठ के यहाँ चोरी की और मेरी स्त्री को भगा ले जाने की कोशिश करने लगा। मुझे इसकी खबर लगी और यद्यपि मैं उसे मूर्ख समझता था और उस पर दया करता था, मैं अपने क्रोध को न रोक सका। आखिर मैंने उसे अकेले में ढूँढ़ा और उसकी अच्छी तरह पिटाई करने लगा। मुझे इतना क्रोध आ रहा था कि मैं उसे मार डालता। लेकिन अच्छा ही हुआ, मैं ऐसा नहीं कर सका, क्योंकि गाँव के उसके दो बदमाश दोस्त आ पहुँचे। इन तीनों से एक साथ लड़ने में ही मेरे चेहरे पर यह जख्म हो गए। कुछ देर बाद वे भाग गए। गुण्डों में हिम्मत थोड़े ही होती है। उनके भागने के बाद मैं बेहोश हो गया।" जग्गू चुप हुआ और बीड़ी के दम लगाता हुआ कुछ सोचने लगा, शायद अपने उस पराक्रम के चित्र फिर देख रहा था। शायद वह चाहता था कि उसके पराक्रम की कहानी ठीक तरह से बाबू के दिमाग में बैठ जाए। 'बाबू' के होठों पर हल्की-सी मुस्कराहट नाच रही थी। कुछ देर चुप रहने के बाद जग्गू ने फिर कहा—"बेचारा शिवा! मुझे उस पर दया आती है। कुछ तो मेरे डर से और कुछ पुलिस के डर से (क्योंकि उसने चोरी भी की थी) वह गाँव छोड़कर भाग गया। लोग कहते हैं वह शहर गया था। उस सरीखे मूर्ख लड़के का इस दुनियाँ में क्या हुआ होगा? बेचारा या तो रेल-गाड़ी के नीचे कट गया होगा या मोटर से टकराकर मर गया होगा। उसने शहर देखे ही कहाँ थे? मुझे तो बड़ा अफसोस हुआ उसे पीटकर और मैंने उसे कभी का क्षमा कर दिया है। यद्यपि मेरी घरवाली को उसने इतना अपमानित किया था, उसने भी उसे क्षमा कर दिया है। वह बेचारी तो अपने को ही दोष देती है, कहती है कि उसे चाहिए था कि वह उसे बच्चों की तरह समझाती और उसे डराती नहीं। कभी-कभी वह उसकी याद कर एक-दो आँसू भी बहा देती है। मालिक ने तो उसके भागने के बाद ही सेठ से कह-सुनकर चोरीवाला मामला दबवा दिया था। जिससे शिवा के नाम का 'वारण्ट' न निकले और उसे परदेश में कष्ट का सामना न करना पड़े। मालिक अब भी उसकी याद किया करते हैं। उनकी उस पर बहुत मेहरबानी थी।...." शिवा कुछ देर तक और जग्गू की बातें सुनता रहा फिर उसने एक रुपया जग्गू को बच्चों की मिठाई के लिए देकर बिदा किया।

शिवा उस दिन वापिस शहर लौट गया और दूसरे दिन अपना सामान लेकर रामनाथ के यहाँ पहुँचा। रामनाथ ने पहले तो उसे पहचाना ही नहीं, लेकिन कुछ देर उससे बातें करने के बाद उन्होंने उसे पहचाना और ठहाका मारकर हँसने लगे। रामनाथ शिवा को आप कह-कर सम्बोधित कर रहे थे और शिवा उन्हें 'हजूर' कह कर। रामनाथ को इससे जाने क्यों हँसी आई? शिवा उनके यहाँ मेहमान की तरह रहने लगा।

शिवा गाँव से भागकर फौज में भर्ती हो गया था। उसने सुन रक्खा था कि लड़ाई हो रही है और सरकार को बहुत आदमियों की जरूरत है। उसने यह भी सुन रक्खा था कि बहुत से खूनी बदमाश फौज में भर्ती हो जाते हैं और उनका पुलिस कुछ नहीं कर सकती। फौज में उसे मोटर चलाना सिखाया गया और वह फौजी ड्राइवर हो गया। अब वह ऊँटवाला शिवा न रहा। अब वह बहुत चुस्त और अपने समय और काम का पाबन्द हो गया। फौजी वर्दी उसे खूब जँचती थी। किसी बड़े अफसर की उस पर निगाह पड़ गई और वह उनका ड्राइवर बना लिया गया। थोड़ा बहुत पढ़ना-लिखना तो वह ट्रेनिंग के बाद ही सीख गया था लेकिन साहब के पास रहकर तो वह बिलकुल ही बदल गया। अब वह हिन्दी अच्छी तरह पढ़ लेता था और अँगरेजी भी टूटी-फूटी बोल और लिख सकता था। अब उसमें बात करने की और कपड़े पहनने की भी काफी समझ आ गई थी।

शिवा 'रिलीज' होनेवाला था इससे रामनाथ ने कहा कि वह रिलीज के बाद उनके यहाँ आ जाए, क्योंकि वे एक ट्रक जमींदारी के काम के लिए खरीदनेवाले हैं और उसे चलानेवाले की जरूरत पड़ेगी। शिवा ने इसे स्वीकार कर लिया। वह 'रिलीज' लेकर आ गया और रामनाथ की ट्रक चलाने लगा। और भी कुछ जिम्मेदारी के काम रामनाथ उसे दे दिया करते थे।

जमना के प्रति उसके भाव अब भी वैसे ही थे। अवसर मिलते ही उसने जमना से बात की और उससे कहा—"मैं तेरे पीछे ही फौज में भर्ती हुआ। तुझसे अब भी उतना ही प्यार करता हूँ, जितना पहले करता था। मैंने एक-एक क्षण का उपयोग अपने को तेरे योग्य बनाने में किया है, जिससे तुझे मेरे कारण से दूसरों के सामने शरमिन्दा न होना पड़े। जाने क्यों मुझे यह दृढ़ विश्वास था कि कभी-न-कभी तू मेरी जरूर होगी और मेरा विश्वास अभी उतना ही पक्का है। मैंने एक-एक कौड़ी बचाई है, जिससे मैं तुझे सुखी बना सकूँ। मेरे पास अब करीब दो हजार रुपए हैं। मैं खूब समझ सकता हूँ चार-पाँच वर्ष पहले तू क्यों मुझे न अपना सकी। लेकिन अब बात बिलकुल ही बदल गई है। मैं आशा करता हूँ कि अब तू मेरी बात स्वीकार करेगी।"

जमना ने कहा "मैं जिसके साथ इतने वर्षों से रही हूँ, उसी के साथ रहूँगी। मुझे बड़ी खुशी है कि तुमने अपनी जिन्दगी सुधार ली और मैं आशा करती हूँ कि तुम अपनी शादी किसी अच्छी लड़की से करके अपना घर जमाओगे। मेरी तरफ से तुम बिलकुल आशा छोड़ दो।"

जग्गू का मकान रामनाथ के बँगले से कुछ हटकर था। एक काफी बड़ा सा दालान था, जिसके चारों तरफ कच्चे मकान बने हुए थे। इसमें पहले सिर्फ रामनाथ के ढोर रहा करते थे। लेकिन जग्गू की शादी हो जाने के बाद इसका एक तरफ का हिस्सा मरम्मत करवाकर जग्गू को रहने के लिए दे दिया गया। दूसरे हिस्सों में अब भी ढोर बाँधे जाते थे और घास-ईंधन आदि भी रक्खे जाते थे। यह दालान चारों तरफ से इन ढोरों के मकानों से घिरा था। सिर्फ एक तरफ एक बड़ा दरवाजा आने-जाने के लिए था।

शिवा के रिलीज लेकर आने के कुछ माह बाद का किस्सा है। गर्मी के दिन थे, इससे जग्गू और उसके बाल-बच्चे दालान में ही सोते थे। कुछ ढोर भी एक ओर दालान में बँधते थे। एक दिन जग्गू हमेशा के माफिक जल्दी उठा और अपनी चिलम भरकर पीने लगा। कुछ देर बाद वह अपनी चिलम औंधी कर बाहर चला गया। ऐसा वह हमेशा से करता आया था और कभी कुछ नहीं हुआ था। लेकिन दैवयोग से इस दिन उस चिलम की एक चिनगारी घास में जा लगी। एक गाय भड़की और खूँटे से छूटने का प्रयत्न करने लगी। खूँटा उखड़ते ही वह दरवाजे की ओर भागी। उसके भागने से जलती घास की चिनगारियाँ घास के दूसरे ढेरों में पड़ीं। और दालान में आम भगदड़ मच गई। दरवाजा अन्दर की ओर खुलता था इससे कोई ढोर बाहर न निकल सका। इस भगदड़ के शुरू होने पर जमना की नींद खुली। चारों तरफ आग देखकर उसके होश गायब हो गए। उसने अपने बच्चे को उठाया और चाहा कि उस दालान से निकल भागे लेकिन वह ऐसा न कर सकी। उसके पहले ही गायों की एक छोटी टोली उधर भागती हुई आई और उससे टकरा गई। बच्चा उसके हाथ से गिर गया और उसे बचाने की कोशिश में वह स्वयं गिर गई। गाएँ उसे रौंधती हुई निकल गईं। बेचारी जमना पहले ही घबराई हुई थी। अब वह बेहोश हो गई।

रामनाथ के बँगले के ऊपरी हिस्से से जग्गू का दालान साफ दिखाई देता था। आग लगी देखकर वहाँ कुछ औरतें और बच्चे खड़े जग्गू के मकान में देख रहे थे। उन्होंने जमना का गायों से रुँध जाना देखा और इसकी खबर फौरन उन आदमियों में पहुँची, जो जग्गू के मकान के सामने खड़े आग बुझाने का प्रयत्न कर रहे थे। जब तक ये लोग इकट्ठे हुए, आग उस मकान के घास और ईंधन से भरे सब घरों में फैल चुकी थी और दरवाजे से भी लपटें निकल रही थीं। जब उन्हें जमना के अन्दर ही रह जाने की खबर मिली तो उनके मुँह से निराशा और दुःख की एक चीख निकली क्योंकि जमना को बचाना असम्भव-सा दीखता था। वे लोग कुएँ से पानी खींच-खींचकर इधर-उधर फेंककर आग बुझाने का प्रयत्न कर रहे थे। लेकिन ईंधन और घास-भरे मकान में लगी आग भी कहीं बालटियों से बुझी है। उनकी बालटियाँ तो दरवाज़े की आग बुझाने में भी सफल नहीं हुईं। असहाय खड़े इस दुःखद दृश्य को देखने के सिवा वह और क्या कर सकते थे?

लेकिन उनके बीच एक ऐसा युवक भी था, जिसने इन लपटों से हार मानना स्वीकार न किया। उसे एक दो बार फौज में भी आग से लड़ने का काम पड़ा था और वह ऐसे अवसर पर घबराता नहीं था। लोगों ने देखा कि वह अपने फौजी बूट पहने हाथ में कुल्हाड़ी लिए दीवाने

की तरह दरवाजे की ओर बढा और उससे पिल पड़ा। दरवाजा काफी जल चुका था और एक दो चोटों में ही उसका कुछ हिस्सा गिर गया और उसके जाने इतना रास्ता हो गया। दरवाजा टूटते ही ढोर उससे निकलकर भागने लगे और उनसे बचता हुआ वह उस दालान में घुस गया। दूसरे किसी का उन लपटों में होते हुए अन्दर जाने का साहस न हुआ। कुछ क्षणों के बाद ही लोगों ने उसे वापिस आते देखा। उसके हाथों में जमना थी। लोगों ने आगे बढ़कर उसे शिवा के हाथों से ले लिया। उसका शरीर कई जगह जल गया था और कपड़े भी कई जगह से जल रहे थे। लोग बाग जमना की शुश्रूषा करने लगे और शिवा यह कहता हुआ कि "बच्चा तो शायद चल बसा है लेकिन फिर भी देखता हूँ।" लोग उससे कुछ कह सकें, उसके पहले ही वह फिर अन्दर घुस गया।

दरवाजा अब तक करीब-करीब जल चुका था। लोग उस पर लगातार पानी डाल रहे थे, इससे उस जगह की आग भी कुछ कम हो गई थी। इस बार शिवा को वापिस आने में देर हुई, इससे लोग घबराए। थोड़ी देर में ही वह गाँववालों का प्रिय हो गया था। तीन युवक हिम्मत कर शिवा की मदद को अन्दर घुसे। उन्होंने देखा कि शिवा दालान के बीच, बच्चे के पास बेहोश पड़ा है। उन्होंने दोनों को कुछ मुश्किल के बाद बाहर निकाला। शिवा का मुँह और हाथ वगैरह बुरी तरह जल गए थे। बच्चा मर चुका था।

रामनाथ जमना को देखते ही अपनी मोटर लेकर डाक्टर को बुलाने शहर चले गए क्योंकि जमना की हालत ऐसी न थी कि उसे इतनी दूर ले जा सकें। करीब डेढ़ घण्टे में वे डाक्टर को लिए वापस आए। डाक्टर ने जमना और शिवा की मरहम-पट्टी की। शिवा के बचने की डाक्टर को कोई उम्मीद नहीं थी। कुछ देर बाद उसे होश आया। डाक्टर ने उससे कहा, "शाबाश! तुमने इस औरत की जान बचा ली है", और जमना की तरफ इशारा किया। उसके चेहरे पर एक मुस्कराहट दौड़ गई, उसके होठ कुछ हिले। डाक्टर का मुंह उसके चेहरे के पास था और उसने सुना था, "मैंने उसे बता दया है कि मैं उससे कितना प्यार करता हूँ।" उसने उठकर जमना की ओर देखना चाहा लेकिन वह एक कोहनी के बल थोड़ा ही उठ पाया था कि पीड़ा से फिर बेहोश हो गया। उसे फिर होश न आया। यही उस ऊँटवाले की कहानी है और इसे सुनकर मुझे उतनी ही वेदना हुई, जितनी अपने किसी आत्मीय के दुःखद अन्त को सुनकर होती।

भारत में सिंचाई की महत्त्वपूर्ण योजनाएँ

श्री उमाशंकर

भारतवर्ष में जलशक्ति अपरिमित है। यहाँ संसार में सबसे अधिक नहरें है। पर सिंचाई में काफी कमी है। इस का परिणाम है कि बहुत से प्रदेश ऐसे हैं, जो सिंचाई का प्रबन्ध न होने के कारण ही अधिक अन्न उपजाने में असमर्थ हैं। पंजाब को छोड़कर अभी तक यहाँ की खेती के भाग्य का निपटारा मानसून ही करता रहा है। हम केवल .६ प्रतिशत जलशक्ति का ही उपयोग कर पाते हैं। ६४ प्रतिशत जल बहकर बरबाद हो जाता है। टनों पानी बहकर समुद्र में चला जाता है। हिमालय प्रवाहों का उपयोग ठीक से नहीं हो पता। इस समय ३४,१०,००,००० एकड़ खेती की जमीन में से केवल ६,००,००,००० एकड़ जमीन सींची जाती है। गंगा घाटी में ३,५०,००,००० एकड़ जमीन में से १०,०० ००० एकड़ खेती की जमीन की इस समय सिंचाई होती है। जिन जमीनों की उचित सिंचाई नहीं होती, उनकी उत्पादन-शक्ति बहुत ही कम रहती है। अतः जल-प्रवाहों के अपरिमेय स्रोतों का किसानों के लाभ के लिए उपयोग करने का अपरिमित क्षेत्र है।

सस्ता विद्युत्-शक्ति का विकास भी आर्थिक दृष्टि से लाभजनक है। संयुक्तप्रान्त में पम्प सिंचाई के विकास के कारण जल-विद्युत्-शक्ति के उत्पादन में काफी विकास हुआ है। जल-विद्युत्-शक्ति के विकासकार्य का आरम्भ सन् १८६७ में हुआ था, पर अभी तक देश की आवश्यकता के १.५ प्रतिशत की पूर्ति हुई है। लगभग

गत १० वर्षों में प्रत्येक देश ने अपनी जल-विद्युत्-शक्ति में काफी वृद्धि की है। पर भारत में उसकी वृद्धि नहीं के बराबर रही है। अन्न-उत्पादन को दृष्टि में रखकर हम यह अनुमान करने लगे हैं कि जल-विद्युत्-शक्ति में काफी वृद्धि की आवश्यकता है। 'अन्न-उत्पादन' पर एक निबन्ध पढ़ते हुए भारत सरकार के भूतपूर्व सिंचाई-सलाहकार सर विलयम स्टाम्पे ने 'ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन' में कहा था-'आबादी के एक तिहाई भाग का आहार स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक आहार का दो तिहाई है। निरन्तर आयत की ओर नहीं रहा जा सकता। इसका तात्कालिक हल यह है कि भारत के विशाल जल-स्रोतों का भूमिगत और ऊपरी दोनों का, जिसका अधिकांश भाग अभी तक अविकसित है, उपयोग किया जाए। जल-विद्युत्-शक्ति का विकास आर्थिक दृष्टि से लाभजनक है, जैसे कि ५० पी० में पम्प-सिंचाई के विकास से उत्पन्न हुआ है। निम्नतम शक्ति भी गाँवों में फैलाई जा सकती है और सिंचाई के साथ-ही-साथ कृषि और उद्योगों का विस्तार किया जा सकता है।"

भारतीय सरकार के पास विकास की काफी योजनाएँ हैं पर उन सभी योजनाओं में सिंचाई की योजना प्रमुख है और सस्ती जल-विद्युत्-शक्ति' का उत्पादन राष्ट्र के उत्थान के लिए आवश्यक अंग बन गया है। इन योजनाओं को सफल बनाने में सरकार चेष्टाशील है।

अब तक सिंचाई का काम नहरों, तालाबों और कुँओं से लिया जाता रहा। नहरों की ख़ास शिकायत रही है कि पानी समय पर नहीं मिलता और जहाँ तालाबों से सिंचाई होती है, वहाँ के भाग्य का निपटारा भी वर्षा और गरमी ही करती है। सबसे सुरक्षित सिंचाई का साधन कुँआ है। पर नवीन योजनाओं में पानी के अभाव की शिकायत न रहेगी। ये योजनाएँ बहु-विषयक हैं, इनमें लाखों टन बरबाद होनेवाले जल की सुरक्षा, सिंचाई का प्रबन्ध, पानी की निकासी, जल-विद्युत्-शक्ति में वृद्धि, बाढ़-नियंत्रण आदि की व्यवस्था की गई है। कहीं-कहीं तो इन योजनाओं के द्वारा मनोरंजन के साधन भी काफी प्रस्तुत हुए हैं; जैसे कि मद्रास में मेदूर बाँध और मैसूर कृष्ण राजसागर बाँध। मेदूर बाँध ३३ मील लम्बा और ४॥ मील चौड़ा है। दिलबहलाव का बहुत ही सुन्दर स्थान है। कृष्णराजसागर बाँध पर सदैव ही एक मेला-सा लगा रहता है।

आसाम

आसाम में जल-विद्युत्-शक्ति उत्पन्न करने की अपरिमित क्षमता है। यह अनुमान किया जाता है कि वहाँ ४० लाख किलोवाट जल-विद्युत्-शक्ति उत्पन्न की जा सकती है। योजनाएँ चल रही हैं। प्रायः सभी योजनाएँ बहु-विषयक हैं। इसमें व्यवस्था सिंचाई की, पानी की निकासी की और बाढ़-नियन्त्रण की है। इन योजनाओं के पूरी होने पर अच्छे धान की खेतीवाली ३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी और प्रति बीघा १५ मन धान उपज सकेगा --जहाँ आजकल बिना सींचे हुए खेतों में ५ मन तक और सींचे हुए खेतों में ७ से ८ मन तक धान होता है। औद्योगिक तथा घरेलू आवश्यकताओं के लिए बहुत अंश में बिजली की कमी की पूर्ति भी इन योजनाओं से हो जाएगी।

बिहार

बिहार में अनेक योजनाएँ चल रही हैं। यहाँ दो तरह की योजनाएँ हैं। एक बड़ी योजना और दूसरी छोटी योजना। बड़ी योजनाओं के अन्तर्गत कोसी और दामोदर घाटी योजना है और छोटी योजनाओं के अन्तर्गत साकरी नहर की योजना है। चौरों से पानी की निकासी की और ८ योजनाएँ और सिंचाई की १२ योजनाएँ शीघ्र शुरू की जानेवाली हैं।

दामोदर घाटी योजना के पूरी होने पर ३ लाख किलोवाट जल-विद्युत्-शक्ति उत्पन्न होगी। इससे ७,५०,००० एकड़ जमीन की सिंचाई होगी। सिंचाई के अतिरिक्त लोगों की ६ करोड़ वार्षिक आमदनी बढ़ जाएगी। दामोदर नदी के द्वारा प्रतिवर्ष बरबादी आती रही है, यह योजना पूरी हो जाने से बाढ़ पर नियंत्रण रहेगा और देश बरबादी से बच जाएगा। इस योजना को कार्यान्वित करने में ५५ करोड़ रुपए का खर्च है। इस योजना का कार्य-संचालन दामोदर वेली कारपोरेशन के द्वारा हो रहा है। अभी कारपोरेशन का कार्यालय कलकत्ते में है, पर शीघ्र ही बिहार में आनेवाला है।

कोसी योजना भी एक बहु-विषयक योजना है। अभी कोसी-योजना के सम्बन्ध में केन्द्रीय नदी-सिंचाई और जल-यातायात कमीशन ने प्रान्तीय सरकार के सक्रिय सहयोग से जाँच-पड़ताल आरम्भ की है। इस योजना को पूरा

करने में अनुमान किया जाता है कि ६० करोड़ रुपया खर्च करना पड़ेगा। यह योजना १० वर्ष में पूरी होगी। इस योजना में यह व्यवस्था की गई है कि ७५८ फीट ऊँचाई पर एक बाँध बाँधा जाएगा। इससे ३० लाख एकड़ जमीन की सिंचाई होगी और १३ लाख किलोवाट जल-विद्युत्-शक्ति उत्पन्न होगी।

साकरी नहर की योजना यों तो दामोदर घाटी योजना और कोसी योजना से बहुत ही छोटी योजना है, पर है बहुत ही महत्त्वपूर्ण। इस योजना में १६ लाख ३७ हजार रुपये खर्च होंगे। यह लगभग दो वर्षों में पूरी होगी। कहा जाता है कि इस योजना के पूरी होने पर अच्छे धान की खेतीवाली ५० हजार एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। गंडक घाटी योजना अभी जाँच-पड़ताल की क्रिया में है। कहा जाता है कि इस योजना में ३ करोड़ रुपए खर्च होंगे और पूरी होने पर ६ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई इससे होगी।

बंगाल

बंगाल भी बहुत अंश में दामोदर घाटी योजना से लाभान्वित होगा। पर इस योजना के अतिरिक्त बंगाल में अपनी भी प्रान्तीय सरकार-द्वारा आयोजित कई योजनाएँ हैं। 'मेसनजूर' में एक बाँध बाँधने की योजना है और मोराची में एक नहर निकालने का प्रयास किया जाता है। इस नहर से ६ लाख एकड़ जमीन की सिंचाई हो सकेगी। लाखों टन पानी, जो हर वर्षा बरबाद हो जाता है, उसकी रक्षा बाँध के द्वारा हो सकती है। इसके अतिरिक्त जल-विद्युत्-शक्ति की उत्पत्ति में भी वृद्धि होगी। इस योजना को कार्यान्वित करने में ४ करोड़ रुपए का खर्च है।

एक जल-विद्युत्-शक्ति योजना दार्जिलिंग जिले में चल रही है। अनुमान किया जाता है कि गरमी के दिनों में १०,००० किलोवाट और वर्षाकाल में ३३,००० किलोवाट जल-विद्युत-शक्ति उत्पन्न हो सकेगी। अनुमान किया जाता है कि बंगाल के चाय बगान के लिए जितनी जल-विद्युत्-शक्ति की आवश्यकता है, उसकी पूर्ति केवल इसी योजना से हो सकती है। कुछ और भी छोटी-छोटी योजनाएँ हैं, जो अभी जाँच-पड़ताल की क्रिया में हैं।

उड़ीसा

केन्द्रीय नदी-सिंचाई और जल-यातायात-कमीशन के द्वारा आयोजित महानदी घाटी योजना के अन्तर्गत तीन योजनाएँ हैं—हीराकुण्ड बाँध योजना शिकारपुर बाँध योजना तथा नारंग बाँध योजना। ये तीनों योजनाएँ अपने विकास और कार्यक्रम में स्वतन्त्र हैं, तीनों के अन्तर्गत नहर-निर्माण और जल-विद्युत्-शक्ति की व्यवस्था की गई है। हीराकुण्ड योजना का कार्य आरम्भ हो गया है। कहा जाता है कि इस योजना के पूरी होने पर १,०६४,६५३ एकड़ जमीन की सिंचाई होगी और प्रति बीघा २० मन एकड़ धान की उपज होगी, जहाँ आज ७ से ८ मन होता है। अतः खाद्य में लगभग ३,४०,००० टन तक की वृद्धि होगी। ३,५०,००० किलोवाट जल-विद्युत्-शक्ति की उत्पत्ति होगी। इस योजना में ४७-८१ करोड़ रुपए का खर्च पड़ रहा है।

सन् १९४६ में मद्रास और उड़ीसा सरकार ने मिलकर माचाकुण्ड नदी में दुदुमा प्रपात के पास एक जल-विद्युत् शक्ति उत्पन्न करने की योजना बना ली थी। अब तक जाँच-पड़ताल की क्रिया में उक्त योजना थी, पर अब उसे कार्यान्वित करने का प्रयास हो रहा है। ८ करोड़ रुपए का खर्च है। मद्रास और उड़ीसा सरकार इस योजना के खर्च को वहन करेगी। तय यह हुआ है कि ७० प्रतिशत मद्रास खर्च वहन करेगा और ३० प्रतिशत उड़ीसा। अनुमान यह किया जाता है कि इस योजना के पूरी होने पर १,००,००० किलोवाट जल-विद्युत्-शक्ति उत्पन्न होगी।

संयुक्तप्रान्त

शारदा जल-विद्युत्-योजना इस प्रान्त की सदा से महत्त्वपूर्ण योजना है। इस योजना से २८६ करोड़ रुपयों का खर्च है। अनुमान किया गया है कि इस योजना की पूर्ति हो जाने पर ४० लाख किलोवाट जल-विद्युत्-शक्ति उत्पन्न होगी। कहा जाता है कि अलमोड़ा, बरेली, पीलीभीत, शाहजहाँपुर, सीतापुर, हरदोई, लखनऊ, बाराबंकी, उन्नाव और रायबरेली के जिलों से सम्बन्धित क्षेत्रों के लिए सिंचाई का प्रबन्ध करने और औद्योगिक तथा घरेलू आवश्यकताओं के लिए बिजली देने के लिए यह काफी होगी। गंगा नहर पर जल-विद्युत्-शक्ति योजना करीब-करीब पूरी हो चली है। आशा है, ६,३०० किलोवाट जल-विद्युत्-शक्ति की उन्नति इससे होगी। रोहिन्द प्राजेक्ट के अन्तर्गत

जल-विद्युत् द्वारा कुँओं से पानी सींचने का प्रबन्ध किया जा रहा है। यू० पी० को इससे बहुत लाभ होगा।

मध्य-भारत

मध्यभारत में भी अन्य प्रान्तों की तरह कई योजनाएँ चल रही हैं। कुछ का कार्य आरम्भ होगया है और कुछ अभी जाँच-पड़ताल की क्रिया में हैं। सिंचाई के लिए तीन जलाशयों का निर्माण-कार्य आरम्भ होगया है। एक जलाशय बालवाट जिले में बन रहा है और दो चानद्वारा में। अनुमान किया जाता है कि जब यह योजना पूरी होगी, तब २० हजार एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। लगभग ३ करोड़ की लोगों की आय बढ़ जाएगी।

इस योजना के अतिरिक्त ११ और भी अन्य योजनाएँ हैं, जो प्रान्तीय सरकार के यहाँ जाँच-पड़ताल की क्रिया में हैं। इनसे १ लाख एकड़ जमीन की सिंचाई हो सकेगी। और इन्हें कार्यान्वित करने के लिए ४ करोड़ रुपए का खर्च है।

पूर्वी-पंजाब

पंजाब ही एक ऐसा प्रान्त है जहाँ सिंचाई का कुछ पहले से प्रबन्ध था। फिर भी उसे समुचित प्रबन्ध नहीं कहा जा सकता। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकार ने इस प्रान्त में सिंचाई का समुचित प्रबन्ध करने के लिए कुछ योजनाएँ बनाई हैं। इनमें कुछ को कार्य आरम्भ है और कुछ अभी जाँच-पड़ताल की क्रिया में हैं।

सतलज नदी के तट पर एक बाँध बाँधने की योजना है। अनुमान किया जाता है कि इस बाँध के द्वारा ४-५ लाख एकड़ की सिंचाई होगी। इसे कार्यान्वित करने में ७० करोड़ रुपए खर्च होंगे और इनसे १,६०,००० किलोवाट जल-विद्युत्-शक्ति की उत्पत्ति होगी। इस योजना का कार्य आरम्भ होगया है।

नाल-जल-विद्युत्-शक्ति एक दूसरी विद्युत्-शक्ति-योजना है। इस योजना को कार्यान्वित करने में २२ करोड़ रुपए का खर्च है। अनुमान किया जाता है कि १,४०,००० किलोवाट जल-विद्युत् शक्ति की फिर उत्पत्ति होगी। सिंचाई, औद्योगिक तथा घरेलू आवश्यकताओं के लिए बिजली की जितनी आवश्यकता है, उतनी पूरी हो जाती है।

बम्बई

बम्बई में दर्जनों योजनाएँ चल रही हैं। उनमें मही नहर योजना, बरदला तालाब योजना, गंगापुर बाँध योजना तथा डादी बाँध योजना, कोईना और कालिन्दी जल-विद्युत्-योजना एवं मीशवा नहर योजना बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। केरा जिले में मीशवा नदी से मीशवा नहर निकालने की योजना है। यह नहर १०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई करेगी। इस योजना का अनुमानित खर्च १८ लाख रुपए है। माही नहर योजना भी केरा जिले के १,१०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई करेगी। इस योजना को कार्यान्वित करने में ३ करोड़ रुपए का खर्च है। केरा जिले में वर्दाला तालाब योजना है। इस योजना में ४,५०० एकड़ जमीन की सिंचाई हो सकेगी। कहा जाता है कि ११ लाख रुपए का इस योजना में खर्च है।

नासिक जिले के अन्तर्गत पाँजहप के पास घिरना बाँध बाँधने की योजना है। खानदेश जिला के ११०,५०० एकड़ जमीन की सिंचाई हो सकेगी। ८ करोड़ रुपए का खर्च है। वेलगम जिले में अशोगा बाँध योजना के कार्यान्वित होने पर ७४,२०० एकड़ जमीन की सिंचाई होगी और इस योजना का अनुमानित खर्च ४० करोड़ रुपया है। इसी जिले के अन्तर्गत घाटप्रभा नदी के तट पर डाढ़ी बाँध की भी एक योजना है। कहा जाता है कि इस योजना को पूरी हो जाने पर ४,००,००० एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। इस योजना का अनुमानित खर्च २४ करोड़ रुपए है। नासिक जिले में ही गोदावरी तटपर गंगापुर बाँध बाँधने की योजना चल रही है। उसे कार्यान्वित करने के लिए प्रयास हो रहा है। कहा गया है कि ४०,००० एकड़ जमीन की सिंचाई होगी और इसे पूरा करने में २२ करोड़ रुपए का खर्च है।

कोयना जल-विद्युत्-योजना का कार्य आरम्भ हो गया है। अनुमाम किया गया है कि इसके पूरी होने पर इससे ४,५०,००० किलोवाट जल-विद्युत्-शक्ति उत्पन्न होगी। इस योजना का अनुमानित खर्च ५ करोड़ रुपए है। कालिन्दी की जल-विद्युत्-शक्ति योजना पूरी होने पर अनुमान किया जाता है कि ३,५०,००० किलोवाट जल-विद्युत् शक्ति की उत्पत्ति होगी। धारवार, कानरा, बेलगाँव और विजयपुर जिले के सम्बन्धित क्षेत्र के लिए

सिंचाई का प्रबन्ध तथा औद्योगिक तथा घरेलू आवश्यकताओं के लिए बिजली की जितनी आवश्यकता होगी, उसकी पूर्ति इस योजना से हो जाएगी।

मद्रास

मद्रास प्रान्त में भी अनेक योजनाएँ चल रही हैं। उनमें रामपदसागर योजना बहुत ही महत्व-पूर्ण है। यह एक बहु-विषयक योजना है। कहा गया है यह योजना जब पूरी हो जाएगी, तब यह विश्व की सबसे बड़ी जलाशय के नाम से पुकारी जाएगी। इसका बाँध ४२८ फीट ऊँचा और १६० फीट नीचा होगा। इस जलाशय से तीन नहरें निकलेंगी और २'८५ लाख एकड़ जमीन की यह सिंचाई करेगी। अनुमानित खर्च ४६ करोड़ रुपया है और कहा गया है कि यह योजना १० वर्ष में पूरी होगी। हर वर्ष २० लाख टन चावल की उत्पादन में वृद्धि होगी। आजकल की दर के अनुसार २४ करोड़ रुपए के गल्ला का उत्पादन होगा।

मद्रास और हैदराबाद की सरकार ने मिलकर तुंगभद्रा योजना बनाई है। तुंगभद्रा नदी के तट पर ८,२०० फीट लम्बी और १६० फीट ऊँचा बाँध बाँधने की भी योजना बनाई गई है। इस योजना में मद्रास सरकार को २० करोड़ रुपए का खर्च करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त पाँच और योजनाएँ हैं, जो अभी जाँच-पड़ताल की क्रिया में हैं। इन्हें कार्यान्वित करने में १२० करोड़ रुपए का खर्च है। ३५०,००० एकड़ जमीन की सिंचाई हो सकती है और इससे ३,३५००० किलोवाट जल-विद्युत्-शक्ति की उत्पत्ति भी हो सकती है।

गली का फूल

श्री दौलतराम परशुराम

नजर नीची, विचार जमीन की ओर लगे हुए; वह बैठा-बैठा गुजरती हुई जूतों की जोड़ियों को ध्यान से देख रहा था। अर्सा हुआ कि वह पाँवों के पहराव से किसी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाना सीख गया था। उस समय वह 'जूता पालिश' वाला था, और उसके धन्धे के लिए यह आवश्यक था कि वह सभी लोगों के जूतों का अध्ययन करे।

अब यह सब कुछ वह धन्धे के लिए नहीं करता। यह सच है कि वह अब भी पाँवों के पहरावे से यह निर्णय कर लेता था कि व्यक्ति पैसेवाला है या नहीं, पर यह वह इसलिए नहीं जानना चाहता था कि उस व्यक्ति का जूता अपनी गोद में ले-ले, उसे साफ करे और फिर पालिश करे। नहीं, यह तो पुरानी बातें हैं। उसके अध्ययन से आजकल यही निश्चित हो पाता था कि किसी व्यक्ति का पीछा करना चाहिए या नहीं, जिससे कहीं भीड़ में उसे 'पर्स' उठाए फिरने के बेकार भार से मुक्त किया जाए। इसमें हाथ की सफाई की जरूरत रहती थी, और दसवर्षीय रज्जाक यह काम अच्छी तरह कर लेता था।

वह यह जानता था कि यह काम बुरा है; पर दूसरे लड़के उसे दिन-प्रतिदिन यही कहते रहते कि यह काम कुछ बुरा नहीं, और वह भी अपने विवेक को दबाए रहता।

हाँ, इतना अवश्य उससे कहा गया था कि उसे अन्तर्धान हो जाने का ढंग मालूम होना चाहिए। विद्युत् की चमक से भी अधिक शीघ्रता के साथ उसे जन-समूह में विलीन हो जाना चाहिए। कुछ भी हो, 'नीले कपड़ों, पीली टोपी और चप्पलोंवाले' से तो किसी भी तरह बचकर रहना चाहिए।

रज्जाक के मन में शंका होती और वह जानना चाहता कि क्यों किसी का भार हल्का करने के बाद उसे विलीन हो जाना चाहिए। उसके साथी बिलकुल बेकार का बहाना बता देते कि ऐसा करना जरूरी था। क्योंकि इस विचित्र खेल का यही नियम था! रज्जाक फिर भी न समझता तो वे उसे कायर कहते और उसे यह कहकर चिढ़ाने की कोशिश करते कि वह अब भी जूते चाटना चाहता है।

पर यह सच नहीं था और वे यह जानते थे। फिर भी रज्जाक को चिढ़ाने में उन्हें मजा आता था और जभी कोई गन्दे-से-गन्दा जूतों का जोड़ा वहाँ से गुजरता था तो वे रज्जाक को चिल्लाकर पुकारते थे (चाहे वह

बगल में ही क्यों न बैठा हो); "अरे, चाटनें लायक चीज है, रज्जाक ! आओ।"

रज्जाक इस पर कभी क्रुद्ध न होता। हाँ, कभी-कभी वे उसे बहुत हैरान करते तो क्रोध में वह कूद पड़ता और उन्हें भगा देता। वे दौड़कर चले जाते, हँसते हुए और कुछ देर के बाद वापस आ जाते, जैसे कुछ हुआ ही न हो। रज्जाक से वे डरते नहीं थे, क्योंकि वह छोटा था, और लड़ने की उसमें प्रवृत्ति भी नहीं थी। उसके साथी कहते कि उसमें बिलकुल दम ही नहीं है। यह सत्य था या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। कारण, रज्जाक न कभी किसी के साथ भिड़ा ही था, न उसने किसी को ललकारा ही था।

पर, यद्यपि उसमें दम नहीं था, उनका 'चच्चा' (जो उन्हें आश्रय देता था और उन्हें जेब काटना सिखाता था) उस पर प्रसन्न था। रज्जाक की टाँगें लम्बी-पतली थीं, और वह हवा की तरह दौड़ सकता था। उस पर इतना भरोसा किया जा सकता था कि यदि शिकार को मालूम भी हो गया कि उसकी जेब कट गई है, तो रज्जाक वारदात की जगह के बहुत दूर होगा।

दूसरे लड़के रज्जाक की तेजी पर ईर्ष्या करते थे, और इस गुण से उसका आदर करते थे। उनमें ईर्ष्या अथवा द्वेष का भाव नहीं था, और जब कभी वे रज्जाक को चिढ़ाते तो विनोद के लिए ही।

"अरे, चाटने लायक चीज है, रज्जाक! आओ।" एक साथी चिल्लाया।

रज्जाक गुजरते हुए जूतों को देख रहा था, और जिन मैले-गन्दे जूतों की जोड़ी को उसके साथी ने लक्ष्य किया था, वह भी उसने देखी थी। हमेशा की तरह वह बात को टाल देता, लेकिन बात यह हुई कि जो व्यक्ति उन गन्दे जूतों को पहने हुए था, वह बिलकुल सामने ही खड़ा हो गया और किसी अन्य व्यक्ति के साथ वार्तालाप करने लगा। जब साथी दूसरी बार चिल्लाया, तो रज्जाक गुस्से में आकर कूद पड़ा और साथियों को भगा दिया। वह खड़ा उनको भागते हुए देखता रहा, और यह भी देखा कि वे वापस आने लगे हैं।

जैसे ही वह अपनी जगह पर वापस आने के लिए मुड़ा, उसने देखा कि एक युवक रेस्तराँ के बाहर खड़ा है और उसकी ओर देख रहा है। रज्जाक की दृष्टि आप-से-आप उस युवक के जूतों तक झुक गई। वे बढ़िया चमड़े के बने हुए थे। बिलकुल नए, और चमक रहे थे। युवक के वस्त्र भी बढ़िया थे। वह रज्जाक की ओर देख रहा था। उसने इङ्गित से उसे अपनी ओर बुलाया। "अरे, दोस्त, यहाँ आना जरा।"

रज्जाक कुछ सोच में पड़ गया कि मुझे क्यों बुलाया है? फिर भी, वह उसके पास गया।

"सुनो, मैं रेस्तराँ में जा रहा हूँ, और यह साइकिल यहाँ छोड़ रहा हूँ। इसे देखे रहना। तुम्हारी मेहनत के लिए मैं तुम्हें इनाम दूँगा। ज्यादा कुछ नहीं है; सिर्फ यहाँ बैठकर देखना ही है। कहो, करोगे, दोस्त?"

रज्जाक कुछ समझ न पाया कि वह क्या कहे? हत-बुद्धि-सा वह खड़ा रहा। यह व्यक्ति उसे मर्द की तरह बराबर का समझता है, ऐसा ही बर्ताव कर रहा था; उसे बच्चा नहीं समझता है। उसकी आँखें चमकने लगीं। वह केवल मुस्कराया, और सिर हिला दिया। उसके बाद वह युवक अन्दर चला गया।

"रफूचक्कर हो जाइए," टोली के सरदार रामजी ने दूसरे लड़कों से कहा! "गायब हो जाइए। कुछ काम कीजिए जाकर। मुझे और रज्जाक को यहाँ छोड़िए तो हम अपना काम करेंगे।" और जब वे चले गए, तो वह रज्जाक की ओर मुड़ा। "इस अन्दर गए हुए नवजवान को अपना भार हल्का करवाने की जरूरत है। तुम इसका पीछा करोगे न?"

रज्जाक ने इनकार कर दिया। "नहीं, मैं नहीं जाऊँगा," उसने कहा।

"क्यों नहीं?"

रज्जाक जानता था, पर राम जी को कैसे समझाता? युवक ने उसे अपने विश्वास का पात्र बनाया था, और उसे यह विश्वास बनाए रखना था। युवक को वह धोखा नहीं दे सकता था।

रज्जाक जब अपने इनकार पर दृढ़ रहा, तो रामजी ने कहा; "अच्छा, देखें, साइकिल के हैण्डल पर लगे हुए इस बेंत के बने हुए बास्केट में क्या है? शायद कुछ कीमती चीजें मिल जाएँ।"

रज्जाक ने उसे बहुत रोका, फिर भी वह आगे बढ़ा और बास्केट में हाथ डालकर उसमें पड़ी हुई चीजें निकालने लगा। एक छोटी-सी नोटबुक थी, एक सुन्दर

चमकीली आर्टपेपर पर छपी हुई तस्वीरों की पुस्तक थी, मिठाई का एक बक्स था, और सबसे नीचे चाँदी का एक छोटा-सा बक्स था, जिसमें कुछ विचित्र तथा बहुमूल्य चीजें पड़ी हुई थीं। इस चाँदी के बक्स पर रामजी ने अधिकार कर लिया।

"यह हम ले लेंगे," उसने कहा। "काफी पैसे मिलेंगे।"

"पर इसे कैसे ले सकते हो?" रज्जाक ने ऐतराज किया। "यह तुम्हारी नहीं है! यह मेरे भरोसे छोड़ा गया है।"

"तुम्हारा सो मेरा, है कि नहीं?" रामजी ने उत्तर दिया।

"नहीं। यह मेरा भी नहीं है। यह मुझे मालिक को वापस करना है, सही और सलामत। उसने मेरा विश्वास किया है।"

"बेवकूफ न बनो," रामजी ने कहा। उसे इस बात से प्रोत्साहन मिल रहा था कि उस समय आसपास कोई नहीं था। "उसे इस नुकसान का भान भी न होगा।"

'पर उसे मैं धोखा कैसे दूँ, जब उससे मेरा यकीन किया है?"

"क्यों नहीं?"

रज्जाक कुछ समझ न पाया कि क्या कहे? उसका छोटा विवेक जानता था, और उसे बता रहा था कि क्या उचित है? पर वह इस ऊँट-से लड़के से क्या कहता, जो कि बुराई की साक्षात् मूर्ति था?

सहसा वह भयभीत हो उठा। दृढ़तापूर्वक उसने रामजी की बाँह पकड़ ली।

रामजी ने मोड़ देकर अपनी बाँह छुड़ा ली और रज्जाक को ढकेल दिया। "दूर हट, बे," उसने कहा।

रज्जाक का भय बढ़ रहा था। "बक्स दो मुझे। वापस करना है।"

रामजी ने कहा, "भागो यहाँ से," और जाने लगा। रज्जाक उसके पीछे गया, ऊँची पतली आवाज में चिल्लाता हुआ। रामजी ने उसकी नाक पर एक घूँसा जमा दिया। इससे दर्द भी बहुत हुआ और खून भी बहने लगा। फिर भी वह रामजी के पीछे लगा रहा। वह जानता था कि वह लड़ नहीं सकता, पर यह भी जानता था कि वह रामजी को छोड़ नहीं सकता।

वह दौड़कर रामजी से आगे बढ़ गया और रामजी की राह में खड़ा हो गया। "बक्स दो मुझे," उसने कहा।

रामजी ने उत्तर में दूसरी बार उस पर हमला किया। वह गिरते-गिरते बचा। अपने को सँभालकर उसने फिर रामजी का सामना किया। उसके चेहरे पर एक विचित्र दृढ़ता झलक रही थी।

अचानक रामजी ने अपनी जिद छोड़ दी। "हाँ, यह लो बक्स," उसने कहा और बक्स को रास्ते पर फेंक दिया। "मैं कुछ और ले लूँगा।"

रज्जाक इसी उधेड़बुन में था कि रास्ते पर जाकर बक्स उठाए या रामजी को दूसरी कोई चीज उठाने से रोके। वहाँ दूर से एक मिलिटरी लॉरी तेज रफ्तार से आ रही थी। रामजी ने उसे देख लिया था, और उसने रज्जाक की बाँह पकड़ ली, जिससे वह बक्स उठा न सके। मिलिटरी लॉरी के पहिए यदि उस बक्स पर से गुजर गए, तो बक्स की मरम्मत करना तो दूर रहा, उसे पहचानना भी मुश्किल हो जाएगा।

रज्जाक की इच्छा न थी कि ऐसा हो। क्षण भर के लिए वह निस्तेज-सा खड़ा रहा (रामजी को धोखा देने के लिए) और फिर सहसा उसने अपनी लम्बी-पतली टाँग रामजी के पेट में मार दी। रामजी दुगुना होकर झुक गया। मिलिटरी लॉरी बहुत ही पास आ गई थी। रज्जाक ने मोड़ देकर अपनी बाँह छुड़ाली और बक्स के लिए लपका।

दिल को कचकचानेवाली भयङ्कर चीत्कार करते हुए पहियों ने ब्रेकों के अंकुश को माना और डगमगाती हुई लॉरी खड़ी हो गई। लॉरी के पीछे, कितने गज के फासले तक, रास्ते पर लम्बे काले निशान बन गए थे, जहाँ पहिए रास्ते में दब गए थे।

ड्राइवर गालियाँ देता हुआ लॉरी से कूद पड़ा। "डैम्.............बास्टर्ड! मेरी लॉरी के नीचे आकर ही क्यों मरना था?"

पर रज्जाक मरना नहीं चाहता था, न ऐसा कोई कारण ही था कि वह इस जगत् से कूच कर जाए। लॉरी के नीचे कोई नहीं था। रास्ता खाली था।

ड्राइवर ने आस-पास देखा। दूसरों ने भी देखा, जो कि पहियों की भयङ्कर आवाज सुनकर रेस्तराँ में से अथवा दूसरे मकानों में से बाहर निकल आए थे। रास्ते की

दूसरी ओर, फुटपाथ पर, उन्होंने रज्जाक को पेट के बल गिरा हुआ पाया। उसके हाथ उसके पीछे थे और उसकी लम्बी पतली टाँगों को पकड़े हुए थे। जिन्होंने उसे बाल-बाल मृत्यु के पंजों से बचाया था।

ड्राइवर ने फिर कुछ गालियाँ दीं और लॉरी में चढ़कर रवाना हो गया। दर्शक या तो रेस्तराँ में वापस चले गए या अपने अपने रास्ते गए। लड़का बच गया था, और दर्शकों के लिए चिन्ता करने को कुछ नहीं था।

केवल वह नवयुवक (साइकिल का मालिक) खड़ा रज्जाक की ओर देखता रहा, जो कुछ देर बाद उठा और लँगड़ाता हुआ, रास्ता पार करके, रेस्तराँ की ओर आने लगा।

रज्जाक ने चारों रामजी को निहारा पर उसका ऊँट-सा शरीर कहीं दिखाई नहीं दिया।

जब रेस्तराँ के पास पहुँचा तब रज्जाक को भान हुआ कि साइकिल का मालिक उसके हाथ में चाँदी के बक्स को देख रहा है।

"रामजी बदमाश है," रज्जाक ने कहा। "आपने जो मेरे ऊपर यकीन किया, उसको वह झूठा साबित कराने की कोशिश कर रहा था।" इससे अधिक वह क्या कहे, यह वह सोच ही न पाया। और फिर, अधिक कुछ कहने को था भी क्या ?

"वह तो मैं देख रहा हूँ," युवक ने कहा। "काफी तुमको झकझोर दिया है। हाँ, यह लो," और उसने रज्जाक को अपना रूमाल दिया ताकि वह अपना रक्तिम चेहरा पोंछे।

रज्जाक ने कृतार्थ भाव से रूमाल लिया, और फिर युवक को सब कुछ बता दिया। कुछ भी नहीं छिपाया उसने।

युवक बहुत खुश हुआ। आदमी नेक और मेहरबान है, रज्जाक सोच रहा था। और उसने अपना विचार व्यक्त भी कर दिया।

"मेहरबान खाक हूँ," युवक ने नकली रोष के साथ कहा। "मैं बहादुरी की कद्र करता हूँ। तुम लड़ सकते हो; तुममें काफी दम है।"

रज्जाक को आश्चर्य हुआ। पर क्या यह व्यक्ति गलत था ? वह (रज्जाक) इन्सान का दिल रखता था या चूहे का ?

"तुम अभी भी लड़ सकते हो," युवक ने कहा। "तुम बहादुर हो। दुनिया जीत सकते हो। कहो, हिम्मत करोगे ?"

रज्जाक ने दुविधा में युवक की ओर देखा। "मैं समझा नहीं," उसने कहा।

युवक ने विस्तार-पूर्वक उसे समझाया। वह रज्जाक को अच्छी नौकरी देने को तैयार था। साथ-साथ रज्जाक स्कूल भी जा सकता था; बाद में शायद उच्च शिक्षा भी पा सकता था। वह चाहे तो लड़ता जाए, जीतता जाए, अपना जीवन सुधारता जाए। उसमें यदि हिम्मत थी, तो उसका सारा जीवन उसके हाथों में था।

रज्जाक की बुद्धि ने बात ग्रहण कर ली। उसकी आँखों में नई रोशनी आ गई। "हाँ, हिम्मत है मुझमें," उसने कहा।

युवक रेस्तराँ की सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आया। "तुम्हीं को फैसला करना है, रज्जाक," उसने कहा। "तुम्हारी इच्छा न होगी तो तुमसे कुछ नहीं करवाया जाएगा। आजतक जैसी आवारागर्दी की है, ऐसी नहीं होगी, और जीवन कठिन होगा। तुम निश्चिय-पूर्वक इस कठिन राह पर चलोगे ? कितने नियम पालने पड़ेंगे, यह भी सोचो।...और अगर हिम्मत न हो, तो यह सब कुछ भूल जाओ। मान लो कुछ हुआ ही नहीं।"

वह रुक गया और रज्जाक के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। रज्जाक ने दृष्टि ऊपर उठाकर युवक का चेहरा निहारा और यद्यपि वहाँ ऐसा कुछ नहीं देखा, जिससे कुछ संकेत या निर्देश मिल सके, फिर भी रज्जाक को अपनी खोज के आदर्श व्यक्ति की ज्योति इस चेहरे में दिखाई दी। क्या अब वह पिछड़ जाएगा ? नहीं, कभी नहीं।

"मैं कायर नहीं हूँ, साहब," रज्जाक ने कहा। "मैं आपके साथ चलूँगा। मैं जरूर लड़ूँगा—देख लीजिएगा।"

"अच्छा," युवक ने कहा। "चलो।"

रज्जाक ने चाँदी का बक्स साइकिल के हैण्डल पर के बास्केट में रख दिया और युवक के साथ जाने लगा। कुछ चलने के बाद युवक ने साइकिल का हैण्डल रज्जाक

के हाथ में दे दिया। "लो, तुम्हीं ले चलो इसे," उसने कहा। "एक दिन शायद तुम्हारे पास भी अपनी साइकिल हो।"

रज्जाक ने हैण्डल पकड़ लिया। खुशी से उसका चेहरा खिल उठा। युवक भी मुस्करा दिया। केवल, उसे अधिक हर्ष हो रहा था।

भारत में मानव जाति का प्रथम पदार्पण

(भारतीय पुरातत्त्व की कुछ महत्त्वपूर्ण अद्यतन खोजें)

भारत का हिमयुगकालीन मानव इतिहास

हमारा आदि इतिहास

गत पौनी शताब्दी में भारत में मानव जाति की प्राचीनता के विषय में जो अनुसंधान होते रहे हैं, उनकी रोशनी में देखने से पता चलता है कि हमारे देश में मानव का इतिहास केवल हजारों ही नहीं परन्तु लाखों वर्ष पुराना है और उसके देखते-देखते भारत का नक्शा बहुत कुछ बदल गया है। परन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि भारतीय मानव के इस लाखों वर्ष के अत्यन्त मनोरंजक और कौतूहलपूर्ण इतिहास से हमारे इतिहास-विद् करीब-करीब अपरिचित हैं।

हमारा इतिहास उसके अद्यतन रूप में भारत में मानव की प्राचीनता के विषय में सामान्यतः जो कुछ कहता है, वह यही है कि इस देश में ईस्वी सन् पूर्व २५०० के करीब आर्य लोग आए, उसके पहिले यहाँ द्रविड़ लोग निवास करते थे। मोहनजोदड़ो जैसे महान् प्रागैतिहासिक नगर इन्हीं द्रविड़ों ने ईस्वीपूर्व ३००० के करीब बसाए थे। द्रविड़ों के आगमन के पूर्व यहाँ जो लोग रहते थे, उनको मानव वंशविद् ऑस्ट्रिक जाति के नाम से पुकारते हैं और तुलनात्मक भाषाशास्त्र की दृष्टि से मध्यभारत के भील, कोली, कोर्कू, गोन्ड, इत्यादि और बिहार के संथाल, मुण्डा, उराउँ, भूमिज, प्रभृति वन्य जातियों को इस प्रागैतिहासिक ऑस्ट्रिक जाति के वर्तमान प्रतिनिधि बनाते हैं। भारत के भिन्न भिन्न भागों में जो काले पत्थर को घिसकर बनाए गए पुरातन काल के औजार और हथियार Polished stone implements or Neoliths) प्राप्त होते हैं, वे मानव वंश विशारदों के कथनानुसार इन द्रविड़ों से पूर्व के भारतवासी ऑस्ट्रिकों के हाथ की कृतियाँ हैं। मानव वंश विशारद फिर आगे चलकर कहते हैं कि इस ऑस्ट्रिक जाति के पूर्व भारत में कुछ हब्शियों से मिलते-जुलते लोग बसते थे, जिनको नेग्रिटो कहा जाता है और भारत में जहाँ तहाँ जो पाषाण के छील-छीलकर बनाए गए औजार और शस्त्रास्त्र (chipped stone-implements or Palaeliths) मिलते रहते हैं, वे इसी नेग्रिटो जाति की सभ्यता के पार्थिव अवशेष हैं*। परन्तु ये बातें अब तथ्यहीन सिद्ध होती जाती हैं और पता लगता जा रहा है कि पाषाण के इन दीर्घ प्राक्-इतिहासकाल के औजार और शस्त्रादि की कहानी कुछ पृथक् ही है और उपर्युक्त जातियों से इनका खास सम्बन्ध नहीं है।

भारत में आदि मानव के इतिहास की खोज

भारत में मानव जाति की प्राचीनता-संबंधी अनुसंधानों का श्रीगणेश १८६३ में ब्रूस फुट नामक एक भारत सरकार के भूगर्भवेत्ता (Geolojist) द्वारा हुआ। सरकार की ओर से खनिज पदार्थों की खोज करते करते करीब ४० वर्ष तक वे अपने शौक से ही सारे दक्षिण, मध्य और पश्चिम भारत में बड़ी सफलता के साथ मानवजाति के इस देश में आगमन और उसकी शैशव तथा बाल्यावस्था के विषय में छान-बीन करते रहे। इनके पश्चात् सुप्रसिद्ध भूगर्भवेत्ता और पुराविद् वेलन्टाइन बॉल, ब्लानफोर्ड, मिडिलमिस, कागिन ब्राउन, लागन, काकबर्न, थियोबेल्ड, ओल्डहाम, वुडमेसन, प्रभृति ने यह

*इस विषय के विशेष विवरण के लिए देखिए :—

Risley H. H.—People of India, 1915

Guha, B. S.—Census of India, I, part III, 1935

Imperial Gazetteer of India, vol. II.

Banerji, R.D.—Prehistoric, Ancient & Hindu India, 1939.

कार्य चालू रखा। भारतवासियों में से सर्वप्रथम सुप्रसिद्ध भारतीय भूगर्भविशारद डा० डी० एन० वाडिया ने थोड़ा बहुत यह कार्य किया।* परन्तु इस दिशा में सबसे बड़ा कदम १६३५ में उठाया गया जबकि अमेरिका के कार्नेगी-इन्स्टीट्यूशन और अमेरिकन फ़िलासाफ़िकल सोसायटी तथा इंग्लेन्ड के केम्ब्रिज विश्वविद्यालय की ओर से सुप्रसिद्ध जर्मन (अमरीकावासी) पुराविद् और भूगर्भवेत्ता डा० डी० टेरा के नेतृत्व में अमरीकन, अंग्रेज और फ्रांसीसी अन्वेषकों का एक दल आया। इन विद्वानों ने हिमालय प्रदेश, उत्तरी भारत, मध्यप्रांत और मदरास में महत्त्वपूर्ण खोजें की और अमेरिका के कार्नेगी इन्स्टीट्यूशन की ओर से १६३८ में इनकी खोजों का विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ। इस विवरण ने जगत् को यह बता दिया कि मानवजाति की शैशव तथा बाल्यावस्था के इतिहास के अध्ययन के लिए भारत एक आदर्श देश है और तब से इस दिशा में कुछ-न-कुछ कार्य होता ही रहता है। यह शोचनीय है कि भारत में इस समय इस विषय के कार्य-कर्त्ता विद्वान् अभी चार-छः से अधिक नहीं हैं। यह भी एक आश्चर्य की बात है कि भारतीय भाषाओं में इन महत्त्वपूर्ण अनुसंधानों के विषय में न तो अब तक कुछ स्थायी साहित्य निर्माण हुआ और न पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय के लेखादि दृष्टिगत होते हैं। सच पूछा जाए तो अभी अंग्रेजी में भी भारत के सिन्धु-सभ्यता से पूर्व के मानव इतिहास पर कोई प्रमाणभूत पुस्तक अब तक प्राप्त नहीं है।° कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा अंग्रेजी में कुछ वर्ष पूर्व प्रागैतिहासिक भारत (Prehistoric India) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी परन्तु वह अवैज्ञानिक रूप से लिखित होने के कारण विद्वानों में आदर प्राप्त न कर सकी और डा० डी० टेरा प्रभृति की खोजों ने तो अब उसको बिल्कुल ही निकम्मा बना दिया है। भारत में मानव जाति के आदि-इतिहास के विषय में जो कुछ छानबीनें हुई हैं, वे सैकड़ों लेखों के रूप में भारत और विदेश के अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फाइलों में यत्र तत्र बिखरी हुई पड़ी हैं।

आदिकालीन भारत

आइए, अब हम भारत में मानव की शैशवावस्था के कौतूहलपूर्ण और मनोरंजक इतिहास पर दृष्टिपात करें। इस इतिहास को समझने के लिए हमको, सर्वप्रथम भूगर्भ-विशारदों ने प्राचीन चट्टानों के स्तर और उनसे प्राप्त प्राचीन प्राणियों और वनस्पतियों के अश्मीभूत (fossilized) अवशेषों के अध्ययन के आधार पर पृथ्वी के गत इतिहास का जो कालानुक्रम (chronology) निर्धारित किया है, उसका थोड़ा सा परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की अब तक की आयु करीब सात अरब वर्ष की कूती है और अब से करीब पचास करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व नहीं था। भारत के पर्वत अरावली, पूर्वी घाट और सतपुड़ा इस समय अस्तित्व में आए। पृथ्वी के इतिहास को जीवन-विकास के आधार पर तीन जीवकल्पों में विभाजित किया गया है। अब से पचास करोड़ वर्ष से लेकर बीस करोड़ वर्ष पूर्व तक पूर्वजीवकल्प (Palaeozoic) जारी रहा और इसमें जीवन का विकास जलचरों से प्रारम्भ हुआ। कालान्तर में स्थलचर सरीसृप (Reptiles) अस्तित्व में आए। बीस करोड़ वर्ष पूर्व से लेकर सात करोड़ वर्ष पूर्व तक मध्यजीवकल्प (Mesozoic Era) जारी रहा और इस समय स्तन-प्राणी (Mammals) अस्तित्व में आए और इस कल्प के अन्तकाल में भीमकाय सरीसृप और अन्य प्रकार के प्राणी पृथ्वी पर विचरने लगे। इस मध्यजीवकल्प में पृथ्वी पर जल और स्थल का वितरण अब से भिन्न प्रकार का था। उस समय आस्ट्रेलिया, मलय-द्वीपसमूह, गंगा-सिन्धु के मैदानों से दक्षिण की ओर का भारत (प्रायद्वीपीय भारत) और अफ्रिका तथा दक्षिण अमेरिका एक बड़े महाद्वीप के भिन्न-भिन्न भाग थे। इस विशाल महाद्वीप को गोण्डवानालैण्ड कहा जाता है। इस गोण्डवानालैण्ड के उत्तर में पृथ्वी के चारों ओर एक महा-सागर लहराता था। इसको टेथिस सागर कहते हैं। आज के राजपूताना, बुंदेलखण्ड और दक्षिणी बिहार के उत्तर की ओर का भारत यानी गङ्गा-सिन्धु का मैदानी प्रदेश और हिमालय पर्वत तथा तिब्बत इस सागर के गर्भ में डूबे हुए थे। इतना ही नहीं परन्तु पश्चिम-एशिया और

*देखिये हेमचन्द्र दास गुप्त की Bibliography of Indian Prehistory, 1932, Royal Asiatic Soc, of Bengal

Ice Age in India & Associated Human Cultures by De Terra and T. T. Paterson,

दक्षिणी योरप भी टेथिस सागर में गर्त थे। इस टेथिस सागर के उत्तर में एक और महाद्वीप था, जिसको अङ्गारालेण्ड कहते हैं। अब से सात करोड़ वर्ष पूर्व उत्तर जीवकल्प* Cainozoic Era) प्रारम्भ हुआ, जो अब तक जारी है। इस कल्प के प्रारम्भ में भूगर्भ के महा-उत्पातों के कारण अफ्रिका और तत्कालीन भारत के बीच के गोण्डवानालेण्ड का प्रदेश सागरगर्भ में विलीन हुआ और ये दोनों प्रदेश एक दूसरे से पृथक् हो गए। इसी प्रकार भारत पूर्व की ओर आस्ट्रेलिया से भी पृथक् हो गया। इस घटना के पश्चात् शीघ्र ही टेथिस महासागर के तल के गर्भ में भू-उत्पात प्रारम्भ हुए और इनके परिणामस्वरूप इसका तल ऊँचा उठने लगा और क्रमशः सागर की सतह से भी ऊँचा उठकर हिमालय से लेकर आल्प्स पर्वत तक जो पृथ्वी के पूर्वगोलार्ध में पर्वतश्रेणियाँ फैली हुई हैं, उनके रूप में परिणत हो गया। तत्कालीन भारत के उत्तर में इस प्रकार हिमालय पर्वत बनकर खड़ा हो गया। इस हिमालय पर्वत और तत्कालीन भारत (आज का भारतीय प्रायद्वीप) के मध्य में एक खाई रह गई थी, जिसमें सागर का जल भरा रह गया था। हिमालय पर्वत में से जो नदियाँ निकलीं, वे इस खाई-स्थित सागर के जल में गिरती रहीं और उनके साथ पर्वत पर से जो मिट्टी, कंकड़, पत्थरादि पदार्थ बह आते थे, उनसे क्रमशः यह खाई भरती रही और अन्त को खाई एक समतल प्रदेश बन गई। इस प्रकार गङ्गा-सिन्धु के मैदानों की उत्पत्ति हुई।

टेथिस सागर के गर्भ में से उसके तल-प्रदेश का भू-उत्पातों के कारण ऊँचे उठकर हिमालय पर्वत बनने का कार्य तीन मंजिलों में समाप्त हुआ है और उल्लेखनीय बात तो यह है कि हिमालय पर्वत के उत्थान की आखिरी मंजिल भारत में मानव ने अपनी आँखों से देखी है और इसी मंजिल में हिमालय एक साधारण पर्वत से पृथ्वी का सर्वोच्च पर्वत बना है। इतना ही नहीं परन्तु भारत में मानव ने विंध्याचल, सह्याद्रि और सतपुड़ा को भी उठते हुए देखा है। नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी और कृष्णा के प्रवाह इसकी नजरों के सामने बहने प्रारम्भ हुए हैं और गङ्गा, यमुना, सिन्धु, सतलजादि की सृष्टि तो भारतीय मानव के लिए अभी कुछ ही दिन की बात है।

हिमालय की सृष्टि

सात करोड़ वर्ष पूर्व उत्तरजीवकल्प के प्रारम्भ से कुछ ही पूर्व गोण्डवानालेण्ड डूब चुका था और आज जहाँ मध्य और पश्चिमी भारत में मालवा और महाराष्ट्र के पठार हैं, वहाँ बड़े-बड़े ज्वालामुखियों ने प्रकट होकर इतना लावा (Lava) उगल डाला था कि उस लावा के सूख जाने से उत्तर में नीमच से लेकर दक्षिण में बेलगाम और पूर्व में नागपुर से पश्चिम में सागरतट के भी परे तक काली चट्टानों (Rocks) का एक विशाल पठार (Plateau) बन गया था। इयोसीन युग ज्योंही प्रारम्भ हुआ, त्योंही तत्कालीन भारत के उत्तर में जो टेथिससागर लहराता था, उसके तल के गर्भ में भयंकर उत्पात प्रारंभ हुए, जिनके परिणामस्वरूप सागर-तल ऊँचा उठने लगा और उठते-उठते समुद्र के जल की सतह से ऊँचा उठ आया और बाद में उसका एक बृहद् पर्वत बन गया। इस घटना को हिमालय का प्रथम उत्थान (First upheaval of the Himalayas) कहते हैं। हिमालय तीन समानान्तर पर्वत-श्रेणियों का बना हुआ है। हिमालय का जो सर्वोच्च भाग बारहों मास बर्फ से ढँका रहता है, वह मुख्य हिमालय (Main Himalayan Zone) कहलाता है। इसके दक्षिण में दूसरी श्रेणी है, जो लघुहिमालय (Lesser Himalayas) कहलाती है। लघुहिमालय के दक्षिण में हिमालय की जो तीसरी और अंतिम श्रेणी है, वह शिवालिक या निम्नहिमालय (Sub-Himalayan Zone) के नाम से प्रसिद्ध है। लघुहिमालय पर गर्मियों में बर्फ नहीं जमता और शिवालिक या निम्न हिमालय बारहों मास बर्फ से

---

* उत्तरजीवकल्प निम्नलिखित युगों में विभाजित है :—

युग

१—इयोसीन (Eocene)
२—ऑलिगोसीन (Oligocene)
३—मायोसीन miocene)
४—प्लायोसीन (Pliocene)
५—प्लिस्टोसीन या हिमयुग (Pleistocene or Ice age)
६—होलोसीन या सांप्रतयुग (Holocene or Recent)

मुक्त रहता है। हिमालय की प्रथम दो श्रेणियाँ सागरतल की स्तरीभूत चट्टानों (Stratified rocks) की बनी हुई हैं और अंतिम (शिवालिक) मानव जाति की नजरों के सामने लघुहिमालय की तलैटी में पूर्वकाल में आसाम से सिन्ध तक बहनेवाली इण्डोब्रह्म (Indo-brahma) महानदी का पात्र ऊँचा उठने से बनी है। इयोसिनयुग के भू-उत्पातों से टेथिससागर का तल ऊँचा उठने से सर्वप्रथम हिमालय की मुख्य पर्वतश्रेणी का निर्माण हुआ। मानव, नरवानर (Anthropoid apes) और वानर उत्पत्ति की दृष्टि से एक ही वंशवेलि के माने जाते हैं। इनकी उत्पत्ति जिस आदि प्राणी से हुई समझी जाती है, वह लेमुर था, जो अब केवल मेडागास्कर द्वीप में पाया जाता है।

महानदी इण्डोब्रह्म

हिमालय के प्रथम उत्थान के कारण टेथिससागर विलीन होगया और उसके स्थान पर उसकी अवशेष रूप हिमालय के दक्षिण में दो खाड़ियाँ रह गईं थी। इनमें से पश्चिम ओर वाली को सिन्ध सागर और जो पूर्व में थी उसको पूर्वसागर कहते हैं। दिल्ली, कालका और शिमला का प्रदेश उच्च होने से इन दोनों को पृथक् करता था। इयोसिन के बाद ऑलिगोसीन युग गुजरा और इसके पश्चात् अब से क़रीब पाँच करोड़ वर्ष पूर्व मायोसीन युग का उदय हुआ और तत्कालीन हिमालय तथा सिन्ध और पूर्वसागर के तलों में पुनः भू-उत्पात होने लगे, जिसके परिणामस्वरूप हिमालय और अधिक ऊँचा उठा और सिन्धु तथा पूर्वसागर का तल उच्च हो-होकर लघुहिमालय पर्वतश्रेणी के रूप में परिणत होगया। अब उत्तर भारत से सागर सदा के लिए विदा हुआ और हिमालय प्रदेश प्रायद्वीपीय भारत से जुड़ गया और इस प्रकार आधुनिक भारत का सृष्टिकार्य आगे बढ़ा। अब नव-निर्मित लघुहिमालय और प्रायद्वीपीय भारत यानी राजपूताना बुंदेलखण्ड और दक्षिण बिहार प्रदेशों के बीच जो निम्न प्रदेश था, उसमें उत्तर और दक्षिण दोनों ओर के पर्वतों की नदियों का जल इकट्ठा होने लगा और इस प्रकार आसाम से सिन्ध तक लघुहिमालय की तलैटी में बहनेवाली एक महानदी का निर्माण हुआ। इस महानदी को भूगर्भविदों ने इण्डोब्रह्म नाम दिया है। इण्डोब्रह्म के दक्षिण में उस समय राजपूताने में अरवली पर्वत, मध्य भारत में ग्वालियर और बुन्देलखण्ड के पर्वत और पूर्व की ओर राजमहल पर्वत था। अभी विन्ध्याचल की सृष्टि नहीं हुई थी। सिन्ध और दक्षिणी बंगाल सागर के गर्भ में थे।

शिवालिक के नरवानर

मायोसीन युग में ही इण्डोब्रह्म की घाटी सघन वनों से आच्छादित होगई। अतः आसपास के अनेक देश के प्राणी आ-आकर इस प्रदेश में निवास करने लगे। इस समय का हिमालय आज के समान न तो खूब ऊँचा ही था और न बर्फ से ही आच्छादित रहता था, अतः इसके पार प्राणी और वनस्पति आ-जा सकते थे। इसी समय किसी अज्ञात प्रदेश से नरवानरों की कुछ जातियाँ इण्डोब्रह्म उपत्यका में आकर बसीं। इन नरवानरों के अश्मीभूत अवशेष (Fossils) शिवालिक से बड़ी तादाद में प्राप्त हुए हैं। इन वानरों को वैज्ञानिकों ने शिवापिथेकस, रामापिथेकस, आदि नाम दिए हैं, और शिवालिक से प्राप्त ड्रायोपिथेकस को गोरिल्ला और शिम्पेंजी आदि आधुनिक नरवानरों से सम्बन्धित बताया जाता है। प्राचीन जीवन-विज्ञान के विशारदों का कथन है कि शिवापिथेकस नरवानर मानवजाति का पूर्वज प्रतीत होता है। शिवालिक की इन खोजों ने मानवजाति की उत्पत्ति के विषय में भारत को संसार में बहुत महत्त्व दिया है।

मायोसीन के पश्चात् प्लायोसीन युग शुरू हुआ, जो अब से करीब छः लाख वर्ष पूर्व हिमयुग के प्रारंभ तक जारी रहा। इण्डोब्रह्म उपत्यका में शिवालिक नरवानर प्लायोसीन युग के अन्त तक रहे। हिमयुग का प्रारम्भ भारत में भू-उत्पातों से हुआ और पुनः हिमालय प्रदेश हिलने-डोलने लगा। जिसके परिणामस्वरूप शिवालिक नरवानरों का कुछ तो संहार हुआ और शेष इण्डोब्रह्म घाटी में जीवनानुकूल परिस्थिति न रहने से अफ्रिका की ओर प्रस्थान कर गए।

भारत में यद्यपि मानवजाति के पूर्वजों के अवशेष मिले हैं तथापि वास्तविक मानव जाति के आदि रूपों के अस्तित्व के प्रमाण अश्मीभूत अवशेषों के रूप में अफ्रिका, चीन और जावा से प्राप्त हुए हैं। उसी प्रकार प्राचीनतम मानव जाति की सभ्यता के पार्थिव अवशेष, उसके द्वारा निर्मित और प्रयुक्त पाषाण के छिले हुए औजार हथियारों (Palaeoliths) के रूप में पूर्व और

दक्षिण अफ्रिका से प्राप्त हुए हैं। अतः इस आधार पर माना जाता है कि उत्तर भारत के शिवालिक नरवानर अफ्रिका पहुँचे और शायद वहीं उनका विकास होकर मानवजाति उत्पन्न होकर सब ओर फैली।

मानवोत्पत्ति और विन्ध्य-सतपुड़ादि पर्वतों की उत्पत्ति

प्लायोसीन के अंत में इस प्रकार मानवजाति उत्पन्न हुई और इस समय हिमालय प्रदेश में भू-उत्पातों से उल्लेखनीय परिवर्त्तन न हुए परन्तु प्रायद्वीपीय भारत के धरातल पर कुछ महत्त्वपूर्ण उलट-फेर हुए। राजपूताने के दक्षिण में मालवा से महाराष्ट्र तक ज्वालामुखी-द्वारा निर्मित काली चट्टानों का जो विशाल पठार बन गया था उसके मध्य भाग में पूर्व से पश्चिम की दिशा में सैकड़ों मील लम्बी दो समानान्तर भू फाटें (Faults) उत्पन्न हुईं। इन फाटों से यह विशाल पठार तीन भागों में विभाजित होगया। उत्तरी भाग भूफाट के स्थान पर उभर आया, जिसके परिणामस्वरूप भूगर्भ का भाग भूफाट की रेखा पर बाहर निकल आया और दक्षिण की ओर से एक लम्बी पर्वतश्रेणी की एक ओर की ढाल के समान दिखाई देने लगा। इस प्रकार विन्ध्याचल पर्वत की सृष्टि हुई। विन्ध्याचल एक ढालू पर्वत है और इसके शिखर पर से यानी उत्तर की ओर दूसरी ढाल होने के बजाय एक समतल प्रदेश है, जो खूब धीरे-धीरे उत्तर की ओर ढलता जाता है। यह नया प्रदेश आज का मालवा पठार है। इसका और विन्ध्याचल का शिरोभाग एक ही होने से वहाँ से जो नदियाँ प्रारंभ हुईं, वे मालवा की आधुनिक नदियाँ चम्बल, पार्वती, सिन्ध, बेतवा, इत्यादि हैं। मालवे के दक्षिण में विन्ध्याचल की तलैटी में आस-पास का पानी एकत्र होकर नर्मदा नदी के रूप में बहने लगा। इसी प्रकार विन्ध्याचल के दक्षिण में निकट ही जो एक और समानान्तर भूफाट थी, वह स्थान उभरकर सतपुड़ा पर्वत के रूप में खड़ा हुआ और इसकी तलैटी में एकत्र होनेवाला जल ताप्ती नदी के रूप में प्रवाहित होने लगा। इसी प्रकार पश्चिम की ओर उत्तर से दक्षिण दिशा में एक बहुत लम्बी भूफाट अरबसागर के समानान्तर उत्पन्न हुई और उसके उभर आने से पश्चिम की ओर सह्याद्रि या पश्चिमीघाट पर्वतश्रेणी और पूर्व की ओर पर्वत का दूसरा ढाल होने के बजाय महाराष्ट्र का पठार-प्रदेश निर्मित हुआ और गोदावरी, कृष्णा, भीमा, इत्यादि नदियाँ उत्पन्न होकर पूर्व की ओर बहने लगीं। प्लायोसीन तथा हिमयुग के संगमकाल की करीब छः लाख वर्ष की ये घटनाएँ हैं और हम देख ही चुके हैं कि इस समय अफ्रिका में मानवजाति का केवल जन्म ही नहीं हुआ था, वरन् उसकी सभ्यता भी प्रारम्भ हो चुकी थी।

अब हिमयुग का प्रारम्भ हुआ और उष्ण कटिबन्ध के उत्तर और दक्षिण की ओर के पृथ्वी के सारे प्रदेश बर्फ से ढक गए और उष्ण कटिबन्ध-स्थित प्रदेशों में कुछ उष्णता होने से बर्फ न जम सकी। परन्तु उसके बदले भीषण जलवृष्टियाँ होने लगीं। यह मानना गलत है कि हिमयुग में सदैव ही इस प्रकार का वृष्टि-हिम-काल (Glacio-pluvial period) जारी रहा था। हिमयुग में कुछ सहस्रों वर्ष तक तो पृथ्वी पर उपर्युक्त प्रकार से हिम तथा अति जलवृष्टि चालू रहती थी। और फिर एक हजारों वर्ष का उष्णकाल आता था जब कि हिम और अतिवृष्टि बंद होकर मौसम आज के समान हो जाता था। इसके पश्चात् पुनः हिम और अतिवृष्टि का सहस्रों वर्ष का काल आ जाता था। हिमयुग का ऐसा प्रत्येक हिम और जलवर्षा का काल वृष्टि-हिम-काल और उष्ण-काल हिमान्तर-काल (Interglacial period) कहलाता है। हिमयुग के समय ऐसे चार वृष्टि-हिम-काल और उनके मध्य तीन हिमान्तर काल गुजरे हैं। कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार हिमयुग के पश्चात् जो अब सांप्रतयुग (Holocene) जारी है, वह और कुछ नहीं परन्तु हिमयुग का चौथा हिमान्तर-काल है।

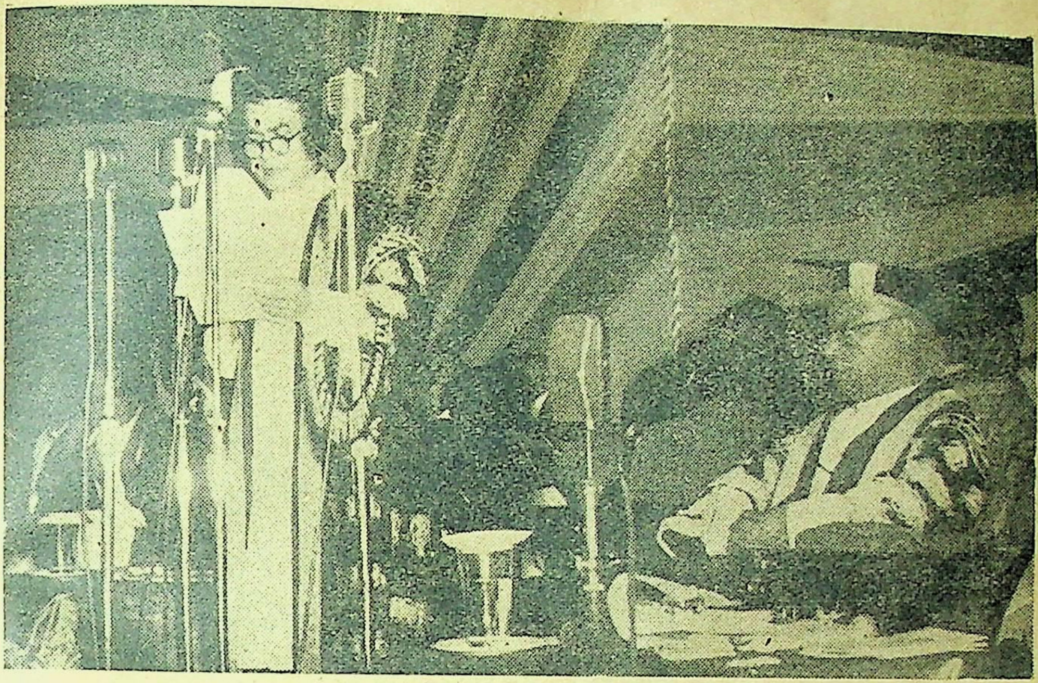
भारत में मानव का प्रथम पदार्पण

अनुसंधानों-द्वारा ज्ञात हुआ है कि हिमयुग के प्रथम वृष्टि-हिम-काल तथा प्रथम हिमान्तर-काल के समय भारत में मानवजाति की उपस्थिति नहीं थी क्योंकि इस समय के भूगर्भ के स्तरों से न तो मानव के अश्मीभूत अवशेष ही भारत में प्राप्त हो सके हैं और न उसकी सभ्यता की वस्तुएँ ही। द्वितीय वृष्टि-हिम-काल से यहाँ मानव सभ्यता के अवशेष प्राप्त होते हैं और इनके तथा

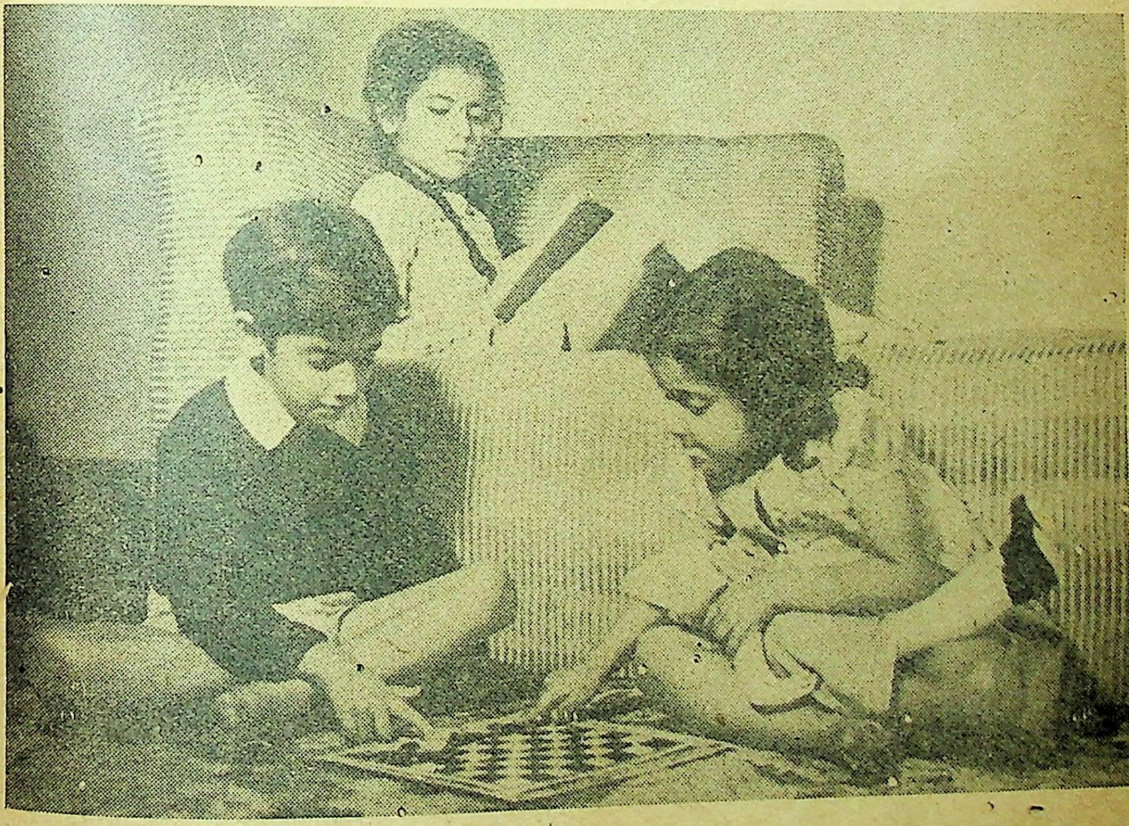
---

* शिवालिक नरवानरों के विशेष विवरण के लिए देखिए—

Fossil Man or Human Palaeontalogy, Boule.



दीक्षान्त-भाषण—कलकत्ता विश्वविद्यालय में चांसलर के रूप में गवर्नर डा० काटजू दीक्षान्त-भाषण कर रहे हैं।



बचपन—उधर अध्ययन, इधर खेल।

नृत्य-सौन्दर्य

तारा चौधरी भारत की एक उत्तम [क]लाविद् नर्तकी हैं। आपकी नृत्य-कला की [प्रश]ंसा देश में तो होती ही है, विदेशों में भी [हो] रही है। यहाँ उनकी दो आकर्षक मुद्राएँ [चि]त्र में अंकित देखिए।

दाईं ओर--उषा-नृत्य की मुद्रा में।

नीचे--कृष्ण - लीला में कृष्ण की [मुद्र]ा में।





तत्कालीन भूस्तरादि के वैज्ञानिक निरीक्षण और अध्ययन से पता चलता है कि अब से करीब पौने पाँच लाख वर्ष पूर्व मानवजाति शायद अफ्रिका की ओर से आकर भारत में सर्वप्रथम इण्डोब्रह्म उपत्यका में पदार्पण करती है और रहती है। इस समय जहाँ आज काश्मीर की घाटी है, वहाँ मीठे जल की एक विशाल झील थी, जिसको 'कारेवाँ सरोवर' कहा जाता है। हिमालय की ऊँचाई अब से करीब पौनी थी और उष्णकाल में उसके आर-पार लोग यातायात कर सकते थे। सिन्ध और बंगाल अभी सागर के गर्भ में ही थे और इण्डोब्रह्म उपत्यका के दक्षिण में गगनचुम्बी अरवली आकाश से बातें करता था। मध्य-भारत में अभी विन्ध्याचल धीरे-धीरे और उठता जारहा था। यही हाल सतपुड़ा और सह्याद्रि का भी था। आश्चर्य की बात तो यह है कि मदरास के निकट भी इस समय के भूस्तरों में मानव सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। हम इस समय नहीं कह सकते कि दक्षिण भारत में आदि मानव कब और कैसे जा पहुँचा था।

भारत में आदि मानव का प्रसार

सवा चार लाख वर्ष पूर्व उपर्युक्त वृष्टि-हिमकाल का अंत होकर उष्ण जलवायुवाला द्वितीय हिमान्तर-काल आरम्भ हुआ। अब बर्फ के गल जाने और वृष्टि की समाप्ति के कारण मानव-समाज को प्रस्तरण के लिए अच्छी सुविधा प्राप्त हुई और कारेवाँ सरोवर के आस-पास भी मानव-समुदाय बस गए। पश्चिम पंजाब (पाकिस्तान) की स्वां नदी के, जो इण्डोब्रह्म का आधुनिक अवशेष है, तट के स्तरों में से भी इस समय के आदि मानव की सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। उत्तर के आदि मानव के कुछ समुदायों ने इण्डोब्रह्म उपत्यका और कारेवाँ तट से दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और इसी प्रकार दाक्षिणात्य आदि मानव समुदाय भी चोलमण्डलम् (कॉरोमंडल) सागर तट के प्रदेश से उत्तर की ओर चल निकले और मध्य-भारत की नर्मदा घाटी में दोनों मानव-समाज मिले तथा कुछ समय साथ-साथ रहे। इस समय नर्मदा के जल में गेण्डे और भीमकाय घड़ियालादि ऐसे प्राणी होते थे, जो अब यहाँ नहीं हैं। इन दोनों मानव समुदायों की सभ्यता की वस्तुओं के साथ-साथ इन प्राणियों के अश्मीभूत अवशेष भी नर्मदा घाटी के इस समय के स्तरों से प्राप्त हुए हैं।

भारत के आदि मानव के इन दो विभागों को इनकी सभ्यता के अवशेषों के आधार पर पहिचाना गया है। ये अवशेष प्रायः पाषाण के छिले हुए औज़ार-हथियारों के रूप में प्राप्त होते हैं और इनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारत का आदि मानव कुशल कारीगर था। इस समय का मानव समाज शिकार और कन्दमूल पर ही निर्वाह करता था और उसका जीवन स्थिर नहीं था। केवल नदियों और सरोवरों के किनारों पर वह कुछ समय तक रह सकता था क्योंकि वहाँ पानी की उपस्थिति के कारण शिकार की सुविधा थी। इस समय यानी हिमयुग के मानव को आदि मानव जाति इसलिए कहा जाता है कि वह अभी हम जैसा विशुद्ध मानव (Homo sapiens) नहीं बन सका था। उसके आधे शारीरिक लक्षण नर-वानरों जैसे और करीब आधे हम लोगों के समान थे। वह कुछ कुटुम्बों के छोटे-छोटे गुट्ट बाँधकर आज की वन्य-जातियों की भाँति रहता था। वह आग सुलगा लेता था और कुछ धार्मिक विश्वास भी उसके मन में उदय हो गए थे। यद्यपि उसके सारे शरीर पर साधारण बाल थे, तथापि उसको सर्दी से बचने के लिए चमड़े के वस्त्र बनाकर धारण करने पड़ते थे। इस समय के आदि मानव के अवशेष राजपूताने में जैपुर, मध्यभारत में नीमच, ग्वालियर, मध्यप्रांत में दमोह, पश्चिम भारत में साबरमती की घाटी, हैदराबाद राज्य में गोदावरी तट, कर्णाटक में तुंगभद्रा और कृष्णा तट, उड़ीसा, चोलमण्डलम् सागरतट और मदरास प्रांत में अनेक स्थानों से नदियों की घाटियों के हिमयुगकालीन स्तरों से प्राप्त हो चुके हैं। जैसे उत्तर में कारेवाँ सरोवर पर आदि मानव बसा हुआ था, उसी प्रकार कर्णाटक में हिमयुग के समय मीठे पानी के कई बड़े-बड़े सरोवर थे और इनके तट पर आदि मानव समुदाय बसे हुए थे। द्वितीय हिमान्तर के पश्चात् तृतीय वृष्टि-हिम-काल के समय भी करीब-करीब यही परिस्थिति थी, परन्तु ज्यों-ज्यों समय गुजरता था, त्यों-त्यों उसकी बनाई हुई वस्तुएँ कला की दृष्टि से उत्कृष्ट और आकार में छोटी होती जाती थीं।

हिमालय का अंतिम उत्थान और गंगा-सिन्धु की उत्पत्ति

करीब पौने दो लाख वर्ष पूर्व तृतीय हिमान्तर काल प्रारम्भ होते ही भारतभूमि पर रुद्र ने पुनः तांडव मचा

दिया। हिमालय की काया डोलने लगी और प्रलयंकर भू-उत्पात पुनः हिमालय को ऊपर उठाने लगे। ये उत्पात ऐसे भीषण थे कि हिमालय के साथ-साथ इण्डोब्रह्म नदी का पात्र भी ऊँचा उठा और हिमालय की तीसरी पर्वतश्रेणी शिवालिक बन गया और कारेवाँ सरोवर का तल उभरकर पीर पंजाल पर्वत की चोटी पर जा पहुँचा। इण्डोब्रह्म नदी के तीन टुकड़े हो गए, जिनको आज हम ब्रह्मपुत्र, गंगा और सिन्ध के नामों से पहिचानते हैं। भारत के मध्य भाग में नर्मदा का प्रवाह बदला और पश्चिम की ओर सागर सिन्ध के कुछ भाग पर से हट गया। ये सब घटनाएँ भारत के आदि मानव ने अपनी आँखों से देखीं। भारत के पश्चिम में कई घटनाएँ हुई खासकर मृतक और लालसागर तथा अफ्रिका की झीलें इसी समय उत्पन्न हुईं। इन घटनाओं के परिणाम-स्वरूप भारत से आदि मानव ने प्रस्थान करना प्रारम्भ कर दिया।

चतुर्थ हिमकाल का प्रारम्भ करीब एक लाख दस हजार वर्ष पूर्व हुआ और अब से करीब पचीस हजार वर्ष पूर्व समाप्त हुआ। इस समय के स्तरों में भारत में मानव जाति के अस्तित्व के प्रमाण प्राप्त नहीं होते। भारत का आदि मानव भारत से प्रस्थान करके बहुधा अफ्रिका जा पहुँचा था, क्योंकि भारत अब शुष्क होकर रेगिस्तान-सा बनता जा रहा था, परन्तु पश्चिम की ओर अफ्रिका में आज जहाँ सहारा रेगिस्तान है वहाँ सघन वन खड़े हुए थे और जल का टोटा न था।

इस घटना के पश्चात् मानव जाति भारत में आदिम कृषकों के रूप में ईरान और मध्यएशिया के पठारों पर से ईस्वी सन् पूर्व ४००० के करीब पुनः प्रवेश करती है। बलूचिस्तान और एक स्थान पर वैदिक सरस्वती के पुरातन तट पर इस समय की सभ्यता के अवशेष प्राप्त हो चुके हैं। ये लोग प्रागैतिहासिक सिन्धु (हरप्पा सभ्यता) घाटी के निवासियों के पूर्वज थे और ईराक के उन आदि कृषकों के समकालीन थे, जिनकी सभ्यता 'अल-उबैद सभ्यता' कहलाती है और जिनका वर्णन सुमेरीय जाति की प्रलयकथा (गिलगमेश महाकाव्य) में मिलता है।

—सुधाकर

प्रस्तुत लेख के विषय की अधिक जानकारी के लिए कुछ साहित्य—

सुप्रसिद्ध पुराविद् मेकेलिस्टर, बर्किट, जोइनर, प्रभृति की Prehistory विषय की पुस्तकें :

R. Bruce Foote, Indian Prehistoric & Protohistoric Antiquities.
A. C. Logan, Old Chipped Stones of India.
P. Mitra, Prehistoric India.
D. N. Wadia, Geology of India.

गीत

रे पथिक! यह पंथ मेरा कठिन भी, आसान भी है।

प्राण के हर साँस में,
कितने यहाँ मिटते-मिटाते॥
दो दिनों के प्यार में,
कितने यहाँ लुटते-लुटाते।
प्रेम-वेदी पर यहाँ बलिदान, जीवन-दान भी है॥ रे पथिक०॥

मानते अपना जिसे तुम
वह यहाँ अपना नहीं है;
विश्व यह कुछ और ही है
जो निरा सपना नहीं है
पार इस मानस क्षितिज के पतन भी उत्थान भी है॥ रे पथिक०॥

शलभ निज अस्तित्व खोकर,
है यहाँ अमरत्व पाता।
दीप फिर भी तो न उसके,
प्रेम को पहिचान पाता।
प्रेम के इस चिर-जगत में मान भी, अपमान भी है॥ रे पथिक०॥

इधर शूलों में सुमन
रोता करुण आँसू बहाता,
उधर मधुकर मधुरजीवन
का मृदुल संगीत गाता
विश्व की इस मूक वाणी में रुदन भी, गान भी है॥ रे पथिक०॥

—'जानकार'

सत्रह सौ उनतीस

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

पालकी में राजा शुभकर्ण बैठा हुआ था। वह इस समय हाफ़िज खिदमतगार ख़ाँ की हवेली से लौट रहा था। बादशाह के बख्शे हुए लिबास में बिछुए के परे ने बैठकर एक छेद कर दिया। छेद बड़ा न था परन्तु जिस कपड़े में छेद हो गया था, वह पालकी में बैठे हुए राजा का था और उसको स्वयं बादशाह ने बख्शा था। लड़कों की बदमाशी कैसे सही जा सकती थी? शुभकर्ण को क्रोध आ गया। सिपाहियों से बोला, "सालों के दाँत तोड़ दो। शाहन्शाह के बख्शे हुए सिरोपाव में आग लगा दी है!"

फिर क्या था। सिपाहियों ने बिना किसी पक्षपात के कई हिन्दू-मुसलमान बालकों की, जो उनके घेरे में से भागकर नहीं निकल पाए थे, मरम्मत शुरू करदी।

उन लड़कों की मारपीट में, शाबान के महीने का, और आनेवाली शबरात का अपमान होता हुआ देखकर अनेक जूता रोश दूकानें छोड़-छोड़कर बालकों को बचाने और शुभकर्ण से प्रतिवाद करने के लिए दौड़ पड़े। उन लोगों के दौड़ पड़ने और प्रतिवाद करने पर भी सिपाहियों के हाथ नहीं रुके।

शुभकर्ण ने चुब्धस्वर में कहा, "आप लोगों को शरम आनी चाहिए। क्या आप लोग इन लौंडों को यही तालीम देते रहते हैं? इन लोगों ने मेरा दरबारी लिबास जला दिया!"

"उसमें पैबन्द लगवा लीजिएगा," एक दूकानदार जरा दूर से बोला; "क्या ये सिपाही बच्चों को मार डालने के लिए मुकर्रर किए गए हैं? जरा जवानों से मुकाबिला पड़े तब बहादुरी की जाँच हो।"

शुभकर्ण और उसके सिपाही और भी क्रुद्ध हुए। बीच-बिचाव के लिए दूकानदारों के आने पर कुछ बच्चे सिपाहियों के घेरे से निकल भागे। उन्होंने सिपाहियों पर कंकड़ और धूल फेंकी। सिपाहियों को और तैश आया। एक सिपाही एक निकटवर्तीय बालक को पकड़ने के लिए दौड़ा। कुछ दूकानदार बीच में आ गए। सिपाही ने एक दूकानदार की हिलती हुई दाढ़ी को पकड़कर तमाचा जमा दिया। दूसरे दूकानदार उस सिपाही से चिपट गए। सिपाही हथियारबन्द था, परन्तु उसने हथियार का प्रयोग नहीं किया। दूकानदारों की भीड़ इकट्ठी हो गई। वे सिपाहियों पर टूट पड़े। एक सिपाही के अङ्ग-अङ्ग पर मार पड़ी और भीड़ ने उसके हाथियार छीन लिए। सिपाहियों ने गाली-गलौज किया। दूकानदारों के हुल्लड़ ने अधिक वेग और उत्साह के साथ जवाब दिया। शुभकर्ण की पालकी के कहार अधीर हो उठे। शुभकर्ण ने भी देखा कि ठहरने में खैर नहीं। कहारों को चल पड़ने का हुक्म दिया। कहार चल पड़े। सिपाही भी मारते-पीटते और कुटते-पिटते, और अपने हथियारों को बचाते-बरकाते वहाँ से भागे। भीड़ ने तानें मारते हुए थोड़ी दूर तक पीछा किया। फिर लौट पड़ी।

शुभकर्ण की हवेली जौहरी बाजार के पीछे थी। भीतर जाते-जाते रात हो गई। शुभकर्ण क्रोध और ग्लानि के मारे काँप रहा था। सिपाही, जिनमें हिन्दू-मुसलमान दोनों थे, और भी अधिक उत्तेजित थे।

"इन हरामजादे जूताफ़रोशों को सजा दूँगा," शुभकर्ण ने चिल्लाकर कहा। जिस सिपाही के हथियार छिन गए थे, उसका गला रुद्ध था, बदन सूजा हुआ और माथे की नसें तनी हुई। कठिनाई के साथ उसने अपने स्वामी का भाव प्रतिध्वनित किया, "मैं मुँह दिखलाने लायक नहीं रहा।"

शुभकर्ण ने आवेश के साथ उत्तर दिया, "कभी

नहीं। अभी जाकर उन बदमाशों को चुन-चुनकर सजा दो। और सिपाही साथ ले जाओ। जितनों को पकड़ सको, कोतवाल साहब के हवाले करदो। कल उनके पौंद फुड़वाऊँगा।"

राजा के हथियारबन्द सिपाहियों की भीड़ चौक सादुल्लाखाँ की ओर दौड़ पड़ी। सिपाहियों ने अपने स्वामी के आदेश को यथावत् पालन करने का संकल्प कर लिया था।

छोकरे अब भी टोलियाँ बाँधे इधर-उधर घूम रहे थे, परन्तु पटाखे नहीं छुटा रहे थे। दूकानदार गर्वोन्मत्त थे और दो-दो चार के समूहों में बंटकर अपनी शूरता का बखान कर रहे थे। नमाज का वक्त चूक गया था, लेकिन उनको इसकी परवाह नहीं थी।

शुभकर्ण के सिपाहियों की भीड़ के आते ही छोकरे भाग गए। केवल एक बच्चा सिपाहियों की आभड़ में बीध गया। बच्चा हिन्दू था।

"यही है, यही तो है। मारो साले को।"

"मैं नहीं था, मैं नहीं था," बच्चे ने रोते-रोते कहा, "पटाखे छुटानेवाले तो भाग गए।"

परन्तु सिपाहियों ने एक न सुनी। उस बच्चे को कुछ ही क्षण में इतना मारा कि वह मृतप्राय हो गया।

टूटी खाट पर हाजी अब भी बैठा था। उससे लड़के का क्रन्दन और पिटना न देखा गया। तुरन्त नंगे पाँव दौड़ा आया और पिटते हुए बच्चे से लिपट गया। उसकी दाढ़ी और हाथों ने बच्चे को छिपा लिया।

सिपाही क्रोध में पागल हो चुके थे।

एक सिपाही ने तलवार खींचकर वार किया। हाजी पर हाथ पूरा बैठा। वह तुरन्त मर गया। बच्चा उसकी लाश के नीचे सिसक रहा था।

सिपाहियों ने देखा, आवश्यकता से आगे बढ़ गए। कुछ जूताफरोश हथियार लेकर उनकी ओर दौड़ रहे थे। सिपाही अविलम्ब शुभकर्ण की हवेली की ओर भागे। दूकानदारों ने अन्धेरे के कारण उनको पहिचान नहीं पाया और न उनका पीछा कर पाया। वे हाजी की देख-भाल में व्यस्त हो गए।

शुभकर्ण ने हाजी के वध की बात सुनते ही ठंडक पाई,—इतनी कि कलेजा जरा नीचे को धसक गया। राजा को सन्नाटे में देखकर सिपाही बोला, "हुजूर, उसी ने हमारे हथियार छिनवाए थे।"

"मगर वह हाजी था।"

"नहीं हुजूर, वह पाजी था।"

शुभकर्ण ने कुछ सोचकर कहा, "तलवार का खून फौरन पोंछो। अगर कोई पूछे तो इनकार कर देना। न मालूम किसने मारा। दिल्ली में रोज ही ऐसे दंगे-फसाद हुआ करते हैं और रोज सड़कों पर आदमी कट मरते हैं। समझ गए?"

सिपाहियों ने सिर हिलाकर हामी भरी। शुभकर्ण ने एक सुझाव और दिया, तुम लोग हथियारों से लैस, मगर, अपनी अपनी जगह कमरबन्द रहो। मैं जरा-सा खाना खाकर खाँ साहब नवाब शेर अफगन के पास जाऊँगा, मामला ठंडा हो जाएगा। कोई डर की बात नहीं।

देवकी को कुछ हाल मालूम हो गया था। खाना खिलाते समय उसने कहा।

"बात जरा बढ़ गई है।"

"हाँ, परन्तु मेरे सिपाहियों का ज्यादा दोष नहीं है।"

"जो होनहार है, वह तो होकर ही रहता है, पर सिपाहियों को चौक की ओर रवाना नहीं करना चाहिए था।"

"फिर क्या करता? यों ही पी जाता?"

"नहीं तो, अपमान तो बहुत हुआ, उपाय के लिए सवेरे तक ठहरने में कोई हानि न होती।"

"अब जो कुछ हो। खाँ साहब के पास जा रहा हूँ।"

× × ×

(१२)

शुभकर्ण ने कठिनाई से थोड़ा-सा खा पाया। तुरन्त जले हुए दरबारी कपड़े को बगल में दबाए शेर अफगन की हवेली पर अंगरक्षकों के साथ पैदल पहुँचा। अभिवादन किया। फिर आँखों से दो बड़े-बड़े आँसू टपकाकर पोशाक शेर अफगन के सामने रख दी।

"हुजूर, बड़ी तौहीन हुई। बहुत जिल्लत।" शुभकर्ण ने कहा।

"क्या हुआ राजा साहब?" शेर अफगन ने मूँछ पर उँगली फेरते हुए एक आँख तरेरकर पूछा।

शुभकर्ण ने बालकों की शरारत और जूताफरोशों

की बदमाशी को बढ़ा-बढ़ाकर बतलाया। हाजी की मृत्यु-वाला परिच्छेद नहीं सुनाया।

शेर अफगन ने तमककर कहा, "क्या आपके सिपाही सब नामर्द हैं? सब कूड़ा-कर्कट? क्यों नहीं १०-५ जूता-फरोशों के सिर धड़ से जुदा कर दिए?"

शुभकर्ण ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "हुजूर, उस हंगामे में एक सिपाही फँस गया था। उसकी जान पर आ बनी। तलवार का वार हुआ। एक जूताफरोश मारा गया।"

"सिर्फ एक!"

"हुजूर, एक ही। मगर वह हाजी था।"

"होगा जी। हाजी को क्या सिपाही के हथियार छीनने की सनद मिली हुई थी?"

"हुजूर, वह बुड्ढा भी था।"

"होगा, आप क्यों जान छोड़े दे रहे हैं?

"बुड्ढे आदमी ही तो फसाद करवाते हैं।"

शुभकर्ण का मन आनन्द की पैगों पर झूलने लगा, परन्तु उसने अपना चेहरा ऊँचा नहीं किया। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे।

शुभकर्ण बोला—"हुजूर, जूतेफरोश कुछ ऊधम जरूर करेंगे। कल चौक सादुल्ला खाँ में होकर मुझको अपने काम से फिर गुजरना होगा। सिपाही साथ होंगे। शायद बात बढ़ जाए।"

शेर अफगन ने कहा, "राजा साहब, आप भूलते हैं। मेरे पास दस हजार असली पठान और राजपूत हैं, और इससे ज्यादा रोशनुद्दौला साहब के पास। मेरे भाइयों के पास कम नहीं हैं। सवाई राजा जयसिंह भी अभी दिल्ली में ही हैं।"

शुभकर्ण चालाक जौहरी था। दबी जबान से बोला, "सरकार, जूताफरोशों की तादाद बहुत काफी है। सारे चौक के दोनों तरफ वे ठसाठस भरे हुए हैं और तमाम परदेसी उनके हिमायती हैं।"

जरा-सा मुस्कराकर शेर अफगन ने फिर मूछों पर हाथ फेरा। कहता गया, "जूताफरोश क्या चीज हैं! रोशनुद्दौला तुर्रेबाज, भाई लुतफुल्लाखाँ, भाई दिलदिलेर खाँ वगैरह सब मिलाकर पचास हजार पठान और राजपूत एक लहमें में पेश कर सकते हैं, जिनके हथियारों की झनझनाहट भर से जूताफरोशों और उनके हिमायतियों के कान बहरे हो जाएँगे। हमारे पास इतनी फौज है कि दिल्ली भर में नहीं समा सकती।"

अब शुभकर्ण अपनी प्रसन्नता को न सँभाल सका। बोला—

"बादशाह सलामत और वजीर का रुख क्या होगा, हुजूर?"

शेर अफगन ने बिना किसी बाधा के उत्तर दिया, "जिस तरफ रोशनुद्दौला का तुर्रा हिल जाएगा, उसी तरफ बादशाह सलामत की मर्जी का इशारा होगा; मगर इतने बेकाबू क्यों हुए जा रहे हो, राजा साहब? बात कुछ नहीं है। यह तो दिल्ली का रोज का अमलदस्तूर है।

शुभकर्ण ने तुरन्त उत्तर देना ठीक नहीं समझा। गर्दन नीची कर ली। शेर अफगन ने सिर ऊँचा किया। सोचा।

सोचकर कहा, "राजा साहब, आप मेरे मकान पर आ जाइए। उम्मेद है कि मामला यों ही ठंढा हो जाए। न भी हुआ तो ठंढा करने की कोशिश की जाएगी। आप बाहर निकलेंगे तो शायद आग बेकार भड़क उठे।"

राजा ने खाँसकर गला साफ किया और उपर्युक्त अवसर की बाट में थोड़ी देर चुप बना रहा। शेर अफगन ने कुछ क्षण उपरान्त कहा—

"मामला फिजूल ही बढ़ गया।"

"हुजूर!"

"मगर ज्यादा गौर करता हूँ तो समझ में आता है कि हमारे सिपाही और करते भी क्या!"

"हुजूर।"

"फिर भी भीतर की एक आवाज कहती है कि अगर अक्ल से काम लिया जाता तो मरने-मारने की नौबत न आती। लौंडों का खिलवाड़ ही तो था और जमाना अभी बिलकुल मुआफिक भी नहीं है।"

अबकी बार शुभकर्ण ने "हुजूर" शब्द बहुत क्षीण स्वर में कहा।

वह शेर अफगन को अधिक स्पर्श कर गया। बोला, "जो कुछ भी हो, मामले को निगाह-से-निगाह मिलाकर ही देखना पड़ेगा।"

शुभकर्ण को फिर कुछ सहारा मिला। "हुजूर," शुभकर्ण ने तौलकर कहा, "पठान और राजपूत सिपाही का हथियार उसकी मानमर्यादा की हद है। छीने हुए

हथियार को वापिस लेने के लिए सिपाही गए। जूता-फरोशों ने फसाद कर दिया। अपने बचाव के लिए मेरे सिपाहियों ने हथियार उठाया। अचानक एक विचारा बुड्ढा मारा गया। मेरे दिल में यही बहुत कसक रहा है।"

शेर अफगन के दबे भाव ने फिर पलटा खाया। गर्दन मरोड़कर बोला—

"बुरा-भला जो हुआ सो हुआ। अब जो कोई भी मेरे मातहत की बेइज्जती करने की हिम्मत करेगा, उसको ऐसा सबक सिखलाऊँगा कि कभी न भूल सकेगा।"

"सरकार !" राजा ने कुछ निवेदन और कुछ प्रश्न-सा करते हुए कहा।

"बेशक", शेर अफगन ने दृढ़तापूर्वक ढाढ़स दी, 'बेशक चाहे दुनिया इधर-की-उधर हो जाए।"

शुभकर्ण बोला—"हुजूर की पनाह में मेरा तो बाल भी बाँका नहीं हो सकता, लेकिन घर पर बाल-बच्चे हैं।"

शेर अफगन इस बात पर जरा हिल गया। एक क्षण सोचकर बोला—"फौरन घर जाइए। बाल-बच्चों को मेरी हवेली पर ले आइए। आपकी रानी साहब मेरी निज बहिन के बराबर हैं। तब तक सब लोग यहीं बने रहना जब तक कि मामला रफै-दफै नहीं हो जाता। आजकल रोशनुद्दौला के यहाँ से मेरी और बहिनें भी आई हुई हैं।"

शुभकर्ण तुरन्त अपने घर गया। देवकी को समाचार सुनाया। वह सहमत हो गई, सब कीमती सामान लेकर शुभकर्ण सपत्नीक शेर अफगन की हवेली के एक भाग में प्रातःकाल के पहले ही आ गया। उसके सिपाहियों ने भी शेर अफगन के यहाँ डेरा पा लिया। सबेरे लोगों ने शुभकर्ण की हवेली पर ताला पाया।

(१३)

पौ फट गई। तड़का हुआ। फिर सबेरा। चिड़ियाँ चहक उठीं। मन्द-मन्द ठंढी हवा चलने लगी। ठंढी हवा की परवाह न करके तड़के उठ जूताफरोश हाजी की लाश के पास इकट्ठे होने लगे। लाश उसी टूटी चारपाई पर रक्खी हुई थी, जिसके एक कोने पर माला थी। लाश पर खून से भीगी एक चादर पड़ी थी।

तीव्र हाहाकार हो उठा। मुहल्ले-मुहल्ले में उसकी गूँज फैल गई।

सूर्योदय हो आया। वसन्त की भीनी भीनी वायु को उस जन-समूह का चीत्कार भेदने लगा। उत्तर की ओर थोड़ी दूर पर बादशाह का महल था। वह उस समय शायद सोकर भी न उठा था। उठ भी गया होता तो मजहब और दीन की पुकार उसको त्रस्त नहीं कर सकती थी।

'दीन' 'दीन' की पुकारों ने उठते हुए सूर्य के साथ हाहाकार और चीत्कार को दबा लिया।

भीड़ में से एक युवक निकलकर आगे आया। उसके पीतवर्ण पर रक्त की गुलाबी लहरें आ गई थीं। अमीर आजमखाँ के साढ़ू का लड़का था, कुछ लोगों ने पहिचान लिया। अपने दल का आदमी समझकर एक जूताफरोश ने कहा—

"मियाँ गुलाब खाँ, देखिए इस अन्धेर को। राजा शुभकर्ण ने इस गरीब हाजी को मार डाला है।"

गुलाब खाँ ने सम्मति दी, "इस तरह के बेकार जोश से कोई फायदा नहीं होगा। एक जगह जरा बैठकर सलाह करनी चाहिए।" लोग राजी हो गए। एक बड़ी दूकान के भीतरी हिस्से में गुलाब खाँ को लेकर कुछ मुखिए जा बैठे। बाहर बढ़ती हुई भीड़ का कोलाहल जारी रहा। जो लोग काम पर जा रहे थे, उन्होंने सोचा आज छुट्टी ही सही। हिन्दुस्थानी दल के लोग आपस में यह कहते हुए घर या काम पर चले गए, "जब कोई विलायती हमारे आदमी को मार डालता है, तब कोई कुछ नहीं कहता है और न दीन खतरे में पड़ता है।" परन्तु उन्होंने अपना कोई ठठ इकट्ठा नहीं किया।

गुलाब ने जूताफरोशों के मुखियों की बात सुनकर कहा, "जनाब, यह तो शुरुआत है। हिन्दुस्थानी लोग हम सब विलायतियों को मिटाकर ही चैन लेना चाहते हैं। राजा जयसिंह और रोशनुद्दौला वगैरह ने वजीर को गारत करने के लिए साजिश की है। इसके बाद वे लोग निजामुल्मुल्क और अवध के सूबेदार को खाक में मिलाएँगे, फिर बादशाह को खतम करके किसी राजपूत के हाथ में दिल्ली के तख्त को दे देंगे।"

क्रमशः



डाक्टर अम्बेदकर से मेरी भेंट

किसी विद्वान् का भाषण सुनने या उसकी पुस्तक का पाठ करने से जितना लाभ होता है, उससे कहीं अधिक उसके सत्संग से होता है। इसीलिए हमारे यहाँ सत्संग की बड़ी महिमा बताई गई है। भाषण मूसलाधार वर्षा के सदृश है। जिस प्रकार वर्षा का बहुत थोड़ा अंश भूमि सोख पाती है, अधिकांश ऊपर से बहकर निकल जाता है, उसी प्रकार भाषण की अधिकांश बातें श्रोता के हृदय में प्रवेश न करके, एक कान से दूसरे कान के रास्ते बाहर निकल जाती हैं। पुस्तक-पाठ से भी कई शंकाएँ वैसी-की-वैसी बनी रह जाती हैं। पर जब हम किसी विद्वान् से भेंट करके बातचीत करते हैं तो उसकी बातें धीरे-धीरे बरसनेवाले पानी की भाँति हमारे अन्तस्थल में पहुँचती जाती हैं। वहाँ हम उतना ही मानसिक भोजन करते हैं, जितना हम पचा सकते हैं। प्रश्नोत्तर-द्वारा हम किसी विद्वान् की विद्वत्ता से पूरा-पूरा लाभ उठा सकते हैं, अपनी सभी शंकाएँ निवृत्त कराकर अपने ज्ञान को निर्मल कर सकते हैं। किसी महात्मा या गुरु या विद्वान् का दर्शन व्यर्थ है, जब तक उससे बातचीत न की जाए। इसीलिए जब तक मुझे आशा न हो कि मैं अमुक गुरु, पीर, महात्मा या विद्वान् से बातचीत भी कर सकूँगा, मैं केवल दर्शन के लिए कभी उसके पास नहीं जाता।

भारत-सरकार के कानून-मंत्री डाक्टर भीमराव अम्बेदकर पहुँचे हुए महात्मा चाहे न हों, पर उनके विद्या-वारिधि होने में तो कोई सन्देह ही नहीं। मैं जब-जब उनसे मिला हूँ, सदा अपने ज्ञान में कुछ-न-कुछ वृद्धि का अनुभव करता रहा हूँ। इसलिए जब भी मुझे उनसे मिलने का सुयोग मिलता है, मैं सदा उससे लाभ उठाने का यत्न करता हूँ। गत ८ फरवरी १९४९ को दिल्ली में उनसे मिलने का सुयोग प्राप्त हुआ था। उनसे विविध विषयों पर वार्त्तालाप करके मुझे बड़ा आनन्द मिला था। उसी वार्त्तालाप का वर्णन पाठकों के लाभार्थ आगे किया जाता है।

डाक्टर महोदय इण्डिया गेट के निकट हार्डिङ्ग एविन्यू पर एक नंबर की कोठी में रहते हैं। मैं पुरानी दिल्ली में २५१२, तेलीवाड़ा में ठहरा था। दोनों स्थानों में कोई चार मील का अन्तर है। डाक्टर महोदय ने कृपा-पूर्वक मुझे लाने के लिए अपने एक सहवासी सज्जन को तेलीवाड़ा भेजा। मैं सायंकाल कोई सवा-सात बजे उनकी कोठी पर आ पहुँचा। उस समय उनके पास उनकी धर्म-पत्नी, श्री० विश्वबंधु शास्त्री और दो और इँगलैण्ड से ताजे लौटे हुए सज्जन बैठे थे। दम्पत्ति को नमस्ते करके मैं भी बैठ गया।

मैंने हाल में जातिभेद पर "हमारा समाज" नाम की एक पुस्तक लिखी है। उस पर मैं डाक्टर महोदय का मत जानना चाहता था। इसलिए पहले जाति-भेद पर ही बात-चीत चली। जाति-भेद की हानियाँ बताते हुए डाक्टर महोदय ने कहा कि अपने परिवार के साथ प्रेम होना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। यह प्रत्येक देश और प्रत्येक राष्ट्र में पाया जाता है। एक जर्मन अपने परिवार से विशेष प्रेम रखता है। पर इसके बाद सब जर्मन उसके लिए बराबर हैं। वह सबको एक दृष्टि से देखता है। परन्तु भारत के हिन्दुओं में ऐसी बात नहीं। हिन्दू पहले अपने परिवार से, भाई-बंधुओं से प्रेम करता है। इसके बाद उसके प्रेम की पात्र उसकी उपजाति होती है। परिवार और उपजाति को देने के बाद उसमें जो प्रेम बचता है, वह उसकी जातिवालों को मिलता है। उसके बाद उनके सम्प्रदाय और धर्मवालों की बारी आती है। उसका

सारा प्रेम वहीं तक पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो जाता है। देश को देने के लिए उसके पास कुछ नहीं रहता, क्योंकि कोई भी व्यक्ति हो, उसमें प्रेम का मात्रा अमित नहीं हो सकती। यही कारण है कि भारतीयों में सच्चे देश-प्रेम का इतना अभाव है। इनमें ज़ाति-बिरादरी-प्रेम का ही प्राबल्य है। इसलिए जब तक जात-पाँत को मिटाया न जाएगा, प्रचण्ड देश-भक्ति का प्रादुर्भाव भारत में संभव नहीं।

इसी प्रसंग में उन्होंने एक और बड़े पते की बात कही। आपने कहा कि किसी वस्तु या सम्पत्ति का स्वामित्व मनुष्य के दृष्टिकोण को सीमित और हृदय को संकुचित कर देता है। उसका विचार सदा उस सम्पत्ति के साथ ही लिपटा रहता है। वह उदार नहीं होने पाता, वह सार्वभौम दृष्टि नहीं रख सकता। भगवान् बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को संसार के सामने एक आदर्श बनाए रखने के लिए बनाया था। भगवान् जानते थे कि गृहस्थ के लिए धन-धान्य में लिप्त होना अनिवार्य है। किसी सम्पत्ति का स्वामी बन जाने पर गृहस्थ के लिए सार्वभौम दृष्टि रखना सम्भव नहीं। पर जब उनके सामने सर्वस्व-त्यागी, त्रिचीवर मात्रधारी भिक्षु आदर्श रूप में उपस्थित रहेंगे, गृहस्थ भी माया-मोह और स्वार्थ में बहुत अधिक डूबने से बचते रहेंगे। भिक्षु की क्योंकि अपनी सम्पत्ति कुछ नहीं होती, इसलिए वह सार्वभौम दृष्टि रख सकता और सबके साथ-साथ रह सकता है। भिक्षु के रूप में यह आदर्श सामने रहने से जनता में धन-धान्य के लिए उतना कलह नहीं होता और स्वार्थ एवं अन्याय का भाव प्रबल नहीं होने पाता। इसके विपरीत चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था में ब्राह्मण आप ही स्मृतिकार था। इसलिए उसने स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने को सर्वश्रेष्ठ ठहराया और दूसरों को निकृष्ट। जगत् के सकल पदार्थ अपने लिए बताए और कहा कि शेष संसार ब्राह्मण का दिया खाता है, यह जगत् परमात्मा ने ब्राह्मण के लिए ही उत्पन्न किया है। स्मृतियों में शूद्रों के लिए ब्राह्मण ने जो अन्यायमूलक कानून बनाए हैं, वे कोई सर्वस्व-त्यागी भिक्षु कभी नहीं बना सकता था। यह ठीक है कि समता संसार में कहीं नहीं; असमता सब कहीं देखने में आती है; पर इस असमता या जन्मना ऊँच-नीच को धर्म या कानून का रूप ब्राह्मण के सिवा और किसी धर्म ने नहीं दिया। मुसलमानों और ईसाइयों में भी पूर्ण समता नहीं। पर वे इस असमता को एक सामाजिक बुराई समझते हैं, हिन्दुओं की भाँति धर्म का अंग नहीं।

आपने कहा, अभी 'फ्री प्रेस जर्नल' नामक बम्बई के पत्र में एक योरपियन का लेख छपा है। उसमें उसने लिखा है कि भारत को यद्यपि स्वतंत्रता मिल गई है, पर उसका भविष्य अन्धकारमय है। कारण उसने यह दिया है कि भारतवासियों में अपनी सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए कोई उत्साह (social dynomic) नहीं। वे केवल राजनीतिक स्वतंत्रता रूपी नवप्राप्त खिलौने के साथ खेलने में निरत हैं। जो राष्ट्र अपने समाज के दुर्गुणों को दूर करने पर ध्यान नहीं देता, वह कभी बहुत दिन तक स्वाधीन और सुखी नहीं रह सकता।

इस समय इंग्लैंड से लौटे एक सज्जन ने फिलस्तीन में यहूदियों की बात छेड़ दी। मैंने कहा, हिटलर के विनाश का एक कारण उसका यहूदियों के प्रति द्वेष और हिन्दुओं के सदृश शुद्ध आर्य रक्त का झूठा अभिमान भी था; यदि वह यहूदियों को जर्मनी से न निकालता तो परमाणु-बम का रहस्य शायद अमेरिका को मालूम न हो सकता।

इस पर डाक्टर साहब बोले—यहूदियों के प्रति द्वेष का एक और कारण भी था। ईसाई लोग पहले से ही यहूदियों पर अत्याचार करते आ रहे हैं। पोप का आदेश था कि इनको, हमारे यहाँ शूद्रों की तरह, भूमि और सम्पत्ति का स्वामी होने का अधिकार न दिया जाए। ये लोग दूसरे ईसाइयों के साथ मुहल्लों में नहीं रह सकते थे, सेना में भरती नहीं हो सकते थे। वे अलग बाड़ों में, जिन्हें "घेटो" कहते थे, रहते थे। इनके लिए क्योंकि शासन-विभाग की नौकरियों का द्वार बंद था, इसलिए ये लोग व्यापार करने पर विवश हुए। स्कूलों और विश्व-विद्यालयों में घुस गए। जैसे किसी व्यक्ति का एक अंग निकम्मा हो जाए तो दूसरा अंग सबल हो जाता है, अंधों की स्मरणशक्ति तेज हो जाती है, उसी प्रकार यहूदियों की प्रतिभा भी व्यापार और विज्ञान में खूब चमक उठी। उनमें बड़े-बड़े प्रतिभाशाली वैज्ञानिक धन-कुबेर उत्पन्न हो गए। उधर पहले योरपीय महायुद्ध के बाद जब मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी को सेना-भङ्ग करने का आदेश दिया तो

प्रशया के बहुत से लोग, जो सेना में भर्ती थे, बेकार हो गए। जब उन्होंने व्यापार, शिक्षा-विभाग और दूसरे छोटे-मोटे व्यवसायों में घुसने का प्रयत्न किया तो उनको पहले से यहूदियों से भरा पाया। उनके लिए वहाँ कोई रिक्त स्थान ही न था। इसलिए जर्मनों का यहूदियों के प्रति विद्वेष बढ़ गया।

यहूदी जाति की गुप्त क्षमताओं की चर्चा करते हुए डाक्टर साहब ने कहा कि आज तक लोग यहूदियों को केवल डरपोक, धनलोलुप, बनिए ही समझा करते थे। पर फिलस्तीन में उन्होंने अरबों और मिश्रियों के दाँत खट्टे करके अपनी वीरता का भी परिचय दे दिया है। फिलस्तीन जब तक मुसलमान अरबों के अधिकार में रहा, वह रूखा-सूखा, ऊजड़, बंजर और गंदा ही बना रहा। अब यहूदियों ने रुपया लगाकर उसे एक सुन्दर रमणीक स्थान बना दिया है। वहाँ अब फलों से लदे उद्यान खड़े हैं, हरी-भरी खेतियाँ लहलहा रही हैं, और शानदार इमारतें बन गई हैं। यहूदियों ने सिद्ध कर दिया है कि वे केवल व्यापार-कुशल जाति ही नहीं, उनमें चतुर्मुखी प्रतिभा है।

यहूदियों के पश्चात् अमेरिका के नीग्रो लोगों की बात चल पड़ी। डाक्टर साहब बोले, भारत में सवर्ण हिन्दू जितना अब अछूतों की भलाई पर ध्यान देने लगे हैं, उससे कहीं अधिक अमेरिकन लोग नीग्रो लोगों के लिए अनुभव करते हैं। भारत में तो आशा हो सकती है कि किसी दिन अछूत लोग सवर्णों में मिलकर एक हो जाएँ, पर नीग्रो और गोरे मनुष्य का आपस में रंग-रूप और आकार-प्रकार की दृष्टि से इतना अधिक अन्तर है कि उनका आपस में मिलकर एक हो जाना सम्भव नहीं जान पड़ता। इसी बात को जानकर कई अमेरिकन धन-कुबेर करोड़ों नहीं, अर्बों-खर्बों रुपया नीग्रो लोगों को देने को तैयार हैं, ताकि वे अफरीका में किसी जगह जाकर अपनी बस्ती बसा लें और स्वतंत्रता-पूर्वक आनन्द से रहें। पर नीग्रो लोगों को अमेरिका के विलासी जीवन का चस्का पड़ गया है। वे उसे छोड़कर जाना नहीं चाहते। अमेरिका की साफ-सुथरी सड़कें, सुन्दर महल-माड़ियाँ, होटल, सिनेमा, नाच-कूद, मदिरा सबने उनके हृदय में घर कर लिया है। वे उनके नशे को छोड़ने में अशक्त हैं। नीग्रो सब दरिद्र ही नहीं। उनमें बड़े-बड़े धनाढ्य भी हैं; विद्वान् भी हैं; विद्या-व्यसन उनमें खूब बढ़ रहा है। इस सम्बन्ध में डाक्टर साहब ने एक नीग्रो दम्पति का वृत्तान्त सुनाया। उन दोनों को विद्या प्राप्त करने का बड़ा चाव था, पर खर्च चलाने के लिए पास धन न था। इसलिए विश्वविद्यालय के एक टर्म (शिक्षा-काल) में पति मजदूरी करके घर का खर्च चलाता था और पत्नी कालेज में पढ़ती थी; फिर दूसरे टर्म में पत्नी मजदूरी करती और पति कालेज में पढ़ता था।

डाक्टर साहब ने कहा कि मैंने कई नीग्रो नेताओं को परामर्श दिया है कि वे सब एक-दो स्टेटों में इकट्ठे होकर बस जाएँ। उन स्टेटों में उनके अपने गवर्नर, अपने प्रधान, मन्त्री, अपने विश्वविद्यालय, सारांश प्रत्येक चीज अपनी होगी। वहाँ उनको कोई नीच समझकर उनका तिरस्कार न कर सकेगा। इसके सिवा उनके उद्धार का और कोई मार्ग नहीं।

अब हिन्दू कोड बिल पर बात चली। मैंने पूछा, इस बिल का इतना विरोध हो रहा है, क्या आप आशा करते हैं कि यह पास हो जाएगा? डाक्टर साहब बोले—बिल का विरोध उतना वास्तविक नहीं, जितना कि कृत्रिम है। कुछ मारवाड़ी लखपती सेठ धन देते हैं और उनके धन से प्रेस और प्लेटफार्म से उनके एजेण्ट प्रापेगण्डा करते हैं। धन के बल से इन्होंने प्रेस को खरीद लिया है। एक ही एजेन्सी सब कहीं प्रापेगण्डा करती फिरती है। यह बिल दस वर्ष से लटकता चला आ रहा है। मैंने देखा है, कई लोग जब मंत्रिमण्डल में थे, तब इसे शीघ्र ही पास कराने का आग्रह करते थे। पर मंत्रि-मण्डल से निकल जाने के बाद अब वे भी इसके विरोधी-दल में मिलकर इसे लटकाए रखना चाहते हैं। भारत को यदि ऐसा स्वतंत्र राष्ट्र बनना है, जिसका किसी दीन-धर्म के साथ सम्बन्ध नहीं, तो उसे संसार के दूसरे स्वतंत्र राष्ट्रों के सदृश अपने सामाजिक कानूनों का भी समय के अनुसार संशोधन करना आवश्यक है। बीसवीं शताब्दी में मनु के बनाए कानूनों से चिपटे रहकर हम कभी आगे नहीं बढ़ सकते। हमारा कल्याण इसी में है कि हम पुरानी स्मृतियों की वे बातें ले लें, जो इस युग में हमारे लिए लाभदायक हैं और जो बातें निकम्मी हो चुकी हैं, उनको जर्जरित वस्त्र की भाँति परे फेंक दें। जो मनुष्य आगे बढ़ना चाहता

है पर देखता है आगे के स्थान में पीछे की ओर, उसका ठोकर खाकर गिरना अनिवार्य है।

इस समय मैंने हँसी से कहा—"डाक्टर साहब, क्या आप अपने को अपने पूर्वजों से अधिक बुद्धिमान् समझते हैं? क्या आपके बाप-दादा मूर्ख थे?"

डाक्टर साहब बोले—"निश्चय ही मैं अपने दादा से दो सौ गुना और अपने परदादा से दो सौ सहस्र गुना अधिक बुद्धिमान् हूँ। उनके समय के बाद संसार ने ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशल में आश्चर्यजनक उन्नति की है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि मैं अपने पूर्वजों का सम्मान नहीं करता।"

डाक्टर महोदय ने कहा कि एक मर्तबा एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा कि आप अँगरेजी ढंग का पहनावा क्यों पहनते हैं? अपने भारतीय पूर्वजों का परिधान छोड़कर अँगरेजी फैशन का परिधान पहनने की क्या आवश्यकता है? तब मैंने उसे उत्तर दिया था कि आप बताएँ, मैं अपने पहनावे में अपने किस पूर्वज का अनुकरण करूँ—क्या दादा का, परदादा का या उस मूल पुरुष का जो आदिम और हव्वा के सदृश बिलकुल नंगा रहा करता था? हमारा परिधान सब युगों में एक-सा नहीं रहा। दूसरी सब चीजों की तरह इसमें भी परिवर्त्तन होते आए हैं और उन्नति करते-करते आज वह इस सुधरी हुई दशा को पहुँचा है। विवाह की संस्था को ही लीजिए। पुराने इतिहास से पता लगता है कि हमारे देश में एक युग ऐसा भी था, जब पिता-पुत्री का और बहन-भाई का विवाह हो जाता था। पर आज इस बात को महापातक समझा जाता है। जो लोग हिन्दू कोड बिल का विरोध करते हैं, वे किसी युक्ति और तर्क का आश्रय न लेकर केवल भावुकता में बह जाते हैं। वे एक ओर तो कहते हैं कि स्त्री को सम्पत्ति की स्वामिनी होने का अधिकार नहीं होना चाहिए क्योंकि उसमें सम्पत्ति का प्रबन्ध करने की क्षमता नहीं रहती, पर इसके साथ ही वे यह भी कहते हैं कि स्त्री-धन उसकी सम्पत्ति होना चाहिए। उस पर उसके ससुरालवालों का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। इनसे कोई पूछे कि यदि स्त्री अपने स्त्री-धन का प्रबन्ध कर सकती है तो वह दूसरी सम्पत्ति का भी प्रबन्ध क्यों नहीं कर सकती?

इस प्रकार बातें करते-करते रात के नौ बज गए। डाक्टर साहब को भोजन करना था और मुझे वापस तेलीबाड़ा पहुँचना। दस बजे के बाद वहाँ के लिए बस मिलना भी कठिन था। इसलिए मैं उनसे विदा लेकर चला आया।

—सन्तराम, बी० ए०

करुणा-गीत

मेरे अरमान यहाँ जलते!
परवशता के बंधन में कस जग के मानव मुझको छलते!

मिल जाता सुन्दर-सा साथी,
जग में केवल यह आशा थी,
सपने साकार हुए न कभी, निशिदिन बीते चलते-चलते!
मुझको है कौन पुकार रहा,
पीड़ा बन किसका प्यार रहा,
इस चिन्तन में धीरे-धीरे करुणा के क्षण मेरे पलते!
सुख का होगा न विहान कभी,
कहती उर की यह धड़कन भी,
संकल्प-विकल्पों की होली जलती—मेरे संचय जलते!

रुकते-चलते सोचा यह सब,
मेरा संसार बनेगा कब,
मीठे सपने, ये गीत भले—मेरी पीड़ा में हैं गलते।
अब दूर नहीं मेरा वह घर,
पाऊँगा जहाँ विराम अमर,
फिर श्रांत पथिक का प्रियजन भी मिल जाएगा चलते-चलते!
मेरे अरमान यहाँ जलते!

—प्रयागनारायण शुक्ल 'निर्झर'

विचार-विमर्श

गुप्तकालीन सामरिक व्यवस्था

प्रो० भगवतीप्रसाद पान्थरी, एम० ए०

गुप्त शासन-प्रणाली के अध्ययन से मालूम होता है कि थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ गुप्त राजाओं का शासन-विधान भी कौटिल्य अर्थ-शास्त्र पर ही आधारित था।[१] इसलिए कहा जा-सकता है कि उनकी सामारिक व्यवस्था भी प्रमुखतः मौर्यों की जैसी ही रही होगी, यद्यपि अधिकारियों के नामकरण में मौर्यों और गुप्तों में पर्याप्त अन्तर मिलता है।

गुप्तसेना के प्रमुख विभाग

परम्परानुसार हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना के प्रमुख अंग थे। बसरा की मुहरों तथा गुप्त एवं उनके परवर्त्तियों के अभिलेखों से पता चलता है कि सेना का एक विभाग कमिसेरिएट (Commissariot) भी था। इस विभाग का कार्य सेना के लिए युद्ध और रसद की सभी आवश्यक सामग्रियों का प्रबन्ध करना व पहुँचाना था। इस विभाग के अधिकारी को 'रणभाण्डागारिक' कहते थे[२] और सैन्य-विभाग के दफ्तर या कार्यालय को 'बलाधिकरण' (Army office) कहा जाता था।

सेना के अधिकारीगण

सेना का सबसे उच्चाधिकारी महासेनापति होता था। महासेनापति के नीचे सेनापति रहता था। महासेनापति को महाबलाधिकृत या महाबलाध्यक्ष या बलाधिकृत भी कहते थे।[३] सैनिकों की भर्त्ती संभवतया बलाधिकृत ही करता था।[४] संधिविग्रहक या महासंधि-विग्रहक एक प्रकार का परराष्ट्र-सचिव था। दूसरे देशों के साथ संधि और युद्ध की नीति उसी से संचालित होती थी। हाथियों का नायक कटुक और घोड़े तथा पैदलों का नायक-भटाश्वपति कहलाता था।[५] चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और कुमारगुप्त प्रथम के अश्व-प्रकार के सिक्कों की बहुलता से मालूम होता है कि गुप्त सम्राट् घोड़ों को अधिक पसन्द करते थे, इसलिए संभवतया उनके समय में अश्व-सेना की हाथियों से अधिक मान्यता रही होगी। इसका कारण यह भी है कि दूरस्थ प्रदेशों पर आक्रमण करने में गुप्त सम्राटों को हाथियों की अपेक्षा घोड़े ही हर प्रकार से सुविधाजनक और आवश्यकीय प्रतीत हुए। अश्व-प्रकार के सिक्कों से यह भी मालूम होता है कि गुप्त राजा तलवार को कमर की बांई ओर लटकाया करते थे।

सेना की छोटी टुकड़ियाँ 'चमूप' कहलाती थीं, और उनका अफसर या नायक संभवतया 'चमू' कहलाता था।[६] स्थित-सेना (Regular Troops) के साधारण सैनिक को 'भाट' कहा जाता था।[७] अस्थित सेना (Irregular Troops) के सैनिक 'चाट' कहलाते थे। चाट-भाट जिस जगह जाते थे; वहाँ के लोगों को संभवतया उनका व्यय उठाना पड़ता था। इस कारण राजा जिन गाँवों को दान में दे देता था, उनमें चाट-भाटों का प्रवेश न होने दिया जाता था।[८] घोड़े और हाथियों के लिए सुदृढ़ गृह[९] अथवा शालाएँ बनवाई जाती थीं। घोड़ों की देख-भाल का कार्य 'बृहद्श्वाल' के सुपुर्द होता था। सेना

१—History of N. E. India-by, R.G. Basak, pp. 311--12

२—Arch. Survey Report-1913--1914.

३—C. I. I. p. 109 fu. 2.

४—गुप्त साम्राज्य का इतिहास, हि०खं० श्री वासुदेव उपाध्याय पृष्ठ १०

५—Archaelogical Survey Report 1913-14

६—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद ३६२

७—C. I. I. Vol. iii No 20; Karivalai Ins. L-6-8 P. 118, 120, No 29. p. 191,

८—Ibid No 23, 26, 28, 29,

९—आचार्य-सम्पादित मानसार--अ० ४३

तथा निजी व्यवहार के लिए गुप्त राजा रथ भी रखा करते थे।[१०]

युद्ध के अस्त्र-शस्त्र

युद्ध में प्रमुखतया निम्न शस्त्र प्रयोग में लाए जाते थे--परशु, शर, अंकुश, शक्तिप्राश, असि, तोमर, भिन्दिपाल, नाराच, वैतास्तिक आदि।[११] तोमर एक प्रकार का शल्य वा बाण था। इसकी मूठ लकड़ी की और सिरा मुड़ा हुआ होता था।[१२] महाभारत के अनुसार तोमर पर विष का भी लेप किया जाता था। ऐसे तोमर विषतोमर कहलाते थे। अर्थशास्त्र के अनुसार तोमर एक 'हलमुखी' अस्त्र था। वह चार या पाँच हाथ तक लम्बा होता था और उसका सिरा बाण की तरह का होता था।[१३] नाराच बाण का ही एक प्रकार था। भिन्दिपाल या मिन्दिवाल भी एक हलमुखी शल्य था। इस शल्य या दण्ड का शिरा बहुत भारी होता था।[१४] उसे फेंक कर चलाया जाता था। किलेबन्दियों के तोड़ने में भी संभवतया इसका प्रयोग किया जाता था।[१५] शस्त्रों को रखने के लिए मानसार के अनुसार शस्त्रागार बने होते थे (अध्याय ३२, ६६, ४०, ६३)। बाणों को रखने के लिए तरकस होता था। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के कुछ सिक्कों में तरकस को सम्राट् के बाएँ पैर के पास जमीन में रखा हुआ दिखलाया गया है। समुद्र गुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और कुमारगुप्त प्रथम के धनुर्धर-प्रकार और बाघ तथा सिंह-हनन शैली के सिक्के धनुषबाण चलाने का तरीका प्रदर्शित करते हैं।[१६]

मानसर के अनुसार शत्रुओं के आक्रमण से रक्षा के लिए नगर की सुदृढ़ता के साथ किलेबन्दी कर दी जाती थी (अ० १०। ७६—११०)।

पराजित राजाओं से व्यवहार--पराजित राजाओं के साथ गुप्त सम्राटों का व्यवहार बहुत उदारता का होता था। अश्वमेध-पराक्रमी सम्राट् समुद्रगुप्त ने अपने दिग्विजय के समय 'स्वभुजबल' से अनेक नृपतियों को उन्मूलित करने के पश्चात् पुनः उनके विभव और ऐश्वर्य को प्रत्यर्पण करने के निमित्त राज्य की ओर से 'आयुक्त' और 'पुरुष' नाम के अधिकारियों को नियुक्त किया था।[१७] स्कन्दगुप्त के बारे में भीतरी लेख का कथन है कि वह विजित लोगों के दुख से द्रवित होकर उनके साथ दयालुता का व्यवहार किया करता था।[१८]

अश्वमेध यज्ञ—विजय के उपलक्ष में अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता था। संभवतया बौद्धधर्म के प्रभाव के कारण गुप्त राजाओं के अभ्युदय से पूर्व बहुत समय तक अश्वमेध यज्ञ न हुए थे। इसीलिए गुप्त-लेखों का कथन है कि समुद्र गुप्त ने ही प्रथमतः चिरकाल से न होनेवाले अश्वमेध यज्ञ का पुनः अनुष्ठान प्रारम्भ किया था, अतः समुद्रगुप्त के वंशजों ने उसके लिए 'चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्त्तुः' विशेषण का उपयोग किया है। समुद्र ने इस यज्ञ में ब्राह्मणों को दान देने के लिए विशेष प्रकार के स्वर्ण के सिक्के भी ढलवाए थे। इन सिक्कों में एक ओर यूप (यज्ञस्तम्भ) पर बँधे हुए अश्व का चित्र और दूसरी तरफ हाथ में चंवर लिए समुद्रगुप्त की महारानी दत्तादेवी का चित्र अंकित है।[१९]

अश्वमेध में राजमहिषी का प्रमुख स्थान रहा करता था। समुद्रगुप्त के अश्वमेध यज्ञ का यद्यपि प्रयाग-प्रशस्ति में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है, किन्तु प्रशस्ति में 'शत सहस्र' गायों के दान देने का उल्लेख अवश्य है। संभवतया यह दान अश्वमेध के अवसर पर ही दिया गया था।

विद्वानों का अनुमान है कि अपने पिता समुद्रगुप्त की भाँति चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था।[२०]

१०—उपर्युक्त ११।१३६

११—C. I. I. vol.III No I.p. 7, 12

१२—Journal of the American Oriental Society XIII p. 291

१३—Kautilya's Arthashastra, Shamshastri p. 111, fu 7.

१४—The art of war in Ancient India by G. Trayambak p. 22.

१५—Ibid इन सब अस्त्रशस्त्रों का (वैतस्तिक के सिवा) कौटिल्य में भी उल्लेख है।

१६—Gupta coins, Allan, pp. lxxii--xii

१७—C. I. I. Vol III, No,1 L 26, p. 8. 14.

१८—Ibid, No 13 L. 14, pp. 54, 55.

१९—Gupta coins-By. J Allan. p. ixxvii

२०—गुप्त साम्राज्य का इतिहास, वासुदेव उपाध्याय पृष्ठ ६६।

कुमारगुप्त प्रथम के अश्वमेध शैली के सिक्कों से ज्ञात होता है कि उसने भी अपने दादा और पिता की भाँति अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था।[२१] अतः इस यज्ञ के बाद उसने 'महेन्द्र' की उपाधि भी ग्रहण की, जिससे वह इतिहास में कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य के नाम से प्रसिद्ध है।

क्षय रोग और उसका उपचार

श्रीदत्त भारद्वाज

भारत में युग-परिवर्तन के साथ-साथ आज हमारा ध्यान उन अनेक छोटी-बड़ी समस्याओं की ओर आकर्षित हुआ है, जिनकी विदेशी शासन-काल में सदा उपेक्षा की जाती रही थी। क्षय रोग भी ऐसी भीषण महामारी है, जिसे भारत में प्रायः असाध्य समझा जाता रहा तथा जिसकी भयंकरता की ओर अभी तक बहुत कम ध्यान दिया गया है। इसी को राजयक्ष्मा, राजरोग (क्योंकि प्राचीन काल में यह रोग विलासी राजाओं या धनी व्यक्तियों को ही हुआ करता था), तपेदिक तथा अंग्रेजी में टुबरक्लुसिस कहते हैं। इसकी भीषणता का ज्ञान कराने के लिए इतना कहना ही पर्याप्त है कि भारत में प्रत्येक ३० सेकेण्ड के बाद एक व्यक्ति इस महारोग से पीड़ित होकर दम तोड़ देता है। गत १५ वर्ष में ७५ लाख से अधिक भारतीय इस रोग के कारण काल-कवलित हो चुके हैं। इस प्रकार प्रति वर्ष की मृत्यु-संख्या ५ लाख है तथा २५ लाख से अधिक व्यक्ति इस रोग के कारण धीरे-धीरे मृत्यु-मुख की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इतना होने पर भी भारत में क्षय रोग के अस्पतालों की संख्या अत्यन्त नगण्य है। समस्त देश के अस्पतालों में अब तक केवल ७००० क्षय-रोगियों के लिए शय्याओं की व्यवस्था है।

भारत से इस रोग का मूलोच्छेद करने के लिए पीड़ितों के लिए उचित उपचार तथा अन्य ऐसे निरोधक उपायों की आवश्यकता है, जिससे भविष्य में इसका प्रसार रुक जाए। योरप तथा संयुक्तराष्ट्र अमरीका में इस रोग की चिकित्सा के लिए अनेक प्रयोग किए गए हैं और उन्हें आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई है।

बी० सी० जी० नामक टीका—

इस रोग के लिए सबसे अधिक सफल उपचार बी० जी० (बसिली कालमेटे-गुडरिन) नामक टीका इंजेक्शन सिद्ध हुआ है। इससे मनुष्य के रक्त में क्षय-निरोधक शक्ति का संचार होता है। यह २५ प्रतिशत मृत्युसंख्या कम करने में सफल हुआ है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका में प्रति वर्ष लगभग १००० व्यक्ति क्षय रोग के शिकार होते हैं और वहाँ प्रत्येक बच्चे को यह टीका लगवाना माता-पिता का सामाजिक कर्त्तव्य समझा जाता है। प्रारंभ में संसार के इतिहास में सबसे अधिक संख्या में न्यूयार्क के लगभग ६० लाख व्यक्तियों ने सार्वजनिक स्वास्थ्य-केन्द्रों में जाकर कुछ सप्ताहों में उपयुक्त बी० सी० जी० टीके लगवाए। अमरीका के जार्जिया और कोलम्बिया आदि प्रदेशों में कुछ मास पूर्व ही कई हजार स्कूली छात्रों को यह टीके लगाए गए हैं। अमरीका की सरकार का लक्ष्य यह है कि ५० वर्ष की अवधि में इस महामारी का सर्वथा मूलोच्छेद कर दिया जाए। अमरीका की देखा-देखी योरप के अनेक देश क्षय-विरोधक अन्ताराष्ट्रिय आन्दोलन में सक्रिय भाग ले रहे हैं। फ्रेंच अधिकारी उत्तरी अफ्रीका, मोरक्को और टेंजियर में क्षय रोग के निवारण के लिए प्रयत्नशील हैं।

भारत सरकार भी इस दिशा में सर्वथा निष्क्रिय नहीं है। पंचवर्षीय युद्धोत्तर-योजना के अनुसार भारत के अस्पतालों में भी २० हजार रोगी-शैय्याओं की व्यवस्था की जाएगी। गत कुछ मासों में ही तपेदिक के कुछ अस्पतालों का उद्घाटन किया गया है। मद्रास सरकार ने फिलहाल ही सामूहिक रूप में तपेदिक के टीके लगवाने का साहसिक कदम उठाया है। बम्बई प्रान्त में पूना के समीप औंध में तथा नदियाद में क्षय रोग के दो अस्पताल स्थापित किए जाएँगे। बम्बई प्रान्त के प्रत्येक सिविल अस्पताल में क्षय रोग के लिए अलग वार्ड बनाया जाएगा, जिसमें कम-से-कम दस शैय्याएँ होंगी।

पशुओं में क्षय-रोग—

पशुओं में भी क्षय-रोग पाया जाता है। क्षय रोग से पीड़ित पशुओं का दूध प्रयोग करनेवाले व्यक्तियों को क्षय-रोग बहुत शीघ्र हो जाता है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका में तमाम पशुओं को क्षय-रोग से रहित करने के लिए गत

२१—Gupta Coins, J. Allan, p. xiii

३० वर्षों में पशु-चिकित्सा पर २५ करोड़ डालर खर्च किए गए हैं, तथा ४० लाख दूध देनेवाले पशुओं की हत्या की गई है। इतना होने पर भी वहाँ पशु इस रोग से मुक्त नहीं हुए हैं। केन्द्रीय सरकार तथा प्रादेशिक सरकारों के संयुक्त प्रयास के होते हुए भी न्यूयार्क राज्य में अब तक पशु-उद्योग के लिए क्षय-रोग भारी खतरा बना हुआ है। न्यूयार्क राज्य अकेला पशु-चिकित्सा पर ६ करोड़ डालर व्यय कर चुका है।

भारत में सर्वसाधारण की आम धारणा यह है कि यहाँ जलवायु अनुकूल होने के कारण पशुओं में प्रायः क्षय-रोग नहीं होता; परन्तु भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन के अवसर पर डा० राम बी० सोपरकर ने बतलाया था कि भारत के कुछ भागों में पशुओं में, विशेषतया गायों, बैलों और भैंसों में, क्षय रोग बहुत अधिक पाया जाता है। अन्य वैज्ञानिकों की खोज से भी इस बात की पुष्टि हो गई है। इसलिए पशु-चिकित्सा की ओर जितना अधिक ध्यान दिया जाएगा, उतना ही विशुद्ध दूध प्राप्त हो सकेगा अन्यथा क्षय रोग से पीड़ित पशुओं के दूध से क्षय के बीमार स्त्री-पुरुषों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाएगी।

निरोधक उपाय—

क्षय रोग की चिकित्सा की व्यवस्था के अतिरिक्त उन परिस्थितियों को उत्पन्न करना और भी अधिक आवश्यक है, जिनमें क्षय रोग पनप न सके। गन्दी व दुर्गंधयुक्त गलियों तथा तंग व अंधकारमय बन्द कमरों में रहने, शक्ति से अधिक कार्य करने, हर समय चिन्ताग्रस्त रहने तथा साधारण ज्वर आदि होने पर स्वास्थ्य की ओर उचित ध्यान न देने से असावधान व्यक्ति अचानक अपने को घातक क्षय रोग से पीड़ित पाता है। इसलिए क्षय रोग का अंत करने के लिए स्वस्थ वातावरण और सुन्दर व साफ घरों के अतिरिक्त जीवन-निर्वाह के लिए जीवन-शक्ति का अधिक ह्रास न करनेवाले कामों की खोज करनी पड़ेगी। कई बार यह भी देखने में आया है कि किसी परिवार में एक व्यक्ति को क्षय हो जाने पर उस तमाम परिवार का ही अन्त हो जाता है या उस परिवार के कई सदस्य असमय में ही मृत्युमुख में चले जाते हैं। इसलिए क्षय होने का संदेह होते ही क्षय-पीड़ित व्यक्तियों को किसी स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान या क्षय रोग के अस्पताल में स्थानान्तरित करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

पौष्टिक आहार और दूध—

क्षय रोग से रक्षा के लिए सबसे अधिक सहायक मनुष्य की आन्तरिक रोग-निरोधक शक्ति है, जो किसी भी रोग के आक्रमण से मनुष्य-शरीर की रक्षा करती है। यह शक्ति उत्पन्न करने के लिए दूध व घी आदि पौष्टिक खाद्य पदार्थों की आवश्यकता है। मनुष्य-शरीर का निर्माण बचपन में होता है। यदि बच्चों का उचित रूप में पालन-पोषण किया जाएगा, तो वे आगे चलकर राष्ट्र की महान् सम्पत्ति सिद्ध होंगे। बच्चों को प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में दूध पिलाकर उनके शरीर को सबल और दृढ़ बनाया जाए, जिससे वे क्षय आदि घातक संक्रामक रोगों के कीटाणुओं से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो सकें। पौष्टिक भोजन का अभाव बच्चे के विकास पर बड़ा बुरा प्रभाव डालता है। कमजोर और अपुष्ट बच्चों के लिए दूध में ही सबसे अधिक पोषक तत्त्व हैं। संयुक्त-राज्य अमरीका के दक्षिणी भाग में बसन्त और ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में पोषक तत्त्वों की कमीवाले बच्चों को एक विशेष प्रकार की पेलागर नामक बीमारी हो जाती थी, जिसमें लगभग ५० प्रतिशत बच्चे मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। इसका एकमात्र सफल उपचार दूध का प्रयोग ही है। विदेशों से आयात किए गए जमे हुए दूध में भी काफी पोषक तत्त्व होते हैं। इसके सम्बन्ध में भारत में प्रायः जो दुर्भावना पाई जाती है, वह निराधार है। इसलिए क्षय रोग का तथा अन्य बीमारियों का सबसे अधिक सफल निरोधक दुग्धयुक्त पौष्टिक भोजन ही है, जिसका भारत में अत्यधिक अभाव है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वास्थ्य ठीक बनाए रखने के लिए प्रतिदिन कम-से-कम पाव भर दूध की आवश्यकता है; परन्तु आज हमारे देश में प्रति व्यक्ति को साधारणतः दो या तीन तोला दूध मिलता है। ऐसी स्थिति में इतने अधिक व्यक्ति क्षय तथा अन्य रोगों से क्यों न मरें?

सामयिक साहित्य

ग्राम-निवासियों को स्वराज्य की पहली किश्त

(गताङ्क से आगे)

(ज) गाँव-सभा के अधिकार-क्षेत्र के भीतर के क्षेत्र के संबंध में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से ऐसे कामों के करने के लिए अनुरोध करना, जो गाँव-सभा के अधिकारों से बाहर हों,

(झ) आबादी के क्षेत्र को बढ़ाना;

(ञ) एक पुस्तकालय या वाचनालय का स्थापित करना और उसे कायम रखना ;

(ट) मनोविनोद और खेलों के लिए अखाड़े या क्लब या दूसरे स्थान का स्थापित करना और उसे कायम रखना;

(ठ) खाद और बहारन (कूड़ा-कर्कट) जमा करने, हटाने और उसका प्रबंध करने के लिए नियम बनाना ;

(ड) आबादी के २२० गज के अंदर, चमड़े को साफ करने, कमाने और रंगने की मनाही करना या उसके सम्बंध में नियम बनाना ;

(ढ) विभिन्न जातियों में सद्भाव और सामाजिक एकता बढ़ाने के लिए संस्थाएँ स्थापित करना;

(ण) सार्वजनिक रेडियो सेट और ग्रामोफोनों का प्रबंध करना;

(त) सार्वजनिक उपयोगिता का कोई ऐसा दूसरा काम करना, जिससे गाँव के लोगों की नैतिक और भौतिक उन्नति हो या जिससे उनकी सुविधाएँ बढ़ें।

(थ) डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की पहले से अनुमति पाकर गाँव सभा के अधिकार-क्षेत्र में रहनेवाले लोगों की भलाई के लिए कोई ऐसा दूसरा काम करना, जो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कामों के अंतर्गत आता हो; और,

(द) कोई ऐसा काम करना, जिसके संबंध में किए गए खर्च को प्रांतीय सरकार या प्रांतीय सरकार की स्वीकृति से कोई नियत अधिकारी यह घोषणा कर दे कि वह गाँव-सभा के कोष (फंड) पर एक उपयुक्त भार है।

जन-मार्गों, जल-मार्गों और दूसरी बातों के सम्बन्ध में गाँव-पंचायत का अधिकार

१७—गाँव-पंचायत का नियंत्रण ऐसे सब जन-मार्गों पर और ऐसे सब जल-मार्गों पर रहेगा, जिनमें नहरें सम्मिलित नहीं हैं, जैसी कि उनकी व्याख्या उत्तरी भारत के नहर और सिंचाई के ऐक्ट सन् १८७३ ई० की धारा ३ की उपधारा (१) में की गई है, जो उसके अधिकार-क्षेत्र के भीतर हों और जो न तो किसी के जन-मार्ग या जल-मार्ग हों और न प्रांतीय सरकार या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के या किसी ऐसे दूसरे अधिकारी के, जिसको प्रान्तीय सरकार ने नियत किया हो, नियंत्रण में हों, और वह ऐसे सब काम करेगी, जो उनको अच्छी दशा में बनाए रखने और उनकी मरम्मत करने के लिए आवश्यक हों और वह—

(क) नए पुल या पुलिया बनवाएगी।

(ख) किसी जन-मार्ग, पुलिया या पुल को या तो बदल देगी या छोड़ देगी या बंद कर देगी।

(ग) किसी जन-मार्ग, पुलिया या पुल के आसपास के खेतों को कम-से-कम नुकसान पहुँचाते हुए चौड़ा करेगी, विस्तृत करेगी, बढ़ाएगी या उनमें किसी और तरह से सुधार करेगी।

(घ) पानी के रास्तों (जन-मार्गों) को गहरा करेगी या उनमें किसी और तरह से सुधार करेगी;

(ङ) नियत किए हुए अधिकारी की स्वीकृति से और

जहाँ उत्तरी भारत के नहर और सिंचाई के (नार्दर्न इंडिया केनाल एण्ड ड्रेनेज) ऐक्ट सन् १८७३ ई० के अधीन कोई नहर हो, ऐसे अफसर की भी स्वीकृति लेकर जिसे प्रांतीय सरकार नियत करे, सिंचाई की छोटी-छोटी योजनाएँ चालू करेगी।

(च) ऐसी झाड़ी या पेड़ की शाख को काटेगी, जो जन-मार्ग पर झुक आई हो।

(छ) सार्वजनिक उपयोग में आनेवाले किसी स्रोत (चश्मे) को केवल पानी पीने या खाना बनाने इत्यादि के काम के लिए सुरक्षित रखने की घोषणा करेगी, और उसे नहाने, कपड़े धोने और जानवरों को नहलाने या ऐसे दूसरे काम के लिए उपयोग में लाने की मनाही कर देगी, जिससे ऐसे सुरक्षित रक्खे हुए स्रोत के गंदा होने की आशंका हो।

पर शर्त यह है कि किसी ऐसे अधिकारी की पहले आज्ञा लिए बिना, जिसे प्रान्तीय सरकार ने इस संबंध में नियत किया हो, वाक्य-खंड (छ) के अधीन कोई ऐसा काम न किया जाएगा, जो किसी ऐसी नहर के बारे में हो, जिस पर उत्तरी भारत के नहर और सिंचाई के (नार्दर्न इंडिया कैनाल ऐंड ड्रेनेज) ऐक्ट सन् १८७३ ई० लागू हों।

सफ़ाई-संबंधी सुधार

१८—सफाई सम्बंधी सुधार के लिए गाँव-पंचायत को अधिकार होगा कि वह एक नोटिस-द्वारा किसी भूमि या इमारत के मालिक या उस भूमि या इमारत पर कब्जा रखनेवाले व्यक्ति को, उसकी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए और उसे यथोचित समय देकर, निम्नलिखित बातों को करने के लिए आदेश दे :—

(क) किसी पाखाने, पेशाबखाने, नाबदान, नाली, चहबच्चा या दूसरी गंदगी का बर्तन, मोरी का गंदा पानी, कूड़ा-करकट या मैला जमा करने की जगह, जो ऐसी भूमि और इमारत से सम्बंधित हो, बंद करना, हटाना, उसमें परिवर्तन करना, उसकी मरम्मत करना, उसकी सफाई करना, कीटाणु-नाशक दवाइयों-द्वारा उसे शुद्ध करना या अच्छी दशा में रखना, या किसी ऐसे पाखाने, पेशाबखाने या नाबदान को, जो किसी सड़क या नाली पर खुलता हो, हटाना या उसके किसी दरवाजे या कूट-द्वार को बदलना या उसके लिए नाली बनाना, या ऐसे पाखाने, पेशाबखाने या नाबदान को एक उपयुक्त छत और दीवार या आड़-द्वारा राहगीरों या पड़ोस में रहनेवालों की दृष्टि से छिपाए रखना;

(ख) किसी निजी कुएँ, तालाब, हौज, जूहड़ (पोखर) गड्ढा, या खुदी हुई गहरी जगह को, जो उस भूमि या इमारत में हो, जो गाँव-पंचायत की राय में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो या पड़ोस में रहनेवाले लोगों के लिए नागवार हो, साफ करना, उसकी मरम्मत करना, उसे ढक देना, भरना, गहरा करना या उसमें से पानी निकालना;

(ग) वहाँ से वनस्पति, पेड़ों के नीचे उगनेवाली छोटी झाड़ियाँ, नागफनी या जंगल को साफ कर देना;

(घ) वहाँ से धूल, गोबर, गलीज, खाद या किसी बदबूदार चीज को हटाना और भूमि या इमारत की सफाई करना।

पर शर्त यह है कि कोई व्यक्ति जिसे वाक्य-खंड (ख) के अधीन नोटिस दिया गया हो, नोटिस मिलने के ३० दिन के भीतर ऐसी नोटिस के विरुद्ध 'डिस्ट्रिक्ट मेडिकल आफिसर आफ हेल्थ' के पास अपील कर सकता है, जो उस नोटिस को बदल सकता है।

स्कूलों और अस्पतालों को चलाना और उनमें सुधार करना

१९—(१) किसी गाँव-पंचायत को उचित होगा—

(क) कि वह उन नियमों के अनुसार, जो पाठ्य पुस्तकों की सूची, ट्रेंड अध्यापकों की नियुक्ति और योग्यता और स्कूल की देख-रेख के बारे में बनाए जाएँ, किसी वर्त्तमान प्राइमरी स्कूल का और उसकी इमारतों और फर्नीचर का खर्च उठाए और उस स्कूल को ठीक ढंग से चलाने की जिम्मेदारी ले और उसको अधिकार होगा कि वह इसी तरह का कोई नया स्कूल स्थापित करे और उसका खर्चा उठाए या किसी मौजूदा स्कूल की हालत सुधारे।

(ख) कि वह उन नियमों की पाबंदी के साथ, जो अस्पताल या शफाखाने खोलने, उन्हें कायम रखने और उनकी देख-भाल के बारे में बनाए जाएँ, किसी वर्त्तमान आयुर्वेदिक या यूनानी अस्पताल या शफाखाने का और

उसकी इमारत और सामान का खर्च उठाए और उसको अधिकार होगा कि वह चिकित्सा के ऊपर बताए गए तरीकों में से एक या एक से अधिक तरीकों के लिए कोई नया अस्पताल या शफाखाना खोले और ठीक ढंग से चलाए।

(२) डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और प्रान्तीय सरकार के ऐसे स्कूलों, अस्पतालों और शफाखानों के लिए आर्थिक सहायता देना, जितना कि नियत की जाए।

२०--जब पड़ोस की कुछ गाँव-सभाओं के क्षेत्र में कोई प्राइमरी स्कूल या आयुर्वेदिक या यूनानी अस्पताल या शफाखाना न हो, यदि नियत अधिकारी ऐसी आज्ञा दे, तो वहाँ की गाँव-पंचायतें मिलकर कोई ऐसा स्कूल, अस्पताल या शफाखाना खोल लेंगी और उसका खर्च उठाएँगी और उस ढंग के अनुसार उसका प्रबंध किया जाएगा, जो इस सम्बन्ध में नियत किया जाएगा और उन्हें आर्थिक सहायता दी जाएगी, जो इस सम्बन्ध में नियत की गई हो। प्रान्तीय सरकार और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ऐसे स्कूल, अस्पताल या शफाखाना के लिए ऐसी आर्थिक सहायता देंगी, जो उनके लिए नियत की जाए।

सरकारी कर्मचारियों को सहायता

२१--किसी गाँव-पंचायत को मान्य होगा कि वह, यदि प्रान्तीय सरकार कोई ऐसी आज्ञा दे और जहाँ तक सम्भव हो, अपनी सीमा के अन्दर किसी सरकारी कर्मचारी को उसके काम में सहायता दे।

गाँव-पंचायतों की ओर से प्रार्थना-पत्र और सिफारिशें

२२--किसी गाँव-पंचायत को अधिकार होगा कि वह उपयुक्त अधिकारी के पास--

(क) अपने अधिकार-क्षेत्र के भीतर रहनेवालों की भलाई के सम्बन्ध में कोई प्रार्थना-पत्र दे; और

(ख) ऐसी गाँव-पंचायत के अधिकार-क्षेत्र के भीतर काम करनेवाले सिंचाई-विभाग के पतरौल, पटवारी या मुखिया की नियुक्ति, बदली या बर्खास्तगी के लिए सिफारिश करे।

कुछ अफसरों के दुराचरण के बारे में जाँच करने और रिपोर्ट देने का अधिकार

२३--किसी गाँव-पंचायत के अधिकार-क्षेत्र के भीतर रहनेवाले किसी व्यक्ति से अमीन, मजकूरी, टीका लगानेवाले, सिपाही (कांस्टेबुल), पटवारी, सिंचाई-विभाग के पतरौल या किसी सरकारी विभाग के चपरासी के विरुद्ध सरकारी कर्त्तव्यों के पालन करने में, दुराचरण के बारे में शिकायत मिलने पर, ऐसी पंचायत को, यदि प्रकट रूप से प्रमाण हों, अधिकार होगा कि वह उस शिकायत को अपनी रिपोर्ट के साथ उपयुक्त अधिकारी के पास भेज दे। उस अधिकारी के लिए मान्य होगा कि वह ऐसी अतिरिक्त जाँच करने पर, जो करनी आवश्यक हो, उपयुक्त कार्रवाई करे और उसके नतीजे की सूचना गाँव-पंचायत को भेज दे।

मालिकों के लिए टैक्स और दूसरे महसूल वसूल करने के बारे में मुआहिदा करने का अधिकार

२४--किसी गाँव-पंचायत को अधिकार होगा कि वह नियत तरीके पर और किसी ऐसे क्षेत्र के सम्बन्ध में, जो उसके अधिकार-क्षेत्र के भीतर हो--

(क) प्रान्तीय सरकार की ओर से तहसील वसूल के खर्च के रूप में ऐसी रकम दिए जाने पर, जो नियत की जाए, ऐसे कोई टैक्स या महसूल को, जो श्रीमान् सम्राट् को देय हो, वसूल करने के लिए प्रान्तीय सरकार से मुआहिदा करे, या

(ख) किसी मालिक या सभी मालिकों की ओर से तहसील-वसूल के खर्च के रूप में ऐसी रकम दिए जाने पर, जो नियत की जाए, उसकी या उनकी ओर से लगान वसूल करने के लिए सभी मालिकों या उनमें से किसी एक मालिक से मुआहिदा करे।

कर्मचारी

२५--(१) किसी गाँव-पंचायत के लिए मान्य होगा कि वह नियत नियमों के अनुसार एक सेक्रेटरी नियुक्त करे और नियत अधिकारी के पास उन कर्मचारियों के सम्बन्ध में, जो वह पूरे समय के लिए या कुछ समय के लिए रखना चाहती हो, वेतन और भत्ते, यदि कोई हों, जो उनको दिए जाएँगे और उनमें से हर एक कामों के बारे में, अपने प्रस्ताव भेजें। नियत अधिकारी को अधिकार होगा कि वह नियत तरीके पर प्रस्तावों को स्वीकार करे, उनमें संशोधन करे या उन्हें अस्वीकार करे। गाँव-पंचायत को अधिकार होगा कि तब वह नियत

अधिकारी-द्वारा स्वीकृत योजना के अनुसार कर्मचारियों को नियुक्त करे।

(२) नियत अधिकारी की स्वीकृति प्राप्त करने की पाबंदी के साथ, गाँव-पंचायत उपर्युक्त योजना में कोई परिवर्त्तन कर सकती है।

(३) उपधारा [१] में भले ही कोई बात हो, गाँव-पंचायत आकस्मिक आवश्यकता के समय, नियत अधिकारी की स्वीकृति लिए बिना भी किसी कर्मचारी को ऐसी अवधि के लिए नियुक्त कर सकती है, जो तीन महीने से अधिक न हो।

(४) गाँव-पंचायत के किसी कर्मचारी को नियुक्त करने, अलग करने या बर्खास्त करने के अधिकार को पंचायत प्रयोग में लाएगी, लेकिन दंड देने, अनुशासन-सम्बन्धी कार्रवाई करने या तरक्की देने के अधिकार पंचायत के किसी ऐसे अधिकारी को दिए जा सकते हैं, जो नियत किया जाए। पर शर्त यह है कि ऐसे अफ़सर के हुक्म के विरुद्ध अपील नियत तरीके के अनुसार गाँव-पंचायत के सामने हो सकेगी।

व्यक्तिगत मेम्बरों का अधिकार

२६—किसी गाँव-पंचायत के मेम्बर को अधिकार होगा कि वह नियत तरीके के अनुसार, गाँव-पंचायत की शासन-प्रबन्ध-सम्बन्धी बातों के बारे में कोई प्रस्ताव पेश करे और सभापति या उप-सभापति से उनके बारे में सवाल करे।

२७—(१) इस ऐक्ट के अधीन बनाई गई गाँव-पंचायत या संयुक्त-कमेटी या किसी ऐसी दूसरी कमेटी का प्रत्येक मेम्बर गाँव-पंचायत के धन या सम्पत्ति की हानि, उसके अपव्यय या बेजा इस्तेमाल के लिए उत्तरदायी होगा, यदि ऐसी हानि, अपव्यय या बेजा इस्तेमाल उसकी लापरवाही या दुराचरण का प्रत्यक्ष फल हो, जब कि वह गाँव-पंचायत की संयुक्त कमेटी या दूसरी कमेटी का मेम्बर था और गाँव-पंचायत, नियत अधिकारी की पहले से स्वीकृति लेकर, उसके विरुद्ध मुआविजे के लिए नालिश दायर कर सकती है।

(२) यदि नियत अधिकारी उपधारा [१] के अधीन नालिश दायर करने की स्वीकृति देने से मना कर दे तो सम्बन्धित मेम्बर या गाँव-पंचायत, जैसी भी स्थिति हो, ऐसी स्वीकृति या अस्वीकृति की तारीख से ३० दिन के भीतर प्रान्तीय सरकार या ऐसे अधिकारी को, जिसके यहाँ अपील की जाती हो, उपर्युक्त स्वीकृति या अस्वीकृति के विरुद्ध अपील कर सकता या सकती है।

(३) प्रान्तीय सरकार को यह भी अधिकार होगा कि उपधारा [१] में बताई गई किसी नालिश को स्वयं दायर करे।

२८—किसी पंचायती अदालत या गाँव-पंचायत या संयुक्त कमेटी या इस ऐक्ट के अधीन बनाई गई किसी दूसरी कमेटी का प्रत्येक मेम्बर या कर्मचारी भारतीय दंड-संग्रह की धारा २१ के आशय के अन्तर्गत जन-सेवक समझा जाएगा।

कमेटी

२६—नियत शर्तों की पाबंदी के साथ कोई गाँव-पंचायत अपने नियत कर्त्तव्य या किसी प्रकार के कर्त्तव्यों को पूरा करने में सहायता करने के लिए, एक कमेटी बना सकती है और ऐसी कमेटी को अपने ऐसे अधिकार दे सकती है, जो ऐसी सहायता देने के लिए आवश्यक हों।

संयुक्त कमेटी

३०—(१) ऐसे नियमों की पाबंदी के साथ, जो नियत किए जाएँ, दो या उससे अधिक गाँव-सभाएँ कोई ऐसा कारबार करने के लिए, जिसमें उनका संयुक्त रूप से हित हो, एक लिखित दस्तावेज़ के द्वारा अपने प्रतिनिधियों की एक संयुक्त कमेटी नियुक्त करने के लिए आपस में सम्मिलित हो सकती हैं और वे—

(क) ऐसी कमेटी को, ऐसी शर्तों के साथ, जो वे ठीक समझें, अधिकार दे सकती हैं कि वह किसी संयुक्त इमारती काम के निर्माण और उसे बनाए रखने के सम्बन्ध में और ऐसे अधिकार नियत करने के लिए, जो ऐसी योजना के सम्बन्ध में कोई ऐसी सभा प्रयोग में ला सकती है, एक ऐसी योजना तैयार करे, जो ऐसी हर गाँव-सभा को मान्य होगी।

(ख) ऐसी कमेटी के जारी रहने, उसके मेम्बरों के पद पर रहने की अवधि और उसकी कार्रवाइयाँ करने के ढंग और पत्र-व्यवहार के सम्बन्ध में नियम बना सकती है या उनमें संशोधन कर सकती है।

(२) इस धारा के अधीन काम करनेवाली गाँव-सभाओं के बीच यदि कोई मतभेद पैदा हो जाए तो यह

मतभेद नियत अधिकारी के हवाले किया जाएगा और इस पर उसका निर्णय अन्तिम समझा जाएगा।

अधिकारों का सौंपना

३१—गाँव-सभा के कुल कर्त्तव्यों, अधिकारों और दूसरे कामों को, सिवा उनके जिनका उल्लेख अध्यांय ३ और धारा ३० और ११४ में किया गया है, गाँव-पंचायत स्वयं प्रयोग में लाएगी, इस्तेमाल करेगी या पालन करेगी और किसी दूसरी प्रकार न प्रयोग में लाएगी, न इस्तेमाल करेगी, न पालन करेगी।

गाँव-कोष (फंड)

३२—(१) हर गाँव-सभा के अधिकार में एक गाँव-कोष (फंड) होगा, जिसे गाँव-पंचायत धारा १३ के अधीन पास किए गए बजट में दी हुई रकमों की पाबंदी के साथ, इस ऐक्ट के अधीन अपने कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में होनेवाले खर्चों को उठाने के लिए इस्तेमाल करेगी।

(२) गाँव-कोष [फंड] में निम्नलिखित रकमें जमा होंगी :—

(क) इस ऐक्ट के अधीन लगाए गए किसी टैक्स से वसूल की हुई रकमें;

(ख) ऐसी कुल रकमें, जो प्रान्तीय सरकार ने गाँव-सभा के सिपुर्द कर दी हों;

(ग) बकाया, यदि कोई हो, जो ऐसी गाँव-पंचायत के खाते में जमा हो, जो "गाँव-पंचायत ऐक्ट" के अधीन पहले से बनी हो;

(घ) ऐसी सब रकमें, जो किसी अदालत के हुक्म से गाँव-कोष [फंड] में जमा की जाएँ;

(ङ) ऐसी कुल रकमें, जो धारा १०४ के अधीन प्राप्त हों;

(च) गाँव-पंचायत के कर्मचारियों-द्वारा इकट्ठा किया हुआ कूड़ा-करकट, घूर, गोबर या पाँस, तथा मरे हुए जानवरों की लाशें इत्यादि के बेचने से जो आमदनी हो;

(छ) नजूल भूमि के लगान का या उससे होनेवाली दूसरी आमदनियों का वह भाग, जिसके बारे में प्रांतीय सरकार ने गाँव-कोष [फंड] में जमा करने के आदेश किये हों;

(ज) ऐसी रकमें, जो गाँव-कोष [फंड] के लिए कोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या दूसरा स्थानीय अधिकारी [लोकल अथारिटी] दे।

(झ) वे सब रकमें, जो ऋण या दानरूप में प्राप्त हों;

(ञ) ऐसी दूसरी रकमें, जो प्रान्तीय सरकार की किसी साधारण या विशेष आज्ञा-द्वारा गाँव-कोष [फंड] के लिए दे दी जाएँ;

(ट) वे सब रकमें, जो धारा २४ के अधीन या किसी दूसरे कानून के अधीन गाँव-पंचायत को किसी व्यक्ति या कारपोरेशन या प्रांतीय सरकार से मिली हो।

(३) इस धारा के किसी आदेश से किसी गाँव-सभा के किसी ऐसे दायित्व पर प्रभाव न पड़ेगा, जो किसी ऐसे ट्रस्ट के कारण उस पर आया हो, जो कानून-द्वारा उसके सिपुर्द किया गया हो या उसने स्वयं स्वीकार किया हो।

भूमि, गाँव-कोष, सपत्ति प्राप्त करना

३३—जब किसी गाँव-सभा को या ऐसी बहुत सी गाँव-सभाओं को, जो धारा २० या ३० के आदेशों के अधीन सम्मिलित हो गई हों, इस ऐक्ट के किसी उद्देश्य के लिए किसी भूमि की आवश्यकता हो तो वह सभा या वे सभाएँ पहले उस भूमि को आपसी बातचीत के द्वारा प्राप्त करने की कोशिश करेगी या करेंगी और यदि सम्बंधित दोनों पक्ष आपस में कोई समझौता न कर सकें तो ऐसी गाँव-सभा या गाँव-सभाएँ कलक्टर को नियत फार्म में उस भूमि को प्राप्त करने के लिए दरख्वास्त दे सकती है या दे सकती हैं और कलक्टर ऐसी भूमि को ऐसी गाँव-सभा या गाँव सभाओं के लिए प्राप्त कर सकता है।

स्पष्टीकरण—इस अध्याय में शब्द 'भूमि' में ऐसे लाभ, जो भूमि में प्राप्त हों और ऐसी चीजें सम्मिलित हैं, जो भूमि से लगी हुई हों या किसी ऐसी चीज से स्थायी रूप से बंधी हुई हों, जो भूमि से लगी हुई हों।

सम्पत्ति, जिस पर गाँव-सभा का अधिकार होगा

३४—(१) ऐसी विशेष शर्तों की पाबन्दी करते हुए, जिन्हें प्रान्तीय सरकार नियत करे, गाँव-सभा के अधिकार-क्षेत्र के अन्दर स्थित सारी सरकारी सम्पत्ति गाँव-सभा की संपत्ति होगी या उसके अधिकार में होगी और यह सम्पत्ति ऐसी दूसरी सारी सम्पत्तियों के सहित जो गाँव-सभा के अधिकार में आ जाएँ, उसकी देखरेख में या प्रबंध में या उसके नियंत्रण में रहेगी।

(२) सारे बाजारों और मेलों या उनके ऐसे भाग का, जो सरकारी भूमि पर लगते हों, प्रबन्ध और नियंत्रण गाँव-पंचायत करेगी और गाँव-सभा, गाँव-कोष [फंड] के नाम में इन बाजारों और मेलों के संबंध में नियत या लगाए हुए कुल महसूल वसूल करेगी।

दावों का निबटाया जाना

३५-जब धारा ३४ में बताई हुई किसी सम्पत्ति की मिल्कियत [स्वामित्व] के बारे में गाँव-सभा और किसी व्यक्ति के बीच झगड़ा हो तो गाँव-पंचायत उक्त व्यक्ति को अपना बयान देने के लिए उचित अवसर देगी और उसके बाद यह निर्णय करेगी कि उस सम्पत्ति की गाँव-सभा की मिल्कियत [स्वामित्व] समझी जाए या नहीं।

ऋण लेने का अधिकार

३६.-नियत अधिकारी की आज्ञा लेकर और ऐसी सब शर्तों की पाबन्दी करते हुए, जो नियत की गई हों, गाँव-सभा इस ऐक्ट के किसी भी उद्देश्य को कार्यान्वित करने पर प्रान्तीय सरकार से ऋण ले सकती है।

टैक्स जो लगाए जा सकते हैं

३७-नियत नियमों और ऐसे आदेशों की पाबन्दी के साथ; जो प्रान्तीय सरकार ने इस सम्बंध में बनाए हों, कोई गाँव-सभा निम्नलिखित टैक्स लगा सकती है—

[क] एक टैक्स ऐक्ट कब्जा आराजी संयुक्तप्रान्त सन् १९३९ ई० के आदेशों के अधीन अदा किए जानेवाले लगान पर, जो ऐसे लगान के एक आना प्रति रुपया से अधिक न होगा और उक्त टैक्स उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों से वसूल किया जा सकेगा, जो उस पर अलग-अलग या सम्मिलित रूप से काश्तकाराना [कृषि-सम्बंधी] कब्जा रखता हो या रखते हों, जिसको या जिनको उससे सायर की आमदनी मिलती हो।

पर शर्त यह है कि यदि कोई सीर या किसी दूसरी आराजी [भूमि] का शिकमी असामी किसी आराजी पर काश्त करता हो तो इस धारा के अधीन, जो टैक्स की रकम लगाई जाएगी, वह ऐसे शिकमी असामी और सीर के मालिक या असल असामी से, जैसी भी स्थिति हो, ३।४ और १।४ के अनुपात से क्रमशः वसूल की जाएगी।

[ख] एक टैक्स उस लगान पर, जो कोई मालिक या मातहतदार ऐसी आराजी के सम्बंध में करता हो, जिसकी व्याख्या ऐक्ट कब्जा आराजी संयुक्तप्रान्त सन् १९३९ ई० की धारा ३ में की गई है और जो ऐसे लगान के ६ पाई प्रति रुपया से अधिक न होगा। उपर्युक्त टैक्स उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों से काबिल अदा होगा, जो ऐक्ट मालगुजारी आराजी संयुक्तप्रान्त, सन् १९०१ ई० की धारा ३२ के आदेशों के अनुसार ऐसी आराजी के अलग अलग या संयुक्त रूप से मालिक या मातहतदार की हैसियत से कब्जा रखनेवाले दर्ज हों।

[ग] एक टैक्स ऐसी आराजी सीर या खुदकाश्त की मान ली हुई जमाबन्दी की मालियत पर, जिसका हिसाब ऐक्ट मालगुजारी आराजी संयुक्तप्रान्त सन् १९०१ ई० की धारा ६३ [घ] के शर्तिया वाक्य-खण्ड के अनुसार लगाया जाएगा। उपर्युक्त टैक्स हर ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों से काबिल अदा होगा, जो ऐक्ट मालगुजारी आराजी संयुक्तप्रान्त सन् १९०१ ई० की धारा ३२ के आदेशों के अनुसार ऐसी सीर के अलग-अलग या संयुक्त रूप से मालिक या मातहतदार की हैसियत से कब्जा रखनेवाले दर्ज हों और यह टैक्स एक आना प्रति रुपया से अधिक न होगा।

[घ] एक टैक्स व्यापार, कारबार और पेशों पर, जो ऐसी दर से अधिक न होगा, जो नियत की जाए।

[घ] एक टैक्स उन इमारतों पर, जो ऐसे व्यक्तियों की मिल्कियत [स्वामित्व] में हों, ऊपर दिए हुए कोई टैक्स अदा न करते हों और जो ऐसी दर से अधिक न होगा, जो नियत की जाए।

[२] उपधारा [१] के वाक्यखंडों (क) (ख) या (ग) के अधीन कोई टैक्स अकेला न लगाया जायगा और यदि कोई टैक्स ऊपर दिए हुए तीनों वाक्यखंडों में से किसी के अधीन लगाया जाएगा तो दूसरे दोनों वाक्य-खंडों के अधीन भी टैक्स लगा दिए जाएँगे और तीन वाक्यखंडों के अधीन दिए जाएँगे और तीन वाक्यखंडों के अधीन लगाए हुए टैक्सों की दरों में वही पारस्परिक अनुपात होगा, जो अधिक-से-अधिक नियत की गई दरों में हो।

प्रकाशक और मुद्रक—के० मित्रा, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।

गुलशन हेयर-आयल

यह सुगंधित तैल तमाम बाजार में बिकनेवाले तैलों से उत्तम तैल है। दिल-दिमाग को तरावट लाता है। स्मरण-शक्ति बढ़ाता है। बालों को काला, मुलायम, घूँघरवाले व सुन्दर बनाता है। शिर-दर्द को दूर करता है। बालों का गिरना बन्द करता है। हर मौसम में प्रयोग करना चाहिये। मूल्य प्रति शीशी ≈) दर्जन ६) डाक व पैकिंग खर्च ३) प्रचार के लिए एक दर्जन साथ मँगाने पर एक फैन्सी रूमाल, शीशा, कंघा, हाथ व गले के बटनों का सेट, बम्बई फैशन सोने की भाँति चमकदार अँगूठी मुफ्त इनाम दी जायगी।

पता :—इण्डियन कमर्शियल कम्पनी नं० २, कानपुर

ओटो कुसुम बहार

यह ओटो सेन्टों का सम्राट् है। लगाते ही तबियत शान्त हो जायगी। लगाकर आप जिस रास्ते से निकल जाएँगे, लोगों को ताज्जुब होगा कि यह खुशबू किस बगीचे से आ रही है। रूमाल में लगाने से दिनों खुशबू नहीं जाती। कीमत फी शीशी ।।।) दर्जन ६।।।) डाक व पैकिंग खर्च १।-) एक दर्जन साथ मँगाने पर हाथ व गले के बटनों का सेट, बम्बई फैशन सोने की भाँति चमकनेवाली अँगूठी, फैन्सी रूमाल, खूबसूरत शीशा मय कंघा के मुफ्त इनाम दिया जायगा। दो दर्जन मँगाने वाले को एक बढ़िया फाउन्टेनपेन और भेजा जायगा।

खजाना रोजगार

२०००) माहवार कमाने का साधन !

इस "खजाना रोजगार" नामक पुस्तक में सैकड़ों प्रकार के हुनर छपे हैं, जिससे बेकार लोग लखपती हो गए हैं। इस पुस्तक में पेटेण्ट दवाइयों के नुस्खे, शर्बत, नाखून की लाली व सुहाग-बिंदी, वारनिश, चेहरे को खूबसूरत बनाने के क्रीम व बर्तनों पर कलई आदि चढ़ाने के सैकड़ों हुनर छपे हैं जिन्हें लोग मरते दम तक अपनी औलाद को भी नहीं बताते हैं। कीमत फी पुस्तक २।।) डाक व पैकिंग खर्च माफ।

पता :—भारत ट्रेडिंग कम्पनी, नं० २ बकेवर (इटावा)

शर्त—यदि लिखे अनुसार सत्य न निकले तो कीमत ६ महीने तक वापिस !

दिव्यसिद्ध तांत्रिक अँगूठी ("रजिस्टर्ड")

आप जो चाहेंगे हो जायगा। गरीबी दूर भाग जायगी, लक्ष्मी आपके कदम चूमेगी, आप धनवान हो जायँगे, आपकी प्रेमिका आपसे अटूट प्रेम करने लगेगी, शत्रु मित्र बन जायँगे, मनचाही सन्तान होगी, बुरे ग्रहों का दोष दूर हो जायगा, संसार आपकी इज्जत करेगा, लड़ाई-झगड़े में फतह होगी, विद्यार्थी परीक्षा में पास होंगे, जिसे आप चाहते हैं, उसी सुन्दरी से शादी होगी, नाराज हाकिम खुश होगा, वशीकरण होगा। बात यह है कि हर काम आपके इच्छानुसार होगा। यह अँगूठी ग्रहण के अवसर पर शुभ मुहूर्त में तैयार होती है। बड़े परिश्रम से तैयार कराई गई है। अब परीक्षा करके लाभ उठाना आपका काम है। मूल्य २।।) डाक-खर्च ।।।) आना। स्पेशल का मूल्य ५)

"तांत्रिक अँगूठी" की सचाई के विषय में लोगों की राय—

१—नामदेव जाधव पटाईत, पुणे नं० ४ से लिखते हैं : आपकी तांत्रिक अँगूठी के प्रभाव से मेरी नौकरी लग गई है। अब जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा है। इससे पहिले फाकेकशी पर नौबत आ गई थी।

२—श्री रामकरण जी, मु० पिलानी (जयपुर स्टेट) से लिखते हैं : आपकी 'तांत्रिक रिंग' लिखे अनुसार बराबर काम कर रही है। कृपया एक अँगूठी शीघ्रता से और भेज दें।

३—R. N. S. Lakhauria, Lucknow. से लिखते हैं :—आपकी तांत्रिक अँगूठी की सहायता से हमें व्यापार में अपूर्व लाभ हुआ है।

४—D. H. Dass, G. H. M. 440111 S. E. A. C. लिखते हैं : आपकी भेजी हुई तांत्रिक अँगूठी मिली,—हार्दिक धन्यवाद। सत्य साबित हुई, निम्नलिखित पुस्तकें शीघ्र भेज दें। १०० चुंबन मूल्य १।।) तथा ८४ आसन मूल्य १।।) डाक-खर्च ।।) कुल ३।।) भेजे हैं।

हमारे पास इस विषय में और भी पत्र हैं जो स्थानाभाव के कारण प्रकाशित नहीं कर सकते हैं।

पता—विजय ट्रेडिंग कम्पनी, (नं० १६) अलीगढ़, यू० पी०

वन्दना

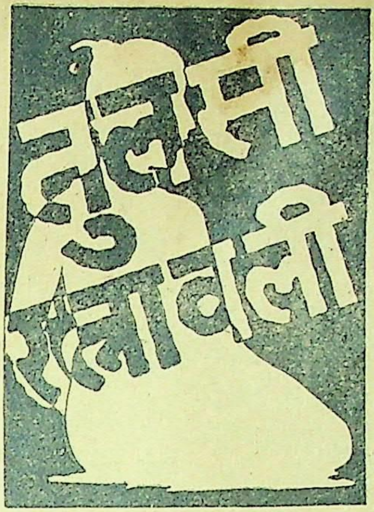
लेखिका, श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा'

हिन्दी की प्रसिद्ध कवियित्री श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा के गीत और कविताएँ बहुत लोकप्रिय हैं। इस संग्रह में श्रीमती जी की ५२ सर्वोत्कृष्ट, मधुर तथा मर्मस्पर्शी कविताएँ संग्रहीत हैं। पुस्तक की भूमिका हिन्दी के सिद्धहस्त कवि पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने लिखी है। आवरण पृष्ठ अत्यन्त आकर्षक और छपाई-सफाई नयन-मनोहर है। मूल्य सजिल्द पुस्तक का २) दो रुपये।

हिन्दी-साहित्य

प्रणेता, रा० ब० डाक्टर श्यामसुन्दरदास

यह हिन्दी-साहित्य का परिवर्द्धित संस्करण है। कवियों के विषय में जो नये अनुसन्धान हुए हैं उन सबका समावेश इसमें किया गया है। साहित्यिक स्थिति के वर्णन में भी आवश्यक परिवर्तन किये गये हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य के प्रत्येक विद्यार्थी के पास होनी चाहिए। मूल्य ३) तीन रुपये।



गोस्वामी तुलसीदासजी के विचार उनके बारह-तेरह छोटे-बड़े ग्रन्थों में बिखरे पड़े हैं। उनका संकलन इस रत्नावली में प्रिंसपल केदारनाथजी अग्रवाल एम० ए० ने बड़े परिश्रम से किया है। एक पुस्तक ही अनेक ग्रन्थों का काम देगी। मूल्य १।।) एक रुपया आठ आने।

छप गया! छप गया!

सचित्र महाभारत

रचयिता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

यह विशाल महाभारत का सार है। इसमें महाभारत के सभी महत्त्व के अंश आ गये हैं। सारी प्रधान घटनाएँ इसमें हैं। बोलचाल की सीधी-सादी भाषा है जिसे बालक, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी, आसानी से, समझ लेते हैं। पुस्तक बड़े आकार में, अच्छे काग़ज़ पर, सफ़ाई से छापी गई है। पूरे पृष्ठ के सादे और रंगीन चित्र हैं। अच्छी जिल्द है। मूल्य केवल ६) छः रुपये।



लंका के युद्ध में लक्ष्मणजी को मेघनाद की शक्ति लगने और उनकी चिकित्सा होने का सुन्दर वर्णन कवि राजाराम श्रीवास्तव, बी० एस्-सी०, एल्-एल० बी० ने इस खण्ड-काव्य में बड़ी सफलता से किया है। मूल्य ।।।) बारह आने।



चित्तौर भारतवासियों की शूरता का प्रसिद्ध तीर्थ है। इसे क्षत्रिय वीरांगनाओं ने अपने बलिदान से अनुप्राणित किया है। इसका पुनीत वर्णन हमारे मन में वीरता का सञ्चार कर पुरानी स्मृतियों को जाग्रत् कर देता है। इसकी कथा प्रत्येक भारतवासी को जाननी चाहिए। ढाई सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।



इस संग्रह में श्री चैतन्य महाप्रभु, गो० नित्यानन्द, भक्तहरिदास, रघुनाथ दास और श्री शंकराचार्य, रामानुज स्वामी, सन्त तुकाराम, कबीर साहब आदि १७ सुप्रसिद्ध महापुरुषों के जीवनचरित हैं। ४००से अधिक पृष्ठों की सचित्र, सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३।-), तीन रुपये पाँच आने।

विविध विषय की बढ़िया पुस्तकें

विनयपत्रिका (सटीक)

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में विनय-पत्रिका का स्थान बहुत उच्च है। इसमें गोस्वामी जी के विनय-सम्बन्धी पद्यों का संग्रह है। इसके टीकाकार हैं पंडित रामेश्वर भट्ट। मूल्य ४) चार रुपये।

दैत्यवंश

लेखक, श्रीयुत हरदयालसिंह। इसमें दैत्यराज हिरण्याक्ष से लेकर स्कन्द तक दैत्यवंश के प्रभावशाली नरेशों का वर्णन ब्रजभाषा के ललित छन्दों में पुरानी शैली के अनुसार किया गया है। इस पुस्तक पर देव-पुरस्कार दिया जा चुका है। मूल्य ३।-) तीन रुपये पाँच आने।

मतिराम-मकरन्द

इसमें काव्यालोचन के साथ-साथ कवि मतिराम के ३ प्रसिद्ध ग्रंथों--मतिराम-सतसई, ललित-ललाम और रसराज—का संक्षिप्त सरस संग्रह भी कर दिया गया है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १।-) एक रुपया पाँच आने।

नीरजा

सुप्रसिद्ध कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्मा की चुनी हुई कविताओं का संग्रह। इस पुस्तक के लिए लेखिका को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से ५००) का सेक्सरिया पुरस्कार मिला है। मूल्य १।-) एक रुपया पाँच आने।

ज्योतिष्मती

इस संग्रह में ठाकुर गोपालशरण सिंह जी की नवीन प्रकार की कविताएँ संगृहीत की गई हैं जो हिन्दी-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं। खासकर इस संग्रह में छोटे-छोटे गीत बहुत ही मधुर और भावपूर्ण हैं। मूल्य २।-) दो रुपये पाँच आने।

आदर्श महिला

इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैव्या और चिन्ता आदि पाँच देवियों की जीवन-घटनाओं का सजीव वर्णन किया गया है। मूल्य २॥≈) दो रुपये ग्यारह आने।

शिशु-पालन

यह पुस्तक स्त्रियों के बड़े काम की है। इसमें प्रसूति-चर्या से लेकर बच्चों के पालन-पोषण के सम्बन्ध की सभी आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला गया है। मूल्य २) दो रुपये।

शासक

सुप्रसिद्ध राजनीति-विशारद निकोलो मेकियावली की 'प्रिंस' नामक पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर। इसमें राजा के कर्तव्यों तथा राज्य-शासन-प्रणाली का बहुत ही विशद विवेचन किया गया है। मूल्य २) दो रुपये।

मार्क्स का दर्शन

यह श्रीयुत भूपेन्द्रनाथ सन्याल का लिखा हुआ है जो मार्क्सवाद के अच्छे विद्वान् हैं। यह दर्शन सर्व-साधारण के लिए है। खास कर मजदूर और शोषित वर्ग के लोग इसे अवश्य पढ़ें। मार्क्स का दर्शन क्रान्ति से ओत-प्रोत है। मार्क्स ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों द्वारा मजदूर श्रेणी के स्वार्थ की पुष्टि की है। बढ़िया कागज पर छोटे टाइपों में छपी सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) दो रुपये।

नवयुवकों के लिए हवाई शिक्षा

नाम से ही पुस्तक का विषय प्रकट है। हवाई जहाजों के युग में इस विषय की थोड़ी बहुत जानकारी प्रत्येक भारतवासी को कराने के लिए पंडित श्रीराम वाजपेयी ने इस पुस्तक की रचना की है। मूल्य १) एक रुपया।

ऋद्धि

जो लोग धनहीन हैं, ऋण-ग्रस्त हैं, बहु-कुटुम्बी हैं, साथ ही जिनकी आय भी बहुत कम है, वे इस पुस्तक के उपदेश के अनुसार चलकर सुख से जीवन बिता सकते हैं। मूल्य २।-) दो रुपये पाँच आने।

भारत के धुरन्धर कवि

आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि से लेकर महाकवि कालिदास, भवभूति आदि छब्बीस संस्कृत के धुरन्धर कवियों तथा चन्द-बरदाई से लेकर राजा लक्ष्मणसिंह तक अट्ठाईस हिन्दी-कवियों का संक्षिप्त परिचय। मूल्य ॥) आठ आने।

विविध विषय की चुनी हुई पुस्तकें

सोहराब-रुस्तम

फारस भाषा में शाहनामा नाम की एक बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है, जिसमें बहुत से शूरवीरों की कहानियाँ लिखी गई हैं। यह कहानी उसी में से ली गई है। मूल्य ॥|-) तेरह आने।

कुलबोरन

श्री चन्द्रभूषण वैश्य ने इस उपन्यास को सत्य घटना के आधार पर लिखा है। समाज की अन्ध-परम्पराओं से देश की जो हानि हो रही है उसका इसमें सजीव चित्र है। सुधार करनेवाले को रूढ़ियों के अन्ध-भक्तों से जैसा लोहा लेना पड़ता है उसका नमूना उपन्यास का मुख्य पात्र 'कुलबोरन' है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) दो रुपये आठ आने।

नवीन संन्यासी

इस उपन्यास में ग्राम्य और नागरिक जीवन का यथार्थ और सुन्दर चित्रण प्रभात बाबू ने किया है। हास्य और विनोद की सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में है। मूल्य ४||≥) चार रुपये ग्यारह आने।

छुटकारा

एक निठल्ले और बेरोजगार भाई की सहायता उपार्जनशील भाई को किस प्रकार करनी चाहिए, यह बात इस उपन्यास से भली भाँति सीखी जा सकती है। मूल्य १|-) एक रुपया पाँच आने।

शीला देवी

महास्थान-राजकुमारी शीलादेवी की बुद्धिमत्ता, शूरता और सुजनता का वर्णन इसमें पढ़िए। योगिनी माता का कार्य-कौशल विचित्र है। चिह्लन का पतन और मित्र मुराद की सचाई आदर्श स्थानीय है। विचित्र उपन्यास है। मूल्य २||≥) दो रुपये ग्यारह आने।

कथा-सरित्सागर

इस पुस्तक में आद्योपान्त बड़ी सुन्दर कथाएँ संगृहीत हैं। प्रत्येक कथा अपने साथ कुछ-न-कुछ दृष्टान्त रखती है। मूल्य २||≥) दो रुपये ग्यारह आने।

सोहाग-बिन्दी नाटक

यह पुस्तक कुछ एकांकी नाटकों का संग्रह है। इन सभी नाटकों में सामाजिक समस्याओं पर विचार किया गया है। मूल्य १|-) एक रुपया पाँच आने।

पुरातत्त्व-निबन्धावली

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस पुस्तक में समाविष्ट किये गये निबन्धों के लिखने में देश-विदेश के कितने ही दुष्प्राप्य ग्रन्थों के अध्ययन तथा दुर्गम स्थानों के भ्रमण से प्राप्त की गई अगाध ज्ञानराशि का उपयोग किया है। मूल्य २||≥) दो रुपये ग्यारह आने।

माधव मिश्र-निबन्धमाला

हिन्दी-गद्य के प्रारम्भिक काल के प्रतिभाशाली लेखक पंडित माधव मिश्र के चुने हुए निबन्धों का संग्रह। मूल्य ३|-) तीन रुपये पाँच आने।

व्यंग्य कौतुक

इस पुस्तक में कवीन्द्र रवीन्द्र बाबू के द्वारा व्यंग्य और विनोदमयी भाषा में लिखे गये कुछ निबन्धों का संग्रह है। मूल्य ||≥) ग्यारह आने।

मेरी आत्म-कहानी

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के जन्मदाता बाबू श्यामसुन्दरदास जी की आत्म-कहानी एक प्रकार से हिन्दी-साहित्य के वर्तमान युग का इतिहास है। इस पुस्तक में बाबू साहब ने केवल अपनी जीवन-घटनाओं का विवरण ही नहीं लिखा वरन् अपने समय के उन सभी साहित्य-सेवियों के कार्यों की विवेचना भी की है, जिन्होंने हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि में योगदान किया है। मूल्य २) दो रुपये।

एक आत्म-कथा

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के एक प्रतिष्ठित विद्वान् मुंशी लुत्फुल्ला की आत्म-कथा का सारांश। इसमें विलायत-यात्रा तथा मार्ग में पड़नेवाले स्थानों का तत्कालीन वर्णन दिया गया है। मूल्य २) दो रुपये।

मैनेजर बुकडिपो - इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारी बढ़िया पुस्तकें

'रवीन्द्र-साहित्य पुस्तक-माला'

लेखक, डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

योगायोग

कवीन्द्र का यह उपन्यास जैसा कवित्वमय है वैसा ही मनोविज्ञान की बारीकियों से परिपूर्ण। इसमें बंगाल के समाज का अपूर्व चित्रण है। नायिका है धर्म-प्राण कुमुद और नायक है राजा बहादुर मधुसूदन घोषाल जो गरीब घर का लड़का होकर अपने पौरुष से बहुत बड़ा मालदार हुआ है। अपने विरोधी घराने की बेटी से विवाह करने पर उसके चित्त में जो विरोध के बादल उमड़ते हैं उनका गर्जन और नई दुलहिन कुमुद का शान्त-शिष्ट प्रतिकार देखकर बरबस लेखक की सराहना करनी पड़ती है। इसमें गृहिणी की क्षमता का अपूर्व उदाहरण है। भाषा, भाव और कथानक सभी दृष्टियों से 'योगायोग' कवीन्द्र के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ है। इसे एक बार पढ़कर दुबारा तिबारा पढ़ने को जी चाहता है। अच्छा कागज, बढ़िया जिल्द, पृष्ठ सवा तीन सौ से अधिक। मूल्य केवल ४) चार रुपये।

विश्व-परिचय

यह विज्ञान-विषयक पुस्तक है। इसमें परमाणुलोक, नक्षत्रलोक, सौरजगत्, ग्रहलोक और भूलोक आदि शीर्षकों में विषय का विशद विवेचन है। एक स्थान पर लेखक ने लिखा है "वस्तुएँ सब रंगों को ग्रहण नहीं कर सकतीं, किसी किसी को वापस कर देती हैं। वह लौटाया हुआ रंग ही हम देखते हैं। ब्लाटिंग पेपर जिस रस को सोख लेता है वह किसी काम नहीं आता—जिस रस को वह ले नहीं सकता वही बचा हुआ रस हमारा प्राप्य है।" इस प्रकार सरल रीति से कठिन विषय समझाया गया है। पुस्तक बालकों के लिए होने पर भी वयस्क विद्वानों को कम आनन्द न देगी। अच्छे कागज पर छपी हुई सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

रूस की चिट्ठी

डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर वृद्धावस्था में रूस गये थे। वहाँ का आँखों देखा हाल उन्होंने चिट्ठियों में लिखकर भेजा था। वह बड़ा विचित्र है। इधर तो रूस के सम्बन्ध में बहुत सी बातें प्रकट हो गई हैं पर जिस समय रवि बाबू वहाँ गये थे, रूस का हाल हमें विकृत रूप में बताया गया था। उसको कवि ने सुन्दर भाषा में प्रकट किया है। पुस्तक सचित्र और सजिल्द है। अच्छे कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

चार अध्याय

इस पुस्तक का कथानक चार अध्यायों में समाप्त है। मुख्य नायिका कालेज की सुशिक्षित युवती एला ने विवाह न करके देशोद्धार के काम में जीवन लगाने का प्रण किया। अनेक विप्लवपन्थियों से उसकी घनिष्ठता बढ़ी। उसके कई प्रेमी खड़े हुए। राजनीति, समाज और स्त्री-पुरुष-समस्या आदि के विचार बड़े अच्छे रूप में इसमें हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १।।) एक रुपया आठ आने।

माँ और बच्चा

इसके लेखक नामी चिकित्सक डाक्टर बोधराज चोपड़ा, एम० बी०, सी-एच० बी० (एडिनबरा) हैं। यह पुस्तक अपने ढंग की अनुपम है। इसके ११ प्रकरणों में छोटे बच्चों की मृत्यु और उसके कारण, गर्भिणी माता, जन्म के समय से बालक की रक्षा, बच्चों को दूध पिलाना, दूध पिलानेवाली दाई, दूध छुड़ाना आदि आवश्यक विषयों की शिक्षा दी गई है। लेखक ने स्त्रियों की मृत्यु और रोगों को कम करने तथा छोटे बच्चों को मृत्यु से बचाने की दृष्टि से पुस्तक लिखी है। यों विद्वान् लेखक ने मनुष्यमात्र का उपकार किया है। अच्छे कागज पर छपी ढाई सौ से भी अधिक पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) दो रुपये

भारतमाता के पुजारी

इस संग्रह में वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक के, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के, प्रतिनिधियों को स्थान दिया गया है। प्रतिनिधि-पुरुष के जीवन-चरित के साथ यह भी दिखाया गया है कि उस महापुरुष ने भारतीय जनता की विचारधारा में क्या और कैसे परिवर्त्तन किया। प्रत्येक युग की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। इसमें ऋषिपुत्र नचिकेता से लेकर गाँधी और जवाहरलाल तक १५ महापुरुषों का आदर्श आपको मिलेगा। इस पुस्तक में लिखी बातों को मानने से किशोर अवस्थावाले छात्रों का विशेष उपकार होगा, वैसे लाभ तो सभी को होगा। मूल्य १।।।) एक रुपया बारह आने।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारे अनुपम प्रकाशन

अपनों की खोज में

(बुकसेलर की डायरी)

लेखक, श्रीयुत रामप्रसाद विद्यार्थी (रावी)

यह ऐसा भ्रमण-वृत्तान्त है जिसमें लेखक ने काफी सूझ-बूझ से काम लिया है। लेखक ने बुकसेलर न होने पर भी बुकसेलर बनकर ही इसके लिखने का अधिकार कमाया है। मनुष्य की पहचानने की कला और दूसरे को अपने अनुकूल करने की युक्ति पाठक को इस पुस्तक के वर्णन में मिलेगी जो बड़े काम आवेगी। मूल्य १) एक रुपया।

संसार का संक्षिप्त इतिहास

(प्रथम व द्वितीय भाग) अनुवादक, श्री मदनगोपाल, बी० ए०, एल्-एल० बी०। यह पुस्तक अँग्रेजी के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक एच० जी० वेल्स के इतिहास का हिन्दी अनुवाद है। इसमें पृथ्वी के आदिकाल से लेकर जीसस के निर्माण के पूर्व तक की कथा सक्रम वर्णित है। द्वितीय भाग में जीसस के निर्माण से लेकर संसार के पुनर्निर्माण तक का वर्णन आ गया है। मूल्य प्रत्येक भाग का ४) चार रुपये।

गान्धी-मीमांसा

लेखक, पंडित रामदयाल तिवारी। गांधीजी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की ऐसी तर्कपूर्ण विवेचना आज तक किसी ने नहीं की है। इसे एक बार आद्योपान्त पढ़ जाने पर गांधीवाद पूर्ण रूप से हृदयङ्गम हो जाता है। विद्वानों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। ८५० पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४) चार रुपये।

रणभेरी

(चार मौलिक एकांकी)

रचयिता श्रीयुत वैकुण्ठनाथ दुग्गल की इस पुस्तक में (१) आन, (२) पुनर्संगठन, (३) राष्ट्रधर्म और (४) अजेय भारत नाम के एकांकी हैं। पहले में वीर चम्पतराय और उनकी रानी सारन्धा की एक महत्त्वपूर्ण घटना है; दूसरे में महाराज शाहू की, तीसरे में हर्षवर्धन की बहन-वाली प्रसिद्ध घटना और चौथे में युवराज अग्निमित्र के यूनानी नरेश मीनेंडर को जीतने की रोचक कथा है। संग्रह की भाषा सुलझी हुई, कथानक बढ़िया और बीच-बीच में सुन्दर कविताएँ हैं। मूल्य केवल १) एक रुपया।

बाल-नाटक-माला

(चार भाग)

श्री दशरथ ओझा, बी० ए० के प्रस्तुत किये इन एकांकी नाटकों में इतिहास, राजनीति, समाज-विज्ञान, चरित्र और मनोविकारों का सफल प्रदर्शन है। शैली सरल और आकर्षक है। मूल्य प्रत्येक भाग का ॥) आठ आने।

संत-कबीर

प्रणेता—प्रो० साधुराम शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल०

यह सचित्र नाटक है। कबीर साहब का जीवन हिन्दू-मुसलमानों के मन से असहिष्णुता और वैमनस्य को हटाकर एकता और भाईचारे की स्थापना में बीता था। पाँच सौ वर्ष पहले हिन्दू-मुस्लिम-एकता की जितनी जरूरत थी उससे आज अधिक ही है। कबीर का उद्देश्य समझने में यह नाटक बहुत काम देगा। इसमें प्रणेता ने कबीर साहब की जीवन-घटनाओं का आश्रय लेकर देशवासियों के सामने सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। मूल्य ॥।) बारह आने।

भूख

(सामाजिक नाटक)

लेखक श्रीयुत वीरदेव 'वीर', बी० ए०

लेखक ने इस नाटक में भूख से होनेवाले कष्टों का करुण चित्र उपस्थित किया है। हिन्दू-मुस्लिम-एकता, व्यापारियों के जनता को निर्दयता से लूटने और सार्वजनिक कार्य-कर्त्ताओं के सेवा-भाव के अनोखे दृश्य इस नाटक में हैं। बीच-बीच में गीत भी बढ़िया हैं। मूल्य १) एक रुपया।

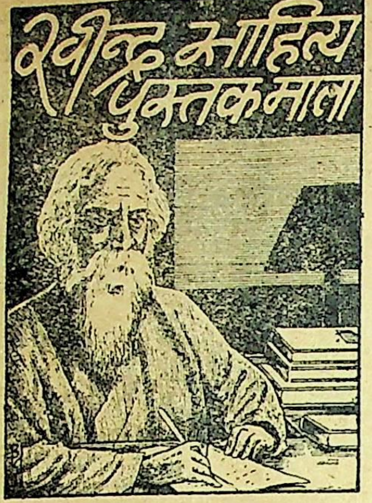
देवयानी

यह नाटिका कुमारी तारा वाजपेयी की रचना है। इसमें शुक्राचार्य की बेटी देवयानी के कन्यात्व का आदर्श बड़ी सफलता से उपस्थित किया गया है। कथा महाभारत से ली गई है। इसमें आर्यों के व्यापक वैवाहिक सम्बन्ध के इस एक अपवाद—क्षत्रिय वर और कन्या ब्राह्मणपुत्री—का स्पष्टीकरण बड़ी सतर्कता से हुआ है। पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। मूल्य केवल १) एक रुपया।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद



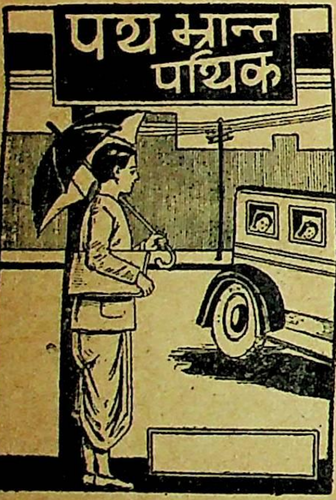
कवि अञ्चल की मादक-मधुर कविताओं का अनूठा संग्रह। भाषा-सौष्ठव, अनुभूति की तीक्ष्णता और कल्पना की उड़ान की दृष्टि से ये कविताएँ अनुपम हैं। सजिल्द प्रति का मूल्य ३) तीन रुपये।



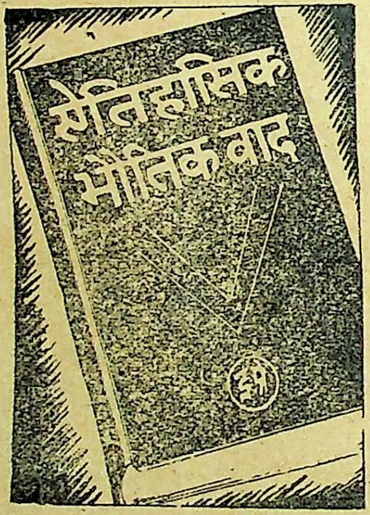
रवीन्द्र-साहित्य पुस्तक-माला के (१) योगायोग, (२) विश्व-परिचय, (३) रूस की चिट्ठी और (४) चार अध्याय का ब्योरा विज्ञापन में अन्यत्र पढ़िए।



शान्त शिष्ट सत्याग्रही प्रताप ने अपने मधुर व्यवहार से विरोधियों को किस प्रकार कट्टर देशभक्त बना दिया और उनको अपना अनुगत बना लिया, इस उपन्यास में पढ़िए। मूल्य १॥) एक रुपया आठ आने।



किस प्रकार उन्नति करने पर पुण्डरीकाक्ष पूर्नितुण्ड के साथ राजा बहादुर की बेटी एना का विवाह हो सका, इसका विचित्र वर्णन इस उपन्यास में पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २॥≡) दो रुपये ग्यारह आने।



लेखक भूतपूर्व काकोरी कैदी श्री मन्मथनाथ गुप्त और रमेन्द्र वर्मा। समाजवाद के अध्ययन के लिए इसे अवश्य पढ़िए। मार्क्सवाद के दर्शनों में यह सबसे गहन है। एक दर्जन अध्यायों में विषय का प्रतिपादन हुआ है। मूल्य ६) छः रुपये।



लेखक कुँवर सुरेशसिंह। यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। मन-बहलाव के साथ-साथ विविध जानवरों की जानकारी के लिए इसे पढ़िए। १०० से अधिक चित्र। सजिल्द प्रति का मूल्य ४) चार रुपये।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड प्रयाग।


CAUTION
SEE THAT THE
INNER LID
UNDER THIS
IS INTACT.
LIPTON'S
FINEST DARJEELING TEA
LIPTON'S TRADE MARK
INDIAN CHIEF OFFICE
TEA SHIPPING GODOWNS & EXPORT OFFICE
LIPTON'S BUILDINGS
CALCUTTA

हमारी नई पुस्तकें

सङ्गति

आकाशरंजन मेहता नामी डाक्टर थे। उनकी ...पी आमदनी थी। किन्तु उनकी अर्द्धाङ्गिनी सुशि-...मप्रभा यह समझती थी कि डाक्टर मेहता सिर्फ ...कार की धुन में रहते हैं; मेरे पिता के दिये धन ...गुजर होता है। इससे वह सिर-चढ़ी स्त्री बन ...। और डा० मेहता उसकी फटकार सुनकर भी ...गी बिल्ली बने हुए अपने काम में लगे रहते थे। ...मित्र जौहरी कई वर्ष विलायत में रह आया था। ...होंने हेमप्रभा से उसका परिचय करा दिया। परि-... घनिष्ठ हो गया कि उससे बचने को डा० ...आँखों का इलाज कराने के बहाने दूसरे प्रान्त में चले गये। इधर उसका रंग गहरा होता गया। कई महीने बाद डा० मेहता नकली अन्धे बनकर लौटे और ...सी रूप में उन्होंने हेमप्रभा के खोये हुए प्रेम पर ...धिकार किया। लेखक ने विलक्षण कथानक की ...ष्टि करके गिरते हुए चरित्र को समुन्नत बनाया है। ...य १।) एक रुपया आठ आने।

यात्री

श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बी० ए० ने इस पुस्तक में लिखा है कि हम सभी अनन्त पथ के यात्री ... यह जीवन-यात्रा कब आरम्भ हुई और कहाँ इसकी समाप्ति होगी। लेखक ने क्यों लिखूँ, जीवन-पथ ...पर, स्मृति, और शिक्षक-जीवन आदि २० शीर्षकों में विभिन्न विषयों पर परिमार्जित भाषा में उच्च विचार ...किये हैं। यात्री अपने ढंग की अनुपम पुस्तक ... सचित्र आवरण की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) ...पये।

...तोले फ्रांस की चुनी हुई कहानियाँ

...फ्रांस के इस नामी कहानी लेखक की प्रतिभा का ...नुमान पाठकों को छाया-सुन्दरी, उसका पति, रूप ...परी, मदारी, पेरिस की सुन्दरी और माल आदि ...हानियों से लगेगा। प्रत्येक कहानी बेजोड़ है। ये ...कहानियाँ मनोरंजन के साथ ही उपकार भी करेंगी। मूल्य १) एक रुपया।

विषवृक्ष

यह सुप्रसिद्ध उपन्यास-प्रणेता रायबहादुर बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का बढ़िया उपन्यास है। इसका हिन्दी रूपान्तर किया है कृतविद्य श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने। इस उपन्यास में विषवृक्ष है कुन्दनन्दिनी जो थोड़ी अवस्था में अनाथ हुई और नगेन्द्र बाबू का आश्रय पाकर उनके रिश्तेदार से ब्याही गई। फिर सत्रह साल की उम्र में विधवा हो गई। इसके रूप पर नगेन्द्र बाबू ऐसे रीझे कि उसके साथ विधवा-विवाह कर लिया। उपन्यास की भाषा और कथानक सभी विचित्र है। मूल्य २) दो रुपये।

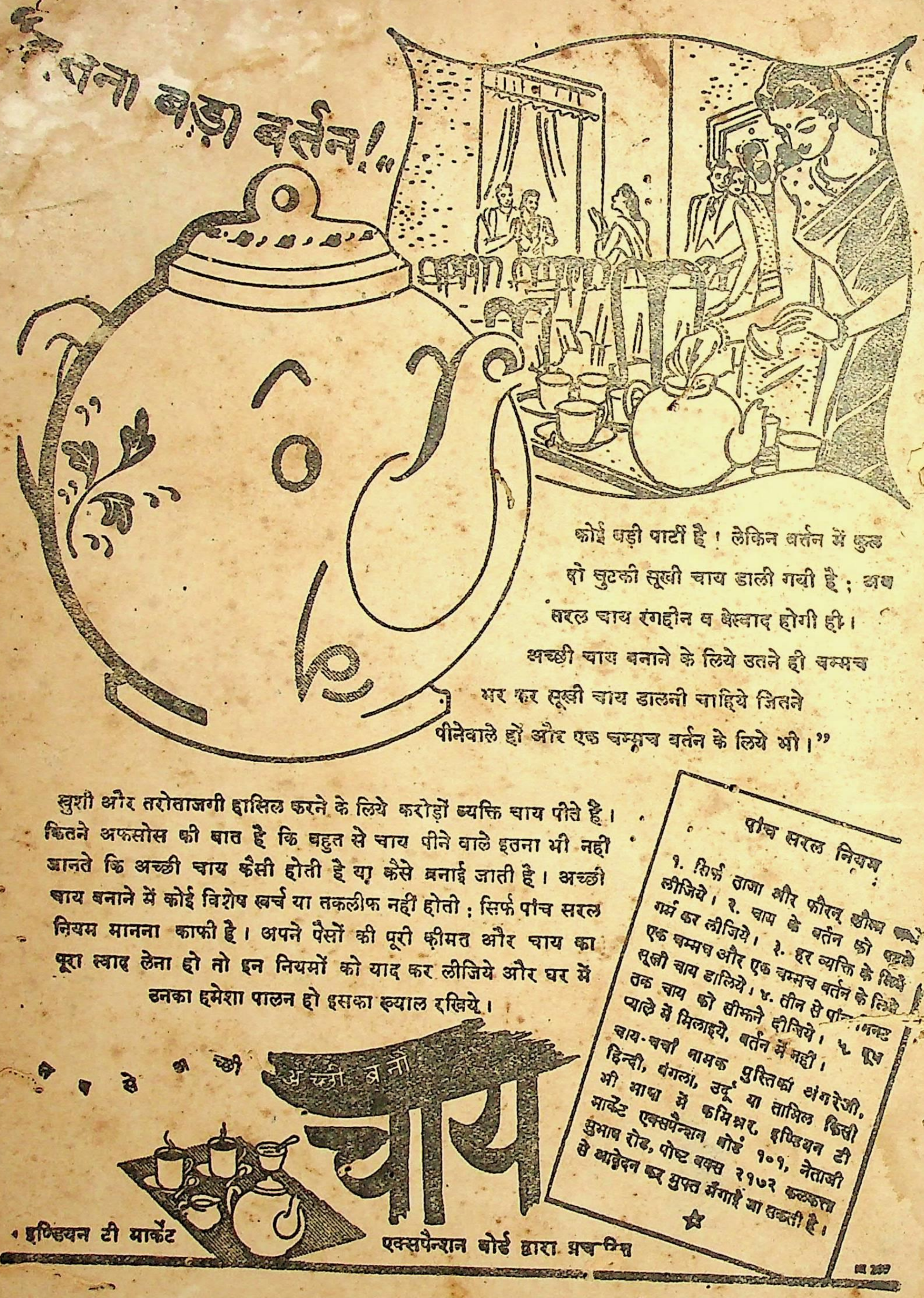
नवदुर्गा

नवदुर्गा बंगाली पण्डित की बेटी थी। उसके विवाह की चिन्ता में माँ-बाप और बेटी तीनों वर से कलकत्ते के लिए चले। रास्ते में केदारेश्वर तीर्थ में ठहर गये। वहाँ के महन्त अम्बिकाचरण पुरी ने नव-दुर्गा को प्राप्त करने के लिए जाल रचा। अन्त में महन्त का चपट चाकर अधरचन्द्र मुखोपाध्याय 'मियाँ की जूती और मियाँ का सिर' की कहावत के अनुसार महन्त जी से खासी रकम ऐंठ कर और नवदुर्गा को चलि से पत्नी बनाकर चलता हुआ। लेखक ने महन्त जी की जो दुर्गति काशी में लाकर कराई है उससे पाठक विस्मित और खिन्न हुए बिना न रहेंगे। मूल्य १।) एक रुपया चार आने।

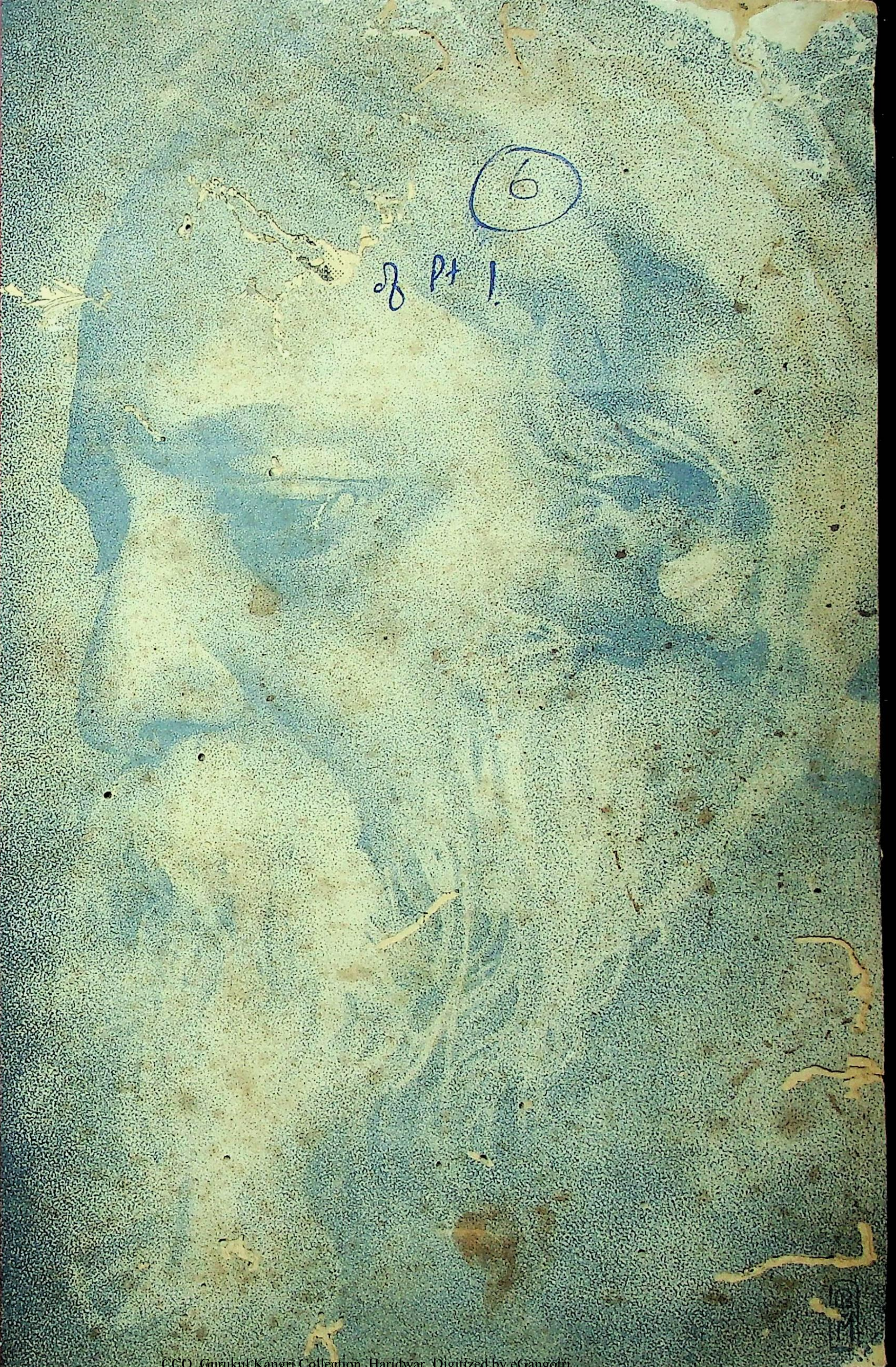
हार या जीत

इस उपन्यास में लेखक डा० व्रजेश्वर वर्मा एम० ए, डी० फिल० ने एक देहाती लुहार की अल्पवयस्क बेटी को घटनाक्रम से, अनाथ दशा में, देहात से महराजगंज की रानी पृथाकुमारी के आश्रय में पहुँचा दिया है। वहाँ रानी की कृपा से इस लड़की ने विद्या पढ़ी। फिर इसमें उन गुणों का विकास हुआ जिससे मनुष्य सभ्य होकर सम्मान पाता है। इसने असह-योग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और अन्त में कलकत्ता जाकर नौकरी कर ली। कई पुस्तकें लिखीं, विदेश-यात्रा के बाद रानी के कुँवर की प्रार्थना पर उससे विवाह किया। मूल्य २) दो रुपये।

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद



तना बड़ा बर्तन!..
कोई बड़ी पार्टी है ! लेकिन बर्तन में कुल दो चुटकी सूखी चाय डाली गयी है ; अब सरल चाय रंगहीन व बेस्वाद होगी ही। अच्छी चाय बनाने के लिये उतने ही चम्मच भर कर सूखी चाय डालनी चाहिये जितने पीनेवाले हों और एक चम्मच बर्तन के लिये भी।"
खुशी और तरोताजगी हासिल करने के लिये करोड़ों व्यक्ति चाय पीते हैं। कितने अफसोस की बात है कि बहुत से चाय पीने वाले इतना भी नहीं जानते कि अच्छी चाय कैसी होती है या कैसे बनाई जाती है। अच्छी चाय बनाने में कोई विशेष खर्च या तकलीफ नहीं होती ; सिर्फ पांच सरल नियम मानना काफी है। अपने पैसों की पूरी कीमत और चाय का पूरा स्वाद लेना हो तो इन नियमों को याद कर लीजिये और घर में उनका हमेशा पालन हो इसका ख्याल रखिये।
पांच सरल नियम
१. सिर्फ ताजा और फौरन् खौला पानी लीजिये। २. चाय के बर्तन को पहले गर्म कर लीजिये। ३. हर व्यक्ति के लिये एक चम्मच और एक चम्मच बर्तन के लिये सूखी चाय डालिये। ४. तीन से पांच मिनट तक चाय को सीझने दीजिये। ५. दूध प्याले में मिलाइये, बर्तन में नहीं।
चाय-चर्चा नामक पुस्तिका अंगरेजी, हिन्दी, बंगला, उर्दू या तामिल किसी भी भाषा में कमिश्नर, इण्डियन टी मार्केट एक्सपैन्शन बोर्ड १०१, नेताजी सुभाष रोड, पोष्ट बक्स २१७२ कलकत्ता से आवेदन कर मुफ्त मँगाई जा सकती है।
अच्छी बनी चाय
इण्डियन टी मार्केट एक्सपैन्शन बोर्ड द्वारा प्रचारित



जून

१९४९

चेहरे को सुंदर और आकर्षक रखिये... ...पांड्स के दो क्रीमों की सहायता से!



प्रति रात्रि और सवेरे आपको अपने चेहरे का दोहरा संरक्षण करना है जिससे वह सुन्दर और कोमल बना रहे। रात्रि के समय आपके लिये आवश्यक है रोम-छिद्रों में गहराई से प्रवेश कर स्वच्छता देनेवाला तेलसा चिकना क्रीम—पांड्स कोल्ड क्रीम—और दिनको ऐसा हल्का क्रीम जो चेहरे को काला कर देनेवाली सूर्य-किरणों से आपका संरक्षण कर सके—पांड्स वेनिशिंग क्रीम।





स्वचा के कुरूप होने के मुख्य कारण:

मैल और धूल के छोटे-छोटे कण रोम-छिद्रों में प्रविष्ट होकर चेहरे को कुरूप बना देते हैं। अतः स्वच्छता के लिये आपको पांड्स कोल्ड क्रीम की आवश्यकता है। सूर्य की अदृश्य किरणें चेहरे पर कालिमा उत्पन्न कर देती हैं। पांड्स वेनिशिंग क्रीम द्वारा इन किरणों से अपने चेहरे को संरक्षण दीजिये। प्रतिदिन सवेरे और संध्या को—इस सौंदर्यचर्या का ध्यान रखिये। चेहरे के सौंदर्य के लिये पांड्स के इन दो क्रीमों का प्रयोग कीजिये।

पांड्स

व्यापारिक विवरण के लिये: एल. डी. सेमूर एंड कं० (इंडिया) लि०
बम्बई, कलकत्ता, देहली, मदरास, नोवा गोवा, कराची, कोलम्बो, रंगून

विवाहित स्त्री-पुरुषों के जानने योग्य

ऑपरेशन तथा इन्जेक्शन जरूरी नहीं है

अप्राकृतिक रहन-सहन तथा मिथ्या आहार-विहार के कारण हमारे देश की नारियाँ अधिकांश ऐसी मिलेंगी जो एक न एक गुप्त रोग से ग्रस्त हो निराश जीवन व्यतीत कर रही हैं। अधिकतर गर्भाशय का मोटा हो जाना तथा उस पर चर्बी आ जाना एक आम रोग हो गया है जो गर्भ धारण करने में बाधक होता है तथा अन्य भयंकर रोगों की जिससे उत्पत्ति भी होती है। ऐसी अवस्था में प्रायः आपरेशन कराने से भी बहुत कम रोगियों को सफलता प्राप्त होती है।

यदि आपको आपरेशन कराने में असुविधा है या आपरेशन की अपेक्षा औषधियों-द्वारा कष्ट दूर करने के अधिक पक्ष में हैं तो शास्त्रोक्त अंगूरों का ताजा रस, अशोक, अर्जुन, दशमूल, त्रिफला तथा अन्य श्रेष्ठ औषधियों से प्रस्तुत—मूँगा जिसका प्रधान अंग—१५ वर्षों से प्रचलित गौड़ की नारी-सुधा कार्डियल सेवन करें।

नारी-सुधा एक माहवारी से दूसरी माहवारी तक सेवन करने से बिना आपरेशन गर्भाशय की चर्बी, उसका मुटापा तथा निपट बाँझपन नष्ट हो जाता है और सहज ही गर्भ की स्थिति हो जाती है। जहाँ इन्जेक्शन लिकोरिया (सफेदे का गिरना) रोकने में असफल होते हैं वहाँ कुछ ही खूराकों में यह सदैव के लिए ठीक हो जाता है। कमजोरी से गर्भाशय अपनी जगह से हट जाता है तथा गर्भपात होते रहते हैं—एक बोतल के सेवन से युक्त स्थान पर दृढ़ हो जाता है, फिर गर्भपात कभी नहीं होते। मासिक धर्म महीने में दो बार या दो महीने में एक बार के बजाय ठीक समय पर खुलकर हँसते-खेलते होने लगते हैं, जिससे हिस्टेरिया (बेहोशी) के दौरे होने बन्द हो जाते हैं। खूब भूख लगती है, खून एक बड़ी मात्रा में बनने लगता है। दिल की धड़कन, कमर-टाँगों का ठहरा हुआ दर्द केवल चौथे दिन दूर हो जाते हैं। जापे का संकट सहन करने तथा बाद की कमजोरी शीघ्र दूर करने की यह विशेष औषधि है। नारी-सुधा की २६ खुराकों की एक बोतल का मूल्य—पैकिंग, वी० पी० व्यय से पृथक्—तीन रुपया पाँच आने है। आवश्यकता होने पर इस मासिक पत्रिका का हवाला देकर



कुमार कुमार एन्ड को०

पोस्ट बाक्स नं० ११९ देहली

से मँगाइए।

महात्माजी का चमत्कार

प्रेमवटी ने अपनी खूबी से सारी दुनिया में तहलका मचा दिया

कांग्रेस की राय

(प्रेमवटी वास्तव में एक अद्वितीय औषधि है। पहले हमें इस औषधि पर इतना विश्वास न था, किन्तु जब हमने इस स्वयं परीक्षण किया तब हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह औषधि विज्ञापन में दिये गये तमाम रोगों की केवल एक मात्र अचू औषधि है। हम आशा करते हैं कि भविष्य में यह कम्पनी इससे भी उत्तम औषधियों का निर्माण कर जनता को ला पहुँचायेगी।—कांग्रेस देहली)

भारत के योगियों ने वनों और पर्वतों की कन्दराओं में रहकर वह चमत्कार दिखलाये हैं जिससे बड़े-बड़े वैज्ञानिक औ चिकित्सक हैरत में आ गये हैं। आधुनिक चिकित्सकों को जब कोई रोग की औषधि से सफलता नहीं मिलती तब वह लाइलाज घोषि कर देते हैं। परन्तु महात्मा लोग जड़ी-बूटियों की सहायता से मुर्दे को भी जिला देने का दावा करते हैं। भाइयो, इसे ध्यान से प तथा अपने इष्ट-मित्रों को सुनाओ। यह लेख जो लिखा गया है, कोई गप्प नहीं है बल्कि मेरे जीवन की चन्द घटनाएँ हैं जो आप सम्मुख रखता हूँ। मेरा जन्म एक धनी परिवार में हुआ। अपने पिता का लाड़ला पुत्र होने के कारण मैं धन और व्यसन में रहता था, लेकिन फिर भी मैं सुखी नहीं था। कुसंगत में पड़कर मुझे जरियान और प्रमेह रोग हो गया। पहले तो एक दो साल लोकलाज के कारण अपना भेद छिपाये रखा परन्तु रोग ने भयानक सूरत अख्तियार कर ली। अब मैं घबड़ा उठा, संसार में चारों अँधेरा मालूम होने लगा तब मेरी आँखें खुलीं। इलाज शुरू किया गया। बड़े-बड़े डाक्टरों, हकीमों, वैद्यों के फीस रूप में रुपये कीमती दवाइयों के खरीदने में पानी की तरह रुपया बहाने लगा फिर भी मैं निराश ही रहा। अब मैं घबरा उठा और चारों तरफ अन्धकार दिखलाई देने लगा और सोचने लगा कि इस दुःखमय जीवन से मर जाना बेहतर है।

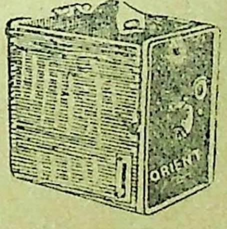
पर यह बीस साल पहले की बात है। अब आज मैं खुश हूँ। आज उस परमात्मा की कृपा से आरोग्य हूँ और मेरे स्वस्थ बच्चे भी हैं जो बिलकुल आरोग्य हैं।

हुआ क्या? मुझमें इतना परिवर्तन कैसे हो गया? यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि मैंने एक दवा सेवन की। दवा मैंने सेवन की, वह एक महान् त्यागी परोपकारी साधु की बनाई हुई थी, जो समय काटने के लिए गाँव से कुछ दूर एक ईंट खेड़े पर रम रहे थे। यह मेरा सौभाग्य था कि और लोगों के साथ मैं भी दर्शनों के लिए जा पहुँचा। दैवी शक्ति से मेरे दुःखी जी के पिछले अध्याय उनके हृदय-पट पर खिंच गये और मेरी आँखों ने हृदय का सारा भेद अपने आप उस महान् पुरुष पर प्रकट दिया। मेरी कच्ची उम्र पर महात्मा को दया आई और उन्होंने मुझे कुछ जड़ी-बूटियाँ एकत्र करने की आज्ञा दी। मैंने वैसा ही वि और तब उनके सम्मुख ही मुझे उनके आदेश और निजी देख-रेख में 'प्रेमवटी' तैयार करनी पड़ी। यद्यपि मुझसे ४० दिन लगा 'प्रेमवटी' का सेवन करने को कहा गया था, तथापि केवल बीस दिन के सेवन से ही मुझमें परिवर्तन हो गया। मेरी कमजोरी तमाम गुप्त बीमारियाँ जड़ से दूर हो गईं। पीले और उदास मुख पर लाली दौड़ने लगी, आँखों में उन्माद झूमने लगा और हृदय जवानी का जोश उमड़ आया। महात्माजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के साथ ही अपने वादे को पूरा करने के लिए दुःखी जनों निमित्त पिछले बीस साल से लगातार मैं इस प्रयोग को मुफ्त बाँट रहा हूँ। यह अनेक पत्र-पत्रिकाओं में भी छप चुका है। मुझे हर्ष कि इस अमृत तुल्य प्रयोग ने सैकड़ों की प्राण-रक्षा की, हजारों को मौत के मुँह से निकाला और लाखों का इससे भला हुआ। महात्म प्रदत्त 'प्रेमवटी' का नुस्खा इस प्रकार है; नोट कर लें—

शुद्ध त्रिफला ५ तोला, त्रिकुट चूर्ण ५ तोला, शुद्ध सूर्यतापी शिलाजीत ५ तोला, शुद्ध बङ्ग भस्म ६ माशा, असली सूर्यछ केशर ३ माशा, असली अकरकरा ६ माशा, असली नेपाली कस्तूरी ३ रत्ती। इन सब औषधियों को कूट-छानकर खल में डाल ऊपर से शीतल चीनी का तेल २० बूँद, सन्दल तेल २० बूँद, बिरोजे का तेल २० बूँद एक-एक करके मिलायें। उसके बाद ता ब्राह्मी बूटी के अर्क में १२ घण्टा घोंटकर झरबेरी बेर के बराबर गोलियाँ बनावें और छाया में सुखा लें। एक-एक गोली सुबह-शाम प भर-सम के दूध में एक तोला शक्कर मिलाकर सेवन करें। इसकी प्रशंसा हम अपने ही मुँह से नहीं करते बल्कि बड़े-बड़े वैद्यों, डाक्ट हकीमों, सेठ-साहूकारों तथा रईसों, जमींदारों, सरकारी आफिसरों तक ने इसकी सराहना की है। वैद्यराज श्री जमुनादत्त शर्मा, भों का कहना है कि यह वटी धातु का पतलापन, २० प्रकार के प्रमेह के लिए अक्सीर है।

'प्रेमवटी' में कोई हानिकारक चीज नहीं पड़ती। गुणकारी चीजें नुस्खे से ही प्रकट हैं। यह औषधि वीर्य का पतला बीसों प्रकार के प्रमेह, पेशाब के साथ चूने की तरह वीर्य का जाना, पाखाने के समय धातु का जाना, स्वप्नदोष, सुस्ती, कमजोरी, नाम डाइब्टीज, मधुमेह, सूजाक, जवानी में बुढ़ापे की-सी हालत हो जाना, असली ताकत की कमी, स्मरण-शक्ति कमजोर पड़ जाना त स्त्रियों के भी प्रदर-सम्बन्धी रोग दूर करके अत्यन्त ताकत देती है और नस नस में नवजीवन का सञ्चार करती है। अन्त में भाइयों को जिन्हें फुरसत नहीं मिलती या शुद्ध औषधि प्राप्त नहीं कर सकते यह प्रयोग स्वयं बनाकर दाम के दाम में भेजने व्यवस्था की है। ४० दिन के लिए पूरी खुराक विधिवत् ८० गोलियों का मूल्य ५॥=) रु० और २० दिन के लिए ४० गोलियों दाम ३=) डाक खर्च ॥।-)

पता—बाबू श्यामलाल जी रईस, प्रेमवटी आफिस नं० ५०, धनकुट्टी, कानपुर।



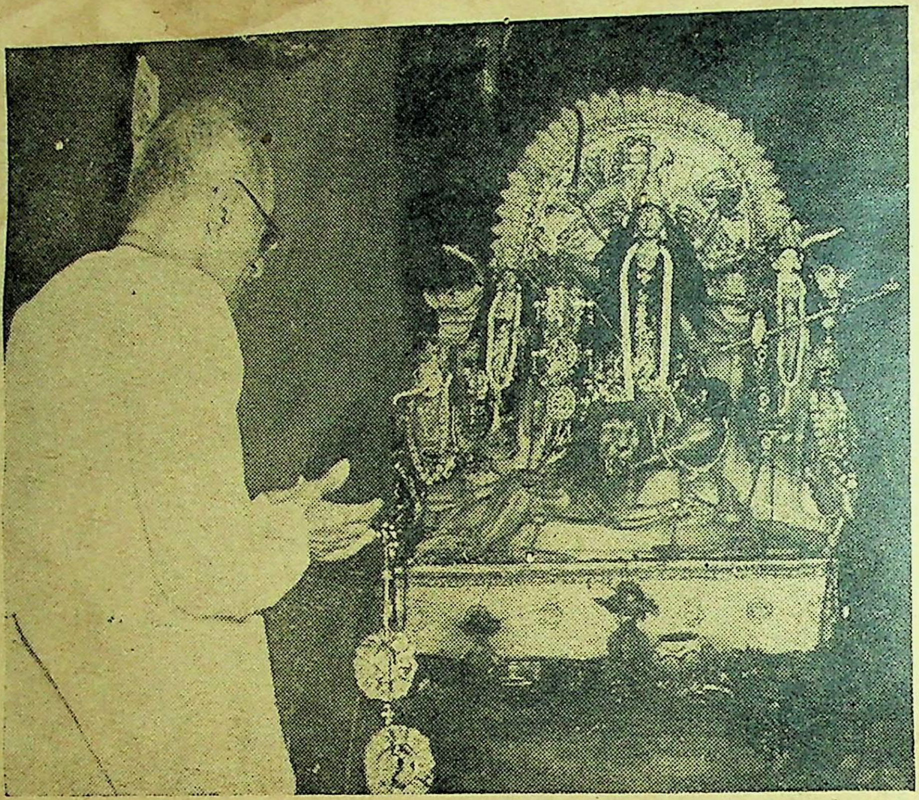
लेख-सूची

चित्र-सूची

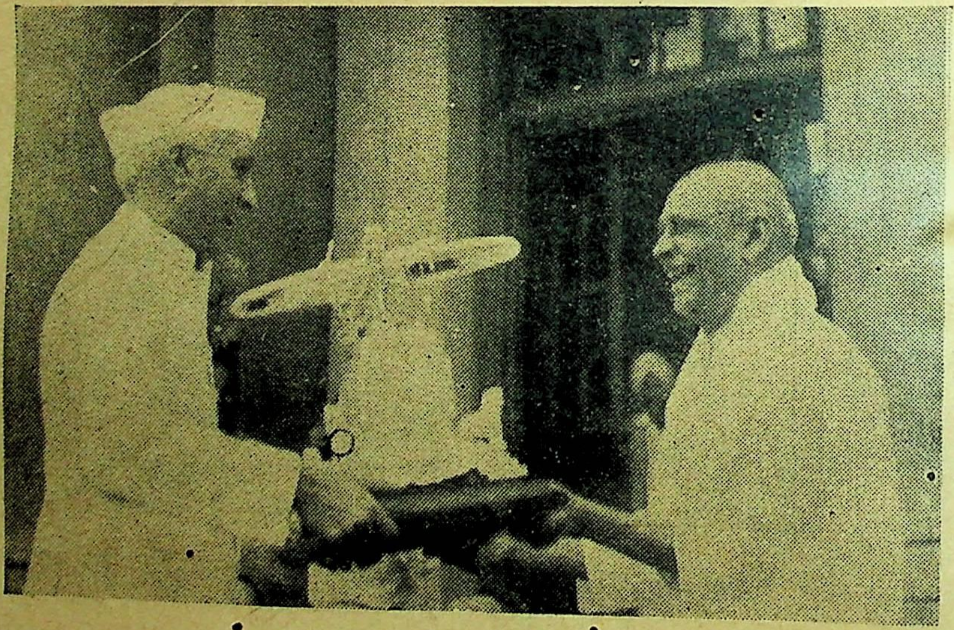
बचपन कितना, बुढ़ापा कितना ?



चालीस करोड़ भारतीयों की राष्ट्रिय और अन्तारीष्ट्रिय जिम्मेदारी का बोझ ढोनेवाले हमारे महामात्य यदि बालसुलभ मनोरंजनों को इतना भी न अपनाएँ तो उनका दैनिक जीवन कितना नीरस और भारस्वरूप हो जाए !



स्वतंत्र भारत के प्रथम गवर्नर-जनरल श्री राजगोपालाचार्य—भगवती के उपासक के रूप में।



उपहार

सरदार पटेल पिछले दिनों एक वायुयान-दुर्घटना में बाल-बाल बचे। इसी की प्रसन्नता में पंडित नेहरू सरदार पटेल को उक्त वायुयान का छोटा आदर्श उपहार-रूप में दे रहे हैं।



सम्पादक—हरिकेशव घोष : उमेशचन्द्र मिश्र

जून १९४९ ज्येष्ठ २००६ ; भाग ५० खण्ड १ ; संख्या ६ पूर्ण संख्या ५९४

सम्पादकीय

'लुप्तपिण्डोदकक्रियाः'

हमारी लोकप्रिय सरकार के लाख प्रयत्न करने पर भी भ्रष्टाचार का अन्त होता नहीं आ रहा है। अन्त तो दूर रहा, देखा यह जा रहा है कि इस दिशा में सरकारी प्रयत्न ज्यों-ज्यों बढ़ते हैं, भ्रष्टाचार की मात्रा भी उसी अनुपात से बढ़ती जाती है। सुरसा और हनुमान् की कथा जैसे एक बार फिर हमारे सामने आगई है। इस समस्या ने काँग्रेसी सरकार और काँग्रेस को समानरूप से परेशान कर रक्खा है।

इस परेशानी की छाया इधर निरन्तर समाचार-पत्रों में देखने को मिलती है। सरकार का भ्रष्टाचार-विरोधी विभाग सतर्कतापूर्वक ऐसे-ऐसे दर्जनों मामले पकड़कर अदालत के सुपुर्द करता है और उनकी सूचनाएँ छपने के लिए नियमित रूप से पत्रों को भेज देता है। युक्त-प्रान्तीय सरकार का मुखपत्र अपने प्रत्येक अंक में आँकड़े देकर दिखलाता है कि इस अवधि में कितने भ्रष्टाचारियों को किस-किस रूप में दण्डित किया गया। इस प्रचार की आवश्यकता निर्विवाद है। भ्रष्टाचारियों को सचेत करने के लिए ऐसी सूचनाएँ नियमित रूप से प्रचारित होनी ही चाहिए।

पर भ्रष्टाचारी सचेत नहीं हो रहे हैं, यह आश्चर्य की बात है। यही नहीं, उलटा यह देखा जा रहा है कि जब भ्रष्टाचार का एक तरीका प्रकाश में आ जाता है और जनता व सरकार उसे समझ लेती है, तब भ्रष्टाचारी उसी कार्य की सिद्धि के लिए अविलम्ब दूसरा तरीका आविष्कार कर लेता है। उसकी गाड़ी भागती रहती है और सरकारी शकट भी ढचढच करता हुआ रेंगता रहता है।

इस विषवल्लरी को जल कहाँ से मिल रहा है? इतना प्रयत्न होने पर भी इसका मूलोच्छेद क्यों नहीं हो पाता?

अभी एक सप्ताह पूर्व ही पढ़ने को मिला था कि ओ० टी० रेलवे के किसी स्टेशन पर कुछ सज्जन माल-गाड़ी के डिब्बे से कपड़े की गाँठें नीचे फेंकते हुए धर लिए गए थे—और ये सुकर्मी थे सरकारी आदमी—'वाच एण्ड वार्ड' विभाग के कर्मचारी! अर्थात् पहरे-दार नकबजनी कर रहे थे!

ब्रिटिश शासनकाल में पुलिस दरोगों और सिपाहियों को स्वयं डकैती के लिए अपनी बन्दूकें रात भर के लिए उधार देते सुना गया था। स्वतंत्र भारत की सरकार में पहरेदार माल उड़ाने का शुभकार्य कर रहे हैं! 'जब माता विष दे और पिता सर काटने की फिक्र में हो, तब शरण किसकी जाए!' नीतिज्ञ चाणक्य के इस प्रश्न का उत्तर संसार आज तक नहीं दे सका है, अब आगे दे भी क्या सकेगा?

'अखिल भारतीय काँग्रेस समिति' का अधिवेशन

गत २१ और २२ मई को देहरादून में हुआ था, जिसमें अन्यान्य महत्त्वपूर्ण मसलों पर गम्भीर पर गुप्त विचार-विनिमय हुआ था। कहते हैं उन मसलों में एक मसला यह भी था कि भ्रष्टाचार को कैसे रोका जाए। इस संबंध में, समाचारपत्रों की सूचना के अनुसार, आचार्य कृपलानी ने शासनतंत्र पर यह आरोप लगाया था कि—"मंत्रिमण्डल रिश्वत के उन मामलों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देता, जो काँग्रेस-कर्मियों के द्वारा पकड़े जाकर विचारार्थ उसके समक्ष उपस्थित किए जाते हैं। जब सरकार संकट में पड़ जाती है, तब वह गाँधी जी का नाम लेती है और उनके आदर्शों की दुहाई देती है, पर वह उनके अनुसार आचरण नहीं करती। मन्त्रिमण्डल का परिष्कार नितान्त आवश्यक है।"

काँग्रेस कमेटी का उक्त अधिवेशन गुप्त हुआ था, अतएव वहाँ जो वक्तृताएँ दी गईं या वाद-विवाद हुए, उनकी विस्तृत सूचना प्राप्त नहीं है। पर जो कुछ पर्दे से छन छनकर बाहर निकल सका है, उसके आधार पर अटकल बहुत कुछ लगाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए श्री नेहरू का यह कथन—"मन्त्रिगण उस आलोचना-प्रत्यालोचना से अवगत हैं, जो उनके संबंध में होती रहती है। परन्तु उनके ऊपर भ्रष्टाचारी होने और अपने सगे-संबंधियों को नौकरियाँ दिलाने का जो लांछन लगाया जाता है, उसमें प्रायः अतिरंजना होती है।"—यह सूचित करता है कि इस प्रकार के आरोप हमारे मन्त्रिमण्डल पर उक्त अधिवेशन में अवश्य लगाए गए होंगे।

हमारे लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल पर ऐसे आरोप उक्त अधिवेशन में पहली बार लगाए गए हों, यह बात नहीं है। सहयोगी दैनिक 'वर्तमान' के गत २० मई के अङ्क में हमने डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद का एक उद्धरण पढ़ा था जिसमें कहा गया था—"मैं कह सकता हूँ कि मंत्रियों में तथा सरकारी अफसरों में बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार जारी है। मेरे विचार से आम शासन के स्तर को ऊँचा करने के लिए यह आवश्यक है कि जनता का चरित्रबल उन्नत हो। देश में उसकी योग्यता के अनुसार ही सरकार बनती है। यदि हम भले नहीं हैं तो सरकार भी भली नहीं पा सकते।"

और इस पर टिप्पणी करते हुए उक्त सहयोगी ने लिखा था—"भ्रष्टाचार जब मंत्रियों और उच्च सरकारी अफसरों में व्याप्त है, तब यह आशा करना कहाँ तक न्याय-संगत होगा कि उनके मातहत कर्मचारियों में भ्रष्टाचार का प्राधान्य न होगा?......आज इस भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी को जारी रखने में जो लोग सहायक हो रहे हैं, वे अपने को कांग्रेसजन कहते हैं। कहीं पर मिनिस्टरों के पास ये रकमें उनके रिश्तेदारों की मार्फत पहुँचती हैं तो कहीं पर प्राइवेट सेक्रेटरी के द्वारा यह सौदा चलता है। जिस ढंग से यह भ्रष्टाचार पनपता है उसमें उसे कभी रंगे हाथों नहीं पकड़ा जा सकता। बेचारे निम्नश्रेणी के कर्मचारी दो एक रुपए की रिश्वत लेते पकड़ लिए जाते हैं; न्यायालय से उन्हें दण्ड भी मिल जाता है; परन्तु उच्चासन पर बैठनेवाले मंत्रिगण अव्वल तो पकड़ में नहीं आते और जब ज्यादा बदनामी होने लगती है तो इस्तीफा देकर बाहर निकल जाते हैं।........संसार के अन्य देशों में जब भ्रष्टाचार और घूसखोरी बढ़ती है तब मिनिस्टरों पर खुली अदालत में मुकदमा चलता है और उन्हें कठोर-से-कठोर दण्ड देकर समाज में न्याय की स्थापना की जाती है। हमारे देश में इस संबंध में ढील बरती जाती है। हम देखते हैं कि चोरबाजारी के बड़े-बड़े मुकदमे या तो पकड़े ही नहीं गए, या पकड़कर छोड़ दिए गए। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि समाज और शासन को स्वच्छ बनाने का कोई प्रयत्न हो रहा है?"

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद अधिकतम जिम्मेदार व्यक्ति हैं। उनके मुँह से जो शब्द निकलते हैं वे नपे-तुले होते हैं और उनकी आत्मा के सच्चे प्रतिबिंब। भावुकता के प्रवाह में कुछ भी कह डालने के वे आदी नहीं हैं। दूसरी ओर सहयोगी 'वर्तमान' के सम्पादक भी अपनी जिम्मेदारी को समझते हैं, स्वयं कांग्रेसी हैं और उन्होंने जो कुछ लिखा है वह जनता की वर्तमान धारणा का शब्दरूप है। इस वस्तुस्थिति में इन सीधे आरोपों और लाञ्छनाओं के चलते हुए, पण्डित जवाहरलाल नेहरू का उक्त निराकरण जनता की दृष्टि में कितना समीचीन ठहर सकता है?

'यथाप्रजा : तथाराजा'

इस सिलसिले में एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि अब ऐसा प्रतीत हो रहा है हमारे कांग्रेसी नेता इस भ्रष्टा-

चार के निराकरण में अपने को असमर्थ पा रहे हैं; फलतः वे इसके लिए घुमा फिराकर जनता को दोषी ठहरा रहे हैं। अभी हाल ही में एक महान् नेता ने कहा था कि 'यथाराजा तथाप्रजा' वाली कहावत सामंतयुग की थी। अब वह ठीक नहीं ठहराई जा सकती। अब प्रजातंत्र के युग में इस कहावत का रूप 'यथाप्रजा तथाराजा' हो गया है। आप लोग जैसे होंगे, आपका शासनतंत्र भी वैसा ही होगा। गत २१ मई को देहरादून में एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए हमारे राष्ट्रपति ने भी भ्रष्टाचार रोकने का एक अमोघ अस्त्र यही बतलाया है कि जब तक जनता सरकारी अफसरों को घूस देना और चोरबाजारियों से माल खरीदना बन्द नहीं करेगी, तब तक ये बुराइयाँ दूर नहीं होंगी। निस्सन्देह सारा दोष जनता का ही है, और इसी दोष के कारण रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार पनप रहे हैं! पर हमारे देश की जनता क्या सचमुच इतनी जागरूक हो गई है कि वह अपने नागरिक अधिकारों को समझ सके और बीच में अड़ंगा डालनेवाले सरकारी कर्मचारियों से निपट सके? हजारों वर्ष की गुलामी ने भारतीय जनता के नैतिक स्तर को काफी नीचा कर दिया है। व्यक्तिगत साहस उसमें अत्यल्प मात्रा में रह गया है। साधारण जीवन-निर्वाह में ज्यों ही सरकारी अधिकारियों के द्वारा कोई बाधा उपस्थित की जाती है, त्यों ही जनता संघर्ष की दिशा में अग्रसर न होकर समझौते की ओर झुकना ठीक समझती है, और उस समझौते का आधार लेन-देन होता है, जिसे कानून की परिभाषा में रिश्वत कहा जाता है।

रिश्वत प्रसन्नता से कभी नहीं दी जाती, सदैव दबकर दी जाती है। इस दबाव की प्रतिक्रिया प्रत्येक के हृदय पर होती है, पर अन्य गति न रहने पर इसे सहन करना पड़ता है। जनता का सदस्य अच्छी तरह जानता है कि रिश्वत देना पाप है और कानूनी अपराध भी। पर वह यह भी जानता है कि रिश्वत लेनेवाले की या भ्रष्टाचारी की शिकायत करने से कुछ हाथ नहीं लगेगा। वह नित्य देखता है कि रंगे हाथ पकड़े गए भ्रष्टाचारी के विरुद्ध भी अन्ततोगत्वा कुछ हुआ नहीं, क्योंकि कोई-न-कोई मिनिस्टर या तो उसका मित्र है या नजदीकी रिश्तेदार! जब पीठ पर इतना बल है, तभी तो खुले-खजाने रिश्वत चल सकती है!

'यदि रिश्वत देनेवाले न रहें तो रिश्वत लेनेवाले भी नहीं रहेंगे—' हमारे थके हुए नेताओं की यह दलील ठीक है। पर यह भी ठीक है कि यदि उन परिस्थितियों का ही अन्त कर दिया जाए, जिनमें पहल पाने या काम निकालने के लिए रिश्वत का लेना देना अनिवार्य हो जाता है तो रिश्वत एक दिन में ही उठाई जा सकती है। यह सरकार के करने से ही हो सकता है, जन-साधारण के करने से नहीं। सरकार नित्य नए अंकुश लगाकर अभाव और आवश्यकता की सृष्टि करती है; अंकुशों को सफलता पूर्वक चलाने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण पदों का आविष्कार करती है और उन पदों पर ऐसे आदमियों को जानबूझकर नियुक्त किया जाता है, भारी-भरकम वेतनों पर जो बड़े आदमियों के घर के होते हैं। ये पीठमर्द धड़ल्ले से भ्रष्टाचार करते हैं, क्योंकि उन्हें अभयदान प्राप्त रहता है! क्या इसके लिए भी प्रमाणों का आवश्यकता है? प्रमाण इतने प्रचुर हैं कि किसी भी केन्द्र से दर्जनों सहज ही में संग्रह किए जा सकते हैं।

भ्रष्टाचार की खुली छूट

कुछ मामले ऐसे नित्य देखने में आते हैं, जो एक निष्पक्ष नागरिक के हृदय को शंकापूर्ण कर देते हैं। उदाहरण के लिए हम अपने उन भाइयों को ले सकते हैं जिन्हें कल तक हम 'शरणार्थी' कहते थे, पर आज 'पुरुषार्थी' कहने लगे हैं—इसलिए कि वे 'शरणार्थी' पुकारे जाने में अपमान का अनुभव करते हैं और स्वयं को 'पुरुषार्थी' कहलाना चाहते हैं। हमारे ये परम पुरुषार्थी भाई आज नियंत्रित वस्त्र को सड़क के फुटपाथों पर, और अपनी दूकानों पर भी, नियंत्रित मूल्य से सवाए या ड्योढ़े मूल्य पर दिन-दहाड़े बेंचते हैं। 'डालडा' का १० पौण्ड का टीन, जिसका नियंत्रित मूल्य 'ग्यारह रुपए पौने सोलह आने' है, इन पुरुषार्थी भाइयों के द्वारा 'साढ़े बारह रुपए' में बीच सड़क पर दिन में बेंचा जाता है। सरकार का 'भ्रष्टाचार-विरोधी विभाग,' नगर मजिस्ट्रेट और जिला कलेक्टर क्या यह सब देख नहीं पाते हैं, या देखते जानते हुए उधर से आँखें लपेट लेते हैं? यहाँ यह याद रखना चाहिए कि सहकारी समितियाँ डालडा के इसी टीन को निर्धारित मूल्य पर ही बेंचती हैं; पर उन्हें कोटा इतना कम दिया जाता है कि वे उससे नागरिकों की आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर

पातीं और नागरिकों को विवश होकर पुरुषार्थियों का कृपा-भाजन बनना पड़ता है! भ्रष्टाचार के लिए सरकार की ओर से दिया जानेवाला क्या यह खुला लाइसेन्स नहीं है?

अपराध का पाठ!

ये पुरुषार्थी भाई स्वयं ऐसा करते हों, यह बात नहीं है। ये यथासंभव यहाँ के नागरिकों को भी ऐसा करना सिखा रहे हैं। यदि आप किसी सहकारी समिति के सदस्य हैं तो आपने प्रत्यक्ष अनुभव किया होगा कि जब कोई सहकारी अपनी समिति का 'डालडा' का कोटा उठाने थोक-विक्रेता की दूकान पर जाता है तब ये पुरुषार्थी भाई उसे चारों ओर से घेर लेते हैं और कहते हैं कि 'बारह रुपए दो आने' प्रति टीन के दर से ले लो और पूरा कोटा हमें दे दो। पूरा नहीं तो दस-बीस टीन ही दे दो।" यह प्रलोभन साधारण नहीं है और 'सहकारी समिति' को किसी भी क्षण पतन के मार्ग पर अग्रसर कर सकता है। यह असिस्टेण्ट रजिस्टार ही बतला सकते हैं कि इस प्रकार का लाभ अभी तक हमारी नागरिक सहकारी समितियों में से किसी ने उठाया है या नहीं!

भ्रष्टाचार की खुली छूट किसे है और किसे नहीं है, इस प्रश्न का उत्तर हमारे सहयोगी 'वर्त्तमान' ने स्पष्ट शब्दों में अपने एक सम्पादकीय लेख में दे दिया है। उसके कथन का सारांश यह है कि जिसकी पहुँच शासन-तंत्रियों तक है, वे जो चाहें, कर सकते हैं। उनके विरुद्ध शिकायत की सुनवाई कहीं नहीं है। हमारे महामात्य तक उनका समर्थन करते हैं कि 'यह सब अतिशयोक्ति मात्र है।' अन्ताराष्ट्रिय महत्त्वपूर्ण समस्याओं में उलझा हुआ उनका मस्तिष्क वस्तुतः दैनंदिन जीवन के छोटे विवरण की निचाई तक उतर ही नहीं पाता, कि वे ऐसी बातों की वस्तविकता को आत्मसात् कर सकें। जो उँचाई पर रहते हुए भी पृथ्वी पर रेंगनेवाली मानवता को हृदय से लगाए रहता था और उसके हृदय की प्रत्येक धड़कन को स्वयं अपने हृदय की धड़कन से मिलाकर सुनता था, वह मसीहा अब इस संसार में नहीं है। उस परम आस्तिक वैष्णव जन की दिवंगत आत्मा के निकट हम तथाकथित कांग्रेसियों का दिया हुआ पिण्डदान भी ग्राह्य होगा या नहीं, कौन जाने?

माननीय लालबहादुर शास्त्री का शिष्ट पुलिस-विभाग

भारतीय पुलिस अपनी अशिष्टता के लिए सदा बदनाम रही है। इधर जब से कांग्रेस के हाथ में शासनतन्त्र आया है तब से यह आशा की जाने लगी थी कि अब उसकी गति-विधि में भी कुछ सुधार होगा और वह अपने व्यवहार में अधिक नहीं तो उतनी तो शिष्ट हो ही जाएगी जितनी योरपीय देशों की पुलिस है, अर्थात् वह स्वयं को 'जनता का सेवक' समझने लगेगी, 'मालिक' या 'शासक' नहीं। इस दिशा में प्रयत्न भी अब तक कम नहीं किए गए हैं। सरकार की ओर से एक पत्र 'जनसेवक' सुन्दर चिकने कागज पर छापकर निकाला जा रहा है, आदर्श थाने खोले जारहे हैं और दर्जनों पुस्तकें छाप-छापकर वितरित की जारही हैं। माननीय मंत्रीगण और पुलिस के अधिकारी पुलिस के जल्सों में जो व्याख्यान देते हैं, वे भी शिक्षा से भरे होते हैं।

पर इस भगीरथ प्रयत्न का जो फल अब तक हुआ है, उसका एक उदाहरण इन पंक्तियों के लेखक के सामने है। आजकल मोटर गाड़ियों के कागजपत्रों की जाँच हो रही है और यह कार्य शायद सुविधा के लिए पुलिस के सब इन्स्पेक्टरों को सौंप दिया गया है। इस सम्बन्ध में जो 'आदेश पत्र' लिखित रूप में इन पंक्तियों के लेखक को प्राप्त हुआ है, उसकी अक्षरशः प्रतिलिपि इस प्रकार है—

NOTICE

Shree Umesh Chandra Mishra
7A, Beli Road

You are hereby *ordered* to produce before me all the papers concerning your vehicle No. B.L.A, 1394 within a week from the date given below in connection with the six monthly checking of vehicles held in October last. Failure to this will result in challan.

(*Signature*)...........
Sub Inspector Police.

हम माननीय लालबहादुर शास्त्री से नम्रतापूर्वक जानना चाहते हैं कि उनकी अधीनता में काम करनेवाला पुलिस-विभाग जिस भाषा का प्रयोग कर रहा है—इस नोटिस के अनुसार—क्या उसे शिष्ट कहा जा सकता है?

कांग्रेसजन बनाम कांग्रेसी मंत्री

गत २१-२२ मई को देहरादून में होनेवाला कांग्रेस महासमिति का अधिवेशन 'गुप्त अधिवेशन' था। कांग्रेस के इतिहास में यह एक नई परम्परा इस बार से स्थापित की गई है। अखिल भारतीय राष्ट्रिय महासभा अपनी खुली नीति और खुली कार्यवाहियों के लिए प्रख्यात रही है। हमारे राष्ट्रपिता जो कुछ करते थे, खुले रूप में करते थे। उनके मन, वाणी और कर्म में दुराव का कहीं भाग नहीं था। उनकी राजनीति उनकी अपनी जीवनी के अनुरूप ही खुली पुस्तक थी। दुराव और छल-प्रपंच तथा आत्मगोपन उनके जीवन में कभी स्थान न पा सके थे। कारण, ऐसी बातें सत्य और अहिंसा के क्षेत्र से बाहर की थीं, जिन्हें गांधी जी का निश्छल हृदय कभी स्वीकार न कर सकता था।

इस बार होनेवाला 'गुप्त अधिवेशन' गांधी जी की नीति के अनुरूप नहीं था, यह सहज ही माना जा सकता है। इसीलिए इस प्रकार का अधिवेशन महासमिति के कुछ सदस्यों को उचित नहीं प्रतीत हुआ और उन्होंने इस पर आपत्ति की। ऐसी आपत्तियों के उत्तर में हमारे वर्तमान राष्ट्रपति ने जो कुछ कहा है वह विचारणीय है, क्योंकि वह हमारी महासमिति की भावी नीति की ओर भी संकेत करता है। आपका उत्तर था - "सन् १६३७ में कांग्रेस-द्वारा अधिकार ग्रहण किए जाने के पश्चात् आज प्रथम बार मंत्रिमण्डल के कार्य पर विचार हो रहा है। निस्सन्देह यह नया तरीका है, लेकिन इसका विरोध के बजाय स्वागत होना चाहिए।"

मंत्रिमण्डल के कार्य पर विचार होगा तो अनुकूल बातें भी सामने आएँगी और प्रतिकूल भी। वाद-विवाद के समय किसी की जबान पर नियंत्रण तो लगाया नहीं जा सकता, अतः संभव है कि कुछ सदस्यों ने ऐसी बातें भी कही हों जिनका संबंध तथ्य से कम और कल्पना से अधिक हो। ऐसी बातों का जनसाधारण में न फैलने देना ही अच्छा है, क्योंकि जब अतथ्य जनरव का रूप धारण कर लेता है तब वह शीघ्रता से प्रचार पा जाता है और जनमत को विकृत कर देता है। इस दशा में 'गुप्त अधिवेशन' का निश्चय करके हमारे जननायकों ने बुद्धिमत्ता का ही परिचय दिया।

महासमिति के इस गुप्त अधिवेशन से जो कुछ बाहर आ गया है उससे विदित होता है कि अधिवेशन में कांग्रेसी मंत्रियों और साधारण कांग्रेसियों के बीच काफी चखचख हुई। कांग्रेसियों ने मंत्रिमण्डल पर यह दोष लगाया कि मंत्रिगण गांधी जी की नीति का ठीक-ठीक पालन नहीं कर रहे हैं। उधर मन्त्रियों की यह शिकायत थी कि कांग्रेसजनों ने रचनात्मक कार्य को अग्रसर नहीं किया अतएव सरकारों के कार्य में रुकावट पड़ी।

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद के कथनानुसार कमजोरी दोनों दलों की रही है। समिति के महामन्त्री ने इस बात को और भी स्पष्ट कर दिया है। उनका कथन है—"३० करोड़ की आबादी में मन्त्रियों की संख्या दो सौ से अधिक नहीं है, अतएव प्रत्येक कांग्रेसी मन्त्री नहीं बन सकता, जबकि प्रत्येक कांग्रेसी मन्त्रिपद से कम कुछ भी नहीं चाहता। कांग्रेसियों को चाहिए कि वे लोभ का त्याग करके रचनात्मक कार्य में जुट जाएँ और सरकार को इस प्रकार सहायता और बल दें।"

महामन्त्री महोदय का यह सुझाव सर्वथा समयानुकूल है और यदि प्रत्येक ऐसा कांग्रेसी, जो मन्त्रिपद से वियुक्त है, अपनी चित्तवृत्ति को रचनात्मक कार्य में नियंत्रित कर दे तो देश की सेवा भी अधिक हो और उसकी मानसिक चंचलता भी मिट जाए। इसीलिए गांधी जी ने अन्तिम दिनों में कहा था कि कांग्रेस को अब अपने को लोकसेवक-समाज के रूप में बदल देना चाहिए। पर यह योग-साधन प्रत्येक कांग्रेसी के मान का है, इसमें हमें सन्देह है। प्रलोभन पर विजय पाना जनसाधारण का काम नहीं है। और मन्त्रिपद ऐसी प्रलोभनीय वस्तु बन गई है जो बड़े-बड़े लोकत्यागियों और बलिदानियों को विचलित कर देती है, साधारण कांग्रेसी की तो बात ही क्या है?

पतन से बचने के लिए प्रलोभन से बचना आवश्यक है; पर यदि प्रलोभन को ही हटा दिया जाए तो सब टंटा सहज ही में दूर हो सकता है। गांधी जी के सच्चे अनुयायी होने का दम भरनेवाले यदि इन्द्रासन पर विराजमान होकर तप और त्याग दिखलाएँ तो उनकी प्रतिष्ठा जनता की दृष्टि में दिनदूनी रातचौगुनी बढ़ेगी। प्रथम बार पद ग्रहण करने पर कांग्रेसी मन्त्रियों ने अधिकतम वेतन पाँच सौ रुपया मासिक निर्धारित किया था। इस महत् त्याग की प्रशंसा विपक्षियों ने भी मुक्तकंठ से की थी। आज भी यदि मन्त्री कम-से-कम वेतन लें, झोंपड़ियों में न सही, साधारण किराए के मकानों में रहें, प्रतिवर्ष नई कारें न

लें, कूलरों और रेफ्रिजरेटरों का चस्का छोड़ दें और दावतों तथा पार्टियों की चकल्लस से अपने को दूर कर लें तो उन्हें लोकसेवा के लिए पर्याप्त समय भी मिले और वे छींटा-कशी से भी बचे रहें। गांधी जी यही चाहते थे; पर उनके अनुयायियों ने और कितनी भी उनकी बातें मानी हों, यह बात नहीं मानी। इसीलिए मन्त्रिमण्डल आज प्रतिस्पर्धा और पारस्परिक विद्वेष का अखाड़ा बन रहा है और उन गंदगियों को उकसा रहा है जिनमें स्वतंत्र भारत के वातावरण को अचिरकाल में ही दमघोटू बना सकने की ताकत है। क्या हमारी महासमिति समस्या के इस हल पर भी कभी ध्यान दे सकेगी?

पोस्टकार्ड का लागत मूल्य

युद्ध के दिनों में ब्रिटिश सरकार ने युद्धकर के रूप में पोस्टकार्ड का मूल्य दो पैसे से बढ़ाकर तीन पैसा कर दिया था। उस समय गांधी जी ने सरकार के इस कार्य की निन्दा यह कहते हुए की थी कि पोस्टकार्ड का प्रयोग गरीब जनता ही अधिक करती है, इसलिए इस कर का भार भारत की गरीब जनता पर ही अधिक जाएगा, जो कि अनुचित है।

युद्ध समाप्त हो जाने पर पोस्टकार्ड का मूल्य फिर दो पैसा कर दिया गया था, जो गत मार्च मास तक रहा। नए बजट में हमारी स्वाधीन सरकार ने पोस्टकार्ड का मूल्य फिर तीन पैसे कर दिया और लिफाफा का दो आने। इस मूल्यवृद्धि का औचित्य सिद्ध करने के लिए सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया था—"एक पोस्टकार्ड पर लागत खर्च ८.२ पाई पड़ता है। अर्थात् दो पैसे में कार्ड बेंचने पर सरकार को कई लाख का घाटा सहना पड़ता है।"

यदि सरकारी आँकड़े ठीक हों तो पोस्टकार्ड का मूल्य तीन पैसा रखना अनुचित नहीं कहा जा सकता। पर हमें सखेद कहना पड़ता है कि ये आँकड़े ठीक नहीं हैं। श्री कुमारप्पा ने इस संबंध की एक टिप्पणी में लिखा है:—

"एक टीकाकार भाई उचित रोष के साथ इस संबंध में टीका करते हैं कि 'यदि एक पोस्टकार्ड की तैयारी में ८.२ पाई खर्च आता है तो सरकारी छापेखाने के व्यवस्थापक ऐसे अपव्यय के अपराध में तुरन्त हटा दिए जाने चाहिए। कारण, मैंने बंबई के तीन-चार छापाखानों में इसके बारे में पूछ-ताँछ की तो ज्ञात हुआ कि एक पोस्टकार्ड की तैयारी में दो पाई से अधिक खर्च नहीं आ सकता और बड़े पैमाने पर तैयार करने में तो प्रतिकार्ड एक पाई से अधिक लागत न लगेगी।'

"मैंने इस संबंध में स्वयं जाँच-पड़ताल करके देखा है। मुझे ज्ञात हुआ है कि लागत खर्च .८२ पाई होना चाहिए। शायद आँकड़ा बनानेवाले की असावधानी से दशमलव-चिह्न खिसक गया और इसी कारण .८२ पाई का ८.२ पाई हो गया है।"

क्या हमारी न्यायनिष्ठ सरकार इस पर पुनर्विचार करने की कृपा करेगी कि आँकड़े देने में यह भूल किसकी असावधानी से हुई? और यदि सरकारी आँकड़े गलत निकलें तो उनमें सुधार करके पोस्टकार्ड का मूल्य कम करके गरीब जनता का हित-साधन करेगी?

भारत और राष्ट्रमंडल

गत २७ अप्रैल को लन्दन में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उचित शर्तों और प्रतिबन्धों के साथ भारत के राष्ट्रमण्डल का सदस्य होने के संबंध में जो ऐतिहासिक समझौता किया था और जिस पर हमारे देश के कुछ मनस्वियों तथा पत्रों ने काफी टीका-टिप्पणी की थी, उसे १६ मई को दिल्ली में भारतीय विधानपरिषद् ने और २१-२२ मई को देहरादून में काँग्रेस महासमिति ने सोल्लास स्वीकार कर लिया, यह जानकर हमें आन्तरिक प्रसन्नता हुई। उक्त समझौता करते हुए नेहरू जी ने भारत की ओर से जो शर्तें रक्खी थीं, वे काफी स्पष्ट थीं और भारत के सम्मान को बढ़ानेवाली भी। यही नहीं, वे समय की गतिविधि के अनुकूल भी थीं। नेहरू जी ने स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि "भारत विशुद्ध प्रजातंत्र राष्ट्र रहेगा। भारतीय विधान में सम्राट् का कोई स्थान नहीं रहेगा, न सम्राट् भारत की आभ्यन्तरिक व बाह्य नीति में किसी प्रकार का हस्तक्षेप ही कर सकेगा। सम्राट् केवल राष्ट्रमण्डल की एकता का प्रतीक रहेगा। भारत का अध्यक्ष या राष्ट्रपति सम्राट् का प्रतिनिधि नहीं माना जाएगा।"

इन शर्तों के साथ भारत ने यदि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता स्वीकार कर ली तो इससे निस्सन्देह हानि कुछ भी नहीं हुई। पर लाभ क्या हुआ? इस प्रश्न का उत्तर

उस विज्ञप्ति में मिलता है जो उक्त लन्दन-सम्मेलन के बाद प्रकाशित हुई है। विज्ञप्ति में कहा गया है—"ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान और लंका यह सम्मिलित घोषणा करते हैं कि राष्ट्रमण्डल के स्वतंत्र व समान सदस्यों के रूप में वे संगठित रहेंगे और शान्ति, स्वतंत्रता व उन्नति के लिए एक दूसरे के साथ स्वतंत्रतापूर्वक सहयोग करते रहेंगे।"

भारत आज अनुभव कर रहा है कि अनेक रूप में सबल और सम्पन्न होते हुए भी वर्तमान संसार में वह अकेला नहीं टिक सकता। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उसे अपनी शक्तियों का विकास करना है। यह विकास सर्वतोमुखी होना चाहिए; अतः इसके लिए विदेशों के सहयोग की आवश्यकता होगी। इस कार्य में जो देश सहयोग दे सकते हैं, वे दुर्भाग्य से इन दिनों दो परस्पर विरोधी गुटों में संघटित हो रहे हैं। एक गुट का नेतृत्व 'अटलाण्टिक चार्टर' की ओट में अमेरिका कर रहा है और दूसरे दल का रूस। ऐसी आशंका भी की जा रही है कि इन दोनों गुटों में शीघ्र ही महायुद्ध छिड़ेगा, जो गत दो महायुद्धों से कहीं अधिक विनाशकारी होगा। यदि ऐसा हुआ तो भारत किस गुट का साथ देगा? क्या वह अमेरिका के पक्ष में जाएगा? क्या राष्ट्रमण्डल की सदस्यता स्वीकार करने का स्पष्ट अर्थ यही है? ये प्रश्न और ऐसे ही अन्य अनेक प्रश्न कुछ ऐसे नेताओं के द्वारा बारम्बार पूछे गए हैं, जो पंडित नेहरू के एतत्संबंधी निर्णय से असन्तुष्ट हैं। उत्तर में कहा गया है कि भारत की नीति ऐसे संकट-काल में तटस्थ रहने की ही सकती है। राष्ट्रमण्डल का सदस्य होने के नाते उसे कोई राष्ट्र या राष्ट्रमण्डल अपने पक्ष में लड़ने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। द्वितीय महायुद्ध के काल में आयर्लैण्ड ने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य होते हुए भी अपनी तटस्थता की नीति को ठीक-ठीक निबाहा था। पर युद्ध तो दूर की बात है। शान्तिकाल में भारत को जो कुछ करना है, उसके लिए उसे विदेशों की सहायता की आवश्यकता होगी। वह सहायता रूस से नहीं मिल सकती, क्योंकि रूस का रुख स्पष्टतया भारत विरोधी है। उसके इशारों पर चलनेवाले भारतीय कम्यूनिस्ट हैदराबाद बंगाल और मद्रास में जो कुछ कर रहे हैं और हमारी नवार्जित स्वतंत्रता को जड़-मूल से नष्टकर देश को रूस के हवाले करने में जिस प्रकार कृतसंकल्प दिखाई देते हैं, उससे भी भारत के संबंध में रूसी नीति का ज्ञान हो जाता है। दूसरी ओर इँग्लैण्ड है। गत दो-ढाई सौ वर्षों में भारत में अँग्रेजों ने जो सदाचार किए हैं, उनकी स्मृति अभी ताजी ही है। भारतीयों के हृदय में अँग्रेजों के प्रति जितना अपनत्व है, उसे अँग्रेज भी जानता है और भारतीय भी। पर हमें यह भी ज्ञात है कि अँग्रेज समयानुसार अपनी नीति बदलने में बहुत पटु होता है। वह युद्धकाल में चर्चिल-सरकार का अनुमोदन कर सकता है पर युद्धोपरान्त उसे अनावश्यक समझकर उखाड़ फेंक भी सकता है। उसकी परिवर्तन-शीलता का परिचय इधर पिछले दो तीन वर्षों से तो हमें काफी मिल रहा है। इस दशा में यह आशा की जा सकती है, कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से भारत को लाभ ही होगा, हानि नहीं। और जब हानि होने की नौबत आएगी, तब भारत अपना संबंध राष्ट्रमण्डल से तुरन्त तोड़ भी सकता है। तब उसे कोई बलपूर्वक सदस्य रख भी कैसे सकता है!

एकतंत्र : प्रजातंत्र

पंडित नेहरू पर इधर कुछ नेताओं और पत्रों ने एकतंत्र का समर्थक होने का आरोप लगाया है। इस आरोप का आधार यह है कि विधान-सभा में अपने द्वारा किए हुए लन्दन समझौते को अनुमोदन के लिए उपस्थित करते हुए उन्होंने कहा था कि विधान-सभा या तो इसे ज्यों का-त्यों स्वीकार करले; या फिर पूरे का पूरा अस्वीकार कर दे। वे यह नहीं चाहते थे कि इस पर संशोधन उपस्थित किए जाएँ और उन संशोधनों पर बहस चले।

पंडित नेहरू का कथन उनकी प्रकृति के सर्वथा अनुरूप ही था। लन्दन की परिषद् में भाग लेने के लिए जाने से पूर्व उन्होंने कई भाषणों के द्वारा विधान-परिषद् के सामने भी और देश के सामने भी अपना मन्तव्य स्पष्ट कर दिया था। विधान परिषद् यदि नेहरू जी के दृष्टिकोण से असहमत होती, तो उसी समय अपना विरोध प्रदर्शित कर सकती थी। यही काँग्रेस की महासमिति के संबंध में भी कहा जा सकता है। फिर लन्दन की उक्त परिषद् में सम्मिलित होने के लिए वे भारतीय राष्ट्र के प्रधान मन्त्री की हैसियत से गए थे, भारत के राजदूत की हैसियत से नहीं। प्रधान मन्त्री

अपने देश की ओर से संधि-विग्रह आदि जिस प्रकार चाहे, कर सकता है, क्योंकि वह राष्ट्र का वास्तविक प्रतिनिधि होता है और यह मान लिया जाता है कि उसे राष्ट्र का विश्वास और समर्थन पूर्णमात्रा में प्राप्त है। इस दशा में विधान-परिषद् के समक्ष केवल दो ही मार्ग रह जाते थे। एक तो यह कि उसके प्रधान मन्त्री ने जो कुछ किया है उसका वह सर्व सम्मति से अनुमोदन करे और संसार पर यह प्रकट कर दे कि भारत के प्रधान मन्त्री को समूचे राष्ट्र का विश्वास प्राप्त है। दूसरा यह कि विधान-परिषद् उनके कार्य का अनुमोदन न करे और संसार पर यह प्रकट कर दे कि भारत के प्रधान मन्त्री को अपने देश का विश्वास प्राप्त नहीं है। इस दूसरी स्थिति में प्रधान मन्त्री के लिए त्यागपत्र देने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प नहीं रह जाता।

रही संशोधन की बात; हमारी समझ से संशोधन की तो ऐसे प्रसंग में गुंजायश ही नहीं है। यदि नेहरू जी का समझौता संशोधित रूप में स्वीकृत किया जाता तो इसका फल यह होता कि उक्त संशोधित रूप पर पुनर्विचार करने के लिए लन्दन में दुबारा परिषद् बुलाई जाती और यदि परिषद् उसमें कुछ और परिवर्त्तन-परिवर्द्धन कराना चाहती तो पंडित नेहरू फिर भारत आकर विधान-परिषद् की स्वीकृति प्राप्त करते। इस तरह यह चूँ-चू का मुरब्बा बन जाता, और प्रधान मन्त्री प्रधानमन्त्री न रहकर एक राजदूत भर रह जाता जो अपने राष्ट्र की सम्मति प्राप्त किए बिना अपने अधिकार से कुछ कर ही नहीं सकता।

इन तथ्यों पर विचार करते हुए हमें तो नेहरू जी का एतत्संबंधी रुख सर्वथा न्यायोचित और युक्ति-युक्ति प्रतीत होता है और उसे किसी दशा में एकतंत्र का पोषक तथा प्रजातंत्र का विरोधी नहीं कहा जा सकता। रही विधान-परिषद् के अध्यक्ष डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद के 'रूलिंग' की बात; सो राजेन्द्र बाबू ने संशोधनों की अनुमति देते हुए विधान-परिषद् की परम्परा का पालन करने की बात कही थी; संशोधनों की उपयोगिता या अनिवार्यता की नहीं। इस प्रकार दोनों पक्ष न्याय पर ही थे। प्रसन्नता की बात है कि यह रस्म-अदायगी भी सुन्दरता के साथ हो गई और यह एक बार फिर स्पष्ट हो गया कि पंडित नेहरू को भारत का समर्थन जिस मात्रा में प्राप्त है, उसके अनुपात में विरोध की मात्रा समुद्र में कुछ बूँदों से अधिक नहीं है।

'यथाकाल प्रबोधिनाम्'

गांधी जी की मृत्यु के बाद से अब तक यह प्रकट हो रहा था कि उस महामानव ने शिवशंकर की भाँति साम्प्रदायिकता के समस्त गरल को पान कर लिया और अब उसकी ज्वाला मानवजाति को न जला सकेगी। पर यह धारणा अब गलत प्रमाणित हो रही है। आज ऐसा लग रहा है कि वह गरल वास्तव में हतवीर्य या हतप्रभाव नहीं हुआ था, वह केवल कंचुकावस्था में चला गया था, प्रतिकूल वातावरण पाकर। आज अनुकूल वातावरण मिला तो वह फिर फुफकार उठा है!

इस अभागे देश में साम्प्रदायिकता का विष-वपन करने का श्रेय प्रमुखतः तीन संस्थाओं को प्राप्त है—(१) मुस्लिम लीग, (२) हिन्दू महासभा और (३) राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ।

भारत के बटवारे के पश्चात् मुस्लिम लीग ने कम-से-कम भारतीय संघ के क्षेत्र में अपने पंजे समेट लिए थे और उसके सदस्य राजभक्ति का अभिनय करने लगे थे। 'नेशनल प्रेस' का ताजा समाचार है कि "आलइंडिया मुसलिम लीग के अध्यक्ष मुहम्मद इस्माइल ने इधर सभी लीगियों के नाम गश्ती पत्र भेजे हैं, जिनमें उन्हें लीगी हलचलें फिर से जारी करने की सलाह दी गई है। इधर लखनऊ के धनिक और ताल्लुकेदार मुस्लिम भी महमूदाबाद के राजमहल में गुप्त बैठकें करके इस योजना को सफल बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। यहीं नहीं, व्यापारियों के वेश में पाकिस्तान से आए हुए कुछ सज्जन भी इसमें योगदान कर रहे हैं, जिनका नेतृत्व मौलाना जमालुद्दीन अब्दुल वहाब कर रहे हैं।" 'नेशनल प्रेस' के इस संवाद में कितनी सचाई है, इसकी जानकारी हमें नहीं है, पर हमारी राष्ट्रिय सरकार को अवश्य होनी चाहिए।

हिन्दू महासभा ने भी अपना रंग फिर बदला है और राजनीति में भाग लेने का दुबारा निश्चय कर लिया है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने अपना संविधान सरदार पटेल ने सामने उपस्थित कर दिया है, जिसमें संघ को यद्यपि प्रजातांत्रिक रूप देने की बात मानी गई है, फिर भी सर संघ-चालक को चुनाव के नियम से मुक्त रक्खा गया है; अर्थात् उसका पद डिक्टेटर के समकक्ष रक्खा गया है जो संघ की नीति का संचालन करेगा।

ये तीनों संस्थाएँ समय रहते ही निर्विष हो जाएँ, ऐसा प्रयत्न करने की आशा हम अपनी लोकप्रिय सरकार से कर सकते हैं।

विश्व की जल-शक्ति

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

दुनिया में कोयला इतनी तेजी से खर्च होता जा रहा है कि विद्वानों का अनुमान है कि सौ वर्ष बाद कोयले की शक्ल न दिखाई पड़ेगी। बिजली के इस जमाने में हमें कोयले की सबसे अधिक जरूरत इसीलिए है कि उससे बिजली पैदा हो। अतः बिजली पैदा करने के लिए दूसरा साधन ढूँढ़ा जा रहा है और वह है जल-शक्ति। सभी सभ्य देश इस जल-शक्ति को बढ़ाने में ऐसे जुट गए हैं कि अब यह कहना अनुचित न होगा कि आगे चलकर वही राज्य सबसे आगे बढ़ जाएगा जिसके पास सबसे अधिक जल-शक्ति होगी।

आँकड़ों में

किसके पास कितनी जल-शक्ति है, इसका हिसाब लन्दन से प्रकाशित होनेवाले 'इञ्जीनियरिंग' पत्र ने लगाया है। जल-शक्ति का अनुमान "घोड़ा-शक्ति"—यानी कितने घोड़े की ताकत के बराबर है---से लगता है। पाठक इसे ध्यानपूर्वक समझने का प्रयास करें।

ग्रेट ब्रिटेन तथा उत्तरी आयर्लैंण्ड में ५, ५०,००० घोड़ा-शक्ति (इसे हम संक्षेप में घु० श० कहेंगे) की जल-शक्ति पैदा की जा चुकी है---उन्नत हो चुकी है। अनुमान किया जाता है कि ७,००,००० घु० श० और उन्नत की जा सकती है। इतनी शक्ति होने पर भी, वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इङ्गलैण्ड को जितनी बिजली चाहिए, उसे पैदा करने पर ताकत में कमी होगी।

बेलजियम ऐसे छोटे देश में ३२,००० घुड़शक्ति उन्नत है---और अधिक पैदा करने की कोई आशा नहीं है। हालैण्ड में १००० घुड़ श० उन्नत है और २५,००० घुड़ श० पैदा की जा सकती है। कल-कारखानों की बढ़ती के लिए इस शक्ति की बढ़ती होनी ही चाहिए। अतः ऊपर लिखे सभी देशों का औद्योगिक विकास सीमित ही हो सकता है।

ब्रिटेन को जल-शक्ति चाहिए और अपने सभी जल-कोषों को काम में लाने पर भी उसकी कमी पूरी न होगी। इसलिए वहाँ सोचा जा रहा है कि उत्तरी स्कॉटलैण्ड के जल-कोष से सहायता ली जाए और सुदूर नार्वे से, समुद्र के भीतर-ही-भीतर लाइन डालकर, इङ्गलैण्ड में बिजली लाई जाए। उत्तरी स्कॉटलैण्ड में सन् १६४४ की योजना के अनुसार पानी से कुल १५,००,००० किलोवाट् बिजली पैदा हो रही है और आगे चलकर ६५,००,००० किलोवाट् अधिक पैदा होने लगेगी। पर, नार्वे में अपार जल-कोष है। अभी तक उसके जल-कोष का केवल १६ प्रतिशत ही वहाँ पर खर्च हो रहा है। कुल जल-शक्ति लगभग ३,००,००,००० घु० श० है जिसमें से नार्वे को अधिक-से-अधिक एक करोड़ घुड़शक्ति चाहिए। बाकी दो तिहाई वह किसी को दे सकता है---जो भी माँगे, यद्यपि सम्भावना ब्रिटेन को ही देने की है।

अमेरिका-अफ्रिका

किसी राज्य के बड़ा या छोटा, सभ्य या असभ्य होने से जल-शक्ति पर प्रभाव नहीं पड़ता। जल-शक्ति के युग में उसी राज्य की तूती बोलेगी, जिसके प्राकृतिक साधन अधिक हों। उदाहरण के लिए कुल मिलाकर उत्तरी अमेरिका में ८,१०,००,००० घु० श० है। अफ्रिका में २७,४०,००,००० घु० श० है। उत्तरी अमेरिका तथा अफ्रिका की उन्नत तथा अनुन्नत जल-शक्ति में बड़ा अन्तर है। अफ्रिका के पास ८,६०,००,००० घु० श० अधिक है। उत्तरी अमेरिका के आँकड़ों में दक्षिण अमेरिका भी जोड़ लेने पर अफ्रिका की ऊपर लिखी अधिकता होगी। दक्षिणी अमेरिका की कुल जल-शक्ति ६,६०,००,००० घुड़शक्ति है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के पास ५,७०,००,००० घु० श० है, जिसमें से २,४०,००,००० काम में लाया जा सकता है। कनाडा के पास ४ करोड़ घु० श० है, जिसमें से केवल १ करोड़ ही काम में लाया जा सका है। ब्रेजिल के पास १३, ६०,००० की उन्नत घुड़शक्ति है और २,८०,००,००० का सुरक्षित कोष है। इस प्रकार अमेरिका, कनाडा, ब्रेजिल---सभी को अपने यहाँ काफी जल-शक्ति मिल सकती है।

योरप में

पश्चिमी योरप की जल-शक्ति कुल ४,६०,००,००० घु० श० है। इसमें से २,४०,००,००० उन्नत है---काम में आ रही है। पूर्वी योरप में, जिसमें योरपीय रूस भी शामिल है, २,६०,००,००० की घु० श० तथा ३०,००,००० की उन्नत शक्ति है। इस प्रकार पश्चिमी भाग (नार्वे को मिलाकर) पूर्वी भाग से कहीं आगे है। स्पेन भी पश्चिमी योरप में जोड़ लिया गया है, इङ्गलैण्ड नहीं। स्पेन की जल-शक्ति कुल ६० लाख घु० श० तथा उसकी उन्नत शक्ति १० लाख है। पूर्वी भाग की उन्नत शक्ति ८ गुना अधिक है---इससे पश्चिमी योरप की औद्योगिक प्रगति का अनुमान लग सकता है। पर इसी हिसाब से पश्चिम में पूर्व योरप की तुलना में अनुन्नत शक्ति १६० लाख घु० श० अधिक है। इसमें नार्वे की अधिकांश अनुन्नत है।

पूर्वी योरप में रूस में १,४०,००,००० घु० श० अनुन्नत है। पूर्वी भाग में सबसे अधिक औद्योगिक प्रदेश जेकोस्लोवाकिया है। पर, वहाँ पर जल-शक्ति शून्य के बराबर है। इसीलिए जेक देश को कोयला आदि पर ही निर्भर करना पड़ेगा। रूमानिया ऐसे बड़े राज्य में केवल १,२७,००० घु० श० उन्नत है---३० लाख घु० श० अभी उन्नत नहीं हुई है। यदि जल-शक्ति आगे चलकर औद्योगिक प्रगति में बड़ा भाग लेनेवाली है तो निश्चयतः पूर्वी योरप (जिसमें रूस भी शामिल है) पश्चिमी योरप का मुकाबला नहीं कर सकेगा।

एशिया—भारत

रूस का एशिया का भाग यानी साइबेरिया भी इस दिशा में बहुत पिछड़ा हुआ है। वहाँ केवल १,३४,५०० घु० श० से काम लिया जा सका है। अमेरिका के उत्तरी-दक्खिनी भागों को मिला देने के बाद जल-शक्ति में वह सर्व प्रथम है। पर उसके बाद नम्बर एशिया का ही है। एशिया की कुल जल-शक्ति १५ करोड़ घु० श० है और इस दृष्टि से सबसे बड़ी शक्ति भारतवर्ष की है। एशिया में सबसे बड़ी जल-शक्ति भारत में है। भारत में जल-शक्ति से काम लेने के लिए बड़ी व्यापक योजनाएँ बन रही हैं। यदि उत्तरी बंगाल की तिस्ता नदी तथा संयुक्त प्रान्त की रिहन्द नदी का बाँध बन गया, तो कम-से-कम १०,००,००० किलोवाट् बिजली अधिक पैदा होने लगेगी और इन प्रान्तों का, बिहार को मिलाकर, बड़ा भारी औद्योगिक विकास हो जाएगा। अभी हमारे देश में जल-शक्ति से काम लेने का असली प्रयत्न हुआ ही नहीं है। अन्यथा हमारा संसार में सबसे बड़ा उद्योग-प्रधान राष्ट्र होता। भारत तथा लंका को मिलाकर कुल जल-शक्ति ३,६०,००,००० घु० श० है, जिसमें से अभी केवल ६,१८,८०० घु० श० उन्नत हो पाई है।

हमारे देश में जल-शक्ति की ओर ध्यान गए अभी ढाई दर्जन साल ही हुए हैं। इसकी योजना का प्रारंभ संयुक्त प्रान्त के तत्कालीन चीफ इञ्जीनियर श्री बारलो ने सन् १९१८ से किया था। इस दिशा में हमें अभी बहुत कुछ काम करना है।

मिश्र में कोयला पैदा नहीं होता। पेट्रोल भी बहुत कम पैदा होता है। अतः मिश्र की औद्योगिक प्रगति के लिए जलशक्ति प्राप्त करनी ही होगी। इसीलिए मिश्र की सरकार नील नदी पर बाँध बनाकर जल-शक्ति प्राप्त करना चाहती है।

चीन (समूचे चीन) में २,२०,००,००० की जल-शक्ति (घु० श०) है। पर वहाँ कुछ भी उन्नत नहीं है। जापान में ६० लाख घु० शक्ति उन्नत है तथा ७० लाख घु० श० उन्नत करनी शेष है। कोयले के अभाव में जापान काफी औद्योगिक प्रगति कर सकता है, कर रहा है और कर सका था।

प्रशान्त महासागर

प्रशान्त महासागर में तथा भारतीय महासागर में उद्योग-प्रधान आस्ट्रेलिया में जल-शक्ति काफी कम है। फिर भी, आस्ट्रेलिया में २,५०,००० की घु० श० से काम लिया जा रहा है और १० लाख अनुन्नत पड़ी हुई है। न्यूजीलैण्ड के टापू में २० लाख की जल-शक्ति में से ८,१६,००० घु० श० पैदा की जा सकी है। जावा में १,४०,००० घु० श० काम में है। बोर्नियो के टापू में बहुत अनुन्नत जल-शक्ति पड़ी हुई है।

इस प्रकार हमने विश्व के सभी प्रमुख राज्यों में प्राप्त तथा उन्नत जल-शक्ति के आँकड़े दे दिए। अब पाठक इससे अपना निष्कर्ष निकालें। यह ध्यान में रखना चाहिए कि केवल जल-शक्ति के होने से ही काम

नहीं चल जाता। अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ काफी जल-शक्ति है, पर वहाँ पर कोई काम निकाल लेना प्राकृतिक दृष्टि से अभी तक असम्भव है। आगे विज्ञान कितना सम्भव कर देगा, यह कहना कठिन है।

यह स्पष्ट है कि अब उद्योग-धन्धों का विकास जल-शक्ति के निकट ही होगा, जिससे हमारे वर्त्तमान उत्पत्ति-केन्द्र टूट भी सकते हैं।

'कारस्कर का दार्शनिक' की तीसरी कहानी

क्या सब शून्य है ?

कुमारी विपुला देवी

मेरा ध्यान खो गया, मेरी तर्क शक्ति जाती रही। मैं क्या कर रहा हूँ, यह भी मैं समझ नहीं सकता था। शापग्रस्त नारद के समान मैं चारों दिशाओं में बिना रुके भ्रमण कर रहा था। एक वन से दूसरे वन में, एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर मैं सैकड़ों वर्ष भटकता-घूमता रहा। इस प्रकार पता नहीं, कितना समय व्यतीत हो गया।

एक दिन ऐसे ही घूमते हुए मैं एक नगर में जा पहुँचा। शृंगीनाद करते हुए एक भिक्षु कोकहते सुना—"लोक में यावत् सत्य धर्म हैं, उनमें चार आर्य सत्य श्रेष्ठ हैं। धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है और मनुष्यों में सर्वज्ञानी बुद्ध भगवान् ही श्रेष्ठ हैं। इसलिए हे मनुष्यो, भगवान् की करुणामय छाया के तले आओ, सत्यकामी बनो।" कानों के द्वारा वह वाणी अन्तःकरण में उतर गई, विक्षिप्तता दूर हो गई। स्थिरबुद्धि होकर मैं सोचने लगा—"मैं एक बार सत्यकामी बना, किन्तु पाया कुछ भी नहीं। अब दूसरी बार प्रयत्न कर देखने में क्या हानि है?" मैंने उसके समीप जाकर पूछा—"भगवन्, संसार क्या है, यह जानना चाहता हूँ।"

"यह संसार क्षणिक है। जो कुछ दिखाई देता है, वह सब क्षणिक है। दुःख सर्वव्यापी है और स्वलक्षण तथा शून्य है।" उत्तर मिला।

मैंने कहा—"और प्रमाण क्या है इस बात का?"

"इनसे ही परम पुरुषार्थ की सिद्धि होती है और मोक्ष प्राप्त होता है। शून्य में सब वस्तुओं का लय हो जाना ही मुक्ति है।" उसने कहा।

मैंने कहा—"भगवन्, मैं दुःखी हूँ। जिस शिवानी के लिए मैंने हेमप्रभ को मारा, वह भी नहीं मिली और न जीवन-रहस्य का उद्घाटन ही कर पाया। सोमरस पान करके दस सहस्र वर्ष की जो अमरता खरीदी, वह अब बोझ प्रतीत हो रही है। बताइए, मेरा निस्तार कैसे होगा?"

भिक्षु ने चकित दृष्टि से कहा—"तुमने किसकी हत्या की है? आर्यदेव के रहते तुम क्यों मनोव्यथा सहते हो? चलो, बुद्ध की शरण में चलो और संघ-धर्म-द्वारा शान्ति प्राप्त करो।"

जब मैं उस प्रसिद्ध उपदेशक आर्यदेव के समीप पहुँचा, त्राहिमाम् करते हुए उनके चरणों पर गिर पड़ा। उन्होंने मुझे उठाकर हृदय से लगा लिया और पापनाशक शान्तवाणी से बोले—"हे सिद्धिविदारिक (नवीन भिक्षु), भगवान् की शरण में आकर भी क्यों रोता है? तू शान्त हो जा और निर्वाण का सुख प्राप्त कर।"

मैंने कहा—"प्रभु, मैं अत्यन्त पापमति हूँ। दुःख और पापाग्नि से मेरा सारा शरीर और हृदय जल रहा है। यद्यपि मैं परलोक और पाप-पुण्य नहीं मानता, परन्तु फिर भी मेरी आँखों में नींद नहीं है।"

उन्होंने कहा—"यह संसार ही दुःखरूप है। सब जीव इससे छुटकारा पाने का प्रयत्न करते हैं। ज्ञान ठीक होने से दुःख का नाश हो जाता है, आर्य सत्य इस संसार के दुःख सागर से छूटने का उपाय है। संकल्प से क्रिया होती है। तृष्णा को त्यागकर मनुष्य सत्यसंकल्प बनता है और तब वह निरर्थक सहस्र पदसमूहों को त्यागकर एक अर्थवाले सारगर्भित पद को ग्रहण करता है, जिसके सुनने मात्र से शान्ति होती है।"

मैंने कहा—"हे भगवन्, मैं आपके स्पर्शमात्र से अपने में शुद्धता और शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ, किन्तु मैंने अपने गुरु आचार्य बृहस्पति की हत्या की है, अपने मित्र गन्धर्व राजकुमार हेमप्रभ के साथ विश्वासघात किया है

और राजकन्या शिवानी की मृत्यु का कारण बना हूँ, इससे मेरे पाप का अन्त नहीं है। क्या मरने के बाद मुझे नरक में जाना होगा और क्या सचमुच स्वर्ग-अपवर्ग है, जैसा कि हेमप्रभ कहता था? वह तो आत्मा भी मानता था और कर्म-अपकर्म भी। यदि आत्मा है तो मुझे इन लोगों से फिर मिलना पड़ेगा और यदि नहीं है तो मैं यह सोचकर फिर भी थोड़ा निश्चिंत हो सकता हूँ कि मैंने जो पापकर्म किया है, उसका प्रायश्चित्त करके, उससे मुक्त हो जा सकता हूँ।"

आर्यदेव ने आश्चर्य में आकर पूछा---"हेमप्रभ के साथ तुमने विश्वासघात क्यों किया?" "भगवन्, सुन्दरी शिवानी को खो देने और उसके राजकोष के रत्नों के बँटवारे के डर से!" मैंने कहा और अकपट चित्त से सारी कथा कह सुनाई।

आर्यदेव ने सब कुछ सुनने के बाद कहा—"न आकाश में, न समुद्र में, न पर्वतों की खोह में कोई ऐसा स्थान है, जहाँ प्राणी अपने किए हुए पापकर्मों से त्राण पा सके। दूसरों को हानि पहुँचाना सरल है, किन्तु दूसरों की भलाई करना अत्यन्त कठिन है। सत्यकाम, निश्चय जान लो कि जिस प्रकार वायु में धूल फेंकने से वह फेंकनेवाले ही पर उड़ती है, इसी प्रकार मनुष्य के कुकर्म, जो दूसरों को सताने के निमित्त किए जाते हैं, उसी को कष्टदायक होते हैं। भलाई की सुगन्ध, सुवासित पुष्पों की सुगन्ध से कहीं मधुर है और दुःखों का निवारण केवल विश्वास से, सच्चरित्रता से, शौर्य से, विचारों से, न्याय से और सिद्धान्तों के सतत अभ्यास एवं पूर्णध्यान से ही हो सकता है।"

"प्रभु, शिवानी की छाया जैसे मुझ पर अट्टहास करती मेरे पीछे-पीछे डोलती रहती है। उससे कैसे छूटूँगा?" मैंने कातर होकर पूछा।

"इसका कारण यह है कि तुम शाश्वत आत्मा के संस्कार में अब भी जकड़े हो। इस सारे प्रपंच का मूल 'अहंकार' है। इसका जड़-मूल से नाश कर देने से ही अन्तःकरण में रमनेवाली तृष्णाओं का अन्त हो सकता है, भगवान् बुद्ध के इन वचनों को क्या तुमने नहीं सुना है?"

"हे भगवन्, आप में मैं भगवान् बुद्ध के दर्शन कर रहा हूँ और आपके श्रीचरणों में रहकर निश्चय ही शान्ति पाऊँगा।" मैंने कहा।

इसके उपरान्त कई वर्ष बीत गए। मैंने आचार्य आर्यदेव के समीप रहकर क्रमशः उन सब बातों को सीख लिया, जो वे जानते थे। शीघ्र ही मेरी त्वरित ग्रहणशक्ति की बड़ाई सारे देश में फैल गई और आचार्य-द्वारा रखा मेरा नाम प्रज्ञाकीर्ति सर्वख्यात हो गया।

एक दिन जब मैं पिंडपात (भिक्षा) के हेतु ग्राम में गया, सहसा एक गृह का द्वार खोलकर एक युवती मेरे सन्मुख आ खड़ी हुई। वीणा-विनिंदित स्वर में उसने एक दम कहा—"भिक्षु, क्या तुम सदैव भ्रमण किया करते हो? क्या तुम कभी वैशाली भी गए हो?"

यद्यपि मैंने स्त्रियों की ओर देखना और बोलना सब कुछ त्याग दिया था किन्तु फिर भी आँखें इस मधुर प्रश्न के कानों में पड़ते ही स्वतः ऊपर उठ गईं। क्या देखा, शुभ्र वस्त्रावृता, निराभरणा, श्यामा युवती सामने खड़ी है। उसका कंठस्वर जितना मधुर था, सौन्दर्य वैसा अपरिमित नहीं था, जिसकी कल्पना उस स्वर के कर्ण-कुहरों में प्रविष्ठ होते ही अचानक मन में जाग उठी थी। मैंने निराश होकर अपनी दृष्टि नीची कर ली और भिक्षापात्र आगे बढ़ा दिया। युवती ने भिक्षान्न उसमें डाल दिया और अपना प्रश्न दोहराया। अपने मुँह पर अंगुली रखकर, मौन रहने का संकेत करता, मैं ज्योंही आगे बढ़ा, युवती ने निराश स्वर में स्वतः कहा—ओह! भिक्षु, आज तुम्हारा मौन दिवस है। कल बताना और इधर से ही जाना।"

उसका यह स्वर भी कानों में गूँज उठा। अद्भुत मिठास थी उसकी वाणी में और हृदयगत भावों पर उसके शब्द जैसे सीधी चोट करते थे। उनके प्रभाव से बचना असम्भव था। मैं वहाँ से चला आया किन्तु किसी कार्य में मन नहीं लगता था। रह-रहकर उस युवती का वह मधुर स्वर कानों में झंकृत हो उठता था। मैं जानता था कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह उचित नहीं है, फिर भी दूसरे दिन मैं उधर से निकला।

युवती झपटकर सामने आई और उसने कहा—"भिक्षु, क्या तुम सदैव भ्रमण किया करते हो? क्या तुम कभी वैशाली गए हो?"

मैं अब अपने को रोक नहीं सका। कहा—"भिक्षु सदैव भ्रमण ही किया करते हैं। मैं बहुत दूर-दूर तक गया हूँ, किन्तु तुम क्यों पूछ रही हो ?"

"यदि तुम वैशाली गए हो, तो अवश्य श्रेष्ठ ललित को देखा होगा। वह श्रमणों और श्रावकों का बड़ा आदर करता है।" उसने कहा।

उसके काले दीर्घ नेत्रों में इतनी चमक और उत्साह था कि मुझे नहीं मालूम कि ऐसे चमकीले सुन्दर नेत्र मैंने पहले देखे थे या नहीं। इच्छा होती थी कि उसे देखा ही करें। मैंने हृदय में अद्‌भुत शान्ति-सुख का अनुभव करते हुए कहा—"मैंने उसे देखा नहीं, किन्तु क्या तुम्हें उससे कोई प्रयोजन है ?"

उसने करुण भाव से मुस्कराकर कहा—"यदि तुम वैशाली जाना तो उससे अवश्य मिलना और कह देना कि नीलतारा उसे पूछ रही थी। बोलो, कह दोगे न ?"

मैं अस्वीकार न कर सका। कहा—"कह दूँगा। वह तुम्हारा कौन है ?"

प्रश्न अनसुना करके, वह मेरी स्वीकृति मात्र से उत्फुल्ल हो उठी। उसने कहा—"भिक्षु, तुम बड़े अच्छे हो। मेरी माता न जाने क्यों भिक्षुओं को कोसती हैं। मैं कभी उनकी बात नहीं मानती। जैसे ललित सबका आदर करते हैं, मैं भी करती हूँ। किन्तु आज तक जितने भिक्षुओं को मैंने देखा, तुम उन सबमें अच्छे हो।" कहती हुई गृह के अन्दर चली गई।

मैंने भिक्षा माँगने के लिए ज्योंही मुख खोलना चाहा, देखा वह पहले से परिपूर्ण है। किस समय नीलतारा ने उसे भर दिया, मैं यह भी न जान सका। स्त्रियाँ सचमुच ही सम्मोहन जानती हैं, इस बात पर मुझे विश्वास हो गया। भगवान् ने इसीसे तो उनसे दर्शन-वार्त्ता का निषेध किया है ! मन-ही-मन लज्जित होकर मैं शीघ्र वापस लौट आया।

उसके अनन्तर मेरे हृदय में सदैव वैशाली-यात्रा की आकांक्षा सजीव रहने लगी। इच्छा न करने पर भी उस ललित का स्मरण आए बिना न रहता, जिसके लिए नीलतारा ने अपना संदेश दिया था। वर्षाकाल समीप आने पर गुरुदेव ने मुझे अपने समीप बुलाया और पूछा—"वत्स प्रज्ञाकीर्ति, क्या तुम वैशाली जाओगे ? वहाँ के संघ-विहार से तुम्हारे हेतु आमंत्रण आया है।"

मन-ही-मन हर्षित होकर, कृत्रिम गाम्भीर्य धारण करके मैंने उत्तर दिया—"आचार्य की जैसी आज्ञा हो।"

"वत्स, मैं चाहता हूँ कि तुम वैशाली को अपने वाक्-चातुर्य्य से निर्वाक् बना दो। अब तो कोई धर्मतत्त्व तुमसे छिपा नहीं रह गया है। मैं जितना जानता हूँ, उतना ही तुम भी जानते हो।"

यद्यपि धर्मानुसार मुझे अरूपराग से बचना चाहिए था, इस पृथ्वी पर ऐश्वर्य की इच्छा तो दूर रही, स्वर्गादि में भी उत्तम स्थान और यश-आदर को प्राप्त करने की इच्छा तक न करनी चाहिए थी, किन्तु उस समय मैं आचार्य की बात सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। वैशाली जाते समय मेरे अन्तःकरण में कुछ अद्‌भुत कल्पनाएँ और स्वप्न विद्यमान थे, किन्तु मैं उस समय इस सत्य को न जान सका। और जिस समय जाना, अवसर हाथ से निकल चुका था।

नीलतारा ने कहा था, ललित बहुत श्रेष्ठ पुरुष है। सभी अभ्यागतों का एक-सा आदर करता है और उसमें सत्यज्ञान की उत्कट अभिलाषा है। मैंने जब ललित को देखा, तब ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों नीलतारा ने जो कहा था, वह इस पुरुष की छाया की पदधूल के भी बराबर नहीं। जैसा सुन्दर गौर वर्ण, साँचे में ढले अंग, गम्भीर भावपूर्ण काली पुतलियोंवाले नेत्र, ऊँचा ललाट और तीक्ष्ण नासिका उसकी थी, उसे देखने पर ऐसा प्रतीत होता था, मानों साक्षात् बोधिसत्त्व सामने खड़े हों। उसकी वाणी बहुत मधुर थी और दूर से केवल कंठस्वर सुनने मात्र से हृदय में अपूर्व शान्ति उत्पन्न होती थी। सहसा यह विश्वास होना कठिन था कि वह साधारण मनुष्य के समान वैसे ही विकारग्रस्त है और उसमें कुछ अन्तर नहीं है। किन्तु कुछ ही दिवसों में मैं समझ गया कि वह कैसा भी प्रभावशाली हो, उदार हो, रूपवान् हो, निर्वाण-प्राप्ति के हेतु उसे मेरी सहायता की बड़ी आवश्यकता है। मुझे आचार्य आर्यदेव के वचन स्मरण आए। मैंने निश्चय किया कि 'निर्वाण-प्राप्ति' में मैं उसकी सहायता करूँगा। नीलतारा को दिया हुआ वचन मैं प्रायः भूल गया। कभी-कभी उसका स्मरण आता परन्तु मैं उसे टाल जाता। ललित का उपकार करने की भावना क्रमशः दृढ़ होती जाती।

बहुत दिन बीते। मैं अपना कल्पना-जाल बुनता

रहा। अन्त में एक दिन ललित को सन्मुख पाकर बोला—"ललित, अब किस तृष्णा में पड़े हो ? क्या नहीं जानते कि तृष्णा से प्रवृत्ति होती है और तृष्णा से होना होता है, कारण जब प्रवृत्ति होगी तो उसकी पूर्ति के लिए जीवन होना चाहिए। अतएव भव से जन्म और जन्म से मरण को उत्पत्ति होती है। क्या इस दुःख का नाश नहीं करना चाहते ?"

"चाहता हूँ, भन्ते, किन्तु कर्त्तव्य का पाश किस प्रकार एकदम तोड़ दूँ।"

"ललित, क्या तुमने भगवान् तथागत के इस उपदेश को नहीं सुना है कि उत्पत्ति पूर्वजन्म की अविद्या, उससे उत्पन्न हुए कर्म और कर्म से बने हुए संस्कारों से होती है। इस दुःख के नाश के लिए अविद्या का नाश करना वांछनीय है और यह शृंखला तीनों जन्मों से सम्बन्ध रखती है। पूर्वजन्म का संचय विज्ञान में रहता है और उसी से जीवन का प्रारम्भ होता है। इन्द्रिय-कर्मों से जो सुख-दुःख होता है, उससे उत्पन्न होनेवाली तृष्णा और तृष्णा से उत्पन्न होनेवाली प्रवृत्ति आगामी जन्म का कारण बनती है। इस शृंखला से छुटकारा पाए बिना निर्वाण कहाँ ?"

ललित मेरी ओर देखकर मुस्कराया। उसने कहा—"भगवान् तथागत के उपदेशों को मैंने सुना है किन्तु, भन्ते, वे आपके मुख से निकल कर विचित्र प्रभाव मुझ पर डाल रहे हैं। मुझे आप निर्वाण-मार्ग बताएँ। मैं उस पर चलने के लिए कृतसंकल्प हूँ।"

मैंने समझा था कि उसे मार्ग पर लाने के लिए बहुत समझाना पड़ेगा किन्तु उसे इतने शीघ्र पथ पर आते देखकर विस्मित होकर पूछा—"क्या तुम भगवान् बुद्ध की शरण में आते हो ?"

"क्यों न आऊँगा ? जिस वैशाली पर भगवान् का इतना प्रेम था कि अंतिम बार जब वे यहाँ आए थे, तब जाने के पूर्व विह्वल हो उठे थे। कुछ व्याकुल से होकर बोले थे कि अन्तिम बार इस नगरी को देख लूँ। उसी नगरी के प्रेमवश मैं अब तक यह सोचता था कि भगवान् ने जिसे दृष्टि फिराकर देखा था, उसके सौन्दर्य में न्यूनता न आने पाए। उसका वैभव, उसकी सार्थकता पूर्ववत् बनी रहे।" उसने कहा।

मैं विचार में पड़ गया, बोला—"मैं तुम्हारा गुरु नहीं बनूँगा। तुम संघ के स्थविर से दीक्षा ग्रहण करो। मैं केवल सहपाठी मित्रमात्र बना रहकर तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करता रहूँगा।"

ललित ने गृह-त्याग किया। धन-वैभव, मान, कुल-गौरव सब कुछ त्यागकर निर्वाण के लिए वह प्रयत्नशील हुआ।

किन्तु इसके पीछे थोड़े ही दिन बीते थे कि अकस्मात् मुझे वाराणसी जाना पड़ा। वहाँ प्रथम दिवस ही जिस गृह के सन्मुख खड़े होकर मैंने टेर लगाई—"बुद्धं सरणं गच्छामि" उसके कपाट खोलकर एक युवती सन्मुख आ खड़ी हुई। आश्चर्य-भरे स्वर में वह बोली—"भिक्षु, तुम यहाँ कहाँ ?"

चकित होकर मैंने अपनी नत दृष्टि ऊपर उठाई; बोला—"देवि, नीलतारा।"

"भन्ते ! मेरी अविनय को क्षमा करो। मैं नहीं जानती थी कि आप प्रसिद्ध आचार्य आर्यदेव के शिष्य प्रज्ञाकीर्ति हैं, जिनकी कीर्ति से देश व्याप्त हो रहा है। और अज्ञानवश मैंने आपको एक छोटा कार्य करने के लिए कहा...।" उसने कहा।

मैंने बीच ही में बात टोककर कहा—"हाँ, विश्व मुझे प्रज्ञाकीर्ति कहता है, किन्तु मैं तो केवल सत्यकाम हूँ। और चरम सत्य यही है, जिसे मैं जानता हूँ। इस लिए देवि नीलतारा, आप क्षुभित न हों। मैंने आपका कार्य करने के लिए कहा था और करूँगा।"

निराश वेदना से म्लान होकर उसने पूछा—"तो क्या आप अभी तक वैशाली नहीं गए ?"

मैं बोला—"मैं गया था किन्तु जब मैं ललित से मिला तब उसे स्वस्थ और प्रसन्न निर्वाण की प्राप्ति के लिए उत्सुक पाया। अतः मैं केवल उसकी शंका-समाधान करता रह गया, तुम्हारा संदेश कहने का अवसर ही मुझे प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु इस बार जब मैं वैशाली जाऊँगा... ।"

"भन्ते ! आप अत्यन्त उदार और विशालहृदय हैं। इसी से मेरी अविनय को अविनय नहीं मानते। श्रेष्ठ ललित अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान हैं। बचपन में उनके साथ मेरा गठबन्धन हुआ था किन्तु मुझ अभागिनी के दुर्भाग्य से, जिस क्षण से वे विद्याध्ययन के हेतु विदेश गए, घर नहीं लौटे। मेरी सास इसके लिए श्रमणों को दोषी ठहराती हैं, किन्तु मैं कैसे ठहराऊँ ?

ललित उनका आदर करते हैं और आपने तो ललित को देखा है कि वे कैसे अच्छे हैं।"

"हाँ, वे अच्छे हैं किन्तु, देवि नीलतारा, निर्वाण-सुख सर्वोपरि है। उसके लिए तो सहस्रों ललित अपना गृह-वैभव त्याग भिक्षु बन जाना अपना सम्मान समझेंगे।"

"भन्ते, आपका कहना सत्य है किन्तु नीलतारा के लिए तो एक ललित ही सत्य है, आप उनसे मेरा सन्देश कहना न भूलिएगा।" कहकर वह चली गई।

मैं सोचने लगा कि कर्त्तव्यपथ कठोर होता है। ललित 'निर्वाण-मार्ग' पर उन्मुख हो रहा है, नीलतारा भी उसी मार्ग की पथिक बने, यह प्रयत्न मुझे करना चाहिए। मैं नित्य भिक्षा के हेतु उधर से जाने लगा, नीलतारा प्रति दिवस अपनी वही बातें दोहराती। एक दिन मैंने सुना कि वह गुर्जर प्रदेश की ओर, अपने चाचा के साथ जाएगी। किसलिए, सोमनाथ के दर्शन करने ? सुन कर छाती पर साँप लोट गया। अविद्या का कैसा गहरा समुद्र है ? क्या मैं इसमें से नीलतारा का उद्धार कर सकूँगा ? ललित तो मार्ग पर लग गया। नीलतारा को भी लगना पड़ेगा, इस निश्चय के साथ मैंने सारी योजना बना डाली। जब नीलतारा मध्य मरुस्थल-प्रदेश में पहुँचेगी, मैं उसके सन्मुख जाकर क्या कहूँगा ? यह भी निश्चय कर लिया। जब नीलतारा के चाचा ने मुझसे पूछा कि आप निकट का यात्रामार्ग बताएँ, कारण आप तो सदा भ्रमण किया करते हैं, आपको मार्गों का सब हाल विदित ही होगा, तब मैंने उन्हें ऐसा मार्ग बताया, जहाँ भीषण आँधियों के, चाहे जब उठने की सम्भावना बनी रहती थी, जहाँ पर जल दुष्प्राप्य था और जीवन-चिह्न अलभ्य। मैंने कहा—"उस पथ से आप शीघ्र अपने गंतव्य स्थल पर पहुँचेंगे।"

वे चले और मैं भी उनके पीछे चला। उन लोगों के साथ कई ऊँट थे, जलादि सामग्री थी। मैं अकेला एक ऊँट पर चढ़ एक दिन के मार्ग पर उनका पाश्चाद्गामी हुआ। भीषण रेगिस्तान में, कड़ी धूप और पवन में, मुझे कुछ कष्ट नहीं होता था किन्तु मैं भूल गया था कि मैंने तो सोमरस पान किया है, इसलिए मेरी गति सर्वत्र समान है। मुझे यह स्मरण आया तब; जब मेरा ऊँट भीषण वेग से हाँफता हुआ जल-प्राप्ति की आशा से मार्ग पर दौड़ चला। मैंने उसे रोकने का प्रयत्न किया किन्तु वह नहीं रुका। तब मैं समझा कि यह क्या हुआ है। मुझे नीलतारा के जीवन की चिन्ता हुई।

मैंने देखा, चारों ओर रेगिस्तान है। जलती रेत और अग्निवत् तप्त सूर्यमंडल के मध्य में एक कोमल कुसुम है, वह उष्णता से मुरझाया जा रहा है। उसे बचाना ही होगा। मैंने ऊँट को और वेग से चलाया। एक दिवस का जो व्यवधान मध्य में था, उसे पार करके मैं जब उन लोगों के समीप पहुँचा, मैंने मृत्यु का सर्वग्रासी दृश्य देखा। डेरे एक ओर पड़े हुए थे। कुछ मरनेवाले थे। मैं उतर-कर उनके बीच में पहुँचा और काँपते कंठ से कहने लगा—"हे मुमूर्षु प्राणियो, जीवन की असारता देखो। कर्मजाल से छुटकारा पाने के लिए भगवान् बुद्ध की शरण आओ। तुम्हारा भला हो। महामंत्र का उच्चारण करो—बुद्धं शरणं गच्छामि। धर्मं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि।

उन लोगों के ओंठ हिले किन्तु जो शब्द उन्होंने उच्चारण किए, वह था--पानी ? पानी ?"

मैंने कहा—"हे मुमूर्षु प्राणियो, यह तुम्हारा अन्तिम समय है; इस समय तो तृष्णा को त्यागकर आर्य सत्य को जानो और समझो। जो धर्महेतु से उत्पन्न हुए हैं, तथागत ने उनका हेतु बतलाया है और उनका निरोध भी बतलाया है। जन्म जैसा दुःख है, मरण भी वैसा ही दुःख है। दोनों से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय...। किन्तु इसके उत्तर में केवल एक ही प्रतिध्वनि उस मरु-प्रदेश से निकलकर, चारों ओर गूँज उठी, पानी ! पानी ! पानी !

"हे तृष्णे, तुम्हारी लीला अपार है !" कहते हुए मैंने अपना माथा ठोंका और उन लोगों को छोड़कर नीलतारा के डेरे की ओर बढ़ा। मेरे पास थोड़ा जल था, उसे मैंने मूर्च्छिता नीलतारा के मुख पर डालकर उसे सचेत किया। उसने सचेतन होते ही अर्धस्फुट स्वर में विलाप किया—"ललित !"

मैंने उस पर झुककर कहा—"भगिनी नीलतारा, मुझे पहचानती हो ?"

उसने मेरी ओर देखते ही कहा—"भन्ते, भन्ते आप हैं।"

"भगिनी नीलतारा, मुझे क्षमा करो। तुम्हारी इस दुर्दशा का कारण केवल मैं हूँ।"

बहुत ही कोमल करुण कंठस्वर से उसने कहा—"भन्ते, ऐसा न कहें। आपने क्या किया?"

"मैंने जो किया है, वह कह नहीं सकता। फिर भी मुझे क्षमा करो।"

उसने कुछ मुसकराकर कहा—"भन्ते, आपने कुछ भी ऐसा नहीं किया है, जिसके लिए क्षमा माँगें। यदि किया हो तो सोमनाथ क्षमा करेंगे, किन्तु ललित से कह देना कि...।"

'अब भी ललित! देवि, सब शून्य है। जितनी वस्तुएँ हैं, सब सत् हैं या असत् हैं। या दोनों नहीं है, क्योंकि जो सत् है, वह असत् नहीं हो सकता और जो असत् है, सत् नहीं हो सकता। अथवा दोनों हैं, क्योंकि जो सत् नहीं है, वह असत् अवश्य होगा और जो असत् नहीं है, वह सत् अवश्य होगा। 'निर्वाण' की इच्छा करो, वह शून्य है। उसमें लय हो जाना ही मुक्ति है।" मैंने कहा। किन्तु मैं नहीं जानता कि उस क्षण में जो कह रहा था, वह सत्य और बुद्धि-अनुमोदित था या नहीं।

नीलतारा ने हँस दिया। उसने कहा—"अब मरने के समय सत् और असत् की यह आलोचना रहने दो। मुझे केवल ललित की बात सुनाओ। जब तुम उनसे मिले थे, उन्होंने क्या कहा था... ?"

मैंने कहा—"नीलतारा, ललित तो भिक्षु हो गए हैं। अब उनकी क्या बात कहूँ? बुद्ध की शरण गहो, जिससे शाश्वत शान्ति मिलेगी। यह संसार मिथ्या है।"

नीलतारा बोली—"संसार मिथ्या है, किन्तु आत्मा सत्य है। ललित से कह देना कि आगामी जन्म में मिलन होगा।"

देखते-देखते वह चिरनिद्रा में सो गई। वेदना से काँपते हुए मैं उठकर खड़ा हो गया। देखा, दूर पश्चिम से आँधी आ रही है, खूनी लाल आँधी। शून्य यदि शून्य है, तो क्या यह आँधी भी शून्य है और जल की प्यास भी शून्य है? क्या बाह्य जगत् में सब कुछ शून्य है, तो अन्तर्जगत् में प्रेम भी शून्य है? मैं चिल्लाता हुआ पीछे हटा। देखा, आँधी सिर पर आगई है। मैं मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ा किन्तु सोमरस पान किए हुए व्यक्ति की मृत्यु नहीं हो सकती। इसलिए जब फिर चेतना वापस लौटी, मैंने अपने को रेत के एक टीले पर पड़ा पाया। उठकर मैंने देखा कि आँधी सबको समेट ले गई है। नीलतारा, उसके दल और ऊँटों का कहीं अवशेष चिह्न तक नहीं है। मैं उठकर खड़ा हो गया। कंठ फाड़कर चिल्लाया—"नीलतारा!"

प्रतिध्वनि चारों ओर गूँजती वापस लौट आई। मर्माहत हृदय से मैं वैशाली की ओर चल पड़ा।

ललित ने यह सुनकर कि नीलतारा मरुभूमि में जल के हेतु तड़पकर मरी है और मरते समय भी उसकी जीभ पर ललित का नाम था, अवरुद्धकंठ से कहा—"हे प्रज्ञाकीर्ति, नीलतारा को मुझसे पृथक् करके तुमने मेरा बड़ा अपकार किया है, किन्तु आज मैं महासत्य को पा गया हूँ। अभी तक जो नीलतारा मुझसे पृथक् सत्ता रखती थी और मुझसे भिन्न और कुछ प्रतीत होती थी, वह शरीर रूपी निर्मिति हट जाने से केवल एक प्रतीत होने लगी है। मैं समझ गया कि बहुरूपत्व का कारण 'वासना' है? वही 'भेद-वासना' जाग्रत् में ज्ञान का नानारूप से भान करती थी। वह वासना स्वतः 'ज्ञान' है क्योंकि ज्ञान के ही साथ उसकी सत्ता है। अतः जो नीलतारा कल तक मुझसे भिन्न थी, आज मेरे अंतःकरण में विलीन हो गई है, उसका बाह्य आकार केवल शून्य था सो शून्य में मिल गया है। जो सत्य था, वह अब भी बचा रह गया है।"

"यह क्या बक रहे हो, क्या दुःख ने तुम्हें पागल बना दिया है?"

"नहीं! दुःख का तो अब अंत हो गया है। नीलतारा विशुद्ध प्रेमरूप से मेरे ज्ञान में उदय हुई है, जहाँ वह सदैव वर्त्तमान रहेगी।"

"अब यह किस भ्रान्ति में पड़ गए...?"

वह बोला—"अनंत ज्ञान के प्रदीप की लौ के समान धारा रूप प्रकाश के दर्शन कर रहा हूँ। जो ग्रहण किया जाए और जो ग्रहण का साधन है, इन दोनों का अस्तित्व ही कब था? ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान में जो भेद दिखाई देता है, वह भ्रम है। झूठे अहंकार से मैं समझ रहा था कि ललित और नीलतारा दो हैं, किन्तु स्वप्न में वास्तविकता नहीं होती, उसमें एक ज्ञान अनेक रूप से प्रकाशित होता है। किन्तु जैसे ही स्वप्न टूट जाता है, ज्ञान पुनः एक हो जाता है। मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा।" कहते-कहते अपार शान्तिपूर्वक वह पद्मासन मारकर बैठ गया।

दो दिवस वह उसी प्रकार बैठा रहा। तीसरे दिन उसका कपाल फट गया और देह निर्जीव हो गई। यह देखकर मूर्ख के समान संदेह में पड़कर मैंने अपने गैरिक वसन उतार फेंके और वैशाली छोड़कर मैं घोर वन की ओर चल पड़ा। आर्यदेव की पढ़ाई सारी विद्या मुझे भूल गई। सब बाह्य और अन्तर् ज्ञान शून्य है, यह आर्यदेव* से मैंने सीखा था। ललित ने निर्वाण पाया किन्तु उसने अन्तःस्थित नीलतारा को सत्य बताया। परन्तु मैं क्या मान लेता कि बाह्य जगत् की नीलतारा मिथ्या थी?

जल मिथ्या था, आँधी मिथ्या थी?
यदि यह सब सच था, तो फिर शिवानी?

* ये आर्यदेव प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थकार देव नहीं हैं।

आर्यों का आदि निवासस्थान

श्री कुमार

आर्यों के आदि निवासस्थान के सम्बन्ध में वर्त्तमान युग के विद्वानों में नाना प्रकार के मत प्रचलित हैं। आज तक जितने भी विद्वानों ने इस विषय पर आलोचना की है, प्रायः सभी ने आर्य जाति का किसी एक बाहरी देश के आगन्तुक के रूप में वर्णन किया है। इस विषय में प्रधानतः तीन मत प्रचलित हैं। अधिकांश पुरातत्त्वज्ञों तथा ऐतिहासिकों के सिद्धान्त के अनुसार आर्यगण मध्य-एशिया के एक अज्ञात प्रदेश में निवास करते थे। वहीं से वे क्रमशः दक्षिण, पूर्व और उत्तर आदि नाना दिशाओं में फैल गए। उनके मतानुसार आर्यों ने कैस्पियन सागर के उपकूल-स्थित किसी भूखण्ड से आकर भारत के उत्तर-पश्चिम प्रदेश, हिमालय तट पर सर्व-प्रथम डेरा डाला और वहाँ से क्रमशः वे उत्तर भारत के अन्यान्य प्रदेशों में बस गए।

मध्य एशिया से आर्यों के आगमन के सम्बन्ध में पुरातत्त्वविद् प्रमाणस्वरूप कुछ कारण प्रदर्शित करते हैं।

प्रथमतः उनके मत में आर्यों के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद संहिता में जिन नदी, नालों और गाँवों तथा शहरों का वर्णन आया है, उनमें से कुछ का स्थान मध्य एशिया में निर्दिष्ट किया जा सकता है[1]।

दूसरे, शास्त्रों में आर्यों को श्वेतकाय और सुन्दर पुरुष कहा गया है और उनके विरोधियों-विपक्षियों को कृष्णवर्ण, दैत्य या असुर। मध्य एशिया के निवासियों का रंग श्वेत है और भारतवासी प्रायः काले रंग के हैं। इससे आर्यों के मध्य एशिया-निवासी होने की पुष्टि होती है।

तीसरे, विद्वानों का कहना है कि आर्यों के उपास्य देव-देवियों के नामों और मध्य एशिया के प्राचीन उपास्यों के नामों में अद्भुत साम्य है। यही नहीं, प्राचीन आर्यों की भाषा के अनेक शब्द आज भी मध्य एशिया के अनेक भाषाओं में या तो ज्यों-के-त्यों व्यवहृत होते हैं, या तद्भव रूप में। इससे भी प्रतीत होता है कि आर्य मध्य एशिया के केन्द्रस्थान से ही चारों दिशाओं में फैले थे।[2]

---

१ ऋग्वेद-संहिता में प्रसङ्गक्रम से यक्षु, अज, आर्जीक गांधार, रूपम, शारदी, शिग्र, कीकट आदि कुछ देशों और आर्जीकीया, सीता या सीरा, सुवास्तु, कुभा, यव्यावती, श्वेतायवी प्रभृति कुछ नदियों का उल्लेख आया है। पुरातत्त्वविद् उनमें यक्षु देश को 'ओक्सुस' (Oxus) या 'ओक्षाभ' नदी का तटवर्ती देश बतलाते हैं। उनके विचार में सीता या सीरा नदी का आधुनिक नाम जक्षर्त्तेस (Jaxartes) अथवा जागजार्त्तेस है। सुवास्तु को वे सोयात मानते हैं या स्वातप्रदेश बतलाते हैं। वर्त्तमान कान्धार देश को वे गान्धार मानते हैं। 'कुभा'--कोफेस नामक नदी काश्मीर के उत्तर-पश्चिम में सू अस्तिव नामक देश में प्रवाहित थी, ऐसी उनकी धारणा है। अन्यान्य नदियों तथा नगरों के नाम भी वे इसी प्रकार निर्धारित करते हैं।

२ वेदोक्त वायु, सोम, यम, मित्र और असुर प्रभृति शब्दों का पारसियों के 'जेन्द-अवेस्ता' नामक ग्रन्थों में वायु, होम, यिम, मिथ्र, अहुर प्रभृति के रूप में वर्णन किया गया है। इसी प्रकार वेदोक्त अश्विवान, अरुषा, गन्धर्व, अहना प्रभृति शब्दों का ग्रीक लोगों के ग्रन्थों में इक्सियोन, ईरस, केन्टेरिस, डाफीन आदि नामों से वर्णन किया गया है। वेद-वर्णित इन सब शब्दों का अर्थ पारसी और ग्रीक शब्दसमूह से मिलता-जुलता है।

दूसरे दल के पुरातत्त्वविदों के मत में आर्यगण उत्तरमेरु से क्रमशः दक्षिण की ओर अग्रसर हुए और अन्त में भारत में आकर ठहरे। उनके इस प्रकार विचार प्रकट करने का कारण यह है कि वेदों में दीर्घकाल-व्यापी रात्रि और दिन का उल्लेख है और शीत की अधिकता का वर्णन है। इसके अतिरिक्त ज्योतिषियों की गणना के अनुसार उत्तरमेरु उस समय मनुष्यों के वास के योग्य था। "वहाँ क्रम से ६ मास दिन और ६ मास रात्रि रहती है।" "वहाँ सूर्य दक्षिण से उदय होता है।" "वहाँ नक्षत्रों का उदयास्त नहीं है।" ऐसे कथन वेद में पाए जाते हैं। इस भौगोलिक परिस्थिति का उत्तरमेरु की भौगोलिक परिस्थिति से साम्य है। मंत्र के साथ इस अवस्था का सादृश्य है।

इसके अतिरिक्त शास्त्रादि में ब्रह्मरात्रि और ब्रह्मदिन को एक वर्ष का बतलाया गया है। उत्तरमेरु प्रदेश में ६ मास का दिन और ६ मास की रात्रि होती है। यही ब्रह्मदिन और ब्रह्मरात्रि है। आर्यों के उत्तरमेरु परित्याग करने का एक कारण भी वे देते हैं। 'जेन्द आवेस्ता' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि आर्यों का स्वर्ग या 'एरियाना भेईजो' उत्तरमेरु प्रदेश में ही अवस्थित है। वहाँ वर्ष में केवल एक बार सूर्योदय होता है। अति हिमपात और शिलावृष्टि के कारण जब वह देश विध्वस्त हो गया और वहाँ अत्यधिक शीत पड़ने लगा तब आर्यों ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। आर्यों के उत्तर-मेरुवासी होने के समर्थक उनके स्थान-परित्याग के सम्बन्ध में जेन्द अवेस्ता का ही प्रमाण उपस्थित करते हैं। स्वर्गीय बाल गङ्गाधर तिलक इसी मत के समर्थक थे। उन्होंने अपने 'Orion or Researches into the Antiquity of the Vedas और The Arctic Home in the Vedas नामक ग्रन्थों में इस कथन के प्रतिपादन की चेष्टा की है।

संस्कृत के पितृ को पारसी में पेडार, लैटिन में पेटर, द्वि को पारसी में दो, लैटिन में दूओ, युग को पारसी में 'युग' लैटिन में युगाम कहा जाता है। इसी प्रकार संस्कृत के अस्मि को 'लिथूनियन' भाषा में एस्मि, 'जेन्दअवेस्ता' में अस्मि ; प्राचीन स्लावोनिक भाषा में 'जेस्मि' कहा जाता है। संस्कृत के 'अस्ति' को लिथूनियन भाषा में एस्ति, जेन्दभाषा में अस्ति, प्राचीन स्लैवोनिक भाषा में येस्तो और लैटिन में येस्त कहा जाता है।

एक तीसरे मत के पोषकों का कहना है कि जर्मनी के अन्तर्गत पोलैंड प्रदेश (किसी-किसी के मत में स्कैण्डिनेविया) में आर्यों का आदि निवास था। भाषा-तत्व की आलोचना-द्वारा तथा संस्कृत भाषा के साथ जर्मन भाषा के सादृश्य का अनुभव करके ही उन्होंने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है[1]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज तक जितने भी विद्वानों ने इस विषय पर गवेषणाएँ की हैं, उन सबने आर्यों को भारत से बाहर किसी दूसरे ही देश का निवासी बतलाया है।

इन विभिन्न मतों और सिद्धान्तों की जब हम तुलनात्मक विवेचना करते हैं, तब इनसे सर्वथा विपरीत किसी और ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

वेद के जिन मंत्रों के आधार पर विभिन्न विद्वान् विभिन्न मत प्रकट करते हैं और जिन वैदिक मंत्रों को पृथ्वी की आदि वाणी कहकर संसार के सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं, उनका उत्पत्ति-स्थान भारतवर्ष ही है। आज तक कोई भी विद्वान् इस बात का प्रमाण नहीं दे सका है कि वेदों की उत्पत्ति भारतवर्ष के अतिरिक्त किसी दूसरे देश में हुई।[2] प्राच्य और पाश्चात्य सभी विद्वानों ने वेद को भारतवर्ष का ही आदिग्रन्थ बतलाया है। जब यह सत्य स्वीकृत है, तब आर्यों के आदि निवास-स्थान के सम्बन्ध से दूसरा मत ठहर ही किस प्रकार सकता है!

प्रत्येक प्राचीन जाति का परिचय-चिह्न उसकी भाषा और पुरुषानुक्रम परम्परा है। आर्य जाति की भाषा और

[1] जर्मनी में हिटलर के उदय होने पर वहाँ के निवासियों ने अपने आपको आर्यों की विशुद्ध सन्तान कहकर बड़े जोरों के साथ प्रचार करना आरम्भ कर दिया था।

[2] अध्यापक मैक्समूलर ने नाना देशों के नाना ग्रन्थों की आलोचना कर इस सिद्धान्त को निश्चित माना है कि ऋग्वेद ही सभ्य जगत् का आदि ग्रन्थ है। One thing is certain, there is nothing more ancient primitive, not only in India, but in the whole Aryan world, than the hymns of the "Rigveda,".—Origin and Growth of Religion.

परम्परागत परिचय भारत के सिवा और कहाँ मिल सकता है ?

जो आर्यों को मध्य एशिया, उत्तर-मेरु प्रदेश अथवा जर्मनी के उत्तरी प्रान्त का अधिवासी बतलाते हैं, क्या वे उस प्रदेश में आर्यों के आदि निवास के प्रमाण-स्वरूप कोई अतीत का परिचय-चिह्न, संस्कृति अथवा भारत की तरह भाषा प्रभृति की एकता का निदर्शन कर सकते हैं ?

पृथ्वी की जितनी भी जातियों ने आज तक उन्नति की सीमा का अतिक्रमण किया अथवा नाना दिशाओं में फैलकर उपनिवेश बसाए, उनके उद्गम-स्थान, भाषा-भाव और संस्कृति की एकता का कोई-न-कोई निदर्शन अवश्य ही प्राप्त है। इसी आधार पर जो आर्यों को मध्यएशियावासी अथवा उत्तरमेरुवासी बतलाते हैं, वे इसका कोई प्रमाण भी क्या दे सकते हैं ?

कोई जाति उन्नत, शक्तिशाली अथवा बहुसंख्यक होने पर यदि विदेशों में अपना उपनिवेश स्थापित करती है तो इस कारण वह अपने स्वदेश को कभी त्यागती नहीं। उदाहरणार्थ हम अंग्रेज जाति को ही ले सकते हैं। सोलहवीं शताब्दी से आरम्भ कर अंग्रेजों ने संसार के प्रायः समस्त भागों में अपने उपनिवेश स्थापित किए। एशिया, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका आदि महाद्वीपों में उन्होंने निवास भी अंगीकार किया किन्तु फिर भी उन्होंने स्वदेश को नहीं छोड़ा; न स्वजाति का परिचय-चिह्न खोया। विदेशों में उपनिवेश स्थापित करने के कारण उनके आदि स्थान और आदि जाति की ही अधिकाधिक समृद्धि और उन्नति हुई।

केवल अङ्गरेज ही नहीं, फ्रेंच, जर्मन, डच, पोर्तगीज आदि जिस किसी भी पाश्चात्य जाति पर हम दृष्टि डालें, हमें यही दिखाई देता है कि विदेशों में जाकर उन्नति करने पर उनके अपने देश की ही समृद्धि हुई। यहाँ तक कि अपने देश की उन्नति और उसके साथ अविच्छेद्य सूत्र में आबद्ध होने में वे सर्वदा गौरव का अनुभव करते हैं। इस दशा में यह कैसे माना जा सकता है कि आर्य जैसी एक सुसभ्य जाति ने, जो ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, साहित्य, गणित, ज्योतिष, शौर्य-वीर्य आदि सभी विषयों में आश्चर्यजनक उन्नति कर चुकी थी, अपनी जन्मभूमि को एकदम भुला दिया और विदेश में जाकर विदेशियों के साथ मिलकर उसने अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को खो दिया।

यह भी सम्भव प्रतीत नहीं होता कि संख्याधिक्य के कारण एक सुसभ्य जाति के बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब विदेश चले जाएँ और उनके आदि निवासस्थान में उनके परिचय-चिह्न-स्वरूप एक भी प्राणी अवशिष्ट न रहे। पृथ्वी के इतिहास में यह एक असम्भव-सी घटना है।

जब आर्यों के आदि निवासस्थान 'आर्यावर्त्त' के अस्तित्व का परिचय एकमात्र भारतवर्ष में ही मिलता है, उनकी भाषा और साहित्य का प्रकृष्ट निदर्शन वेद, वेदान्त शास्त्र प्रभृति जब इस भारत में ही विद्यमान हैं और ब्राह्मणादि वर्ण-चतुष्टय जब अपने को उन्हीं के पुरुषानुक्रमिक वंशज कहकर परिचय देते रहे हैं, तब भारतवर्ष के अतिरिक्त उनका आदिस्थान और कहाँ निर्दिष्ट किया जा सकता है ?

भारतवर्ष ही आर्य सभ्यता की आदिभूमि है और यहीं से वे देश-विदेश में फैले थे, इसका प्रमाण हमारे धर्मग्रन्थों में ही मिलता है। संसार में जब वैदिक धर्म के अतिरिक्त और कोई धर्म ही नहीं उत्पन्न हुआ था, पृथ्वी पर जब आर्यों से अधिक शक्तिशाली किसी जाति का उद्भव ही नहीं हुआ था, उस समय आर्य ही पृथ्वी के अधीश्वर थे। संसार में वैदिक धर्म के अतिरिक्त और कोई दूसरा धर्म न होने के कारण उस समय आधुनिक काल की तरह समुद्रयात्रा निषिद्ध नहीं थी। हम शास्त्रों में देखते हैं कि आर्यों ने उस उन्नति-युग में अमेरिका महाद्वीप तक अपना राज्य-विस्तार किया था। योरप का प्रत्येक प्रदेश उनके अधीन था, अफ्रीका उनके लिए अगोचर न था।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि स्वयंभू मनु[१] के पुत्र

---

१ एक एक मनु के नामानुसार मन्वन्तर की सूचना होती है। शास्त्र में चौदह मनुओं का उल्लेख है—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, वैवत, चाक्षुव, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्र-सावर्णि, देवसावर्णि, इन्द्रसावर्णि। वर्त्तमान समय सप्तम या वैवस्वत मनु का काल चल रहा है। द्रष्टव्य—: विश्व का इतिहास—दुर्गादास।

प्रियव्रत ने पृथ्वी को सात द्वीपों में विभक्त किया था—जम्बु, प्लक्ष, पुष्कर, क्रोच, शक, शाल्मली और कुश। इन सात नामों से सात द्वीपों को पुकारा जाता था।

यही सात द्वीप वर्त्तमान समय में क्रमशः एशिया, दक्षिणी अमेरिका, उत्तरी अमेरिका, अफ्रीका, योरप, एण्टार्कटिक (दक्षिणी मेरु के आसपास का प्रदेश), आस्ट्रेलिया एवं ओशेनिया के नाम से परिचित हैं। यद्यपि पश्चिम के कुछ विद्वान् इस मत से सर्वांशतया सहमत नहीं हैं, तथापि स्थूलतः इन सात द्वीपों के द्वारा समस्त संसार को ही समझा गया था, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

कर्नल विलफोर्ड ने भारतवर्ष को जम्बूद्वीप के नाम से अभिहित किया है। उनके मत में प्लक्षद्वीप—एशिया का उत्तरी भाग और समस्त अमेरिका महादेश, पुष्कर द्वीप—आयर्लैंड, शकद्वीप—ब्रिटिश द्वीपसमूह, क्रौंच द्वीप जर्मनी; शाल्मली द्वीप—आड्रियाटिक और बाल्टिक सागर के सन्निकट देश-समूह; कुश द्वीप—भारत की पश्चिमी सीमा पर स्थित कैस्पियन सागर और पर्शियन उपसागर के निकटवर्त्ती स्थित देशसमूह है।

हमारे शास्त्र और पुराणों में विभिन्न देशों के जो-जो नाम व्यवहृत हुए हैं, उन्हें वर्त्तमान समय में हम भूल चुके हैं। अनेक अनुसन्धान करने पर कदाचित् ही कहीं किसी देश के नाम का पूर्वपरिचय मिलता है। ऐसे परिवर्तनों का होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। दृष्टान्तस्वरूप इस भारतवर्ष को ही हम ले सकते हैं। कभी इस देश का नाम जम्बूद्वीप था, फिर आर्यों के समय में इसका नाम आर्यावर्त्त पड़ा। राजा भरत के राजत्वकाल में इसका नाम भारतवर्ष हुआ, मुसलमानों के आगमन पर हिन्दोस्तान और अङ्गरेजों के आगमन पर इण्डिया।[१]

भारतवर्ष का ही यह सौभाग्य है कि इतने परिवर्तनों के पश्चात् भी उसका अस्तित्व आज तक विद्यमान है। अन्यथा प्राचीन युग के ऐसे अनेक देश हैं, जिनका पूर्व-परिचय आज प्राप्त नहीं है।

कुरुक्षेत्र-युद्ध के पूर्व दिग्विजय-यात्रा में निकलकर पाण्डवों ने जिन-जिन देशों पर अधिकार किया था, महाभारत के सभापर्व में उनका वर्णन आया है। प्रथम यात्रा में उन्होंने बर्मा, चीन, श्याम, तिब्बत, मंगोलिया, तातार, पारस आदि देशों को विजय किया और हीरात, काबुल, कन्धार और बिलोचिस्तान होकर वे स्वदेश वापस लौटे; दूसरी यात्रा में उन्होंने लंका से अरब, मिश्र, जंजीबार और अफ्रीका के विभिन्न देशों को विजय किया।

महाभारत के आदिपर्व में सगर राजा के द्वारा भारत महासागर में स्थित भारतीय द्वीपसमूहों की विजय का वर्णन आया है। अर्जुन के द्वारा पाटल (पाताल) देश-विजय और नागकन्या उलूपी से विवाह करने का वर्णन अमेरिका-विजय का ही वर्णन है। अमेरिका और भारतीय द्वीपपुंजों में कुछ दिन पूर्व भी राम-सीता के पूजन की पद्धति प्रचलित थी। इस प्रकार अनुसंधान करने से ज्ञात होता है कि एक समय संसार के समस्त देशों

---

१ हिन्दु और इण्डिया इन दोनों शब्दों की उत्पत्ति का एक विचित्र इतिहास है। हिब्रू भाषा में हनद शब्द का अर्थ है विक्रम, तेज, शक्ति, गौरव आदि। हिब्रू भाषा के 'एस्तार' नामक ग्रन्थ में लिखा है—राजा अहि सुरेश हनद से लेकर इथियोपिया देश तक राज्य करते थे। अर्थात् उनके राज्य की एक सीमा भारतवर्ष और दूसरी सीमा मिश्र देश तक फैली हुई थी। भारतवर्ष को वे लोग 'हनद' अर्थात् गौरवान्वित राज्य के नाम से पुकारते थे। यह 'हनद' शब्द पारसियों के 'जेन्द अवेस्ता' नामक ग्रन्थ के 'हिन्दव' शब्द से उत्पन्न हुआ है। वही शब्द ग्रीक भाषा में हन्दकोष (Handkosh) इन्डिकोस (Indikos) और इन्डियोस (Indios) प्रभृति शब्दों में रूपान्तरित हुआ। उसी से अंग्रेजी भाषा में 'इण्डिया' की उत्पत्ति हुई। परन्तु भाषा में 'हिनद' और 'हनदु' शब्दों का व्यवहार होता है। इस प्रकार पारसियों के निकट से यहूदियों ने और उनके निकट से अन्यान्य जातियों ने हिन्दू या इन्डिया शब्द को प्राप्त किया। मूलतः इन दोनों ही शब्दों का अर्थ है—"पवित्र गौरवान्वित जाति।" इसके द्वारा प्राचीन काल में हिन्दुगण अन्यान्य जातियों के निकट कितने सम्मानित थे, इसका प्रमाण मिलता है। पारसियों के मत में 'जेन्द अवेस्ता' उनका सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। उस प्राचीन ग्रन्थ में ही जब भारतवर्ष को 'हनद', गौरवान्वित राज्य कहा गया है तब भारतवर्ष का गौरव उससे और भी कितना प्राचीन होगा, इसकी सहज ही कल्पना कर सकते हैं।

महाकवि : महादानी

निराला ने युगपरिवर्त्तक कवित्व ही नहीं, ब्राह्मणत्व भी पाया है। पिछले दिनों दैनिक 'नवजीवन' में छपा था कि निराला जी अर्धनग्न और अर्द्ध विक्षिप्त दशा में लखनऊ की सड़कों पर घूम रहे हैं। फिर पत्रों में पढ़ने को मिला कि प्रान्तीय सरकार ने (सम्भवतः उनकी दयनीय आर्थिक दुरवस्था को दूर करने के लिए) उन्हें २१००) का पुरस्कार दिया है।

आज हम अभिमान के साथ पढ़ रहे हैं कि इस सच्चे त्यागी और स्वाभिमानी ब्राह्मण कवि ने उक्त पुरस्कार की सारी रकम स्वर्गीय नवजादिकलाल की धर्मपत्नी को सहायता के रूप में दान कर दी है।





श्री राजाजी

बर्मा के प्रतिनिधियों के बीच में श्री राजाजी।



आगमन

अमेरिका जाने से पहले श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित मास्को से भारत पधारीं। चित्र में दिल्ली के विलिंगडन हवाई अड्डे में पंडित पंत के साथ वे दिखाई दे रही हैं।



गवर्नर काटजू

बंगाल के गवर्नर डा० कैलाशनाथ काटजू कलकत्ता के लेक 'मेडिकल कालेज और हास्पिटल' का निरीक्षण कर रहे हैं।



सम्मान प्रदर्शन

बंगाल का राष्ट्रीय रक्षकदल गवर्नर काटजू के प्रति सम्मान प्रदर्शन कर रहा है।

के साथ भारत का निकट सम्बन्ध था। यहाँ तक कि जिस उत्तरमेरु को आर्यों का आदि निवासस्थान कहा जाता है, वह भी आर्यों के लिए अगम्य न था। महाभारत के वनपर्व में पाण्डु राजा ने कुन्ती से उत्तर कुरुदेश की स्त्री-जाति का वर्णन किया था। इससे ज्ञात होता है कि उत्तर कुरुदेश के विषय में भी उनको जानकारी थी।

भारतीय आर्य पृथ्वी के एकच्छत्र अधिपति थे और संसार के समस्त स्थानों के लिए वे 'अप्रतिहतरथ' थे। इस सत्य को स्वीकार कर लेने पर आर्यों के आदि निवासस्थान के विषय में कोई संशय नहीं रहता।

अब रही ऋग्वेद में वर्णित विविध भौगोलिक संज्ञाओं की बात। उनके संबंध में यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु-विशेष की जानकारी का अर्थ वहाँ का अधिवासी होना नहीं है।

ऋग्वेद में वर्णित नदी-नाले और नगरादि आर्यों के सुपरिचित थे, इसी कारण उनका ऋग्वेद में वर्णन मिलता है। अपने देश के अतिरिक्त दूसरे देशों की नदियों और नगरों के वर्णन करने का अर्थ यह नहीं है कि आर्य उन देशों के निवासी रहे होंगे। इंग्लैण्ड अथवा फ्रांस की किसी पुस्तक में यदि भारत के किसी शहर या नदी का नाम आए तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि इंग्लैण्डवासी या फ्रांसवासी लेखक मूलतः भारत का निवासी है। अर्थात् केवल अभिज्ञता आदिनिवास की परिचायक नहीं है। उत्तर मेरुप्रदेश में ६ मास तक दिन और ६ मांस तक रात्रि रहती है, इस तथ्य की जानकारी आर्यों को थी पर केवल इसी जानकारी के आधार पर तो आर्यों को मेरुप्रदेश-निवासी नहीं माना जा सकता।

कुछ दिन पूर्व योरप में रोमनों का इतना प्रभाव हो चुका था कि इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन आदि देशवासी रोम-भावापन्न हो गये थे। आज वह सब प्रभाव दूर हो चुका है। केवल उनकी भाषाओं में कुछ रोमन (लैटिन) शब्द मिल गए हैं और उनके आचार-व्यवहार में कुछ-कुछ रोमन भाव का आभास मिलता है। केवल कुछ शताब्दियों के पूर्व की घटना जब इस प्रकार से परिवर्तित हो चुकी है तो उससे कितनी ही अधिक प्राचीन आर्यजाति के सम्बन्ध में इस प्रकार का परिवर्त्तन नितान्त स्वाभाविक बात है।

अधिकांश प्राचीन सभ्य जातियों के ग्रन्थों को पढ़ने से पता चलता है कि वे किसी एक विशेष काल में विशेष स्थान से आकर उस देश में प्रतिष्ठित हुई थीं, किन्तु आर्यों के ग्रन्थों में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं आया है। बल्कि इसके विपरीत शास्त्रों को पढ़ने से यही पता चलता है कि भारतवर्ष से ही उन्होंने बाहर जाकर विदेशों में अपना आधिपत्य स्थापित किया।

आर्यों को सुन्दर श्वेतकाय कहा गया है किन्तु इस देश के मनुष्य कृष्णवर्ण हैं; इस युक्ति में भी विशेष बल नहीं है। भारतवर्ष के ब्राह्मणादि उच्चवर्णों के लोग साधारणतः गौरवर्ण होते हैं। हिमालय प्रदेश, काश्मीर, पंजाब आदि देशों में तो श्वेतकाय सुन्दर मनुष्य ही निवास करते हैं।

आर्य हिन्दु-गण स्वायम्भुव मन्वादि काल से ही आज तक अपने वंश-परिचय का निर्णय करते हैं। अतएव ऐसी अवस्था में आर्यों का किसी भिन्न देश से भारत में आना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है।

यदि कोई कहे कि अत्यधिक उत्ताप के कारण उत्तर-मेरुवास के अयोग्य हो जाने पर आर्यगण दक्षिण की ओर चले आए तो, नैसर्गिक अवस्था के विषय में आलोचना करने पर, हम इस सिद्धान्त को भी नहीं मान सकते। पृथ्वी की दैनिक और वार्षिक गति के विषय में जिनको थोड़ा-बहुत ज्ञान है, वे अवश्य ही इस बात को समझ सकते हैं कि मेरुप्रदेश में कभी अत्यधिक उत्ताप की वृद्धि नहीं हो सकती, कारण सूर्य की प्रखर किरणों का वहाँ तक पहुँचना सम्भव नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की गति के विषय में जो सिद्धान्त प्रकट किए हैं, उनसे इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं मिला है कि मेरुप्रदेश में सूर्य की किरणें अधिक पड़ने के कारण वहाँ शीत का अभाव हुआ होगा।

सूर्य की प्रखर किरणें प्रधानतः विषुवत् रेखा के निकट ही पड़ती हैं। विषुवत् रेखा के उत्तर और दक्षिण में जो प्रदेश जितनी दूर तक अवस्थित होगा, उस प्रदेश में उसी के अनुसार उत्ताप की वृद्धि और कमी होगी। मेरु प्रदेश में कदाचित् ही सूर्य की किरणें प्रवेश करती हैं।

सूर्य की गति पूर्व की तरह समान भाव से विद्यमान है, यदि इस बात को स्वीकार कर लें तो मेरु प्रदेश में किसी समय चिरवसन्त विराजमान था और वहाँ संसार की

श्रेष्ठ जाति निवास करती थी, इस बात को सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त वेदादि ग्रन्थों में उत्तर-मेरु का जो वर्णन है, इतने दिनों बाद आज भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। इतने वर्ष पूर्व वहाँ की जो अवस्था थी, आज इतने दिनों पश्चात् भी यदि उसमें कोई परिवर्तन न हुआ हो तो फिर किस प्रमाण पर आधार कर हम यह कह सकते हैं कि वहाँ की अवस्था उस समय कुछ और ही थी। यदि भूकम्प अथवा किसी ऐसी ही आकस्मिक दुर्घटना के कारण उस प्रदेश में कोई परिवर्तन होता तो उसका प्रमाण हमें प्राचीन ग्रन्थों में अवश्य ही मिलता।

वेद में शीत की अधिकता का वर्णन आया है, ऐसा कहकर जो आर्यों को उत्तर-मेरु का निवासी बतलाते हैं, उनके इस कथन की सत्यता दो कारणों से भ्रमपूर्ण ज्ञात होती है। प्रथमतः वेद में शीत की अधिकता का वर्णन ही नहीं आया है। द्वितीयतः वेद में जिस प्रकार शीत का वर्णन आया है, उसी प्रकार शरद्, हेमन्त और वसन्तादि ऋतुओं का भी वर्णन आया है। अतएव यदि वेद में शीत का वर्णन देखकर ही आर्यों को ठण्ढे देश का निवासी बतलाया जा सकता है तो शरद्, हेमन्त और वसन्तादि का वर्णन होने के कारण उनको शरद्-देश, हेमन्त देश और वसन्त देश का निवासी भी बतलाया जा सकता है।

इस प्रकार की युक्तियों से हम किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकते। प्रत्युत शीत, हेमन्त, शरद्, वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा इन ६ ऋतुओं का वर्णन देखकर हम इसी सिद्धान्त पर सरलता से पहुँच सकते हैं कि आर्य भारत के निवासी थे[१]। कारण, भारतवर्ष के अतिरिक्त और कोई ऐसा देश नहीं मिलता, जहाँ इन छहों ऋतुओं का ऐसा सुन्दर समावेश हो। फलतः ऋतुओं के सम्बन्ध में आलोचना करने पर भी हमारा यह विश्वास और दृढ़ हो जाता है कि भारतवर्ष ही आर्यों का आदि निवास-स्थान था।

मेरु प्रदेश के विषय में 'जेन्द अवेस्ता' की उक्तियों को यदि हम स्वतःसिद्ध भी स्वीकार कर लें तो उससे केवल यही प्रमाणित होता है कि पारसियों के कोई आदिपुरुष उत्तरमेरु में वास करते थे। इससे किसी प्रकार इस बात का आभास नहीं मिलता कि आर्यों के आदिपुरुष मेरुप्रदेश से यहाँ आए थे।

आर्यगण उत्तरमेरु प्रदेश के निवासी थे, इस सिद्धान्त के समर्थकों में भारतीयों में बालगङ्गाधर तिलक प्रधान हैं। उनके मत में ईसा से १० या ८ हजार वर्ष पूर्व उत्तरमेरु शीत की अधिकता के कारण वास के अयोग्य हो चुका था। उस समय से ८ से ५ सहस्र ईसवी पूर्व के अन्दर आर्यों ने उत्तरमेरु प्रदेश को त्यागकर विभिन्न देशों में गमन किया।

इन कथनों के द्वारा उन्होंने इसी बात को प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि वैदिक मन्त्रों में उत्तरमेरु के वर्णन का जो आभास-सा मिला है, वह आर्यों की पूर्वस्मृति का निदर्शन है। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि स्व० तिलक ने आर्यों के उत्तरमेरु-परित्याग के सम्बन्ध में काल-परिमाण का जो निर्देश किया है, वह प्रधानतः अमेरिकन और योरपीय विद्वानों के आधार पर किया है।

वैदिक मन्त्रों के काल-परिमाण का निर्णय और आर्यों के उत्तरमेरु-वास का विचार कहाँ तक युक्तिसंगत है, थोड़ी-सी आलोचना करने पर इसका पता चल जाएगा।

स्वयं तिलक के सिद्धान्तों से ही यह दिखाई देता है कि उत्तरमेरु प्रदेश के त्याग करने के साढ़े चार सहस्र वर्ष पश्चात् वैदिक सूत्रों की रचना हुई। यदि ऐसा ही है तो साढ़े चार हजार वर्ष पूर्व की स्मृति को आर्य किस प्रकार सुरक्षित रख सके और फिर उसका वर्णन भी कर सके! क्या उत्तरमेरु के वे अधिवासी साढ़े चार हजार

---

१ ऋग्वेद के सातवें मण्डल में शरद्, ६ठे में और ५वें में हेमन्त, १० वें में ग्रीष्म और वसन्त और नाना स्थानों में शीत ऋतु का वर्णन आया है।

१ अमेरिका के बोस्टन विश्वविद्यालय के प्रेसिडेण्ट डाक्टर 'वारेन' ने उत्तरमेरु के सम्बन्ध में जिन ग्रन्थों की रचना की, उन्हीं को पढ़कर तिलक ने प्रथम इस मत का समर्थन किया। इसके बाद मिस्टर गिलबर्ट, मिस्टर 'विञ्चेल' अध्यापक 'स्पेन्सर' आदि अमेरिकन पण्डित, अध्यापक 'गिकि', मि० 'मालार्डरिड' आदि इंग्लैण्ड के विद्वानों और 'मोनस्टूअर्ट' 'जेराफ' आदि नारवे के विद्वानों के मतों को पढ़कर वे इस सिद्धान्त पर पहुँचे।

वर्ष के पश्चात् भी जीवित थे ? एक मनुष्य के लिए साढ़े चार हजार वर्ष तक जीवित रहना किस प्रकार संभव है ? और इतने दीर्घकाल तक उस स्मृति को हृदय में धारण कर फिर उसको समसामयिक रूप से वर्णन करना भी किस प्रकार सम्भव है ? उत्तरमेरु को त्यागने और वेदों की रचना करने के बीच जो साढ़े चार हजार वर्षों का दीर्घ समय बीता, उस समय में आर्यों ने जो नाना प्रकार के कष्ट सहे, जिन नाना देशों में भटकते फिरे, नाना प्रकार की अभिज्ञताओं का संचय किया, नाना देशों का भ्रमण किया, उनका कोई उल्लेख नहीं किया, यहाँ तक कि आभास तक नहीं दिया और साढ़े चार हजार वर्ष पूर्व की बातें उन्होंने लिख डालीं, यह कैसे माना जा सकता है !

'आर्य' जर्मनी, स्कैण्डिनेविया या पोलैण्ड से देश-विदेश में फैले ; इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए जो युक्तियाँ दी जाती हैं, उनका मूल आधार उन देशों की भाषाओं के साथ आर्यभाषा का साम्य ही है ! पर मैक्समूलर आदि पण्डितों के विचार में भाषाओं के अन्दर ऐसा कोई गुरुत्वपूर्ण साहश्य नहीं पाया जाता। केवल कुछ पशु-पक्षियों के नामों का साहश्य ही उपलब्ध है। ऐसा साहश्य पृथ्वी के अनेक देशों में पाया जाता है।

स्कैण्डिनेविया, जर्मनी, आदि समुद्रतटवर्ती देश हैं। यदि आर्य उन देशों से आए होते तो सामुद्रिक मछलियों तथा समुद्री नामों के साथ उनका अधिक परिचय होता, किन्तु ऐसा नहीं देखा जाता है।

इस प्रकार जब हम देखते हैं कि जहाँ आर्यों के विदेश से भारत में आने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है, केवल अनुमान पर निर्भर करके ही विद्वान् उस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं, वहाँ आर्यावर्त्त के साथ उनकी कीर्ति और गौरवस्मृति अविच्छेद्य भाव से जड़ित है। वस्तुतः भारत से ही विदेशों में जाकर आर्यों ने अनेक स्थानों में अपने उपनिवेश बसाए और विश्व-विजय की। आर्यों के प्राचीन साहित्य में इसे सिद्ध करनेवाले प्रमाण उपलब्ध हैं।

आर्यों के आदि निवासस्थान का परिचय 'आर्यावर्त्त' शब्द से मिलता है। 'आर्यावर्त्त' शब्द का अर्थ कुल्लूक भट्ट ने इस प्रकार किया है—"आर्या अत्रावर्त्तन्ते पुनः पुनरुद्भवतीत्यार्यावर्त्तः—अर्थात् आर्यों ने इसी स्थान पर बारबार जन्मग्रहण किया है, इसलिए इस स्थान का नाम 'आर्यावर्त्त' है। महर्षि[1] मनु ने आर्यावर्त्त की सीमा इस प्रकार निर्दिष्ट की है :—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः।[2]

जिसके पूर्व और पश्चिम में समुद्र विद्यमान है, उत्तर और दक्षिण में पर्वतमाला विराजमान है, वह पुण्य-भूमि ही आर्यावर्त्त है। इससे ज्ञात होता है कि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व में बंगोपसागर और पश्चिम में अरबसागर, इन चार सीमाओं के अन्तर्गत प्रदेश ही आर्यावर्त्त है।

रामायण के आदिपर्व में सगर राजा ने यज्ञवर्णन के उपलक्ष में आर्यावर्त्त का आभास दिया था। उससे ज्ञात होता है कि हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य का प्रदेश ही आर्यों का आदि निवासस्थान था।[2]

अमर कोष में लिखा है कि विन्ध्य और हिमालय पर्वत का मध्यप्रदेश ही आर्यों का निवासस्थान था[3]। यही आर्यावर्त्त ब्रह्मावर्त्त, ब्रह्मर्षि देश, मध्यदेश आदि भागों में विभक्त था।

सरस्वती और दृषद्वती नदियों के मध्य का प्रदेश ब्रह्मावर्त्त; कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल और सूरसेन प्रभृति देश ब्रह्मर्षिदेश; हिमालय और विन्ध्य के मध्य और विनशन के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम का देश मध्यप्रदेश के नाम से पुकारा जाता था[4]। विदेश जय करने पर किसी-किसी समय आर्यावर्त्त की सीमा बढ़ भी जाती थी। वामन पुराण में जम्बूद्वीप (भारतवर्ष) का जो वर्णन है, उससे ज्ञात होता है कि उत्तर में तुर्किस्तान तक भारत की सीमा फैली हुई थी।

महर्षि मनु-द्वारा वर्णित आर्यावर्त्त की सीमा की व्याख्या करने पर कुछ विद्वानों के मत में पूर्व में चीन

१ मेधातिथि ने मनु के उक्त श्लोक का भाष्य इस प्रकार किया है—"पर्वतयोर्हिमवद्विन्ध्ययोर्यदन्तरं मध्यः सः आर्यावर्तो देशो बुधैः शिष्टैरुच्यते"—मनु २ अध्याय २१ श्लोक, मेघातिथि भाष्य।

२ आदिपर्व, ३६ वाँ अध्याय, ४-५ श्लोक

३ आर्यावर्त्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः
[History of the world by Durgadas द्रष्टव्य]

४ मनुसंहिता, द्वितीय अध्याय, १७-२२ श्लोक।

समुद्र तक और पश्चिम में भूमध्यसागर तक आर्यावर्त्त की सीमा फैली हुई थी।

ग्रीक ऐतिहासिक आरियान के मत में भारतवर्ष की सीमा उत्तर में तरास पर्वतमाला, साईलेशिया, लाईसिया, पाम्फेलिया, प्रभृति देशों तक विस्तृत थी।

तरास पर्वतमाला एशिया के तुरस्क राज्य में अवस्थित है। उनके मत में तरास से काकेशस और काकेशस से हिमालय के उत्तर तक भारत की सीमा फैली हुई थी। इस मत के अनुसार अरब, पारस और टर्की का कुछ अंश और अफ़गानिस्तान, बिलोचिस्तान-सहित मध्य-एशिया का विराट् अंश भारत के अन्तर्गत था।

चीन, पारसी, पारद, दरद और हूण प्रभृति जातियाँ भारत की सीमा पर निवास करती थीं, मनुसंहिता में ऐसा उल्लेख आया है। आरियान एवं मनु के मतों को मिलाकर पाश्चात्य पण्डितों ने इस प्रकार से भारत की सीमा निर्धारित करने की कोशिश की है।

ग्रीक ऐतिहासिक 'टालेमी' के मत में भारत की सीमा मध्य एशिया के बहुत दूर तक विस्तृत थी। उनके मतानुसार उसके उत्तर में बैक्ट्रिया, पश्चिम में पार्थिया (पारस) और पूर्व में अराकान और ब्रह्मदेश था। आर्यों ने समय-समय पर विभिन्न देश जीतकर अपने राज्य में मिला लिए थे, इसी कारण इस विषय में नाना प्रकार के मत प्रचलित हैं।

ऋग्वेद संहिता में आर्य शब्द का उल्लेख बार-बार आया है[1]। आर्यगण यज्ञ कर रहे हैं; आर्यगण इन्द्रादि देवताओं से वर की प्रार्थना कर रहे हैं, ऐसे उल्लेख ऋग्वेद के बहुत से हैं।

आर्य शब्द का अर्थ है—

'महाकुलकुलीनार्य सभ्यसज्जनसाधवः' (इत्यमरः) "आराज्जातास्तत्त्वेभ्य इत्यार्याः, आर्या मतिर्यस्य स आर्यमतिः" (वाचस्पति मिश्रः) कर्त्तव्यमाचरन् काममकर्त्तव्यमनाचरन्, तिष्ठति प्रकृताचारो यः स आर्य (इति स्मृतिः)

जो महाकुल, कुलीन, सज्जन, साधु, जो आर्यमति अर्थात् विशुद्ध तत्त्वनिचय का निकटवर्ती श्रेष्ठ बुद्धियुक्त व्यक्ति है; जो कर्त्तव्य परायण, अकर्त्तव्यविमुख और आचारवान् है, वही आर्य नाम से पुकारा जाता है। संक्षेप में जो सर्वगुणाधार और सम्पन्न थे, वे ही आर्य कहलाते थे।

यास्क ने वेद-व्याख्यान में अपने निरुक्त ग्रन्थ में आर्यों का साक्षात् ईश्वर का पुत्र कहकर वर्णन किया है। कारण वे भगवत्प्राप्ति की चेष्टा में सदैव मग्न रहते थे।

आर्य शब्द ऋ धातु से उत्पन्न हुआ है (ऋ + ण्यत्)। ऋ धातु का अर्थ है 'गमन', व्याप्ति'। सायणाचार्य ने उस धातु के अर्थ के अनुसार आर्यशब्द का अर्थ अरणीय या 'गन्तव्य' किया है, जिन्होंने नाना स्थानों में जाकर अपनी कीर्ति की प्रतिष्ठा की। आर्य शब्द के अर्थ से यही समझा जाता है। आर्यों के अतिरिक्त अन्यान्य जातियों को अनार्य कहा जाता था। वेद में उनको कभी दस्यु और कभी दास के नाम से कहा गया है। यदि मध्य-एशिया अथवा उत्तरमेरु के किसी केन्द्र से आर्यगण पृथ्वी के चारों ओर फैलते तो आर्य और अनार्यों की संज्ञा इस प्रकार कभी न दी जाती और न एक ही पूर्वजों के वंशधरों के आचार-व्यवहार, ज्ञान-बुद्धि में इतनी विभिन्नता मिलती; व ऋग्वेद आदि लिखे जाने के सहस्रों वर्ष पश्चात् भी अन्य देशवासी इतने असभ्य और मूर्ख होते। यदि एक ही जाति एक ही समय में भिन्न-भिन्न देशों में फैलती तो केवल भारतवर्ष ही ज्ञान, विज्ञान, दर्शन आदि विषयों में इतना उन्नत न होता और न अन्यान्य देश अज्ञान के अंधकार में डूबे रहते।

---

[1] ऋग्वेद के प्रथम, तृतीय, चतुर्थ, षष्ठ, प्रभृति मण्डलों में आर्य जाति का उल्लेख हुआ है।

१ योरपीय आर्य शब्द का अर्थ दूसरे प्रकार से करते हैं। उनके अर्थानुसार आर्यगण 'कृषक' श्रेणी के हैं और आर्य शब्द 'अर्' धातु से उत्पन्न हुआ है। 'अर्' धातु का अर्थ 'भूमिकर्षण' है। अर्थात् भूमिकर्षण या कृषिकार्य जिनकी जीवका थी, वे ही आर्य नाम से परिचित थे। प्राचीन लैटिन और ग्रीक भाषा में 'अर्' (Ar) धातु का अर्थ है 'कर्षण'। योरप की अधिकांश भाषाओं में 'अर्' धातु इसी अर्थ में प्रयुक्त है। अतएव आर्य शब्द का अर्थ भी वे इसी प्रकार करते हैं। यह धारणा कितनी भ्रमपूर्ण है, इसका पता सहज ही मिल जाता है। संस्कृत में 'अर्' नाम की कोई धातु ही नहीं है; आर्य शब्द 'ऋ' धातु से उत्पन्न हुआ है। अतएव पाश्चात्य पंडितों के इस सिद्धान्त को हम किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकते।

कोने के दूसरी ओर

श्री गोपालकृष्ण भनोत

चाय की प्याली-पर-प्याली उड़ रही थी पर रँग न जमता था। आखिर कौल साहब को पूछना ही पड़ा—"ऐसी भी क्या बात हो गई, जो तुम इतने उदास और मुख लटकाए बैठे हो?" कौल साहब पुराने मित्र ठहरे, उस पर मनुष्य-स्वभाव के जानकार और आलोचक। मुझे तो वे खुली किताब की भाँति पढ़ जाते थे।

"जीवन कुछ नीरस प्रतीत हो रहा है", अपनी अकारण उदासी को मुसकराहट में उड़ाने की चेष्टा करते हुए मैंने कहा, "प्रतिदिन वही मैं और वही संसार। कोई अन्तर नहीं। मैं तो तंग आ गया हूँ। आखिर कुछ-न-कुछ रंगत तो जीवन में आनी ही चाहिए।" मैंने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उनकी ओर देखा।

वह मुसकरा उठे। बोले—"सावधान रहना, मित्र! कौन जानता है, कोने के दूसरी ओर क्या छिपा है? कोना पार करते-ही तुम्हारा जीवन नई धारा में बह सकता है।"

"सब जबानी जमा-खर्च" मैंने अँगड़ाई लेते हुए कहा, "जीवन में एकदम इतना अन्तर भी क्या आ सकता है?"

वह अब भी मुसकरा रहे थे, पर अब उनकी मुसकराहट की स्थिरता उनका किसी खास विचार में मग्न होना जतला रही थी। अचानक वे उठे। कागजों के एक पुलिन्दे में से उन्होंने एक लम्बा-चौड़ा पत्र निकाला और मेरे हाथ में दे दिया। मैंने उलटकर देखा, पीछे कोई नाम न था। प्रश्नसूचक दृष्टि से मैं उनकी ओर देखने लगा। मेरी दृष्टि को भाँपकर वे बोले—"इसे पढ़ो। पढ़कर ही पता चलेगा।" कौतूहल से मैं उसे पढ़ने लगा:-

प्रियवर,

मैं उलझन में आ फँसा हूँ। कुछ सूझता नहीं, क्या करूँ? मेरी इच्छा के विपरीत मुझे चक्र-व्यूह में खींचा गया है और अब मेरे मस्तिष्क ने काम करना बन्द कर दिया है। परिस्थिति ही कुछ ऐसी हो गई है कि करने और न करने दोनों में ही कष्ट है, दोनों में ही अन्याय है। इसीलिए तुम्हें सब लिख रहा हूँ। इस घोर अन्धकार में तुम्हीं आशा की किरण मालूम पड़ते हो। मैं गहरे जल में तैर रहा हूँ। थक गया हूँ। इतनी शक्ति नहीं कि बाहर आ सकूँ, पर डूबना भी नहीं चाहता। हृदय में भय समा रहा है—अज्ञात का भय, असंभव की संभावना का भय हृदय में समा रहा है। इसका अन्त क्या होगा, मैं नहीं जानता। इसलिए तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। तुम्हीं भ्रमित-मन को उचित मार्ग दिखा सकते हो, पर पहले सब सुनो। इस अद्‌भुत न मानी जानेवाली घटना को सुनो। फिर अपना मन्तव्य प्रकट करना—

'गर्मी के दिन थे, अप्रैल मास। इतनी गर्मी भी नहीं कि घर से बाहर पाँव ही न रखा जा सके और नंगे सिर बाहिर जाना भी कुछ साहस का काम था। पर साहस अथवा कायरता का प्रश्न ही न था। जाना ही था। यदि पढ़ाई करनी है तो कालिज पहुँचना ही होगा। प्रतिदिन की भाँति सूर्य की ओर उन्मुखताभरी दृष्टि डालकर मैं साइकिल पर चल पड़ा—अकेला, अपने विचारों में तल्लीन। सोच रहा था—मनुष्य के जीवन की क्षुद्रता, निःसारता। और हँस रहा था इस निःसारता को भूले प्रत्येक स्त्री-पुरुष की मूर्खता पर, जो संसार में इतनी तल्लीनता दिखा रहे थे। साथ ही हँस रहा था अपनी मूर्खता पर कि उनकी मूर्खता को समझता हुआ भी स्वयं वही मूर्खता का कार्य करने को बाध्य हूँ। क्या रखा है इस सब पढ़ने में? पढ़कर क्या करूँगा, नौकरी? हमारे घर में भी एक नौकर था बिलकुल अनपढ़। उसे पढ़ने की आवश्यकता न पड़ी। मैं पढ़कर कौन विशेष कमाई कर लूँगा……प्रतिदिन की भाँति मन विचार-सागर में डूब रहा था। नाना प्रकार के विचार बुलबुलों की भाँति तल पर उठ रहे थे और कुछ देर तक अपने विचित्र रंगों से मानस-चक्षुओं को भ्रमित कर फिर अन्तर्हित हो जाते थे। गर्मी से अनभिज्ञ रहने का यही उपाय मुझे मिला था। पर कब तक गर्मी की विद्यमानता से मैं अचेत रह सकता था? पसीने की बूँदें मेरे माथे पर उभर रही थीं और नीचे को ढुलकनी आरम्भ हो गई थीं। मैं

हार्डिंज-पुल पारकर दरियागञ्ज की ओर बढ़ रहा था, शीघ्रातिशीघ्र कालिज पहुँचने को। सड़क पर चहल-पहल बहुत कम थी। कभी-कभी कोई मोटर या लारी तेजी से सरसराती या गड़गड़ाती निकल जाती थी। मेरे आगे कुछ दूर पर एक स्त्री साइकिल चला रही थी। हलके लाल रंग की साड़ी उसने पहन रखी थी। पीछे बालों के गुच्छे पर साड़ी का कोना नीचे को खिसक रहा था। मैं देख रहा था उस सरकते हुये कोने को, जैसे उस सुगन्धित कोमल स्थल से हटने को अनिच्छुक होने के कारण, बाधित-सा धीरे-धीरे सरक रहा हो। तेजी से मैं उसके पास से गुजर गया। प्रतिदिन ऐसी कई स्त्रियाँ देखने में आती थीं। रोज की आदत, उसके मुख पर दृष्टि डाले बिना मैं आगे कैसे जा सकता था। पैंतीस-चालीस वर्ष की वह मालूम पड़ती थी। गोरा रंग था, मुख सुन्दर था। धूप की तीव्रता से आँखों को बचाने के लिए उसने ऐनक लगा रखी थी। एक क्षण भर में यह सब देख मैं आगे बढ़ गया, उस क्षण वह भी मेरी ओर देख रही थी। मैं आगे बढ़ गया। एक आध-मिनट उसके मुख की स्मृति मन में चक्कर लगाती रही। उसके बाद फिर पूर्ववत् मैं चलने लगा। एक मिनट कठिनता से बीत पाया था। मुझे तेजी से साइकिल चलने की आवाज सुनाई पड़ी। टक्कर की आशंका से मैंने पीछे को देखा। वही स्त्री तेजी से आ रही थी। उसके मुख पर उतावलेपन का भाव छाया मालूम पड़ता था। मैं कुछ आश्चर्यान्वित होगया। वह मेरी ओर देख रही थी, एक विचित्र भाव से—उसमें हर्ष, आश्चर्य झलक रहा था। कुछ देर में वह मेरे बराबर आ गई। उसकी भाव-भङ्गी में अन्तर आ गया था। उल्लास उसके मुख पर था, मुसकराहट उसके होंठों पर खेल रही थी। उसके होंठ कुछ कहने को हिल रहे थे, पर भावों के आवेग के कारण खुलते ही न थे। मैं प्रतीक्षा कर रहा था उसके बोलने की, इस रहस्य के उद्घाटन की। आखिर उसके मुख से हलके स्वर में निकला—आप यहाँ पर स्वामी!

मेरा रक्त बहना बन्द-सा हो गया। शरीर के रोंगटे खड़े हो गए। स्वामी! मैं और स्वामी! मैंने इधर-उधर देखा कि कोई समीप भी जा रहा है कि नहीं। सड़क सुनसान थी। मैंने अपने आपको सँभाला। वह कह रही थी—"यहाँ पर मिले आप और इस अवस्था में!

सूखे हुए कण्ठ से मैंने कहा—क्षमा कीजिए, आपको कुछ भूल हो गई है कदाचित्। न तो मेरा नाम ही 'स्वामी' है और न मैं किसी का स्वामी ही हूँ।

वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—अजी वाह! आप भी क्या खूब हैं! बीस वर्ष बाद भी आप में कोई अन्तर नहीं पड़ा। आप अब भी वह पहले से ही रहे। ठट्ठा करने का भी क्या अवसर मिला है! भला बताइए, क्या कोई स्त्री अपना पति पहिचानने में भूल कर सकती है?

मैं सोच रहा था, या तो सूर्य की गर्मी से 'डॉन किहोटे डि ला माञ्चा' की भाँति मेरा भी दिमाग पिघल गया है और या वही कोई प्रेत-लीला कर रही है। ठट्ठा कर रहा हूँ मैं या वह? कुछ कड़े स्वर में मैंने कहा—कम-से-कम आप तो अवश्य ही भूल कर रही हैं? मैं आपको बता रहा हूँ कि मैं आपका कुछ भी नहीं हूँ। मैंने तो आपको पहले कभी देखा ही नहीं। रही पति होने की बात—सो मैं कैसे हो सकता हूँ!

उसने अपनी भवें सिकोड़ ली थीं। जैसे मेरी बात समझने का प्रयत्न कर रही हो। मेरी बात समाप्त होते ही उसका मुख फिर चमकने लगा। कहने लगी—"आप तो वाकई बिलकुल भूल गए हैं। पर नहीं, भूल नहीं गए, भूल जाने का बहाना कर रहे हैं। मैं तो भूली नहीं। वही मुख, वही रंग, वही नेत्र, वैसी ही नाक, वैसा ही कद, वही चाल-ढाल! भूल कैसे हो सकती है? आप तो बिलकुल वही हैं। बीस वर्ष बाद भी आप ठीक वैसे ही हैं। पर ठहरिए", अभी तक हम साथ साथ साइकिल पर जा रहे थे। अब उतरना ही पड़ा। "आपको क्या अपना घर याद नहीं है।" मुझे अब वह पागल मालूम पड़ रही थी। सकपकाकर मैंने कहा—कौन सा घर? मुझे तो कोई घर याद नहीं है।

"अरे, वही बीअरड रोड। बागीचे के बीच में कोठी। आपके पिता जी ने ही तो उसे बनवाया था... नहीं याद है आपको? अच्छा, और ठहरिए। आपको सुशीला याद नहीं?"

मेरा मस्तिष्क वाकई चकरा रहा था। मैं पति बन चुका था; मेरी बीअरड रोड पर एक कोठी भी थी।। और मेरे पिता जी ने उसे बनवाया था? और अब यह सुशीला...

"सुशीला कौन है?" मैंने माथे से पसीना पोंछते हुए पूछा।

"उसका मुख कुछ उदास हो गया।" आप तो सच-

मुच सब भूल गए," निराश स्वर में उसने कहा—"सुशीला तो हमारी लड़की थी, बेचारी एक वर्ष बाद चल बसी।" यह तो कुछ अधिक था। मेरी एक लड़की भी थी। यह सौभाग्य है कि वह मर चुकी, मैंने सोचा, नहीं तो पता नहीं क्या होता? किस जादूनगरी में मैं पहुँच गया था? उस स्त्री को एकदम यह क्या सूझी कि मुझे ही पति बना बैठी। वह पैंतीस, चालीस की और मैं केवल इक्कीस। कहाँ, कैसे मैं उसका पति बन सकता था!

कुछ झल्लाकर मैंने कहा—देखिए श्रीमती जी! मुझे तो कालिज को देर हो रही है। मैं आपसे कई बार कह चुका हूँ कि आप भूल कर रही हैं। मैं आपका पति नहीं हूँ, नहीं हूँ, नहीं हूँ। कैसे हो सकता हूँ? अभी तो इक्कीस वर्ष का हुआ हूँ। आपसे मेरा विवाह कहाँ हुआ, कैसे हुआ, कब हुआ, किसके सामने हुआ?

उसके नेत्रों में आँसू भर आए। बोली—"आप निर्दयी हैं! इतने वर्षों बाद आप मिले और फिर भी मुझे ठुकरा रहे हैं। अन्ततः सौभाग्य से हमारा पुनर्मिलन हुआ और आप फिर भी मुझसे भागे जा रहे हैं। एक बार पहले भी आप भाग गए थे, मुझे अकेली छोड़कर। पर इस बार मैं न जाने दूँगी।"

मैं सोच रहा था, इसका अन्त कहाँ होगा? वह भूल कर रही है, भारी भूल कर रही है। पर इसे भूल नहीं समझती। व्यर्थ में आँसू बहा रही है। पर उससे छुटकारा भी कैसे मिले? अचानक मुझे एक बात सूझी—

"देखिए", मैंने उससे कहा: "मुझे कालिज को देर हो रही है। अच्छा यही होगा कि कल आपकी कोठी पर आऊँ और तब हम इस पर विचार करें कि मैं आपका पति हूँ कि नहीं?"

उसका मुख काला पड़ गया। "तो आप मुझे छोड़-कर जाना चाहते हैं। कल यदि न आए तो," आप-ही-आप वह कह उठी।

"अवश्य आऊँगा। निस्सन्देह आऊँगा", मैंने शीघ्रता से कहा। अविश्वास उसके मुख पर था! "सच कह रहे हैं आप?—नहीं, नहीं। आप पीछा छुड़ा रहे हैं। आप नहीं आएँगे, नहीं आएँगे।" अचानक वह रुक गई। विचारमग्न, अस्फुट स्वर में उसके मुख से निकला, जैसे आप-ही-आप सोच रही है—"पर मैं रोक भी नहीं सकती, रोक भी नहीं सकती"—और एकदम उसके मुख पर दृढ़ भाव छा गया। निश्चय-पूर्ण स्वर में उसने कहा—"आप जाना चाहते हैं तो जाएँ। पर कल आपको अवश्य आना होगा। मैं प्रतीक्षा करूँगी। और यदि आप न आए तो—" उसकी आवाज टूट गई। "अवश्य आऊँगा, अवश्य आऊँगा" मैंने शीघ्रता से कहा। "मैं प्रण करता हूँ अवश्य आऊँगा?" मुझे भय था कि कहीं कोई और बाधा उपस्थित न हो जाए। इस कारण इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना मैंने साइकिल पर पाँव रखा और वह भागा कि कालिज पहुँचकर ही साँस ली।

❀ ❀ ❀

भूल कैसे सकता था मैं उसे? ज्यों-ज्यों प्रयत्न करता, त्यों-त्यों वह पुनः नेत्रों के सम्मुख आ विराजती। यह सारा कैसा अद्भुत व्यापार था! क्या वह स्त्री पागल थी? नहीं। मेरा हृदय नहीं कहता था। जब मैं साइकिल पर उसके पास से गुजरा था, वह बिलकुल सीधी-सादी अन्य पढ़ी-लिखी स्त्रियों-सदृश मालूम पड़ती थी। फिर एकदम उसके मन में क्या आया, जो उसने मुझे पति कहकर पुकारना आरम्भ कर दिया? मेरे अस्वीकार करने पर भी उसमें कोई अन्तर न पड़ा। बात क्या थी? क्या मेरा मुख किसी अन्य पुरुष से इतना मिलता था कि वह भूल कर रही थी, अवश्य यही बात होगी। पर फिर आयु की भूल! उसका पति कम-से-कम चवालीस वर्ष का होता और वह लड़की। या तो उस स्त्री को भ्रांति हो गई थी या मैंने स्वप्न देखा था! मैं उसे भुला देना चाहता था, एक कष्ट-दायक स्वप्न की भाँति उसे भुला देना चाहता था। उसे मृगतृष्णा, पागल की झोंक, गर्मी का प्रभाव कहकर मन से मिटा देना चाहता था। पर वह आँसू-भरा मुख, वह सदैव सम्मुख उपस्थित रहता था।—

'कृष्णपाल को तुम जानते ही हो। उन दिनों वहीं मेरे पास ठहरा था। रात को हम प्रायः लोधी रोड पर घूमा करते थे; बातें करते थे, फजूल बातें, जो युवक जवानी की मस्ती में प्रायः किया करते हैं और स्वयं ही उन पर हँसते हैं। उस रात मैंने कृष्णपाल को दिन की सारी घटना सुनाई। हृदय का भार हलका करना था, सुनानी ही पड़ी। सुनकर वह मुझे पकड़कर बिजली के लैंप के नीचे ले गया और ध्यान से मेरी ओर देखने लगा। देख-कर उसने सिर हिलाया, अपना अविश्वास प्रदर्शित

किया। "तुम झूठ बोल रहे हो," उसने कहा, "मुझे बना रहे हो। यह हो कैसे सकता है? या तो वह पागल थी या तुम्हें भ्रांति हुई है।"

मैंने सिर हिलाया। "नहीं दोस्त, भ्रांति नहीं थी, यथार्थ था। वह इसी प्रकार मेरे समीप खड़ी थी, जैसे इस समय तुम मेरे पास खड़े हो। उसके वे शब्द अभी भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं; मेरे हृदय को झंकृत कर रहे हैं: 'अन्ततः सौभाग्य से हमारा पुनर्मिलन हुआ और आप फिर भी मुझसे भागे जा रहे हैं।' ये पागल के शब्द नहीं थे, ये एक विरहिन प्रेमिका के शब्द थे। मुख पर आच्छादित अनुपम हर्ष को मैं कैसे भूल सकता हूँ।"

आश्चर्य से कृष्णपाल मेरे मुख की ओर देखने लगा—तुम्हें सचमुच कुछ हो गया है। उपन्यास कुछ अधिक तो नहीं पढ़ लिए? किस मर्ज में फँस रहे हो और कहाँ? चालीस वर्ष की बूढ़ी के यहाँ! अरे यार, कोई सीमा होती है। चलो, घर चलें। कल प्रातः तुम्हारा दिमाग ठीक हो जाएगा।

मैं झुँझला उठा। वह मुझे पागल समझ रहा था! मैंने कहा—'देखो! कृष्णपाल, तुम मेरी बात समझे नहीं हो। कौन कहता है, मुझे प्रेम हो गया है? हो भी कैसे सकता है? मैंने प्रेम करने को उसमें देखा ही क्या है? नहीं, यह बात नहीं। केवल उसका वह विषाद-युक्त मुख मुझे अस्थिर कर रहा है। जब उसने गम्भीरता से कहा—'यदि आप न आए तो......और इतना कहकर चुप हो गई तो उस अपूर्ण वाक्य के सम्भावित मतलब को स्मरण कर मैं काँप उठा। यदि मैं न जाऊँ तो क्या होगा...क्या...क्या...कौन जानता है क्या होगा...

"तो फिर चले जाओ न", कटाक्ष करते हुए कृष्णपाल ने कहा, "इन्तजार तो वह करेगी ही! हर्ज ही क्या है? आखिर पति ही तो बनोगे! सो भी मुफ्त में, बिना किसी प्रयत्न के।" यह कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसके प्रश्न का उत्तर देना मैंने उचित न समझा। मैं उसकी ओर से मुख मोड़कर घर को चला। पर हँसी मुझे भी आ रही थी। सारी घटना ही ऐसी थी कि कोई हँसे बिना रह नहीं सकता था। मैं धीरे-धीरे घर की ओर बढ़ा। थोड़ी देर बाद वह भी मेरे साथ आ पहुँचा। हम चुपचाप साथ-साथ चलने लगे। पहले उसने ही शान्ति-भङ्ग की।

"तो तुम कल जा रहे हो?"

"हाँ", कुछ बात समाप्त करने के लिए और कुछ अपने हिचकिचाते दिल को दृढ़ करने के लिए मैंने एक-दम कह दिया। वह चुप हो गया। पर थोड़ी देर बाद ही खिलखिलाकर हँसने लगा। हँसते-हँसते लोटने लगा। मैंने शान्त और गम्भीर रहने का भरसक प्रयत्न किया पर न रहा गया। पागल की भाँति मैं भी हँस पड़ा।

* * *

कौन सी चीज मुझे उसकी ओर खींच रही थी? उसके विचित्र व्यवहार का हेतु जानने की उत्सुकता? चंचल मन? अथवा उसका करुणापूर्ण मुख? मैं कह नहीं सकता। साँझ हो रही थी। बिजली के स्तम्भों की छाया लम्बी पड़ती जा रही थी। वायु में ग्रीष्म ऋतु के सायंकाल की निश्चलता आभासित थी, जब उछलते मन से मैंने उसकी कोठी में पदार्पण किया। अन्य कोठियों की भाँति उस कोठी के भी चारों ओर उद्यान था, पुष्पपौदों, पुष्प-लताओं से घिरे हुए घास के क्षेत्र थे, जिनके चारों ओर ग्रीष्म की उष्णता से उनकी रक्षा करते हुए श्यामल वृक्ष लहलहा रहे थे और था रात की रानी की कषाय सुगन्धि से पूर्ण स्थिर वायु-मण्डल। धीरे-धीरे पाँव रखता हुआ मैं बढ़ रहा था, उस कोठी की ओर, जिसे सूर्य की किरणें उस दिन अन्तिम बार प्रकाशमय कर रही थीं। मैं जा रहा था, धीरे-धीरे, कोठी के ऊपर दृष्टि जमाए। अचानक पास की पुष्प-लताओं के पीछे से सरसराता हुआ एक पुरुष मेरे सामने आ खड़ा हुआ। उसके आकस्मिक आगमन से मैं चौंक उठा। वह वृद्ध था पर बलिष्ठ था और हाथ में लिए हुए खुरपे से माली मालूम पड़ता था। तीक्ष्णता से वह मेरे मुख की ओर देखने लगा।

"क्या चाहते हैं आप?" उसने कुछ कठोर स्वर में पूछा। मैं कुछ कहने को ही था पर उसकी भाव-भङ्गी देखकर मेरे शब्द मुख में ही रह गए। उसके नेत्र फूल रहे थे—आश्चर्य से, भय से। कुछ कहने के लिए उसका मुख खुल रहा था—खुला ही रह गया। खुरपा उसके हाथ में इस प्रकार झूलने लगा जैसे कटे वृक्ष की डाली झूलती है। और तब वह चीख उठा: "बाबूजी!" केवल इतना ही और उसके बाद वह भाग खड़ा हुआ, कोठी की ओर, जैसे पिशाचों की सेना उसका पीछा कर रही हो। मैं हैरान खड़ा था। यह 'बाबूजी' क्या मुझे ही कहा गया

था ? क्या सचमुच ही मैं उस घर का स्वामी था ? तो फिर उस भय का क्या कारण ? कोठी के भीतर किवाड़ जोर से खुलने और बन्द होने की आवाज आ रही थी। थोड़ी देर में बाहर का किवाड़ खुला और वह मेरे सामने खड़ी थी। अस्त होनेवाले सूर्य की एक भूली हुई किरण उसके मुख को आलोकित कर रही थी। वह मुसकरा रही थी, मधुर भाव से, आन्तरिक प्रसन्नता से, जैसे उसकी मनोकामना के अनुकूल उसे उत्तर मिल रहा हो। क्षण भर वह वैसे खड़ी मेरी ओर देखती रही और तब हाथ बढ़ाए शीघ्रता से मेरी ओर आई—"आ गए, मेरे स्वामी !...चलिए, भीतर चलिए।"

मेरी साइकिल पकड़कर उसने एक ओर खड़ी कर दी और मेरी भुजा पकड़कर वह भीतर ले चली, मन्द-मन्द गति से। वही कोमल मुसकराहट उसके मुख पर खेल रही थी। मन्त्र-मुग्ध मैं उसके साथ जा रहा था। मेरे हृदय में एक विशेष आनन्द, एक विशेष सुख का भाव उभर रहा था। "क्या मैं स्वप्नलोक में हूँ ?" मैं सोच रहा था और साथ ही विचार उठ रहा था, "तो यह स्वप्न-लोक सदैव क्यों न बना रहे ?" मैं उस देश का आनन्दोपभोग करने को तैयार था।

उसका मधुर स्वर संगीत-ध्वनि की भाँति मुझे निद्रित-सा कर रहा था। अर्थ जानने की चेष्टा करने की अनिच्छा से, मैं असतर्क-सा उसके शब्द सुन रहा था जैसे मनुष्य पक्षियों का कलरव सुनता हो अथवा बहते जल की धीमी कलकल में लीन हो। "मेरे हृदय में भय समा रहा था," वह कह रही थी, "कि कदाचित् आप न आएँगे। प्रातः से मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही थी। ज्यों-ज्यों रात्रि समीप आ रही थी, मेरी आशंका बढ़ती जा रही थी। मेरे हृदय में अंधकार का भय समाता जा रहा था। प्रतिदिन भी मैं अकेली रहती थी पर आज वह अकेलापन ही मुझे खाए जा रहा था। अब आप आ गए। इतने वर्षों के बाद आप फिर आ गए। वर्षों के बाद मेरा हृदय फिर हरा हो रहा है। मेरे मन में आनन्द की लहर पुनः दौड़ रही है... ।" अर्ध-चेतन अवस्था से मैं सब सुन रहा था। बिजली की रोशनी में कमरा जगमगा रहा था। फर्श पर कोमल कालीन बिछा था, जिसमें मेरे पाँव धँसते जा रहे थे। पाँव में सुख-पूर्ण खुजलाहट उत्पन्न हो रही थी। मखमली सोफे और कुर्सियाँ, दूध-सी सफेद मेज, किवाड़ों और खिड़कियों पर हलके नीले रंग के पर्दे—उन सबके मानों स्वाभाविक पारस्परिक संमिश्रण से मन में सुख की लहर-सी उमड़ रही थी। और बिना हिले-डुले, बिना कोई परिश्रम किए मैं उस लहर पर बहता जा रहा था। संसार से अनभिज्ञ, स्वयं से अनभिज्ञ। वह बोल रही थी मैं चुपचाप सुन रहा था, ठीक वैसे ही जैसे विचार-मग्न पुरुष किसी प्रिय गाने को रेडियो पर सुन रहा हो। वह अपनी प्रसन्नता में लीन थी। उसे इस बात का ध्यान ही न था कि मैं उसकी ओर ठीक ध्यान नहीं दे रहा हूँ।

अचानक मेरे मन में उठा कि वह खड़ी है और कोई विशेष बात कह रही है—"खाना तो खाएँगे न आप ? मैंने स्वयं अपने हाथों से बनाया है !......" मैं कुछ कहने को ही था, कोई आपत्ति प्रकट करनेवाला ही था, वह झटपट भीतर चली गई।

उसके जाते ही मेरा दिमाग कुछ ठिकाने पर आने लगा। खुमारी दूर होने लगी। मैं सोचने लगा "इस प्रकार किसी के घर खाना खाना ठीक नहीं। पता नहीं, वह कैसी स्त्री है ? ... पता नहीं, वह किस भूल में भूली है।..." खाने से पहले मैंने उस भूल को दूर करने की ठानी। आखिर जिस समस्या को सुलझाने मैं आया था, वह तो वैसी ही उलझी पड़ी थी।

स्वयं ही खाना लेकर वह आई। मैंने खाने से इनकार कर दिया। मेरे सिर से भूत उतर चुका था। उसका मुख फीका पड़ गया; होंठ सूख-से गए; आँखें तर हो गईं। मैं स्वयं अस्वीकार करने पर पछता रहा था। कुछ भर्राए स्वर में उसने पूछा—"क्यों ? क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है ?" यही तो साफ-साफ पूछने का अवसर कथा। "अपराध तो नहीं हुआ," मैंने हा, "पर आपको मालूम भी है मैं कौन हूँ ?"

"मेरे स्वामी।"

"यह तो आपने कल भी कहा था। पर......"

वह मुसकरा उठी। आँसू धुल गए, "तो कल ठीक ही तो कहा था। कल से आज तक में आप में कोई अन्तर तो पड़ नहीं गया।"

मैंने कहा—"पर आप भूल कर रही हैं। मैं कल भी आपका पति नहीं था, आज भी नहीं हूँ। हो कैसे सकता हूँ ?"

"हो कैसे नहीं सकते आप ?" वह बोली। "मेरा आपसे विवाह हुआ था। हमारे लड़की हुई थी। आप पति नहीं थे तो और क्या थे ?"

मैं चुप हो गया। इस प्रकार कुछ भी ठीक से मालूम पड़ता न दीखता था। मैंने एक और मार्ग पकड़ा—अच्छा, ठहरिए। ऐसे आप नहीं मानेंगी। आप यह बताएँ मैं आपका पति कब बना था ?

"था का क्या मतलब ?" उसने तुरन्त कहा, "आप अब भी हैं।"

मैं कुछ झुँझला उठा और बोला—मेरा मतलब अब से नहीं। मेरा मतलब है पहले से, बहुत पहले से। जब मैं आपसे बिछुड़ा था। हाँ, कब आपसे बिछुड़ा था ?

"ठीक इक्कीस वर्ष पहले।"

मैं उछल पड़ा—तो देखिए न। इक्कीस वर्ष पहले तो मैं उत्पन्न भी नहीं हुआ था। तभी तो मैं आपसे कह रहा हूँ कि आप गलती कर रही हैं।

वह मुसकरा पड़ी। "गलती नहीं कर रही हूँ, स्वामी, ठीक ही कह रही हूँ। आप तो तब जीवित थे। आपके पैदा होने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

मेरा सिर घूम-सा गया। उठकर मैंने कहा--क्या कह रही हैं आप ? इक्कीस वर्ष पहले मैं जीवित था और बीस वर्ष पहले मैं पैदा हुआ था। मतलब क्या ? मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

"भई वाह," वह बोली, 'मामूली सी बात है। इक्कीस वर्ष पहले आप जीवित थे। आपका मुझसे विवाह हुआ था। आप इस कोठी में रहते थे। इक्कीस वर्ष पहले ही आप मुझसे बिछुड़ गए...।" घूम-फिरकर वहीं-के-वहीं। पर अब मैं छोड़नेवाला न था।

"बिछुड़ गए का क्या अर्थ ?" बात काटते हुए मैंने कहा, "क्या मैं भाग गया था ?"

रोनी आवाज में उसने कहा—"जी नहीं! भागे नहीं थे। मृत्यु का हाथ आपके सिर पर था। आप इस संसार से ही चल बसे थे...!"

मैंने एक लम्बी साँस खींची जैसे हृदय से भार उतर गया हो। "तो फिर तो झगड़ा ही समाप्त हो गया। जब मैं संसार से ही चल बसा, जब मेरा शरीर ही भस्म हो गया तो बाकी रहा क्या ?..."

"आपकी आत्मा तो अमर थी," बात काटते हुए उसने कहा, "एक शरीर का नाश होते ही आपको दूसरा शरीर मिल गया। मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही थी। इक्कीस वर्ष बाद आप फिर मुझे उसी अवस्था में मिले, ठीक वैसे ही, उसी रूप में...।"

यह क्या बकवास थी ? यह हो कैसे सकता था, मैं सोच रहा था। क्या मैं मायाजाल में फँसा पड़ा था ? मेरे मस्तिष्क के चारों ओर चक्कर बँधता प्रतीत होता था। मैं उसे परे हटाना चाहता था। मेरे मुख से स्वयमेव निकल पड़ा—"यह हो कैसे सकता है ?" वह मुसकरा पड़ी—"हो कैसे नहीं सकता ? प्रेम के सम्मुख एक जीवन का क्या मूल्य है ? प्रेम अमर है। प्रेम अमरता प्रदान करता है। यदि इस जीवन में प्रेम हमें मिला सकता है तो अगले जीवन में क्यों नहीं ? एक जीवन की क्षुद्रता में दो प्राणी बुलबुलों की भाँति उठकर शीघ्र ही अन्तर्हित हो जाते हैं पर प्रकृति की अनन्तता में नहीं। उनका अस्तित्व अन्तर्हित नहीं हो सकता। वे किसी और रूप में प्रकट होंगे, अवश्य प्रकट होंगे। प्रेम उन्हें फिर मिलाएगा। इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?"

निश्चल बैठा मैं सुन रहा था। तो इस प्रकार उसके लिए मैं अब भी उसका पति था! असम्भव। यह कैसे हो सकता था ? इसे कैसे माना जा सकता था ? बुद्धि पर छा रहे घने बादल को परे हटाने की चेष्टा करते हुए एक बार फिर मैंने पूछा—"अच्छा बताइए, मेरा उस समय नाम क्या था ?"

"दिनेशचन्द्र।" दिनेशचन्द्र तो अब मेरा नाम नहीं था, मैंने उसे बताया। उसने केवल सिर हिलाया—"इससे क्या अन्तर पड़ता है ? केवल नाम के अन्तर से ही नहीं, आप किसी और ही रूप में भी आ सकते थे; पर मैं आपको अवश्य पहिचान लेती। आप अवश्य मुझे मिलते।" अविश्वास का भाव मेरे मुख पर था। देखकर वह खड़ी हो गई—"आप नहीं मानते ? अच्छा आइए, मेरे साथ आइए। मैं आपको दिखलाती हूँ। वर्षों से जो रूप मेरे हृदय में घर किए है; वर्षों से जिसकी मैं पूजा करती हूँ, उसे प्रत्यक्ष दिखाती हूँ। आइए...।" चुपचाप, मुग्ध, मैं उसके साथ चल पड़ा। दूसरे कमरे में अँधेरा था। उसने बिजली की रोशनी की। कमरा जगमगा उठा। तसवीरों से, चित्र-क्रियाओं से, किताबों से, कमरा

सजा हुआ था। "यही आपका कमरा है, स्वामी !...ठीक उसी अवस्था में जैसे आप छोड़ गए थे... और वह देखिए, सामने दीवार से लगे हुए उस फोटो को देखिए..।"

मैं देख रहा था। उसके कहने से पहले ही देख रहा था, फूले नेत्रों से, धकधक करते हुए हृदय से; काँपते हुए शरीर से, अपनी प्रतिमूर्ति की ओर देख रहा था—जैसे मुझे ही उठाकर दीवार पर लटका दिया गया हो...। 'असम्भव है', मेरे दोस्त; तुम कहोगे, 'असम्भव है।' पर मेरी वह तसवीर मेरी उस व्याकुल अवस्था पर मुसकरा रही थी, कौतूहल से, किंचित् कटाक्ष से। मित्र, वह दिन गया और यह दिन आ पहुँचा है। प्रतिदिन मैं उस कोठी में जाता हूँ, जैसे लोहा चुम्बक की ओर जाता है, ठीक वैसे ही। अपने आपको मूर्ख कहता हूँ, पागल कहता हूँ। उसे पागल कहता हूँ, मायावती कहता हूँ। पर मैं जाता हूँ; रोज जाता हूँ। यह सब ठीक नहीं। मेरा मन कहता है, यह सब ठीक नहीं; इसका परिणाम बुरा होगा। घरवालों को यदि पता चल गया तो पता नहीं क्या तूफान उमड़ आएगा पर मैं जाता हूँ। रुक नहीं सकता। प्रतिदिन वह मेरी राह देखती है। मुझे देखते ही हर्ष से खिल उठती है। फिर दो, तीन घंटे बातों में ही बीत जाते हैं। आँसू-भरे नेत्रों से वह मुझे विदा करती है—अनिच्छा से, काँपते हुए हृदय से, जैसे फिर लौटकर नहीं आने का। वह स्मृति मेरे साथ रहती है; मुझे पुनः वहाँ जाने पर बाध्य करती है। क्या कर सकता हूँ मैं ? तुम्हीं बताओ ? मुझे कुछ नहीं सूझता ! मैं स्वयं इस पहेली को सुलझा नहीं सकता......

तुम्हारा अभिन्नहृदय

❀ ❀ ❀

पत्र मैंने कौल साहब को लौटा दिया। कुछ देर तक चुपचाप बैठा उन्हें पत्र सँभालते देखता रहा, विचार-मग्न, उसी कहानी को सोचते हुए। अन्त में पूछना ही पड़ा—'तो आपने इसका क्या उत्तर दिया, कौल साहब ?' वे मेरी ओर देखने लगे, एक भावपूर्ण मुसकराहट से ! "मैंने उसे लिखा उससे विवाह कर लो, उसके साथ रहो।" प्रसन्नता से मैं उछल पड़ा।

"फिर क्या हुआ ?" उनकी उस विचित्र मुसकराहट का रहस्य जानने को मैं अधीर हो उठा था। उस मुसकराहट में अचानक करुणा का भाव झलकने लगा। उठकर वे अपनी आलमारी के पास गए और कागज के दो छोटे से टुकड़े उठाकर मेरे हाथ पर रख दिए। वे किसी अखबार से काटे हुए थे। एक पर लिखा था—

"जुलाई २२—खबर मिली है कि कल रात भँवर में फँस जाने से यमुना नदी में एक किश्ती उलट गई। उसमें एक स्त्री और एक पुरुष थे। मालूम होता है सुहावनी रात्रि में तरंगों पर चन्द्र-क्रीड़ा का नृत्य देखने की चाह उन्हें काल के मुख में खींच ले गई। लाशों का अभी तक पता नहीं चला। खोज हो रही है।" और दूसरे पर लिखा था—"जुलाई २३—परसों रात यमुना में किश्ती उलटने से जो स्त्री-पुरुष डूब गए थे, उनकी लाशें ओखला के पास पाई गई हैं। इतनी देर जल में रहने से दोनों के शरीर बहुत विकृत हो गए थे। दोनों एक-दूसरे से इतनी दृढ़ता से लिपटे हुए थे कि उन्हें अलग न किया जा सका। दोनों के नेत्र बन्द थे। युवक का सिर उस स्त्री के वक्षस्थल पर था और स्त्री का एक गाल युवक के बालों में उलझा हुआ था। लाशों की पहिचान के लिए उन्हें अस्पताल ले जाया गया। चुपचाप मैंने दोनों कागज उन्हें लौटा दिए। उनकी मुसकराहट करुणा में लुप्त हो गई थी और मैं प्रयत्न करने पर भी एक लम्बी साँस न रोक सका—न रोक सका।

हमारी वैदेशिक नीति

श्री सहदेव चक्रवर्ती, विद्यालङ्कार

ऐसा प्रतीत होता है कि संसार के विभिन्न भागों में अमरीका और रूस के मध्य होनेवाले 'शीतयुद्ध' से उत्पन्न स्थिति की गम्भीरता को हम भली भाँति अनुभव नहीं कर पा रहे हैं। सबसे पूर्व हमें ग्रेटब्रिटेन की मनोवृत्ति के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। आजकल मलाया में जो कुछ हो रहा है, उसकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक ही है। निस्सन्देह मलाया में कम्युनिस्ट दल जो कुछ कर रहा है, वह अत्यन्त घातक एवं भयङ्कर

है। उसने हिंसात्मक साधनों का अवलम्बन करके मलाया की शान्ति को हानि पहुँचाई है। इस दल की छापामार युद्ध-प्रणाली का अन्त किया ही जाना चाहिए। यदि इस प्रणाली के नाश के लिए शस्त्रों का भी प्रयोग करना पड़े तो हमें कोई आपत्ति नहीं। किन्तु मलाया में यदि कम्युनिस्टों का दमन वहाँ की कोई राष्ट्रीय सरकार करती तो सारा संसार इस कार्य की सराहना करता। फिर भी क्या अब हम मलाया में ब्रिटिश सरकार की कठोर साम्राज्यवादी नीति का समर्थन कर सकते हैं? मलाया के लिए वह एक विदेशी सरकार है। अतः वहाँ ब्रिटेन की किसी भी नीति का समर्थन नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त उसे न्याय भी नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार ब्रिटिश जनता-द्वारा अफ्रीका में भी जो नीति अपनाई गई है, वह भी सराहनीय नहीं कही जा सकती। हिन्देशिया के प्रति भी ब्रिटिश मनोवृत्ति आपत्तिजनक है। इन्हीं परिस्थितियों में हमें विचार करना है कि क्या हम वस्तुतः ब्रिटेन के मित्र बने रह सकते हैं और राष्ट्रमण्डल में उसके भागीदार भी।

राष्ट्रमण्डल में भारत के प्रवेश से हमारी स्थिति पूर्वापेक्षया अधिक सुदृढ़ मानी जा सकती है और संसार के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति में भी हमारा और ब्रिटेन का पारस्परिक सम्बन्ध उपयोगी सिद्ध हो सकेगा। किन्तु इसके लिए सबसे पहली शर्त यह है कि ब्रिटेन अपनी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति को दूर करके उपनिवेशों की जनता को स्वतन्त्र कर दे; और वहाँ सुदृढ़, शक्तिशाली तथा स्थिर शासन की स्थापना में उन्हें यथोचित सहायता दे। जब तक ब्रिटेन ऐसा नहीं करता, तब तक भारत के लिए राष्ट्रमण्डल की सदस्यता स्वीकार करना विशेष महत्त्व का सिद्ध नहीं होगा। सम्भव है, ब्रिटेन अपनी साम्राज्यवादी नीति पर ही दृढ़ रहे; इस वस्तु-स्थिति में हमारा राष्ट्रमण्डल में प्रवेश करना व्यर्थ सिद्ध होगा और हम संसार के उपहास-भाजन ही बनेंगे। क्योंकि ऐसा करना भारत के घोषित आदर्शों के सर्वथा प्रतिकूल समझा जाएगा। जहाँ तक हमारी वैदेशिक नीति का सम्बन्ध है, वहाँ तक ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध स्थापित करना हमारे लिये निश्चिन्तता का कारण ही बनेगा। इस सम्बन्ध में हमें अपनी वैदेशिक नीति की घोषणा स्पष्टतया कर देनी चाहिए।

अमरीका क्या कर रहा है?

संयुक्तराज्य अमरीका सारे संसार को लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों एवं आदर्शों में विश्वास करने की दुहाई दे रहा है। किन्तु क्या वह स्वयं भी लोकतन्त्र के चरण-चिह्नों पर चल रहा है? क्या वह सारे संसार को इकाई मानकर एक देश के समान दूसरे देश की ओर एक व्यक्ति के समान दूसरे व्यक्ति की सहायता कर रहा है? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक ही है। वह तो पश्चिमी योरप के देशों को ही आर्थिक सहायता देने में रत है। ऐसा क्यों? इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो वह युद्ध से छिन्न-भिन्न पश्चिमी योरप के देशों को उनके पुनर्वास में सहायता देना चाहता है और दूसरे वह उनकी जनता की सोवियत रूस के कम्युनिस्ट प्रभाव से रक्षा करके उन पर अपना आतङ्क लादना चाहता है। चीन में भी अमरीका की नीति घातक रही है। वह तो चीन के साथ मजाक ही करता रहा। उसने मार्शल च्यांगकाई शेक को मिथ्या आश्वासन और आशाएँ दिलाईं और बाद में उसे आपत्ति में डाल दिया। इसका परिणाम एक ही हुआ और वह था मार्शल च्यांग का अपने देश से अप्रत्याशित पलायन।

क्या अमरीका भारत और अन्यान्य देशों को भी चीन की-सी घातक-स्थिति में पड़ा देखना चाहता है? इस प्रश्न का उत्तर अमरीका को देना ही होगा और यही प्रश्न है, जिसके सम्बन्ध में हमारी सरकार के विदेश-विभाग को अमरीका से कोई भी सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व इसके उत्तर की माँग करनी चाहिए। हमें भलीभाँति अनुभव है कि इस समय संसार दो भागों में विभक्त है। संसार के कुछ देश सम्पन्न एवं धनी हैं और दूसरे निर्धन हैं। जहाँ अमरीका जैसे सम्पन्न देश हैं, वहाँ उनकी तुलना में एशिया और अफ्रीका के निर्धन देश भी हैं। क्या ये देश अपनी आर्थिक स्थिति की विषमता के रहते हुए सब समस्याओं के सम्बन्ध में एक हो सकते हैं? यह कदापि सम्भव नहीं। इस समय संसार के राजनीतिज्ञों का एक ही कर्त्तव्य है और वह है संसार को एक करना। क्या अमरीका ने अन्य देशों के स्तर को उन्नत करने के लिए अपने साधनों को जुटाने का विचार किया है? इस प्रश्न का उत्तर अमरीका को अपने हृदय पर हाथ रखकर देना चाहिए।

एशिया को कोई सहायता नहीं।

अमरीका ने अभी तक एशिया के लिए कुछ नहीं किया। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि उसे पश्चिमी योरप के देशों के समान अन्य देशों को भी आर्थिक सहायता देनी चाहिए। आज तक अमरीका ने बर्मा, हिन्देशिया, हिन्दचीन और चीन की रक्षा का विचार नहीं किया। यदि सुदूरपूर्व एशिया के इन देशों की जनता की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक होती तो क्या उनके लिए विध्वंस-प्रिय दलों से सहयोग करना प्रिय होता? हमसे कहा जाता है कि अमरीका और पश्चिमी देशों की जनता के प्रयत्न से पश्चिमी योरप को कम्युनिज्म के पाश से इसलिए बचा लिया गया, क्योंकि अमरीका ने इन देशों को मशीनरी आदि आवश्यक पदार्थों से भरपूर सहायता की है। अमरीका ने एशियाई देशों की यह सहायता क्यों नहीं की? हमारे विचार में भारत-सरकार के विदेश-विभाग को अमरीका तथा उसके अन्य साथी देशों से स्पष्ट कह देना चाहिए कि यदि आप लोग अधिनायकवाद के बढ़ते हुए प्रभाव के विरुद्ध संसार में लोकतन्त्रीय आदर्शों की स्थापना चाहते हैं तो आपको औद्योगिक और आर्थिक दृष्टि से हीन एशियाई तथा अन्य देशों की सब सुलभ साधनों से सहायता करनी चाहिए। हमें तो सहायता की अपेक्षा है और वह अमरीका से ही प्राप्त हो सकती है।

ब्रिटेन के उदारदली समाचार-पत्र 'मानचेस्टर गार्जियन' ने अभी उस दिन अपने अग्रलेख में लिखा था कि "एशिया में हमारी आर्थिक योजना का आधार भारत ही हो सकता है और पश्चिम का हित भारत की सहायता में ही निहित है। चीन में कम्युनिज्म की विजय का एकमात्र यही उत्तर है।" ब्रिटिश अनुदारदली समाचार पत्र 'डेलीमेल' ने लिखा था कि "पश्चिम भारत को एशिया में एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में देखना चाहता है। किन्तु पश्चिम की आर्थिक सहायता के बिना यह सम्भव नहीं हो सकता" इससे स्पष्ट है कि पश्चिम के कुछ लोग यह अनुभव करने लगे हैं कि यदि चीन, हिन्देशिया, मलाया और हिन्दचीन की भाँति हमने भारत की भी सहायता न की तो वह भी कम्युनिस्ट देशों के पाश में फँस जाएगा।

अमरीका के समान रूस का भी एक पक्ष है। वह भी दक्षिण-पूर्वी योरप के अपने साथी देशों की सहायता में रत है और वह पूर्व के देशों को भी सहायता पहुँचाने की एक योजना बना रहा है।

तटस्थता की नीति

अभी तक हम रूसी या अमरीकी गुटों में से किसी एक से भी कोई सहायता प्राप्त नहीं कर सके। इसका एकमात्र कारण हमारी दोनों राजनीतिक गुटों से पृथक् रहने की नीति की घोषणा है। भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने कई बार घोषणा की है कि हम निर्धन रहना स्वीकार करेंगे, किन्तु किसी गुट में सम्मिलित नहीं होंगे। तब हमें क्या करना चाहिए? हमें केवल तटस्थता की नीति के स्थान पर किसी स्पष्ट नीति का अनुसरण करना चाहिए। हमारे प्रधान मन्त्री ने हिन्देशिया के सम्बन्ध में एशियाई देशों का एक सम्मेलन बुलाकर अपनी निश्चित नीति का परिचय भी दिया था। सिवाय रूस के, संसार के सब देशों के समाचारपत्रों ने पं० नेहरू के इस कार्य की सराहना की थी। जहाँ हमें आंग्ल अमरीकी राष्ट्रों के हितों की ओर ध्यान नहीं देना है, वहाँ हमें अपने पड़ौसी दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों को सहायता देने में भी संकोच नहीं करना चाहिए। यदि हमारी सरकार ने हिन्देशिया की स्थिति पर विचार करने के लिए आस्ट्रेलिया, लंका और पाकिस्तान आदि सरकारों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन नई दिल्ली में आयोजित किया तो यह उचित ही था।

अब तो एक ऐसा समय आ पहुँचा है, जब कि भारत को एक विशाल लोकतन्त्रीय क्षेत्र के संगठन के लिए एक स्थायी योजना बनानी चाहिए। इस दिशा में भारत बहुत कुछ कर सकता है। जिस प्रकार सोवियत रूस संसार के विभिन्न देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों का संगठन किए हुए है, उसी प्रकार लोकतन्त्रीय देशों को भी अपनी लोकतन्त्रात्मक समाजवादी विचारधाराओं का प्रचार करना चाहिए। अतः हमारे लिए इस प्रकार की घोषणा करना आवश्यक है कि हम साम्राज्यवाद और अधिनायकवाद के विरुद्ध हैं। इन दोनों पहलुओं में इंग्लैण्ड और रूस अपने को लोकतन्त्रीय नहीं कह सकते। हम किसी भी प्रकार के वर्ण-विद्वेष के विरुद्ध हैं और सब

उपनिवेशों में वहाँ की जनता को स्वाधीन देखना चाहते हैं। इस दिशा में अमरीका और ब्रिटेन को अपने को लोकतन्त्रीय घोषित करने से पूर्व बहुत कुछ उन्नति करनी है। हम आर्थिक अधिनायकवाद और एक देश-द्वारा दूसरे देश पर आर्थिक प्रभुत्व स्थापित करने की परम्परा के भी विरुद्ध हैं। इस दिशा में रूस और अमरीका को अन्ताराष्ट्रिय राजनीति के क्षेत्र में अपने को लोकतन्त्र के समर्थक घोषित करने से पूर्व आर्थिक अधिनायकवाद की अपनी वर्तमान नीति का सर्वथा परित्याग करना होगा।

लोकतन्त्रीय मोर्चा

इस समय राजनीतिक अधिनायकवाद के विरोधी सब देशों को एक लोकतन्त्रीय मोर्चा संगठित करना चाहिए। इस मोर्चे के संगठन के लिए भारत को एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के उन सब देशों को आमन्त्रित करना चाहिए, जो लोकतन्त्र के सिद्धान्तों पर अवलम्बित शान्ति के लिए पारस्परिक सहयोग-द्वारा कार्य करने के इच्छुक हों।

अभी संसार के कई असभ्य देशों में काले कहे जाने वाले लोग बसते हैं जो अभी तक चिरकाल से साम्राज्यवादी जुए के नीचे पिस रहे हैं। अब वे पान-अफ्रीकन कांग्रेस और एशियाटिक अफ्रीकन पीपल कांग्रेस आदि अपनी राष्ट्रीय संस्थाओं के निर्माण एवं संगठन में रत हैं। अमरीका और पश्चिमी देशों की सरकारों को इन काले लोगों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्पर्क स्थापित करते हुए उनकी स्वाधीनता को प्रमाणित करना चाहिए तथा उपनिवेशों की साम्राज्यवादी शक्तियों को अपने साम्राज्यवादी हथकण्डों के प्रयोग से रोकना चाहिए और संयुक्त-राष्ट्र-संघ की ओर से इन निर्धन, निरीह एवं निराश्रित काले लोगों को यथोचित परामर्श देना चाहिए। यदि अमरीका और पश्चिमी योरप के देश ऐसा करने में असफल रहे तो वह दिन दूर नहीं जब कि समस्त संसार सोवियत रूस की विचारधारा का समर्थक और अनुयायी बन जाएगा।

प्राप्ति

कुमारी प्रभा पारीक

'निला! ओ निला!' माँ ने कई बार पुकारा। निला का कोई उत्तर न मिला। माँ ने झिड़ककर कहा—"ओ निला! नहीं सुनेगी क्या?" परन्तु निला का कोई उत्तर फिर भी न मिला। छोटी बहिन ने कहा—"माँ, निला तो अपने ठाकुर के पास आँखें मूँदे बैठी है, वह बोलती ही नहीं।" माँ कुछ गम्भीर हो निला के पास चली गई। सप्तवर्षीय बालिका पृथ्वी पर आसन लगाए, नेत्र मूँदे बैठी थी। उसके सम्मुख संगमरमर के सिंहासन पर चन्दन-चर्चित काले-श्वेत पत्थर रक्खे थे। माँ कुछ पल खड़ी रहीं, फिर उन्होंने पुकारा "निला, चल बेटी। कुछ खाएगी नहीं?" परन्तु निला ने नेत्र न खोले। बालिका के कृष्ण वर्ण मुख पर हठीली छाप और भी गहरी हो गई। छोटी बहिन कुछ न समझ सकी। उसको निला की कठोर-शान्त मुद्रा पर कौतूहल हो रहा था। उसने झट निला के कन्धों को झकझोरकर कहा—"जीजी, आँखें खोल।" निला ने आँखें खोलीं। उसके नेत्र विस्फारित हो चारों ओर के वातावरण में सूने-से विचर रहे थे—जैसे कोई सुषुप्ति के स्वप्न को जाग्रत् अवस्था में खोज रहा हो।

नेत्रों के उस भाव को देख माँ ने भयविह्वल हो कहा—"मेरी बिटिया, आज कुछ न खाएगी?" परन्तु निला जैसे अब भी कोई वस्तु खोज रही थी। माँ के स्वर से कुछ ज्ञान हुआ। कुछ उत्तर न दे रोने लगी। माँ ने बच्चे को बहलाने के सभी साधनों का प्रयोग किया, परन्तु वह न चुप हुई। वह पृथ्वी पर लेट गई और रोते-रोते उसे निद्रा ने आ घेरा।

निला मेरे पड़ौसी-परिवार की कन्या थी। प्राचीन ब्राह्मण परिवार के संस्कारों ने निला के बचपन में ही भक्ति-भावना भर दी थी। जन्मजात संस्कारों के साथ नित्य ही पिता की अर्चना में भगवान् के सबका नियंता कर्ता होने की चर्चा तथा भगवान् के अनन्त सौन्दर्यमूर्ति होने का भाव निला के हृदय में और वातावरण में भक्ति-

भरने लगा। छोटी-सी बालिका पिता-द्वारा बताए पूजा-मार्ग पर चलने लगी। उसके बाल हृदय का समस्त औत्सुक्य, समस्त भोला स्नेह ठाकुर में ही बहने लगा। माता-पिता और पड़ौसी सभी निला को असाधारण दृष्टि से देखते थे। निला और भी अपने ठाकुर में रहने लगी। उसका जागर्ति की क्रिया और सुषुप्ति के स्वप्न ठाकुर में ही थे। माता-पिता कहते, हमारी निला देवी है। वह साधारण बच्चों को उसके पास न जाने देते। निला भी अपने को ठाकुर की कह किसी से न मिलती। उसके मन में एक विचित्र घृणा व्याप जाती। अवस्था के साथ ही उसकी भक्ति भावना अथवा संस्कार-जनित मनोविकार बढ़ता ही जाता था।

प्रबल संस्कारी होने के कारण पिता अपनी पुत्री की मनोभावना समझते थे। वे जानते थे कि निला संसार से पृथक्, साधारण संसारी मनोविज्ञान से दूर केवल ठाकुर के स्वप्न में रत होनेवाली बालिका है। यों उसको पहिचानकर भी वे विवाह का धार्मिक संस्कार पूरा करना चाहते थे। विवाह का अवसर भी आ गया। सोलहवर्षीय निला ठाकुर में रत न तो संस्कार का विरोध ही कर रही थी और न प्रफुल्ल मन से उसमें सहयोग ही दे रही थी। कदाचित् वह अपनी अवस्था के बालक-बालिकाओं में न रहने के कारण विवाह-सम्बन्धी भावों से अनभिज्ञ थी। उसके देवीत्व के हर्ष के कारण कोई ऐसी चर्चा चला भी न सकता था। माता-पिता अब तक निला के देवीत्व में हर्ष और मान अनुभव करते थे परन्तु अब उन्हें निला की ये बातें विचित्र-सी लगने लगीं। अब वे उसके संस्कार बदलकर उसे गृहलक्ष्मी के पद से विभूषित करना चाहते थे। परन्तु निला अब मनुष्य की छाया से भी बचकर अपने ठाकुर की केवल ठाकुर की होना चाहती थी। उसमें यौवन के संपूर्ण चिह्न प्रस्फुटित हो चुके थे और कदाचित् मनोभाव भी। बसन्त की सुकोमलता, अपने हृदय में किसी को अपना कहने की एकांत कामना सब ठाकुर में अर्पण कर रही थी। आतुर मन ढल-ढल कर नित्य ही ठाकुर के स्नेह में बह रहा था। मनमानी करने का यौवन का हठ निला में वर्तमान था। यदि कोई उसके ठाकुर की अर्चना में बाधक होता तो वह क्रोध से तामस हो उठती।

विवाह-बेला में धूम मची थी। जगमगाता घर वर के स्वागत के लिए ओठों पर हँसी लिए था। निला अपने ठाकुर को ले गंगातट के एकान्त को चल दी। माँ ने रोका। निला को सुसज्जित कर जयमाल डालने के लिए ले जाया गया। स्तब्ध-मौन निला खोई-सी चल दी। द्वार-शहनाई के अंचल में छिपा यौवन शृंगार-सा रसमय हो उठा। निला द्वार तक पहुँची। मंगल गान आरम्भ हो गए। द्वार के पास पहुँचते ही निला ठिठककर खड़ी हो गई। स्तब्ध हो विस्फारित नेत्रों से न जाने क्या देखती रही। सहसा जयमाल फेंक जगमगाते दीपकों को बुझाती चल दी। कुछ समय के लिए सभी आश्चर्यचकित खड़े रह गए। किसी की समझ में न आया कि निला यह क्या कर गई। माँ निला को खोजने लगी। घर को अन्धकारमय बना कौन सा प्रकाश खोजने के लिए निला चल दी, कोई भी न समझ पा रहा था। घर में खोजा परन्तु निला का कहीं पता न था। ठाकुर का सिंहासन भी था परन्तु नित्य की ध्यान-मग्ना निला ठाकुर को प्राणों में निवसित कर मधुर-मधुर तपने की साधना छोड़ कहाँ चली गई! उसका असाधारण मनोविज्ञान कोई भी न समझ सका। मानव मन से दूर रहने के कारण उसके असाधारण मनोविज्ञान पर कोई युक्ति भी न जमती थी। एक पहेली थी। क्या निराकार नैश में निला की साकार प्रतिमा ठाकुर में मिल गई।

× × ×

यदि वर्तमान के प्रति असंतोष और रहस्य के प्रति कौतूहल न होता तो कदाचित् विश्व की कुसुम-सी कमनीय सुरभित भावना, नित्य नए सुखों की खोज और मानव-जीवन के नए पहलुओं का उद्घाटन न होता। विलास-परिचर्या के पिंजरे में घिरा मेरा मन बन्दी पक्षी की भाँति उन्मुक्ति-कामना से छटपटाने लगा। सुख की सीमा के बाहर मैं प्रकृति के कंटकों में फँसे सुमन के लिए लालायित हो उठी। उसी समय मेरे भाई को नए वन का मानचित्र बनाने को भेजा जा रहा था। आग्रह कर उनके साथ जाने को तत्पर हो गई।

दिन भर वन का निरीक्षण करने पर भी भय्या को मानचित्र के लिए केन्द्र-बिन्दु न मिला। तरु-शाखाओं पर तैरती सन्ध्या की किरणें दिन के अवसान में जा मिलीं। वन अपनी बीहड़ता में साँय-साँय कर रहा था। खोजने पर भी मार्ग का कोई पता न लग रहा था। तरु-छाया और अन्धकार की सन्धि ने वहीं रुककर कोई प्रत्याशित आश्रय

खोजने को विवश किया। मकान की तो कोई आशा न थी, थोड़ा सा खुला मैदान ही हमारी आशा का सम्बल था। एक झुरमुट में झाँकने पर कहीं टिमटिमाता प्रकाश दिखाई दिया। सघन अंधकार में प्रकाश की दूरी का अनुमान दुस्तर था। फिर भी हम चले। कुछ ही दूर प्रकाश आलम्ब मिल गया। प्रकाश पहिले से अधिक प्रखर हो किसी रन्ध्र से आ रहा था। निकट आने पर पता लगा, प्रकाश आलम्ब एक खंडहर था। खंडहर अपने अन्तिम दिनों की राह पर था। दीवारों में उगी घास और जंगली पौदे पृथ्वी की ओर झुके किसी दिन वन की वनाली में मिलने की चाह में थे। उस निर्जन सनसनाते वन में धीमे प्रकाश में मानवता की रुचि देख मुझे आश्चर्य हुआ। उसी समय मैंने भैया से कहा—"भैया, मैं कहती थी न यदि हम थोड़ा-सा भी आत्मबल, आत्म-विश्वास रक्खें तो अवश्य मार्ग पा जाएँ।" भैया का ध्यान कदाचित् अपने मानचित्र में था और विपरीत परिस्थिति के कारण अशान्त भी। उन्होंने केवल 'हूँ' कहकर टाल दिया। थके होने के कारण आश्रयस्थान की ओर देखा। सहसा खंडहर का आँगन दीपकों की ज्योति से जगमगा उठा। प्रकाश के सहारे खंडहर के अग्रभाग में लकड़ी का द्वार दिखा। द्वार ठेला। आँगन के पश्चात् एक लम्बा प्रकोष्ठ था। उसी में दीपकों की पंक्ति थी। एक श्यामवर्ण स्त्री न जाने किस विचार में खड़ी थी। शरीर पर बहुत कम वस्त्र थे। वस्त्रों से फूटती हुई यौवन-कान्ति किसी नवीन प्रस्फुटित अछूती कली सी खिल रही थी! मुख पर अद्भुत दृढ़ता थी। मुख के भाव से ही प्रतीत होता था कि रमणी अवश्य ही संसार की भावनाओं से पलायन कर आई है और अलक्ष्य को पाने को विक्षिप्त है। हम खड़े उसकी भावना को पहिचानने का प्रयत्न कर रहे थे। सहसा युवती ने अपने पार्श्व का दीपक बुझा दिया और फिर समस्त पाँति को बुझाती चली गई। मैं उसके विचित्र व्यवहार पर सोच रही थी कि युवती मर्मभरी चीत्कार कर उठी। वन की शून्यता को कम्पित करता हुआ स्वर, वायु में गूँजता उस खंडहर में व्यथा भर श्वास-सा फूटने लगा। मैं सहसा भैया के निकट आ गई। स्त्री का रुदन कम्पित स्वर में फूट रहा था।

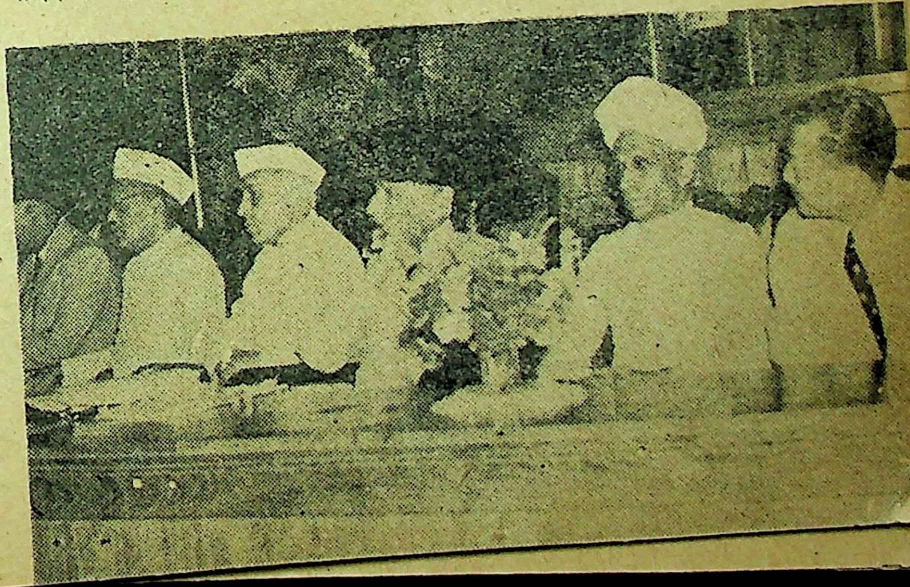
"ओ तुम कहाँ गए? कहाँ? कहाँ? देखते नहीं, दीप जलाती हूँ, दीप बुझाती हूँ। सब छोड़कर तुम्हारी छवि के पीछे यहाँ तक चली आई। और तुम यहीं से छोड़कर चले गए। दीप जलाती हूँ, बुझाती हूँ, पर तुम नहीं आते। एक दिन भी नहीं आए! हाय!" कहकर स्त्री पुनः करुणतर स्वर में वन की शून्यता में रुदन करने लगी। खंडहर के प्रान्तर में अन्धकार में फैली अन्तर-व्यथा कण-कण के अस्तित्व में तड़प रही थी। वायुलहरी के तारों पर खेलती करुण रागिनी शून्यता में मिलती जा रही थी। रुदन-स्वर बन्द हो गया था परन्तु दुःखप्लावित हृदय की कम्पन जैसे दूर जा क्षितिज पर घिरी वृक्षाली में मिल रही थी। परन्तु अन्तर भाग में मृत्यु जैसी स्तब्धता और अन्धकार छा गया था। पद-चाप के स्वर से ऐसा प्रतीत हुआ जैसे स्त्री बैठ गई है, अथवा पृथ्वी पर लेट गई है। इतने में ही एक धीमा प्रकाश स्त्री के पीछे से आता दिखाई दिया। एक वृद्ध पुरुष स्त्री के निकट रुक गया। वृद्ध ने स्नेहसिक्त स्वर में पुकारा—'उठ बिटिया! निला!" निला नाम सुनते ही मेरी स्मृति-शृंखला झनझना उठी। स्त्री शान्त हो गई थी। वृद्ध ने फिर कहा—"जा बिटिया, अपने आसन पर सो जा।" स्त्री बेसुध-विस्मृत हो शरीर से पृथक् किसी लोक में थी। श्वास-गति से लग रहा था कि दिन भर का विकल सन-सनाता पवन संध्या की गति में मन्द हो शान्ति-अंचल ढूँढ़ रहा है।

वृद्ध को सम्मुख देखकर भी हम अभिवादन या परिचय का शब्द न कह सके थे। वृद्ध ने जब दीपक उठा-कर सम्मुख देखा तब भैया ने हाथ जोड़ दिए। वृद्ध दीपक ले हमारी ओर बढ़ आया था। उसकी झुकी पलकें ऊपर उठ मानों प्रश्न कर रही थीं कि इस निर्जन वन में आने का साहस हमने क्यों किया। मैंने कहा—"बाबा, हम मार्ग भूल जाने के कारण यहाँ आ भटके हैं। क्या रात भर के लिए आश्रय मिल सकेगा?" वृद्ध ने ओठों पर अंगुली रखकर मौन होने का संकेत किया। पश्चात् खंडहर से बाहर आने को संकेत किया। भयंकर एकाकीपन और अन्धकार में वृद्ध की मौनता से प्राण ऐसे ही जड़ होने लगे थे, जैसे शीत का सनसनाता पवन शरीर को कँपा देता है। हम जड़वत् वृद्ध के पीछे चल दिए। खंडहर के बाहर आकर सब रुक गए। इस उलझन में भी शरीर के वशीभूत जड़ को और स्वार्थ को न भुला सके थे। सनसनाते निर्जन वन की फू-कार से घबड़ाकर मन में प्रश्न



स्वागत

लंदन के भारतीयों के बीच पंडित नेहरू



राष्ट्रीय सहयोग-सम्मेलन

भारतीय राष्ट्रीय सहयोग-सम्मेलन की बैठक पिछले दिनों दिल्ली में श्री राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में संपन्न हुई। सम्मेलन में पंडित नेहरू और मौलाना आजाद आदि भी उपस्थित थे।



लंदन में

ब्रिटेनस्थित भारतीय प्रतिनिधि श्री मेनन के साथ पंडित नेहरू और श्रीमती इन्दिरा गांधी।

पुनर्मिलन

लंदन में ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल-सम्बन्धी सम्मेलन के लिए पंडित नेहरू और सर स्टेफर्ड क्रिप्स परस्पर बातें करते हुए जा रहे हैं।



उठा–क्या इस खंडहर से भी निराश्रित हो वन्य पशुओं का आहार बनना होगा। मोह से एक बार शरीर काँप गया। वृद्ध ने धीमे शान्त स्वर में पूछा--"आप लोगों को आश्रय ही चाहिए या भोजनादि भी?"

भैया ने कहा--"केवल आश्रय ही; भोजन का कष्ट न करें। प्रातः ही तो हम चल देंगे।" वृद्ध ने कोई जिज्ञासा न दिखाई। हम लोगों को वह खंडहर के पिछले भाग में ले गया जहाँ छोटी-छोटी कोटरियाँ थीं। वृद्ध ने बिछौने पर बैठने का संकेत किया। हम लोग बैठ गए। वहाँ पर गृहस्थी का सभी सामान अल्प मात्रा में जुटा हुआ था। गृहस्थ का सामान और वृद्ध का गेरुआ वस्त्र देखकर शंका हुई कि यह वृद्ध अवश्य ही आध्यात्मिक नहीं है। यदि नहीं है तो फिर संसार में गृहस्थ का उपभोग न करके इस भयंकर अन्धकार की कालिमा में प्रकृति के खुले भैरव रूप में क्यों गृहस्थी सजा रक्खी है? मेरे नेत्र वृद्ध के गेरुआ वस्त्रों में छिपे रहस्य की खोज में उठ गए। वृद्ध शान्त भाव से भोजन बनाने का उपक्रम कर रहा था। भैया चुप थे। मुझे स्त्री का स्मरण आया। क्या वह उसी अवस्था में पड़ी होगी। निला—क्या मेरी पड़ोसिन भक्तिन निला है। यह वृद्ध क्यों कर इसे यहाँ लाया। क्या दुराचार के लिए पकड़ लाया है! परन्तु उसने तो स्पष्ट ही बिटिया कहकर पुकारा था। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि भैया क्यों नहीं निला के लिए जिज्ञासा कर रहे हैं। क्यों नहीं वृद्ध से समस्त रहस्य पूछ लेते। इस निर्जन स्थान में दीप जलाना, फिर बुझा देना, चीत्कारकर वन के हृदय को भी हिला डालना, यह सब क्या है? अन्त में मैं अपनी जिज्ञासा न रोक सकी। कह उठी–"बाबा, आप उन्हें ऐसी अवस्था में छोड़ आए हैं। हमारे भोजन की चिन्ता न करें, उन्हें ही सम्भालें।"

वृद्ध ने पलकें झुकाए ही उत्तर दिया–"इस समय बोलना ठीक नहीं। वह स्वयं ठीक हो जाएगी।"

वृद्ध का उत्तर सुनकर मुझे निश्चय हो गया कि यह घटना प्रथम बार नहीं हुई। इसकी आवृत्ति होती ही रहती है। मैंने उत्सुकतावश पूछा—"बाबा उनकी ऐसी दशा क्यों हो जाती है?" इस बार भय्या भी बोल उठे–"मुझे तो यह स्त्री बड़ी विचित्र जान पड़ती है।" वृद्ध ने उसी निश्चितस्वर में कहा–"हाँ, सृष्टि में ऐसे जीव का होना असम्भव नहीं तो विचित्र अवश्य है।" प्रश्न का उत्तर इतने संक्षेप में सुन मुझे संतोष न हुआ। मैं उस रहस्य के अन्तर में छिपी किसी गूढ़ बात की खोज में थी। मैंने फिर प्रश्न किया—"आप दोनों को इस स्थान में आए कितना समय हुआ? उनकी मानसिक दशा किस प्रकार ऐसी हो गई?"

वृद्ध ने कुछ स्मरण करते हुए कहा–"मुझे यहाँ आए पच्चीस वर्ष हो गए। निला दस वर्ष पूर्व ही यहाँ आई थी। उसकी मानसिक दशा किस प्रकार ऐसी हो गई, मैं स्वयं नहीं समझ सका। परन्तु, हाँ, उसके आगमन से अब तक की दशा देख मुझे उसके समक्ष या किसी महत् सत्ता के समक्ष सिर झुकाना पड़ा। जिस प्रकार माया के अवगुण्ठन से उन्मुक्त हो संसार को त्यागना कठिन था, उसी प्रकार इच्छा होने पर भी इस पगली का मोह त्याग वन की निर्जनता को त्याग जननगरी में प्रवेश करना कठिन है। उसके पागलपन ने मुझे बन्दी बना लिया है। अन्यथा मैं इस वन को त्याग समाज की चहल-पहल में खो गया होता।" मैंने पूछा—"आपको इसने कैसे रोक लिया?" वृद्ध ने कहा—"मुझे? मैं जिस कड़ी साधना की आकांक्षा कर उस ओंकार ब्रह्म को खोजने आया था, वह मुझसे आकाश के सितारों-जैसा दूर भागता गया। आकाश के सितारे तो दीख जाते हैं परन्तु, माया के आवरण ने चैतन्य को इस प्रकार आवृत्त कर लिया कि मुझे ब्रह्म की सम्भावना में भी सन्देह होने लगा। शनैः शनैः मुझे लगा, ब्रह्म कुछ नहीं, अधिदैव कुछ नहीं। यदि कुछ है तो वैभव-विलास में चमचमाता संसार-भोग का माधुर्य, धन का आनन्द। मुझे लगा, संसार में ही ऐसा छलछलमाता मद्य है, जिसे पीकर तृप्ति हो सकती है। शेष मृग-मरीचिका है। कंचन-कामिनी और कादंबिनी के रूप ने मुझे ऐसा मोह लिया कि मैं वैराग्य का उपहास करने लगा। संसार की चहल-पहल में लौट जाने को उद्यत हो गया। उसी समय यह आ गई।"

भय्या ने पूछा, "यह यहाँ कैसे आ गई?"

वृद्ध ने अपनी कथा सम्बद्ध रखते हुए कहा—"मेरे मन में माया और ब्रह्म का कोई संघर्ष न रहा था। मैं पुनः समाज में अपना स्थान पाने के विचार में मग्न था। सन्ध्या के धीमे पग पश्चिम में डूब रहे थे। अन्धकार नभ में तैरता चला आ रहा था। मुझे ज्ञात नहीं कब अन्धियारी छा गई। मैं नव आशाओं, माया

के नव रूपों में उलझा कुछ भी न देख रहा था। सहसा आज जैसा ही मर्मभेदी रुदन इस वन में गूँज उठा। संसारी आशाओं में उलझे हुए हास्यमय भविष्य पर रुदन का आघात सा लगा। रुदन की मानवी अनुभूति ने मुझे खींच लिया। अन्धकार की पृष्ठभूमि पर अन्धकार जैसा ही मानव शरीर दीखा। उस समय तक यह मूर्च्छित हो गई थी। मैं इसे उठाकर खँडहर में लाया। दीपक जलाकर देखा, युवती स्त्री का शरीर था। एक दो घण्टे पश्चात् इसकी मूर्छा दूर हो गई और यह चिल्लाने लगी "हाय कहाँ हो! तुमने मुझको छला—यहाँ लाकर छोड़ गए। क्यों? क्यों? कहाँ हो?" यह पगली-सी चीखने लगी। मैंने सोचा, अवश्य कोई पापी-दुराचारी अबोध भोली बाला को आत्मतृप्ति के पश्चात् यहाँ छोड़ गया है। क्रोध और घृणा से मेरी भृकुटी तन गई। प्रतिशोध का भाव उदय हुआ। मैंने ढाढ़स देते हुए कहा "बेटी! धैर्य रक्खो, मैं खोजूँगा। कौन तुम्हें छोड़ गया है?"

"तुम खोजोगे? खोज दो, मेरे बाबा, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ।" इसका क्रन्दन आर्तवाणी में परिवर्तित हो गया। मैंने पूछा "कौन है वह, बिटिया?" "वह मुझे दीखे थे। बहुत सुन्दर हैं। हाथ नहीं, पैर नहीं। केवल हँसता हँसता ज्योतिर्मय स्वरूप था। आह, कितना सलोना? मैं पीछे भागती आई पर वह यहाँ खो गया। नहीं! छिप गया। हाय! कहाँ छिपा? कहाँ? कहाँ?" कहकर चीत्कार कर उठी। मैं समझ गया; इसको मोहने-वाला मनुष्य नहीं; शरीरी नहीं वह इसके हृदय, मस्तिष्क और आत्मा के चैतन्य से उपजा रूप है। धैर्य दिलाने के लिए कहा—"बिटिया, धैर्य रक्खो; अवश्य मिलेगा।"

"नहीं, तुम न खोज सकोगे। तुमने देखा ही कहाँ है! मैं स्वयं ही खोजूँगी।" कहकर भागने लगी। मैंने कहा—"भाग न, बिटिया! वह स्वयं यहीं आ जाएँगे।"

"आ जाएँगे, बाबा! सच! तो मैं यहीं बैठती हूँ! राह देखूँगी।" कह यह खुले आँगन में बैठी रही। समझाने पर भी भीतर न गई। किस समय इसे निद्रा ने आ घेरा, शान्ति दी; मुझे मालूम नहीं। मौन सितारों की हिलती-डुलती छाया में कितनी देर तक इसके निद्राच्छन्न शरीर को देख सोचता रहा—यदि ईश नाम की कोई भी शक्ति नहीं तो फिर इस बालिका के हृदय में इतनी भक्ति, खोजने की इतनी विकलता, मिलने की इतनी चाह, कैसे आई? क्या यह बालिका विक्षिप्त है या मेरी बुद्धि भ्रमवश ब्रह्म के सत्य को तज तम में घुलमिल विलास खोज रही है? तारों की सघन छाया में गम्भीर नीलाकाश को देख मेरे मन में एक अप्रत्याशित दुःख चुभने लगा। ऐसा दुःख जो मेरे वैभव-विलास के स्वप्नों पर हँस रहा था। मैं नेत्र मूँद प्राणों को भृकुटि के मध्य ला चित्त एकाग्र करना चाहता था, परन्तु मन चंचल हो बिखर रहा था।

प्रातःकाल के मन्द समीर में मेरा मस्तिष्क स्वप्नपूर्ण तरंगों में तैर रहा था। इसके विकल पगों की आहट से निद्रा टूटी। आँख खोलते ही इसके भविष्य की नवीन चिन्ता व्याप गई। इसको कहाँ पहुँचाना होगा? यदि न गई तो इसके रहन-सहन का पूर्ण प्रबन्ध करना होगा। मैंने पूछा, "बिटिया तू कहाँ जाएगी? मैं पहुँचा दूँगा।"

"मैं कहीं न जाऊँगी। वह यहीं खोया है। मैं उसको ढूढूँगी--कब तक छुपेगा! जाती हूँ, अभी खोजूँगी।" चिल्लाती हुई खँडहर के बाहर भाग गई। इसके विकल वाक्यों से वन मानों रो उठा। मैंने अपना समस्त सामान खोल डाला। सोचा, यह पगली जब तक यहाँ से न जाएगी; मुझे रहना ही होगा। और रहकर उसके भोजन का, रहने का प्रबन्ध करना होगा। मैंने पूछा, "तूने जो रूप देखा था, वह कैसा था, बिटिया?" "वह रूप! वह रूप।" कहकर वह हँसने लगी। फिर उसने रूप को अंकित करने का प्रयास किया, कोई आकार बनाने की चेष्टा की। परन्तु कुछ उल्टी सीधी रेखाएँ रह गईं। उस दिन से इसे धुन लग गई। जब स्थान या पत्र पाती है अंकन करती रहती है।" वृद्ध ने कोने में पड़े ढेर की ओर इंगित कर कहा "यह सब उसी का प्रयास है। इसे अब इन पत्तों की कोई चिन्ता नहीं है। पर मैं चाहकर भी इन्हें जला नहीं पाता। मुझे लगता है कि यह प्रयास है तो किसी महान् आत्मा के अंकन का ही।"

मैंने कुछ पृष्ठ उठा लिए। खोलकर देखा वास्तव में वह रेखाएँ न था। वह रंग से आलोक और छाया में कोई रूप उठाने का प्रयास था। रंगों से कोई रूप न बन सका था, परन्तु जिस अनुपात से रंग फैलाए गए थे, उससे लग रहा था कि कोई अनुपम प्रकाश इस छाया के मध्य उठाने का प्रयास था। कई पृष्ठ उठाए, सबमें छाया का स्थान बदला था परन्तु आलोक से किसी प्रकाश

को उठाने का ढंग वही था। मानों किसी चित्रकार ने अपना उद्देश्य दर्शाने के लिए चित्रकला के भिन्न भिन्न नियमों का पालन किया हो। मैंने वृद्ध से पूछा—"यह अब भी इसी प्रकार वन में भागती है और चीत्कार करती है?"

वृद्ध ने कहा—"नहीं। इसकी दशा स्वयं ही बदलती गई। पहिले जो विकलता इसमें थी, वह फिर करुणा में बदलने लगी। बाहर भागना बन्द कर दिया। कहने लगी—"मैं कहीं न जाऊँगी। वे ही मेरे पास आएँगे। मैं उन्हें बुलाकर रहूँगी।" मैंने सोचा—अब इसकी विक्षिप्तता दूर हो गई। कदाचित् यह लौट जाए। मैंने इससे कहा—"बिटिया, वे तो हर स्थान पर हैं। लौट चल, वे तुझे घर में ही मिल जाएँगे।"

इसने कहा—'नहीं; मैं न जाऊँगी। वे कभी वहाँ न जाएँगे। मुझे वहाँ एक दिन भी न मिले। जब मिले तो इस वन में ले आए। मिलेंगे तो यहीं। यहीं पर तो खोए थे।" मैंने कहा "बिटिया, वे फिर वहीं भाग गए होंगे।"

इसने दृढ़ता से कहा—"नहीं! वहाँ क्यों जाएँगे। वहाँ उन्हें कौन चाहता है? किसने देखा है?" मैंने कई बार सोचा, यह तो यहाँ से न जाएगी। मैं कब तक बन्धन में फँसूँगा। छोड़कर भी चलने को उद्यत हुआ। परन्तु मेरा हृदय करुणा से भर गया। इसको तो खाने-पीने की भी सुधि नहीं है। यह यों ही मर जाएगी। मैं रुक गया। दो-तीन वर्ष पश्चात् इसने खँडहर से बाहर जाना बन्द कर दिया। प्रलाप भी कम हो गया। अधिक समय तो यह चुप रहने लगी या चित्र बनाने में संलग्न रहती। चित्र बनाते समय यह कुछ-न-कुछ बोलती रहती थी। परन्तु उतना चीत्कार न करती थी। खाने-पीने और वस्त्रों की सुधि खोती जा रही थी। एक दिन मैं आवश्यक वस्तु लेने बाहर चला गया। सन्ध्या-समय लौटकर आया तो देखा वह दीपकों को प्रज्वलित कर रही थी। मैं आश्चर्य में रह गया। मुझे प्रसन्नता भी हुई क्योंकि आज तक संसार के किसी व्यक्ति को ऐसा करते न देखा था। वह जो कुछ करती थी, अपने विक्षिप्तपन में दर्शन के लिए। मैं संसार-त्यागी होकर भी उसके संसारी प्रयत्नों पर प्रसन्न था। परन्तु कुछ समय पश्चात् इसने दीपकों को बुझाना आरम्भ कर दिया और बुझाकर इसी प्रकार प्रलाप करने लगी। इसके प्रलाप से मैं इतना ही समझ पाता हूँ कि किसी ऐसे जगमगाते स्थान पर ही दर्शन हुए थे। दीपकों की जगमगाहट को बुझा इसने वह मूर्ति देखनी चाही थी। इसे वह मूर्ति इस वन की ओर देख पड़ी, अतः यह यहाँ भाग आई। यह प्रायः इसी प्रकार दीप जलाती है, प्रलाप करती है और दुःख-विह्वल हो मूर्च्छित हो जाती है। मुझे इसका भार सँभालते-सँभालते इससे मोह हो गया है। अब किसी दूसरे पर इसका भार छोड़कर मैं निश्चिंत नहीं हो पाता। यह स्वयं निर्बन्ध-निर्मोही हो मुझे बन्धन में बाँध बैठी है। अपने से अधिक इसके लिए चिन्ता करनी पड़ती है। जिस मोह, भ्रम, और सुख दुःख की शृंखला को मैंने तोड़ना चाहा था वह इसके रूप में और भी बँध गई। इसे छोड़कर कैसे जाऊँ?"

वृद्ध ने साँस ली। भय्या ने कहा—"यह तो पगली है। क्यों नहीं इसको पकड़कर नगर में ले चलते; जैसी यह यहाँ है, वैसी ही वहाँ भी रहेगी उसका विकार तो दूर होने से रहा। फिर आप क्यों कष्ट करते हैं?"

वृद्ध की झुर्री पड़ी पलकें ऊपर उठ गईं। उसने भय्या की ओर देखा, मानों कोई आघात पहुँचाया हो। कुछ तीव्र स्वर में कहा—"वह पगली है! कौन से सुख के लिए? वह केवल पगली है एक के लिए। जिसे हम नहीं समझ पाते, जिसे पाने का स्वप्न भी नहीं देखते। किन्तु वही आदि और अन्त है। लय और प्रलय है। पगली ने केवल एक ओर देखा है वही उसका साध्य है। विक्षिप्तता उसकी साधना है। साधना का रूप भिन्न-भिन्न होता है। किसी दिन यह पगली अपने पागलपन में ही सब कुछ पा जाएगी।"

भोजन के उपरान्त सब निद्रा में मग्न हो गए। आँखें खुली तो नभ के कोने में ललिमा छाई थी। भय्या ने उठते ही कहा, "चलो"। उस विचित्र नारी को, अपनी पूर्व-परिचिता पड़ोसिन निला को, देखने की इच्छा हुई; परन्तु साहस न कर सकी। विचित्र आकर्षण मुझे राह से खींच रहा था। घर पहुँचने पर इच्छा हुई कि पड़ोसी-परिवार को सूचना दे दूँ कि दीप बुझाकर सहसा चली जानेवाली निला किस विचित्र साधना में लीन है। फिर विचार आया कि वे स्थूल के पुजारी हैं कहीं नीला की साधना में बाधक न हो जाएँ।

वर्षों पश्चात् भय्या का मानचित्र पूरा हुआ। अन्तिम बार उसकी परीक्षा के लिए भय्या को जाना था। मैं भी

साथ चल दी। वनस्थली सदैव ही मेरे लिए जटिल और सघन रूप में खेलती प्रकृति की रंगभूमि रही। उस रूप की जटिलता और सघनता में मैं उलझ जाया करती थी। परन्तु अबकी बार मेरा मन प्रकृति के रूप को देखने के लिए लालायित न था। मेरा मन वनस्थित उस खँडहर की सजीव प्रतिमा निला में उलझा था, जो प्रकृति के सघन और जटिल रूप के अवगुण्ठन के परे उत्तम पुरुष का स्वरूप देखने के लिए विक्षिप्त थी।

खँडहर अब अपने असली खंडित रूप में कम दिखाई देता था। वनैले पौधों ने उसे ढक वन के तादात्म्य रूप में घेर लिया था। मैंने धीमे पग से खँडहर में प्रवेश किया। घुसते ही देखा, निला ध्यानमुद्रा में प्रतिमा-सी बैठी थी। अंग-प्रत्यंग मूर्तिवत् स्थिर थे। झुकी हुई बड़ी पलकों के नीचे अश्रुबिन्दु झलक रहे थे, मानों प्रातः की भीगी कोई कमल-पँखुरी अपनी अंजलि में अर्चना-जल लिए हो। उसके मुख पर पहिले जैसी विक्षिप्तता और व्याकुलता न थी। शान्ति-स्निग्ध दुःख के अन्तर पर खेलती आनन्द-लहरी ने उसके मुख पर गम्भीर भाव अंकित कर दिया था। कितनी ही देर तक मैं बैठी देखती रही। कौतूहल और श्रद्धा के मध्य उलझता हुआ मन कभी निला के भाव-जगत् को खोजने लगता और कभी भावों से भरी निला के पगों पर झुकने लगता। अब तक मेरा ध्यान निला की ध्यानमग्ना मूर्ति से न हटा था। वृद्ध के पगों की आहट से मैं सजग हो गई। पहिले के भाँति वृद्ध खँडहर के बाहर चला गया। मैं संकेत पा पीछे पीछे चली गई। वृद्ध मुझे भूला न था। पहिला परिचय उसे याद था। मैंने पूछा –"बाबा! निला तो बदली हुई सी प्रतीत होती है। उसकी विक्षिप्तता गम्भीरता में परिणत हो गई है।"

वृद्ध ने कहा—"हाँ बिटिया, अब वह पहिले जैसी नहीं रही। महीनों बीत गए, वह इस खँडहर के बाहर नहीं गई। उसका क्षेत्र अब इस खँडहर में ही सीमित हो गया है। न अब पहिले की भाँति प्रलाप ही करती है। अपने मौन में ही हँसती-रोती है। एक शब्द भी नहीं बोलती। घण्टों इसी प्रकार बैठी रहती है। कभी मुख पर हास छा जाता है; आनन्द-तरंगें हिलोर लेती हैं। कभी अलख के मधुरातप में घुल, वेदना में विकल, मन अकलुष हो इतना कोमल हो जाता है कि नेत्र के तरल बिन्दुओं में बहने लगता है। कई दिन बीत जाते हैं, भोजन भी नहीं करती। इसकी मौनता से मैं घबड़ा उठता हूँ।"

मैंने पूछा—"तो, बाबा, क्या यह अपने शरीर के अस्तित्व को भुला चुकी है?"

वृद्ध ने कहा—"अत्यधिक अंश तक। विषयों का सुख-दुःख केवल भ्रांति से उत्पन्न मोह का कारण होता है। विषयों से इसका मोह टूट गया है। इसके चित्त का प्रवाह एकाकार हो गया है। एक ही चिंतन है इसे; दूसरी चिंता उदय नहीं होती। यद्यपि निला शरीर रूप से मिलन चाहती है परन्तु चाह एक ही है। इसके हृदय और मस्तिष्क का प्रवाह एक ही ओर है। जिस दिन अपनी आत्मा में परमशक्ति देख पाएगी इसकी साधना सफल हो जाएगी।" मैंने फिर प्रश्न किया—"क्या उसे दर्शन होते हैं?" "कह नहीं सकता। वह कहती हैं, 'उसे पहिचानने लगी हूँ। अवश्य पा जाऊँगी।'"

* * *

चार-पाँच मास पश्चात् मैंने देखा, वृद्ध खँडहर के पार्श्ववर्ती वृक्ष के नीचे अर्ध-निमीलित विचित्र मुद्रा में बैठा है। मुझे देखते ही बोला—"अब तो बिटिया न हँसती है, न रोती है। अब तो वह मौन बैठी रहती है। नेत्र खुले रहते हैं फिर भी वह कुछ नहीं देखती। मुख गम्भीर है; उसपर दुख की झलक भी नहीं रहती। केवल एक मन्द हास की छाया-सी देख पड़ती है। उसके मौन को तोड़ने का साहस नहीं होता। उसकी मुखर विक्षिप्तता से नहीं घबड़ाता था परन्तु उसके मौन से मेरा हृदय टूटा जा रहा है। वह कुछ नहीं खाती। दिन में केवल एक बार कठिनता से दूध पीती है। आज दूध पीते समय ही मैंने पूछा था—"बिटिया कैसी है?" तब उसने कहा—"बाबा, वे हर समय मुझे दीखते हैं। मुझे लगता है जैसे मैं उन्हीं में मिली जा रही हूँ। मैं हूँ ही नहीं, केवल वे ही हैं। जिस समय ऐसा सोचती हूँ, वे दूर हो जाते हैं। जब मैं न रहूँगी तो मेरा शरीर न रहेगा तब वह मुझसे कैसे अलग होंगे। अब मैं उन्हीं के पास जाऊँगी बाबा।" मैंने पूछा—"कैसे जाओगी, बिटिया?"

उसने दृढ़ता से कहा—"मुझे लगता है, मेरे अन्तर में वही रूप है। उसी के दर्शन सदैव होते रहते हैं, जिसको पाने की मैं इच्छा करती हूँ। मुझे भूख-प्यास

लगती है तो मेरा ध्यान भग्न हो जाता है। उसी समय वे भाग जाते हैं। मैं मिलती-मिलती उस रूप से पृथक् हो जाती हूँ। जब मेरा शरीर न रहेगा तब मेरा अन्तर उस ज्योतिर्मय रूप में लीन हो जाएगा। फिर हम कैसे अलग होंगे। इस शरीर को मिटाना ही होगा, बाबा!"

मेरे मन में प्रश्न उठा, बचपन की हठी निला अपनी बात अवश्य पूरी करके रहेगी परन्तु किस प्रकार यह शरीर को मिटाएगी!

एक मास पश्चात् खँडहर के मध्य का दृश्य देख मैं स्तम्भित हो गई। निला नेत्र मूँदे प्रस्तर मूर्ति-सी बैठ थी। शरीर अति क्षीण हो गया था परन्तु मुख पर जैसे ज्योतिपुञ्ज नृत्य कर रहा था। वृद्ध ने अति दुखित और कातर स्वर में कहा—"बिटिया आज पाँच दिन से ऐसी ही बैठी है। नेत्र भी नहीं खोले।"

मेरे मन में वृद्ध की बात गूँज गई। वह अपने शरीर को मिटाकर साध्य में मिलने जा रही है।

मानचित्र बन चुका था। उस एकान्त वन में जहाँ रहस्यमयी छाया में पंचतत्त्वों का स्पष्ट नर्तन होता था, जन-समूह के कार्य का मंच बनेगा, सुनकर मैं विचलित हो उठी। निला की वह तपस्विनी मूर्ति कहीं इस कोलाहल में धक्का खा छिन्न-भिन्न न हो जाए। अच्छा हो, यदि वह इस कोलाहल से पूर्व ही अपने जीवन को अपनी कठिन साधना में मिला ले।

दो दिन पश्चात् खँडहर में घुसते ही मैंने वृद्ध को अति उदास और दुखी मन से द्वार से टिका बैठा पाया। देखते ही वह बोल उठा—"अब बिटिया का अन्त आ गया है। आज सातवाँ दिन है। इसने आँखें भी नहीं खोलीं।"

बाईं ओर निला पृथ्वी पर नयन मूँदे बैठी थी। शरीर अति क्षीण हो गया था। मुख पर प्रसन्नता थी, मानों उल्लसित जल पर रवि की प्रथम किरण नृत्य कर रही थी। जो मूर्ति वह बाह्य जगत् में साकार देखना चाहती थी, वह उसके अन्तर नयनों में साकार हो गई थी और विश्व की ओर से नयन मूँदने का अनुरोध कर रही थी। जो प्यासे नयन नित्य ही भटककर अपनी कल्पना का आश्रय दर्शन खोजते थे; जो कर नित्य प्रिय छवि को आँककर अपने सम्मुख रखना चाहते थे, वे सफल हो शिथिल पड़े थे। नयन अब अन्तर्ज्योति थे; शरीर का अंग-अंग, हृदय-मस्तिष्क की चेतना, प्राणों की कम्पन-सिहरन सब एकाकार हो प्रिय के रूप में समा रहे थे।

मैं वृद्ध के समीप बैठ गई। सन्ध्या ढल चुकी थी। पूर्ण चन्द्र की दुग्धाभा खँडहर में उगे पौधों पर उज्ज्वल शान्ति-सी छा रही थी। निला का श्यामवर्ण शरीर शान्त रश्मियों के मध्य दिव्य हो मानों ऊपर उठता जा रहा था। जैसे वह अपनी स्थूलता त्याग चाँदनी में मिले पंचतत्त्वों के समान ही घुल रहा था। वृद्ध को भूख-प्यास न थी। बारम्बार गहरी श्वास ले—'हे ईश', 'हे ईश' कह चुप हो जाता था। परन्तु बिटिया कहकर पुकारने का साहस न करता था। भय्या ने कहा—"बाबा! एक बार पुकार तो देखो।"

वृद्ध ने कहा—"नहीं, भय्या, मैं अपने पार्थिव स्नेह-कलुष से उसके अनन्तदर्शन सुख को न छू सकूँगा। जिसके लिए वह भटकती रही, आज उसे पाकर वह सदा के लिए विश्राम की गोद में चली जाएगी।" वृद्ध के नेत्रों से अश्रुधार बह निकली। हम तीनों प्राणी उस खँडहर में बैठे भावों में उलझे निला की ध्यानमग्ना मूर्ति की ओर देखते रहे।

रात्रि के अन्तिम पहर में चाँद छिप गया। वायु की गति धीमी हो खँडहर को करुण शान्ति में झुलाने लगी। कुछ समय के लिए अँधेरा छा गया। पुनः प्राची में कोमल प्रभा छा गई। उस प्रभालो में निला का शरीर हिलता-डुलता प्रतीत हुआ। हम लोग अपलक दृष्टि से देखने लगे। वृद्ध हर्षित हो निला की ओर दौड़ा। निला का शरीर शनैः शनैः पृथ्वी-शय्या पर शमित हो गया। वृद्ध ने कहा—'बिटिया! निला!" परन्तु कोई उत्तर न मिला। निला का शरीर उसी शान्त मुद्रा में शिथिल पड़ा था। कोई विकार मुख पर न था। श्वास-प्रश्वास विलुप्त हो चुके थे; वह स्वयं अनन्त चेतना में विलुप्त ही चुकी थी। शरीर-व्यवधान हट चुका था। यह अपने दर्शन में लीन हो चुकी थी।

वृद्ध निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा। बोला—"मेरी बिटिया चली गई। वह अपने को पा गई। मैं फिर स्नेह-हीन जीवन ले इस वन की निर्जनता में शेष रह गया।"

उसी शरीर के लिए, जिसे निला ने अपने साध्य और साधन के मध्य व्यवधान समझ त्याग दिया था, हम सोच रहे थे किस प्रकार उसे सुरक्षित रक्खा जाए।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय मुसलमान

प्रोफ़ेसर महेशप्रसाद मौलवी, आलिम-फ़ाज़िल

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में राष्ट्रिय दृष्टि से भारत में मुसलमानों का पतन हो चुका था। भारत के अनेक भागों में हिन्दू शक्तिशाली होगए थे अथवा अंग्रेज़ लोगों का राज्य बढ़ रहा था किन्तु गूढ़ दृष्टि डालने में यह भी पता चलता है कि धार्मिक दृष्टि से भी मुसलमानों का पतन कुछ कम न था।

भारत में इस्लाम का आगमन ईरान होकर हुआ है। ऐसी दशा में इस्लाम कुछ-न-कुछ संस्कार ईरानियों का भी ले आया। इसके पश्चात् कुछ तो कालचक्र की कृपा से और कुछ हिन्दुओं के संसर्ग से उसमें और भी दोष पैदा होगया। शनैः शनैः उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ होने से पूर्व ही उसमें ऐसी बातें पैदा होगईं थीं, जिनके लिए इस्लाम आज्ञा नहीं देता है।

रायबरेली (अवध) के मौलाना सैयद अहमद साहब (स्वर्गीय मई सन् १८३१ ई०) के कारण भारतीय मुसलमानों में धार्मिक सुधार बहुत ज्यादा हुआ है। इनके विचारों का संग्रह 'सरात मुस्तक़ीम' नामक पुस्तक में है। यह पुस्तक वास्तव में फ़ारसी में लिखी गई थी, इसका उर्दू अनुवाद भी मिलता है। इस पुस्तक का रचनाकाल सन् १८१७ या १८१८ ई० है। इसमें अनेक अधार्मिक बातें ऐसी लिखी हुई हैं, जो उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भिक काल में भारतीय मुसलमानों में पाई जाती थीं। उदाहरणार्थ जानना चाहिये कि इस्लाम में विधवा-विवाह वर्जित नहीं किन्तु मुसलमानों में यह बात बुरी समझी जाती थी।

संयुक्तप्रान्त के रायबरेली नगर से लगभग दो मील की दूरी पर पश्चिम ओर तकिया नामी बस्ती है वहीं पर सैयद साहब सन् १७८६ ई० में पैदा हुए परन्तु रायबरेली के बदले केवल बरेली शब्द उनके नाम के साथ प्रायः प्रयोग में आता है और वह 'सैयद अहमद' बरेलवी के नाम से विशेषतः प्रसिद्ध हैं। इनका एक जीवनचरित्र उर्दू में 'सीरत सैयद अहमद शहीद' के नाम से प्रकाशित है। सन् १९४१ ई० में प्रकाशित इसके द्वितीय संस्करण की भूमिका में लेखक ने उस दशा का वर्णन किया है, जो उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी तथा उसके कुछ पहले मुसलमानों की थी। अतः उक्त पुस्तक के पृष्ठ २८ व २९ में जो शब्द हैं, उनका भाव इस प्रकार है:—

"यदि बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) व शिर्क (ईश्वर के सिवा किसी अन्य की उपासना) संसार में कोई वस्तु है और कोष व धर्मग्रन्थ में इनका कुछ अर्थ है तो वह स्पष्ट रूप से मुसलमानों में बहुत ज्यादा थी। क़बरों व मृतकों के निमित्त एक स्थायी धर्मग्रंथ तैयार होगया था, जिसके अनुसार यह बात अच्छी व आवश्यक थी कि लोग क़बरों के सम्मुख माथा टेकें, मृतकों से याचना करें, क़बरों को चूमें, उन पर भेंटें चढ़ाएँ, चादरें चढ़ाएँ, वहाँ प्रार्थना करें, वहाँ क़ुरबानी करें, वहाँ गाएँ बजाएँ, मेला लगाएँ, त्योहार मनाएँ, दीपक जलाएँ, वहाँ स्त्रियाँ एकत्र हों।

ईश्वर-भक्त व बड़े-बड़े धार्मिक व्यक्तियों के विषय में लोगों का विश्वास व विचार उसी प्रकार का था, जिस प्रकार के विश्वास व विचार के लिए अरब के ईसाई, यहूदी और मूर्तिपूजक बदनाम थे।

हिन्दुओं और शियों की सारी कुरीतियाँ मुसलमानों के जीवन का अंग बन गई थीं और इनसे कोई घर खाली न था। इन (कुरीतियों) को क़ुरान, हदीस व इसलामी धर्मशास्त्रों से अधिक माना जाता था। ईश्वर के सिवा अन्य की उपासना, अधर्म-कार्य करना, व्यर्थ व्यय व अज्ञानता इन (कुरीतियों) के अंग थे। धर्म-मार्ग या ग्रन्थ निरर्थक शब्द थे, जो केवल पुस्तकों में रह गए थे। अधर्म की परिभाषा किसी बात पर लागू न होती थी और प्रत्येक अधार्मिक बात एक सुन्दर बात थी। बहुत सी वर्जित बातें उत्तम और बहुत सी उत्तम बातें वर्जित हो गई थीं। इस्लामी बातें उठ रही थीं और उनका स्थान हिन्दुआनी बातें ले रही थीं और ले चुकी थीं। क़ुरान व हदीस की बहुत सी बातों पर पानी फिर गया था। उदाहरणार्थ विधवा-विवाह और सम्पत्ति का बटवारा दोनों अच्छे-अच्छे मुसलमानों में दूषित व वर्जित हो गए थे। प्रत्येक मुसलमान को हक़ था कि वह धर्म-शास्त्र में परिवर्तन करे और नए ढंग से उसकी व्याख्या करे और जिस बात को साधारण मुसलमान अच्छा समझे, वही बात माननीय थी।"

कुरान एक पहेली थी, जो समझ में नहीं आ सकती थी क्योंकि उसके अनुसार चलने का कोई प्रश्न ही नहीं था और उसका बहुत सा अंश रद्दी होकर बेकार हो गया था और आवश्यक समय के निमित्त शिष्टाचार के साथ सुरक्षित रहता था। वह जीवित लोगों के लिए न था बल्कि मृतकों के लिए था। वह इस योग्य नहीं समझा जाता था कि सर्वसाधारण उसे समझ सकें बल्कि उसे पढ़कर मार्ग से भटक जाने का भय था। विद्वानों के पास अवकाश न था कि इसकी ओर ध्यान दें। कर्तव्य व उपासना की उपेक्षा की जाती थी क्योंकि कुछ बातें निश्चित थीं, मृतक के लिए कुरान-पाठ, फातिहा, तीजा, चालीसवाँ और फिरका साधन आवश्यक था।

इस्लाम के मार्ग व ढंगों का हाल इस बात से जाना जा सकता है कि सलाम की रीति उठ गई थी। अच्छे-अच्छे लोगों का कहना है कि दिल्ली के शाह अब्दुल-अजीज ऐसे धार्मिक पुरुष के यहाँ सलाम का चलन न था बल्कि आदाब अर्ज व तस्लीमात अर्ज का चलन था।

उक्त शब्दों के सिवा कुछ अन्य शब्द भी 'सीरत सैयद अहमद शहीद' में हैं, जिनसे उन दूषित बातों का पता लगता है, जो उस समय मुसलमानों में थीं किन्तु उससे और अधिक न लिखकर 'तकवीयतुल ईमान' से कुछ दिखलाना चाहता हूँ, जिसमें अधिक विस्तार के साथ उन अधार्मिक बातों को बतलाया गया है, जिनका चलन उस समय के मुसलमानों में था। ज्ञात रहे कि उक्त पुस्तक मौलाना मुहम्मद इस्माइल शहीद कृत है, जिनके स्वर्गवासी होने का समय भी मई सन् १८३१ ई० ही है। यह मौलाना वास्तव में रायबरेली के मौलाना साहब के एक बड़े श्रद्धालु शिष्य थे।

उक्त पुस्तक के पहिले अध्याय (बाब) के आरम्भ में जो कुछ लिखा हुआ मिलता है, उसका सार यह है :—

"बहुतेरे लोग पीरों, इमामों, शहीदों, फरिश्तों और परियों को आपत्ति के समय पुकारते हैं और उनसे मुरादें माँगते हैं और उनके लिए भेंट मानते हैं और आवश्यकतापूर्ति के निमित्त उनको उपहार देने का संकल्प करते हैं। आपत्ति दूर होने के लिए अपने बेटों को उनकी ओर सम्बोधित करते हैं। कोई अपने बेटे का नाम अब्दुल नबी (नबी का दास) रखता है, कोई अली बख्श (अली का दिया हुआ), कोई हुसैन बख्श, कोई पीर बख्श, कोई सालार बख्श, कोई मदार बख्श, कोई गुलाम मुही उद्दीन और कोई गुलाम मुईन उद्दीन। और उन (बेटों) के जीते रहते कोई किसी के नाम पर चोटी रखता है, कोई किसी के नाम की बद्धी पहनाता है, कोई किसी के नाम का कपड़े पहनाता है। कोई किसी के नाम की बेड़ी डालता है......

कोई आपत्ति के समय किसी की दुहाई देता है। कोई अपनी बातों में उसी के नाम की शपथ (कसम) खाता है। निदान जो कुछ हिन्दू अपनी मूर्तियों से करते हैं सो वह सब कुछ झूठे मुसलमान अनुबिया (ईश्वरीय दूत), औलिया (सिद्ध पुरुषों), इमामों, शहीदों और फरिश्तों तथा परियों से कर गुजरते हैं और दावा मुसलमानी का किए जाते हैं।"

कब्रों के विषय में दूसरे अध्याय (बाब) में लिखा हुआ मिलता है :—

"इस काल में मूर्ख लोग जानते हैं कि बड़ों की कब्रों को ऊँची बनाना और कब्र पर बड़े-बड़े विशाल भवन उठाना और वहाँ रोशनी व उर्स मेला करना, चादरें, हार, फूल, मिठाई चढ़ाना, उनसे अपनी आकांक्षाओं, मुरादों को माँगना, उनके नाम को........ और तोशे, कुण्डे और प्याले भरना।

सुनना चाहिए वास्तव में कब्र का दर्शन बेकैद (बिना बन्धन) दिन, और तारीख, और वर्ष और समय और भीड़ (समूह) के, पुरुष के लिए उचित है। अर्थात् यह कि पुरुष को कब्र के दर्शन के निमित्त जाना उचित है किन्तु किसी दिन या समय आदि के बन्धन की आवश्यकता नहीं कि अमुक दिन जाए और अमुक दिन न जाए अथवा यह कि अमुक समय जाए व अमुक समय न जाए।

कब्र के दर्शन के निमित्त जाना बहुत अच्छा कार्य तथा कर्तव्य है—इस विचार से कि कब्रों को देखने से मृत्यु और परलोक याद आए, संसार का स्नेह छूट जाए। इस विचार के सिवा किसी अन्य विचार से कब्रों को दूर दूर से देखने के लिए जाना, अथवा दिन समय या तारीख का बन्धन लगाना, मेला और जमघट कब्रों पर करना, वहाँ दीपक जलाना, वहाँ

मस्जिद बनाना, स्त्री का कब्र को देखने के लिए जाना, कब्रों पर चादरें डालना, कब्रों पर गन्द करना, मृतकों की तारीखें और कुरान शरीफ की कुछ आयतें आदि कब्रों में लिख देना, कब्रों पर भवन बनाना, कब्र एक बीते से ऊँची बनाना, कब्र के समीप के स्थान को उत्तम जानकर निमाज पढ़ना, कब्रों पर मुजाविर बनकर बैठना, कब्रों के साथ उस प्रकार की बातों का करना, जो मसजिदों के साथ विशेष रूप से होता है, कब्र के समीप आनन्द-मंगल और खेल कार्य जो कि ईद में चाहिए, उन मृतकों की प्रसन्नता जानकर अथवा पुण्य-कार्य जानकर करना—ये सब कार्य वर्जित और अनुचित हैं। जो लोग इन कामों को करते हैं, बड़ों को अपनी आवश्यकता की पूर्ति करनेवाला जानते हैं और यह समझते हैं कि ये लोग आपत्ति को दूर कर देते हैं। इस कारण इनसे अपनी मुरादें माँगते हैं। इन मृतकों की खुशामद के लिए ये कार्य करते हैं किन्तु वस्तुतः आवश्यकता को पूरी करनेवाला और आपत्ति को दूर करनेवाला खुदा के सिवा कोई नहीं है।"

रायबरेली के मौलाना व मौलाना इस्माइल तथा इनके कुछ अनुयायियों का ध्येय जहाँ यह था कि मुसलमानों में जो दूषित बातें हैं, उनका सुधार हो, उसके साथ ही साथ उनके सम्मुख यह प्रश्न भी था कि पंजाब के पश्चिमी व उत्तरी भाग में, जहाँ मुसलमान रहते हैं और जहाँ उस समय सिक्खों का राज्य था, उसका अन्त कर दिया जाए। इसी विचार से उक्त दोनों मौलाना तथा अनेक मुसलमान वहाँ पहुँचे। उन्होंने वहाँ सिक्खों के साथ घोर युद्ध किया और अन्त में रण-क्षेत्र में मई सन् १८३१ ई० में काम आए थे। एक लेखक का कहना है कि मौलाना इस्माइल साहब इस बात के विरोधी थे कि कोई व्यक्ति किसी की कब्र पूजे किन्तु मौलाना की कब्र जो बालाकोट नामक स्थान में है, वह मुसलमानों-द्वारा ही वहाँ पूजी जाती है।

मुसलमानों के राष्ट्रिय व धार्मिक पतन को देखकर ईसाइयों की ओर से यह उद्योग हुआ कि इन पर ईसाइयत का रंग चढ़ाया जाए। इसी उद्देश्य से हेनरी मारटिन नाम का एक जर्मन ईसाई सन् १८०६ ई० में कलकत्ता में आया। वह फिर दानापूर में पहुँचा और कुछ काल कानपूर में रहा किन्तु स्वास्थ्य के बिगड़ने के कारण सन् १८१० ई० में उसने भारत को छोड़ दिया। उसकी सेवाओं की महत्ता का फल है कि उसके नाम पर एक संस्था अलीगढ़ नगर के बन्नादेवी नामक स्थान में है जहाँ पर इस्लाम धर्म सम्बन्धी बातों को जानने का बड़ा भारी साधन है। मैं कई बार वहाँ जा चुका हूँ और वहाँ की बदौलत बहुत सी उपयोगी बातें जान चुका हूँ।

स्पष्ट रहे कि पादरी हेनरी मारटिन ने भारत के पूर्वीय भाग में काम किया था। पश्चिमी भाग में डाक्टर जान विलसन महोदय (स्वर्गीय १८७५ ई०) द्वारा बड़ा काम हुआ था। इन्हीं के नाम पर बम्बई का सुप्रसिद्ध विलसन कालिज स्थापित है।

विलसन महोदय सन् १८२९ ई० में बम्बई पधारे थे। सन् १८३१ ई० में इन्होंने पारसियों व मुसलमानों के सम्मुख एक प्रश्न रक्खा। हाजी मुहम्मद हाशिम नाम के एक व्यक्ति के साथ उनका बहुत पत्र-व्यवहार हुआ। सन् १८३६ ई० में विलसन साहब ने 'रद्द दीन मुसलमानी' नाम की पुस्तक फारसी में प्रकाशित कराई क्योंकि उस समय फारसी को बहुत महत्ता प्राप्त थी।

सन् १८४० ई० में कलकत्ता में जर्मन ईसाई पादरी फण्डर साहब आए। सन् १८४१ ई० (मई) में ये आगरा पहुँचे। उस समय उत्तरी भारत में अंग्रेजी राज्य का जितना विस्तार था, उसका एक प्रधान नगर आगरा था और मुसलमानों की दृष्टि में भी इस नगर की महत्ता कुछ कम न थी।

वैपटिस्ट मिशनरी सोसायटी के पादरी चैम्बरलेन और हेनरी पीकाक सन् १८११ ई० में ही आगरा पहुँचे थे और चर्च मिशनरी सोसायटी ने सन् १८१२ या १३ में अपना डेरा वहाँ डाला था। इस प्रधान नगर से उत्तर व पश्चिम लगभग ५ मील की दूरी पर सिकन्दरा नामक ऐतिहासिक स्थान है। वहाँ चर्च मिशनरी सोसायटी ने एक अनाथालय सन् १८३९ ई० में स्थापित किया था और सन् १८४० ई० में एक प्रेस। निदान वहाँ ईसाइयों का हाल बहुत ही अच्छा था। ऐसे समय में सन् १८४१ ई० में पादरी फण्डर का आगरा पहुँचना ईसाइयों के निमित्त बहुत अच्छा था। इनकी कई रचनाएँ हैं, जिनमें से कुछ ये हैं:—

१. मीजानुलहक़—पहिले पहिल फारसी में यह पुस्तक १८३५ ई० में प्रकाशित हुई। इसके अनुवाद

अनेक भाषाओं में प्रकाशित हुए हैं। उर्दू अनुवाद पहिले-पहल सन् १८४३ ई० में मिर्जापुर (युक्तप्रान्त) से निकला है। इसमें प्रभु मसीह को मुक्तिदाता बताया गया है और हजरत मुहम्मद साहब के ईश्वरीय दूत (पैगम्बर) होने का खण्डन है।

२. तरीकुल-हयात — इसमें पाप, उसका मूल कारण और उससे मुक्त होने का साधन बतलाया गया है।

३. मिफ्ताहुल असरार — इसमें प्रभु मसीह की श्रेष्ठता का उल्लेख है।

इसमें सन्देह नहीं कि कुछ लोगों में यह भावना बहुत पहिले से ही थी कि भारतीय मुसलमानों के आचार-विचार में जो त्रुटियाँ पैदा हो गई हैं, वे दूर हों किन्तु ईसाइयों की छेड़-छाड़ से धार्मिक बातों की ओर अनेक लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। सन् १८४६ ई० या इसके आस-पास की बात है कि नवाब चीना पटन (मैसूर) के भतीजे सैयदशाह अलीअहमद कादरी (उपनाम जियाउद्दीन दिलावर जंग) को जहाद (धार्मिक युद्ध) करने की लालसा हुई। मैसूर से चलकर आगरा पहुँचे। मुफ्ती इनाम उल्ला खाँ साहब के अभ्यागत हुए। वे आगरा में एक प्रतिष्ठित वकील थे। उनके यहाँ विद्वानों व प्रतिष्ठित लोगों का एक अच्छा जमघट रहा करता था। यदि सबों ने नहीं तो अनेक लोगों ने उनके विचार का अनुमोदन किया और उनकी सहायता की। सैयद साहब ने अपने चेलों व मित्रों सहित शाहजहाँपुर की ओर प्रस्थान किया। पूर्वियों से धर्म-युद्ध ठाना अन्त में पुवायाँ (शाहजहाँपुर) के राजा के हाथ से मारे गए।

सन् १८५४ ई० के आस-पास देखा जाता है कि मुसलमानों व ईसाइयों के बीच में मौखिक व लिखित रूप में अच्छी चर्चा रही है। इसके कुछ ही काल बाद सन् १८५७ ई० आता है और इसके पश्चात् जो व्यक्ति इस्लाम के निमित्त विशेषरूप से चिन्तित मिलते हैं, वे हैं सर सैयद अहमद खाँ साहब और मौलाना मुहम्मद कासिम साहब, जिनके हाथों सन् १८६६ ई० में देवबन्द (जिला सहारनपुर) में एक स्कूल की स्थापना हुई जिसकी बदौलत कुछ काम इस्लाम के लिए नहीं हुआ है।

उर्दू के सुप्रसिद्ध लेखक मौलाना हाली की अपूर्व पुस्तक 'मद्द व जजर इस्लाम' अर्थात् 'मुसद्दस हाली' का प्रकाशन पहिले-पहल सन् १८७९ ई० में हुआ। अब तक इसके जितने संस्करण निकले हैं उतने संस्करण बहुत कम उर्दू पुस्तकों के निकले हैं, इसमें उन्होंने भारतीय इस्लाम व भारतीय मुसलमानों का जो चित्र खींचा है, उससे पता चलता है कि सर सैयद के समय में इस्लाम व मुसलमानों की दशा क्या थी :—

(१) वह दींने हजाजी का बेबाक बेड़ा
निशाँ जिसका अकसाय आलम में पहुँचा
मजाहिम हुआ कोई खतरा न जिसका
न उम्माँ में ठिटका, न कुलजम में झिचका
किए पै सिपर जिसने सातों समुन्दर
वह डूबा दहाने में गंगा के आकर

भावार्थ—इस्लाम का निडर बेड़ा समस्त संसार में पहुँचा। कोई आपत्ति उसके मार्ग में बाधक नहीं हुई। उसने सातों समुद्र पार किए किन्तु वह गंगा में डूबा अर्थात् भारत में आकर उसका नाश हुआ।

(२) करै गैर गर बुत की पूजा तो काफिर
जो ठहराये बेटा खुदा का तो काफिर
कहै आग को अपना कबला तो काफिर
कवाकिब में माने करश्मा तो काफिर
मगर मोमिनों पर कुशादः हैं रहैं
परस्तिश करैं शौक से जिसकी चाहैं

भावार्थ—यदि कोई अमुस्लिम (हिन्दू) मूर्ति की पूजा करता है तो वह अधर्मी माना जाता है। ईसाई लोग जो हजरत ईसा मसीह को ईश्वर का पुत्र मानते हैं वे भी मुसलमानों की दृष्टि में काफिर (अधर्मी) हैं। जो लोग अग्नि के उपासक (अर्थात् पारसी) हैं, वे भी अधर्मी ठहरते हैं। जो लोग तारों में चमत्कार अर्थात् आश्चर्यजनक कर्तव्य मानते हैं, वे भी मुसलमानों की दृष्टि में अधर्मी हैं किन्तु जो लोग अपने आपको सच्चा मुसलमान समझते हैं, उनके लिए सारे मार्ग खुले हुए हैं। वे चाहे जिसकी पूजा करें, अधर्म के भागी नहीं अर्थात् यदि वे लोग कबर या ताजिया की पूजा करते हैं तो अधर्मी नहीं ठहरते हैं।

(:) नबी को जो चाहें खुदा कर दिखाएँ
इमामों का रुतबः नबी से बढ़ाएँ
मजारों पर दिन रात नजरें चढ़ाएँ
शहीदों से जा-जा के मांगे दुआएँ
न तौहीद में कुछ खलल इससे आए
न इस्लाम बिगड़े न ईमान जाए

भावार्थः—हमारे मुसलमान भाई यदि चाहें तो नबी (ईश्वरीय दूत) को खुदा के समान करके पेश करते हैं। इमामों का पद नबी से भी बढ़ाते हैं। कब्रों पर रात-दिन भेंट चढ़ाते हैं। खुदा के मार्ग में जो लोग मारे गए हैं, उनसे याचनाएँ करते हैं—इस प्रकार की बातों से एक ईश्वर पूजनीय को मानने में उनके विचार से कोई बाधा नहीं पड़ती है। उनके विचार से न तो इस्लाम बिगड़ता है और ऐसा करने से उनका ईमान भी नहीं जाता है।

यह बात स्पष्ट है कि सर सैयद ने केवल राष्ट्रीय व शिक्षा-सम्बन्धी कार्य ही नहीं किया था बल्कि उनका सहयोग धार्मिक क्षेत्र में भी कुछ कम न था। कुरान शरीफ, जो समस्त मुसलमानों का प्रधान धर्म-ग्रन्थ है, उसका भाष्य उन्होंने नए ढङ्ग पर करना आरम्भ किया। अनेक लोगों ने उन्हें बुरा-भला भी कहा क्योंकि जो उन्होंने अपने भाष्य में लिखा उससे सब लोग सहमत न थे। खेद है कि सम्पूर्ण का भाष्य वह पूरा न कर सके थे किन्तु जितने अंश का किया, उसका प्रकाशन अच्छा हुआ है और उसके द्वारा अंधविश्वास-सम्बन्धी अनेक बातों पर पानी फिर गया है।

ईसाइयों के सिवा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में मुसलमानों को जिससे मुठ-भेड़ करने की और आवश्यकता पड़ी थी, वह श्री स्वामी दयानन्द जी थे। श्री सर सैयद के साथ उनका मिलना जुलना अनेक बार हुआ था किन्तु दोनों में जनता के सम्मुख शास्त्रार्थ कभी नहीं हुआ था। अन्य अनेक मौलवियों ने उनके साथ शास्त्रार्थ अवश्य किए थे। इनमें से सबसे अधिक प्रसिद्ध मेला चान्दापुर जिला शाहजहाँपुर का है। इसमें मुसलमानों के सिवा ईसाइयों के साथ भी शास्त्रार्थ हुआ था। इस शास्त्रार्थ का समय मार्च सन् १८७७ ई० है।

इस्लामी धार्मिक क्षेत्र में मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी का नाम भी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। ये सर सैयद से लगभग २४ वर्ष छोटे थे क्योंकि इनका जन्मकाल सन् १८४० ई० है। सन् १८६० ई० में इन्होंने यह घोषित किया कि जो यह भविष्यवाणी है कि मसीह संसार में आएगा सो वह मैं हूँ।

अनेक मुसलमानों ने इनका विरोध किया किन्तु अनेक इनके अनुयायी भी हुए और कादियान जिला गुरुदासपुर में इनका एक अच्छा गढ़ बना। इन्होंने केवल मुसलमानों के साथ ही मुठ-भेड़ नहीं की बल्कि ईसाइयों व आर्य-समाजियों से भी मोरचा लिया।

हाँ, यह भी स्पष्ट रहे कि शिया व सुन्नी मुसलमानों में परस्पर कुछ कम बिगाड़ न था। निदान यह कहना अनुचित नहीं कि उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी में मुसलमान धार्मिक दृष्टि से कुछ अच्छी अवस्था में न थे किन्तु उनमें जीवन था, वह सचेत भी थे। यही कारण था कि वे भीतरी व बाहरी दोनों प्रकार के विरोधियों के साथ निपटने में पीछे न थे।

कौए

श्री युगल

कहानी तो गढ़ी जाती है। वास्तविकता नहीं रहती। यों मन बहल जाता है। दिलचस्पी हो जाती है। ऐसा मैं बहुतों से सुन चुका हूँ। कहनेवाले भले आदमी हैं। पढ़े लिखे हैं। उनका विरोध कैसे किया जाए? एक कहानी है। किसने लिखी, किसने सुनाई, किसने सुना, यह मैं नहीं जानता। लेकिन वह कहानी है, सो जी में गड़ गई है। अब निकलती नहीं। यों वास्तविकता है या नहीं, मैं नहीं कह सकता। विचारने का अपना अपना दृष्टिकोण है। लेकिन एक बात है। चाहे मैं सोचूँ या कोई सोचे। तथ्य पर पर्दा पड़ा नहीं रह सकता। सत्य खुल जाता है।

कहानी छोटी है। समुद्रमंथन हो चुका था। अमृत

निकला था। देवता आपस में बाँट चुके थे। असुर चुप-चाप देख रहे थे। उनमें एक चतुर था। और उसने चुपचाप अमृत ठग लिया था। फिर तो उसका सिर अलग—धड़ अलग। लेकिन अमृत का प्रभाव ? एक ने दो रूप धारण किया—राहु और केतु। दोनों जीवित हैं। बेचारे सूरज और चन्द्रमा पर आफत है। उनका रक्त-शोषण होता है। उनकी विवर्णता की एकाध रेखा रह जाती है। और चारों ओर घोर अन्धकार—अन्धकार। किरणों का अर्जन तो होता है। लेकिन उनका शोषण भी होता है। उस एक असुर के प्रसाद को क्या कहा जाए ?

अमृत के दो घड़े बच गए। भगवान् ने मनुष्यों के लिए भेजा। भारवाहक को हिदायत थी, जमीन में घड़े न रखना ! पवित्रता नष्ट हो जाएगी। लेकिन कौए चतुर निकले। अमृत पीने की युक्त सोची। भारवाहक के सिर पर चोंच मारी गई। हिदायत भूलकर वह घड़े रख कौए को मारने दौड़ा। इधर कौए अमृत पी गए। भगवान् ने देखा। हँसकर रह गए। प्राणिशास्त्र के जाननेवाले कहते हैं—"कौए किसी भी आदमी से ज्यादा जीते हैं।"...

झील के किनारे पीपल का पेड़ है। छाया घनी रहती है। नीचे चौरस जमीन है। विश्वम्भर अपने कुछ विद्यार्थियों को लेकर यहीं पढ़ाता है। पिछले दिनों लोगों ने सुझाया था—बैठे क्या करते हो ? बच्चों को पढ़ाया करो। चार पैसे आ जाएँगे। विश्वम्भर इधर-उधर दौड़ा। लिखा-पढ़ी की। बोर्ड ने पाठशाला की मंजूरी दे दी। विश्वम्भर को प्रति महीने तेरह रुपए मिलने लगे।

युद्ध छिड़ा। रुपयों का भाव गिरा। बयालीस आया। तैतालीस आया। बंगाल में अकाल पड़ा। समूचे देश में मुर्दनी छा गई। अन्न महँगा हुआ, बहुत महँगा। कंट्रोल की दुकानें खुलीं। लेकिन अन्न गायब ही होता गया। समूचे देश में भीषणता छाती जा रही थी। रुपए सस्ते होते गए। लेकिन परिवार का पेट बहुत बड़ा होता है। तेरह रुपए की क्या बिसात ? विश्वम्भर तब भी जीने का साहस लिए चला जा रहा था।

विश्वम्भर का कहीं मन न लगा, तो पीपल के पेड़ के नीचे अपनी पाठशाला में चला आया। पाठशाला में बच्चे नहीं आते। वे जानते हैं कि गुरुजी हड़ताल कर रहे हैं गुरुजी का मुशाहरा कम है। पेट नहीं भरता। खाली पेट लेकर कोई कैसे काम कर सकता है ? लेकिन हड़ताल होगी, तो सरकार रुपए देगी। बच्चे इससे आगे नहीं जानते। आगे सोच भी नहीं सकते। उन्हें तो अच्छा है कि पाठशाला बन्द है। चले हड़ताल ! सरकार रुपए दे या न दे। वे गुरुजी की छड़ी से तो बचते हैं।

विश्वम्भर थका था, तो पेड़ की जड़ पर बैठ गया। पसीना पोंछा। मुर्दा गोश्त की बू आ रही थी। कहीं कोई मुर्दा सड़ रहा है। विश्वम्भर ने आँखें उठाईं। वह कहीं कुछ टटोल लेना चाहता था। यह मुर्दा कहाँ सड़ रहा है कि इतनी कड़ी बदबू फैला रहा है ? लड़कों ने अपने बैठने के लिए जमीन की सतह कुछ ऊँची कर चौतरा-सा बना रखा था। उसी पर सिर डालकर कोई मर गया था। विश्वम्भर उसी ओर जाकर खड़ा हो गया। देखने लगा इसे कहीं मरने की जगह नहीं मिली, तो पाठशाला में आ गया।

मुर्दे का मांस सड़ रहा था—गल रहा था। नाक फाड़ देनेवाली सड़ायँध चारों ओर फैल रही थी। अगर कल को हड़ताल टूट जाए, तो लड़के यहाँ कैसे बैठकर पढ़ सकेंगे ! मुर्दों के सड़े गोश्त में यह बास कहाँ से पैदा हो जाती है ? ऐसा लगता है कि कोई कुष्ट का रोगी हो। लेकिन यह मुर्दा तो सड़ गया है। कैसे कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है ? और कौए मांस नोचकर खा रहे हैं। दो-चार—आठ-दस। और भी कौए आते हैं। आते हैं और मांस नोचकर उड़ जाते हैं। पीपल की डाल पर बैठकर खाते हैं।

विश्वम्भर का मन पका था। नाक भरी थी। वह मुर्दे को खड़ा-खड़ा देखता रहा। कहीं भी जाने का जी नहीं हो रहा था। वह पेड़ की जड़ पर बैठ गया। कौए मांस नोचकर खाते रहे। मुर्दा जो पड़ा था, कुछ अधिक उम्र का था। उसके सिर के अधपके बाल जैसे चिल्ला-चिल्लाकर सब कुछ बतला रहे थे। भिखारी है। भूखा होगा ? मर गया है। अन्न तो यों ही महँगा है। मिलता कहाँ है ? फिर किसके पास इतना अन्न है कि भिखारियों को लुटा दे ? मरनेवाला मरगा हो। चाहे वह भूखा हो, रोगी हो, गलित कुष्ट से उसके अंग मोम की तरह पिघल-पिघलकर गिरते जा रहे हों। मृत्यु तो नहीं रुक सकती। भूख आती है तो मृत्यु भी आएगी।

लोग कहते हैं अकाल चला गया है। लेकिन मौत तो हो रही है। अकाल के जाने से भूख तो नहीं चली गई। और अन्न यों भी तो बहुत महँगा है। जिन्हें गिनकर महीने में तेरह रुपए मिलते हों!...

और यह आदमी अब मुर्दा है। मांस सड़ रहा है। हवा में सड़ायँध फैल रही है। भूखा रहकर वह कितने दिन जी सकता था? भूख का दुःख क्या झेला जाता है? भूख से मौत कहीं ज्यादा अच्छी होती है। भगवान् ने मनुष्यों के लिये अमृत भेजा था। कौए चतुर थे। पी गए। अच्छा हुआ। अमरता लेकर आदमी क्या करता? भूखे मनुष्यों के लिए वह अमृत समय पर विष तो बन ही नहीं सकता था, तकलीफ बन जाता। आदमी मरता नहीं, मृत्यु की यन्त्रणा भुगतता रहता। पीड़ा और छटपटाहट से वातावरण कराहता रहता। आदमी वैसे वातावरण में कैसे जीता? अच्छा हुआ कि कौए अमृत पी गए। कम-से-कम प्राणि-शास्त्र के जाननेवालों का तो कहना है कि कौए किसी भी आदमी से ज्यादा दिनों तक जिन्दा रहते हैं। जिन्दा रहते हैं इसलिए कि चतुर हैं। आदमी के हिस्से का अमृत पी सकते हैं। जिन्दा रहते हैं इसलिए कि वे आदमी का मांस खा सकते हैं।

कौए आते हैं। मुर्दा गोश्त नोचकर उड़ जाते हैं। उनका कौन विरोध करता है? कौए अगर विश्वम्भर का मांस नोचकर भी उड़ जाएँ तो वह विरोध नहीं कर सकता। जैसे उसमें विरोध करने की शक्ति ही शेष नहीं है। सिर्फ तेरह रुपए में वह अपने परिवार को कैसे जिन्दा रख सकता है? विश्वम्भर ने जब विवाह किया था, तो उसकी पत्नी कितनी स्वस्थ आई थी। मांसल बाहु और जांघ। गदराया यौवन। जैसे फूटकर बाहर निकल आना चाहता हो। चार वर्षों के बाद एक लड़का हुआ। सुन्दर—स्वस्थ। तब अन्न महँगा नहीं था। तेरह रुपयों से काम चल जाता था। लेकिन अब विश्वम्भर को लगता है कि उसका मांस भीतर-ही-भीतर सड़कर गला जा रहा है। एक विचित्र सड़ायँध उसके भीतर फैल रही है। यही कारण है कि वह बाहर की सड़ायँध में भी साँस ले सकता है। और विश्वम्भर की हड्डियाँ शेष रह गई हैं। ढाँचा है, जो चल रहा है—बोल रहा है। विश्वम्भर की पत्नी और बच्चे का स्वास्थ्य कहाँ चला गया? उन्हें दूध नहीं मिलता! भरपेट अन्न नहीं मिलता। कौए उनका मांस नोच रहे हैं। मांस इसलिए नोचते हैं कि उन्होंने उनके हिस्से का अमृत पिया है। वे आदमी से ज्यादा दिनों तक जिन्दा रहते हैं। जिन्दा रहते हैं इसलिए कि उनका मांस नोचकर उड़ जाते हैं।

समुद्र मंथन होता ही रहता है। उस दिन भी हुआ था। तो देवासुर-संग्राम भी हुआ। कटार निकली, तो तलवार भी निकली। जमीन खून से लाल हो उठी। दिशाएँ कराह उठीं। लेकिन अपना भाग अपनी मुट्ठी में था। अपना छत्र अपने सिर पर था। अपनी सरकार थी। सन्तोष हुआ। अब जीवन की साँस ले सकेंगे। जीने का सबों का हक होगा। देवता अमृत पिएँगे तो आदमियों को भी मिलेगा। लेकिन कौएँ तो चालाक होते हैं। वे तो मांस नोचेंगे ही। वे तो पहले से ही अमृत पी चुके हैं। आज उन्हें अमृत दो या न दो। वे किसी भी आदमी से ज्यादा दिनों तक जिन्दा रह सकते हैं। जैसे उनका विरोध करने की शक्ति किसी भी आदमी में नहीं है। मंथन से निकले हुए नए जन्तुओं में भी नहीं। दलील दी जाती है। अगर ये कौए न हों तो मुर्दा गोश्त के मारे भले आदमियों का जीना दूभर हो जाएगा। और ये कौए फिर एक न-एक दिन तो मरेंगे ही। लेकिन विश्वम्भर के सोचने का अपना दृष्टिकोण है। कौए को आदमियों से ज्यादा दिनों तक जीने क्यों दिया जाए?

आज अपनी सरकार है। बुद्धि को यह सब अस्वीकार्य नहीं। लेकिन भीतर कहीं एक अटक-सी पैदा हो गई है, जो खटक रही है एक असन्तोष बार-बार ऊपर उठना चाहता है। स्वराज्य के बाद जो कुछ मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला। निराशा जैसे बहुत संकुल होती हुई निकट सिमटती जा रही है। संक्रान्तिकाल में कुछ विचित्र अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है।...लेकिन—लेकिन इस संक्रान्ति के पहले जो एक क्रान्ति होती है, वह हुई कहाँ? उसका मोह तो रह ही गया। भावनाओं का विद्रोहात्मक रूप तुष्टि नहीं पा सका। भीतर-ही-भीतर दब गया। अपने ही पैर में कुल्हाड़ी क्या मारी जाए? सो अब इन्कलाब का नारा कहीं कुन्द हो गया है। लेकिन भीतर जो पक रहा है, टीस रहा है, वह अव्यक्त रूप से इन्कलाब चाहता है। इन्कलाब हो। प्रत्येक दिशा में हो। प्रत्येक क्षेत्र में हो। प्रत्येक प्रान्त में हो। इन्कलाब हो कि सब कुछ उलट-पुलटकर एकदम नया कर लिया जाए।

अपनी सरकार होने के बाद वातावरण में कहाँ परिवर्त्तन हुआ है, यह विश्वम्भर नहीं ढूँढ़ पाता! परिवर्त्तन बहुत धीरे-धीरे होता है कि आदमी नहीं जान पाता। और सदियों का पड़ा हुआ मुर्दा एकाएक कैसे उठकर खड़ा हो सकता है? युद्ध के बादल मँडरा रहे हैं। शत्रुओं के विचार न अच्छे हुए हैं, न हो सकते हैं। इसलिए वे आराम की साँस नहीं लेने दे सकते; और इस परिस्थिति से जब तक ऊपर नहीं उठा जाता, हिन्द में कोई ठोस परिवर्त्तन कैसे हो सकता है?

और एक विषम चक्र चल रहा है। मिलें चल रही हैं। उद्योग-धन्धे बन्द हो जाएँगे, तो राष्ट्र कैसे जिन्दा रह सकता है? राष्ट्र को जिन्दा रखना है, इसलिए मिलें चल रही हैं, लेकिन मिलें तो इसलिए चल रही हैं कि राष्ट्र के असंख्य मुर्दे उसे चला रहे हैं। वे मुर्दा हैं, लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि चल रहे हैं। उनके शरीर पर कपड़े नहीं। गोश्त नहीं। कौए उनका मांस नोचकर उड़ जाते हैं। और भीतर-ही-भीतर मुर्दे का मांस सड़कर गला जा रहा है।

मुर्दे चल रहे हैं। इसलिए मिलें चल रही हैं। कौए आसमान में उड़ रहे हैं। उनकी आँखें उन्हीं मुर्दों पर हैं। राष्ट्र को जिन्दा रखना है, उद्योग-धन्धों को जिन्दा रखना है, इसलिए मिलें हड़हड़ाती चल रही हैं, लेकिन कौए तो किसी भी आदमी से ज्यादा जिन्दा रह सकते हैं।

सुना जाता है कि रूस के एजेण्ट हिन्द में भी काम करते हैं। उनका विरोध होना चाहिए। उनसे बचकर रहना चाहिए, लेकिन एक ठोस चीज है, जो सबों के सिर पर चढ़कर बोलना चाहती है। बुद्धि जिसका विरोध करती है, आत्मा उसी को स्वीकार कर ले, तो कोई आश्चर्य नहीं। मन है, इसलिए भावनाओं का अलग स्थान है।

आज की परिस्थिति में हिन्द के लिए हड़ताल बहुत बुरी चीज है। रूसी विचार को उनके एजेण्टों तक रहने दो। जैसे इतने दिनों तक सहा, कुछ दिनों तक और सह लो। फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा। सरकार सब कुछ देख रही है। देख रही है कि लोग भूखे हैं। लोग नंगे हैं। लोगों के लिए अन्न चाहिए। लोगों के लिए वस्त्र चाहिए। सब इन्तजाम कुछ-न-कुछ हो ही रहा है। हड़ताल तो उद्योग-धन्धों का नाश कर देगी। राष्ट्र की रीढ़ कमजोर हो जाएगी। राष्ट्र की रीढ़ तो उद्योग-धन्धे ही हैं।......सरकार भुलावा नहीं देती। वह अच्छी तरह जानती है कि राष्ट्र की रीढ़ तो वह है, जो उद्योग-धन्धों की रीढ़ मजबूत करता है, लेकिन कौए हैं। हैं इसलिए कि उन्हें माँस नोचकर उड़ जाना है। मिलें हड़हड़ाती हुई चल रही हैं।

और फिर कौन गरीब नहीं है? कौन भूखा नहीं है? विश्वम्भर पढ़ा-लिखा है। अच्छे कपड़े पहनता है, तो लोग समझते हैं, दोनों साँझ पूरियाँ ही छनती हैं। अन्न का भाव दिनों दिन मँहगा ही होता जा रहा है। तेरह रुपए तो बहुत कम होते हैं। और फिर दुर्दिन में गरीबों के परिवार का पेट बड़ा हो जाता है।

सब कुछ सोच समझकर भी, जैसे अनिच्छा से रूस के उन्हीं एजेण्टों के साथ मिल जाना पड़ा। न जाने किस हवा पर उड़ती हुई बातें आकर आदमियों के हृदय में घर कर लेती हैं। पेट की मार जब सही न जाए, तो हड़ताल करो! हड़ताल तो असहयोग है। लेकिन मास्टरों की हड़ताल चल रही है। लाल कागज पर काले अक्षरों में छपा हुआ—'हम भूखे हैं'—का बिल्ला लगाकर विश्वम्भर उस दिन निकला था। गाँव का पटवारी मिला। वह बिल्ले पर के अक्षरों को पढ़कर हँसा—"तुम भी क्या झूठ बोलते हो, मास्टर! घर में रुपए रखे हैं। मौज से खाते हो। ठाठ का कपड़ा पहनते हो। बाहर यह बिल्ला लगाकर निकलते हो कि हम भूखे हैं।...अरे भाई, हड़ताल का जमाना है, तुम्हीं क्यों बाज आते? यह तो अपनी सरकार है। इस तरह तंग तो नहीं किया करो! कंजूसी करते हो। मरोगे, तो चिता पर दो ही पैसे की लकड़ी साथ रहेगी।"

पटवारी जैसा हँसता आया था, वैसा ही हँसता चला गया।

विश्वम्भर सोचता है कि लकड़ी भी बहुत मँहगी हो गई है। एक शाम का खाना बनाने में चार आने की लकड़ियाँ ही जल जाती हैं। और दो पैसे की लकड़ी! दो पैसे की लकड़ी से क्या होगा? उससे तो सिर का बाल भी नहीं जल सकता। मुर्दा जलाने के लिए काफी लकड़ियाँ चाहिए। लेकिन यह मुर्दा, जो यहाँ पीपल के पेड़ के नीचे सड़ रहा है और वातावरण में एक बदबू फैला रहा है, इसके साथ तो वह दो पैसे की लकड़ी भी

नहीं जा सकी। पैसे होते, तो लकड़ियाँ हो सकती थीं। यह यहाँ इस तरह सड़ता नहीं होता। और अगर पैसे ही होते, तो वह भूखों क्यों मर जाता? लेकिन पटवारी तो यही जानता है कि मास्टर भूखा नहीं है। इस तरह सरकार भी कह सकती है, मास्टर भूखा नहीं है। हड़ताल चलती है। इससे किसका हर्ज होता है? और विश्वम्भर ने तब उस दिन वह बिल्ला उतारकर रख दिया था। लेकिन मास्टर तो जानता है कि वह भूखा है। तेरह रुपए बहुत थोड़े होते हैं। दुनिया उसकी भूख को तो तभी जानेगी, जब वह अपने सफेद कपड़े उतारकर पैसे के लिए लोगों के सामने हाथ बढ़ाता फिरे।

विश्वम्भर जब वह लाल बिल्ला लगाकर पहले दिन स्कूल गया था और लड़कों से कहा था कि आज से वह हड़ताल करेगा, तो लड़कों को बहुत कौतूहल हुआ था। लड़के बिल्ले पर के अक्षरों को पढ़कर मन-ही-मन हँस रहे थे—मास्टर तो भूखा है। भूखा बन्दर बहुत गुस्सा करता है। वह खीझकर दूसरों पर ईंट-पत्थर फेंकता है। और विश्वम्भर सचमुच ही घर की झंझटों से खीझकर भीतर का गुबार लड़कों पर निकाला करता था। लेकिन लड़के थे कि मास्टर के बिल्ले को पढ़कर ऊपर से चुप थे। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि क्या मास्टर सचमुच भूखा है!

रास्ते में पित्तो बोला था—"लड़को, मास्टर भूखा है, उसे एक-एक रोटी लाकर देना!" और वह हँसने लगा था। लड़के उसकी हँसी में सहयोग ही देने जा रहे थे कि कोई लड़का सहानुभूति के स्वर में बोला था—"मास्टर सचमुच ही भूखा है। उसे तेरह रुपए ही तो मिलते हैं!" और लड़कों की सम्मिलित हँसी में उसका स्वर छिप गया था।

विश्वम्भर ने मुर्दे की ओर देखा। हिन्दुओं की लाशें जलाई जाती हैं, मुर्दों को जला देना धार्मिक कृत्य है। लेकिन यह कृत्य कितना वैज्ञानिक है? मुर्दे सड़कर जन-साधारण के स्वास्थ्य को गन्दा न बना सकें। काम की प्रत्येक बात पर धर्म का रंग कितनी खूबी से चढ़ाया गया है? लेकिन यह मुर्दा तो सड़-सड़कर बदबू फैला रहा है। और ऐसा भी तो हो सकता है कि लकड़ी के अभाव में विश्वम्भर की लाश भी इसी तरह सड़ायँध फैलाए।

साँझ घिरती आ रही थी। झील का पानी शान्त था। पीपल के पत्ते शान्त थे। झील के दूसरे किनारे से वीणा का स्वर आ रहा था। वहाँ बंगाली परिवार रहता है। अच्छा पैसा लोग कमाते हैं।...१९४३ में बंगाल में अकाल पड़ा था। लोग भूखों मरते थे—मामूली चींटों की तरह। माँ ने अपने बच्चों को मुट्ठी भर अन्न के लिए बेचा था। जवान लड़कियों ने एक कौर भात के लिए अपना कौमार्य और सतीत्व नष्ट किया था। बंगाल से काफला-का-काफला भागा चला आ रहा था।...लेकिन झील के उस पार जो कोई बंग-किशोरी गा रही है—सबसे बढ़कर बात तो यह है कि पेट भरता है, तो सब सूझता है—गाना, खेल, तमाशा!

विश्वम्भर एक विचित्र करुणा से भरा हुआ उठा। लालाजी के घर के पास से निकलने लगा, तो लाला ने रोका—"क्यों मास्टरजी, हड़ताल तो स्कूल के लिए है। कम-से-कम बच्चों का ट्यूशन तो कर दिया कीजिए!"

विश्वम्भर ने कुछ न समझ सकने की दृष्टि से लालाजी की ओर देखा और उन्हीं के बरामदे पर निढाल-सा एक ओर बैठ गया। लगा कि वह बहुत थक गया है। उससे एक कदम भी चला पार नहीं लगेगा। फिर उसने जरा तेज आवाज में पुकारा—"कहाँ गया रे!—पित्तो!—शिम्बू!"

और दोनों लड़के स्लेट और किताब लिए आ गए। डर से भरे थे। न जाने गुरुजी कौन-सा सबक पूछ बैठें। विश्वम्भर बोला—"तुम लोग बैठ जाओ और नया पाठ याद करो!" फिर वह उदास-सा एक ओर देखने लगा।

बच्चे किताब खोलकर बैठ गए। पित्तो ने पूछा—"हड़ताल क्या होती है, गुरुजी!"

विश्वम्भर अन्तर्मुख बना कुछ सोच रहा था। चौंका—"हड़ताल!—हड़ताल तो—तुम लोग अपना पाठ पढ़ो!" विश्वम्भर नहीं सोच सका कि उसे क्या कहना चाहिए। वह लड़कों को देख रहा था। लेकिन आँखों में दृष्टि नहीं थी। उसकी आकृति चीमड़ होती जा रही थी। पित्तो ने टोका—"गुरुजी!"

विश्वम्भर सकपकाया—"तो हाँ, समुद्र-मंथन की कहानी तुम लोग जानते हो? उसमें अमृत निकला था। लेकिन दुर्बलों को उनका हिस्सा नहीं मिलता है। कौए चालाक होते हैं। वे अमृत पी जाते हैं। आदमी मुँह ताकता रह जाता है।"

लड़के कुछ समझ नहीं सके। मुँह ताकते रह गए। विश्वम्भर ने कहा—"तुम लोग जाकर आराम करो!" और वह स्वयं अपने घर लौट आया। बच्चा सो गया था। पत्नी ने पूछा—"तुम्हारी हड़ताल कब खतम होगी?"

"ठीक नहीं कहा जा सकता।"

"लेकिन यह फाकाकशी कितने दिन चल सकती है? घर में कुछ था नहीं। बच्चा रोते-रोते भूखा ही सो गया है।"

विश्वम्भर दीर्घ साँस लेता हुआ बोला—"हड़ताल तो एक दिन समाप्त होगी ही। हिन्द रूस नहीं बन सकता। आवश्यकता है उदारता और सहानुभूति की। भावनाओं में त्याग की आस्था होनी चाहिए। सोचने का नया तरीका हो, तो वृत्तियाँ बदली जा सकें। समाज गढ़ा जा सके। यों समुद्रमंथन होगा। अमृत निकलेगा। दुर्बलों का भाग सबलों के हाथ में चला जाएगा। और कौए भी तो चालाक होते हैं।"

पत्नी ने सोचा, विश्वम्भर कुछ पीकर आया है। वह चुपचाप लेट गई।

विश्वम्भर की बार-बार इच्छा हो रही थी कि वह दीवार से टकराकर अपना सिर फोड़ ले।

दो गीत

श्री 'नीरव' एम० ए०

क्षण बदले, जीवन बदल गया।
उल्लास भरा यह मन बदला,
मन बदला, थक कर तन बदला;
मन को, तन को, ढोनेवाली—
गतिविधि का कण-कण बदल गया।
मानव इस असफलता के हित,
युग की पीड़ाओं से अविजित;
है वही ध्येय, है साध वही,
मति बदली साधन बदल गया।
तप की न रही वह क्रूर कथा;
हिम की न रही वह शीत व्यथा;
उर में, नयनों में, ऋतु बदली,
मधु बदला, सावन बदल गया।
बदली न हृदय की भावुकता,
बदली न प्रणय की आकुलता;
बदला न नियति का कारागृह,
प्रिय बदला, बन्धन बदल गया।

एक प्रहर बीती विभावरी।
प्रिय में जो प्रियजन खोए हैं;
अलकों से मुँह ढँक सोए हैं;
उनके स्वप्न, साध, सुख छूकर,
चली जा रही निशा नागरी।
समझ रही हैं दृग-तारा से—
तम की तम पथ की बाधाएँ,
पल-प्रतिपल घटती जाती है,
अम्बर की, उर की, उजागरी।
हिल जाती है पंकज काया,
सुधि ने जिसको आप बुलाया,
एकाकीपन-सा साथी पा,
आज गई बन व्यथा बावरी।
जो अनन्त आलोक गए बन,
जो जीवनगति रोग गए बन,
उन जानेवाले दिवसों की,
आती है, आरी, सुधि! आरी!

सत्रह सौ उनतीस

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

एक मुखिया ने कहा, "रोशनुद्दौला, शेर अफगन वगैरह सब काफिर हैं। इनसे छुटकारा पाने के लिए अगर मुझको अपनी पूरी दूकान बेचकर चन्दा देना पड़े तो दूँगा।"

दूसरा बोला, "मैं भी अपनी सारी दौलत इस नेक काम में लगा देने के लिए हाजिर हूँ।"

सब मुखियों ने इसी प्रकार की बात कही।

गुलाबखाँ ने कहा, "रुपए की इतनी जरूरत नहीं जितनी सबके एक हो जाने की है। वजीरुद्दौला और अमीर आजमखाँ सरीखे सरदार अपने साथ हैं जिनके पनालों में होकर इत्र बहा करता है। जरूरत है दिल्ली के सब अच्छे लोगों को एक राय का बना लेने की। आप लोग हर गली और हर कूचे में जाएँ। पक्के लोगों को इकट्ठा करें। इसके बाद हाजी मरहूम की लाश को शुभकर्ण के मकान पर ले चलें। जब तक कातिल और शुभकर्ण को खतम न कर डालें तब तक हाजी साहब की लाश को न दफनाएँ। शुभकर्ण के मकान को गिराकर उसी खँडहर में लाश दफनाई जाए तब बात है। इसके बाद रोशनुद्दौला वगैरह को समझा जाएगा।"

"लेकिन उनके पास फौज है", एक ने अपनी बाधा जाहिर की।

गुलाबखाँ ने कहा, "तोपखाने के हजारों अरबी और ईराकी सिपाही आप लोगों का साथ देंगे। आप परेशान न हों। पहले सब लोगों को जमा करके शुभकर्ण और उसके सिपाहियों को पकड़िए। उसके बाद देखा जाएगा।"

एक बोला, "मालूम होता है, शुभकर्ण को शेर अफगन ने अपने यहाँ छिपा लिया है। उसके मकान पर ताला पड़ा हुआ है।"

"कुछ परवाह नहीं", गुलाबखाँ ने उत्साहित होकर कहा, "काफी आदमी लेकर शेर अफगन की हवेली पर जाइए। आज हमको इन सबसे निबटना है।"

कुछ लोगों ने दिल्ली में लूटमार मचाने और आग लगाने का भी सुझाव पेश किया, परन्तु लगभग सभी दिल्ली-निवासी हथियारबन्द थे और जूताफरोशों को अपनी दूकानों की भी फिक्र थी, इसलिए इस सुझाव को रद कर दिया गया।

गुलाबखाँ बोला, "यकीन करिए, हमारे सब बड़े सरदार आपकी पीठ पर हैं। सरकार वजीरुद्दौला आपके हमदर्द हैं। उन्होंने भी इस वाकए को सुन लिया है। बड़े रञ्ज में हैं। मैं तोपखाने की तरफ जाता हूँ। आप अपना काम करिए।"

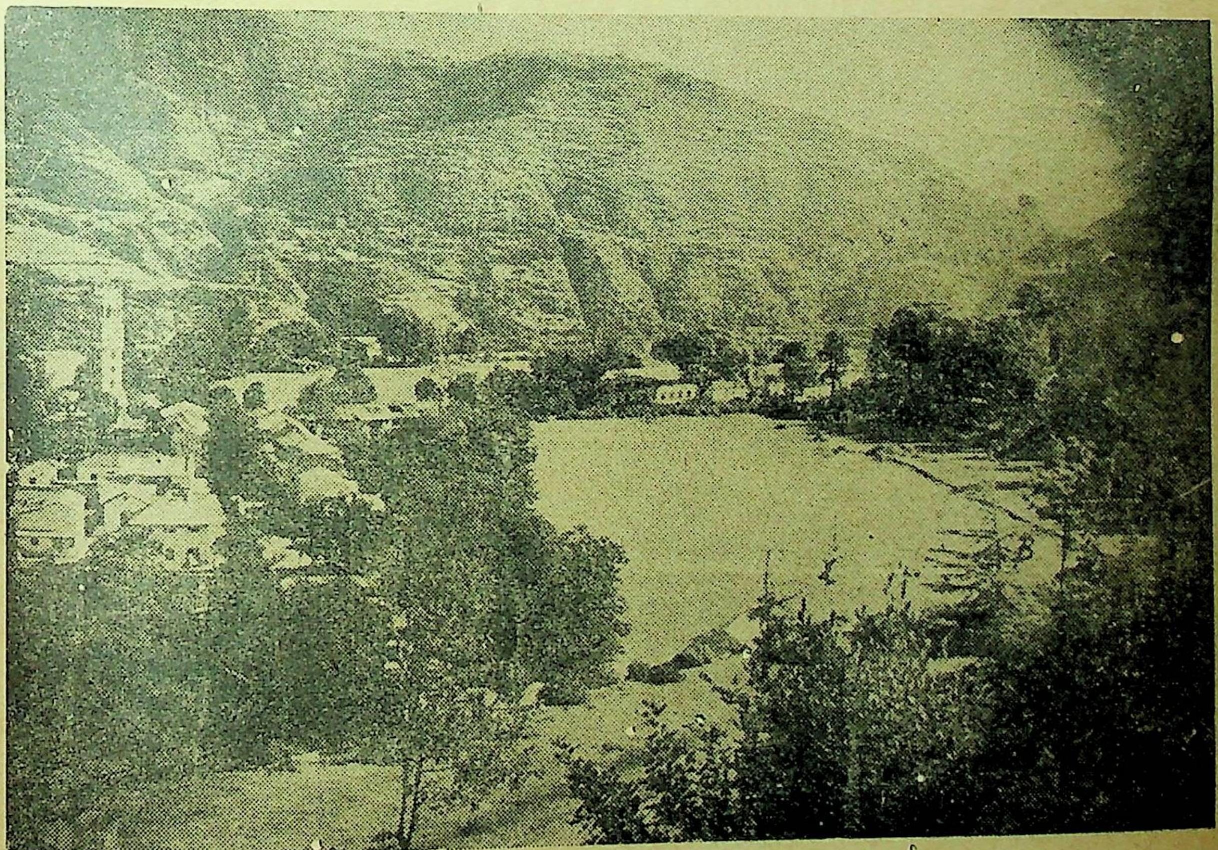
गुलाबखाँ चला गया। प्रमुख जूताफरोशों ने भीड़ को अपने पक्ष में पक्का किया, और वे 'दीन' 'दीन' के नारे लगाते हुए शहर में फैल गए। सारे शहर के धोबी, नाई, जुलाहे, कसाई, फकीर, भटियारे, जूताफरोश इत्यादि एकत्र हो गए। इनमें कुछ हिन्दुस्थानी दल के पक्षपाती भी थे, परन्तु उस समय की गरम-गरम पुकारों ने उनके प्रतिकूल राजनैतिक मत को गला दिया और वे चौक सादुल्लाखाँ के जूताफरोशों के जोश में शामिल हो गए। इकट्ठा होकर हल्ला-गुल्ला करने और कुछ उपद्रव कर बैठने की वासना उत्सव मनाने की वृत्ति में परिवर्तित हो गई और उन लोगों को आगे का कार्यक्रम एक बड़ा उत्सव प्रतीत होने लगा।

"इसी चारपाई पर हाजी साहब की लाश को मय उनकी तसबी के हत्यारे शुभकर्ण के मकान पर ले चलो। जब तक हाजी के कातिलों को और शुभकर्ण को नहीं मार डाला जाएगा, लाश नहीं दफनाई जाएगी।"

टिहरी-गढ़वाल

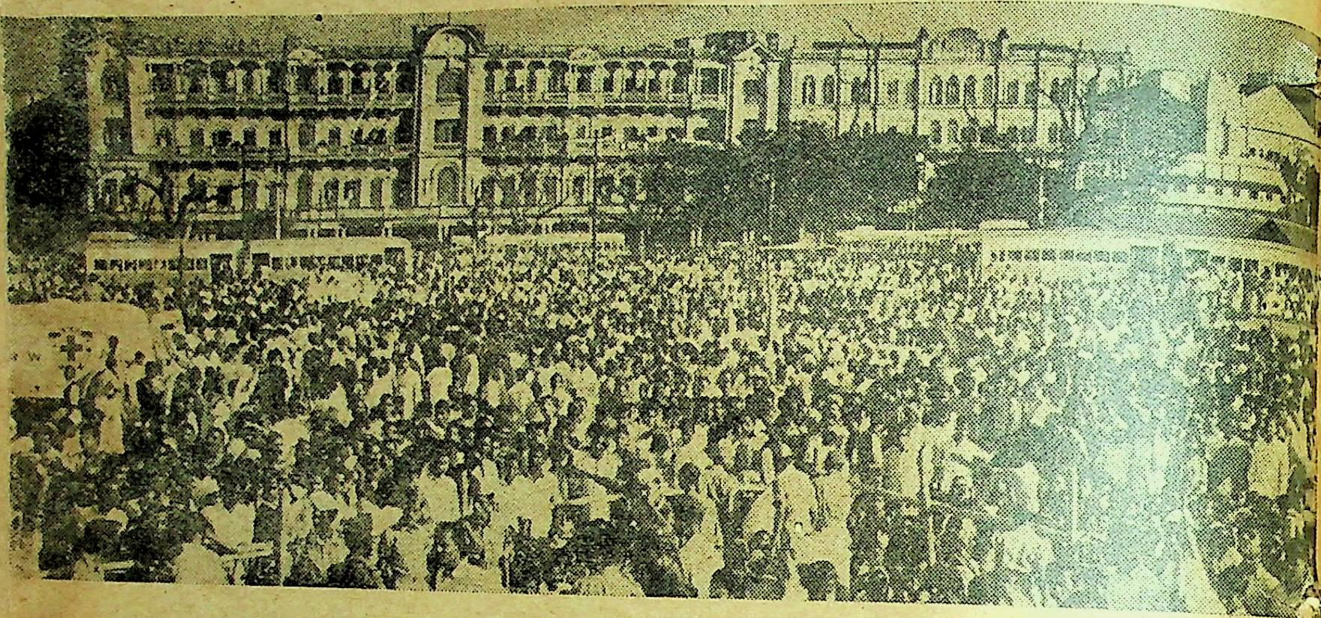
युक्तप्रान्त की पहाड़ी रियासत टिहरी-गढ़वाल के शासक श्री महावीरेन्द्र शाह। जन-आन्दोलन का सम्मान करते हुए आपने अपनी रियासत में वैधानिक शासन-तन्त्र स्वीकार कर लिया है।





सुरम्य दर्शन

टिहरी गढ़वाल के अनुपम प्राकृतिक दृश्यों में से एक।



मई-दिवस

उक्त अवसर पर सारे विश्व में श्रमिकों ने व्यापक प्रदर्शन करके यह स्पष्ट कर दिया कि उनमें संगठन का अभाव नहीं है।

ऊपर--कलकत्ता के मैदान में श्रमिकों की बृहत् सभा।

नीचे--मास्को में उक्त दिवस के उपलक्ष्य में सैनिक-प्रदर्शन ।



उच्च कंठ से विशाल भीड़ ने अनुमोदन किया; और यही उनका कार्यक्रम भी बना।

(१४)

'दीन' 'दीन' का नारा लगाती हुई वह भीड़ शुभकर्ण के मकान पर पहुँची। मकान खाली था। ताले पड़े हुए थे। मालूम हो गया कि शुभकर्ण अपने आदमियों के साथ शेर-अफगन की हवेली में छिपा हुआ है। लाश को चारपाई पर वहीं हिफाजत के साथ छोड़कर भीड़ रौरा मचाती हुई शेर अफगन की हवेली पर जा धमकी। ड्योढ़ी पर बन्दूक और तलवार से सुसज्जित काफी संख्या में सिपाही डटे हुए थे। भीड़ का कोई भी व्यक्ति हवेली में नहीं धँस पाया। ऊपर की खिड़की में से शेर अफगन ने सिर निकाला। भीड़ की संख्या को देखकर जरा सहमा। फिर सँभलकर पूछा, "क्या बात है ? क्यों परेशान हो ?"

सारी भीड़ ने कुछ-न-कुछ कहने का प्रयत्न किया। शेर अफगन ने हाथ हिला-हिलाकर भीड़ को चुप करने की चेष्टा की। जब भीड़वालों ने स्वयं अवगत कर लिया कि अपने ही शोर के मारे वे अपनी बात तक नहीं कह पाते तब मुखियों ने दौड़-धूपकर कुछ शान्ति स्थापित की। शेर अफगन ने फिर कहा, "क्या बात है ? कौन सा गजब हुआ ?"

भीड़ के एक व्यक्ति ने, जिसका गला तुरही जैसा प्रखर था, बातचीत की।

"एक गरीब और जईफ मुसलमान को आपके दीवान राजा शुभकर्ण ने अपने सिपाहियों से कल शाम बिना किसी कुसूर के मरवा डाला है। वह नमाज पढ़ रहा था। लोगों ने मना भी किया, मगर राजा शराब में मस्त था। सिपाही भी पिए थे। उन लोगों ने जरा भी परवाह नहीं की। उसको मार डाला और कुछ बच्चों को भी काटकर कुएँ में फेक दिया।"

"उस बुड्ढे का क्या नाम था ?" शेर अफगन ने सवाल किया।

जवाब मिला, "हाजी"।

उसने फिर सवाल किया, "क्या उसका यही नाम था ?"

बातचीत करनेवाले को हाजी का नाम नहीं मालूम था। उसने अपने साथियों पर दृष्टिपात किया। भीड़ में से अनेक कंठों ने एक साथ कहा, 'हाजी हाफिज खाँ, हाजी हाफिज खाँ।",

शेर अफगन बोला, "अच्छा, अच्छा, यह तो मालूम हुआ। वे बिचारे बड़े नेक थे। पर यह समझ में नहीं आता कि उन बिचारों को शुभकर्ण ने बिना कुसूर, और वह भी नमाज पढ़ते वक्त क्यों मार डाला। सही सही बात मालूम हो जाए तो मैं खुद इन्साफ कर दूँगा।"

"बिलकुल बेकुसूर मार डाला है, आला जनाब ! शुभकर्ण मुसलमानों से नफरत करता है। इसलिए उसने इस पाक महीने में उस नेक बुड्ढे को मार डाला।"

"कुछ समझ में नहीं आता। जरा हुल्लड़ कम करो तो ठिकाने की बात हो।"

भीड़ में से एक व्यक्ति ने बेतहाशा चिल्लाकर कहा, "ठिकाने की बात तो जनाब तब होगी जब आप अपनी हवेली के बाहर उस बदकार को कर देंगे।"

"मियाँ होश में बात करो", शेर अफगन ने क्रोध को न दबा पाकर कहा, "यह मैं मानता हूँ कि तुम्हारा एक नेक आदमी मारा गया है, लेकिन अभी यह साबित होना बाकी है कि उसको शुभकर्ण ने या उनके किसी आदमी ने मारा है।"

"अच्छा ! यह दलील ! तरफदारी की हद हो गई ! याद रखिए आप भी मुसलमान हैं।"

"तभी तो कहता हूँ कि सबूत और सचाई की बात करो।"

"यानी हम लोग झूठ बोल रहे हैं ?"

"यह तो तुम जानो, मगर इन्साफ करने के लिए सबूत की जरूरत तो पड़ा ही करती है।"

"हम सबने कतल होते देखा है", भीड़ में से अनेक कंठों से निकला।

शेर अफगन भी चिल्लाकर बोला, "और मैं कहता हूँ कि महज भड़के हुए या भड़काए हुए लोगों की हुल्लड़बाजी को मैं सबूत और सचाई का रुतबा नहीं दे सकता। अपना-अपना काम देखो। किसी के बहकाने में मत आओ। मैं थोड़ी देर में आता हूँ। जिन लोगों ने अपनी आँख से कतल देखा हो वे कोतवाली में आ जाएँ। वहाँ जाँच-पड़ताल होगी और कुसूरवार को मुनासिब सजा दी जाएगी।"

भीड़ क्रोधोन्मत्त हो उठी।

एक ने कहा, "यह सब टालबाजी है।"

दूसरा बोला, "अमीर बेजा तरफदारी कर रहे हैं !!"

तीसरे ने तुरन्त कहा, "लाश तो तब दफनाई जाएगी जब कातिलों की बोटी-बोटी कुत्ते और कौए खा चुकेंगे।" इस पर भीड़ के अनेक व्यक्तियों ने कसमें खाईं: "जब तक कातिल न मार दिए जाएँगे, लाश नहीं दफनाई जाएगी।"

शेर अफगन का क्रोध दृढ़ता में परिणत हो गया। बोला, "यह अमल बहुत खराब है। मैं तुमको सीधी राह बतला रहा हूँ, और तुम उलटे बहे चले जा रहे हो।"

"हाँ! हाँ!!"

"या खुदा दिल्ली को यह दिन भी देखना पड़ा!"

"इन्हीं लोगों ने जजिया बन्द करवाया।"

उस हो-हल्ले के बीच में कुछ मुखियों ने आपस में सलाह करके एक निश्चय किया। उस निश्चय को एक व्यक्ति ने शेर अफगन पर प्रकट भी कर दिया, "हम लोग शुभकर्ण के मकान को खाक में मिला देंगे और वहीं हाजी हाफिज की लाश को दफनाएँगे।"

"और तुम लोग वहाँ से खैरियत के साथ लौट आओगे!"

"तब आप शुभकर्ण वगैरह को हवेली से बाहर क्यों नहीं कर देते?"

"यहाँ वे कोई नहीं हैं।"

"यहीं हैं, यहीं हैं। निकालो उनको बाहर।"

"नहीं हैं। मैं कहता हूँ नहीं हैं।"

"कसम खाइए,"

'पठान तलवार चलाते हैं। कसमें नहीं खाते।"

"ओ हो! ओ हो!! यह गरूर!!!" भीड़ किसी भयङ्कर घटना का सूत्रपात करना चाहती थी, उसी समय उनकी बढ़ती हुई संख्या को बढ़ाते हुए कुछ और लोग आ पहुँचे। इस नई टुकड़ी ने सूचना दी:"हजरत बादशाह सलामत की सवारी जफर खाँ के बाग से लौट रही है। चलो वहीं फरियाद पेश करें। फिर देखा जाएगा।"

जितनी जल्दी भीड़ शेर अफगन की हवेली के सामने इकट्ठी हुई थी उतनी ही जल्दी तितर-बितर भी हो गई—मानो सबके सब किसी एक ही भावना के सूत्र में बँधे हों। लगभग सबके सब उस दिशा में दौड़ गए जिस दिशा से बादशाह की सवारी आ रही थी। अभी बादशाह की सवारी कुछ दूर थी। भीड़ ने सवारी के आगे बढ़ने का मार्ग रोक लिया।

(१५)

उधर भीड़ गई, इधर शेर अफगन की हवेली के भीतर स्त्रियों ने चैन की साँस ली। शबनम और देवकी एक ही जगह बैठी हुई थीं।

शेर अफगन ने अपनी हवेली में शुभकर्ण और उसके सहवर्गियों के भोजनादि की व्यवस्था कर दी थी। ब्राह्मण रसोइए और कहार लगा दिए थे, परन्तु खाना किसी से भी नहीं खाया गया।

देवकी की आँखों में कृतज्ञता के आँसू थे। उसने कहा, "बहिन, आपका जस कभी नहीं भूलूँगी।"

शबनम बोली, "दीदी, इसमें जस किस बात का? आप मेरी बड़ी बहिन हैं। हम लोगों ने थोड़ा-सा फर्ज अदा किया तो कौन-सा बड़ा काम किया?"

देवकी—"हम लोगों के लिए नवाब साहब ने अपने को विपद में डाल लिया है।"

शबनम—"आप कैसी बातें करती हैं, दीदी? हम लोग आपस में एक-दूसरे की मदद न करेंगे तो क्या बाहरवाले मदद करने आएँगे?"

देवकी—"ये बाहरवाले ही तो ऊधम कर रहे हैं।"

शबनम—"अगर मैं किसी तरह अब्बाजान के पास पहुँच पाती तो उनको समझाती, जिद करती और अपना गला तक काटकर उनके हाथ में रख देती कि बाज आइए; विलायतियों की तरफ को छोड़िए और हिन्दुस्तान को अपना समझिए।"

देवकी—"प्यारी बहिन, आप और आफत में न कहीं पड़ जाना। नवाब साहब तो हम थोड़े से हिन्दुओं के लिए पूरी जोखिम सिर पर ले ही चुके हैं।"

शबनम—"आप बार-बार यह क्यों कहती हैं? थोड़ी देर के लिए मान लीजिए हम लोग किसी ऐसी जगह होते जहाँ हिन्दुओं ने कुछ शरारत की होती और हम लोग उनके बीच में फँस जाते तो आप क्या करतीं?"

देवकी की आँख एकाएक लाल हो गई। फुफकार कर बोली—

"बहिन, मैं उन सब हिन्दुओं की बोटी-बोटी कर डालती जो आपको या आपके किसी नातेवाले को छूने के लिए आगे कदम बढ़ाते।"

शबनम देवकी से लिपट गई। बोली, "दीदी, हम भी इन्सान हैं। आपके लिए यही खयाल हमारे भी जी

में घर किए हुए है। हम आपकी मदद नहीं कर रहे हैं बल्कि हिन्दुस्तानी के नाते सिर्फ अपना फर्ज अदा कर रहे हैं।"

देवकी ने कहा, "बहिन, हम लोगों की चले तो हम लोग फसाद की नौबत ही न आने दें।"

(१६)

सवारी धीरे-धीरे, खरामा-खरामा, आई। पालकियों, तामझामों, पीनसों और शानदार झूलेवाले हाथियों के सुनहले और रुपहले हौदों पर कीमखाब, मखमल और जरदोजी के चमक-दमकदार पर्दों का जलूस चींटी की चाल आया। एक बड़े हाथी के पर्देदार हौदे पर मुहम्मदशाह उस दिन की अपनी किसी प्यारी बेगम के साथ बैठा था। इस जलूस के चारों ओर घुड़सवार, ऊँट-सवार और पैदल सिपाही सशस्त्र थे। मुहम्मदशाह ने पर्दे की जाली में से सामने के भीड़-भड़क्के को देखा और कान फोड़नेवाले नारे सुने :—

"दीन", "दीन"; "इन्साफ, इन्साफ"। बादशाह ने अपना हाथी आगे बढ़ाया। जब भीड़ के जरा पास हाथी पहुँच गया, मुहम्मदशाह ने परदा हटाकर मुँह निकाला। भीड़ शान्त हो गई। बादशाह ने पूछा, "क्या बात है?"

भीड़ में से किसी ने जवाब दिया—

"जबसे जहाँपनाह ने जजिया बन्द कर दिया, हिन्दुओं ने सिर बहुत ऊँचा कर लिया है। पठान जो मजहब की तरफ से लापरवाह हैं, उनके साथी हैं। ये लोग साजिश करके खुलेआम गरीब मुसलमानों के कतल करते हैं। उनकी रोजी पर लात मारते हैं, उनके हकों को पैरों तले रौंदते हैं। अभी हाल में—"

बादशाह ने दाँत पीसे। धीरे-धीरे बड़बड़ाया, "कम-बख्तों ने सुबह का मजा कैसा खराब किया! हिन्दू और पठान साजिश करते हैं तो तुमको साजिश करने से किसने रोका? मेरी जान खाने को रास्ते में आ गए।" जरा ऊँची आवाज में बोला, "किस्सा कोता करो। थोड़े में बतलाओ क्या हुआ है। मुझको महलों में जरूरी काम से जल्दी जाना है।"

भीड़ का प्रमुख बोला, "गरीबपरवर सलामत, जहाँ-पनाह, अबुलफतह नसीरुद्दीन, गाजीउलमुल्क—"

मुहम्मदशाह ने तेज स्वर में कहा, "बात भी बत-लाएगा या तोता रट जारी रक्खेगा?"

उसने प्रार्थना की, "जहाँपनाह, राजा शुभकर्ण ने, जो अमीर शेर अफगन के दीवान और जवाहिरखाने के नायब हैं, हाजी हाफिज को कल शाम के वक्त मरवा डाला, बेकुसूर, बिना वजह—"

मुहम्मदशाह ने चैन की साँस ली। सोचा, "बस इतनी सी बात! समझा था मराठों ने लूट लिया!! खैर!"

कहा, "इन्साफ किया जाएगा।"

भीड़ चिल्ला उठी, "दुहाई जहाँपनाह की। शेर अफगन इन्साफ नहीं होने देते।"

"क्यों?" बादशाह ने भरसक चिल्लाकर पूछा। और दाँत तले कहा, "बदमाशों ने कितना बेभाव रौरा मचा रक्खा है! मेरा तो जी मतलाने लगा।"

उत्तर मिला, "शुभकर्ण और कातिल सिपाहियों को अमीर शेर अफगन अपनी हवेली में छिपाए हुए हैं। पनाह दिए हैं। दीन की तौहीन कर रहे हैं।"

बादशाह चिड़चिड़ा गया। उसी चिड़चिड़ाहट में वजीर कमरुद्दीन को बुलवाया। वह जरा फासले पर एक हाथी पर सवार था। हाथी से उतर कर तुरन्त आया। उसने जमीन चूमी और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

मुहम्मदशाह ने कहा, "हजरत, यह सब क्या मजाक है? शुभकर्ण ने एक गरीब को मार डाला और शेर अफगन के यहाँ जा छिपा! वह जहाँ कहीं भी हो गिरफ्तार करो और इन्साफ करो।"

वजीर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने हाथ जोड़कर आज्ञा सिर माथे रक्खी और भीड़वालों को समझा दी। उसी समय एक खास ख्वाजा को शाही फर-मान बजा लाने के लिए शेर अफगन की हवेली पर भेजा। भीड़ ने इस ख्वाजा को अपने बीच कर लिया और खुशी-खुशी उसको हथेलियों पर ले जाने लगे। परन्तु, भीड़ के वहाँ से हटने के पहले ही एक आदमी तेजी के साथ शेर अफगन की हवेली पर पहुँच गया। उस ख्वाजा को लिए हुए भीड़ समुद्र की लहरों की तरह शेर अफगन की हवेली की ओर चल पड़ी।

बादशाह की सवारी भी किले की ओर चली। चोबदार चिल्लाए, "बाअदब, बाकायदा, होशियार, खबरदार।"

बादशाह ने अपनी प्यारी बेगम से, पर्दे के भीतर,

कहा, "हुल्लड़ को बुखार या नजले ने हैरान कर डाला था, अब उतर जाएगा।"

बादशाह चला गया।

भीड़ आनन्द और उत्साह में मग्न थी। हाजी के मरने का कोई गम भीड़ को न था। कोई भी अनिश्चित उपद्रव करने का उत्साह मन में हिलोरें मार रहा था। दिल्ली के बाजार बन्द हो गए। दूकानों को बन्द होता हुआ देखकर भीड़ को अपना आतङ्क और प्रभाव और भी अधिक अवगत हुआ। एकाध ढीठ या गरीब अधमुँदी दूकान खोले भी था तो भीड़ ने बन्द करवा दी, "नालायक, सारी दिल्ली तो मातम मना रही है और तू दूकान खोले है! बन्द कर।"

(१७)

शेर अफगन की हवेली पर रोशनुद्दौला भी आ गया था। वे दोनों किसी सलाह में व्यस्त थे।

वजीर का भेजा हुआ ख्वाजा अभी नहीं आ पाया था कि भीड़ को छाँटकर एक आदमी पहले ही इन लोगों के पास आ गया। वह एक पठान दरबारी था। उसने आते ही सूचना दी, "कमरुद्दीन बदला लेना चाहते हैं। बिना किसी सबूत के उस भीड़ की गैरमुमकिन झूठी चिल्ल-पों को सही और सच मान लिया गया है। बादशाह सलामत से यह हुक्म जारी करवा दिया गया है कि राजा शुभकर्ण को आपके यहाँ से तुरन्त गिरफ्तार कर लिया जाए और उनके सिपाहियों को भी पकड़ लिया जाए। इसके बाद भीड़ के खूनी जल्लाद इन्साफ करेंगे; वे बिचारे कोतवाली तक पहुँच भी न पाएँगे। मैं बादशाह के हाथी के नजदीक खड़ा था। बादशाह को इस तरह के फरमान जारी करने पर बहुत मलाल था। चेहरे से साफ जाहिर हो रहा था।"

रोशनुद्दौला मिठास के साथ बोला, "हम लोग आपका बहुत अहसान मानते हैं। मैंने खुद तहकीकात कर ली है। राजा साहब का या उनके सिपाहियों का कोई कुसूर नहीं है। मैं उनको बरसों से जानता हूँ। ऐसा नेक नमकहलाल, होशियार और हिम्मतवाला आदमी किस्मत से ही मिलता है।"

"उनका एक बाल भी बाँका न होगा," शेर अफगन ने दृढ़तापूर्वक कहा, "कमरुद्दीन तो क्या कमरुद्दीन के फरिश्ते भी राजा को या किसी को भी पठान की पनाह से तिल भर भी बाहर नहीं खींच सकेंगे।" पठान दरबारी बोला, "कमरुद्दीन को मुहँ की खिलानी है। अब मैं जाता हूँ। वे लोग आते ही होंगे।" दरबारी चला गया।

थोड़ी देर बाद शेर अफगन और रोशनुद्दौला को दरवाजे की ओर आती हुई भीड़ का शोर सुनाई पड़ा। रोशनुद्दौला ने मुसकराकर शेर अफगन की ओर देखा।

पहरेवाले ने कमरुद्दीन के भेजे हुए ख्वाजा के आने की सूचना दी। शेर अफगन ने उसको बुलवा लिया। बड़ी आँवभगत से बिठलाया। ख्वाजा कमरुद्दीन के गुट का आदमी था।

रोशनुद्दौला ने ऋतु की चर्चा की। अभी ठंढक है। कुछ दिन बाद गरमी पड़ेगी। दुपहरी में गरम हवा चल उठी है। दरबारी ने मौसम की और भी ज्यादा शिकायत की। हिन्दुस्थान गरम मुल्क है और दिल्ली गन्दा शहर। अपने जीवन को कठिनाइयों और कष्टों से ओत-प्रोत जाहिर करते-करते उकताने सा लगा।

भीड़ ने अपने उल्लास और क्षोभ को गगन-भेदी नारों से प्रकट किया।

रोशनुद्दौला ने जरा चौंककर आश्चर्य प्रकट किया, "यह शोर काहे का है?"

शेर अफगन ने कहा, "कोई बवाल होगा; दिल्ली में बवालों की क्या कमी है?"

ख्वाजा कान लगाकर बोला, "आपने ठीक फरमाया। मौसम की तेजी के साथ लोगों की तबियतें भी तेज हो गई हैं और मिजाज खराब। यह खराबी यहाँ की मिट्टी तक में है।"

शेर अफगन ने मन में कहा, "यहीं की मिट्टी में से सोना बीनते हैं और उसी की बुराई करते हैं!"

रोशनुद्दौला के माथे पर शिकनें आईं। बोला, "रास्ता है। हल्ला-गुल्ला करते हुए निकल जाएँगे लोग। आज कोई त्योहार तो है नहीं। मगर बादशाह सलामत कदम-शरीफ से लौटे होंगे। उनका दीदार हासिल करके ये सब वापस आ रहे होंगे।

[क्रमशः



अमिट सौन्दर्य

नूरमहल सौन्दर्य की अप्रतिम प्रतिमा थी। उसकी आँखें सितारों की भाँति चमकीली थीं। उसकी दासी ने उसके रेशम से अधिक कोमल बाल सुलझाते हुए एक दिन कहा:—"मेरे पड़ोस में एक साध्वी अध्यापिका रहती है जो कभी यौवन में खिला हुआ फूल थी। असावधानी में चित्रकार ने उसका चित्र लेकर बड़ी कीमत में मेरे हाथ बेंच दिया। वह चित्र और आपकी आकृति मिलती-जुलती हैं, बेगम; कोई कहे सगी बहनें हैं।"

बेगम ने चित्र देखने की इच्छा प्रगट की जो तत्क्षण ही पूरी की गई। फिर अध्यापिका को देखने की चाह हुई। निर्धन अध्यापिका प्रासाद में लाई गई। अब उसकी उम्र लगभग ६० वर्ष की थी। कमर झुक गई थी। नेत्र आकर्षणहीन थे। यद्यपि चेहरे पर झुर्रियों का अधिकार था, फिर भी खंडहर भवन के सौन्दर्य को प्रकट कर रहे थे। वृद्धा होने से वह उदास व परेशान दिखाई देती थी, मानों जीवन का पथभ्रान्त पथिक खोया-खोया पूछता फिरता है कि अब मैं किधर जाऊं और कहां ठहरूँ। बेगम उसको देखकर भौचक्की हो गई। फिर चित्र और अध्यापिका में महान् अन्तर पाकर बेगम का रंग पीला पड़ गया। "क्या सौन्दर्य का यही परिणाम है? क्या मैं भी इस अवस्था में पहुँचने वाली हूँ जबकि लोग मेरा उपहास करेंगे?"

बेगम ने अध्यापिका को बिदा किया, परन्तु स्वयं शृंगार से उदास होकर लेट गई। उसके इस प्रकार चिन्तातुर होने से प्रासाद की चहल-पहल में अन्तर आ गया। सूचना मिलने पर बादशाह सभा विसर्जित करके घर चला आया। बादशाह किंकर्तव्यविमूढ़ बना खड़ा था। बेगम ने सुन्दर नेत्रों को धीरे से उठाते हुए कहा—"मुझे कोई ऐसा नुस्खा या तबीज चाहिए जो कि सौन्दर्य को अमिट कर दे।" कौन नहीं जानता कि सौन्दर्य अमिट नहीं, परन्तु "प्रिय रानी" के कोमल हृदय को विपरीत उत्तर से कौन तोड़े! नारी का हठ यदि अम्बर के तारे तोड़ लाने की मांग करे तो कम-से-कम दिखावे के लिए लम्बी सिढ़ी का प्रबन्ध करके यह दिखाना पड़ता है कि उसकी बात ध्यान-योग्य नहीं रही। यथा-सम्भव प्रयत्न किया गया, परन्तु आकाश के तारे मनुष्य की पहुँच से बाहर हैं। बादशाह ने दिल में कहा कि विकास के इस युग में लोग उस पर हँसेंगे। यह बातें तो पुराने बादशाहों को अच्छी लगती थीं। बीसवीं सदी के शिक्षित शासकों को उचित नहीं कि वह अपने दरबारियों को नाटक का पात्र बनाएँ। बाहर का संसार सुनेगा तो क्या कहेगा? बादशाह ने चाहा कि बेगम को इस मूर्खता पर डाँट दे, लेकिन डरा कि सौन्दर्य का पुष्प तो पहले ही कुम्हला चुका है, ऐसा न हो कि उसका दिल पत्ती-पत्ती हो जाए। विवशतः वह प्राचीन गल्प के पात्र का अभिनय करने पर बाध्य हुआ।

बादशाह उल्टे पाँव वापस लौट गया। मन्त्रियों को बुलाया; योगियों के पास आदमी दौड़ाए; हकीम और वैद्य एकत्र किए; सबके सामने इस प्रश्न की पुनरावृत्ति की कि कोई ऐसा नुस्खा या तावीज बताओ जो सन्दौर्य को अमिट कर दे!! तबीबों और हकीमों ने कान पर हाथ रक्खे कि सौन्दर्य परिवर्तनशील है? फकीरों और योगियों ने कहा कि आयु बढ़ सकती है परन्तु शरीर की अवस्था सदा एक-सी नहीं रह सकती। यह सुन बादशाह उदास हो गया। बादशाह को देखकर मन्त्री भी बहुत ही परेशान था क्योंकि बादशाहों के क्रोध के शिकार मन्त्री ही होते हैं। बादशाह के स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ गया। एक दिन वह मन्त्री से अकारण क्रुद्ध हो गया। सूचना बाजार में पहुँची। धीरे-धीरे मन्त्री-कन्या को भी मालूम हुआ कि बादशाह उसके पिता से नाराज हैं। मन्त्री संयम का पुतला था। दिल की बात अपनी लड़की से न कही। जब

बुद्धिमती कन्या ने प्रासाद की बातें सुनीं तो पिता की कठिनाई का उपाय ढूंढने लगी। कई दिनों के बाद वह परेशान पिता के पास आकर बैठ गई और पूछा:—"आप प्रायः उदास रहते हैं; आखिर क्यों?" पिता पुत्री की बुद्धिमत्ता को मानता था, परन्तु वह अपनी परेशानी में उसे भागी न बनाना चाहता था। आज लड़की ने जो पूछा तो उसने सारा वृत्तांत कह सुनाया। लड़की ने कहा—"इसमें परेशानी की बात ही क्या है? शाह को कहो कि बेगम परेशान न हो।" मन्त्री ने आश्चर्य के साथ पुत्री की ओर देखा। मन्त्री-कन्या बोली:—"पिता जी, बादशाह बेगम को कहे कि सौन्दर्य तीन प्रकार का है, (१) नेत्र के लिए स्वर्ग है, (२) दूसरों के लिए दिल की धड़कन है, (३) अपने हृदय की सान्त्वना है। और यह बताकर बेगम से पूछे कि उनका प्रश्न किस सौन्दर्य के सम्बन्ध में है। मन्त्री को पुत्री की योग्यता पर पूरा विश्वास था। जब दरबार लगा तो उसकी आकृति चमक रही थी। शाह ने उसकी तरफ देखा और पूछा—"मन्त्रिन्, आज क्या शुभ समाचार है? मन्त्री ने आदर से कहा, बेगम को उदास होने की आवश्यकता नहीं। बेगम से पूछ कर इतना बताया जाए कि सौन्दर्य तीन प्रकार का है और उनका प्रश्न किससे सम्बन्ध रखता है।

बादशाह ने मन में विचार किया, "निस्सन्देह मन्त्री की बुद्धि जन-साधारण की अपेक्षा बहुत ऊंची है। उसने इतनी बात पहले दिन क्यों न कह दी? क्या यह उत्तर उसने स्वयं पाया है या उसका कोई परामर्शदाता भी है।" यह बात बादशाह ने सानुरोध मन्त्री से पूछी। पहले तो उसने टालने की कोशिश की परन्तु फिर कन्या की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए कहा—"यह उत्तर तो उसका ही सुझाया हुआ है।" बादशाह ने मन में सोचा—"प्राचीन गल्प के पात्र पूर्ण हो गए। प्राचीन किस्सों में भी मन्त्री-कन्याएं समस्या का हल बताती थीं और आज भी परिस्थिति वैसी ही है। बादशाह प्रसन्नता से उठा और धीरे-धीरे प्रासाद की ओर चल पड़ा। उसे इस तरह प्रसन्न देखकर बेगम उठ बैठी, मानों मृतशय्या पर लेटे रोगी को जीवनामृत मिल गया हो। बादशाह बोला—"बेगम, बुद्धिमान् मन्त्री पूछता है कि सौन्दर्य तीन प्रकार का है। किस सौन्दर्य के सम्बन्ध में तुम्हारा प्रश्न है?" बेगम हैरान रह गई। फिर बोली—"सजावट और रूप-रंग सौन्दर्य के प्राण हैं; मैं क्या जानूं, इसके अतिरिक्त भी कोई सौन्दर्य है। इस समस्या को जब तक कोई न समझाए, कुछ समझ में नहीं आ सकता।"

बादशाह ने मन्त्री को बुलाकर परामर्श किया, अन्ततः यह तय हुआ कि पुरुष स्त्रियों की बातों में क्यों आएँ। औरत औरत से ही क्यों न निपटले। मन्त्री-कन्या प्रासाद में लाई गई। बेगम ने उसका स्वागत किया। इधर-उधर की बातें करते-करते सौन्दर्य के प्रश्न को छेड़ा गया। मन्त्री-कन्या ने कहा—"अगणित प्राणियों को यह सम्पत्ति मिली और नष्ट हो गई। मैं अनुभव कर रही हूँ, सौन्दर्य नष्ट न हो इस आशंका से आप दुःखी हो रही हैं। यदि आप एक काल्पनिक नाटक में अभिनय करना स्वीकार कर लें तो सारी समस्या सुलझ सकती है।"

बेगम बोली,—"मुझे स्वीकार है।"

मन्त्री-कन्या ने कहा—"आप बादशाह से कहें कि वह सरकारी समाचार-पत्र में यह प्रकाशित करा दें कि फरीदाबाद के सरदार की सुन्दर कुलटा पत्नी ने नवयुवक पति को इस नीयत से विष दे दिया है कि विधवा होकर उसकी रंग-रलियों में पति का खटका न रहेगा। इस अभियोग की सुनवाई राजधानी के न्यायाधीश के सामने होगी। १५ मार्च को कातिल दिन के दस बजे कोर्ट में पेश की जाएगी।" बेगम ने कहा, 'यह काम तो आज ही हो जायगा।' मन्त्री-कन्या वापस अपने घर लौट आई। दूसरे दिन मन्त्री-कन्या रात को फिर बेगम के पास आई और बोली—'कल नाटक खेलने का दिन है, जिसमें आपको सौन्दर्य की दूसरी किस्म का हाल मालूम हो जाएगा। लोगों की राय बदलने से सौन्दर्य भी बदल जाता है। सुन्दर-से-सुन्दर लोगों की नजरों में हौआ बन जाता है। मैंने अपने पिता-द्वारा सरकार को इस बात पर राजी कर लिया है कि आपको न्यायाधीश तक बिना पर्दे के जाने की आज्ञा हो। सरकार ने तो यहाँ तक मान लिया है कि यदि कोई यह भी कह दे कि यह तो फरीदाबाद के सरदार की कुलटा पत्नी है, तो भी वह बुरा न मानेंगे।'

बेगम ने कहा, "मैं अब समझी कि मुझे फरीदाबाद के सरदार की काल्पनिक पत्नी बनना पड़ेगा और न्यायाधीश के सामने पेश होना पड़ेगा।" "निस्सन्देह", मन्त्री-कन्या बोली। 'आज १५ मार्च का दिन है, बेगम ने स्नान किया; बालों को संवारा; सुन्दर वस्त्र धारण किए और अन्य

शृंगारों से अपने आपको इस प्रकार सुसज्जित किया मानों स्वर्ग की अप्सरा हो। वह रति का प्रतिनिधित्व कर रही थी। जो देखता था, उसके सौन्दर्य की सराहना करता था। वह बग्घी पर बिना-पर्दे सवार होकर प्रासाद के गुप्त मार्ग से निकली और मन्त्रि-कन्या के साथ अकस्मात् नगर में प्रवेश किया। उसके साथ सेना के भी कुछ सवार थे। जनता की भारी भीड़ न्यायालय के पास एकत्र थी ताकि फरीदाबाद की कुलटा पत्नी को देख सके और उसकी पैशाचिकता की कहानी सुन सके। मन्त्रि-कन्या के कहने पर कुछ व्यक्ति नियुक्त थे, जिन्होंने बेगम की बग्घी को देखकर कहा—'सज्जनो! यह देवी फरीदाबाद के सरदार की बहिन है। वह सुनकर सबने कहा कि यह तो सौन्दर्य की देवी है जो संसार को दर्शन देने के लिए प्रगट हुई है। कैसी निष्कपट तथा भोली-भाली सूरत है। पाप का विचार ऐसी स्त्रियों के समीप तक नहीं आता। मुख पर सौन्दर्य नहीं, ईश्वरीय तेज झलमलाता है। सारी जनता ने कौतुकभरी आँखों से उसे देखा। अपने सौन्दर्य की सराहना से सन्तुष्ट होकर प्रसन्नतापूर्वक बेगम जा रही थी। कोचवान "हटो, हटो" कहता भीड़ चीरता गुजरा। अकस्मात् भीड़ में से किसी ने पुकारा—'सज्जनो! यह फरीदाबाद के सरदार की बहिन नहीं है। यह वही कुलटा पत्नी है जिसके अभियोग की आज सुनवाई है।' एक दूसरे ने पुकारा। 'सच है मैं फरीदाबाद का रहनेवाला हूँ, इसको मैंने कई बार देखा है। मैं इस चुड़ैल को खूब पहिचानता हूँ। इसी ने सरदार की हत्या की है।' ऐसा सुन लोगों के विचार एकदम पलट गए। जिन लोगों ने सौन्दर्य-प्रतिमा मान उसके दर्शनों से अपने को अहोभागी माना था, वही उसी मुंह चुड़ैल चुड़ैल करके पुकारने लगे। कहाँ तो उसके चेहरे पर तेज झलमलाता था और कहाँ अब लोगों की लानत-फटकार की बौछार बरसती दिखाई दे रही है। लोग डायन कहकर उसपर झपटे। सरकारी सैनिकों ने उसकी रक्षा की। लोगों ने उसकी तरफ देखकर घृणापूर्वक थूकना शुरू कर दिया। बेगम यह परिवर्तन देख बहुत लज्जित हुई। भीड़ की प्रतिक्षण घृणा बढ़ती जा रही थी। बेगम गर्दन झुकाए बैठ गई। यदि सहायक सेना न पहुँचती तो बेगम पर आक्रमण हो जाता। बेगम ने मन में कहा, "मन्त्रिकन्या ने सच कहा था कि लोगों की राय बदलने से सुन्दर-से-सुन्दर व्यक्ति डरावना और भूत बन जाता है। मालूम होता है कि मुझे फरीदाबाद के सरदार की क्रमशः बहिन और पत्नी बतानेवाले मन्त्रिकन्या के आदमी थे। इतने में बेगम न्यायालय में प्रविष्ट हुई और दस दिन का रीमाँड देकर बेगम को दूसरे दरवाजे से निकालकर और गाड़ी पर सवार करके प्रासाद में लाया गया जहाँ मन्त्रिकन्या बेगम की प्रतीक्षा कर रही थी। लोगों को जब मालूम हुआ कि कातिल का रीमाँड हो गया है और भीड़ को क्रुद्ध देख उसे दूसरे दरवाजे से निकाल दिया गया है, तो वह भी तितर-बितर हो गई। मन्त्रिकन्या ने कहा—"बेगम, अब तो आपको समझ आ गई होगी कि एक सौन्दर्य वह भी है जो लोगों की नजरों में जंचे। यह सौन्दर्य सम्मति की जरा-सी तब्दीली से छीन लिया जाता है। काल्पनिक नाटक के दूसरे दृश्य पर मैं यह साबित कर सकूँगी कि एक धोखेबाज मनुष्य लोगों की नजरों में एक सज्जन की भाँति सुन्दर हो सकता है, शर्त यह है कि वह प्रचार का ढंग जानता हो। अब मैं आपसे इतनी प्रार्थना करती हूँ कि 'सरकारी समाचार' के आगामी अंक में यह समाचार प्रकाशित करा दिया जाए कि फरीदाबाद के सरदार की मृत्यु आकस्मिक थी। उनके सम्बन्धियों ने अनकी निर्दोष विधवा पर इस लिए अभियोग लगाया कि सरदार की विशाल सम्पत्ति पर उनका अधिकार हो जाए। विधवा के सम्बन्ध में छान-बीन की गई है कि वह साध्वी है। गरीबों के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त उत्तम है। सरदार की विधवा इस अपराध से बीमार हो गई है और उसकी चिकित्सा हो रही है। १५ मार्च को न्यायाधीश से अभियोग वापिस लेने की प्रार्थना कर दी जाएगी। न्यायाधीश सरकार की ओर से विधवा की गिरफ्तारी पर खेद प्रकट करेगा।"

आज फिर प्रातः ही से बेगम के पास मन्त्री-कन्या आई। आज काल्पनिक अभियोग की काल्पनिक सुनवाई का दिन था। साधारण वेष में बेगम को प्रासाद के गुप्त-द्वार से १० बजे के करीब उसी बग्घी पर बिठाकर रवाना कर दिया गया। वह गाड़ी जेल के ओर से होकर गुजरी ताकि दर्शक यह समझें कि अपराधिनी जेल से ही आई है। भीड़ ने बेगम का हार्दिक स्वागत किया। जिसने देखा 'सरकारी समाचार-पत्र' से प्रभावित होकर कहा, 'सचमुच स्वर्ग की अप्सरा है। इसकी तो आकृति देखकर मनुष्य के हृदय से बुराई का विचार जाता रहता है। ऐसा प्रतीत

होता है कि कोई पुष्प ओस से निखर कर निकला है, अथवा प्रातःकालीन सूर्य की रश्मि है। प्रत्येक नर-नारी ने उसके वस्त्रों को आँखों से लगाया, हाथ को चूमा, पांव को छुआ। श्रद्धा उन के नेत्रों से बरसती थी। दूर खड़े सम्मान से प्रणाम करते थे। जिधर उसकी दृष्टि जाती थी, लोगों की गर्दनें झुक जाती थीं। मकान और छत सटे पड़े थे। बेगम आज साधारण वेष में सुन्दरतम प्रतीत होती थी। बेगम ने मन में कहा, 'निस्सन्देह, सुन्दरता मेरे अस्तित्व में नहीं है; सौन्दर्य लोगों की आंखों में है। वही मैं थी, जिसे भोंड़ चुड़ैल और डायन कहती थी, हालांकि मैंने अपने आप को सजाने में किसी शृंगार-साधन की उपेक्षा नहीं की। आज साधारण वेश में उनकी आँखों का तारा हूँ। यदि शारीरिक सौन्दर्य नष्ट भी हो जाए तो कोई चिन्ता नहीं। शर्त यह है कि सर्व-प्रियता में कोई कमी न हो।" बेगम न्यायालय से छुटकारा पाकर प्रसन्नता-पूर्वक प्रासाद में आई। बादशाह को बुलवाया और कहा, 'मैं मंत्रिकन्या की कृतज्ञ हूँ, कि उसने मेरी बेचैनी दूर कर दी। यदि सौन्दर्य अस्थायी भी हो तो भी मुझे दुःख न होगा। उसने मुझे जनता के नेत्रों में प्रिय बनने की वह विद्या दी है जिसके बिना सौन्दर्य समुद्र की सीप है।' मन्त्रिकन्या ने कहा, "सरकार मैं अब भी कहती हूँ कि सौन्दर्य अस्थायी वस्तु नहीं है। जनता में सर्व-प्रिय होना भी कोई विशेष वस्तु नहीं। लोग तो भावुक होते हैं। किसी ने कह दिया कि अमुक मनुष्य देवता है, लोग उसे देवता मानने लगते हैं। किसी ने नेक को बुरा कह दिया तो आप लोग नेक को भी शैतान समझने लगते हैं। बाह्य सौन्दर्य और जनता की सर्व-प्रियता के अतिरिक्त मेरे पास एक ऐसा नुस्खा है कि मनुष्य जब तक जिए, सुन्दर रहे। यदि जनता अपने समय के युधिष्ठिर के भी विरुद्ध हो जाए तो वह जनता की दृष्टि में काँटा हो जाता है। मैं बहुत शीघ्र आप को बताऊंगी कि वास्तविक सौन्दर्य अमिट है। इसके अतिरिक्त बाह्य सौन्दर्य को भी अमिट बनाया जा सकता है। पहले समझ में आ जाना चाहिए कि वास्तविक सौन्दर्य क्या है! मुझे कुछ दिनों का और अवकाश चाहिए, जिससे मैं अपनी बात को स्पष्ट कर सकूं।'

आज बादशाह राजकार्य से निश्चिन्त होकर प्रासाद में प्रविष्ट हुआ। क्रोध से उसके नथने फूले हुए थे, और नेत्रों से अंगारे निकलते थे। वह सीधा बेगम के कमरे में आया। बेगम ने बादशाह को इस अवस्था में कभी न पाया था, अतः देख कर घबरा गई। पूर्व इसके कि कुशल पूछती, बादशाह ने बेगम को सम्बोधित करके कहा, "तुम्हें मैंने आस्तीन में छिपे हुए सुन्दर सर्प के समान पाल रक्खा था, और तू अनजाने में मेरे यश को डसती रही। मुझे मेरे विश्वस्त गुप्तचरों ने सूचना दी है कि मन्त्री-कन्या कुलटा है। उसमें और तुममें गठजोड़ इसलिए हुआ है कि तुम दोनों आवारागर्दी में सन्तोष लाभ करो।" बेगम के सिर पर बिजली गिर गई, उसके जिगर पर आरी चल गई। उसने सविस्मय बादशाह की ओर देखा। वह क्रोध से कांप रहा था। उसने क्षण भर के लिए यह समझा कि शायद भयानक स्वप्न देख रही है। उसने आँखें मलकर तसल्ली की, परन्तु बादशाह की क्रोध-पूर्ण दृष्टि पूर्ववत् उस पर पड़ रही थी, क्रोध के मारे उसके होंठ कांप रहे थे। बेगम को अपनी निर्दोषिता का विश्वास था। वह ईश्वर के भरोसे पर सन्तुष्ट हो कर बैठ गई। उसकी आकृति से शहीदों की-सी ज्योति टपकती थी। बादशाह उसे शान्ति से बैठा हुआ देखकर बोला, "पाप ने तेरे दिल को पत्थर कर दिया है। मैं एक क्षण भर के लिए भी तुझे अपने अन्तःपुर में देखना सहन नहीं कर सकता।" यह कहकर क्रोध से कांपता हुआ वह बाहर निकल गया।

यह बात भी पर लगाकर नगर में उड़ गई। सबके मुख पर ताले लगे हुए थे। सारे महल में भय की लहर दौड़ गई थी। नेत्रों के इशारों से बातें की जाती थीं। दो घंटे के बाद दो अधिकारी गम्भीर मुद्रा में गर्दन झुकाए प्रासाद में आए। अन्तःपुर की दासियों ने समझ लिया कि बेगम के लिए कोई शुभ समाचार नहीं। वह सीधे बेगम के कमरे में घुस गए, और नम्र भाषा में कहा, "आपको प्रासाद से शीघ्र निकल जाने का आदेश है। प्रासाद के शहर के बाहर की एक कोठरी आपका भावी निवास-स्थान होगा, यहाँ से कोई वस्तु उठाने और किसी को साथ ले जाने की आज्ञा नहीं।" बेगम नवाब की इस आज्ञा को सुनकर नेत्रों में नीर भर लाई। परन्तु सन्तोष से उठकर उन अफ़सरों के साथ जाने को तय्यार हो गई। उसकी आँखों के सामने संसार अंधकारमय था, परन्तु हृदय में सान्त्वना थी कि वह निष्पाप है। भयभीत दासियाँ

अपने-अपने कमरों के दरवाजों से लगकर इस हृदय-विदारक दृश्य को देख रही थीं। इस आकस्मिक क्रांति से वे अत्यन्त विस्मित थीं।

अधिकारी प्रासाद की ज्योति और प्राण को ले गए। अब वहां श्मशान-सी नीरवता का साम्राज्य था। अधिकारियों ने बेगम को ले जाकर अश्वशाला के साईसों की एक कोठरी में बन्द कर दिया। वहां सूर्य की किरणें भी न आती थीं। एक टूटी-सी खाट और मिट्टी का बर्तन वहाँ पड़ा था। बेगम ने इस परिवर्तन पर भी ईश्वर का धन्यवाद किया। नमाज पढ़ी, मिट्टी पर निज मस्तक को नवाकर देर तक रोती रही। इस समय से उसकी हार्दिक शान्ति में वृद्धि हुई। अपना सौन्दर्य और उसके अमर होने की इच्छा को तो कहना ही क्या, उसमें जीने की इच्छा भी न रही। सौन्दर्य रहे या जाए, वह मरे या जिए, बेगम को अब इस वादविवाद में कोई रुचि न थी। जनता उसके सम्बन्ध में क्या कहती होगी, उसने यह सोचना भी छोड़ दिया। उसने मन में कहा, "संसार के ऐश्वर्य ही क्या जो किसी की प्रतिकूल दृष्टि से मिट जाएं। और वह सौन्दर्य क्या, जो जनता की सम्मति बदलने के साथ ही रंग और रूप खो दे, और आकृति भयानक दिखाई दे। ऐसी निराधार वस्तुओं के लिए क्यों कोई चिन्तित हो।" दिन-पर-दिन व्यतीत हो गए, मानसिक सान्त्वना ने हृदय की कोठरी में प्रकाश कर दिया था। अब उसकी लौ सच्चे ईश्वर से लग चुकी थी। संतोष आकृति पर झलकता था। वह संसार से छूटकर ईश्वर की हो गई थी। वह प्रातः की निमाज से निवृत होकर प्रभु-स्मरण कर रही थी, कि वही दो अधिकारी उसके पास प्रसन्नमुद्रा में आए और बोले, 'आपकी निष्पापता अकस्मात् बादशाह पर प्रकट हुई है। हम यह प्रार्थना लेकर आए हैं कि आप फिर प्रासाद की प्राण बनें।' बेगम ने यह कहकर अफसरों को लौटा दिया कि यह कोठरी प्रासाद की अपेक्षा उसके लिए श्रेष्ठ है। अधिकारी लौट गए। थोड़ी देर के बाद मन्त्रि-कन्या पालकी में सवार होकर आई और कहा, "बेगम साहिबा, अधिकारियों ने आपका उत्तर मुझ तक पहुँचा दिया। अब आइए। आप को वास्तविक सौन्दर्य का नुस्खा हाथ आ गया। शाह से नाराज न होना, क्योंकि उसने यह सब कुछ मेरे निर्देशानुसार किया। जिससे बाह्य सौन्दर्य के इच्छुक को वास्तविक सौन्दर्य मिल जाए।"

"बेगम साहिबा! मानसिक संतोष सौन्दर्य है, जिसे केवल पाप नष्ट कर सकता है। पाप से घृणा करो, तुम जीवनपर्यन्त अपनी दृष्टि में सुन्दर रहोगी; संसार की कोई क्राँति संतोष-रूपी स्वर्ग को नष्ट न कर सकेगी। पाप मनुष्य को स्वयं अपनी दृष्टि में गिरा देता है। जो आप अपनी दृष्टि में पतित हो उसे मानसिक शान्ति कहाँ प्राप्त हो सकती है? पाप से घृणा वास्तविक सुन्दरता है। ईश्वर की थोड़ी सी भक्ति के पश्चात् सारा समय उसकी सृष्टि की सेवा में व्यतीत करो। वार्तालाप यहीं पर समाप्त नहीं हो सकता। सरकार प्रासाद में उत्सुकता से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। लीजिए, दासियाँ आगईं; बस आप-को यहाँ से चलना चाहिए।"

आज प्रासाद में विचित्र चहल-पहल थी। दासियाँ प्रसन्नतापूर्वक इधर-उधर फिर रही थीं। जब बेगम पहुँची, सब सम्मान से झुक गईं। बेगम ने सब को गले लगाया, सब का सप्रेम माथा चूमा। सब ने अनुभव किया कि बेगम के आचार में परिवर्तन आ गया है। सौन्दर्य के साथ मान स्वाभाविक है। अब बेगम के अन्दर न मान था, न उच्चता की भावना। दासियाँ सद्व्यवहार से और भी प्रसन्न हो गईं। बेगम प्रभु-स्मरण में लीन रहने लगी, यहाँ तक कि उसने अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में सोचना ही छोड़ दिया। मंत्रिकन्या ऐसी अवस्था देखकर चिन्तित हुई। उसने अनुभव किया कि ईश्वरप्रदत्त निधि की अवज्ञा करना पाप है। उसने एक दिन कहा, 'बेगम साहिबा, मैंने रात एक स्वप्न देखा, जो आप से भी सम्बन्धित हैं। मैंने देखा कि विशाल मैदान में लोगों की भीड़ लगी है। शीघ्र ही लोग एक पंक्ति में खड़े होगए; किसी ने लाल झंडी हिलाई, सब लोग दौड़ने लगे। ध्यान से देखने पर प्रतीत हुआ कि प्रायः सभी एक टाँग के सहारे धीरे-धीरे जा रहे हैं। किसी की दाईं टाँग नहीं है, किसी की बाईं। गिनती के कुछ लोग दो टाँगों पर निश्चिन्त होकर जा रहे हैं। उन एक टाँग पर भागने-वालों में से, बेगम साहिबा, मैंने आपको भी पहचाना। निश्चिंततापूर्वक यात्रा करनेवालों से पूछने पर मालूम हुआ कि कुछ लोग बाह्य सौन्दर्य पर अधिक ध्यान देते हैं और कुछ स्वभाव तथा आचार पर। वह मनुष्य जो बाह्य सौन्दर्य तथा आचार दोनों को दृष्टि में रखते हैं, जीवन-यात्रा निश्चिंततापूर्वक तय कर रहे हैं। जो जीवन के एक ही चित्र को सामने रखते हैं, वे अभीष्ट स्थान को

नहीं पहुँच सकते। यह उचित नहीं कि मनुष्य किसी एक में प्रमाद का प्रमाण दे और दूसरे के महत्त्व में तल्लीन रहे। जीवन की सफलता के लिए बाह्य सौन्दर्य तथा आचार-व्यवहार दोनों को सुरक्षित रखना परम आवश्यक है।'

बेगम मन्त्रि-कन्या की बुद्धिमत्ता को हृदय से स्वीकार करती थी, इसलिए उसने कहा, 'यद्यपि मैं वृद्धावस्था को अटल-सा समझी थी, पर अब मैं इस तथ्य को मानने के लिए तैयार हो गई हूँ कि आपके पास वस्तुतः कोई ऐसा नुस्खा होगा जो सौन्दर्य को अमर करदे।' मंत्रिकन्या ने कहा, 'निस्संदेह! मेरे पास अमूल्य नुस्खा है, जिसका सारांश यह है :—उत्तम स्वास्थ्य के लिए जलवायु और भोजन का उत्तम होना आवश्यक है। यदि इन तीनों वस्तुओं के प्रयोग में संयम बरता जाए तो जीवनपर्यन्त न केवल सौन्दर्य कायम रखा जा सकता है, अपितु रूठा हुआ यौवन भी मनाया जा सकता है।

भोजन के सम्बन्ध में इस सर्व सुवर्ण नियम को सामने रखो कि दाँतों का काम आँतों से न लिया जाए। भूख हो तो खाना खाया जाए, अभी भूख शेष हो तो हाथ खींच लेना चाहिए। ग्रास को इतना चबाया जाए कि छोटे-से छोटा कण भी कण्ठ में उतरते समय प्रतीत न हो। आरम्भ में थोड़ा-सा कष्ट करना पड़ेगा, तदनन्तर एक मास के भीतर स्पष्ट क्रान्ति उत्पन्न होती दिखाई देगी। यदि भोजन कम-से-कम खाया जाए तो तीन वर्ष के पश्चात् ४० वर्ष का मनुष्य २० वर्ष का युवा हो सकता है और दस वर्ष के पश्चात् सफेद बाल काले हो जाएँगे। आकृति पुष्प की पँखुरी की भाँति हो जाएगी। एक साधारण मनुष्य के लिए एक पाव भोजन पर्याप्त है, उसको चबाने के लिए कम-से-कम आध घंटा चाहिए। यह विचार न करो कि चावल या दूसरा हल्का भोजन शीघ्रातिशीघ्र निगल लिया जाए, उसको भी बड़ी देर तक चबाना चाहिए ताकि वह भी लुआब में हल हो जाए। भोजन के इस नियम को जितना अधिक महत्त्व दोगे, उतनी अधिकता से स्वास्थ्य और सौन्दर्य में वृद्धि होगी।

भोजन के बाद भ्रमण का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। खुली और साफ हवा अमृत है। प्रातःकाल मुख बन्द करके नाक के द्वारा हवा धीरे-धीरे अन्दर खींचो। सीने में रोको और फिर शनैः-शनैः नाक के रास्ते ही बाहिर निकाल दो। प्रतिदिन पंद्रह मिनट इस कार्य के लिए पर्याप्त हैं। यदि प्राकृतिक स्रोतों का जल प्राप्त हो तो क्या कहना, अन्यथा पानी उबालकर साफ कर लिया जाए। यदि इन नियमों पर अमल किया जाए तो सौन्दर्य और स्वास्थ्य का बीमा हो जाता है; बुद्धि बढ़ती है, बेगम साहिबा! आज अपनी आकृति को देखो कि केशर की भाँति सुन्दर है, परन्तु तीन मास के पश्चात् यदि अपने आपको दर्पण में देखोगी तो पहले की अपेक्षा सौन्दर्य में पर्याप्त उन्नति होगी। शर्त यह है कि इस समय में तुम भोजन, वायु और जल सम्बन्धी उन हिदायतों पर अमल करो, जो मैंने दी हैं।

बेगम ने तीन मास निरन्तर प्रातः-सायं परिभ्रमण करने के अतिरिक्त उपर्युक्त नियमों का पालन किया। जन-सेवा से उसको मानसिक सांत्वना प्राप्त थी। अब शरीरिक सौन्दर्य और स्वभाव दोनों में क्रान्ति आ गई, वह कुछ और की-और होगई थी। प्रकृति ने सौन्दर्य में विचित्र रूप भर दिया, नेत्र पहले से भी चमकीले थे। अब उनमें शराब-सी छलकती थी। जब वह मुस्कराती थी, दर्शक का हृदय-कमल खिल जाता था। चाल में वह गौरव था कि फरिश्ते रुक-रुककर देखते थे। वायु और भोजन की सावधानता ने उसे वसन्त ऋतु का स्फुटित पुष्प बना दिया था। वह सचमुच स्वर्ग की अप्सरा दिखाई देती थी। बेगम ने बादशाह से कहकर सारी रियासत में इस विषय के बड़े-बड़े 'पोस्टर' दीवारों पर लगवा दिए कि सौन्दर्य तीन प्रकार का है :—

१—नेत्रों के लिए स्वर्ग है।
२—जन-साधारण के दिल की ठण्ढक है।
३—अपनी मानसिक सांत्वना है।

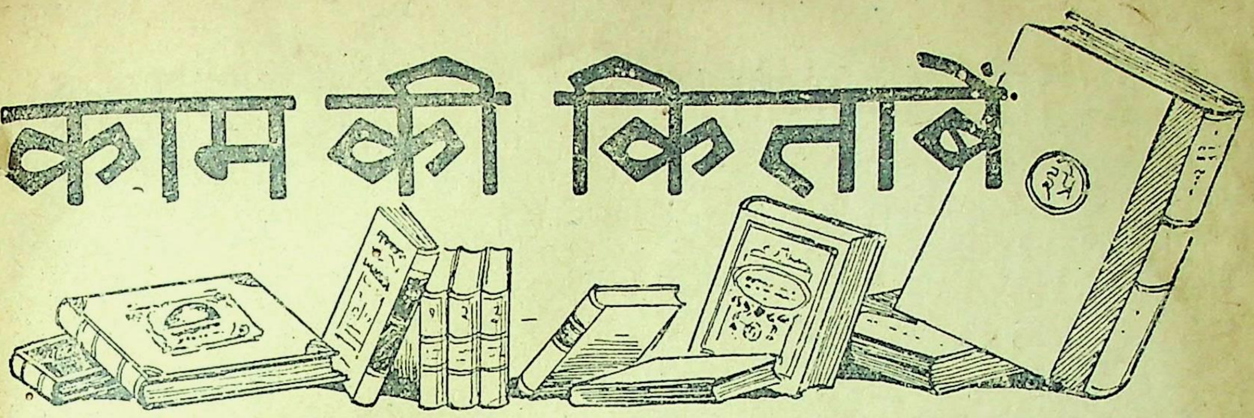
वह सौन्दर्य जो जनसाधारण के दिल की ठण्ढक है; विश्वस्त वस्तु नहीं। ऐसे सौन्दर्य की खोज राजनीतिज्ञों और धोखेबाज आदमियों का काम है।

वह सौन्दर्य जो नेत्रों के लिए स्वर्ग है, जीवनपर्यन्त स्थायी रह सकता है। शर्त यह है कि भोजन को चबाकर खाया जाए, साँस धीरे लेकर छाती में रोकी जाए और जीवन के प्रत्येक कार्य में संयम से काम लिया जाए।

तीसरे प्रकार का सौन्दर्य वास्तविक सौन्दर्य है जो ईश्वर के प्राणियों की सेवा से प्राप्त होता है। यह संतोष का वह अमर उद्यान है, जहाँ पतझड़ नहीं आता। प्रत्येक मनुष्य नेक काम करके, भोजन को चबाकर, साँस को रोक-कर और संयम का पालन करके वास्तविक सौन्दर्य को प्राप्त कर सकता है और शारीरिक सौन्दर्य को जीवन-पर्यन्त कायम रख सकता है।

मूल लेखक : चौधरी अफजलहक ;
अनुवादक : श्री नारायणलाल मुलतानी।

काम की किताबें



१—शेर-ओ-शायरी : संकलनकर्त्ता, श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय ; प्रकाशक, मंत्री, भारतीय ज्ञान-पीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ; पृष्ठसंख्या, ६०२ और मूल्य सजिल्द पुस्तक का ८) है।

आलोच्य ग्रंथ हिन्दी पाठकों को उर्दू के सर्वोत्तम 'अशआर' और 'नज्म' का परिचय कराने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है। उर्दू शायरी से हिन्दीवालों को परिचित कराने के लिए छोटे-मोटे प्रयत्न अब तक बहुत होचुके हैं। अब से बहुत पूर्व पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने अपने बृहत्संग्रह ग्रंथ 'कविता-कौमुदी' का एक भाग उर्दू-शायरी पर ही प्रकाशित किया था; समाचारपत्रों में भी 'उर्दू शायरी' के परिचयात्मक लेख प्रायः छपे हैं और मुशायरों के द्वारा उर्दू के शायरों की सूक्तियाँ सुनने का सौभाग्य भी अनेक काव्य-रसिकों को प्रायः प्राप्त होता रहता है। परन्तु आवश्यकता और उपयोगिता की दृष्टि से यह प्रयास अपने पूर्ववर्ती सभी प्रयासों से बढ़कर है।

ग्रंथ १० परिच्छेदों में विभक्त है जिनमें 'मीर' से लेकर 'फिराक' तक कुल ३१ शायरों की शायरी पर विचार किया गया है ; परम्पराओं और 'स्कूलों' का भी युक्तियुक्त विवेचन किया गया है ; प्रस्तावना भाग में उर्दू शायरी के विभिन्न पहलुओं, 'टेकनीकों', शब्दों के 'हिज्जों' और काव्यगत बारीकियों पर खुलकर विचार किया गया है और संक्षेप में वह सभी कुछ संकलित कर दिया गया है, जिसकी आवश्यकता उर्दू शायरी को हृदयंगम करने के लिए उर्दू से अल्पपरिचित किसी साहित्य-रसिक के लिए हो सकती है।

इस प्रकार यह ग्रंथ न केवल हिन्दी-पुस्तकालयों के लिए उपादेय है, कवियों, काव्यरसिकों और सूक्ति के दीवानों के निकट भी आदरणीय है।

—'पंडित'

२—भारतीय सिक्के : लेखक, श्री वासुदेव उपाध्याय, एम० ए० ; प्रकाशक, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ; पृष्ठसंख्या, २५६ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ५) है।

इस पुस्तक में, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, भारतीय सिक्कों (मुद्राओं) का परिचय दिया गया है। भारत में सिक्कों का प्रचलन कब से प्रारंभ हुआ, यह ठीक-ठीक कहना कठिन है। ऋग्वेद में 'निष्क' का उल्लेख मिलता है, 'मापक' तथा 'कार्षापण' का उल्लेख भी परवर्त्ती वैदिक साहित्य में हुआ है। 'शतमान' तो जैसे यहाँ की बहुप्रचलित मुद्रा रही है। संभवतः यूनानियों के सम्पर्क से भारतीयों ने 'दीनार' और 'द्रम' का बनाना भी प्रारंभ कर दिया था, क्योंकि ये दोनों सिक्के भी गुप्तकाल से पूर्व ही यहाँ बहुप्रचलित थे। पाणिन ने 'शतमान' और 'रुप्य' का प्रयोग-साधन किया है और 'दीनार' का भी। ये सब ग्रंथ ईसवी पूर्व के रचित माने गए हैं।

परवर्त्ती काल में तो सिक्का विनिमय का आधार ही बन गया था, जो अब तक बना हुआ है। सिक्का क्यों चला; कैसे चला; विभिन्न सिक्कों का माप-तौल, व्यवहार, प्रचलन आदि किस प्रकार का था, इन्हीं सब जिज्ञासाओं का समाधान विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में किया है। प्राचीन सिक्कों के चित्र भी प्रचुर मात्रा में दिए गए हैं और तत्संबंधी ऐतिहासिक तथ्यों पर भी प्रकाश डाला गया है। भाषा साफ-सुथरी और वर्णनशैली रोचक है जिसने रूखे-सूखे विषय को भी इतिहास की रोचकता प्रदान कर दी है। इतिहास और पुरातत्त्व के विद्यार्थियों के लिए पुस्तक संग्रहणीय है।

—'पंडित'

३—प्राचीन भारतीय शासनपद्धति : लेखक, प्रोफेसर अनन्त सदाशिव अलतेकर, एम०ए०, एल-एल०

बी०, डी० लिट्; प्रकाशक, भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद; पृष्ठसंख्या, २४८; मूल्य, ५) ।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक डाक्टर अलतेकर प्राचीन इतिहास और संस्कृति के अधिकारी विद्वान् हैं । यही नहीं, वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में इन विषयों के प्रधानाध्यापक भी हैं । इसी से सहज अनुमान किया जा सकता है कि उनकी लिखी हुई पुस्तक कैसी होगी । इस संबंध में हमें एक बात कहनी है; वह यह कि डाक्टर अलतेकर ने अपने अधिकृत विषयों पर अब तक बहुत कुछ लिखा है, पर लिखा है या तो मराठी में या अंग्रेज़ी में । बेचारी हिन्दी अब तक ऐसे विद्वान् की विद्वत्ता से लाभ उठाने से वंचित थी । यह उनकी प्रथम पुस्तक है, जो मूलरूप में हिन्दी में लिखी गई है । इस नाते हिन्दी-भाषियों को उनका कृतज्ञ होना चाहिए ।

यह पुस्तक १४ अध्यायों में विभक्त है, जिनमें वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य से, मेगस्थनीज व युआन-च्वांग सदृश विदेशी पर्यटकों के लेखों से एवं दानपत्रों व शिलालेखों से एतत्संबंधी प्रामाणिक सामग्री संकलन करके भारत में राजतंत्र के विकास, उसके विभिन्न स्वरूप, नागरिक व ग्रामीण व्यवस्था प्रकार तथा अन्यान्य शासन-तंत्रीय सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है । प्रथम के १३ अध्यायों में राजा, गणतंत्र, केन्द्रीय सभा, आदि राजतंत्र के विकास का क्रमिक विवेचन है और अन्तिम चौदहवें अध्याय में विविध समयों में राजतंत्र किस रूप में था, इसे समझाया गया है । प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति पर यह ग्रंथ हमारी दृष्टि में अब तक प्रकाशित सभी ग्रंथों से अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण और प्रामाणिक है । अतः इसे इस विषय की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में सादर स्थान दिया जाना चाहिए ।

४—अध्यात्म ज्योतिष-विचार—लेखक, श्री ह० ने० काटवे; प्रकाशक, नागपुर प्रकाशन, सीतावर्डी, नागपुर; पृष्ठसंख्या ३२६ और मूल्य १०) है ।

पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर नेता जी सुभाषचन्द्र बोस का चित्र है, जिससे पुस्तक हाथ में आते ही पहली धारणा यह बनती है कि इसमें नेता जी के सम्बन्ध में कुछ लिखा होगा, जब कि पुस्तक का विवेच्य विषय अध्यात्म ज्योतिष है । इस प्रकार का भ्रामक आवरणपृष्ठ देने में प्रकाशकों का क्या उद्देश्य है, यह समझना कठिन है ।

लेखक महोदय की 'साधारण प्रतिज्ञा' इस ग्रंथ के सम्बन्ध में यह है कि इसमें योग दर्शन, वेदान्त दर्शन और ज्योतिष शास्त्र का समन्वय किया गया है । लेखक महोदय ने इस बात को स्वयंसिद्ध रूप में मान लिया है कि आर्य संस्कृति के भारत में आने से पूर्व यहाँ द्रविड़ संस्कृति का प्रचार था और द्रविड़ शिव-भक्त और लिंगपूजक थे । प्रमाण में—'मा शिश्नदेवा अपि गुरृत नः' श्रुति को दिया है । इसका अर्थ है—'हे इन्द्र, ये लिंगपूजक हमारे यज्ञकार्य में बाधा न डालें ।' हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु को इस पुस्तक में द्रविड़राज माना गया है और नृसिंह को आर्य राजा । प्रह्लाद घर-भेदिया के रूप में 'भक्तियोग' के अनुयायी स्वीकार किए गए हैं, जो द्रविड़ों की 'शिव-भक्ति' के प्रतिकूल थे । इसी से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि योगशास्त्र द्रविड़ों की देन है और उन्हीं से आर्यों ने इसे सीखा है ।

योगशास्त्र से ज्योतिष-शास्त्र की उत्पत्ति दिखलाते हुए जहाँ लेखक ने यौगिक नाड़ियों, श्वासोच्छ्वास की संख्याओं आदि का समन्वय किया है, वहाँ ऊष्मा के प्रकरण में यह भी तर्क उपस्थित किया है कि शरीर में ऊष्मा की मात्रा सूर्य के उत्ताप के साथ-साथ बढ़ती-घटती है और यही क्रम क्षुधा का भी रहता है । इस प्रकार लेखक महोदय के मत से शरीर में ऊष्मा की मात्रा सब से अधिक बारह बजे दिन को होती है, अतः उसी समय क्षुधा अधिक सताती है । हमारी समझ में यह धारणा न तो प्राचीन ऋषियों के अनुकूल है और न आधुनिक शरीर-शास्त्रियों के । अत्रि महर्षि ने लिखा है— "दिनान्ते भोजयेल्लघु । श्लेष्मक्षयो विवृद्धोष्मा बलवानलस्तदा ।" आधुनिक डाक्टरों के मत से भी शरीर का तापमान अपराह्न काल में सर्वाधिक होता है ।

यह तो मामूली मतभेद की बात है । पुस्तक में योग के विविध चक्रों, ज्योतिष के ग्रहों और वेदान्त के तत्त्वों का सूक्ष्म विवेचन है, जो तत्तद्विषयों के जिज्ञासुओं के लिए उपादेय है ।

आजकल की मँहगी और इस प्रकार की पुस्तकों की अलोकप्रियता को दृष्टि में रखते हुए भी पुस्तक का दस रुपया मूल निस्सन्देह काफ़ी अधिक है ।

—'पंडित'

५-६-७-८ अदिति कार्यालय, श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी की ४ पुस्तकें :—

(१) **कर्मयोगी**—अनुवादक, श्री जगन्नाथ वेदालंकार, पृष्ठ संख्या ११५; मूल्य, अनिर्दिष्ट,

(२) **योगदीक्षा**—अनुवादक, श्री कृष्णाशम्भु, पृष्ठ-संख्या, ८५; मूल्य, अनिर्दिष्ट,

(३) **योगविचार**—सम्पादक, डा० इन्द्रसेन, पृष्ठ-संख्या, १६१; मूल्य, अनिर्दिष्ट और—

(४) **प्रकाश की ओर**—लेखक, श्री नलिनीकांत गुप्त; अनुवादक, श्री जगन्नाथ वेदालंकार; पृष्ठ-संख्या, ५५ और मूल्य ॥) है।

श्री अरविन्द भारत के योगिराज माने जाते हैं और योगमार्ग में उनकी गणना संसार के परम सिद्धों में है। उनका योग पातंजल के 'राजयोग' के ढंग की होते हुए भी उससे कुछ भिन्न है। इस दिशा में गत ४०-४५ वर्ष से अभ्यास और परीक्षण करते हुए उन्होंने कुछ नूतन अनुसंधान भी किए हैं, जिनसे योग का दुरूह और रूक्ष मार्ग बहुत कुछ अभिगम्य और रोचक बन गया है। अपने इन अनुसंधानों का प्रकाश श्री अरविन्द अपने लेखों-द्वारा बीच-बीच में करते रहते हैं। यही नहीं, श्री अरविन्द संसार के सर्वश्रेष्ठ विचारकों में भी अपना प्रमुख स्थान रखते हैं और इस नाते सामयिक विचारधाराओं का अवगाहन भी वे समय-समय पर करते रहते हैं।

श्री अरविन्द का साहित्य अब तक अँग्रेजी में ही था; फलतः उन जिज्ञासुओं को, जिनका अँग्रेजी भाषा पर पूर्ण अधिकार नहीं है, या जिन्हें योग, ध्यानयोग और कर्मयोग की मार्मिक सूक्ष्मताओं का परिचय नहीं है, श्री अरविन्द के ज्ञान से लाभ उठाने का सुयोग प्राप्त नहीं था। यह संतोष की बात है कि श्री अरविन्द आश्रम के विद्वान् और समय की माँग से अभिज्ञ कार्यकर्ताओं ने उनकी पुस्तकों के हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करने का निश्चय किया है। प्रस्तुत चारों पुस्तकें उसी निश्चय का कार्यरूप हैं।

प्रथम पुस्तक 'कर्मयोगी' श्री अरविन्द के उन १० ओजस्वी निबंधों का संग्रह है जो सन् १६०६-१० में उन्हीं के द्वारा सम्पादित 'कर्मयोगिन्' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुए थे और जिन्हें पढ़कर अनेक परवर्ती नेताओं ने प्रथम राष्ट्रीय प्रेरणा प्राप्त की थी। ये निबंध यद्यपि समय की दृष्टि से पुराने हो चुके हैं, फिर भी इनमें जिस सत्य का उद्घाटन किया गया है वह चिर नवीन है। आज राष्ट्र के नवनिर्माण की भावना प्रत्येक भारतीय के हृदय में है। श्री अरविन्द ने भारत के नव-निर्माण को लक्ष्य में रखते हुए तब लिखा था—"हम मानवता को दृष्टि में रखते हुए भारत का नव-निर्माण करना चाहते हैं। यही सच्ची राष्ट्रवादी भावना है। मानवता से हमारा यह कहना है कि वह समय अब आ गया है जब मानवता को भौतिकताग्रस्त जीवन से ऊपर उठकर विस्तीर्णतर, उच्चतर और गंभीरतर जीवन को अपनाना चाहिए। इसी प्रकार राष्ट्रवाद-विश्वबंधुत्ववाद का समन्वय हो सकता है। और जब राष्ट्रवाद-विश्वबंधुत्ववाद में उसी प्रकार सुरक्षित हो जाएगा जैसे व्यक्ति परिवार में, परिवार वर्ग में और वर्ग राष्ट्र में अपने को सुरक्षित रखता हुआ समन्वित हो जाता है, तभी संसार में सच्चे सुख और सच्ची शान्ति की स्थापना हो सकेगी।"

द्वितीय पुस्तक 'योगदीक्षा' में श्री अनिलवरण राय का श्री अरविन्द से योग-जिज्ञासा-विषयक पत्र-व्यवहार दिया गया है। पूर्वपक्ष के पत्रों में विविध जिज्ञासाएँ हैं और उत्तरपक्ष के पत्रों में उनका निराकरण करते हुए योग-की उस शैली का खुलासा किया गया है जो 'अरविन्द-पद्धति' कहलाती है। योगाभ्यासियों और विचारकों के लिए यह पुस्तक विशेष काम की है।

तृतीय पुस्तक 'योग-विचार' में श्री अरविन्द और उनके योग पर १५ अनुभवपूर्ण निबन्ध संगृहीत हैं। इन निबन्धों के विद्वान् लेखक श्री अरविन्द के या तो निकट-वर्त्ती हैं या शिष्य। अतएव श्री अरविन्द की योग-पद्धति की व्याख्या जितनी अधिकारपूर्वक वे कर सके हैं, दूसरा विद्वान् नहीं कर सकता। प्रथम निबन्ध 'जीवन और योग' के लेखक स्वयं श्री अरविन्द हैं। इस निबन्ध में जीवन का योग से कैसा घनिष्ट और अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध है, यह दिखाया गया है। अन्तिम निबन्ध है 'श्री अरविन्द की साधन-शैली' जो इस पुस्तक के सम्पादक डा० इन्द्रसेन का लिखा हुआ है। इस निबन्ध में उक्त शैली का संक्षेप में परिचय देते हुए लिखा है—"इस योग की इसके अतिरिक्त और कोई पद्धति नहीं कि साधक अपनी समस्त वृत्तियों को एकाग्र करे, ध्यान करे। अधिक उपयुक्त यह है कि यह ध्यान वह हृदय में करे और वहाँ माता (भगवान् के क्रियाशील रूप) की उपस्थिति और शक्ति आवाहन करे कि वह उसकी सत्ता को अपने हाथ में

ले ले और अपनी शक्ति के प्रयोग-द्वारा उसकी चेतना को रूपान्तरित कर दे।"

चौथी पुस्तक 'प्रकाश की ओर' में कुछ उपयोगी सन्देश संकलित हैं जिन्हें अपना आदर्श मानकर व्यक्ति आध्यात्मिक पंथ में सफलतापूर्वक अग्रसर हो सकता है। उदाहरणार्थ कुछ वाक्य इस प्रकार हैं :—

"दूरतम की ओर आगे बढ़ो। उच्चतम की ओर ऊँचे चढ़ो। गंभीरतम में गहरे उतरो।—(प्रेम और अभीप्सा)

"आनन्द का रहस्य है आत्मदान। यदि तुममें कोई भाग आनन्दविहीन है, तो इसका तात्पर्य यह है कि उसने अपने आप को नहीं दिया है; वह अपने आपको अपने लिए रखना चाहता है।" —'पण्डित'

९—जयप्रकाश की विचार धारा—सम्पादक, श्री रामकृष्ण बेनीपुरी; प्रकाशक, पुस्तक-जगत, पटना; पृष्ठ ३२६; मूल्य ४) चार रुपए।

बापू ने एक बार कहा था—'जयप्रकाश हिन्दुस्तान में समाजवाद का आचार्य है। 'समाजवाद के इस आचार्य और अगस्त क्रान्ति के अग्रदूत की विचारधारा में अवगाहन करना प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी के लिए आवश्यक कहा जा सकता है। लाहौर किले में जयप्रकाश जी पर क्या बीती और उस नारकीय किले में भी वे भिन्न-भिन्न प्रश्नों पर किस तरह सोचते-विचारते रहे, यह जानना भी क्या कम दिलचस्प है?

श्री बेनीपुरी जी की सरस और सबल लेखनी के माध्यम से श्री जयप्रकाश जी की विचारधारा का प्रकाशन राष्ट्रप्रेमी हिन्दी पाठकों के लिए अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगा। समाजवाद की रूप रेखा, उसके सम्बन्ध में जयप्रकाश जी के विचार, बापू की हत्या; जिम्मेवार कौन, लाहौर किले की यंत्रणाएँ तथा सन् ४२ में गुप्त रहकर छात्रों और सिपाहियों के नाम जयप्रकाश जी द्वारा लिखे गए पत्रों आदि के अतिरिक्त स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात् जयप्रकाश जी के चार भाषण भी इस पुस्तक में संग्रहीत किए गए हैं। सम्पादक का श्रम श्लाघ्य है।

—देवीदयाल चतुर्वेदी

१०—कालिदास-प्रेरित शिल्प शृङ्गार (सचित्र)—मूल लेखक, श्री सी० शिवराम मूर्त्ति, अनुवादक, श्री श्यामसुन्दर द्विवेदी, एम० ए०, एल-एल० बी०; प्रकाशक, 'विक्रम' कार्यालय, उज्जैन (मालवा) पृष्ठ ५८, मूल्य १।)।

साहित्य और शिल्प के मर्मज्ञ श्री सी० शिवराम मूर्त्ति ने जिस ढंग से कालिदास की कोमलतम भावनाओं के चट्टानों या पत्थरों में अंकित होने का विवेचन अपनी इस छोटी-सी कृति में किया है, उससे जहाँ कवि की रागात्मक प्रवृत्तियों तथा चक्षु-सौन्दर्य (Ocular-Appreciation) के लिए अनेक शिल्प-चित्रों का परिचय मिलता है वहाँ यह एक विवाद का विषय भी स्वतः आ उपस्थित होता है कि क्या वास्तव में अन्तिम मौर्य-कालीन अवशेषों (तीसरी सदी ई० पू०) से लेकर खीचिंग के ग्यारहवीं शदी के एक प्रस्तर मूर्त्ति के उदाहरण तक जिन शिल्प-सम्बन्धी कृतियों का विवेचन यहाँ किया गया है वे सभी कालिदास की कविताओं से ही प्रेरित हैं। अधिकांश विद्वानों ने तो कालिदास को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन माना है; उस दशा में मौर्यों से लेकर गुप्तों के समय की मध्यवर्तिनी सभी कला-प्रवृत्तियों, जीवन के चित्रों अथवा मूर्त्ति-कला के विषय में लेखक की धारणा के लिए तो कहीं स्थान ही नहीं रह जाता। हाँ अजन्ता, एलोरा तथा अन्य गुप्तकालीन और बाद के कलांकनों में कालिदास का प्रभाव कुछ सीमा तक ढूँढ़ा जा सकता है। मेघदूत (२, ३९) के 'मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे—की स्पष्ट अभिव्यक्ति एलोरा के एक कला-खण्ड में तथा 'अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोः' (रघु० ६, ४३) एवं इस श्लोक-ललितविभ्रमबंध विचक्षणं सुरभिगंधपराजित केसरं। पतिषु निर्विविशुर्मधुमंगनाः स्मरसखं रसखंडनवर्जितं ॥ (रघु० ६, ३६)'का सजीव चित्रण अजन्ता की कला में हुआ है। परन्तु यहाँ भी यह कह सकना कठिन ही है कि किस अंश तक यहाँ के शिल्पियों पर कालिदास की काव्य-साधना का प्रभाव पड़ा।

संस्कृत-काव्य के अनेक वर्णन रूढ़िगत (Conventional) हैं। ऐसी स्थिति में केवल कालिदास ही क्यों, माघ, भारवि, भवभूति आदि से भी तो शिल्पियों को प्रेरणा मिली होगी। इसका निर्णय करना कि केवल कालिदास-प्रेरित शिल्प के उदाहरण क्या हैं, वस्तुतः उतना सरल नहीं है जितना लेखक-द्वारा मान लिया गया है!

यों कविता और शिल्प के तुलनात्मक अध्ययन एवं

उनके सहज सौन्दर्य की व्यापक रसानुभूति की दृष्टि से यह पुस्तिका काफी प्रिय हो सकती है। इसका हिन्दी-अनुवाद साधारणतः अच्छा हुआ है, पर भाषा-सम्बन्धी एवं मुद्रण के दोष तो हैं ही; कहीं-कहीं चित्रों की संख्या और श्लोकों के संकेत भी ठीक नहीं हैं। इस तरह की पुस्तकों का प्रकाशन और भी आकर्षक ढंग से होना चाहिए। ऐसा तभी संभव होगा जब मुद्रण तथा चित्र-योजना पर काफी ध्यान दिया जाए।—चन्द्रचूड़, एम० ए०

१२—साधक का संवाद—लेखक, श्री सत्यान्वेषी; प्रकाशक, श्री रमादत्त शुक्ल, बी० ए०, कल्याण मंदिर, कटरा, प्रयाग; मूल्य ३।।)—सजिल्द ४)।

भारत की प्रसिद्धि विशेषतया इसीलिए विश्व में रही है और है कि यही वह देश है, जहाँ अध्यात्म भावना पर न केवल गूढ़-गंभीर मनन किया गया, प्रत्युत उसका समुचित विकास भी हुआ। देश-देशान्तर के पर्यटक यहाँ आकर अवसर पाते ही सबसे पहले यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि भारत की आध्यात्मिकता का 'रहस्य' क्या है। यही नहीं, भारत के युवक या वयस्क नागरिक जब कभी विदेश जाते हैं, तो वहाँ विदेशी लोग घुमा-फिराकर उनसे भारत के रहस्यपूर्ण साधन-तत्त्व को ही जानने का प्रयत्न करते हैं। ऐसी दशा में भारतीय अपने यहाँ की उक्त विभूति से अपरिचित रहें, यह सर्वथा अवांछनीय ही माना जाएगा। खेद है कि पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध और पारस्परिक वर्ण-विद्वेष के कारण अधिकांश भारतीय भारत के अध्यात्मतत्त्व से बहुत कुछ अनभिज्ञ हैं। उदाहरण के लिए एक मंत्र-तंत्रविद्या और शक्ति-उपासना को ही लिया जा सकता है। इस विषय का साहित्य एक तो संस्कृत के दुर्गम्य ग्रंथों में छिपा हुआ है, दूसरे इसके ज्ञाता इसे 'गोपनीयता' के आवरण में सदियों से छिपाए रहे हैं—ऊपर से एक और मुसीबत यह है कि विदेशी सभ्यता के प्रभाव के कारण मंत्र-तंत्र के नाम से ही लोग चौंक पड़ते हैं और 'अन्ध-विश्वास' कहकर हँसी में उसे उड़ा देते हैं। इस प्रकार किसी समय की एक अत्यन्त उपयोगी और व्यावहारिक विद्या भारतीय हाथ से खो बैठे हैं। शक्ति-उपासना की भी यही दशा रही है। सुनी-सुनाई बातों पर इसे निकृष्ट और घृणित ठहरा दिया जाता है और प्रामाणिक साहित्य के अभाव में जिज्ञासु लोगों को भी प्रवाद पर विश्वास होने लगता है। प्रसन्नता की बात है कि 'कल्याण मंदिर' द्वारा प्रकाशित 'साधन-माला' नाम की मासिक पुस्तकमाला ने इस विषय पर समुचित प्रकाश डालने का काम आरंभ कर दिया है। 'साधक का संवाद' उक्त माला के प्रथम वर्ष की अन्तिम मणि है। इस पुस्तक में एक साधक के आत्मानुभवों का बड़े ही रोचक ढंग से वर्णन किया गया है। सारा वर्णन उपन्यास या कथा-साहित्य की भाँति सरस और साहित्यिक है। बीच-बीच में प्रकृति के दृश्यों का सुन्दर स्वाभाविक वर्णन लेखक की साहित्यिक मर्मज्ञता का परिचय देता है। परंतु सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह पुस्तक उपन्यास जैसा आनंद देती हुई 'शक्ति-उपासना' के गूढ़ तत्त्वों का बड़े ही सरल ढंग से परिचय करा देती है। एक बार इसे पढ़कर आध्यात्मिक क्षेत्र में और प्रवेश करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। मांस-मद्यादि पंचमकारों के महत्त्व के सम्बंध में जो वार्त्तालाप दो विभिन्न सांप्रदायिकों में हुआ है, वह अत्यन्त रोचक तो है ही, साथ ही पाठक को विचार की सामग्री भी प्रदान करता है। इसी प्रकार शक्ति-उपासना के स्वरूप, उसकी विशेषताओं आदि का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है, जिससे पाठक विषय के सम्बन्ध में अपनी एक धारणा बना लेने में सफल होता है।

निस्सन्देह सर्व-साधारण एवं विज्ञ सभी को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए क्योंकि इसके द्वारा हमें भारत के उस विषय की झलक मिलती है, जिसके ज्ञान के लिए सर जान उडरफ जैसे कितने ही विदेशी अपना सारा जीवन इस देश के पहाड़ों और मैदानों में साधकों के सत्संग में लगा चुके हैं। फिर आज की भौतिकता हमें जिस प्रकार विनाश की ओर लिए जा रही है, उसे देखते हुए आध्यात्मिक-धारा में अपने को विशुद्ध करने की आवश्यकता और भी अधिक है। शक्ति-उपासना अध्यात्म की वह धारा है, जिसमें भौतिकता को लिए हुए अध्यात्म लक्ष्य को प्राप्त करने का उपाय निर्दिष्ट हुआ है। अतएव 'साधक का संवाद' जैसी मनोरंजक साथ ही ज्ञान-वर्द्धक पुस्तकों की आज अत्यंत आवश्यकता है।

—भद्रशील शर्मा

सामयिक साहित्य

ग्राम-निवासियों को स्वराज्य की पहली किश्त

[गताङ्क से आगे]

स्पष्टीकरण—यदि कोई गाँव-सभा चाहे तो उपधारा (१) के वाक्यखंड (क) और (ग) के अधीन आध आना प्रति रुपया के हिसाब से एक टैक्स उस लगान पर भी जो आराजी के मालिकों को काबिल अदा होगा १।४ आने प्रति रुपया के हिसाब से लगाया जाएगा।

(३) उपधारा (१) के अधीन टैक्स ऐसे तरीके पर लगाए, तशखीस और वसूल किए जाएँगे और ऐसे समय पर अदा या वसूल होंगे जो नियत किए जाएँ।

मतालबों की वसूली, कोष (फंड) की रक्षा और हिसाब

३८—नियत किए हुए नियमों की पाबन्दी साथ गाँव-पंचायत, पंचायत के टैक्सों और मतालबों की वसूली, कोष (फंड) की रक्षा और हिसाब-किताब रखने का प्रबंध करेगी।

३९—(१) पंचायती अदालत के खर्च उस क्षेत्र के हर यूनिट के गाँव-कोष (फंड) से वसूल किए जाएँगे।

(२) ऐसी सारी रकमें किसी मुकद्दमे, नालिश या कानूनी कारवाई के सिलसिले में कोर्ट फीस के तौर पर वसूल की गई हों या जो जुर्माने के तौर उन मुकद्दमों में वसूल की गई हों जिनकी पंचायती अदालत ने सुनवाई की हो और जिनका उसने फैसला किया हो, प्रान्तीय सरकार बराबर अनुपात से उन गांव-सभाओं को दे देगी जो उस पंचायती अदालत के अधिकार-क्षेत्र में हों।

बजट

४०—नियमों के अनुसार हर गाँवसभा के हिसाबों की हर वर्ष जांच की जाएगी।

४१—(१) (क) प्रत्येक गाँव-पंचायत प्रतिवर्ष आगामी वर्ष के लिए, जो हर पहली अप्रैल से प्रारम्भ होगा, अपने आय-व्यय का अनुमानित बजट तैयार करके गांव-सभा की 'खरीफ' फसल की बैठक में प्रस्तुत करेगी।

(ख) प्रत्येक गांव-पंचायत अपनी एक रिपोर्ट तैयार करेगी जिसमें वास्तविक और आनुमानित आय-व्यय का हिसाब उस वर्ष के लिए दिया होगा जो बैठक से पहले गत मार्च की ३१ तारीख को समाप्त हुआ।

(२) गाँवसभा नियत ढंग के अनुसार उस बजट को जो उसके सामने प्रस्तुत किया जाए स्वीकार कर सकती है या उस पर फिर से विचार करने के लिए उसे ऐसे आदेशों के साथ जिनका देना वह उचित समझे, गाँव-पंचायत के पास वापस भेज सकती है और इसी प्रकार वह रिपोर्ट या किसी दूसरे मामले के बारे में सिफारिशी प्रस्ताव भी स्वीकार कर सकती है।

(३) यदि बजट फिर से विचार करने के लिए गाँव-पंचायत के पास भेज दिया जाए, जैसा कि ऊपर बताया गया है, तो सभापति गाँव-सभा की एक असाधारण बैठक करेगा जो उक्त वार्षिक बैठक की तारीख से दो सप्ताह के अन्दर होगी और गाँव-पंचायत उक्त बैठक में उस बजट को ऐसे संशोधनों के साथ, जो सभा के आदेशों के अनुसार आवश्यक हों, फिर से प्रस्तुत करेगी और तब गाँव-सभा नियत ढंग के अनुसार बजट को स्वीकृत करेगी।

इस संबन्ध में बनाए हुए नियमों के अधीन बजट नियत अधिकारी को स्वीकृति के बाद कार्यान्वित होगा और कोई गाँव-पंचायत नियत अधिकारी की स्वीकृति से बजट में परिवर्तन या संशोधन किए बिना बजट की किसी मद में उस रकम से अधिक खर्च कर सकती है, जो उसी मद में स्वीकृत की गई हो।

पंचायती अदालत का क्षेत्र

४२—प्रान्तीय सरकार या नियत अधिकारी जिले को ऐसे क्षेत्रों में बांटेगा जिनमें गाँव सभाओं की अधिकार-सीमा के अधीन उतने स्थानीय क्षेत्र सम्मिलित हों जितने उसकी राय में आवश्यक हों और प्रत्येक ऐसे क्षेत्र के लिए एक पंचायती अदालत स्थापित करेगी या करेगा।

पर शर्त यह है कि हर इलाके में गांव-सभाओं के क्षेत्र जहाँ तक संभव हो, एक दूसरे से मिले हुए हों।

पंचायती अदालत का विधान

४३—किसी क्षेत्र की प्रत्येक गाँव-सभा उक्त क्षेत्र की पंचायती अदालत में पंचों की हैसियत से काम करने के लिए नियत योग्यता रखनेवाले पांच ऐसे प्रौढ़ चुनेगी जो अस्थायी रूप से उसके अधिकार-क्षेत्र के भीतर रहने-वाले हों। इसी क्षेत्र के सारे गाँव-सभाओं के इस प्रकार चुने हुए पंचों का पंचमंडल होगा।

सरपंच का चुनाव

४४—धारा ४३ के अधीन चुने हुए सब पंच पंचायती अदालत के सरपंच का काम करने के लिए अपने में से एक ऐसा व्यक्ति चुनेंगे जो कार्यवाहियों को लिखने की योग्यता रखता हो।

पर शर्त यह है कि ऐसे चुनाव से पैदा होनेवाला कोई झगड़ा (निर्णय के लिए) उस नियत अधिकारी को सुपुर्द किया जाएगा जिसका निर्णय अन्तिम होगा और जिस पर किसी कानूनी अदालत में आपत्ति न की जा सकेगी।

पंचायती अदालत की अवधि

४५—प्रत्येक पंच अपने चुनाव की तारीख से तीन वर्ष की अवधि के लिए होगा।

पदग्रहण की शपथ

४६—धारा ४३ के अधीन चुने हुए प्रत्येक पंच को, चुने जाने के बाद जितनी जल्दी संभव हो, नियत ढंग के अनुसार पदग्रहण की शपथ लेनी पड़ेगी।

इस्तीफे

४७—कोई पंच अपने ओहदे का इस्तीफा नियत अधिकारी को दे सकता है।

अलग किया जाना

४८—(१) नियत अधिकारी नियत ढंग के अनुसार नियत किए हुए कारणों के आधार पर किसी भी समय अलग कर सकता है।

(२) किसी पंच को जिसे उपधारा (१) के अधीन अलग किया गया हो, ३ साल तक दुबारा पंच चुने जाने का अधिकार न होगा।

४९—(१) सरपंच प्रत्येक मुकदमे, नालिश या कार-रवाई के लिए पंच मंडल (पैनेल) में से पांचों का एक बेंच नियुक्त करेगा, पर शर्त यह है कि बेंच में कम-से-कम एक पंच ऐसा व्यक्ति होगा जो सहायकों और काररवाइयों को लिखने की योग्यता रखता हो।

(२) प्रत्येक ऐसी बेंच में एक पंच ऐसा होगा जो गाँव-सभा के उस इलाके का रहनेवाला हो जिसमें वह व्यक्ति रहा हो जो किसी नालिश या कानूनी काररवाई में मुद्दई हो या कि मुकदमे में मुस्तगीस हो और इसी तरह एक पंच ऐसा होगा जो गांव-सभा के उस क्षेत्र में रहता हो और तीन पंच ऐसे होंगे जो गाँव-सभा के उन क्षेत्रों में रहनेवाले हों जिनमें दोनों फरीकों में से कोई न रहता हो, जहाँ अपराध किया गया हो और एक पंच गांव-सभा के उस क्षेत्र का रहनेवाला होगा जिसमें अभियुक्त रहता हो और तीन पंच उन क्षेत्रों के रहनेवाले होंगे जो ऊपर बताये गए क्षेत्रों के अलावा दूसरी जगह रहते हों।

(३) कोई पञ्च या सरपंच किसी ऐसी नालिस, मुकदमे या काररवाई में भाग नहीं लेगा, जिसमें वह या उसका निकट संबंधी या मालिक या नौकर या रोजगार में उसका साझी एक पक्ष में हो या जिसमें उनमें से किसी का कोई व्यक्तिगत स्वार्थ हो।

(४) इस धारा की शर्तों के होते हुए भी प्रान्तीय सरकार किसी झगड़े का निर्णय करने के लिए, जो विभिन्न पक्षों या भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की गाँव-सभाओं के बीच में पैदा हो, या किसी अन्य प्रयोजन के लिए नियमों के अनु-सार खास बेंचों का विधान नियत कर सकती है।

इत्तिफाकिया खाली होनेंवाली जगहों का भरा जाना

५०—यदि किसी पंच की जगह उसकी मृत्यु हो जाने,

उसके अलग किए जाने या इस्तीफा दे देने के कारण खाली हो तो वह जगह धारा ४६ में दिए हुए ढंग के अनुसार भरी जाएगी और यदि जगह खाली करनेवाला पंच सरपंच हो तो धारा ४७ के अनुसार एक सरपंच चुना जाएगा।

५१—(१) दण्डविधि-संग्रह सन् १८९८ ई० में किसी बात के होते हुए भी इस ऐक्ट के अधीन दायर किया हुआ प्रत्येक मुक़द्दमा उस क्षेत्र की पंचायती अदालत के सामने दायर किया जाएगा जिसमें अपराध किया गया हो।

(२) दीवानी-नियमसंग्रह सन् १९०८ ई० में भले ही कोई बात हो, इस ऐक्ट के अधीन दायर किया हुआ प्रत्येक मुक़द्दमा उस क्षेत्र की पंचायती अदालत के सामने दायर किया जाएगा जिसमें मुद्दाअलेह या यदि एक से अधिक मुद्दाअलेह हों तो उनमें से कोई एक मुद्दाअलेह साधारणतया रहता हो या मुक़द्दमा दायर करने के समय वहाँ कारबार करता हो, भले ही उसके कार्य का कारण कहीं पैदा हुआ हो।

(३) ऐक्ट मालगुजारी संयुक्त प्रान्त सन् १९०१ ई० में भले ही कई बात हो, तहसीलदार धारा ७० के अधीन प्रत्येक कार्रवाई को उस स्थानीय क्षेत्र की पंचायती अदालत के सुपुर्द करेगा जिसमें संबंधित आराज़ी स्थित हो और पंचायती अदालत ऐसी कारखाइयों का नियत ढंग से फैसला करेगी।

पर शर्त यह है कि जहाँ एक से अधिक पंचायती अदालतों के स्थानीय क्षेत्र सम्मिलित आराज़ी से संबंधित हों वहाँ वह उस पंचायती अदालत की अधिकार-सीमा में होगी, जिसमें दर्ज किया हुआ असामी या मालिक साधारणतया रहता हो, या यदि वह उनमें से किसी में न रहता हो तो तहसीलदार उन कार्रवाइयों को उस क्षेत्र की पंचायती अदालत के सुपुर्द करेगा जिसमें आराज़ी का अधिक भाग स्थित हो।

५२—(१) नीचे दी हुई धाराओं के अधीन यदि अपराध किसी पचायती अदालत की अधिकारसीमा में किया जाए तो उनकी और साथ साथ ऐसे अपराधों के करने के लिए जो प्रोत्साहन दिए जाएँ या उनके करने के लिए जो प्रयत्न किए जाएँ तो उनकी सुनवाई का अधिकार ऐसी पचायती अदालत को होगा—

(क) भारतीय दंडविधान, सन् १८६० ई० की धाराएं १४०, १६०, १७२, १७४, २७७, २७९, २८३, २८५, २८६, २८९, २९०, २९४, ३२३, ३३४, ३३६, ३४१, ३५२, ३५६, ३५७, ३५८, ३७४, ३७९, ४०३, ४११ (जब कि चोरी या गबन किए हुए माल का जहाँ तक कि धारा ३७९, ४०३ और ४११ का संबंध है, मूल्य ५० रुपया से अधिक न हो) ४२६, ४२८, ४३०, ४४७, ४४८, ५०४, ५०६, ५०९, ५९९ और ५१०।

(ख) जानवरों के अनधिकार प्रवेश ऐक्ट, सन् १८७१ ई० की धारा २० से २४ तक;

(ग) संयुक्त प्रांत की डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की प्रारंभिक शिक्षा के ऐक्ट, सन् १९२६ ई० की धारा १० की उपधारा (१);

(घ) इस ऐक्ट या इस ऐक्ट के अधीन बनाए गए किसी नियम के अधीन कोई अपराध;

(ङ) आम मजमे में जिमारबाजी (सार्वजनिक रूप से जुआ खेलने) के ऐक्ट, सन् १८६७ ई० की धारा ३, ४ और ७ के अधीन कोई अपराध;

(च) प्रांतीय सरकार-द्वारा घोषित किए गए किसी दूसरे कानून के अधीन कोई दूसरा अपराध, जिसकी सुनवाई का अधिकार किसी पंचायत अदालत को हो;

(२) कोई मुक़द्दमा जिसका सम्बन्ध भारतीय दंडविधान, सन् १८६० ई० की धारा १४३, १४५, १५१, या १५३ के अधीन किसी अपराध से हो और जो किसी अदालत में विचाराधीन हो, सुनवाई के लिए पंचायती अदालत को भेजा जा सकता है, यदि ऐसी अदालत की राय में अपराध गंभीर न हो।

शांति बनाए रखने के लिए ज़मानत

५३—(१) जब किसी पचायती अदालत के सरपंच के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी व्यक्ति की ओर से शांति भंग किए जाने या सार्वजनिक शांति में बाधा डालने की आशंका है तो वह ऐसे व्यक्ति से जवाब तलब कर सकता है कि वह कारण बताए कि क्यों न उससे ऐसी अवधि तक के वास्ते शान्ति बनाए रखने के लिए जो १५ दिन से अधिक की न हो, ऐसा मुचालका ले लिया जाए जो १०० रुपए से अधिक का न हो और जो जामिनों सहित या जामिनों के बिना हो सकता है।

(२) सरपंच को मान्य होगा कि ऐसी नोटिस जारी करने के बाद तीन दिन के भीतर एक बेंच कायम करे कि

वह मामले की काररवाई करे, पर शर्त यह है कि बेंच का कम-से-कम एक पंच उस गाँव-सभा का हो जिसमें ऐसा व्यक्ति रहता हो।

बेंच को अधिकार है कि उस आज्ञा को बहाल रखे या ऐसे व्यक्ति या ऐसे गवाहों का बयान सुनने के बाद जिन्हें वह पेश करना चाहें, नोटिस को मंसूख कर दे।

दंड

५४—(१) कोई पंचायती अदालत कारावास का दंड नहीं दे सकती।

(२) कोई पंचायती अदालत जुर्माना कर सकती है जो १०० रुपये से अधिक न होगा लेकिन वह जुर्माना न अदा किए जाने की दशा में कारावास का दंड नहीं दे सकती।

नालिशों की सुनवाई, इत्यादि

५५—कोई अदालत किसी दावे या नालिश की सुनवाई न करेगी जो इस ऐक्ट के अधीन पंचायती अदालत के सुनने के काबिल हो जब तक कि धारा ८५ के अधीन सब-डिविजनल मैजिस्ट्रेट या मुंसिफ ने कोई आज्ञा न दी हो।

कुछ सूरतों में फौजदारी की काररवाइयों को पंचायती अदालत में भेजना

५६—यदि फौजदारी के किसी मुकदमे के बीच में, जो किसी मैजिस्ट्रेट के सामने पेश हो, किसी समय भी यह मालूम हो कि इस मुकदमे की सुनवाई किसी पंचायती अदालत को करना चाहिए तो वह उस मुकदमे को तुरन्त ही उस पंचायती अदालत के पास भेज देगा जो मुकदमे की सुनवाई आरम्भ से करेगी।

इस्तगासों को सरकारी तौर पर खारिज करना

५७—पंचायती अदालत किसी भी इस्तगासे को खारिज कर सकती है यदि मुस्तगीस का बयान और ऐसी गवाही जिसे वह पेश करे, लेने के बाद उसको इस बात का विश्वास हो जाए कि वह इस्तगासा परेशान करने के लिए दायर किया गया है या निरर्थक और झूठा है।

इस्तगासे का वापस करना

५८—यदि पंचायती अदालत को किसी समय भी यह मालूम हो—

(क) कि उसको उस मुकदमें की सुनवाई का अधिकार नहीं है जो उसके सामने पेश है या

(ख) कि वह अपराध ऐसा है जिसके सम्बन्ध में वह उचित दंड नहीं दे सकती या

(ग) कि वह मुकदमा इस तरह का है या इतना पेचीदा है कि उसकी सुनवाई किसी बाजाब्ता अदालत को करनी चाहिए तो वह उस मुस्तगीस को वह इस्तगासा वापस कर देगी और इस बात का आदेश करेगी कि वह उसको ऐसे सब-डिविजनल मैजिस्ट्रेट के सामने पेश करे जिसे ऐसे मुकदमे की सुनवाई का अधिकार हो।

कुछ ऐसे व्यक्ति जिनके विरुद्ध मुकदमों की सुनवाई पंचायत नहीं कर सकती

५९—कोई पंचायती अदालत किसी ऐसे अपराध की सुनवाई नहीं करेगी जिसमें कि मुलजिम (अभियुक्त) को—

(क) पहिले कभी किसी अपराध के लिए तीन वर्ष या उससे अधिक का या दोनों में किसी भी प्रकार के कारावास का दण्ड दिया गया हो।

(ख) पहिले कभी किसी पंचायती अदालत से चोरी के अपराध में जुर्माने का दण्ड दिया गया हो या।

(ग) मुलजिम जरायम पेशा जातियों के ऐक्ट, सन १९११ ई० की धारा ४ के अधीन जरायम पेशा जाति का रजिस्टर्ड मेम्बर हो; या

(घ) (दण्ड विधि-संग्रह) जाब्ता फौजदारी सन् १८९८ ई० की धारा १०९ या ११० के अधीन अच्छा चालचलन रखने के लिए उसका मुचलका हो चुका हो, या

(ङ) जुआ खेलने के अपराध में सजा मिली हो।

मुस्तगीसों को मुआवजा

६०—जुर्माने का दंड देने की दशा में पंचायती अदालत यह आज्ञा दे सकती है कि जुर्माने से वसूल की हुई रकम का कोई भाग या पूरी रकम—

(क) उन खर्चों को पूरा करने के लिए काम में लाई जाए जो मुस्तगीस ने उचित रूप से मुकदमे में खर्च किया हो, और

(ख किसी ऐसे माली नुकसान या क्षति की पूर्ति

(मुआवजे) में दी जाए जो अपराध किए जाने के कारण हुई हो।

मुलजिम (अभियुक्त) को मुआविजा

६१--यदि तहकीकात के बाद किसी पंचायती अदालत को इस बात का विश्वास हो जाए कि उसके सामने केवल परेशान करने के लिए निरर्थक और झूठा मुकद्दमा पेश किया गया था तो वह उस मुस्तगीस को यह आज्ञा दे सकती है कि मुलजिम (अभियुक्त) को ऐसा मुआविजा अदा करे जो पाँच रुपए से अधिक न हो; जैसा कि वह उचित समझे।

मुजरिमों (अपराधियों) को आजमाइश पर रिहा करना

६२--पंचायती अदालत संयुक्त प्रांत के 'फर्स्ट आफिण्डर्स प्रोबेशन ऐक्ट सन् १९३८ ई० की धारा ४ के अधीन अधिकारों को काम में ला सकती है।

मजिस्ट्रेटों के भेजे हुए मुकद्दमों की तहकीकात

६३—जाब्ता फौजदारी (दंड-विधान संग्रह सन् १८९८ ई० की धारा २०२ के अधीन कोई मैजिस्ट्रेट यह आदेश दे सकता है कि पंचायती अदालत किसी ऐसे मुकद्दमे में जिसमें कि अपराध उस पचायती अदालत के अधिकारक्षेत्र में हुआ हो, तहकीकात करे और पंचायती अदालत का यह कर्त्तव्य होगा कि वह उस मुकद्दमे की तहकीकात करे और अपनी रिपोर्ट उक्त मैजिस्ट्रेट के पास भेज दे।

अधिकार-सीमा

६४--यदि नालिश की मालियत १०० रु० से अधिक न हो तो पंचायती अदालत नीचे दी हुई किसी भी नालिश की सुनवाई कर सकती है:—

(क) उस मुआहिदा के अतिरिक्त जो अचल सम्पत्ति (गैरमनकूला जायदाद) के बारे में हो, उस रकम की हर एक नालिश जो किसी मुआहिदा पर वाजिबुलअदा हो,

(ख) किसी चल सम्पत्ति (मनकूला जायदाद) या उसकी कीमत की वापसी के लिए नालिश;

(ग) किसी चल सम्पत्ति के नाजायज तौर पर ले लेने या उसको नुकसान पहुँचाने के मुआवजे के लिए नालिश और

(१) उस क्षति के लिए नालिश जो जानवरों के अनधिकार प्रवेश के कारण हुई हो।

(२) प्रांतीय सरकार या नियत अधिकारी सरकारी गजट में सूचना देकर यह आदेश दे सकती है कि किसी भी पंचायती अदालत को ऐसी कुल नालिशों की सुनवाई का अधिकार होगा जिनकी व्याख्या सूचना में कर दी गई हो और जो ५०० रु० से अधिक मालियत की न हों।

फरीकों (पक्षों) की रजामंदी से अधिकार-सीमा का विस्तार

६५--किसी नालिश के फरीक एक लिखित राजीनामा-द्वारा धारा ८२ में दी हुई व्याख्या की हुई किसी भी नालिश को इस बात का विचार किए बिना कि उसकी मालियत क्या है, निर्णय के लिए पंचायती अदालत के सामने पेश कर सकते हैं और निर्धारित नियमों की पाबन्दी के साथ पंचायती अदालत को इस ऐक्ट के अधीन उक्त नालिश में कार्यवाही करने और उसका फैसला करने का अधिकार होगा।

नालिश जो पंचायती अदालत की अधिकार-सीमा से बाहर होगी

६६--पंचायती अदालत को नीचे दी हुई किसी भी नालिश की सुनवाई करने का अधिकार न होगा—

(१) कोई नालिश शरीकदारी के हिसाब के बकाया के सम्बन्ध में, जब तक कि उस बकाया को फरीकों या उनके ऐजेंटों ने खारिज न कर दिया हो;

(२) किसी गैर-बसीयती जायदाद में किसी हिस्से या हिस्से के किसी भाग के लिए नालिश या किसी वसीयतनामे के अधीन किसी हिवा बिल बसीयत या उसके किसी भाग के बारे में नालिश;

(३) कोई नालिश जो श्रीमान् सम्राट् या किसी जन-सेवक के विरुद्ध या उनकी ओर से उन कामों के बारे में की जाए जो उन्होंने सरकारी कर्त्तव्यों को करने में किए हों;

(४) कोई नालिश जो कोई नाबालिग (अल्पवयस्क), या कोई ऐसा व्यक्ति जिसका दिमाग खराब हो दायर करे या उसकी ओर से दायर की जाए;

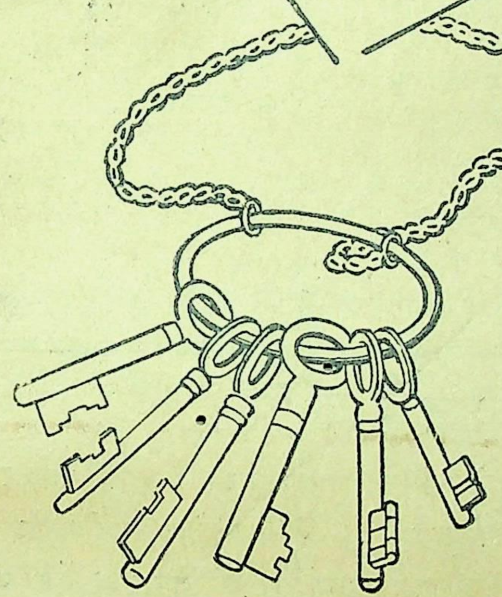
(५) कोई नालिश जिसकी सुनवाई संयुक्त प्रांत के ऐक्ट कब्जा आराजी, सन् १९३९ ई० के अधीन कोई अदालत माल कर सके।

(क्रमशः)

प्रकाशक और मुद्रक—के० मित्रा, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

सौन्दर्य की कुंजी



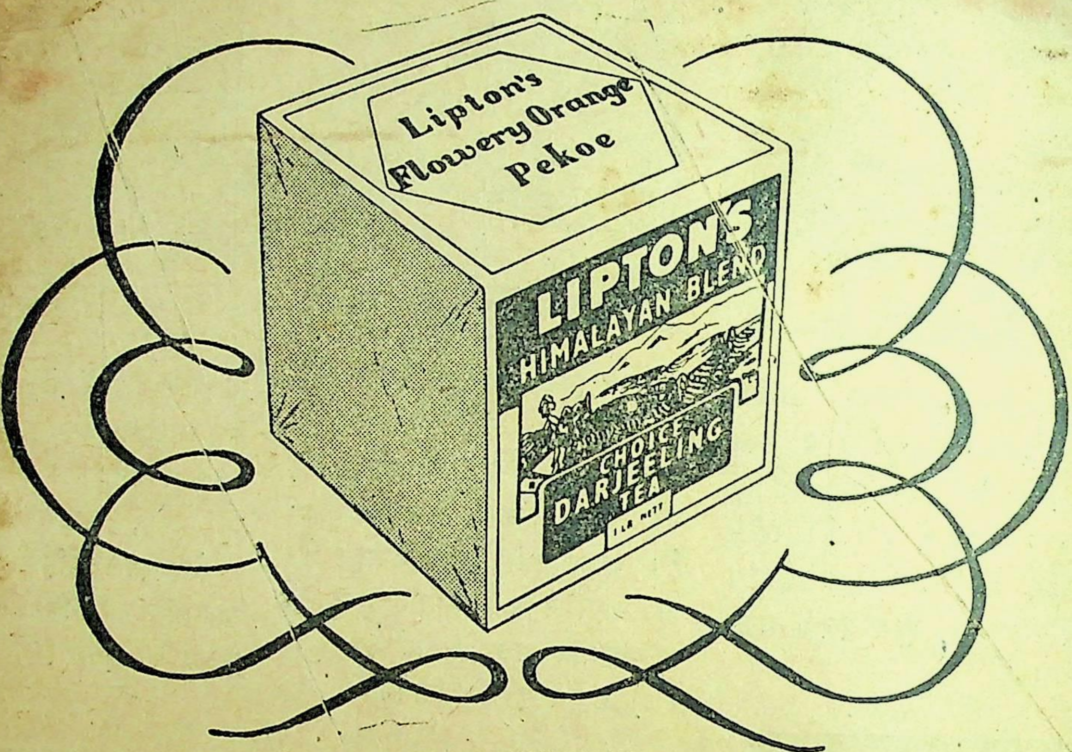


यह सच ही कहा गया है कि सुन्दर स्त्री सबसे अनुपम दर्शनीय सृष्टि है। प्रत्येक स्त्री का स्वयं अपने और समाज के प्रति यह कर्तव्य है कि वह अधिक से अधिक सुन्दर दिखाई दे, और शारीरिक सौंदर्य की विलक्षणताओं को खोलने की चाभियाँ हैं **'कलकेमिको'** की वे बेजोड़ वस्तुएँ, जो आपको सुन्दर, लहराते हुए, सिल्क की तरह मुलायम केश और साफ़ चिकनी त्वचा तथा गुलाब की कली जैसा कोमल और मनोरम वर्ण प्रदान करती हैं!

साथ ही वे बनी भी भारतवर्ष की हैं

मार्गो सोप
नीम टूथ पेस्ट
सिल्ट्रेस श्याम्पू
कैस्टोरल केश तैल
लावणि स्नो और **क्रीम**
रेणुका टायलेट पाउडार

दि कलकटा केमिकल कं० लि०



लिपटन

माने

अच्छी चाय

हमारी नई पुस्तकें

सङ्गति

आकाशरंजन मेहता नामी डाक्टर थे। उनकी खासी आमदनी थी। किन्तु उनकी अर्द्धाङ्गिनी सुशिक्षित हेमप्रभा यह समझती थी कि डाक्टर मेहता सिर्फ आविष्कार की धुन में रहते हैं; मेरे पिता के दिये धन से ही गुजर होता है। इससे वह सिर-चढ़ी स्त्री बन गई थी। और डा० मेहता उसकी फटकार सुनकर भी भीगी बिल्ली बने हुए अपने काम में लगे रहते थे। उनका मित्र जौहरी कई वर्ष विलायत में रह आया था। उन्होंने हेमप्रभा से उसका परिचय करा दिया। परिचय इतना घनिष्ठ हो गया कि उससे बचने को डा० मेहता आँखों का इलाज कराने के बहाने दूसरे प्रान्त में चले गये। इधर उसका रंग गहरा होता गया। कई महीने बाद डा० मेहता नकली अन्धे बनकर लौटे और इसी रूप में उन्होंने हेमप्रभा के खोये हुए प्रेम पर अधिकार किया। लेखक ने विलक्षण कथानक की सृष्टि करके गिरते हुए चरित्र को समुन्नत बनाया है। मूल्य १॥) एक रुपया आठ आने।

यात्री

श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बी० ए० ने इस पुस्तक में लिखा है कि हम सभी अनन्त पथ के यात्री हैं। यह जीवन-यात्रा कब आरम्भ हुई और कहाँ इसकी समाप्ति होगी। लेखक ने क्यों लिखूँ, जीवन-पथ पर, स्मृति और शिक्षक-जीवन आदि २० शीर्षकों में विभिन्न विषयों पर परिमार्जित भाषा में उच्च विचार प्रकट किये हैं। यात्री अपने ढंग की अनुपम पुस्तक है। सचित्र आवरण की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

अनातोले फ्रांस की चुनी हुई कहानियाँ

फ्रांस के इस नामी कहानी लेखक की प्रतिभा का अनुमान पाठकों को छाया-सुन्दरी, उसका पति, रूप की परी, मदारी, पेरिस की सुन्दरी और माल आदि कहानियों से लगेगा। प्रत्येक कहानी बेजोड़ है। ये कहानियाँ मनोरंजन के साथ ही उपकार भी करेंगी। मूल्य १) एक रुपया।

विषवृक्ष

यह सुप्रसिद्ध उपन्यास-प्रणेता रायबहादुर बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का बढ़िया उपन्यास है। इसका हिन्दी रूपान्तर किया है कृतविद्य श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने। इस उपन्यास में विषवृक्ष है कुन्दनन्दिनी जो थोड़ी अवस्था में अनाथ हुई और नगेन्द्र बाबू का आश्रय पाकर उनके रिश्तेदार से ब्याही गई। फिर सत्रह साल की उम्र में विधवा हो गई। इसके रूप पर नगेन्द्र बाबू ऐसे रीझे कि उसके साथ विधवा-विवाह कर लिया। उपन्यास की भाषा और कथानक सभी विचित्र है। मूल्य २) दो रुपये।

नवदुर्गा

नवदुर्गा बंगाली पण्डित की बेटी थी। उसके विवाह की चिन्ता में माँ-बाप और बेटी तीनों घर से कलकत्ते के लिए चले। रास्ते में केदारेश्वर तीर्थ में ठहर गये। वहाँ के महन्त अम्बिकाचरण पुरी ने नवदुर्गा को प्राप्त करने के लिए जाल रचा। अन्त में महन्त का चरण चाकर अधरचन्द्र मुखोपाध्याय 'मियाँ की जूती और मियाँ का सिर' की कहावत के अनुसार महन्त जी से खासी रकम ऐंठकर और नवदुर्गा को विधि से पत्नी बनाकर चलता हुआ। लेखक ने महन्त जी की जो दुर्गति काशी में लाकर कराई है उससे पाठक विस्मित और खिन्न हुए बिना न रहेंगे। मूल्य १।) एक रुपया चार आने।

हार या जीत

इस उपन्यास में लेखक डा० व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०, डी० फिल० ने एक देहाती लुहार की अल्पवयस्क बेटी को घटनाक्रम से, अनाथ दशा में, देहात से महराजगंज की रानी पृथाकुँवरि के आश्रय में पहुँचा दिया है। वहाँ रानी की कृपा से इस लड़की ने विद्या पढ़ी। फिर इसमें उन गुणों का विकास हुआ जिससे मनुष्य सभ्य होकर सम्मान पाता है। इसने असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और अन्त में कलकत्ता जाकर नौकरी कर ली। कई पुस्तकें लिखीं, विदेश-यात्रा के बाद रानी के कुँवर की प्रार्थना पर उससे विवाह किया। मूल्य २) दो रुपये।

मिलने का पता—मैनेजर इण्डियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद

Per Copy -/10/- annas and Annual 7/8/- SARASWATI—Regd. No. A—248

ान पर बना

ी



सरस्वती

जुलाई ४९

Per C



३७ वनस्पति युक्त तत्त्वों से बनाया हुआ

कामिनिया आइल (रजिस्टर्ड)

यह केश तेल विशुद्ध और प्रसन्नता वर्धक जड़ी, बूटियों और औषधियों से बनाया गया है। यह सुन्दरता को बढ़ाता, बालों को गिरने से बचाता तथा आकार प्राकृतिक रंग कायम रखता है और मस्तक के लिए शीतल सुगन्धि में अद्वितीय है उसके अलावा इसकी सुगन्ध अत्यन्त मीठी और मनमोहक है।

इत्रों का बादशाह

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

यह बड़े सुन्दर ताजे फूलों से बनाया गया है जो मोहित कर देनेवाली खुशबू देता है। रूमाल पर केवल दो बूँद गिरा देने से ही आपके चारों ओर हाल के चुने हुए फूलों की खुशबू फैल जायगी।

चेहरे की खूबसूरती तथा मोहकता बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक इलाज

कामिनियास्नो (रजिस्टर्ड)



हिम-शीकरसा शीत और श्वेत तथा चकचकित यह क्रीम चेहरे के ऊपर मालिश करने से खील फुन्सियाँ, दाग, श्यामता आदि दूर करके चमड़ी चमकीली, स्वच्छ और चेहरा आकर्षक बनता है। सुन्दरता प्रिय स्त्रियों के लिए अत्यन्त आवश्यकीय सिद्ध हो चुका है। पुरुषों को भी हजामत बनाने के बाद इस क्रीम को चेहरे पर मालिश करने से चर्म हमेशा के लिए रेशम-सा मुलायम रहता है। एक बार इस्तेमाल कर परख कीजिए।

'नहाने के लिए उम्दा खुशबूदार साबुन'



कामिनिया ह्वाइट रोज सोप (रजि०) गुलाब की खुशबू का साबुन।
कामिनिया सन्दल सोप (रजि०) चन्दन की खुशबू का साबुन।
कामिनिया लवेण्डर सोप (रजि०) फूलों की खुशबू का साबुन।
दिल बहार सोप (रजि०) बेला चमेली की खुशबू का साबुन।

इनके इस्तेमाल से चमड़ी स्वच्छ और मुलायम बनती है और मधुर खुशबू से तबीयत भी प्रसन्न रहती है।

एँग्लो इण्डियन ड्रग एंड केमिकल कम्पनी,
२८५ जुमा मसजिद, बम्बई



शुद्ध बादामरोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इञ्च वृद्धि।
६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश।

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है।

दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं।

चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इञ्च बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का २।) है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिङ्ग पृथक्। ६ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजी जाएँगी। अधिक के लिए ५) पेशगी भेजिए और अपने रेलवे स्टेशन का नाम लिखिए।

प्रयोग करने वालों की सम्मतिः—

अनेक कम्पनियों की लम्बी-चौड़ी तारीफें पढ़कर मेरा विश्वास उठ चुका था, पर आपकी अलकपरी को मैंने प्रशंसा के अनुरूप ही गुणकारी पाया। इसके लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें और तीन शीशियाँ शीघ्र भेज दें।
—राजकुमारी लालन, राजसदन, मैनपुरी।

Alak Pari is giving much much satisfactory improvement, kindly despatch 6 Phials of it more.
Chadra P. Sethi B. A.
Ramnagar, Lahore.

अपनी पत्नी के लिये अलकपरी मँगाई थी। बहुत लाभ हुआ और बाल बढ़े भी खूब! कृपया १२ शीशियाँ और भेजें।
—गोस्वामी मुकुन्द शर्मा, बड़ा मन्दिर, बम्बई २।

I found Alak Pari to be one of the excellent oils. In fact it has shown well progress in the hair and satisfied me to the most. Kindly despatch 6 Phials more.
Miss Malini V. Nagpurkar, Dadar.

पूर्व आपके यहाँ से अलकपरी मँगाई थी। बहुत लाभकारी प्रमाणित हुई। १ दर्जन शीशियाँ और भेज दें।
—गोस्वामी श्री० १०८, श्री गिरधरीलाल जी महाराज, झबुआ स्टेट।

प्रत्येक बड़े शहर में दूकानदारों के पास मिलती है। न मिलने पर इस पते से मँगाइए—

व्यवस्थापिका—'अलकपरी', नया कटरा, इलाहाबाद।


महिलाओ के लिए गुलदान्ना
खटाऊ
सौंदर्ययुक्त
वॉयल्स

महात्माजी का चमत्कार

प्रेमवटी ने अपनी खूबी से सारी दुनिया में तहलका मचा दिया

कांग्रेस की राय

(प्रेमवटी वास्तव में एक अद्वितीय औषधि है। पहले हमें इस औषधि पर इतना विश्वास न था, किन्तु जब हमने इसका स्वयं परीक्षण किया तब हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह औषधि विज्ञापन में दिये गये तमाम रोगों की केवल एक मात्र अचूक औषधि है। हम आशा करते हैं कि भविष्य में यह कम्पनी इससे भी उत्तम औषधियों का निर्माण कर जनता को लाभ पहुँचायेगी।—कांग्रेस देहली)

भारत के योगियों ने वनों और पर्वतों की कन्दराओं में रहकर वह चमत्कार दिखलाये हैं जिससे बड़े-बड़े वैज्ञानिक और चिकित्सक हैरत में आ गये हैं। आधुनिक चिकित्सकों को जब कोई रोग की औषधि से सफलता नहीं मिलती तब वह लाइलाज घोषित कर देते हैं। परन्तु महात्मा लोग जड़ी-बूटियों की सहायता से मुर्दे को भी जिला देने का दावा करते हैं। भाइयो, इसे ध्यान से पढ़ो तथा अपने इष्ट-मित्रों को सुनाओ। यह लेख जो लिखा गया है, कोई गप्प नहीं है बल्कि मेरे जीवन की चन्द घटनाएँ हैं जो आपके सम्मुख रखता हूँ। मेरा जन्म एक धनी परिवार में हुआ। अपने पिता का लाड़ला पुत्र होने के कारण मैं धन और व्यसन में घिरा रहता था, लेकिन फिर भी मैं सुखी नहीं था। कुसंगत में पड़कर मुझे जरियान और प्रमेह रोग हो गया। पहले तो एक दो साल मैंने लोकलाज के कारण अपना भेद छिपाये रखा परन्तु रोग ने भयानक सूरत अख्तियार कर ली। अब मैं घबड़ा उठा, संसार में चारों ओर अँधेरा मालूम होने लगा तब मेरी आँखें खुलीं। इलाज शुरू किया गया। बड़े-बड़े डाक्टरों, हकीमों, वैद्यों के फीस रूप में रुपये और कीमती दवाइयों के खरीदने में पानी की तरह रुपया बहाने लगा फिर भी मैं निराश ही रहा। अब मैं घबरा उठा और चारों तरफ से अन्धकार दिखलाई देने लगा और सोचने लगा कि इस दुःखमय जीवन से मर जाना बेहतर है।

पर यह बीस साल पहले की बात है। अब आज मैं खुश हूँ। आज उस परमात्मा की कृपा से आरोग्य हूँ और मेरे तीन स्वस्थ बच्चे भी हैं जो बिलकुल आरोग्य हैं।

हुआ क्या? मुझमें इतना परिवर्तन कैसे हो गया? यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि मैंने एक दवा सेवन की। जो दवा मैंने सेवन की, वह एक महान् त्यागी परोपकारी साधु की बनाई हुई थी, जो समय काटने के लिए गाँव से कुछ दूर एक इट के खेड़े पर रम रहे थे। यह मेरा सौभाग्य था कि और लोगों के साथ मैं भी दर्शनों के लिए जा पहुँचा। दैवी शक्ति से मेरे दुःखी जीवन के पिछले अध्याय उनके हृदय-पट पर खिंच गये और मेरी आँखों ने हृदय का सारा भेद अपने आप उस महान् पुरुष पर प्रकट कर दिया। मेरी कच्ची उम्र पर महात्मा को दया आई और उन्होंने मुझे कुछ जड़ी-बूटियाँ एकत्र करने की आज्ञा दी। मैंने वैसा ही किया और तब उनके सम्मुख ही मुझे उनके आदेश और निजी देख-रेख में 'प्रेमवटी' तैयार करनी पड़ी। यद्यपि मुझसे ४० दिन लगातार 'प्रेमवटी' का सेवन करने को कहा गया था, तथापि केवल बीस दिन के सेवन से ही मुझमें परिवर्तन हो गया। मेरी कमजोरी और तमाम गुप्त बीमारियाँ जड़ से दूर हो गईं। पीले और उदास मुख पर लाली दौड़ने लगी, आँखों में उन्माद झूमने लगा और हृदय में जवानी का जोश उमड़ आया। महात्माजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के साथ ही अपने वादे को पूरा करने के लिए दुःखी जनों के निमित्त पिछले बीस साल से लगातार मैं इस प्रयोग को मुफ्त बाँट रहा हूँ। यह अनेक पत्र-पत्रिकाओं में भी छप चुका है। मुझे हर्ष है कि इस अमृत तुल्य प्रयोग ने सैकड़ों की प्राण-रक्षा की, हजारों को मौत के मुँह से निकाला और लाखों का इससे भला हुआ। महात्मा-दत्त 'प्रेमवटी' का नुस्खा इस प्रकार है; नोट कर लें—

शुद्ध त्रिफला ५ तोला, त्रिकुट चूर्ण ५ तोला, शुद्ध सूर्यतापी शिलाजीत ५ तोला, शुद्ध बङ्ग भस्म ६ माशा, असली सूर्यछाप केशर ३ माशा, असली अकरकरा ६ माशा, असली नेपाली कस्तूरी ३ रत्ती। इन सब औषधियों को कूट-छानकर खल में डालकर ऊपर से शीतल चीनी का तेल २० बूँद, सन्दल तेल २० बूँद, बिरोजे का तेल २० बूँद एक-एक करके मिलायें। उसके बाद ताजी ब्राह्मी बूटी के अर्क में १२ घण्टा घोंटकर झरबेरी बेर के बराबर गोलियाँ बनावें और छाया में सुखा लें। एक-एक गोली सुबह शाम पाव भर गाय के दूध में एक तोला शक्कर मिलाकर सेवन करें। इसकी प्रशंसा हम अपने ही मुँह से नहीं करते बल्कि बड़े बड़े वैद्यों, डाक्टरों, हकीमों, सेठ-साहूकारों तथा रईसों, जमींदारों, सरकारी आफिसरों तक ने इसकी सराहना की है। वैद्यराज श्री जमुनादत्त शर्मा, झाँकर का कहना है कि यह वटी धातु का पतलापन, २० प्रकार के प्रमेह के लिए अक्सीर है।

'प्रेमवटी' में कोई हानिकारक चीज नहीं पड़ती। गुणकारी चीजें नुस्खे से ही प्रकट हैं। यह औषधि वीर्य का पतलापन, बीसों प्रकार के प्रमेह पेशाब के साथ चूने की तरह वीर्य का जाना, पाखाने के समय धातु का जाना, स्वप्नदोष, सुस्ती, कमजोरी, नामर्दी, डाइबटीज, मधुमेह, सूजाक, जवानी में बुढ़ापे की-सी हालत हो जाना, असली ताकत की कमी, स्मरण-शक्ति कमजोर पड़ जाना तथा स्त्रियों के भी प्रदर-सम्बन्धी रोग दूर करके अत्यन्त ताकत देता है और नस नस में नवजीवन का सञ्चार करती है। अन्त में उन भाइयों को जिन्हें फुरसत नहीं मिलती या शुद्ध औषधि प्राप्त नहीं कर सकते यह प्रयोग स्वयं बनाकर दाम के दाम में भेजने की व्यवस्था की है। ४० दिन के लिए पूरी खुराक विधिवत् ८० गोलियों का मूल्य ५॥=) ०० और २० दिन के लिए ४० गोलियों के दा० ३=) डाक खर्च ॥।-)

पता—बाबू श्यामलाल जी रईस, प्रेमवटी आफिस नं० ५०, धनकुट्टी, कानपुर

स्त्रियों के लिए सर्वोत्तम शक्ति-वर्धक औषधि

जोमेस्त्री

कमर-दर्द, हाथ-पैर का टूटना, हड्डियों का दर्द, बेचैनी, जी घबड़ाना, हिस्टीरिया वगैरह रोग 'जोमेस्त्री' के सेवन से मिट जाते हैं। दुर्बलता नहीं आती। स्त्रियों का आरोग्य आयुष्काल बढ़ जाता है।



जोमेस्त्री लेनेवाली माता का बालक तन्दुरुस्त और हृष्ट-पुष्ट होता है।

हरेक दवाफरोश के यहाँ मिलेगी

जसमाईन एजेन्सी नड़ीयाद (गुजरात)

एजेंट श्रीकेमिकल्स, २३३२, महाराजा लाल बिल्डिंग खुशालराय कटरा, देहली

कान्तीलाल परीख, चाँदनी चौक, दिल्ली

दशकों से पीड़ित बच्चों की सेवा



जेम्मी के "लिवर क्योर" द्वारा की गई दशकों से "बच्चों के यकृत" से पीड़ित शिशुओं की सेवा ने हजारों बहुमुल्य कली के समान प्राणों को काल के मुखमें जाने से बचा लिया है। प्रारम्भिक अथवा रोगवृद्धि की अवस्था में डाक्टर "सिम्पल" और "कम्पलीकेटेड" लिवर क्योर की सिफारिश करते हैं।

'सिम्पल' लिवर क्योर थोड़ी थोड़ी मात्रा में उत्तम रोग निवारक का काम करता है; क्षुधा बढ़ाता है और पाचन-क्रिया को ठीक करता है; कब्जियत दूर करता है तथा यकृत एवं तिल्ली का कार्य नियमित रूप से संचालन करता है।

यकृत से पीड़ित बच्चों की गर्भवती माताओं को जेम्मी का टॉनिक प्रयोग करना चाहिए। यह आयुर्वेद के उन सिद्धान्तों के अनुसार तैयार किया गया है जो यह बताते हैं कि यकृत व तिल्ली एसे अवयव हैं जो माता ही से प्राप्त होते हैं।



जेम्मी का लिवर क्योर

जेम्मी वेंकटरामनैय्या एण्ड सन्स

माइलापुर, मद्रास, (फो. नं. ८१३९)
सैण्डहर्स्ट रोड, बंबई ४. (फो. नं. ४१५९३)
हरिसन रोड, कलकत्ता।
अन्य स्थान-लखनऊ, बंगलोर, त्रिचनापल्ली, इत्यादि।

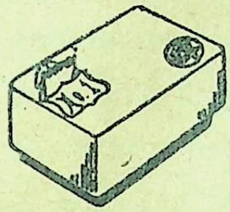
J. 234 Hindi.

वाजबी दाम

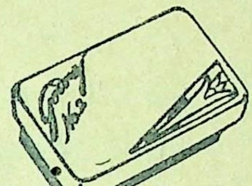
Godrej रजिस्टर्ड **गोदरेज**

साबुन—ग्लिसरीन

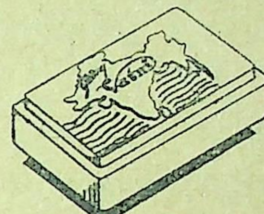
इन हर एक का वाजबी दाम



नं० १—११ आना



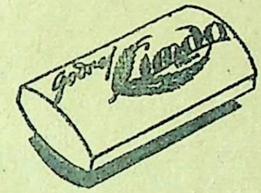
नं० २—८।। आना



वतनी—६ आना
छोटा ('बेबी') वतनी—२ आना



सण्डल—७ आना



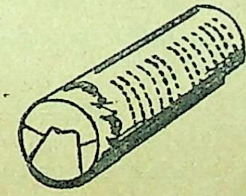
लिमडा—७ आना



खस—७ आना



टर्किश बाथ
४।।। आना



शेविंग स्टिक
(कारटन)—७।। आना
(टिन)—१० आना



शेविंग "राउण्ड"
४।। आना

ग्लिसरीन

५६ रत्तल सी० पी० का रु० ६६- ८-०
२८ रत्तल सी० पी० का रु० ३३-१२-०
५ और १० हंड्रेड वेट के पैकिंग में भी मिलता है।

जहाँ चुंगी, आक्ट्राय और दूसरे कर होंगे वहाँ दाम जरा ज्यादा होगा।

उत्पादन खर्च ज्यादा होने पर भी

दाम बदला नहीं।

गोदरेज सोप्स, लि०
हिन्द में वनस्पति साबुन बनानेवाले अग्रगण्य निर्माता

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-साहित्य

१. भारत में विवेकानन्द

अभी छप गई। विवेकानन्दजी के भारतीय व्याख्यान, अनु०—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; पृ० सं० ५९९, मूल्य ५) रु०।

२. श्रीरामकृष्णवचनामृत

अनुवादक—पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सुन्दर गेट-अप, तीन भागों में, प्रथम भाग, पृ० सं० ६३२, मूल्य ६ रु०, द्वितीय भाग, पृ० सं० ६५७, मूल्य ६ रु०, तृतीय भाग, पृ० सं० ८२२, मूल्य ७॥ रु०।

"श्रीरामकृष्ण ईश्वरत्व की सजीव मूर्ति थे। उनके वाक्य किसी निरे विद्वान् के ही कथन नहीं हैं, वरन् वे उनके जीवन-ग्रन्थ के पृष्ठ हैं।" —महात्मा गांधी

३. श्रीरामकृष्णलीलामृत (विस्तृत जीवनी)

पं० द्वारकानाथ तिवारी कृत, दो भागों में, सुन्दर गेट-अप, प्रथम भाग पृ० सं० ४३६, द्वितीय भाग पृ० सं० ४८६, प्रत्येक भाग का मूल्य ५ रु०।

"श्रीरामकृष्ण देव का जीवन-चरित्र हमें ईश्वर को अपने सामने प्रत्यक्ष देखने की शक्ति देता है।"—महात्मा गांधी

४. विवेकानन्द-चरित

(विस्तृत एवं स्फूर्तिदायक जीवनी)

सुविख्यात लेखक श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार कृत, अभी प्रकाशित हुई; सुन्दर गेट-अप, पृ० सं० ५५५, मूल्य ६ रु०।

"प्राचीन भारतीय संस्कृति में पगे तथा भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा के अभिमानी स्वामी विवेकानन्द मानवी जीवन की समस्याओं को समझने में नितान्त आधुनिक थे और हम कह सकते हैं कि इस प्रकार उनके जीवन में भारतवर्ष की प्राचीन् तथा वर्त्तमान संस्कृति का सुन्दर समन्वय हुआ है।" —पं० जवाहरलाल नेहरू

५. विवेकानन्दजी के सङ्ग में (वार्तालाप)

शिष्य शरच्चन्द्र कृत, सुन्दर गेट-अप, पृ० सं० ४४८, मूल्य ५। रु०।

स्वामी विवेकानन्द कृत—राजयोग १=); भारतीय नारी ।||); शिक्षा ||=); धर्म-रहस्य १); मेरी समरनीति |=); धर्मविज्ञान १||=); मेरा जीवन तथा ध्येय ||); मरणोत्तर जीवन ||); श्रीरामकृष्ण, धर्म तथा संघ ||=); कर्मयोग १||=); हिन्दू-धर्म, १||); प्रेमयोग १|=); भक्ति-योग १|=); आत्मानुभूति १|); परिव्राजक १|); प्राच्य और पाश्चात्य १|); शिकागो-वक्तृता ||=); मेरे गुरुदेव ||=); हिन्दू-धर्म के पक्ष में ||=); वर्तमान भारत ||); पवहारी बाबा, ||)।

श्रीरामकृष्ण आश्रम, [स], धन्तोली, नागपुर, (१) सी० पी०

प्यारी बहिनों की भलाई के लिए

खुशखबरी

यदि किसी बहिन को पचास वर्ष की कम आयु में या किसी रोग के कारण मासिक धर्म (माहवारी) का होना बन्द हो गया है अथवा खुलकर नहीं होता या प्रति मास ठीक समय पर न होकर आगे-पीछे होता है तो ऐसी हालत में आप मेरी सौ फी सदी आजमाई हुई औषधि **मासिक संजीवन धारा** मँगवा कर सेवन करें, इस औषधि की केवल एक ही खुराक से महीनों का रुका हुआ मासिक धर्म बिना किसी कष्ट के चालू हो जाता है और तीन खुराक से मासिक धर्म बिगड़ने से पैदा हुई सब अन्दर की खराबियाँ दूर होकर मासिक धर्म ठीक समय पर नेम अनुसार आने लग जाता है। मूल्य तीन खूराक तीन रुपया छै आने ३|=) डाक पैकिङ्ग खर्च अलग।

खबरदार—गर्भवती बहिनें इसे सेवन न करें क्योंकि इससे गर्भपात हो जाता है।

गर्भरोक—यदि आप बीमारी या कमजोरी के कारण सन्तान पैदा होने के समय के कष्टों को सहन न कर सकें तो आप यह औषधि सेवन करें, इसकी एक खुराक से दो वर्ष के लिये और तीन खुराक से सदा के लिये गर्भ का रहना बन्द हो जाता है। मूल्य एक खुराक पाँच रुपया ५) रुपया तीन खुराक दस रुपया १०) रुपया डाक पैकिङ्ग खर्च अलग इस औषधि के सेवन से स्त्री के मासिक धर्म तथा स्वास्थ्य को कोई हानि नहीं होती।

जरूरी सूचना—पत्र लिखते समय अपना पूरा पता साफ और सुन्दर लेख में लिखें।

पता—राजकुमारी अग्रवाल

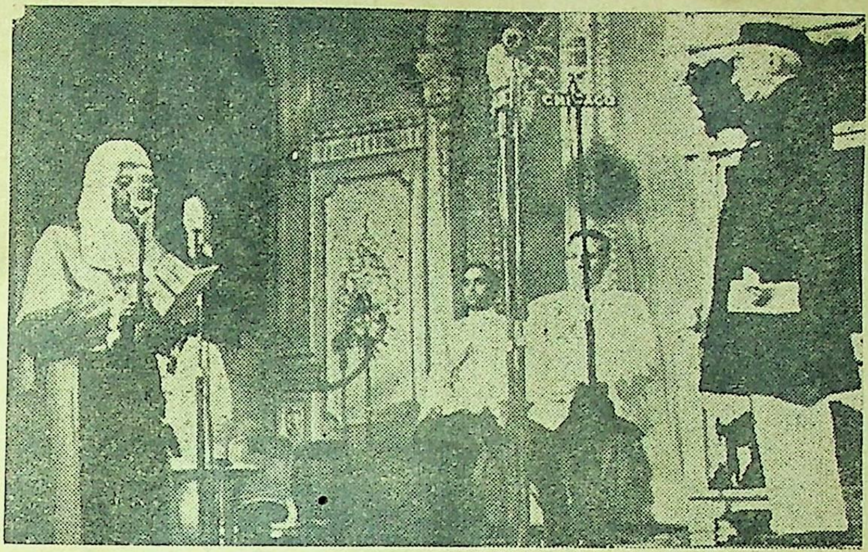
(नं० ३१६) टोहाना, जिला हिसार (ईस्ट पञ्जाब)

लेख-सूची

चित्र-सूची

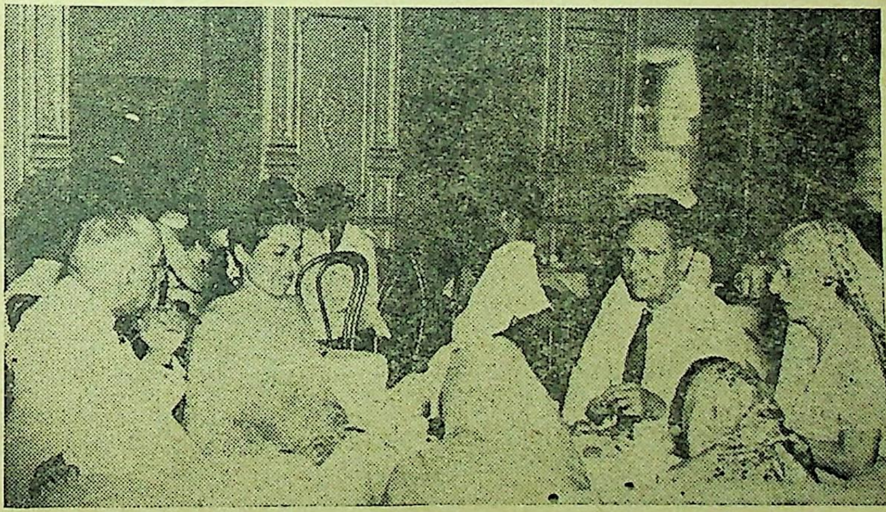


नए गवर्नर



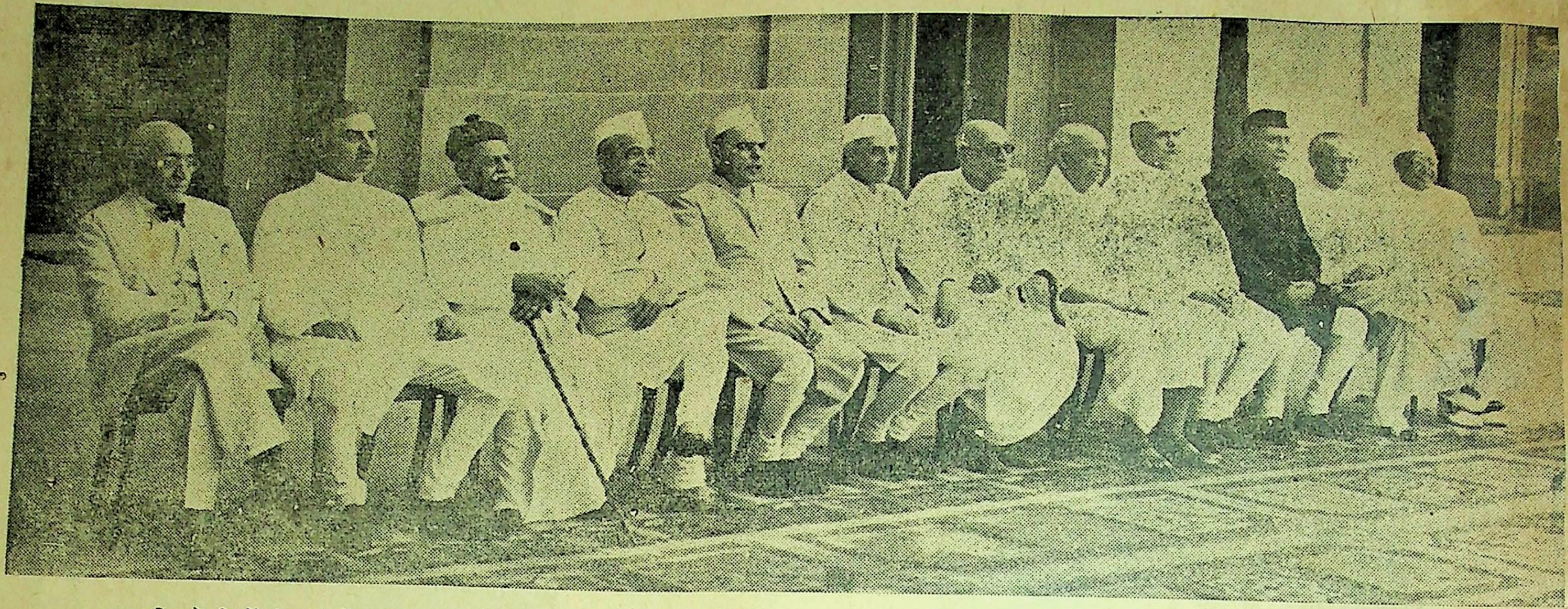
युक्तप्रान्त के नए गवर्नर माननीय श्री होमी मोदी शपथ ग्रहण कर रहे हैं।

पत्रकारों के बीच



पद ग्रहण करने के बाद गवर्नर मोदी ने प्रान्त के प्रमुख पत्रकारों को आमंत्रित किया। चित्र में उक्त अवसर का एक दृश्य अंकित है।

एक महत्त्वपूर्ण सम्मेलन



पिछले दिनों दिल्ली में प्रान्तीय गवर्नरों का एक महत्त्वपूर्ण सम्मेलन हुआ, जिसमें भारत के सभी प्रान्तों के गवर्नरों ने भाग लिया। उसी अवसर का यह एक चित्र है। चित्र में गवर्नर जनरल श्री राजाजी, प्रधान मंत्री पंडित नेहरू और गृहमंत्री सरदार पटेल गवर्नरों के साथ बैठे हुए दिखाई दे रहे हैं।



सम्पादक—हरिकेशव घोष : उमेशचन्द्र मिश्र

जुलाई १९४९ आषाढ़ २००६ ; भाग ५० खण्ड २ ; संख्या १ पूर्ण संख्या ५९५

सम्पादकीय

अन्न की समस्या

अन्न जीवन की प्रथम आवश्यकता है। इस तथ्य की जानकारी मनुष्य को सभ्यता के उन्मेषकाल में ही हो गई थी। प्राण क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उपनिषत्कार ने कहा था—'अन्नँ हि प्राणः'। जिस मनुष्य के सामने यह प्रश्न उपस्थित रहता हो कि 'मैं कल क्या खाऊँगा', वह आध्यात्मिक तो दूर, भौतिक उन्नति के स्वप्न भी नहीं देख सकता। जो व्यष्टि के लिए सत्य है, वही समष्टि के लिए भी सत्य है। छोटे रूप में जो समस्या व्यक्ति को चिंतित रखती है, बड़े रूप में वही राष्ट्र को परेशान किए रहती है।

अन्न के सम्बन्ध में हमारा देश स्वावलम्बी नहीं है। यहाँ की शस्य-श्यामला भूमि अपने पुत्रों का पेट पालने में असमर्थ है, यह अब स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो चुका है। जब से हमारे देश का विभाजन हुआ, जब से ब्रह्मा और पूर्वी बङ्गाल जैसे चावल उत्पन्न करनेवाले प्रदेश और पश्चिमी पंजाब और सिन्ध जैसे उत्तम गेहूँ पैदा करनेवाले सूबे हमारे हाथ से निकल गए, तब से हमें अन्न के लिए विदेशों की ओर और अधिक टकटकी लगानी पड़ रही है। यह परिस्थिति अवांछनीय है, विशेषतया भारत जैसे देश के लिए, जो आधे संसार को खिलाने का सामर्थ्य रखता था।

भारत में अन्न की इतनी कमी क्यों हो गई, इसके अनेक कारण बतलाए गए हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि देश की भूमि क्रमशः अनुर्वर होती जा रही है, फलतः वह उतना अनाज प्रति एकड़ उत्पन्न नहीं करती, जितना पहले करती थी। जिस भूभाग की सिंचाई नहरों के जल से होती है, वहाँ अनुर्वरता का प्रभाव प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। वहाँ का प्रत्येक किसान जानता है कि नहर का पानी खेतों की उपजाऊ मिट्टी को 'रेह' के रूप में बदलता जा रहा है। 'रेह' पैदा हुआ नहीं कि उर्वर भूमि ऊसर बन जाती है। एक दूसरे वैज्ञानिक का मत है कि देश की भूमि का अधिक भाग अभी तक अविकसित अवस्था में है। यदि परती भूमि को कृषियोग्य बना दिया जाए तो खाद्यान्न की समस्या अविलम्ब सुलझ जाए। कम उपज के लिए खेती का दकियानूसी अवैज्ञानिक ढङ्ग भी जिम्मेदार है। यदि खेती में नवीनतम वैज्ञानिक यंत्रों का प्रयोग हो सके तो अपेक्षाकृत अधिक सरलता से कहीं अधिक मात्रा में अन्न प्राप्त किया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं है। पूँजीवादी दृष्टिकोण से विचार करनेवाले वैज्ञानिकों का मत है कि भारत की आबादी तेजी से बढ़ रही है और उसके पालन-पोषण का भार प्रधानतया कृषि पर है, क्योंकि दो सौ वर्ष के लम्बे ब्रिटिश शासन ने भारत को हठात् कृषिनिर्भर देश बना दिया, यहाँ किसी उद्योग-धन्धे को पनपने नहीं दिया, कल-कारखाने खुलने नहीं

दिए, अर्थात् ऐसा कुछ नहीं होने दिया, जिसे देशवासी अपनी आजीविका का साधन बनाते और जिसके फल-स्वरूप भूमि का भार कुछ हलका रहता। आबादी बढ़ी— सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ में देश की आबादी १० करोड़ थी, जो सन् १९४१ की जनगणना में ४० करोड़ हो गई—पर उसी अनुपात से आर्थिक जीवन का विकास नहीं हुआ। अंग्रेजों ने औद्योगिक जीवन का मार्ग रोका तो उनके इशारों पर नाचनेवाले जमींदारों और राजाओं ने आर्थिक जीवन के फैलाव को रोक दिया।

अन्न की कमी के लिए उपर्युक्त सभी कारण मिल-कर ज़िम्मेदार हैं और उनका निराकरण यथासम्भव शीघ्र होना चाहिए। प्रसन्नता की बात है कि हमारी केन्द्रीय सरकार इस दिशा में तेजी से प्रयत्न कर रही है। अविक-सित भूमि को कृषियोग्य बनाने के लिए विदेशों से ट्रेक्टर आदि मँगाए गए हैं और उनसे प्रयोगात्मक रूप में अब तक हजारों एकड़ भूमि को कृषियोग्य बनाया जा चुका है। आगे और भी मशीनें आने की आशा है और यह काम उत्तरोत्तर प्रगति ही करता जाएगा।

जमींदारियों का उन्मूलन भी अन्नोत्पादन की वृद्धि में सहायक होगा, ऐसा कहा जा रहा है। आँकड़ों के हिसाब से अकेले युक्तप्रान्त में भूमि का लगभग आधा भाग जमींदारों के अधिकार में है। इस भाग की उपज अपेक्षाकृत बहुत कम है। कारण स्पष्ट है। जमींदार प्रायः स्वयं खेती नहीं करते, और यदि करते भी हैं तो अपनी अधिकृत भूमि के केवल एक छोटे से भाग पर। अपनी सीर, खुदकाश्त, ताल, भूड़, आदि भूमि को वे लगान या बटाई पर उठा दिया करते हैं। बटाईदार जानता है कि वह भूमि उसके अधिकार में एक ही फसल तक रहेगी, दूसरी फसल में उसे दूसरा काश्तकार जोतेगा, इसलिए वह उसमें उतना परिश्रम नहीं करता जितना अच्छी फसल लेने के लिए करना चाहिए। जब यही भूमि किसान को अपनी मौरूसी के रूप में मिलेगी और जब जमींदार के पास उतनी ही भूमि होगी, जितनी वह स्वयं जोत-बो सकेगा, तब भूमि की सेवा यथेष्ट हो सकेगी और वह निस्सन्देह अधिक अन्न उगलेगी। नए 'जमींदारी-उन्मूलन बिल' के व्यवहार में आने पर यह स्वर्णफल प्रत्याशित है।

पर ये सब बातें समयापेक्षी हैं। इधर अन्न की आव-श्यकता हमें दिन में दो-तीन बार पड़ती है। अतएव जितना शीघ्र सम्भव हो सके, अन्न के सम्बन्ध में हमें स्वावलम्बी बन जाना है। विदेशों को हम कच्चा माल भेजकर जो धन प्राप्त करते हैं, वह सारे-का सारा आस्ट्रे-लिया के सत्त्व निकाले हुए बदबूदार खट्टे सफेद गेहूँ के खरीदने में या तुर्की के बदबूदार काले रङ्ग के जौ खरीदने में व्यय होता रहे तो देश आर्थिक दृष्टि से कभी सम्पन्न नहीं हो सकता। इसीलिए केन्द्रीय सरकार ने निश्चय कर लिया है कि सन् १९५१ के बाद गल्ला किसी अवस्था में विदेश से नहीं मँगाया जाएगा। इस अवधि के बीच ही हमें, जिस प्रकार भी सम्भव हो, स्वावलंबी बन जाना है।

अन्नसंग्रह-योजना

आत्मनिर्भरता के इस लक्ष्य को सामने रखते हुए केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों ने 'गल्ला-वसूली' की योजना को चलाया है। इस योजना के अनुसार प्रान्तों और रियासतों के अधिकारियों को आदेश दिया गया है कि वे अधिक-से-अधिक गल्ला वसूल करें, जिससे देश के कमीवाले इलाकों की आवश्यकता बचतवाले इलाकों से पूरी की जा सके।

गल्ला चोरबाजारों में न चला जाए, या संग्राहक उसे छिपाकर न रख लें, इसके लिए सरकार की ओर से ऐसे भी आदेश जारी किए जा चुके हैं कि जब तक कोई किसान अपने भाग का पूरा अन्न सरकार के हाथ न बेंच दे, तब तक वह अपना अन्न बाजार में या किसी दूसरे के हाथ न बेंचे। नैनीताल से प्राप्त एक सूचना के अनुसार गेहूँ और चावल का विक्रय खुले बाजार में अब सर्वथा निषिद्ध ठहरा दिया जाएगा। ये दोनों अन्न सर-कारी नियंत्रित की दूकानों पर ही राशन कार्ड के द्वारा मिलेंगे, हाँ, कदन्न, जौ, बेझर, मटर, आदि अवश्य मंडियों में उपलब्ध हो सकेंगे। सरकार समझती है, और ठीक ही समझती है, कि इस प्रकार वह एक ओर किसान और जमींदार को अपने-अपने भाग का अनाज सरकार के हाथ बेंचने के लिए विवश कर देगी तो दूसरी ओर अनाज का अनुचित मात्रा में संग्रह करके उसे मनमाने

मूल्य पर बेंचनेवालों का मार्ग भी सदा के लिए बन्द कर देगी।

सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार अन्नसंग्रह-योजना हमारे युक्तप्रान्त में पूर्ण गति से और शान्तिपूर्वक कार्यान्वित हो रही है। दूसरे प्रान्तों की क्या दशा है, इसका ज्ञान हमें नहीं है। हाँ, अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि जो कुछ यहाँ हो रहा है, वही अन्य सूत्रों में भी हो रहा होगा।

युक्तप्रान्त में 'गल्ला-वसूली'

युक्तप्रान्त में अन्नसंग्रह-योजना सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार सफल हो रही है। १६ जून तक जो रिपोर्टें प्राप्त हुई हैं उनसे ज्ञात होता है कि सरकार ने अनाज की जिस मात्रा को लक्ष्य बनाया था, उसका ५० प्रतिशत से अधिक वसूल हो चुका है। शेष ५० प्रतिशत के विषय में गल्ला-अधिकारियों के विभिन्न मत हैं। कुछ का कथन है कि 'लक्ष्य तो लक्ष्य होता है और उसकी स्थापना यथासम्भव उच्च स्थान पर इसीलिए की जाती है कि यदि वहाँ तक न भी पहुँचा जा सके, तब भी काम चल जाए।' इससे यह ध्वनि निकलती है कि प्रान्तीय सरकार ने संगृहीत अनाज की जो मात्रा निर्धारित की है, उस तक पहुँचना सरकारी अधिकारियों के लिए असाध्य नहीं तो कष्टसाध्य तो अवश्य है। कुछ अधिकारियों का मत है कि निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने में अब अधिक समय नहीं लगेगा।

अनाज की जो अर्द्ध मात्रा अब तक संगृहीत हो चुकी है, वह वस्तुतः सुखसाध्यता की परिचायक नहीं है। यह खेद की बात है और उससे अधिक चिन्ता की! खेद की इसलिए कि भारतीय किसान अब तक गांधी बाबा का अन्धभक्त रहा है। वह गांधी को जानता था, और उन्हीं के नाते कांग्रेस को—जिसे वह अपनी भाषा में 'कांगरेज' कहता था। 'कांगरेजियों' के प्रति उसके हृदय में श्रद्धा की और पूजा की भावना इसीलिए थी क्योंकि वह उनको गांधी बाबा का चेला—और इसीलिए त्यागी, तपस्वी, निस्स्वार्थी, 'पर दुःखेन दुःखित', निर्लिप्त और न जाने क्या-क्या समझता था। उनके इशारे पर किसान ने क्या-क्या कुर्बानियाँ नहीं कीं? यह गांधी बाबा के प्रति अटूट विश्वास का ही परिणाम था कि चुनाव के अवसर पर बड़े बड़े दिग्गज ख्यातनामा नरमदली नेता एक साधारण-सी स्कूल अध्यापिका के मुकाबले हजारों वोटों से हारते थे। यह 'कांगरेज' के प्रति किसान की आस्था ही थी कि वह ब्रिटिश सङ्गीनों की उपेक्षा करता हुआ और अपने सर्वनाश को सम्मुख देखता हुआ भी सन् ४२ के 'अण्डरग्राउण्ड' काम करनेवाले तथाकथित विद्रोहियों को अपनी कुटियों में छिपा रखता था! उस किसान से आशा यह थी कि वह अपनी सरकार का इशारा पाकर अपना फालतू अन्न प्रसन्नता से सरकार के हाथ बेंच देगा और इस प्रकार अपने देश को सम्भावित भुखमरी से बचा लेगा, उस भुखमरी से, जिसकी संभावना तक को नष्ट करने के लिए उसकी सरकार कृतसंकल्प है।

पर औसत किसान ऐसा नहीं कर रहा है!

पर किसान ने इस बार स्वेच्छा से अपनी सरकार का साथ नहीं दिया और यदि दिया भी तो उतना नहीं, जितने की आशा उससे की जाती थी। यह चिन्ता की बात है। क्या किसान पर गांधी बाबा का जादू कुछ कम हो गया है? किसान के आँख-कान स्थानीय कांग्रेसी होते हैं। वे जिधर चाहें, उसे ले जा सकते हैं। हमारे सूबे के प्रत्येक नगर और जिले में 'कांग्रेस-मण्डल' और 'कांग्रेस कमेटियाँ' हैं। स्थानीय प्रभावशाली व्यक्ति उनके अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मन्त्री और सदस्य हैं। उनमें से प्रत्येक के अपने दर्जनों मित्र और सहायक हैं—सब-के-सब त्यागी और कांग्रेसी। इन कांग्रेस-भक्तों ने क्या इस मामले में किसान का पथ-प्रदर्शन उचित दिशा में नहीं किया? हमें स्मरण है, खाद्यमन्त्री माननीय चन्द्रभान गुप्त ने एक जिला-विशेष की 'कांग्रेस-कमेटी' के विरुद्ध यह आरोप लगाया था कि 'उसके कार्यकर्त्ताओं ने गल्लावसूली-योजना में सरकार के साथ—सरकारी अधिकारियों के साथ—सहयोग नहीं किया। इसी कारण सफलता अभीप्सित मात्रा में प्राप्त नहीं हुई।' उक्त 'कांग्रेस-कमेटी' के अध्यक्ष ने अपनी सफाई में जो उत्तर समाचारपत्रों में छपाया है, उसमें खाद्यमन्त्री महोदय के उक्त आरोप को मिथ्या बतलाते हुए कहा है कि हमने अपनी ओर से सभाएँ करके, विज्ञापन आदि बँटवाकर, व्यक्तिगत रूप से किसानों को समझाकर और दौरे करके भी सरकारी योजना को सफल बनाने का भरसक प्रयत्न किया, पर इस कार्य का भार जिन सरकारी अफसरों को सौंपा गया है, उनका रुख विलक्षण है।

वे हमारे प्रयत्नों की कदर नहीं करते, हमारे सुझावों की हँसी उड़ाते हैं, हमारी बात नहीं सुनते-मानते। वे तो अपनी 'पुलिस' और 'हिरासत' के बल पर डरा-धमकाकर जबरदस्ती किसानों से ग़ल्ला वसूल करना चाहते हैं। इस दशा में किसान उत्तेजित हो उठें, तो हमारा क्या दोष है ?

सरकारी अधिकारियों का रवैय्या

इस सम्बन्ध में सरकारी अधिकारियों ने जो रवैय्या अख्तियार कर रक्खा है, उसकी शिकायतें विश्वस्त कांग्रेसियों के द्वारा एक-दो स्थानों से की गई हों, यह बात नहीं है। शिकायतें अनेक जिलों से हुई हैं, और उनके करनेवाले निस्सन्देह कांग्रेस-विरोधी नहीं हैं। वे जिम्मेदार कांग्रेसी हैं। शिकायतें प्रमाणित करती हैं कि जैसे सरकार का इशारा पाकर जिला के अधिकारियों ने अपने उसी पुराने हैलटशाही तरीके को फिर से अपना लिया है। अन्ततः ये अधिकारी हैं भी तो उसी पुरानी नौकरशाही मशीन के पुर्जे! उनकी मनोवृत्ति बदली कहाँ है ? यह दूसरी बात है कि सरकार का रुख देखकर बीच में वे कुछ नरम पड़ गए थे। इस सम्बन्ध में प्रयाग जिला के कुछ जिम्मेदार कांग्रेसी नेताओं के वक्तव्य 'लीडर' में छपे हैं, जो वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त हैं। एक वक्तव्य का अपेक्षित अंश इस प्रकार है—'सूबा कांग्रेस कमेटी ने अपने अधीनस्थ कांग्रेस कमेटियों को आदेश जारी कर दिए थे कि वे गल्ला-वसूली योजना का पूर्ण समर्थन करें। जिला कांग्रेस कमेटी ने प्रयाग जिले को कमीवाला जिला मानते हुए यह माँग की थी कि इस जिले का अन्न का कोटा चौथाई कर दिया जाए। पर जिला के अधिकारियों ने 'वसूल कमेटी' के परामर्श से आधा कोटा कर देने का निर्णय किया। इसके बाद वसूली का कार्य प्रारम्भ हुआ। इस सिलसिले में होनेवाली द्वाबा की चार सभाओं में मैंने भाषण किए, जो 'वसूली-ऑफिसर' को बहुत पसन्द आए। यही नहीं, किसानों को गल्ला-वसूली के लाभ समझाने के लिए मैंने एक विज्ञप्ति का मसौदा भी तैयार किया। पर बाद को जब मुझे पता लगा कि गल्ला-वसूली के लिए नियुक्त अधिकारी किसानों के साथ बहुत ज्यादती कर रहे हैं, तब मैंने उक्त विज्ञप्ति पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया।

"अधिकारियों के इस रवैय्ये से दुःखित होकर मैंने एक पत्र जिलाधीश को लिखा, जिसके द्वारा मैंने उनका ध्यान उन ज्यादतियों की ओर आकर्षित करना चाहा, जो उनकी अधीनता में काम करनेवाले ऑफिसर किसानों के साथ कर रहे थे। उस पत्र में मैंने यह भी लिख दिया था कि यदि इन ज्यादतियों की जाँच न की गई तो मेरे लिए गल्ला-वसूली की योजना में सहयोग देना सम्भव नहीं होगा। स्थानीय पत्रों में इस पत्र का सारांश भी मैंने छपवा दिया था। पर जिला के अधिकारियों ने मुझे अँगूठा दिखा दिया, मेरी मूर्खता पर हँसे और अपने ज्यादती भरे बर्ताव में उन्होंने कोई कमी नहीं की।" फतेहपुर के एक जिम्मेदार कांग्रेसी ने, जो कि एम० एल० ए० भी हैं, माननीय खाद्यमन्त्री तथा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष को तार भेजकर सूचित कर दिया है कि 'अब मर जाने या विद्रोह करने के अलावा कोई चारा नहीं है।' हरदोई जिला की 'कांग्रेस-कमेटी' ने भी इसी प्रकार की शिकायतें की हैं और माननीय खाद्यमन्त्री के उपेक्षा भाव की निन्दा की है।

ऐसे वक्तव्यों को पढ़ने के पश्चात् एक साधारण व्यक्ति इसी निर्णय पर पहुँचेगा कि यदि किसान ने गल्ला देने में उत्साह नहीं दिखाया, स्थानीय कांग्रेसियों ने योजना को सफल बनाने के लिए खून-पसीना एक नहीं किया, अनेक स्थानों पर मारपीट और किसानों पर गोली चलाने की नौबत आई, तो इसका सम्पूर्ण श्रेय एकमात्र सरकारी अफसरों की बुद्धिमत्ता को है। इसमें न किसानों का दोष है और न कांग्रेसियों का।

इसका फल ?

इस ज्यादती का, गोली-काण्डों और हिरासत का, निर्यातन और उत्पीड़न का, जो परिणाम होगा, उसे हमारे लोकप्रिय नेतागण अच्छी तरह समझ सकते हैं। पक्षी को विपक्षी कर डालना राजनीति नहीं है; आत्मघात है। महात्मा गांधी यदि आज जीवित होते तो इस आत्मघाती नीति का समर्थन कदापि न करते। जिन गरीब किसान-मजदूरों के लिए स्वराज्य की आवश्यकता थी, जिनकी कुर्बानियों से स्वराज्य मिला है और जिन्हें स्वराज्य का सुख सबसे अधिक मात्रा में मिलना चाहिए, उन्हें ही यदि सरकारी कर्मचारियों-द्वारा

इस प्रकार शासित और प्रताड़ित किया जाएगा तो ऐसे स्वराज्य से क्या बनेगा !

'गल्ला-वसूली-योजना' बुद्धिमत्तापूर्ण है, आवश्यक है और देश को भुखमरी से बचाने के लिए एकमात्र अमोघ अस्त्र है, यह हम स्वीकार करते हैं; पर हम यह भी मानते हैं कि यदि सरकारी अधिकारी जरा नर्मी और सहानुभूति से कार्य लेते, स्थानीय कांग्रेसियों की उचित सलाहों पर अमल करते और साथ ही उन्हें प्रतिष्ठा देते हुए ऐसे अवसरों पर आगे रखते तो वातावरण में अवांछनीय कटुता भी न पैदा होती और वसूली भी अपेक्षाकृत अधिक और आसानी से होती। दुःख यह है कि सरकारी अधिकारियों में से बहुतों ने ऐसा नहीं किया। इधर उनकी अहंमन्यता और आफिसरी नाजुक मौके पर उभरी और उधर उनके विरुद्ध जो शिकायतें उच्च अधिकारियों के पास प्रतिष्ठित कांग्रेस-कर्मियों यहाँ तक कि धारा-सभा के सदस्यों के द्वारा भी की गईं, उनकी मन्त्रि-मंडल की ओर से उपेक्षा की गई। इस सबका परिणाम यह हो रहा है कि 'गल्ला-वसूली' जैसी लोकोपकारिणी योजना सरकार को, कांग्रेस को, कांग्रेसियों को और किसानों को आवश्यकता से अधिक महँगी पड़ रही है। यदि यह सस्ती पड़ रही है तो सरकारी कर्मचारियों के लिए।

———

कलकत्ते का चुनाव

गत १९ जून को दिल्ली राजनैतिक सम्मेलन में भाषण करते हुए कलकत्ते के चुनाव के सम्बन्ध में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"मुझे यह महसूस होने लगा है कि हमें जनता से अधिक सम्पर्क बढ़ाने की आवश्यकता है। जनता की कठिनाइयों को समझने तथा उसे अपनी नीति समझाने के लिए मैं बड़ी या छोटी सभाओं में भाषण करना चाहता हूँ। कलकत्ते के चुनाव के नतीजे से मुझे यह मालूम होता है कि उस निर्वाचन-क्षेत्र की जनता या तो प्रान्तीय कांग्रेस से नाराज है या प्रान्तीय सरकार से। अब कांग्रेसजनों को यह ज्ञात करना है कि क्या देश के अन्य भागों की जनता का भी यही रुख है। कलकत्ते के उपचुनाव के नतीजे की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अब समय आगया है कि हमें कांग्रेस संगठन में स्फूर्ति पैदा करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए। दुःख है कि कांग्रेसीजन छोटी-छोटी चीजों में पड़कर अपना समय बर्बाद कर रहे हैं। उनमें यह मनोवृत्ति दिखलाई पड़ रही है कि सहयोगियों को समझा-बुझाकर अपनी ओर मिलाने की अपेक्षा उन्हें कांग्रेस से निकाल दिया जाए। यदि कांग्रेस-जन कांग्रेस को मजबूत नहीं बना सकते तो बेहतर यह होगा कि कांग्रेस को धीरे-धीरे क्षीण करने के बजाय एकदम खत्म कर दिया जाए। आगामी चुनाव सम्भवतः सन् ५० की जाड़े की ऋतु के बाद हो सकेगा। पर उससे पूर्व हमें यह जान लेना चाहिए कि कांग्रेस तथा सरकार के प्रति जनता की क्या नीति होगी।"

कलकत्ते के चुनाव में श्री शरच्चन्द्र बोस ने कांग्रेसी उम्मीदवार को लगभग सवा तेरह हजार वोटों से हराया। यह बात कांग्रेस के लिए अप्रतिष्ठाजनक है और कांग्रेसी सरकार के लिए भी। इस परिणाम से प्रत्येक कांग्रेसी को क्षोभ होना स्वाभाविक है। इसी चुनाव के सम्बन्ध में अभी हाल ही में सरदार पटेल ने अपना मनोभाव जिन शब्दों में अभिव्यक्त किया था, उनमें भी क्षोभ और निराशा बड़ी मात्रा में थी। इधर कुछ बड़े-बड़े उपचुनावों में कांग्रेसी उम्मीदवार बुरी तरह से पराजित हुए हैं। बम्बई और कलकत्ते के चुनाव उनके ताजे उदाहरण हैं। छोटे-छोटे चुनावों में भी कांग्रेस संभावना से कहीं अधिक स्थान खो रही है। ये परिणाम माननीय नेहरू के शब्दों में यही प्रकट करते हैं कि या तो 'जनता कांग्रेस से नाराज है या प्रान्तीय कांग्रेसी सरकारों से।' कलकत्ते के चुनाव के सम्बन्ध में मनस्तोष के लिए यह कहा जा सकता है, और कहा भी गया है, कि श्री शरच्चन्द्र बोस की इतने भारी बहुमत से विजय होने का कारण उनका व्यक्तित्व है। हम इसे स्वीकार करते हैं। पर कांग्रेस एक अखिल भारतीय संस्था है, इतनी शक्तिशालिनी कि उसने ही ब्रिटिश जैसी संसार की प्रथम कोटि की शक्ति को, जिसकी जड़ें दो सौ वर्ष के सुदीर्घकाल में पाताल तक पहुँच गई थीं, फूँक मारकर ही सात समुद्र पार फेंक दिया, उसकी तुलना में एक व्यक्ति की, वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, बिसात ही क्या ? फिर नेहरू जैसे अन्ताराष्ट्रिय प्रभावशाली नेता, पटेल जैसे विचक्षण लौह-पुरुष और डाक्टर विधानचन्द्र राय जैसे लोकप्रिय राजनीतिज्ञ जिसके पक्ष का समर्थन कर रहे हों, जिसे उसी

महामहिमामयी, अपूर्व शक्तिसम्पन्ना अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा का समर्थन-अनुमोदन प्राप्त हो, प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारें जिसकी विजय-वैजयन्ती फहराने के लिए कृतसंकल्प और उद्ग्रीव हों, वह कांग्रेसी उम्मीदवार एक पदच्युत और पथभ्रष्ट, आउट-आफ-डेट व्यक्ति के मुकाबले में हार जाए—सवा तेरह हजार वोटों से—यह एक असंभावित बात थी ! पर असंभावना संभावना बन गई ! कलकत्ते में ही ऐसा हुआ होता तो बात सर्वथा भिन्न होती ! इससे कुछ ही दिन पूर्व बम्बई में भी यही हुआ; सरदार पटेल की अपनी बम्बई में ! पाटिल की बम्बई में ! एक बार नहीं तीन-तीन बार ! युक्तप्रान्त और उड़ीसा में भी कांग्रेसी उम्मीदवार हारे !

हमारे राष्ट्रपति का उपदेश है कि "इस प्रकार की घटनाओं से आतंकित होने की जरूरत नहीं है। हमें वस्तुतः आत्म-शोधन करना चाहिए। अपनी कमजोरियों को दूर करना चाहिए। अपने संगठन को दृढ़ करना चाहिए और अपनी शक्ति को संगठित करना चाहिए। अन्यथा कांग्रेस की सत्ता ही खतरे में पड़ जाएगी, चुनावों में जय-पराजय की तो बात ही क्या है।"

और इसके साथ ही कांग्रेस के आजन्म सेवक और शुभानुध्यायी होने के नाते हमारा प्रान्तीय कांग्रेसी सरकारों से निवेदन है कि वे अपने जिला अधिकारियों को नम्रतापूर्वक यह सुझाव दें कि वे अब से प्रेस-कान्फ्रेंसों में ऐसी विज्ञप्तियाँ न दिया करें, जैसी एक नीचे उद्धृत की जा रही है। ऐसी कनसुरी विज्ञप्तियाँ जनता को, किसानों को, वोटरों को, सरकार से दूर भले ही हटा दें, उसके निकट नहीं ला सकतीं, जब कि आवश्यकता भावी चुनावों के लिए उसे अधिक-से-अधिक निकट लाने की है, जैसा कि हमारे महामन्त्री महोदय भी अनुभव कर रहे हैं :—

At a Press Conference Shree...... .,the District Magistrate said that result of the procurement drive has been satisfactory *Since the authorities started arresting and prosecuting the offenders.* The D.M. expected better results in future,

---

बढ़िया चावल केवल अमीरों के लिए !

प्रयाग की सहकारी गल्ले की दूकानों पर अरवा नं० १ के नाम से जो चावल विक्रय के लिए दिया गया है, उसके सम्बन्ध में स्थानीय डिप्टी टाउन राशनिंग आफिसर ने यह बन्धन लगा दिया है कि इस प्रकार का चावल केवल उन्हीं 'कार्डहोल्डरों' को बेंचा जाए, जिनकी मासिक आय १००) या इससे ऊपर है। कारण यह बतलाया गया है कि ऐसा बन्धन न रहने पर बढ़िया किस्म के इस चावल के चोर बाजार में पहुँच जाने की पूरी संभावना है।

हमारी समझ से इस प्रकार का बन्धन हमारी राष्ट्रीय और लोकप्रिय प्रान्तीय सरकार की नीति के अनुकूल नहीं है। खाद्यान्न का वितरण सरकार ने सर्वप्रथम सौ रुपया मासिक से नीची आयवालों में प्रारम्भ किया था। उस समय गेहूँ जैसे अन्न मंडियों में दुर्लभ थे। क्या उस समय गेहूँ आदि के चोरबाजार में पहुँचने की संभावना नहीं थी ? फिर सरकारी खाद्यान्न के वितरण में वर्गभेद को खड़ा करना कम्यूनिज्म को उभाड़ना है और साथ ही सहकारी समितियों के मार्ग में रोड़े अटकाकर उनकी लोकप्रियता को नष्ट कर देना भी। कारण, ऐसी समितियों के हिस्सेदार अधिकांश में सौ रुपए से कम आयवाले ही हैं और उन्हीं के धन से सहकारी समितियां खड़ी हुई हैं। आशा है, इस त्रुटि का संशोधन करने में हमारी प्रान्तीय सरकार देर न करेगी।

जमींदारी-उन्मूलन बिल

युक्तप्रान्तीय धारासभा ने ८ अगस्त, १९४६ को जमींदारी-उन्मूलन का सिद्धान्त एक प्रस्ताव पास करके स्वीकार कर लिया था। इस घटना के लगभग ३ वर्ष बाद युक्तप्रान्तीय सरकार ने जमींदारी-उन्मूलन तथा भूमि-सुधार बिल प्रकाशित कर दिया है और आश्वासन दिया है कि आगामी मास में यह बिल धारासभा में पास होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समाजोपकारी विचार को कार्यरूप देने में काफी लम्बा समय लग गया। इस सम्बन्ध की ढील-ढाल से हमारे प्रान्त के कृषकों में यत्र-तत्र विक्षोभ भी दिखाई देने लगा था और कांग्रेस के तथा स्वाधीनता के विरोधी ऐसे नारे भी लगाते सुने गए थे कि सरकार केवल ढोल पीटती है, कुछ करना-धरना नहीं चाहती। उनकी समझ में अब आजाना चाहिए कि ऐसे महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन, जो सदियों से चली आई आर्थिक-व्यवस्था के ढाँचे को एकदम उलट दें, एक रात में नहीं हो सकते। और फिर सरकार इस कार्य को ऐसे ढंग से

करना चाहती थी कि कोई वर्ग-विशेष इतना विक्षुब्ध भी न हो जाए कि प्रान्त की शान्ति खतरे में पड़ जाए। साथ ही जो कानून बने, वह यथासंभव सर्वांगपूर्ण हो, जिससे उसके संचालन में कानूनी बाधाएँ न पड़ें, यह भी सरकार के विचाराधीन था।

हमारे प्रान्त में जमींदार कहलानेवाले व्यक्तियों की संख्या २०,१७,००० कही जाती है। इन जमींदारों में १६,८७,००० ऐसे हैं, जो ढाई सौ रुपए से कम मालगुजारी देते हैं। इन्हें जमींदार न कहकर खाते-पीते काश्तकार कहना अधिक उचित होगा। फिर इन २५०) से की कम मालगुजारी देनेवालों में १७,११,००० जमींदार ऐसे हैं, जो २५) या उससे भी कम मालगुजारी देते हैं। ऐसे व्यक्ति पटवारी के कागजों में अपने को जमींदार लिखवाकर भले ही आत्मगौरव का अनुभव कर लेते हों, पर वस्तुतः ६) के वार्षिक मुनाफे की आय ऐसी नहीं होती, जो उन्हें खाते-पीते किसान का दर्जा भी दे सके। इस दशा में ठीक-ठिकाने के जमींदार अर्थात् वे व्यक्ति, जो २५०) से अधिक मालगुजारी देते हैं, संख्या में ३०,००० से अधिक नहीं हैं।

भूमि का ५७.७७ प्रतिशत इन जमींदारों के हाथ में है, अर्थात् आधे से कहीं अधिक। इनके अधिकार की भूमि प्रयुक्त तो खेती के लिए ही होती है पर उसकी औसत उपज उस भूमि की अपेक्षा बहुत कम है, जो किसानों के अपने अधिकार और निजी जोत में है। कारण स्पष्ट है। जमींदार अधिकांशतः अपनी भूमि एक साल के लिए उगाही या बटाई पर किसान को दे देता है, स्वयं उसमें खेती नहीं करता। इतनी भूमि पर वह खेती कर भी कैसे सकता है? और जो भूमि केवल एक साल के लिए अधिकार में है, उसमें किसान क्यों खाद डाले, क्यों अच्छी जुताई करे और क्यों मेहनत करे? यह सहज ही समझ में आ सकता है कि इस लापरवाही का असर प्रान्तीय अन्न की उपज पर कितना बुरा पड़ता है!

'जमींदार' शब्द के ठीक अर्थों में हमारे प्रान्त में कुल ८०४ ही हैं, जो ५०००) से अधिक मालगुजारी देते हैं। प्रान्तीय भूमि का चौथाई से अधिक भाग केवल इन्हीं के हाथ में है। इस बिल का सीधा प्रभाव इन्हीं ८०४ व्यक्तियों पर पड़ेगा क्योंकि ५ हजार से कम मालगुजारी देनेवाले जमींदारों के लिए सरकार ने आठगुने मुआविजे के अलावा पुनर्वास सहायता देना भी मंजूर किया है, जिससे कुल मिलाकर उनका लेखा-जोखा बराबर हो जाएगा और वे घाटे में नहीं रहेंगे।

जमींदारी-उन्मूलन बिल से प्रभावित होनेवाले जमींदारों की संख्या आबादी का केवल ०.००१४ है। इस नगण्य जनसंख्या को नाममात्र हानि पहुँचने पर यदि प्रांत की करोड़ों जनसंख्या को अपूर्व लाभ पहुँचता हो, अन्न की उपज बढ़ती हो, गरीब किसानों को कृषि के लिए पर्याप्त भूमि मिलती हो, तो इसे उचित ही कहा जाएगा। देश और धर्म के नाम पर जमींदार भी दान-पुण्य करते आए हैं, और त्याग-मूर्ति तो वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी रहे हैं। हमें विश्वास है कि इस राष्ट्रहित के मामले में भी वे त्यागवृत्ति का ही परिचय देंगे, विशेषतया बहनेवाली हवा का रुख और चीन और यूनान के जमींदारों की हालत देखते हुए। जमींदारी-उन्मूलन बिल के तीन बड़े-बड़े लाभ हैं—(१) कृषकों और सरकार के मध्यवर्ती एजेण्टों-जमींदारों का अन्त, (२) किसानों का अपनी जोत की भूमि पर स्वामित्व और (३) सार्वजनिक भूमि पर गाँव-समाज का नियंत्रण। ये तीनों सुधार और इनसे होनेवाली हजारों सुविधाएँ हमारी नवोदित सामाजिक व्यवस्था के लिए वरदान प्रमाणित होंगी, इसमें सन्देह नहीं है। इस बिल के कार्यान्वित होने पर 'दखीलकारी' किसानों को अपनी भूमि पर स्थायी और मौरूसी अधिकार प्राप्त हो जाएँगे और जब तक ऐसे किसान उक्त भूमि का उपयोग खेती, बागबानी या पशु-पालन के लिए करते रहेंगे, तब तक उन्हें अपनी अधिकृत भूमि से बेदखल नहीं किया जा सकेगा। बिल की इस धारा से प्रान्त के अनुमानतः डेढ़ करोड़ किसान लाभान्वित होंगे। ऐसे किसानों को एक विशेष सुविधा यह भी दी गई है कि जो किसान अपने लगान का दस गुना एक मुश्त दे देगा, उसे 'भूमिधारी' अधिकार प्राप्त हो जाएगा—जो जमींदारी का ही पर्याय समझना चाहिए और जिसके प्राप्त हो जाने पर अधिकृत भूमि को हस्तान्तरित भी किया जा सकता है। साथ ही उन्हें मालगुजारी भी वर्तमान की अपेक्षा आधी ही देनी पड़ेगी।

सीर के किसानों अथवा शिकमी किसानों को इस बिल के द्वारा 'भूमिधारी' अधिकार प्राप्त हो जाएँगे। इन किसानों का ऐसा अधिकार वर्त्तमान में ५ वर्ष के लिए सुरक्षित कर दिया गया है। इसके बाद वे मौरूसी लगान का १६ गुना देकर 'भूमिधारी' अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। इस धारा से अनुमानतः प्रान्त के २८ लाख किसान लाभान्वित होंगे।

बिल में यह सत्य भी सामने रक्खा गया है कि अधिकांश किसानों के पास उतनी भूमि नहीं है, जितनी निर्वाह के लिए कम-से-कम होनी चाहिए, जिसके कारण उन्हें अपने समय के एक बड़े भाग को या तो मजदूरी करके काटना पड़ता है, या बेकार रहकर। अन्न की उपज और प्रान्त की आर्थिक अवस्था पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। प्रान्तीय किसानों में से ३७ प्रतिशत ऐसे हैं, जिनके पास एक एकड़ से भी कम भूमि है, जब कि साधारण निर्वाह के लिए प्रत्येक किसान के पास औसतन् १० एकड़ भूमि होनी चाहिए। इस असमानता को दूर तभी किया जा सकता है, जब कि भूमि का बटवारा नए सिरे से हो। परिस्थितिवश हमारी सरकार इस दिशा में सहसा कदम उठाना उचित नहीं समझती; हाँ, वह अनुभव अवश्य करती है कि किसान की दशा को उन्नत बनाने के लिए उसे आज न सही तो कल यह काम अवश्य करना पड़ेगा। इसी उद्देश्य से बिल की एक धारा में स्पष्ट कर दिया गया है कि भविष्य में कोई व्यक्ति अपनी जोत ऐसे व्यक्ति के हाथ नहीं बेच सकेगा, जिसके पास ३० एकड़ या इससे अधिक जोत है। साथ ही सवा छः एकड़ से कम जोत का बटवारा नहीं हो सकेगा।

जमींदारों को उनकी सीर और खुदकाश्त पर भूमिधारी अधिकार दिए गए हैं। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हक आराजी कानून (१६३६) के अनुसार जमींदार की सीर की हदबन्दी ५० एकड़ कर दी गई है।

गाँव की सार्वजनिक भूमि पर अब तक जमींदारों का नियंत्रण था। वे या तो इसका स्वयं उपयोग करते थे, या जिसे चाहते उसे करने देते थे। साधारण चरागाहों से हाँककर किसानों के मवेशी प्रायः मवेशीखाने भेज दिए जाते थे। तालाबों से मिट्टी और कुओं से जल जमींदार की आज्ञा बिना कोई नहीं ले सकता था। परती भूमि पर उपजनेवाले वृक्षों के फल और लकड़ी जमींदार के भोग्यांश थे। इन वस्तुओं को गाँव-समाज और गाँव-सभा के अधिकार में देकर सरकार ने सचमुच चिरस्मरणीय समाजवादी सुधार किया है। इस बिल में गाँव-समाज व सभा को कुछ अन्य अधिकार भी दिए गए हैं—जैसे, गाँव के खेतों की खरीद-बिक्री, खाली खेतों को उठाना, कृषि की उन्नति तथा सुधार के उपाय करना, सार्वजनिक भूमि की व्यवस्था, सहकारी खेती, पशुपालन तथा घरेलू उद्योग-धंधों को चलाना, आदि। इन कार्यों से ग्रामों में सहकारी जनतन्त्र की स्थापना होगी और ग्रामीण जनता आत्मनिर्भरता का पाठ नए सिरे से फिर पढ़ लेगी। संक्षेप में यदि यह बिल उचित रूप से कार्यान्वित हुआ तो ग्राम-पुनःसङ्गठन आप-से-आप हो जाएगा और तब ग्रामीण जनता प्राप्त स्वराज का अर्थ ठीक-ठीक समझने लगेगी।

हिन्दी-प्रचार-सम्बन्धी कुछ संस्मरण

पंडित रामनारायण मिश्र

मेरे ये संस्मरण पचास वर्ष के अन्दर के हैं। हिंदी-प्रचार का वह युग बड़ा टेढ़ा था। अभिभावक बच्चों को इसलिए उर्दू पढ़ाते थे कि हिन्दी पढ़ाने से धन-उपार्जन में बाधा पड़ेगी। अंग्रेज तो हिंदी के विरोधी थे ही। वे चाहते थे कि अंग्रेजी का प्रचार हो, जिसमें शासन-संबंधी सब कार्य वे सुगमता से कर सकें और उन्हें भारत की भाषा सीखनी न पड़े। नगर-निवासी मुसलमान स्वभावतः उर्दू की ओर झुके हुए थे। उन्हें हिन्दी से चिढ़ थी। इस अंश में उन्हें अंग्रेजों का सहयोग प्राप्त था, क्योंकि हिन्दू-मुसलमान में लड़ाई रखना अंग्रेजों की नीति थी। परिणाम यह होता था कि स्कूलों में उर्दू पढ़नेवाले विद्यार्थियों की दो-दो, तीन-तीन कक्षाएँ होती थीं और हिन्दी की केवल एक। मौलवियों की संख्या अधिक रहती थी। एक अकेला सीधा-सादा पंडित हिन्दी की एक छोटी कक्षा लिए बैठा रहता था। हिंदी पढ़ने और उसके पढ़ानेवाले दोनों की उस समय हँसी उड़ाई जाती थी। मुझे स्मरण है कि मेरे स्कूल (क्वींस कालेज) के एक विद्वान् पंडित का नाम 'मोदक पंडित' केवल इसलिए पड़ गया था कि वे हिंदी के अध्यापक थे, पर हँसी का स्वागत वे हँसकर करते थे। 'मोदक' शब्द का अर्थ साधारणतः लोगों को पूछना पड़ता था। हिंदुस्तानी 'लड्डू' का उस समय भी 'मोदक' के सामने आदर नहीं हुआ। ब्राह्मण मधुर-प्रिय होते हैं; यह बात भी इस प्रसंग में कही जा सकती है। विचारणीय बात तो यह है कि हिंदी के प्रति काशी में भी यह आदर-भाव था!

बचपन में पंजाब से मैं काशी आया था। वहाँ उर्दू का विद्यार्थी था। यहाँ आकर एफ० ए० तक फारसी पढ़ी। तिस पर भी हिन्दी का विरोध सहा नहीं जाता था। पुरोहित के घर में जन्म लिया था। आर्यसमाजी मामा डाक्टर छन्नूलाल जी के यहाँ पालन-पोषण हुआ था। उनके यहाँ आर्यसमाज के बड़े-बड़े नेता पंजाब और अन्य प्रान्तों से आकर ठहरा करते थे। उन सबको मैं हिंदी का बड़ा प्रेमी पाता था। 'चंद्रकांता' के रचयिता बा० देवकीनन्दन खत्री मेरे यजमान थे। उनके यहाँ उठना-बैठना रहता था। पंडित अंबिकादत्त व्यास, 'भारत जीवन' पत्र के संचालक बा० रामकृष्ण, संपादक बा० कार्तिकप्रसाद, 'सुदर्शन' के संपादक पंडित माधवप्रसाद मिश्र जैसे साहित्यकों के दर्शन बराबर हुआ करते थे। बा० श्यामसुन्दरदास पड़ोसी थे। वे उस समय भी बड़े स्वाभिमानी थे। उस मंडली में बहुत कम सम्मिलित होते थे। मेरे ऊपर तो उनकी कृपा थी, विशेष स्नेह था। नागरी प्रचारिणी सभा में हम सब एकत्र होते थे। सभा उस समय लाहौरी टोला के निकट ही होती थी, जहाँ हम लोग रहते थे। सभा का अपना भवन नहीं था।

बी० ए० पास करके मैं जौनपुर में मई, सन् १६०० में सब डिप्टी इंस्पेक्टर हुआ। मेरे जाने के तीन-चार महीने बाद हिंदी की चर्चा अध्यापकों और कुछ अन्य सज्जनों में प्रारम्भ हो गई। मेरे अनुरोध से पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अध्यापकों के लिए 'सरस्वती' के वार्षिक चंदे में रियायत कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि जौनपुर के जिले भर में हिंदी का प्रेम बढ़ गया। मेरे सौभाग्य से मेरे डिप्टी इन्स्पेक्टर भी हिन्दी-प्रेमी थे, और असिस्टेंट इन्स्पेक्टर तो प्रसिद्ध हिंदी-प्रेमी पंडित दीनदयालु तिवारी थे। इन लोगों के कारण इसकी सिद्धि में मुझे बड़ा बल प्राप्त हुआ। अध्यापकों के हृदय में हिन्दी-प्रचार-सम्बंधी जो थोड़ा-बहुत भय था, वह तिरोहित होने लगा।

मुझे अध्यापकों में कुछ ऐसे भी मिले, जिनके हृदय में हिंदी-हित का सागर लहरें मार रहा था। मुझे स्मरण है कि श्री रघुनाथ मिश्र (एक अध्यापक) मेरे जाने के बाद खुल्लम-खुल्ला हिंदी-प्रचार के 'पादरी' हो गए। जौनपुर के मिशन स्कूल में पंडित सूर्यप्रसाद मिश्र अध्यापक थे, जिनका राजा जौनपुर के यहाँ जाना-आना था। हम लोगों ने सोचा कि क्यों न जौनपुर (यवनपुर) में भी नागरी-प्रचारिणी सभा खोली जाए। अन्ततः 'हिंदी-हितैषिणी' नाम की एक सभा का जन्म हुआ। उसका उद्घाटन राजा जौनपुर के निवासस्थान पर बड़े समारोह के साथ हुआ। स्वर्गीय पंडित श्यामबिहारी मिश्र उन दिनों काशी

में डिप्टी कलक्टर थे। उनसे मिलकर उस उत्सव के लिए कविता मैंने माँगी, जो छपवाकर उत्सव में बाँटी गई।

उत्सव का प्रभाव शहर क्या सारे जिले पर बहुत संतोषजनक हुआ। पर उन दिनों हिंदी-प्रचार एक कठिन समस्या थी। उसमें विरोधियों का सामना करना पड़ता था, जिनकी संख्या बहुत अधिक थी। इन कठिनाइयों के सम्बन्ध के कुछ संस्मरण नीचे लिखे जाते हैं।

(१) हिंदी-विरोधी डिप्टी कलक्टर

उन दिनों कलक्टर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का चेयरमैन हुआ करता था और एक डिप्टी कलक्टर सेक्रेटरी। स्कूलों के डिप्टी इंस्पेक्टर अपनी रिपोर्ट प्रायः उर्दू में लिखा करते थे और उसकी एक प्रति सेक्रेटरी के पास भेज दिया करते थे। पर हिंदी में रिपोर्ट लिखना मना नहीं था। किन्तु अधिकारी-वर्ग उर्दू की ही रिपोर्ट पसन्द किया करता था। स्वभावतः मैं हिंदी में रिपोर्ट लिखा करता था। वार्षिकोत्सव के एक-दो महीने बाद सेक्रेटरी ने, जिनका नाम खाँ बहादुर औलाद मुहम्मद खाँ था, मुझे अपने इजलास पर (घर नहीं) बुलवा भेजा। उनका व्यवहार बड़ा शिष्ट था। उनकी भाव-भंगी से हुकूमत का रोब नहीं प्रकट होता था।

मैंने समझा था कि उन्होंने स्कूलों से संबद्ध किसी बात के लिए मुझे बुलाया है। पर बात और ही निकली।

उन्होंने पूछा—'आप हिंदी में अपनी रिपोर्ट क्यों लिखा करते हैं?'

मैंने उत्तर दिया—'जिले के ग्रामों में अधिकांश अध्यापक और विद्यार्थी हिंदी पढ़नेवाले हैं। इसलिए स्कूलों का हित इसी में है कि मुझे जो कुछ भी सुझाव उपस्थित करने हों, उनको हिंदी में ही लिखूँ।'

'ऐसे भी तो मुदर्रिस और लड़के होंगे, जो उर्दू ही जानते हैं?'

'जी हाँ, उनके लिए मैं उर्दू में रिपोर्ट लिखता हूँ।'

'क्या आप उर्दू भी जानते हैं?'

'बेशक, मैंने एफ़० ए० तक फारसी पढ़ी है।'

'पर मैं तो हिंदी नहीं जानता। मेरे पास रिपोर्ट हिंदी में आती है, इसलिए मैं उसे स्वयं पढ़कर उचित कार्रवाई नहीं कर सकता। बेहतर यही होगा कि आप रिपोर्ट उर्दू ही में लिखा करें, जैसा सब डिप्टी इंस्पेक्टर इस जिले में करते आए हैं। पर आपने तो हिंदी सभा का उत्सव करके जौनपुर में एक प्रकार का आन्दोलन खड़ा कर दिया है।'—इत्यादि।

अब मैंने इजलास पर बुलाए जाने का असली कारण समझा।

मैंने दृढ़तापूर्वक किंतु नम्रता के साथ कहा—'हिंदी तो हमारे देश की भाषा है, इसलिए हर एक स्कूल की रिपोर्ट उर्दू में लिखना अध्यापकों और बालकों के प्रति अन्याय करना होगा।'

यह सुनकर उन्होंने अंग्रेजी बोलना शुरू किया; संभवतः इजलास के ख्याल से, जहाँ कुछ कर्मचारी और अन्य लोग उपस्थित थे।

वे बोले—'तो आप मेरा भी तो ख्याल कीजिए।'

उनका व्यवहार इतना अच्छा था कि विवाद के लिए गुंजाइश नहीं थी।

तब मैंने यह सुझाव रक्खा कि अध्यापकों को जो रिपोर्ट जाए, वह हिंदी में हो और सेक्रेटरी के पास उसका अंग्रेजी अनुवाद जाए।

इस प्रकार हिंदी रह गई और उर्दू को स्थान नहीं मिला।

(२) काशीराज का हिन्दी-प्रेम

सन् १९०४ की बात है; उन दिनों करनल विन्देश्वरी-प्रसाद महाराज बनारस के प्रमुख अधिकारी थे और महाराज केवल जमीन्दार थे। मैं बनारस के जिले का डिप्टी इन्स्पेक्टर था, इसलिए रामनगर के मिडिल स्कूल का निरीक्षण करने जाया करता था। इसी सिलसिले में उनसे जान-पहचान हो गई थी। वे उन दिनों प्रयत्नशील थे कि बनारस राज्य स्वतंत्र रियासत घोषित कर दी जाए। एक दिन मैंने उनसे निवेदन किया कि वे काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा के सभासद हो जाएँ। उन्होंने सहर्ष मेरी बात मान ली और सभासदी के आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर करके एक वर्ष का चन्दा भी दे दिया। सभा ने भी उन्हें सभासद चुन लिया।

तीन-चार महीने बाद वे मडुवाडीह पर मेरे मामा डाक्टर छन्नूलाल के बाग में पहुँचे, जिसमें उन दिनों मैं रहा करता था। उनसे मालूम हुआ कि उन्होंने मुझसे मिलने का कई बार प्रयत्न किया था, पर मेरे दौरे पर

रहने के कारण मुझसे भेंट न कर सके थे। उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि उक्त सभा की सदस्यता की सूची से मैं उनका नाम कटवा दूँ। इसका कारण उन्होंने गुप्त रीति से यह बतलाया कि तत्कालीन कलेक्टर लवट साहब हिंदी के बहुत विरोधी हैं। लवट का उन दिनों बड़ा दबदबा था और वे बड़े जोरदार सिविलियन माने जाते थे। मैंने याद दिलाई कि महाराज ईश्वरीनारायणसिंह के गुरु जी काष्ठजिह्वा स्वामी ने अपनी कविता से हिन्दी-साहित्य की भी वृद्धि की थी और स्वयं महाराज प्रभूनारायणसिंह हिन्दी और संस्कृत के विद्वान् कहे जाते हैं, इसलिए करनल साहब के सभासद रहने से महाराज की जमीन्दारी को कुछ हानि पहुँचने की आशंका नहीं है। पर उन्होंने मेरी बात नहीं मानी।

काशीराज जब जमींदार थे, और पीछे स्वतंत्र होने पर भी, वे हिन्दी को अपने यहाँ स्थान नहीं दे सके। महाराज स्वयं और उनके कर्मचारी कचहरी आदि में उर्दू को हटाकर हिन्दी का प्रयोग करने से डरते थे, क्योंकि उस समय के प्रायः सभी अंग्रेज हाकिम उर्दू के हिमायती हुआ करते थे। काशीराज को संस्कृत से स्वयं तो बड़ा अनुराग था, पर राजनीतिक परिस्थिति ने उनके सांस्कृतिक प्रेम को दबा रक्खा था। महाराज के पास कई बार सभा की ओर से प्रार्थनापत्र गए कि वे हिन्दी को अपने यहाँ स्थान दें, पर वे ऐसा करने का साहस न कर सके।

कृतज्ञतापूर्वक यहाँ यह लिख देना आवश्यक है कि सन् १९०२ में सभा-भवन का उद्घाटन महाराज प्रभूनारायणसिंह ने किया था और १९१३ में उन्होंने सभा का संरक्षक होना भी स्वीकार कर लिया था। उनके उत्तराधिकारी महाराज आदित्यनारायणसिंह सभा में एक बार पधारे थे। उनसे भी निवेदन किया गया था कि वे संरक्षक बन जाएँ, पर इस सम्बन्ध के पत्रों का कभी उनके दरबार से उत्तर नहीं मिला। एक दिन उनके प्राइवेट सेक्रेटरी श्री ललितबिहारी सेन राय से, जो मेरे सहपाठी थे, मैंने इसकी शिकायत की। उन्होंने उत्तर दिया कि कई कारणों से ऐसे पत्रों का लिखित उत्तर नहीं आएगा। आप महाराज को संरक्षक चुन लीजिए और उनको धन्यवाद देते हुए इसकी सूचना भेज दीजिए। सभा ने ऐसा ही किया।

वर्त्तमान महाराज विभूतिनारायणसिंह ने एक दिन सभा में पधारने की कृपा की थी। उस समय प्रार्थना करने पर उन्होंने तुरन्त ही संरक्षक होना तो स्वीकार कर लिया, पर अपने दरबार में हिन्दी को राजभाषा घोषित नहीं किया। इसके लिए उनकी सेवा में सभा का एक प्रतिनिधि-मंडल भी गया था। बहुत देर तक बातचीत करने पर विनोदपूर्वक उनसे कहा गया कि जनता काशीराज को 'महादेव' कहकर सम्बोधित करती है, "अल्लाहो अकबर" कहकर नहीं। ऐसी अवस्था में जनता को सन्तोष तभी होगा जब हिन्दी को उनकी कचहरियों में प्रवेश प्राप्त होगा। वर्त्तमान महाराज उत्साही और विवेकशील देशभक्त हैं। सुअवसर आते ही भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् उनके राज्य में हिन्दी को उचित प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई है।

एक वह दिन था जब हिन्दी-प्रेमी राजा-महाराजा विवश होकर उर्दू को अपना संरक्षण प्रदान करते थे। आज भगवान् की कृपा से भारतेन्दु जी जो चाहते थे—"प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न, राज-काज दरबार में फैलावहु यह रत्न।" वह हमारी राष्ट्रीय सरकार ने कर दिखलाया।

(३) काश्मीर-नरेश महाराज प्रतापसिंह

फरवरी, १९१६ के पहले सप्ताह में काशी में बड़ी चहल-पहल थी। उन दिनों देश में महामना मालवीय जी की कीर्ति-ध्वजा फहरा रही थी। ४ फरवरी बसन्तपंचमी पर हिन्दू विश्वविद्यालय का शिलान्यास था। इस शुभ अवसर पर देश के राजा-महाराजा और बड़े-बड़े नेतागण पधारे थे। काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा के सदस्यों ने सोचा कि ऐसे समय सभा का वार्षिकोत्सव कर लिया जाए। इस निमित्त सभा का प्रतिनिधि-मंडल ३ फरवरी को काश्मीर-नरेश महाराज प्रतापसिंह से मिलने गया। इस प्रतिनिधि-मंडल में डाक्टर श्यामसुन्दरदास, सभापति, श्री गौरीशंकरप्रसाद, उपसभापति, श्री हरिप्रसाद पालोदी, प्रधानमंत्री और श्री बालमुकुन्द वर्मा, उपमंत्री थे। मैं भी गया था। हम लोगों ने महाराज से प्रार्थना की कि वे सभा के वार्षिकोत्सव में सभापति का आसन ग्रहण करें। उनके आज्ञानुसार ५ फरवरी को वार्षिकोत्सव रखा गया। महाराज प्रतापसिंह भारतीय संस्कृति के पोषक थे। उनके रहन-सहन में, उनकी भेष-भूषा में,

उनकी बातचीत में बिलकुल ही विदेशीपन नहीं था। उनकी सादगी और सहृदयता से प्रभावित होकर हम लोगों ने दिल खोलकर अपने भाव प्रकट किए। बहुत देर तक हिन्दी भाषा और साहित्य की चर्चा होती रही। इसी प्रसंग में हम लोगों ने उनसे निवेदन किया कि काश्मीर-दरबार में हिन्दी को स्थान दिया जाए। उस समय उन्होंने जो वाक्य कहा था, वह हम लोगों को कभी नहीं भूलेगा। उनके ये शब्द थे :—

"मैं ऐसा करूँगा तो रेजिडेण्ट वड्ड खाएगा।" पंजाबी भाषा में 'वड्ड खाना' खा जाने को कहते हैं। उनका मतलब यह था कि हिन्दी को तो स्थान मिलेगा ही नहीं, उलटे रेजिडेण्ट दुश्मन हो जाएगा। उस समय अँगरेजों का इतना डर था कि भारतीय संस्कृति पनपने नहीं पा सकती थी।

वार्षिकोत्सव में महाराज पधारे। उनका लिखित भाषण, जिसकी भाषा बड़ी संयत थी, पढ़कर सुनाया गया। उसके बाद उन्होंने पंजाबी-मिश्रित भाषा में एक छोटा-सा व्याख्यान दिया। वे बड़े स्पष्टवक्ता थे, उनकी बातों से यह विदित हो जाता था कि जो कुछ वे करना चाहते हैं, उसको पूरा करने में असमर्थ हैं।

महाराज की मृत्यु के बाद जब श्री आयंगर दीवान हुए तब वहाँ के शिक्षा-विभाग में हिन्दी भाषा एक ऐच्छिक विषय मान लिया गया था। आज काश्मीर की समस्या भविष्य के गर्भ में है। पर एक बात निश्चित है; हिन्दी बिना राजाश्रय ही, बल्कि कभी-कभी कुचली जाने पर भी, ऊपर ही उठती आई है। उसने जनता-जनार्दन के हृदय में जगह पाली है। उसे अमरत्त्व प्राप्त है। वह अमर रहेगी।

बहाना

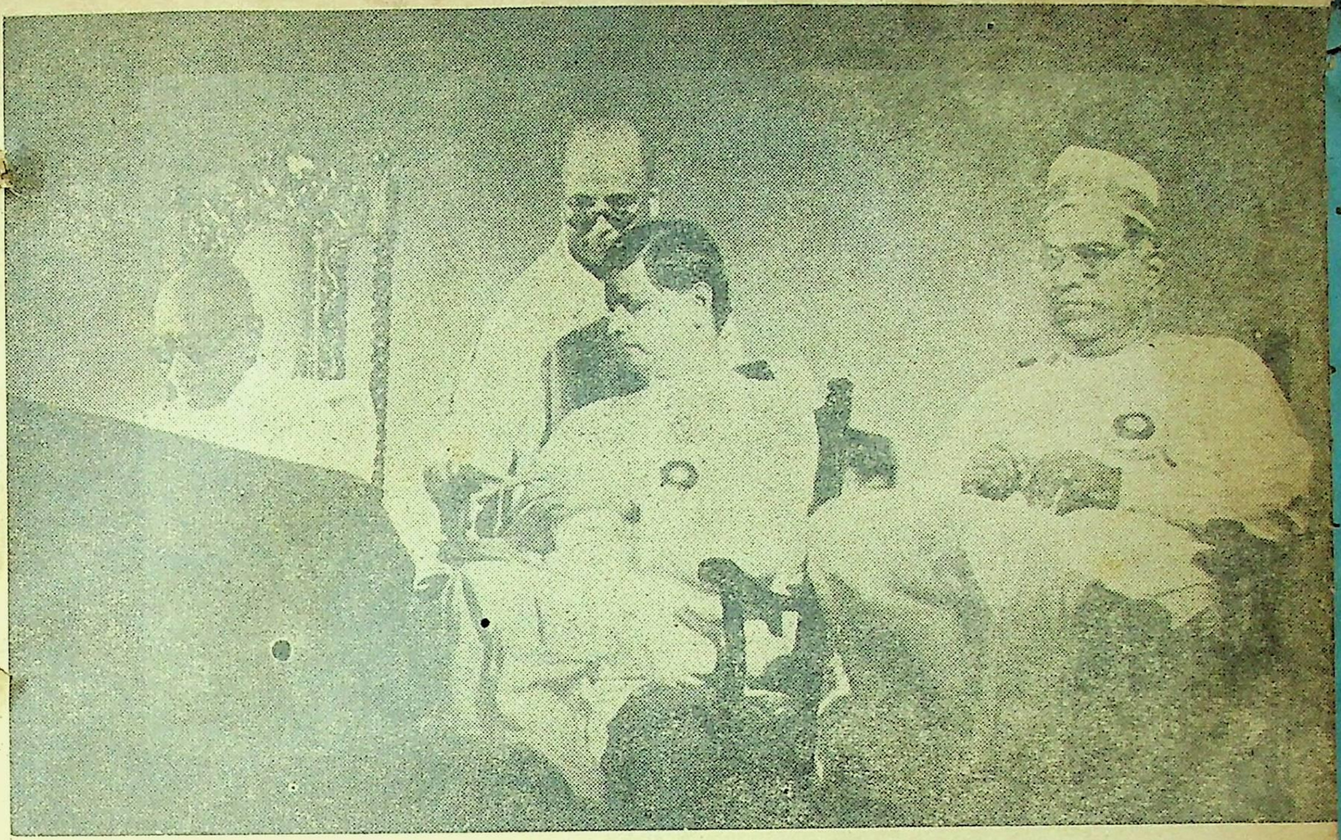
कुमारी विपुला देवी

(१)

एक का सौभाग्य दूसरे के लिए दुर्भाग्य बनकर आता है और वह जहाँ उसे पतन के गहरे खड्ड में औंधे मुँह ढकेल देता है, वहीं दूसरे का दुर्भाग्य, पहले का सौभाग्य लाने के लिए बहाना बन जाता है। एक का जीवन दूसरे के लिए मौत का संदेश लाता है और दूसरे की मौत पहले के दीर्घ जीवन का बहाना बन जाती है। ईश्वर हो या न हो, परन्तु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बचे रहने के लिए, विपत्तियों से त्राण पाने के लिए, उत्थान के लिए, जीने और मरने के लिए एक बहाना चाहिए। बिना बहाने के आदमी न आदमी बन सकता है और न जीता रह सकता है, यह मेरा निश्चित विश्वास है। यदि मैं कहूँ कि वह मर भी नहीं सकता, तो मैं सत्य से बहुत दूर नहीं होऊँगा। और यदि आप इस बात पर विश्वास करेंगे तो ठगाए नहीं जाएँगे। मरने के लिए भी बहाने की जरूरत हो सकती है, यह बात चाहे कल्पना के बाहर की हो, परन्तु वास्तविक संसार के बाहर की नहीं है।

बातें बहुत पुरानी नहीं हैं। कल की घटना के समान वे सब बातें मुझे आज भी स्मरण हैं। तब मैं आज के समान बहुजन-सम्मानित पुरुष नहीं था, न वैभववान् था। वरन् बहुत ही सीधे-सरल शब्दों में गरीब था और गरीब होने के कारण ही सभ्य-समाज की दृष्टि में बेईमान, धोखेबाज और परले सिरे का अवारा भी। पैसे की तंगी अलग तंग कर रही थी। महीनों नाई की दूकान के पास से दृष्टि बचाकर निकल गया। क्योंकि मैं डरता था कि कहीं वह परिचित चेहरा देखकर मेरा मन सभ्यता सीखने के लिए पागल न हो उठे। मैं अपने मन पर अपना नियंत्रण खो बैठूँ। बात यह है कि गरीबी में बिना पैसों के हम लोग जो सभ्य और प्रतिष्ठित समझे जाते हैं, एकदम असहाय और हीनता के गहनतर गह्वर में गिर जाते हैं। दूसरों के सामने उनकी तुलना में हम केवल इसी विशेषता के कारण अपने को श्रेष्ठ समझकर सिर ऊँचा करके चल सकते हैं, नहीं तो हम लोगों में है ही क्या? मामूली मनुष्यत्व तक नहीं। परन्तु तो भी कठिन बात यही है कि धन-वैभव और उसका स्वतः सिद्धगौरव खोकर ही यह बात समझ में आती है, जब अवसर और शक्ति हाथ से निकल चुकी होती है। सर्प के विषैले दाँत

अखिल भारतीय समाचार पत्र-सम्पादक-सम्मेलन



बंगलोर के अधिवेशन में श्री राजाजी, श्री डी० वी० गुण्डप्पा (चेयरमैन स्वागत समिति), श्री देवदास गांधी (भूत सभापति) और श्री सी० आर० निवासन (नए सभापति)।

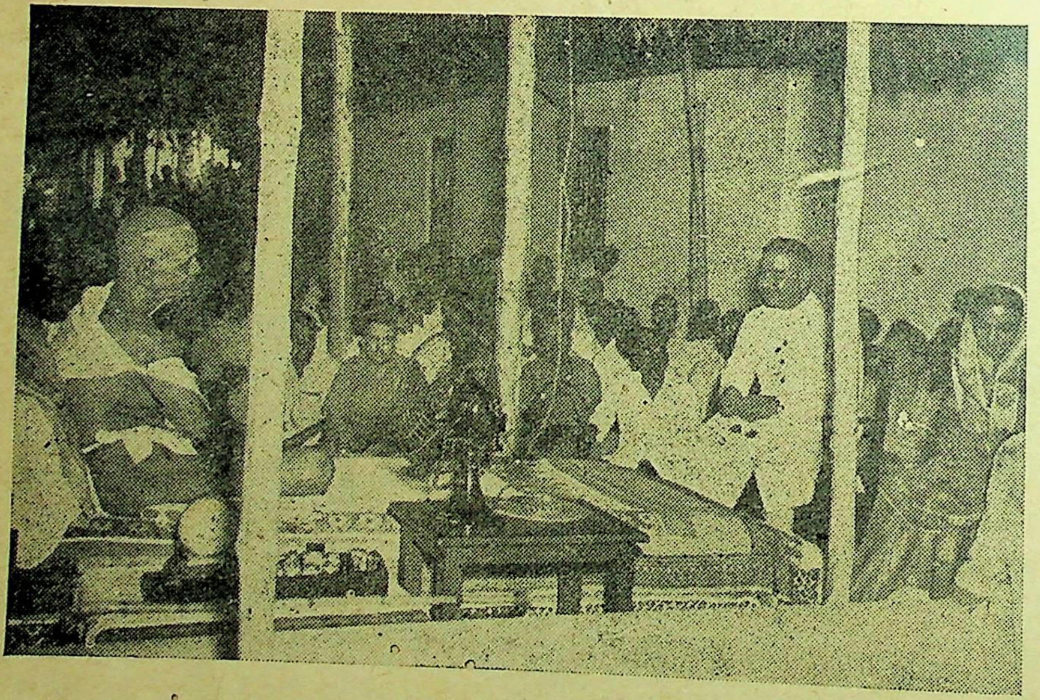


उक्त सम्मेलन के समारोह में श्री के० निवासन, श्री ए० रा स्वामी मुदालियर और के० सी० रेड्डी।



स्वागत

अमेरिका में भारतीय राजदूत श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित का स्वागत।



दर्शनार्थी गवर्नर

मद्रास के गवर्नर महाराज भावनगर भगवान् रामनन महर्षि के दर्शनार्थियों में।

तोड़ दिए जाने के बाद भी वह अपनी फुफकारने की आदत नहीं छोड़ता। लेकिन जब उससे संपेरे के बालक उतना भी नहीं डरते, जितना चींटे से, तब वह अपने मन में क्या सोचता होगा और सोचता होगा भी या नहीं, यह मुझे नहीं मालूम। परन्तु मैं अपने पिता के दुःख भरे जीवन की अन्तिम घड़ियों में उनके पास ही था। जीवन में पर्याप्त धन उन्होंने अर्जन किया था और अच्छी शान-शौकत से रहे थे। पर बाद में उन्हें सट्टे का चस्का ऐसा लगा कि वे अपना सर्वस्व गँवा बैठे। उसके बाद अपने दुर्भाग्य से, चरम संकट के क्षणों में भी ईमानदारी और सच्चाई का मोह न छोड़ सकने के कारण बर्बाद हो गए। उसी के साथ जैसे उनका सुलभ और प्रगल्भ स्वभाव बदल गया, वैसे ही हृदय की शान्ति के साथ-साथ सारा सामाजिक गौरव भी नष्ट हो गया। मौन वेदना के भार से वे मन-ही-मन घुलते रहे। धन नष्ट होने से अधिक दुःख उन्हें अपना गौरव नष्ट हो जाने से हुआ। जब धन था, तब लोग उन्हें गुणवान् और ईमानदार समझते थे, लेकिन उसके नष्ट हो जाने पर हीन और बेईमान समझने लगे। साधारण श्रमजीवी की अपेक्षा भी उनका मान घट गया, जब कि मेरे पिता में जो कुछ भी अच्छा था, वह यही कि वे न हीन थे, न बेईमान। जो लोग उन्हें वैसा समझते थे, वे उनकी अपेक्षा अधिक ऊँचे नहीं थे—न चरित्र में और न मन में; परन्तु न जाने क्यों और कैसे अपने मन में यह विश्वास कर बैठे कि वे श्रेष्ठ हैं। धन के कारण? पर जब वह सहारा टूट जाता है तब?

तब बहुत कम लोग ऐसे निकलते दिखाई देते हैं, जो चुपचाप सह जाएँ और यह आघात उनको तोड़ न दे। बहुत से पागल हो जाते हैं, बहुतेरे आत्महत्या कर लेते हैं और अनेक जन्मभूमि त्यागकर कहीं दूर देश भाग जाते हैं। वे जीते भी रहते हैं तो सुखद मधुर स्मृतियों को अन्तःपट से धो-पोंछकर, जीवन की पृष्ठभूमि पर अंकित सुन्दर जीवन के चित्रों के आकर्षक रंग मिटाकर। अर्थात् सब कुछ रद्दोबदल करके, अपने मन को धोखा देकर। परन्तु यही एक बात है जिसकी निस्सारता मैंने समय रहते ही समझ ली। धन बुरा नहीं, उसके द्वारा जीवन को अधिकाधिक रंगीन बनाया जा सकता है, आनन्द के सब उपकरण जो अपने को भले लगें, वे भी एकत्र किए जा सकते हैं। इसलिए एक हिसाब से वह उपयोगी है और उसके लिए परिश्रम करना भी उचित है, लेकिन तो भी वह जीवन और उसके आनन्द से अधिक कीमती नहीं। जीवन और धन का बराबरी का दावा तभी तक क्षम्य है, जब तक दोनों एक ही पथ के पथिक बने रहें। लेकिन जब परिवर्त्तन के चौराहे पर उनको पृथक्-पृथक् होना पड़े, तब जीवन-यात्रा के शेष भाग को रोते-रोते और उसकी स्मृति में व्याकुलता-पूर्वक बिताया जाए, यह भ्रान्ति के अतिरिक्त क्या है? लोग धन की गठरी बिना बाँधे ही पैदा होते हैं और उसे छोड़कर चले जाते हैं। हास्य जीवन के साथ आता है, उसकी उपेक्षा करना मूर्खता नहीं तो और क्या है?

हो सकता है कि उपयोग और हित की दृष्टि से धन खोकर भी आगे बढ़ने पर कोई श्रेष्ठ मित्र प्राप्त हो जाए। यह भी संभव है कि बहुत श्रेष्ठ न मिले, तो उससे एक अंश घटकर सही। लेकिन यह देखा नहीं, वरन् पाया कि उक्त कोटि के व्यक्ति अपने प्रिय-से-प्रिय व्यक्ति का विछोह सहकर भी जीवित रहते हैं। स्त्री-पुत्र का विछोह सहकर भी कभी-न-कभी हँसते हैं और यदि चाहें तो फिर प्रेम, विश्वास, उन्नति, यश, वीरता आदि दैवी विभूतियों के बिना भी सुखी रह सकते हैं। पर मेरे पिता की श्रेणी के लोग धन न रहने पर हँसते नहीं, प्रसन्न नहीं दीखते।

मैं जीवन के सब प्रकार के उत्थान-पतन, आशा-निराशा, धनवत्ता-निर्धनता, ईर्ष्या-द्वेष और ऊँचाई-निचाई के नमूने देख चुका हूँ। स्वयं भी बहुतों में से निकला हूँ और असाधारण रूप से विभिन्नतापूर्ण जीवन मुझे बिताना पड़ा है। इन बातों की गहराई मेरी नापी पड़ी है। मानव हृदय की सब विचित्रताओं से मेरा परिचय है। मैं जानता हूँ कि सेंट हेलीना में रहते समय यदि नेपोलियन अपनी गिरी अवस्था और असाधारण शक्तियों की बात भूलकर मामूली मनुष्य, साधारण कैदी के समान अपने हृदय को सँभाले रहता तो उसके अन्तिम उद्गार इतने निराशाजनक न होते। मैं जानता हूँ कि अपने को असाधारण समझने के कारण ही उसे यह विश्वास नहीं था कि कोई उससे भी बड़ा बुद्धिमान्, साहसी, दूरदर्शी व्यक्ति फिर फ्रांस में उत्पन्न होगा, जो उसके कार्य को पूरा कर सके। परन्तु मानवी-शक्ति का अन्त या अवसान एक

दिन जहाँ हो जाता है, उसकी ओर उसका और उस जैसे अन्यों का भी ध्यान नहीं गया, अन्यथा इतनी दीर्घ निराशा के स्थान पर उनके मन में प्रचंड आशा का भानु अपने तीव्र प्रकाश से संसार को प्रकाशित और प्राणीमात्र को चमत्कृत कर देता। अपनी बुद्धि और अपने कार्यों की सत्यता और अनश्वरता पर जिसे विश्वास हो, वह अपनी क्षणिक असफलता से इतना निराश होजाए ? क्या वह नहीं जानता कि पृथ्वी के करोड़ों वर्षों के जीवन में पचीस-तीस या सौ वर्ष के कार्य हैं ही क्या ? लेकिन देखा यह है कि हम लोग अपने एक-एक क्षण को कितनी बेदर्दी से खर्च कर देते हैं और उनका कोई हिसाब नहीं रखते। कीमत ! भला कीमत कौन लगाता है उनकी ? परन्तु हमीं लोग सृष्टि के अविरत क्रम से, अपने पच्चीस-तीस वर्षों के काम का मूल्य एक ही क्षण में, लगे हाथों वसूल कर लेना चाहते हैं। लेकिन वह मूल्य देगा ही क्यों ? अगर देगा तो किस दर से ? मुँह माँगे दाम ही दे, यह आग्रह क्यों ? धन नष्ट हो गया तो हो जाने दो। उससे प्राप्त मान चला गया तो चिन्ता किस बात की ? मैं कहता हूँ कि किसी को संसार पर पूरा प्रभुत्व नहीं मिल पाया, अपार धनराशि नहीं मिल पाई तो क्या हुआ ? जितने दिन काम किया, पूरी शान से, पूरी शक्ति और सम्पूर्ण अधिकार के साथ···। इसके बाद नैपोलियन के समान ठंढी साँस भरने से लाभ ?

(२)

उन दिनों, जब मेरी रातें सड़कों पर वृक्षों के नीचे सोने और दिन चलने में बीतते थे, तब भी मेरा मन स्वस्थ था। धन नहीं था, किन्तु जीवन के अनमोल दिन और रात मेरे थे। न सही आत्मीय, हाथ तो मेरे थे। समाज का विशिष्ट व्यक्ति न होने के कारण किसी की बाघ-सी तीव्र दृष्टि मुझे सदैव घूरती तो नहीं रहती थी। नियम-उपनियमों की रस्सी में मैं बँधा हुआ तो नहीं था। कभी मैं खेतों में मजदूरी करता, कभी सिर पर ईंटें ढोता और जब कुछ भी काम न मिलता तब मौज के साथ गाते हुए गलियों में घूमा करता। इधर-उधर कोई वस्तु यदि पड़ी मिल जाती तो उठाकर अपने झोले में रख लेता। उसमें पूरा भानमती का पिटारा समाया था। ताश की एक रद्दी जोड़ी, बाँस की स्वयं बनाई हुई बाँसुरी और होल्डर के ऊपरी हिस्सों को, बाँस छीलकर उसमें फिट करके बनाए गए निराले कलम तो उसमें थे ही। उसके साथ बेंत की स्वयं बिनी हुई एक छोटी-सी टोकरी भी थी, जिसके अन्दर रबड़ के टुकड़े, स्याही की टिकियाँ, लोहे के टुकड़े, चाकू के रद्दी फल, सेफ्टीरेजर आदि भर रखे थे मैंने।

प्रत्येक दिन मैं बिना रुके भ्रमण करता रहता था। नटों, जोगियों और दरवेशों के साथ मेरे कितने ही दिन-रात बीते। प्रत्येक से मैं कुछ-न-कुछ सीख लेता था। याद नहीं आता कि ऐसा निर्द्वन्द्व जीवन मैंने कभी बिताया है। न कोई चिन्ता, न कोई परेशानी। जहाँ पहुँच गया, काम करके भर-पेट खाने को पा गया। जहाँ नींद लगी, वहीं सो गया। फटे-गंदे वस्त्रों के और अधिक गंदे होने अथवा फटने का डर नहीं था। मेरा काम था केवल खाना और सोना। बेकारी से मुझे घृणा थी और मुझे कभी उसका शिकार नहीं होना पड़ा। कुछ काम न रहने पर मैं खेत खोदता, लकड़ी चीरता या कुछ भी करता, परन्तु बेकार न बैठता। जब कुछ करना नहीं चाहता तब सो रहता।

मैं बहाने की बात कर रहा था। मुझे याद है कि मैं उस दिन काम की खोज में घूम रहा था कि इतने में एक जगह भीड़ देखकर कौतूहलवश रुक गया। मालूम हुआ कि आज रात को यहाँ कोई नाटक खेला जानेवाला है। भूख से पेट में चूहों ने उछल-कूद मचानी आरम्भ कर दी थी, पर मैं जहाँ टिकट बँट रहे थे, वहीं जमकर खड़ा हो गया। टिकट बाँटनेवाला मेरी ही उम्र का लड़का था। उसकी दृष्टि जैसे मुझ पर पड़ी, घुड़ककर बोला, "यहाँ क्यों खड़े हो, भाग जाओ।"

निश्चिन्त मुद्रा से भीड़ की ओर ताकते हुए मैं बोला "क्यों, यहाँ मेरे खड़े रहने से तुम्हारा जाता है कुछ ?"

"हूँ। शायद कुछ चुराने की फ़िक्र में हो।" वह चिढ़कर बोला।

उसकी भाव-भंगी देखकर मैं हँस पड़ा। कहा-"दोस्त, इतना क्यों बिगड़ते हो। लोग पैसे खर्च करके नाटक देखेंगे; मैं बिना पैसे खर्च किए यदि आनन्द लूट सकता हूँ, तो तुम्हारी तो कोई हानि नहीं है न। तब इतनी कंजूसी क्यों ?"

"बिना पैसे खर्च किए, कैसे !"

"शीशे में अपना मुँह देखो तो पता चले।"

वह क्रोधित था परन्तु मेरा मजाक समझकर उपेक्षा भरे स्वर में बोला—"तू है कौन ? देखने में नीच जात तो नहीं लगता !"

हँसकर मैं बोला—"यह तेरी आँखों का दोष है। रहता तो मैं नटों के ही साथ था।"

"क्यों···?"

"इसके लिए भी क्यों ? खैर,जब तुम जानना चाहते हो तो सुनो, मेरी इच्छा। जब जो जी चाहा, तब वह किया। स्वतंत्रता का सच्चा आनन्द क्या है, इसे यदि तुम जानते··· ।"

लड़का ऊपर से क्रुद्ध दिखाई पड़ रहा था, परन्तु उसकी आँखों से कौतूहल और भ्रू-संचालन से अवज्ञा स्पष्ट टपक रही थी। उसने कहा—"स्वतंत्रता का आनन्द उँ हुँ, वह क्या फटे चिथड़ों में घूमने से मिलता है! आराम से जिन्दगी बीतती रहे, कुछ करना-धरना न पड़े, तो··· । परन्तु उसके लिए जानते हो कितना रुपया चाहिए ? एक लाख···कितना होता है एक लाख, जानते हो ? हुँ, लाख क्या···एक भी रुपया तो तुमने देखा न होगा, गिनती मालूम न होगी ! तुमसे मैं क्या बातें करूँ ? इतना रुपया तो मेरे मालिक के पास भी नहीं है···तीन हजार रुपए उसके पास हैं। उन्हें खाट के नीचे गाड़कर रखता है। कंजूस मक्खीचूस कहीं का !"

वह अपने स्वामी से बहुत असंतुष्ट देख पड़ा। उसकी भावभंगी देखकर कठिनाई से हँसी रोककर बोला—"वेतन समय पर नहीं देता क्या... ?

उसने नकारात्मक ढंग से मस्तक हिला दिया। उसके मन की बात भाँपकर मैं बोला, "रुपया कहाँ गाड़ रखा है ? घर पर ?"

"और नहीं तो क्या यहाँ ! अजीब बेवकूफ हो। घर पर नहीं तो क्या यहाँ, राह चलते डेरे में...धत् तेरे की।"

"उड़ा क्यों नहीं देते··· ?" मैं कह रहा था कि "यदि समय से वेतन नहीं देता तो गड़ा धन खोदकर नौ-दो-ग्यारह क्यों नहीं हो जाते। देखने के अतिरिक्त उसके और किसी काम तो आएगा नहीं, तुम्हारे काम आ जाएगा !"

अपने मन की बातों की अभिव्यक्ति दूसरे के मुख से सुनकर वह खीज उठा ! चिल्लाकर बोला—"अबे चोर, भाग जा यहाँ से ! पकड़कर खूब ठोकूँगा तुझे।"

हँसते हुए पीछे हटकर बोला—"मैं चोर नहीं हूँ। चोर होता तो इस स्थिति में न दिखाई देता। हाथ की सफाई मुझमें है। मैं तुम्हारी तरह डरपोक नहीं हूँ। माल इतनी सफाई से उड़ाता कि किसी को कानों-कान पता न चलता। पर खैर; किसी को खबर हो या न हो; चोरी कोई अच्छी वस्तु तो है नहीं ! मन उसे स्वीकार नही करता। परन्तु न सही चोरी; लाटरी का टिकट खरीदकर ही अपना भाग्य आजमा देखो।" विस्मयपूर्वक मुट्ठी ढीली करके वह बोला—"लाटरी ! किस लाटरी की बात कर रहे हो तुम ?"

"डर्बी की; घुड़दौड़ या प्रायरिश लाटरी कोई भी हो। रकमें बड़ी काफी रहती हैं ! मिलना हो तो दस-बारह लाख रुपए मिल जा सकते हैं !"

"परन्तु तुम नट हो; तुम्हें उनके बारे में क्या पता ?"

इस बात के उत्तर में मैं भी हँस सकता था ! परन्तु मन में न जाने क्यों कष्ट का अनुभव किया; कहा—"मैं नट नहीं हूँ।"

"तब कौन हो ?"

"कोई भी हूँ; पर नट नहीं हूँ।"

"तब फटे चिथड़े क्यों पहने हो; क्या जाति है तुम्हारी···?

मैंने पहली बार अपमान का अनुभव किया। आज वास्तविक परिचय देते हुए पहली बार हिचक हुई। मैं समझ गया कि यह भावना उसी वस्तु से मिलती-जुलती है, जिसने मेरे पिता के अन्तिम जीवन को दुःखमय बना दिया था और वे किसी भी व्यक्ति को अपना वास्तविक परिचय देते हिचकते थे। अपरिचितों को वे अपना कृत्रिम परिचय देते थे ! परन्तु मैं देखता था कि उसमें वे बड़ी हीनता का अनुभव करते थे। दोनों अवस्थाओं में उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी, जिसकी उन्हें उस समय सबसे अधिक आवश्यकता थी। मैंने तत्काल निश्चय कर लिया कि कुछ भी हो, अब मैं आगे पग नहीं बढ़ाऊँगा ! यद्यपि इस जीवन में मुझे कोई कष्ट नहीं, तथापि प्रफुल्लित हृदयसरोज आज संकुचित जो हो गया। मैं इसे नष्ट नहीं

होने दूँगा। जिस प्रकार जिस अवस्था में यह खिला, ताजा और रंगीन बना रह सके, उसी अवस्था में इसे रखूँगा। अब मैं बातों में समय न गमाकर यह कहते हुए चल दिया कि यह बात बहुत जल्द तुम्हें मालूम हो जाएगी कि मैं कौन हूँ।

शीघ्र ही मैंने बाजार में जाकर काम की खोज की ओर जी-जान से उसमें जुट गया। उस दिन और दूसरे दिन भर में मैंने पाँच आरामकुर्सियाँ बुनीं। आज के समान परिश्रम मैंने पहले कभी नहीं किया था और शायद पूरी मजदूरी भी कभी नहीं ली थी। प्रत्येक कुर्सी की बुनाई एक रुपया मैंने पहले ही ठहरा ली थी। मेरा साथी एक अधेड़ कार्यकुशल व्यक्ति था, किन्तु वह चकित होकर मेरे हाथ की सफाई देखता रह गया। मजदूरी लेकर जब मैं चलने लगा तब उसने कुछ दूर पीछे-पीछे आकर मेरी जाति-पाँति पूछनी आरम्भ की और बातों में अपनी लड़की की चर्चा भी कर गया कि वह काफी अच्छी, सुन्दर और सुघर है। यदि मैं उसकी जाति का होऊँ तो उसकी कन्या के उपयुक्त पात्र हूँ। परन्तु मैं उसकी बात सुनी-अनसुनी करके बाजार पहुँचा। हजामत बनवाई। स्नान करके नवीन कपड़े पहन, भेष-भूषा बदल पेटपूजा की और फिर सोने के लिए उपयुक्त स्थान की खोज में निकला।

परन्तु ज्ञात होता है कि सभ्यता तथा दुर्भाग्य का गठ-बन्धन है। वस्त्र बदलने के साथ-साथ मन बदल गया। पहले सोने के लिए कभी स्थानाभाव नहीं सताता था। कुएँ की जगत, घने वृक्षों के नीचे और किसी भी दूकान के पीछे भूमि पर पड़कर बेखटके सो रहता। पर अब तो उसी भूमि पर बैठते वस्त्र मैले हो जाने का भय सताने लगा। सोच-विचार कर उसी नाटक कम्पनी की ओर चला, सोचा न होगा तो रात नाटक देखकर बिता दूँगा। किन्तु जिस समय टिकटघर की खिड़की के सामने खड़े होकर मैंने टिकट माँगा, भीतर से अलसाए स्वर में उत्तर मिला—"खेल तो प्रारम्भ हो गया है। अब टिकट लेकर क्या करोगे?"

"इससे तुम्हें क्या सरोकार है! तुम टिकट दो···!"

"कल आना देखने, अधूरा खेल देखने से क्या फ़ायदा? दो ही रुपएवाले टिकट बचे हैं, लेना चाहो तो मिल सकते हैं—।" कहते-कहते आँखें मलते हुए कहा, देखा और आश्चर्य से अवाक् होकर देखता रह गया। एक बार उस बेढंगी स्थिति में देखने के बाद, दूसरी बार इतनी अच्छी स्थिति में देखने की कल्पना तक न कर सकने के कारण वह विस्मित-सा मुँह फैलाकर ऐसे ढंग से मेरी ओर ताकता रह गया, मानों स्वप्न देख रहा हो। मानों कोई बात ही न हो, ऐसे स्वर में मैंने पूछा—"क्यों; क्या हो गया?"

"काया-पलट! पुनर्जन्म! नवजीवन!" कहते-कहते वह उछल पड़ा और बेचैन-विचलित स्वर में बोला—"मान गया, मान गया मैं कि तुम बहुरूपिया हो। जादू मालूम है तुम्हें···।"

उपेक्षापूर्वक हँसकर कहा—"यह जादू तुम भी सीखना चाहो तो सीख सकते हो। बहुत ही आसान और सरल विद्या है।"

"सचमुच! क्या तुमने जादू सीखी है? गोरखनाथ बाबा की दया से गोरखपुर की ओर भी—।"

बात काटकर मैंने पूछा—"क्या जादूगरिनें गोरख-पुर की ओर रहती हैं? मैंने तो नहीं सुना।"

"नहीं, नहीं! जोगी-जोगिनें रहती हैं न, उन्हीं में चमत्कार दिखाने की अद्भुत शक्ति है। केवल चादर चढ़ाकर गोरखनाथ बाबा से जो चाहो पा सकते हो।" उसके चेहरे पर श्रद्धा और अव्यक्त भाव की छाया देख पड़ी।

मन में हँसकर मैंने पूछा—"क्या-क्या मिल सकता है?"

अजी क्या-क्या गिनाएँ। रुपया-पैसा, घर-द्वार, सब कुछ। यहाँ तक कि मानता मानने से ब्याह तक हो सकता है। मालिक बड़ा बेरहम है। मैं और दो तीन लड़के चाहते हैं कि कुछ दिन छुट्टी लेकर ब्याह कर लें, लेकिन वह जाने नहीं देता। कहता है कि ब्याह हो जाने पर तुम लोग वापस नहीं लौटोगे। न जी लगाकर काम करोगे। वह एवज़दार चाहता है, पर मैं कहाँ से पाऊँ।

उसके मुखमंडल पर आन्तरिक क्रोध और क्षोभ की छाप देखकर मैंने उसे भरोसा देते हुए कहा—"कोई है नहीं क्या?"

"नहीं। न मेरे भाई हैं; न कोई चाचा मामा ही। जिनके कोई है; वे छुट्टी लेकर बदले में चले जाते हैं। न मालिक का नुकसान न अपने को परेशानी।"

मैं आज तक नहीं समझ सका कि लोग विवाह के लिए

क्यों उतावले और दीवाने बन बैठते हैं। पर मूर्खों के लिए क्या कहा जाए। उस लड़के को विवाह के लिए बहुत उत्सुक देखकर मुझे एक युक्ति सूझ गई। मैं बोला—"यदि तुम्हारे कोई नहीं है, तो, अहमकदास, यहाँ पड़े क्यों हो? छोड़कर भाग क्यों न गए, मालिक क्या कर लेता!"—"हाँ और यदि वह पकड़ मँगवाए तब?"

"क्यों! तुम कुछ उसके खरीदे गुलाम हो? जहाँ जी चाहा, काम किया और कमाया-खाया।

"हाँ! बातें बनाना आसान है!"

"बातें...तो फिर तुम मुझे अपना एवजीदार बना दो और चलते हो।"

सुनकर उसके मुख पर चमक आ गई। अनिश्चित और अविश्वास भरे स्वर में बोला—

"तुम्हें···तुम बनोगे मेरे एवजीदार!"

"क्यों नहीं! जब तक तुम्हारा जी चाहे छुट्टी मनाना। उसके बाद लौटने पर फिर स्थान खाली का खाली।"

"लौटना! एक बार जाकर फिर लौटना कौन चाहेगा?"

"ओहो, यह बात है! तब दोस्त फिर तो जब तक मेरा मन चाहेगा, काम करूँगा और फिर नौ-दो-ग्यारह। मेरा पता कौन पा सकता है? इसके अतिरिक्त इन मामलों में मैं तुमसे अधिक चतुर हूँ। तुम तो बुद्धू हो।"

"शेखी बघारने से कुछ नहीं होगा, बच्चू! ऐसे बेरहम मालिक के हाथ पड़कर चतुर-से-चतुर व्यक्ति भी बुद्धू बन जाएगा। रह जाओ दो वर्ष, तब कहना!

मैं तो दस-बारह वर्ष से···हूँ।

"दस-बारह वर्षों से···!"

"हाँ! पहले वैरागियों के साथ भीख माँगता और गाता फिरता था। पर मुझे यह याद नहीं कि मैं कब और कहाँ से इस नाटक-मंडली में आया। सुना है कि यही मालिक कम्बख्त मेरा गाना सुनकर 'कृष्ण' बनाने के लिए ले आया था कहीं से। मंडली का 'कृष्ण' वृन्दावन में हैजे से मर गया था और कोई उसका काम कर नहीं सकता था। नए लड़के की जरूरत थी। इसी से...!"

"वाह! तब यह कहो न कि मालिक ने तुम्हारे साथ उपकार ही किया है···।"

"पत्थर किया, तनखाह कुछ भी नहीं देता जो। दूसरी मंडलियाँ 'कृष्ण' को चालीस-पचास रुपया देती हैं, बढ़िया भोजन-वस्त्र अलग। इधर केवल आठ रुपया और मोटा कपड़ा, रद्दी भोजन! सो भी दो वर्षों से ये रुपए भी मिलने लगे हैं और सब बाकी पड़े हैं उसी के पास। कहता है कि 'जमा' हैं, भाड़ में जाए 'जमा।' न सोने को वक्त मिलता है, न खाने की छुट्टी। दिन अभ्यास करते बीत जाता है, रात अभिनय करते। मैं कुछ कम हूँ! एक दिन तनिक सा बुखार आगया, बस मैं बन गया। सब याद पार्ट भूल जाने लगा और गाने में भूल-भूल जाने लगा। मालिक ने मुझे अच्छा कराने की लाख कोशिशें कीं, पर बीमार कौन था जो अच्छा होता। डाक्टर ने आराम करने की सलाह दी है, सो कर रहा हूँ। मालिक ने टिकट बेंचने पर नियुक्त किया है, लेकिन नौकरी से जवाब नहीं देता।"

"अरे...तुम भी तब कम नहीं हो...।"

"नहीं जी, कम क्यों होऊँ! भाग कभी का जाता, पर फिर व्याह कैसे होता? जिस गाँव का वह पाजी रहनेवाला है, वहीं तो शादी लग रही है। बिना छुट्टी लिए न मैं उस गाँव में जा सकता हूँ, न शादी हो सकती है। पूरा घाघ है घाघ! पर मैंने भी तय कर लिया है कि न ठीक से काम चलेगा और न इसके पास रहूँगा। हारकर आप जवाब दे देगा।"

"यह भी ठीक है। पर यदि नौकरी छूट जाने पर लड़कीवाले पूछें कि खिलाओगे कैसे, तब?"

"कहीं-न-कहीं काम ढूँढ़ ही लूँगा मैं। बेकार बैठा नहीं रहूँगा, इस बात का पूरा विश्वास है मुझको?

"परन्तु आदमी भी तो संसार में तुम्हारे मालिक सरीखे ही अधिक हैं।" मैंने कहा। सुनकर वह घबराया। यह देखकर मैं बोला—"घबराने की बात नहीं है। इस मामले में भी तुम्हारी सहायता करूँगा। तुम मुझे अपना एवजीदार बना कर जाओ, व्याह करो और फिर दूसरी मंडली में काम ढूँढ़ लो। तब तक तुम्हारा वेतन तुम्हें मिलता रहेगा। मेरा क्या है। मैं यहाँ हूँ, कल वहाँ हूँ। जब तक इच्छा होगी, काम करूँगा। फिर इच्छानुसार चला जाऊँगा।"

वह तैयार होगया। लेकिन उसके बाद मैं नहीं जानता कि उसका व्याह हुआ या नहीं। केवल इतना ही जानता हूँ कि मुझे कार्य पर नियुक्त कराकर वह चला गया और कभी वापस नहीं लौटा। उसके मालिक ने भी कभी

उसका नाम नहीं लिया। उसे एक पत्र, बताए पते पर मैंने लिखा भी, किन्तु वह भी दो माह बाद वापस लौट आया।

प्रायः चार वर्ष तक मैं उस मंडली में कार्य करता रहा। अभिनय में मुझे आनन्द आने लगा। नायकों का अधिकतर अभिनय मेरे ही भाग में पड़ता, इसलिए मालिक भी मानने लगा कि मेरे बिना उसका काम नहीं चलेगा।

बहुत नगरों में मैं घूमा-फिरा। एक दिवस जब मैं रंगमंच पर अभिनय कर रहा था, सहसा मेरी दृष्टि दो पुरुषों पर पड़ी। उनमें से एक अधेड़ था, दूसरा उससे अधिक उम्र का था, परन्तु उसे वृद्ध नहीं कह सकते थे। उन दोनों में न जाने क्या आकर्षण था कि मैं तत्काल उनकी ओर आकर्षित हो गया। कुछ ध्यानपूर्वक देखते ही मुझे ज्ञात हो गया कि वे दोनों बड़ी गम्भीरतापूर्वक किसी विषय पर वाद-विवाद कर रहे हैं। अधिक अवस्था का पुरुष, कम अवस्थावाले अधेड़ पुरुष से आग्रहपूर्वक कोई प्रस्ताव कर रहा है, जिसे वह स्वीकार नहीं करता। कंजड़ों के साथ रहते समय अपने साथी बालकों को आश्चर्यचकित कर देने के विचार से मैंने दूर से उनके हिलते ओठों को देखकर बातें समझने का जो अभ्यास किया था, वह बड़े काम आया। ध्यान से मैंने देखा, बड़े पुरुष के ओठ हिल रहे थे, वह कह रहा था—"सुन्दर, मान जाओ। यह मेरा बहुत बड़ा अरमान है।"

चिन्तित भाव से विरोध करते हुए दूसरे व्यक्ति ने कहा—"परन्तु इसमें प्राणों का भय भी है जो।"

"होने दो। मैं उसकी परवाह नहीं करता। यदि मैं उसमें मर भी जाऊँ तो यह जन्म सार्थक हो जाए। तुम्हें भी इसकी परवाह न होनी चाहिए।"

"लोकनिन्दा का भय भी है। मैं परवाह न करूँ, तब भी लोग कहेंगे कि मैंने रुपए और जायदाद के लोभ से सगे चाचा को मार डाला। आपने मेरे कार्य में जो सहायता पहुँचाई है, उससे तो मैं उऋण हो नहीं सकता परन्तु...।"

पहले व्यक्ति ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह उदास और अन्यमनस्क होकर रंगमंच की ओर देखने लगा। जो कुछ मैं समझ सका था, वह पर्याप्त नहीं था। उनकी बातों में रहस्य की गंध आ रही थी। मेरे मन में उनके प्रति कौतूहल जाग उठा। आखिर वह चीज है क्या, जो इन दोनों के बीच में पहाड़ सी अड़ी है और उसकी निवृत्ति का कोई उपाय नहीं दिखाई देता।

जब तीसरी बार मैं रंगमंच पर अभिनय करने आया, मैंने उस बड़े पुरुष को खड़े देखा। निराशा की वेदना से उसका मुख-मंडल अत्यधिक म्लान हो गया था। वह एकटक मेरी ओर देख रहा था, परन्तु उसकी दृष्टि एकदम भावशून्य सी प्रतीत हो रही थी। मेरा गाना समाप्त होते ही करतलध्वनि से सारा हाल गूंज उठा, लोगों की सीटियों और तीव्र कंठस्वर से कान के परदे फटने लगे। परन्तु उस व्यक्ति की पलकें तक न हिलीं। मैं उत्कंठा-पूर्वक उसकी ओर देखता रहा, परन्तु वह बिना हिले-डुले खड़ा रहा।

अपना अभिनय समाप्त होने पर मैं तनिक शान्ति की साँस लेने के लिए अभिनेता-मंडली से निकलकर, सड़क के किनारे लैम्प के खम्भे के तले जा खड़ा हुआ। जिस भवन को किराए पर लेकर वह साधारण नाटक-मंडली, किसी अच्छी थियेटर कम्पनी के वैभव की तुलना कर रही थी, उसके ठीक सामने एक छोटा सा सिनेमा-गृह था। उसमें इस समय भी दूसरा शो समाप्त नहीं हुआ था, किन्तु इस समय नाटक की हलचल के सामने, उसकी चमक-दमक फीकी पड़ गई थी।

लैम्प के ऊपर गिर रहे पतिंगों की ओर देखकर मैं कुछ सोचने में मग्न हो गया। अब यह स्मरण नहीं है कि मैं क्या सोच रहा था। परन्तु यह स्मरण है कि मेरा मन उस दिन बहुत उदास था और एकान्त-शून्यता का अनुभव कर रहा था। जीवन के जो दिन व्यर्थता में भर कर भयंकर बोझ बन जाते, वे पंख लगाकर उड़े जा रहे थे, यह बात कुछ कम नहीं थी। उस समय केवल उन दोनों पुरुषों का मुखमण्डल हृदय में अंकित था। मैं सोचने लगा—"क्या किसी बड़े कार्य के लिए उनको किसी मनुष्य के जीवन की भेंट चढ़ाने की आवश्यकता आ पड़ी है। यदि वास्तव में यही हो, तो क्या मैं उनके काम नहीं आ सकता?" इस जीवन का इससे अच्छा उपयोग कर सकने की कल्पना तक कर सकना मेरे लिए असंभव था। उन लोगों में न जाने क्या बात थी कि पहली बार मुझे अपने जीवन पर घृणा उत्पन्न हुई। मैं...मैं क्या था? किस पिता का पुत्र··समाज के नियमों के अनुसार चलता तो अब तक क्या होता मैं?

छिपाऊँगा नहीं। उस दिन क्षण भर के लिए एक बहुत बड़े विद्वान् का सम्मानित मुख मेरे नेत्रों के सामने आ गया था। मैंने सोचा कि यदि मैं अपने पिता के समान बहुत धनी न होता तो कम-से-कम बहुत बड़ा विद्वान् तो हो ही सकता था। यदि बहुत धन न पाता तब भी जो विद्यारत्न पाता, उसके बल पर आज रंगमंच से उतरकर सीधा उन लोगों की उलझन को सुलझाने के लिए मैं बेहिचक उनके पास चला जाता और कहता—"क्या मैं आपकी कुछ सेवा कर सकता हूँ?"

कदाचित् अपनी कल्पना में मैंने उन सम्मानित व्यक्तियों द्वारा प्रदत्त जो उत्तर सुना था, वह इस प्रकार था—"हाँ, क्यों नहीं। हम लोगों ने जो वैज्ञानिक आविष्कार किए हैं, वे महत्ता में कम नहीं हैं। परन्तु यहाँ इस सीमा पर, बुद्धि और धन-द्वारा प्रदत्त समस्त सुख-सुविधाएँ साथ छोड़ बैठती हैं। यहाँ पर जिस प्रयोग की आवश्यकता है, उसमें प्राणों का भय है।"

मैं अपने मन में उस बात का उत्तर देने में भी नहीं चूका था कि—"मैं मरने से नहीं डरता। मैं किसी से नहीं डरता। गौरवपूर्ण मृत्यु अगौरवपूर्ण जीवन से कहीं श्रेष्ठ है। मैं इस सत्यको वास्तविक रूप प्रदान करना चाहता हूँ।"

परन्तु मन की इस तरंग के मोड़ खाते ही मैं चौंक उठा। कल्पना का यह खेल, केवल खेल ही है, यह पूर्ण रूप से प्रकट था। अपने चित्त की वीरतापूर्ण मूर्खता पर मैं हँसे बिना न रह सका। परन्तु उस स्वप्न ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। मन में आया कि मैंने बचपन में पर्याप्त पढ़ना लिखना सीखा था, इधर अभ्यास भी निरन्तर करता रहा हूँ। परन्तु वह सब व्यर्थ है क्योंकि मैंने सुव्यवस्थित ढंग से शिक्षा नहीं पाई है।

इसी समय मेरी दृष्टि सामने के सिनेमा-गृह से निकलते दो व्यक्तियों पर पड़ी। मेरी विचारधारा भंग हो गई। खेल समाप्त हो चुका था, परन्तु सिनेमा-भवन तथा नाटक-स्थल की सारी भीड़ जो एक साथ ही उमड़कर बाहर आ रही थी, उस ओर से एकदम तटस्थ, उदास और विचारमग्न वही दोनों पुरुष। सब कुछ भुलाकर, बिना कुछ सोचे हुए मैं भी उनके समीप जाकर पीछे-पीछे इस प्रकार चलने लगा मानों मैं सहज भाव से जा रहा हूँ। पूरे मार्ग में उन दोनों में दो चार बातें हुईं। अधेड़ पुरुष ने एक बार कहा—"सुन्दर!"

जैसे जो मानसिक द्वन्द्व उनके मध्य में हो रहा है, उसका निपटारा इसी एक शब्द-द्वारा हो जाएगा।

परन्तु दूसरे व्यक्ति ने उत्तर दिया—"नहीं, नहीं! मुझसे यह नहीं हो सकेगा।"

"क्यों न हो सकेगा, सुनूँ भी तो। और फिर इसके अतिरिक्त और उपाय ही क्या है?"

"मैं यही सोच रहा हूँ। परन्तु चाचा, आपका सुझाव तो बहुत भयानक है।"

"क्यों···।"

"मैं कैसे बताऊँ···!" वह चुप हो गया। उसका यह मौन, उसकी सबसे बड़ी अस्वीकृति थी। तब तक वे नगर के एक ऐसे भाग में पहुँच चुके थे, जहाँ केवल लखपतियों का निवास था। यहाँ चौराहे पर पहुँचकर वे रुक गए। पहले व्यक्ति ने कहा—"अच्छा, तब चलता हूँ···।"

"सुन्दर! जब घर भर के लोग कहते थे कि सुन्दर इस बड़े कुल में कलंकरूप उत्पन्न हुआ है, जो जीवन में कभी सन्मार्ग पर न चल सकेगा और कभी एक कौड़ी न कमा सकेगा, तब भी मुझे तुम्हारी योग्यता पर अटल विश्वास था। इसलिए जब तुम रूठकर घर छोड़ गए, मैंने भी घर-द्वार का मोह त्याग दिया। जब तुमने घर से कुछ नहीं लेना चाहा, तब मैंने अपने भुजबल पर यह सब सम्पत्ति उपार्जित की और परदेश में घर बनाया। यह केवल इस आशा पर कि यदि तुम कभी विदेश से लौटो तब···!" कहते-कहते द्वितीय पुरुष का कंठ भर आया।

प्रथम पुरुष पल भर अनिश्चितता के सागर में गोते खाता रहा, फिर बोला—"वह सब ठीक है, परन्तु जो आप कहते हैं···!"

"कल बम्बई मत जाना, मैं फिर एक बार तुमसे मिलूँगा। तुम्हें तो अपनी भलाई-बुराई का कुछ भी ध्यान नहीं है।"

उपालंभ की उपेक्षा करके, सरल कंठ से प्रथम पुरुष ने कहा—"मैं कल आपकी प्रतीक्षा कहाँ करूँ।"

"मेरे मकान पर तुम तो आओगे नहीं। तब मुझे ही तुमसे मिलने आना पड़ेगा। यद्यपि घुटने में दर्द है, तथापि प्रातः ७ बजे मैं तुमसे मिलने के लिए तुम्हारे ठहरने के स्थान पर आऊँगा···।" कहते हुए वे बिना अभिवादन का मार्ग देखे एक ओर मुड़ गए। सुन्दर कुछ समय तक वहीं खड़ा रहा। उसके बाद अन्यमनस्क भाव से दूसरी ओर चला गया। मैं अकेला उस चौराहे पर खड़ा रह गया। एक

क्षण के लिए मेरी दृष्टि आकाश की ओर उठ गई। मैंने देखा कि गगनमण्डल मेघाच्छन्न हो रहा है। चाँदनी रात होने पर भी इस समय बादलों में से छनकर चाँदनी की क्षीणाभमात्र विदित हो रही है। कदाचित् वर्षा हो। पल भर के लिए मेरे मन में कदाचित् उन दोनों में से एक का अनुसरण करने की बात आई, पर दूसरे ही क्षण लुप्त हो गई। मैं वापस लौट पड़ा।

दूसरे दिन मेरी नींद देर से खुली। आँखें खुलते ही मेरी दृष्टि घड़ी पर गई। आठ बज चुके थे। उन लोगों की भेंट का समय सात बजे था। अब तो उनमें जो बातें होने को थीं, हो भी चुकी होंगी और मेरा उधर जाना व्यर्थ ही था। फिर भी मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा। अपने ऊपर झुँझलाते हुए कपड़े पहने और तैयार होकर ज्योंही बाहर की ओर चला, मेरा एक साथी आँखें मलता उठ बैठा और आश्चर्यपूर्वक बोला—"कहाँ की तैयारी है, भाई! इतने तड़के···।"

"सिर तुम्हारा। कितनी बार मना किया कि कहीं जाते समय टोका मत करो, परन्तु तुम सुनने क्यों लगे।" चिढ़कर मैंने समीप ही रक्खी लोहे की कुर्सी पर, रात को किसी के द्वारा गाँज दिए रेशमी कपड़ों को भूमि पर फेंक दिया और बैठ गया।

चकित होकर वह बोला—"मुझे क्या पता था कि आप कहीं जा रहे हैं। अभी तो हम लोगों की रात है, इस प्रकार के कपड़े पहनने का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया।"

"मूर्ख कहीं के···!" रोकते-रोकते भी मेरी खीज और क्रोध शब्दों में आकर हो पड़ा। मैं इस पर तुरन्त पछताने लगा क्योंकि वह बेचारा बहुत सीधा और सरल स्वभाव का युवक था। बाहर देखकर कौन कहता कि वह किसी नाटक का पात्र है, जो बहुत से भले बुरे उपनायकों के अभिनय इतने सहज भाव से करता है, जैसे सर्वसाधारण नींद में खर्राटे भरते हैं। परन्तु उस बेचारे को अपनी इस कार्य-कुशलता का पता नहीं था। मालिक का व्यवहार सबके साथ एक सरीखा था। मेरे अतिरिक्त और किसी से प्रत्युत्तर सुनना वह सहन नहीं कर सकता था। शायद वह मुझसे दबता था। इसका मुख्य कारण तो यही था कि चार वर्ष पूर्व नाटकों में प्रधान नायक का अभिनय स्वयं वही करता था। उस समय उसकी धारणा थी कि यह कार्य दूसरों को सौंप देगा तो वे अपनी स्थिति से लाभ उठाने में नहीं चूकेंगे। इतना ही नहीं, यदि सीखे-सिखाए पात्र कहीं भाग गए तो मण्डली का बेड़ा डूब जाएगा। लेकिन पीछे जब अवस्था की अधिकता के कारण उसके लिए दुष्यन्त, कृष्ण, अभिमन्यु सरीखे प्रधान नायकों का अभिनय करना असंभव हो गया, तब यह कार्य उसने मुझे सौंपा। मुझे न तो विवाह की चिन्ता थी और न छुट्टी तथा अधिक वेतन की। एकमात्र आवश्यकता की पूर्त्ति हो जाने से मैं सन्तुष्ट हो जाता था। इसलिए मालिक मेरा तो आदर-सत्कार करता था, पर उस बेचारे को यह आदर कहाँ नसीब था। सहमकर बोला—"नहीं, नहीं, ईश्वरलाल, मैंने टोका नहीं।

अब कुछ भी कहना-सुनना व्यर्थ था। मैंने अपनी दृष्टि दूसरी ओर फेर ली और सोचने लगा कि इस समय पर्याप्त विलम्ब हो चुका है, अब मुझे उस व्यक्ति से मिलने जाना चाहिए या नहीं।

केशव ने समझा कि मैं बहुत क्रोधित हो उठा हूँ। उसने भर्राए कंठ से कहा—"विश्वास करो ईश्वरलाल! मैंने तुम्हें नहीं टोका। मैं तो केवल यह पूछ रहा था कि कहाँ जा रहे हो, पूछने से कुछ हानि नहीं होती।"

मैंने कहा—"यदि हानि भी हो, तो भी मुझे इस बात की परवाह नहीं है। जो नुकसान मेरा हो चुका है, उसकी तुलना में अब होनेवाला नुकसान कुछ भी नहीं होगा। इस बात का तुम विश्वास रक्खो। मुझे एक प्याला चाय बना दो, बस, पन्द्रह मिनट के बाद मैं चला जाऊँगा, सदैव के लिए।"

"क्या अर्थ? तुम क्या कह रहे हो?" अत्यन्त आश्चर्य भरे स्वर में उसने पूछा परन्तु मेरी गंभीर मुद्रा देखकर उसने अपना प्रश्न पुनः दोहराने का साहस न हुआ। वह स्टोव जलाकर चाय की तैयारी में जुट गया।

जिस समस्या का हल दो दिन पूर्व तक मेरे मन में नहीं आया था, उसी को मैंने कुछ ही क्षण में निपटा लिया। जीवन का जो महत्त्वपूर्ण भाग नष्ट हो चुका था, वह वापस नहीं लौटने का, परन्तु जो शेष है, उसे सस्ते मूल्य पर क्यों गवाऊँ। बीती को भुला देने के लिए मैं प्रस्तुत था, परन्तु आगे क्या होना चाहिए? यही मैं सोच रहा था। केशव ने चाय का प्याला मुझे देते हुए सहमे स्वर में पूछा—"चीनी कम तो नहीं है?"

"नहीं ।"

क्षण भर असमंजस्य में वह चुप खड़ा रहा, फिर बोला—"ईश्वर···!"

"कहो ! कुछ कहना है ?"

"मैं पूछता हूँ कि तुम कहीं जाना चाहते हो । तुम··· तुम···क्या ब्याह करने के लिए···।"

अट्टहास करते-करते मैं रुक गया । उसके मुँह की ओर देखते हुए उत्तर दिया—"नहीं ।"

"तो फिर आखिर ?"

"उसे न जानने से कोई हानि नहीं है और न लाभ है । लो यह पत्र मालिक को देना ।" कहकर मैंने वह चिट्ठी उसके हाथ में रख दी, जो कुछ मिनट पूर्व की ही रचना थी ।

"कब तक वापस लौटेंगे ··?" हिचकिचाते हुए उसने पूछा ।

"कभी नहीं···!"

"और तुम्हारे तीन वर्ष के बाकी रुपए—।" हतबुद्धि होकर उसने पूछा ।

"उसे मैंने तुम्हारे लिए छोड़े ।" कहकर मैं बाहर निकल आया । मेरी चाल उस समय इतनी तेज हो गई जैसे कोई पकड़ने के लिए पीछे-पीछे दौड़ा आ रहा है । पर वास्तव में कोई भी नहीं आ रहा था । मैं यह जानता भी था ।

(४)

जब मैं उस होटल में, जहाँ कि सुन्दर ठहरा हुआ था, पहुँचा तब दोपहर हो चुकी थी । मैनेजर से पूछने पर पता चला कि मैं ठीक समय पर नहीं पहुँचा हूँ । सुन्दर अपने साथी के साथ कुछ ही देर पहले कहीं बाहर गया है और पता नहीं कि कब तक लौटेगा ।

प्रतीक्षा के क्षण बिताने बड़े कठिन होते हैं, यह बात अनुभवों से सिद्ध हो चुकी है । बीच-बीच में होटल का मैनेजर आकर पूछ जाता था कि मुझे कोई कष्ट तो नहीं हो रहा है, कुछ आवश्यकता तो नहीं है । कई बार उसने चाय पिलाई और अंत में जब प्रतीक्षा करते-करते मैं थकने सा लगा, सन्ध्या हो आई, तब उसने पूछा—'अच्छा ये महाशय जिनकी आप प्रतीक्षा कर रहे हैं, आपके कोई लगते हैं ?"

"लगते तो कोई नहीं हैं ।"

"अच्छा, तब क्या आपको उनसे किसी बात की आशा है ?" उसने पूछा । पूछने के ढंग से ऐसा लगा कि वह उस व्यक्ति को इतना धनाढ्य अथवा सामर्थ्य-शाली नहीं समझता कि उससे कोई किसी प्रकार की आशा कर सके और यदि उसके साथ कोई सम्बन्ध न हो, तो उसका इतना मार्ग जोहने का कष्ट उठाए । अतः मैंने कुछ ठहरकर उत्तर दिया—"आशा तो मुझे है ही कुछ-न-कुछ...।"

"परन्तु वह व्यक्ति कुछ विचित्र-सा है । सनकी प्रतीत होता है ।"

"क्यों ।"

"कोई पाँच-छः दिन हुए जब वह यहाँ आया । तब से ही उसका रंग-ढंग ऐसा ही अजीब देख रहा हूँ । शायद मैं उसे ठीक से समझ नहीं सका ।"

"न समझने की कौन सी बात है ?"

"क्या आपने अभी तक उनसे भेंट नहीं की है ? जिस आदमी ने एक बार भी उन्हें देखा होगा, वह यह समझे बिना न रहेगा कि इस व्यक्ति में कोई ऐसी विशेषता है, जो दूसरे में नहीं पाई जाती ।"

"अच्छा...! वह विशेषता किस प्रकार की है, मुझे भी आप कुछ बता सकते हैं ?"

"मैं ठीक ठीक नहीं बता सकता ; उसकी दृष्टि में न मालूम कैसी गंभीर रूक्षता सी है कि मुझे उससे डर सा लगता है, इसलिए मैं उससे बहुत कम बातचीत करता हूँ । किन्तु वह व्यक्ति इस ढंग का है ही कि प्रथम बार देखने पर ही उसका सिक्का मन में बैठ जाता है । चाहे वह हँसकर बात करे या गंभीर होकर, किसी भी प्रकार दूसरे का मन चटक नहीं पड़ता । वैसे नहीं लगता कि वह कोई पढ़ा-लिखा विद्वान् है परन्तु उसके भ्रू चालन से विदित होता है कि वह समझता सब कुछ है परन्तु उसे परवाह किसी की भी नहीं है । अभेद्य रहस्य से ढका हुआ वह व्यक्ति अद्भुत प्रतीत होता है ।"

मुझे उसके कथन में कोई अत्युक्ति नहीं प्रतीत हुई । मैं स्वयं उसकी ओर आकृष्ट हुआ था और केवल उसके व्यक्तित्व से । परन्तु कहा—"आप क्या समझते हैं कि वह यहाँ का रहनेवाला नहीं है । किसी विशेष कार्य से आया है ।"

'वह यहाँ का रहनेवाला नहीं, यह तो कोई भी कह सकता है और रही काम की बात, सो इसमें भी सन्देह नहीं कि वह यहाँ अब तक रहता ही क्यों, जब उसे एक-एक पल रुकना भारी हो रहा है।"

"वह कार्य क्या है, क्या यह आप जान नहीं सके।"

"नहीं। यद्यपि मैंने जानने का प्रयत्न बहुत किया, तथापि कुछ भी पता नहीं चला।"

मैं सोचने लगा कि क्या वह रहस्यमय व्यक्ति अपने रहस्य को मुझ पर प्रकट करेगा ? फिर भी जो हो चुका है, जो छोड़ आया हूँ, उसे छोड़कर आगे ही बढ़ना होगा। क्योंकि नदी का जल कभी पीछे नहीं लौटता, गया पल फिर नहीं ब.रता और न वृक्ष के गिरे पत्ते ही वृक्ष में लगते हैं। मैं प्रकृति की गोद में पला हूँ। मैंने उसे अपना गुरु बनाकर उससे शिक्षा ग्रहण की है, तब क्या उसके पढ़ाए पाठ को भूलकर उसका अपमान करूँगा। अब यह ऊहापोह कैसी ? पिता जी समझते थे कि वे इस पृथ्वी पर धनराशियों को तौलने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं, इसी से जब वह राशि उनके हाथ से निकल गई, उन्होंने समझा कि उनकी उपयोगिता का सदा के लिए अन्त हो गया। फलतः वे उसी शोक में मर गए। परन्तु मैं तो सदैव नाटक-मंडली में अभिनय करने के लिए उत्पन्न नहीं हुआ हूँ। सुन्दर के लिए मेरी कोई उपयोगिता नहीं होगी, तो न हो। संसार में क्या कोई विषय...कोई व्यक्ति ऐसा न होगा, जिसे मेरी आवश्यकता हो ?

मैनेजर ने मुझे चुप देखकर पूछा—"आपको उससे क्या आशा है...?"

इस बात का उत्तर दे सकने की स्थिति में मैं होता, तब भी कदाचित् न देता। जीवन की न कोई निश्चित गति, न वर्त्तमान कोई गौरवपूर्ण और फिर भविष्य भी अनिश्चित। परन्तु इसी समय उसी प्रतीक्षित व्यक्ति को लेकर नौकर सामने आ पहुँचा और हम उनके स्वागत में हड़बड़ा कर उठकर खड़े होगए। सम्मानीय प्रतीक्षित व्यक्ति ने नमस्कार करते हुए मेरी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और फिर मुड़कर मैनेजर से बोला—मुझे जल्दी है। मैं बम्बई के लिए अभी प्रस्थान कर देना चाहता हूँ। आप मेरा सामान तुरन्त स्टेशन पर पहुँचा दें और मैं चाहता हूँ कि आपका बिल मैं अविलम्ब चुका दूँ...।"

और उसके जाने के लिए रास्ता छोड़ते हुए मुझसे कहा—"क्षमा कीजिएगा, मैं सभ्यता का व्यवहार बहुत दिनों से भूल चुका हूँ। बात बनाकर बोलना मुझे नहीं आता। मैंने सुना कि कोई महाशय मेरी प्रतीक्षा में कई घंटे से बैठे हैं। यहाँ आकर मैंने आपको देखा है। मैं समझता हूँ कि मैं पहली बार आपके दर्शन कर रहा हूँ और अन्तिम बार संभाषण। यदि आप सचमुच मुझसे ही मिलने आए हैं तो फिर अपना अभिप्राय शीघ्र ही प्रकट कर दें। मुझे बहुत जल्द जहाज पकड़ना है।"

गंभीर भाव से मैं बोला—"हाँ, हमारी यह प्रथम भेंट अवश्य है। पर अन्तिम बनाना न बनाना हमारे हाथ में है। जितनी शीघ्रता आपको जहाज पकड़ने की है, उतनी या उससे भी अधिक मुझे आपका कार्य सम्पूर्ण देखने की है।"

"मेरा कार्य...।" वह चौंक उठा। चकित होकर पूछा—"आपको कैसे पता चला कि मैं क्या करना चाहता हूँ और मेरा कार्य क्या है ?"

"मैं ओठों के हिलने से शब्द पढ़ना जानता हूँ। इसलिए कल आप तथा आपके चाचा में जो भी बातें हुई थीं, उन्हें मैंने समझ लिया था। आपसे मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि आपका कार्य चाहे जो कुछ हो, यदि मेरी सहायता से सम्पन्न हो सके तो मैं प्रस्तुत हूँ। आप मेरे शरीर का बेखटके उपयोग कर सकते हैं।"

"ओह !" वह विस्मयाहत सा बैठ गया। थोड़ी देर अपलक भाव से मेरी ओर ताकते रहने के अनन्तर बोला—"आश्चर्य है। मेरे कार्य में आप हाथ बँटाना चाहते हैं, इसके लिए धन्यवाद ! परन्तु आपको नहीं मालूम है कि वह कितना कठिन है।"

"तब क्या मैं उसे जान भी नहीं सकता ?"

उसने बलात् मुस्कराते हुए कहा—"यदि आप नहीं जान सकते तो फिर उसके जानने के लिए उपयुक्त पात्र समग्र विश्व में भी न मिलेगा। सच्चा गुणग्राहक इस संसार में मिलना कितना दुर्लभ है, इस बात को मैं भली-भाँति जानता हूँ। सहायता आप दे सकते हैं या नहीं, इसे हम लोग पीछे भी सोच सकते हैं। परन्तु यदि कोई बाधा न हो तो मेरे साथ चलिए बम्बई तक। मैं आपको अपना सिद्धान्त समझा सकूँगा, तो यही कुछ कम न होगा। कम-से-कम आप मेरे कार्य के गुरुत्व को तो अनुभव ही

कर सकेंगे, क्योंकि आप पहले व्यक्ति हैं, जिसने मेरी ओर सहायता का हाथ बढ़ाया है। न केवल इतना, वरन् प्राण तक देने के लिए तैयार हो गए हैं। निश्चय ही मेरे लिए नहीं, केवल मेरे लिए नहीं, केवल मेरे आविष्कार के लिए और कुछ हो या न हो, आप मेरे अच्छे मित्र प्रमाणित होंगे, इसमें सन्देह नहीं है।"

वह उठकर खड़ा हो गया। पूछा—"आप कौन हैं, आपके कोई है?"

"कोई नहीं। केवल आप।" मैंने उत्तर दिया।

शीघ्र ही हम बाम्बे मेल पर थे। मार्ग में वैज्ञानिक ने कुछ बातें बतलाईं।

(५)

वैज्ञानिक ने कहा—"मैं आत्मा की अमरता को वैज्ञानिक रीति से प्रमाणित करना चाहता हूँ। उसके लिए मैंने कुछ अकाट्य सिद्धान्त भी खोज निकाले हैं। वे नूतन नहीं हैं, वरन् उसी प्राचीन भारतीय सभ्यता के सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। ईश्वर को चाहे माना जाए या न माना जाए, परन्तु आत्मा है, यह मानना ही होगा। जब लकड़ियाँ जल जाती हैं, तब भी अग्नि वर्त्तमान रहती है। ठीक उसी प्रकार शरीर नष्ट होने पर भी, शरीराश्रित जीवात्मा नष्ट नहीं होता। काठ के जलकर बुझ जाने पर हमें उस स्थान पर अग्नि नहीं मिलती, यह सच है, किन्तु क्या वह विश्व से अन्तर्धान हो जाती है। ऐसा जब नहीं होता और अग्नि विश्व में कहीं-न-कहीं वर्त्तमान रहती ही है और निराश्रय होकर विलीन हो जाने पर जहाँ कहीं आश्रय पाती है, वहीं अतः प्रकट हो जाती है, तब हमें यह भी मानना होगा कि शरीर नष्ट हो जाने पर भी जीव वर्त्तमान रहता है। अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण आकाश तक हमारे स्पर्श में नहीं आता, केवल उसकी अत्यन्त नीलिमा का बोध होता है, उसी प्रकार अत्यधिक सूक्ष्म होने के कारण आत्मा भी दृष्टिगोचर नहीं होता। उसका बोध तभी होता है, जब वह उष्णतापूर्ण शरीर और वायु के संसर्ग में पुनः आ जाता है। समझ रहे हो या नहीं।"

"जो सुन रहा हूँ, उसे आत्मसात् करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। परन्तु मैंने ऐसे विचित्र तर्क अब तक नहीं सुने हैं।"

"मैं इसी बात को सिद्ध करना चाहता हूँ। इसके लिए एक विशेष यंत्र का निर्माण मैंने किया है। कुछ रसायनों के निर्माण में मैं सफल हुआ हूँ। मेरी योजना पूरी है। आत्मा शरीर से पृथक् होने के उपरांत, जीवात्मा के ज्ञान से रहित हो जाएगी। उस अवस्था में उसे कुछ विशेष अनुभव होते हैं, पर उन्हें मैं नहीं जानता। परन्तु जब मैं उसे पुनः उसी शरीर के सम्पर्क में ले आऊँगा तब वह पूर्ववत् हो जाएगी। और उसकी सारी अनुभूति-शक्तियाँ वापस लौट आएँगी। यह प्रयोग ऐसे व्यक्ति पर होना चाहिए, जिसकी सब इन्द्रियाँ सबल और पुष्ट हों और जो उस अनुभव का वर्णन कर सके। इस प्रकार आत्मा का अस्तित्व भली-भाँति सिद्ध किया जा सकेगा।"

"इसी के लिए आपको कोई व्यक्ति चाहिए?"

"हाँ! परन्तु आप समझ सकते हैं कि यह प्रयोग कैसा भयानक है। सफलता हो सकती है किन्तु असफलता भी...! यदि आत्मा शरीर से पृथक् होने के अनन्तर फिर वापस न लौट सकी तो...।"

परन्तु यह सब जानने की कोई आवश्यकता मुझे नहीं थी। मेरा जीवन इतना महत्त्वपूर्ण नहीं। उसे चाहनेवाला कोई ऐसा नहीं जो कहे—'नहीं ठहरो। अपने निर्णय पर पुनः रुककर विचार करो। मैं भी तुम्हारे जीवन से सम्बन्धित हूँ, और मेरे प्रेम का अधिकार तुम्हारे ऊपर है।' अतएव मैं तत्काल बोल उठा "मेरा निर्णय अटल है। प्रत्येक दशा में मैं आपका साथ देने के लिए प्रस्तुत हूँ।"

"सफलता की दशा में भी...!" उसने किंचित् मुसकराकर पूछा।

"निश्चय...।"

"तब हम-तुम एक पथ के पथिक बने।" पल भर के लिए उसके मुखमण्डल पर से गंभीर रूक्षता की छाया दूर होकर विमल स्नेह की छाया दिखाई दी। थोड़ी देर के बाद वह बोला—"अब कुछ भी हो। परन्तु यह निश्चित है कि हमारे भाव एक साथ जुड़ गए हैं।"

देखते-देखते मेरे भाग्य ने पलटा खाया। वैज्ञानिक ने मुझे अपनाया और इसके साथ-साथ उसके जगत् ने मुझे अपने सुदृढ़ स्नेहपाश में जकड़ लिया। दो वर्ष में मैं वैज्ञानिक की बहुत कुछ बातें समझने लगा। प्रत्येक स्थान

पर मैं उसके साथ चलता दिखाई देता । उसके सब कार्यों को मैं सफलतापूर्वक करता । इस बीच मैंने अनेक बार वैज्ञानिक से अनुरोध किया कि वह उस प्रयोग को क्यों भूला हुआ है, परन्तु प्रत्येक बार वह हँसकर कह देता—"पहले तैयारी पूरी कर लो। यदि आत्मा इसी शरीर में वापस न आ सके तब भी कुछ नए ज्ञान-विज्ञान को तो अपने साथ ले जा सके…।"

कभी-कभी उसकी बात हँसी-मजाक-सी लगती। कभी लगता कि उसका इरादा कुछ और ही है। परन्तु अंत में एक दिन उसने उस प्रयोग की पूरी तैयारी कर ली। अनेक जान पहचान के वैज्ञानिकों को अपना यह विलक्षण प्रयोग देखने के लिए उसने आमंत्रित किया, जिससे यदि वह इस कार्य में सफलता न भी प्राप्त कर सके, तो वे लोग उस सिद्धान्त को लेकर आगे बढ़ सकें।

जब सब कुछ ठीक हो गया, तब गंभीर स्वर में वह बोला—"जो कुछ मैं करना चाहता हूँ, चाहे, तो उसे सुनकर आप लोग हँस भी सकते हैं या उस पर गहन विचार भी कर सकते हैं। मेरे इस मित्र ने स्वयं को विज्ञान के लिए अर्पित कर दिया है कि उस पर इस विलक्षण प्रयोग को मैं करूँ। हम दोनों के ही, हम दोनों के अतिरिक्त और कोई नहीं है। इसलिए हम लोगों का जो कुछ है, एक-दूसरे का है। मैं समझता हूँ कि विज्ञान हम दोनों को समान रूप से प्यारा है; इसलिए परिणाम कुछ भी हो, हम दोनों उसके लिए तैयार हैं…।"

उपस्थित वैज्ञानिकों ने आश्चर्यपूर्वक उसकी शेष बातें सुनीं, जिनमें सिद्धान्त की थोड़ी बहुत व्याख्या की गई थी। उन्होंने हमारी सहायता करने का वचन दिया। परन्तु ज्योंही मुझे उस टेबुल पर लिटाया गया, जिस पर रासायनिक पदार्थों तथा अन्य उपकरणों के द्वारा मुझे आकाशी उड़ान भरने के लिए भेजा जाने को था, त्यों ही अचानक वैज्ञानिक बोला—"ठहरो! मेरी छाती में दर्द-सा उठ रहा है।"

"बैठ जाइए। आपको क्या कोई शिकायत है?" एक बड़े वैज्ञानिक ने साग्रह प्रश्न किया।

"नहीं। मुझे कोई शिकायत नहीं है। परन्तु इस समय मैं शायद डरपोक बन रहा हूँ अथवा क्या…आप लोग ठहरे रहें। दो क्षण में मैं अपने को ठीक करता हूँ।" कहते हुए उसने एक हलकी कराह दबाने का प्रयत्न किया और बोला—"जरा भी घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है, मैं अभी आता हूँ…।"

और वह टेबुल के पास से हट गया। शायद किसी दवा का उपयोग अपने ऊपर करना चाहता था? आँखों में पट्टी बँधे रहने तथा लेटे होने के कारण मैं यह नहीं जान सका कि क्या हुआ, परन्तु दो-तीन मिनट में एक तीव्र कराह सुनाई दी। कई वैज्ञानिक उसके साथ गए थे। उनमें से एक ने लौटकर कहा—"उठ आइए। अब इस समय यह प्रयोग न हो सकेगा। स्थगित कर दिया गया समझें!"

मेरी आँखों से पट्टी खोल दी गई। समीपवर्ती वैज्ञानिक ने मुझे सहारा देकर उठाया। उन आवश्यक वस्तुओं की ओर देखते हुए, जिन्हें मैंने प्रयोग के लिए एकत्र करने में वैज्ञानिक का हाथ बँटाया था, पूछा—"क्या हुआ उन्हें।"

"सब वस्तुओं को बचाते हुए सावधानी के साथ बाहर निकल आइए।" उन्होंने दूसरा आदेश दिया। और जब ऐसा हो चुका तब समाचार दिया—"वैज्ञानिक सुन्दरलाल का दिल फेल हो गया। वे अब इस संसार में नहीं हैं।"

"नहीं हैं?" सबने चौंककर पूछा।

"हाँ, अभी ऐसा ही विचार है। डाक्टर को बुलाया गया है; परन्तु उससे क्या…?"

आँखों के सम्मुख अंधकार के बादल उमड़कर आते प्रतीत हुए। परन्तु समीपवर्ती वैज्ञानिक के कंधे का सहारा लेकर काँपते स्वर में मैंने पूछा—"यह क्यों…ऐसा कैसे हुआ…?"

"यह प्रकृति का शासन है। उसे उन गहन रहस्यों का भेद खोलना स्वीकार नहीं है, जिन पर से परदा उठाया जाने को था।" उन्होंने उत्तर दिया।

(६)

तीन दिन के बाद एक अमरीकन आया और कार से उतरकर लोगों से पूछने लगा कि "प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक सुन्दरलाल का आवासस्थान कहाँ है?"

"सामने की वह कोठी!" किसी ने उत्तर दिया। मैंने प्रश्न और उत्तर दोनों ही सुने परन्तु फिर भी अन्यमनस्क भाव से बैठा रहा। दरबान ने गोरा चेहरा देखकर उसे टोकने या मुझको उसके आने की सूचना तक देने की

आवश्यकता नहीं समझी। कह दिया कि "अन्दर चले जाइए।"

वह आया और अभिवादन करके बिना भूमिका बाँधे सीधा प्रश्न कर बैठा—"क्या मुझे वैज्ञानिक सुन्दरलाल से बातें करने का सौभाग्य प्राप्त है?"

"जी नहीं, मैं उनका सहकारी ईश्वरलाल हूँ।"

"वैज्ञानिक ईश्वरलाल! जिसकी सहायता से वैज्ञानिक सुन्दरलाल ने विद्युत्-सम्बन्धी अपूर्व-आविष्कार किया?" उसने तपाक से पूछा।

"आप चाहें तो सहकारी कहें। परन्तु मैं अपने को उनका सेवक समझता हूँ।"

"अच्छा...अच्छा...वैज्ञानिक से भेंट कब होगी?"

"भेंट...!" मैं कठिन हँसी हँसा।

"आपसे हमारा कार्य हो सकता है। यह लीजिए, दस लाख डालर का चेक। यह उस विद्युत् आविष्कार का मूल्य है, जिसे वैज्ञानिक ने बड़े अनुरोध और प्रार्थनाओं पर अमेरिकन सरकार को दिया..."

"अमेरिकन सरकार को...?" मैं चौंका। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान न था क्योंकि वैज्ञानिक ने उसके सम्बन्ध के सब पत्रों का उत्तर स्वयं दिया था। मैं केवल यह जानता था कि आविष्कार किसी अमेरिकन कम्पनी ने ले लिया है।

"इसमें आश्चर्य किस बात का है? दस लाख डालर हमारे लिए बड़ी वस्तु नहीं है। यदि इस आविष्कार का उपयोग मुद्राओं में किया जा सकता, तो यह रकम और भी अधिक होती। अभी यह एकांगी है। निर्माण-कार्यों में इस विद्युत् का उपयोग हो सकता है, विनाशक में नष्ट हो जाता है। यदि यह त्रुटि इसमें से दूर की जा सके, तो हम इसके लिए पचास लाख डालर दे सकते हैं। वैज्ञानिक से यह अनुरोध करने का आदेश मुझे प्राप्त हुआ है कि वे यदि ऐसा कर सकें तो...।"

आश्चर्य करने योग्य मनोस्थिति नष्ट हो चुकी थी, इसलिए चुपचाप सब सुनता रहा। उसके बोल चुकने पर वह चेक मैंने लौटाते हुए कहा—"धन्यवाद! परन्तु वैज्ञानिक तीन दिन पूर्व बहुत दूर की यात्रा पर जा चुके हैं। आपका वक्तव्य उन तक पहुँचा सकना संभव नहीं है और इस चेक को लेने का अधिकार मुझे नहीं है।"

"कहाँ गए हैं? क्या अमेरिका...?"

"जी नहीं! अनन्त और अदृश्य लोक की ओर, जहाँ सुना है कि स्वर्ग है। नरक भी हो सकता है, परन्तु मुझे ठीक मालूम नहीं है।" मैंने शान्त भाव से उत्तर दिया।

वह भौचक्का रह गया। शायद मुझे पागल भी समझा हो। परन्तु जब वास्तविकता उसने समझी, तब चला गया।

इसके एक सप्ताह बाद वकील ने फोन से कहा—"वैज्ञानिक की वसीयत के अनुसार उसकी समस्त सम्पत्ति के उत्तराधिकारी आप हैं। इसलिए अमेरिकन सरकार-द्वारा प्रदत्त दस लाख डालर भी आपके हैं।"

आत्मा और परमात्मा की बात मैं नहीं जानता। परन्तु किस बहाने, कहाँ से मैं कहाँ पहुँच गया और करोड़पति बन बैठा, केवल यही सोचता हूँ। आप भी सोचें।

फारसी शुकसप्तति:

मौलवी महेशप्रसाद, आलिम-फाजिल

संस्कृत के जिन ग्रन्थों का रूपान्तर, भाषान्तर या सारांश फारसी गद्य या पद्य में हुआ, उनमें से एक शुकसप्तति: भी है, जिसमें सत्तर कहानियाँ संगृहीत हैं। संयुक्त प्रान्त के बदायूँ जिले में एक अपूर्व मौलाना जियाउद्दीन नखशबी (मृत्यु-समय १३५० ई०) हुए हैं, उन्होंने जो ग्रन्थ शुकसप्तति: के आधार पर फारसी गद्य में किया है, उसका नाम तूतीनाम: है। इसकी भूमिका से पता चलता है कि इनसे पूर्व किसी ने शुकसप्तति: की ५२ कहानियों का फारसी में उल्था किया था। किन्तु वह ग्रन्थ अच्छी फारसी में न था और न उसकी कहानियाँ ही अच्छी थीं।

नखशबी के तूतीनाम: के रचे जाने का समय सन् १३३० ई० है। इसमें अनेक कहानियाँ ऐसी हैं, जो उनसे पूर्ववाले फारसी तूतीनाम: में थीं और कुछ ऐसी हैं, जिन्हें

नखशबी ने कुछ अन्य ग्रन्थों की सामग्री के आधार पर बढ़ाया है।

नखशबी से पूर्ववाली प्रति प्रकाशित या हस्तलिखित कहीं है, इस बात का मुझे पता नहीं चला। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता है कि नखशबी ने कौन-सी ऐसी कहानियों को अपने ग्रन्थ में रक्खा, जो उनसे पूर्व के ग्रन्थ में थीं। इसके सिवा यह भी ज्ञात रहे कि नखशबी के तूतीनामः में केवल ५२ कहानियाँ हैं। मैं प्रत्येक फारसी कहानी की पड़ताल संस्कृत कहानी के साथ नहीं कर सका। इस कारण यह नहीं कह सकता कि ५२ में से कितनी शुकसप्तति: की ठहरती हैं और कितनी किसी अन्य ग्रन्थ की हैं। तथापि यह बात निश्चित है कि तूतीनामः की अधिकांश सामग्री शुकसप्तति: के आधार पर है।

नखशबी का तूतीनामः कहीं से मुद्रित नहीं हुआ किन्तु इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ अनेक स्थानों में हैं, जिससे इसकी लोकप्रियता का परिचय मिलता है। हिन्दू-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ भिन्न-भिन्न समयों की हैं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति मैंने उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय में देखी है। इन प्रतियों के सिवा कुछ अन्य पुस्तकालयों में भी प्रतियाँ हैं।

अब यह जानना चाहिए कि तूतीनाम: की कहानियाँ उस क्रम व नाम के अनुसार नहीं हैं, जिस क्रम व नाम के अनुसार संस्कृत में हैं। उदाहरणार्थ शुकसप्तति: श्री रिचर्ड सचमिद (Richard Schmidh) द्वारा सम्पादित (प्रकाशित सन् १८९३ ई०, लीपजिग) में जो पचासवीं कहानी मिलती है, वह फारसी में तीसरी है। इसी में से कुछ शब्द नीचे दिए जा रहे हैं:—

"दास्तान ज़रगर व नज्जार व आउरदन बुतानज़र व दुज़दीदन ज़रगर व हीला करदन नज्जार—चूँ ज़रगर अफ़लाक ज़र खालिस आफ़ताबरा दरबूतः मग़रिब कर्द व नुकरः नाब माह अज़कान मशरिक़ बेरून आउर्द, खजस्तः ख़ुदरा चूँ बुत ज़र आरास्तः व बअन्नवाय जवाहिर मुकल्लल साख़त:"।

सच बात यह है कि नखशबी साहब की फारसी से लाभ उठाना कोई आसान काम न था। इस कारण सतरहवीं शताब्दी ईस्वी में मौलाना मुहम्मद कादरी नाम के एक विद्वान् ने नखशबी की ५२ कहानियों में से केवल ३५ को ही सरल फारसी में किया। इस संक्षिप्त की हस्तलिखित प्रतियाँ अनेक स्थलों में हैं और यह ग्रन्थ अनेक स्थानों से भिन्न-भिन्न समयों में प्रकाशित भी हो चुका है। मेरी दृष्टि में इसके दो प्रकाशित संस्करण आए हैं—(१) मुहम्मदिया प्रेस कलकत्ता से सन् १८२९ ई० (सन् १२४४ हि०) में मुद्रित और (२) लाहौर के मतबा इस्लामी का संस्करण (१३३३ हिजरी)। दोनों में थोड़ा-सा पाठ-भेद है और कलकत्ता के संस्करण का पाठ प्राय: उस हस्तलिखित प्रति के अनुसार ठहरता है, जो प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है। इसी प्रति के आधार पर नमूने के रूप में कुछ शब्द नीचे दिए जा रहे हैं:—

"हिकायत सोम ज़रगर व नज्जार व दीदन बुतहा व निहां करदन आं—चूँ आफ़ताब गरुब शुद व माह तलूअ गरदीद खजस्तः विस्यार ज़र व ज़ेवर पोशीद निज्द तूती रफ्त मरा रुख़सत दह कि पेश महबूब ख़ुद बरवम। तूती गुफ्त कि तुरा अव्वल शब दस्तूरे दादम् चरा हनोज़ तवक़्कुफ़ मीकुनी।"

ज्ञात रहे कि तीसरी कहानी के प्रारंभिक शब्द पहले दिए गए हैं और उसी कहानी के प्रारंभिक शब्द ऊपर उद्धृत हैं। दोनों नमूनों से स्पष्ट है कि नखशबी-कृत कहानी क्योंकर सरल की गई।

ऊपर वर्णित लीपज़िग संस्करण के अनुसार संस्कृत कहानी के प्रारंभिक शब्द ये हैं:—

अन्यदा प्रदोषे प्रभावती चलिता शुकं प्रपच्छ। शुकः।
गच्छ देवि न ते दोषो गमने कोऽपि दृश्यते।
विषमे यदि वेत्सि त्वं धर्मबुद्धिरिवेहितम्।

कथमेतत्। शुकः। अस्ति देवि धरापृष्ठे जाङ्गलाभिधो ग्रामः। तत्र मित्रद्वयं वर्तते धर्मबुद्धिर्दुष्टबुद्धिश्चेति। अन्यदा तौ द्वावपि धनातया देशान्तरं गतौ। कियद्भिर्दिनैः प्रचुरं धनमर्जयित्वा स्वग्रामं गतौ परस्परं मन्त्रं चक्राते। यत्पिप्पलाधो धनं किंचिल्लिप्त्वा त्यद् गृहे नीयते। पश्चात्क्रमेण विभज्यते लग्नं। इति कृत्वा तौ निजगृहं जग्मतुर्हृष्टतुष्टौ। सुखास्वादतत्परौ स्थितौ। अर्थान्तरे यत्कृतं दुष्टबुद्धिना तन्निशम्यताम्। न च युज्येत वक्तुम्।

ब्रिटिश म्यूजियम लण्डन की हस्तलिखित फारसी पुस्तकों की सूची से पता चलता है कि सम्राट् अकबर की आज्ञा से विद्वद्वर अबुलफजल (मृत्यु-काल सन् १८०३ ई०) ने तूतीनामः को संक्षिप्त रूप में किया था। क्योंकि वहाँ एक

हस्तलिखित प्रति ऐसी है, जिसके कुछ अंश में फारसी के साथ-ही-साथ दक्खिणी उर्दू वाला अनुवाद भी है।

जो कुछ मैं जान सका हूँ, वह यह है कि अबुल-फजल-कृत संक्षिप्त रूपान्तर अभी तक कहीं से मुद्रित नहीं हुआ है और न उस तूतीनामः का अपूर्ण उर्दू-अनुवाद ही कहीं से मुद्रित हुआ। वास्तव में लोगों का ध्यान विशेष रूप से नखशबी-कृत व कादरी-कृत तूतीनामों की ओर है। इस सम्बन्ध में सबसे पहले यह जानना चाहिए कि सन् १५३५ से १५६६ ई० तक तुर्की का शासक खलीफा सुलेमान आजम रहा है। उसकी आज्ञा से नखशबी-कृत तूतीनामः तुर्की भाषा में अनूदित हुआ है। मेरा अनुमान है कि इससे पूर्व किसी अन्य भाषा में तूतीनामः का अनुवाद नहीं हुआ। इस तुर्की तूतीनामः को जार्ज राजन (George Rozen) ने जर्मन में किया, जो लीपजिग से सन् १८५८ ई० में प्रकाशित हुआ था।

विशेष छान-बीन करने से मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि सीधी संस्कृत से शुकसप्ततिः की समस्त या थोड़ी-बहुत कहानियाँ इतनी भाषाओं में अनूदित नहीं हुई हैं, जितनी फारसी से। भाषाओं में हुई है, अर्थात् फारस की बदौलत शुकसप्ततिः की कहानियों का प्रचार अपेक्षाकृत अधिक हुआ है।

सन् १६३६ ई० में गौवासी नाम के एक कवि ने नखशबी-कृत ग्रन्थ को दक्खिणी उर्दू पद्य में किया था, जो 'मजलिस इशाअत दक्खिणी मखतूतात हैदराबाद दक्खिण' से प्रकाशित हो चुका है। इसके सिवा यह भी ज्ञात रहे कि योरप में दक्खिणी मखतूतात के नाम से एक ग्रन्थ उर्दू में मौलाना नसीरउद्दीन हाशमी-कृत सन् १६३२ ई० में प्रकाशित हुआ है। उसके पृष्ठ ५७—७४ व ५६५—५६६ में दक्खिणी भाषा के तूतीनामः का उल्लेख विशेष रूप से है।

सन् १७६२ ई० में नखशबीकृत फारसी तूतीनामः का अंग्रेजी अनुवाद लण्डन से प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद श्री एम० जारंस (M. Gearans) कृत है।

कादरी-कृत तूतीनामः को श्री सी० जे० एल० इकन (Iken) ने जर्मन भाषा में किया है। सन् १८३७ ई० में यह अनुवाद स्टटगार्ट (Stuttgart) से प्रकाशित हुआ है और अंग्रेजी में तो सन् १८०६ में ही कादरी साहब-कृत अनुवाद हो गया था।

उर्दू में सबसे पहला अनुवाद सन् १७२६ ई० में हुआ। किन्तु उस उर्दू में, जिसकी चलन दिल्ली व लखनऊ में है। सन् १८०१ ई० में सैयद हैदरबख्श हैदरी ने इसका अनुवाद किया। इनका अनुवाद 'तोता कहानी' के नाम से विख्यात है। इसका प्रकाशन लखनऊ, कानपुर, दिल्ली व लाहौर, आदि से बहुत हुआ है।

यह कुछ कम प्रशंसनीय बात नहीं है कि 'तोता कहानी' का श्री एफ० ग्लैडविन (F. Gladwin) ने अंग्रेजी में अनुवाद किया, जो फारसी के साथ सन् १८०१ ई० में कलकत्ता से मुद्रित हुआ और सन् १८०१ में लण्डन से श्री डनकिन फारबस ने 'तोता कहानी' का एक सुन्दर संस्करण निकाला। सन् १८७५ ई० में श्री० जी० स्माल (G. Small) कृत अंग्रेजी अनुवाद लण्डन से निकला।

ब्रिटिश म्यूजियम लण्डन में फारसी की जो मुद्रित पुस्तकें हैं; उनकी सन् १६२२ ई० में प्रकाशित सूची अर्थात् Catalogue of Persian(Printed) Books के पृष्ठ ५०० में तूतीनामः का जो उल्लेख है, उससे उन अंग्रेजी व जर्मन प्रतियों का कुछ पता चलता है, जो उस समय (अर्थात सन् १६२२ ई० से पूर्व) अनेक स्थानों से निकली थीं।

प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व अरबी-फारसी के प्रोफेसर श्री सिद्दीकी (अब्दुस सत्तार) के पास मैंने जर्मन तूतीनामः की वह प्रति देखी, जो श्री इकन कृत है। इसमें ३५ कहानियाँ हैं। यह पहले-पहल जर्मनी के रासबर्ग (Rossbarg) नामक स्थान में छपी। तत्पश्चात् मार्च सन् १६०५ ई० में दूसरी बार बर्लिन में छपी और यही (दूसरा संस्करण) उनके पास है।

हिन्दी में ७२ कहानियों का एक संग्रह 'शुक बहत्तरी' के नाम से मिलता है। मेरा ख्याल है कि इसमें थोड़ी-बहुत सामग्री 'उर्दू-तोता कहानी' से अवश्य ली गई है। एक लेखक का मत है कि श्री हैदरी-कृत पुस्तक 'तोता कहानी' को किसी ने सन् १८८६ ई० में हिन्दी में किया; किन्तु इस सम्बन्ध में मैं कुछ और नहीं जान सका हूँ। एक लेखक का कथन है कि कादरी साहब की पुस्तक को श्री चण्डीचरण सीरामपुरी जी ने सन् १८०६ ई० में बंगला में किया और उसका नाम 'तोता इतिहास' है और श्री अम्बाप्रसाद नाम के किसी सज्जन ने कादरी साहब की पुस्तक को हिन्दी में किया था।

अब अन्त में यह कहना अनुचित नहीं कि मैंने केवल उन्हीं अनुवादों या रूपान्तरों के विषय में कुछ लिखा है, जिनके विषय में मुझे कुछ पता लगा है। संभव है कि कुछ और अनुवादों का पता चले, क्योंकि पुस्तक की लोकप्रियता ऊपर के शब्दों से स्पष्ट है। साथ-ही-साथ यह बात भी कुछ कम महत्त्व की नहीं कि शुक-सप्ततिः की सामग्री का प्रचार फारसी भाषान्तर की बदौलत बहुत ज्यादा हुआ है। क्या ही अच्छा हो यदि इस बात पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाए कि कौन सा संस्कृत ग्रन्थ किस-किस भाषा में और कब अनूदित हुआ है और उस अनुवाद का क्या प्रभाव हुआ है।

सवेरे का एलार्म

प्रोफेसर हरीश सिंहल, एम० एस-सी०

आज सुबह 'शेव' करते समय सतीश की निगाह नए शीशे पर जो पड़ी तो वह कुछ असमंजस में पड़ गया। कल तक तो उसके चेहरे में एक भी झुर्री नहीं थी और आज यह खाइयाँ कैसी खुद गईं। एक दिन के भीतर तो कोई इस अवस्था को पहुँच नहीं सकता, निस्सन्देह वह बहुत दिनों से ढीला होता जा रहा है। शशि ने भी उससे कई बार कहा पर उसे विश्वास नहीं हुआ। उसे तो अभी तक अपनी कमर की ही आलोचना करनी पड़ती थी—'किसी रीतिकालीन कवि की कल्पना का आलम्बन बनती जा रही है।' दो बरस पहले जो निकर और पतलून तैयार करवाए थे, वे सब ढीले हो चले थे। पर चेहरे की ओर तो कभी ध्यान पहुँचा नहीं था। हो सकता है उसका पुराना दर्पण उसकी शक्ल ठीक से उतार न पाता हो और आज इस नवीन मुकुर ने मुख को अपने वास्तविक रूप में प्रतिबिम्बित कर दिया हो। उसने मुख में हवा भरकर गालों को फुलाने की चेष्टा की। ऐसा करने से उसे अपने बचपन के चित्र का स्मरण हो आया जब उसका चेहरा खूब भरा हुआ था।

वह इस नवीन विचारधारा में लीन ही था कि पीतल के गिलास में चाय लिए हुए शशि आ पहुँची।

"लो, उठोगे भी हजामत बनाकर।...मैं चाय ले आई...आठ बज गए होंगे...बाजार से साग-भाजी भी तो लाना है। आज इतवार है न, इसीलिए इतनी बेफिक्री से काम हो रहा है।"

"शशि! हजामत तो मैं कभी की बना चुका, मगर आज मुझे ऐसा लग रहा है मानों बरसों की बीमारी झेल कर उठा हूँ।"

"बीमारों की-सी तो शक्ल बना ही रक्खी है। मैंने तो अब कहना ही छोड़ दिया। मेरे कहने का तुम्हें विश्वास ही न आया। देखो न, सारा चेहरा काला पड़ गया है। जब मैं नई-नई आई थी तो कैसे गोरे चेहरे नजर आते थे।"

"मगर शशि! मुझे तो ऐसा पहले कभी नहीं लगा। आज इस शीशे ने अकस्मात् मुझे इतना दुर्बल कर दिया है।"

"कहीं शीशा भी किसी को कमजोर बनाकर दिखा देगा। वह तो जैसी सूरत है, वैसी ही दिखाएगा। चलो यह भी अच्छा हुआ कि तुम्हें अपनी हालत का अन्दाजा तो हुआ। मैं तो इसी सोच में परेशान थी। परेशानी अब भी कुछ कम न हो गई मगर हाँ अब कुछ दवा-दारू के लिए तुमसे कहने-सुनने को मुँह तो पड़ गया। अच्छा लो, यह चाय तो पियो...ठंडी हुई जा रही है।"

"बच्चों को दे दी और तूने अपने लिए भी रख ली?"

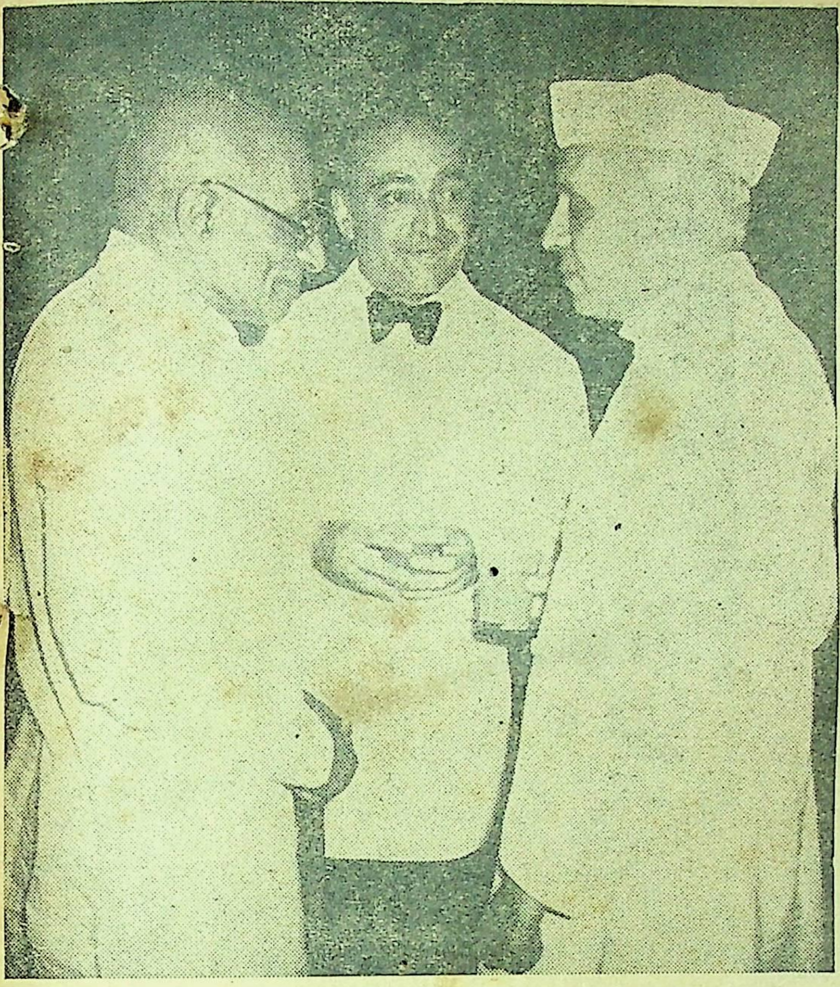
"हाँ, सबका बँटवारा हो चुका है। इसमें सिर्फ तुम्हारा ही हिस्सा है..."

"अच्छा ले तू इसमें से एक घूंट भर ले, हमारे कहने से..."

"तुम पियो; मेरी अंगीठी पर रक्खी है......"

"उसे भी पी लेना; आज हमारा ही मन रख लो......"

"तो पीने के बाद दो घूंट छोड़ देना...मैं जरूर पी लूँगी..." शशि ने स्नेह-पुलकित होकर कहा। सतीश

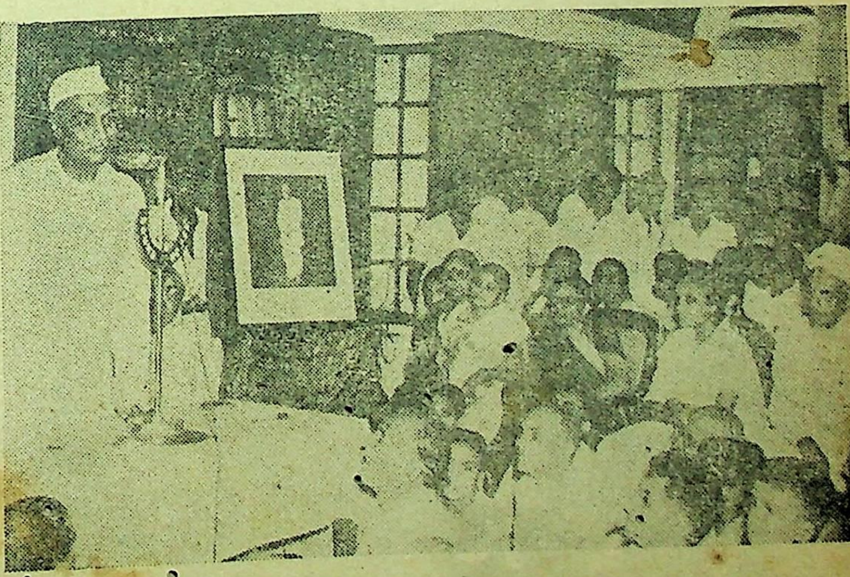


अफगानिस्तान-राजदूत

अफगानिस्तान के राजदूत श्री नजीबुल्ला, श्री राजा जी और पण्डित नेहरू के साथ।

उद्घाटन

देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद मद्रास में रानाडे भवन का उद्घाटन कर रहे हैं।

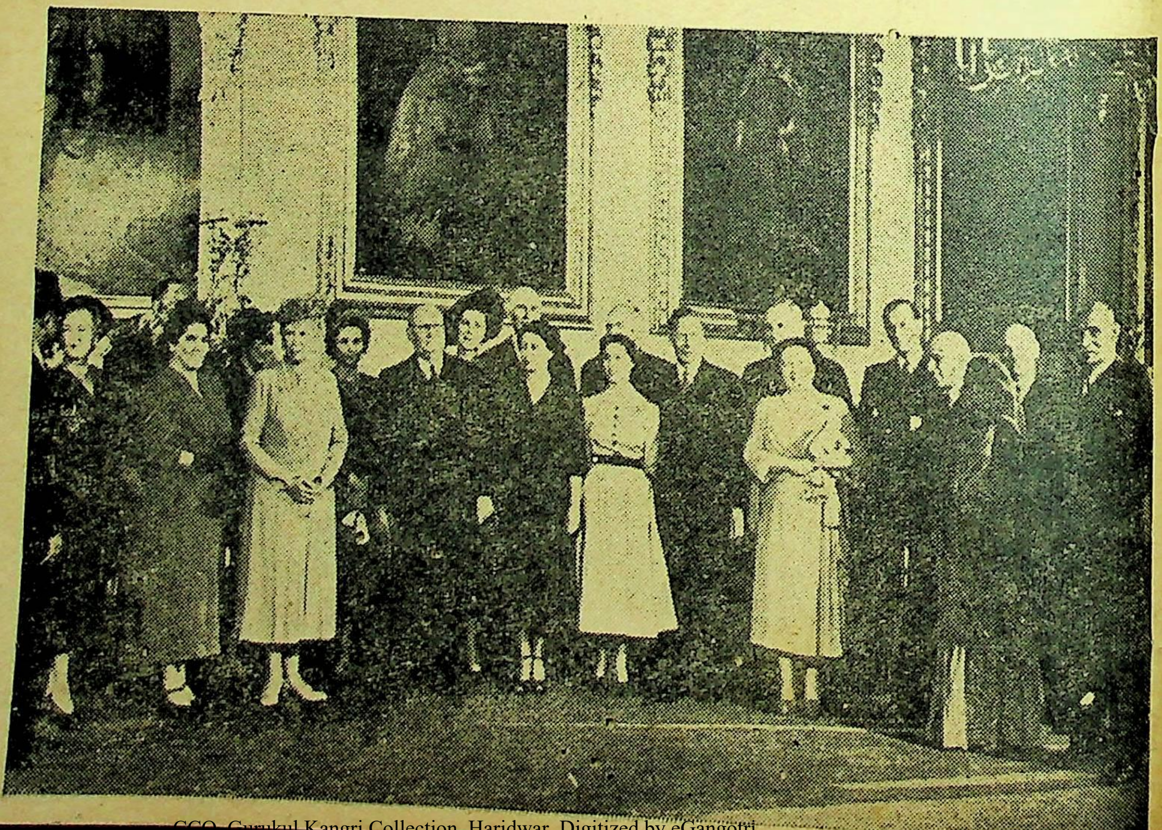


इँग्लैण्ड की भावी सम्राज्ञी

राजकुमारी एलिजाबेथ। अपने पुत्र के साथ



नीचे—इँग्लैण्ड के सम्राट् के अतिथि-रूप में ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के मंत्रिगण।



ने चाय का गिलास होंठों से लगाने को उठाया "अरे, यह आज इतनी सफेद कैसी बन गई है...क्या चाय की पत्ती बिल्कुल खत्म हो गई ?"

"नहीं तो, पत्ती तो अभी चार-छः दिन चल जाएगी।"

"तो क्या सारा दूध मेरी चाय में ही डाल दिया है ?"

"नहीं तो, जितना रोज पड़ता था उतना ही आज भी डाला है।"

"मैं कैसे यकीन करूँ ? दूध-सम्बन्धी मेरा ज्ञान भी बढ़ा-चढ़ा है। बचपन में मैंने बहुत दूध पिया है। मगर शशि ! यह अन्याय है। बच्चे भी हमारे हैं और तुम भी अपनी हो। सबको मिल-जुलकर खा-पी लेना चाहिए।"

"मैं तो चाहती हूँ तुम्हें पाव-आध सेर दूध मिल जाया करे तो कुछ काम बने और तुम हो कि चाय में पड़े दूध को भी नहीं पीना चाहते। कहाँ तो वह दिन था कि सेर डेढ़ सेर दूध दिन भर में पी जाना मामूली बात थी। भगवान् घर की डेरी हर किसी को नहीं देते, बड़े भाग्यवानों को ही मिलती है।"

"तभी तो आज आधपाव दूध में पाँच प्राणियों का काम चला रहा है भगवान्। पगली! इन बातों में क्या रक्खा है कि हम क्या थे। यह देख कि अब क्या हैं। मुझसे पहले तो इन छोटे बच्चों को दूध की आवश्यकता है। हमने तो बहुत पी लिया। यह अगर सूखे रह गए तो फिर कभी हरे नहीं हो सकेंगे।"

"उनका काम तो रोटी से भी चल सकता है। क्या किसान-मजदूरों के बच्चे दूध पीकर ही पला करते हैं ? दूध तो बीमारों के लिए है।"

"दूध तो शशि ! सबके लिए आवश्यक है पर मिलता किसे है, यह बात और है। तुम ठीक ही कहती हो, आज के हिन्दुस्तान में वह केवल बीमारों के लिए ही बना है।"

"क्या किया जाए, समय की गति ही ऐसी है।"

"शशि ! मैं बहुत सोचता हूँ, किसी प्रकार कुछ और पैसा पैदा कर लूँ, मगर कोई सूरत नजर नहीं आती। इतना खराब समय आ गया है कि सौ-दो सौ रुपए की कोई कीमत नहीं। इतनी रकम तो आजकल मामूली हैसियत के आदमी की जेब में हर समय पड़ी रहती है। नौकरी में कोई तरक्की नहीं। वही दो रुपया साल बढ़ जाता है। चीजों के दामों की यह हालत है कि जो जिसके जी में आता है, माँग लेता है। हम जैसे लोगों की कैसे कटेगी भगवान् ! अगर भोजन कर लेते हैं तो तन बिना ढँका रह जाता है और अगर कपड़े की तरफ खर्च कर देते हैं तो भूखे रहना पड़ता है। मैं सोचता हूँ कोई ट्यूशन ही कर लूँ, उसी की बदौलत कुछ आमदनी बढ़ जाएगी।"

"और करोगे किस वक्त ? दफ्तर के काम से छुट्टी भी मिलती है। इतने काम में तो शरीर का यह हाल कर लिया, अब क्या बिल्कुल खटिया से लग जाने का इरादा है।"

"नहीं तो, ऐसा कौन सा बड़ा काम कर लेता हूँ। पैसे के अभाव ने इतना कमजोर कर दिया है। अभी चार पैसे की आमदनी हो जाए तो इसी मुर्झाए हुए चेहरे पर रौनक आ जाएगी।"

"यह तो मैं भी जानती हूँ कि जिसके पास धन आना शुरू हुआ। वह कुछ ही दिनों में तगड़ा हो जाता है मगर मुझे तुमसे ऐसी उम्मीद होती नहीं। तुम्हें तो फिक्रें कभी छोड़ेंगी नहीं, फिर पनपोगे कैसे। बेफिक्री भी तो कोई चीज है।"

"वह सब बाद की बातें हैं।"

"तो फिर कर सको तो कर लो। कम-से-कम आध सेर दूध का खर्च ही निकल आएगा।"

"आध सेर दूध कितने का हुआ ?"

"सात आने का।"

"बाप रे बाप ! चौदह रुपये महीने का ! ...और चीनी कितनी चाहिए ?"

"ढाई सेर।"

"ढाई रुपए की।-२६॥ खर्च करने पर पाव भर दूध पेट में पड़ सकता है और उसे भी दुहाने के लिए स्वयं जाना पड़ेगा, वर्ना बम्बे के पानी के पैसे देने पड़ेंगे।"

"सो तो है ही। देख लो, यह चाय का दूध जो आता है, जमीन पर गिर जाए तो सूखने पर निशान भी नहीं पड़ता।"

"अभी क्या है, देखती जाओ। अगर आदमी को आदमी न खाने लगे तो कहना।"

"तो फिर करो न काशिश किसी 'ट्यूशन' की। मगर दूर को मत करना, दिन ऐसे-वैसे ही हैं।"

"दूर-पास का मेरे हाथ का बस थोड़े ही है।"

"जाओगे किस वक्त ?"

"यही तो परेशानी की बात है। कोई तरकीब ऐसी हो कि मैं सुबह जल्दी उठ जाया करूँ।"

"सुबह उठने की आदत तो बड़ी अच्छी है। सवेरे की ठंढी-ठंढी हवा में घूम आया करो तो तबियत भी सावधान हो जाए।"

"मगर सुबह जल्दी उठूँ कैसे। आँख कम्बख्त तो सात, साढ़े सात से पहले खुलती ही नहीं। तुम्हारा नुस्खा भी आजमा चुका हूँ। वह भी बेफायदा साबित हुआ। मैंने कई बार रात को सोते समय हनुमान् जी को याद दिलाई कि सवेरे चार बजे सतीश बाबू को उठा देना। मगर या तो तुम्हारे हनुमान् जी बहरे हैं या आजकल वह भी देर से सोकर उठते हैं, हमें तो एक दिन भी न जगा सके।"

"हाँ, कुछ समझ में नहीं आता। मेरी आँख भी जल्दी नहीं खुल पाती, नहीं तो मैं ही तुम्हें जगा दिया करूँ।"

"खुले भी कैसे। काम शायद थोड़ा करती हो। रात के पाँच-छः घण्टे आराम को मिल जाते हैं सो वह भी कम करना चाहती हो। दोनों वक्त का खाना करना, बर्त्तन माँजना, बच्चों को नहलाना-धुलाना, उनके कपड़े साफ करना, घर की झाड़-पोंछ करना और सबसे ऊपर मेरी सेवा करना, यह क्या कुछ कम है। दो नौकर रख लूँ तो भी इतना नहीं सिमट सकता।"

"रहने भी दो। पूरी फेहरिस्त सुना दी। मैं कोई अनोखी बात करती हूँ। घर-घर ऐसा ही होता है। औरत का घर में क्या अचार पड़ेगा, वह तो चार काम करने के लिए ही बनाई गई है। और कौन सी सेवा करती हूँ मैं तुम्हारी...। मुझे तो कुछ करने ही नहीं मिलता वर्ना औरतें मर्दों को पलंग पर बैठे ही कुल्ला कराती हैं।"

"इन्हीं गुणों के कारण ही तो स्त्री को त्यागमूर्त्ति कहा गया है। सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करने का सा बहाना करती हैं। सच पूछो तो तुझ जैसी सुशील स्त्री को पाकर मैं इस गरीबी में भी अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ।"

"छोड़ो भी इन बातों को, जब देखो तो मेरी ही तारीफ करने बैठ जाते हो। काम की बातें करो। मैं कहती हूँ एक घड़ी न खरीद लो। मेरा मतलब है टन-टन करनेवाली से। जिस वक्त चाहोगे नींद से जगाकर बैठा देगी।"

"तू एलार्म क्लाक को कह रही है ?"

"हाँ, उसी बजनेवाली को।"

"जरूरत तो बहुत है घर में, मैं खरीद भी लूँ, मगर नगदनारायण कहाँ से लाऊँ। लोगों को ऐसी चीजें शादी के वक्त मिल जाया करती हैं सो हमें एक अंगूठी ही मिलकर रह गई।"

सतीश की सारी बातों को शशि बड़े चाव से सुन रही थी और अपनी सरल और निष्कपट प्रकृति के अनुसार उनका उत्तर भी देती जा रही थी किन्तु इस अँगूठी वाली बात को सुनकर न जाने क्यों उसके नेत्र डबडबा आए। वह कुछ लज्जित-सी हो गई। प्रायः देखा गया है कि विवाह के उपरान्त लड़कियों को अपने माँ-बाप की अनेक भूलों के कारण नतमस्तक होना पड़ता है। सतीश की चंचल निगाहों ने शशि के मन का भाव आंक लिया। उसने ध्यान बदलने के विचार से कहा, "पगली कहीं की, शर्माती क्यों है......घड़ी नहीं दी तो क्या हुआ, शशि जैसी अनुपम निधि भी तो मुझे सदैव के लिए अर्पित कर दी।"

शशि का हृदय भरा चला आता था। उसने रुँधी हुई आवाज में कहा, "जब नहीं थी न सही। अब तो भाई साहब एक नहीं दस घड़ियाँ दे सकते हैं। भगवान् की पूरी कृपा है, साढ़े चार सौ पा रहे हैं।"

"बड़ा अच्छा है साढ़े चार सौ पा रहे हैं तो। हमें इस बात का डाह क्यों होता है ? फिर वही हल्की सी बात करने लगीं। कहीं किसी के दिए से पूरा पड़ा करता है। जो मजा अपनी कमाई के गुड़ और चनों में है, वह क्या ससुराल के मोहनभोग और रसमलाई में आ सकता है।"

"यह तो ठीक है, मगर सन्तोष तो नहीं होता। एक बहन है, सो बरसों बीत जाते हैं, कोई द्वार पर झाँकता नहीं। तीज और भैयादूज भी यों ही चली जाती हैं, कभी किसी ने खबर ली कि दो रोज को गरीब बहन को बुलाकर रख लूँ। सब माया के लोभी हैं।"

"नहीं, यह बात नहीं है। तुम्हारे भाई जब कभी मुझे

चिट्ठी लिखते हैं, तुम्हारे बुलाने की बात जरूर करते हैं। मैं ही हर बार अपनी मजबूरी जाहिर कर देता हूँ।"

"चलो रहने भी दो। मैं खूब समझती हूँ, अपने भाई-भावजों को। मगर खैर, हमें भी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाना है। नहीं बुलाते भाई, न सही। हम यहीं मौज में हैं। न खाए पराए टुकड़े चार दिन, न सही। हाँ, घड़ी की वैसे कीमत क्या है आजकल ?"

"बहुत कीमत है। 'कण्ट्रोल' के दाम पर तो मिलती ही नहीं, 'ब्लैक' से ठिकाना लग पाता है।"

"फिर भी कुछ तो अन्दाजा होगा।"

"यही सौ, सवा सौ रुपए।"

"कोई इससे सस्ती नहीं मिल जाएगी। तुम्हें तो बजनेवाली चाहिए।"

"हाँ, यह तो मैं भूल ही गया। मैं तो 'रिस्टवाच' के ख्याल में पड़ा था। 'एलार्म क्लाक' कोई पचास रुपए में आ जाएगी।"

"तो आज ही बाजार से ले आओ। छुट्टी का दिन भी है। अच्छी तरह से देखभाल हो जाएगी। मैं अपनी बालियाँ दिए देती हूँ। बालियाँ फिर भी बन सकती हैं। वह कोई जरूरी चीज नहीं है। वह चीज ही क्या, जो जरूरत पर काम न आई। इस वक्त तुम्हें घड़ी की जरूरत है, वह पूरी होनी चाहिए; फिर कपड़ा-गहना तो हारे-माँदे में ही काम आता है।"

"कैसी नासमझी की बात कर रही हो। कहीं आजकल कोई सोना बेंचता है। अरे भाई पाँच-सात तोले जो रह गया है, वही तो हमारी पूँजी है। उसे हम इस तरह बहा देंगे तो काम कैसे चलेगा ? फिर यह तो तृष्णा है, जितनी बढ़ाओ, उतनी बढ़ती है। आज घड़ी के बगैर काम नहीं चलता, कल रेडियो की जरूरत महसूस होने लगेगी, परसों फिर सवारी की। गरीबी में यह सब गैर मुमकिन है।"

इस रूखे से उत्तर को पाकर शशि कुछ समय के लिए अवाक् हो गई। फिर कुछ साहस संचित करके बोली, "तो फिर सबेरे उठने का क्या इंतजाम किया ?"

"अभी तो 'ट्यूशन' भी नहीं लगी है। जब तक मिल जाएगी, कुछ-न-कुछ सोच ही लूँगा।"

\+ \+ \+

'क्लार्क' का जीवन व्यतीत करने का उद्देश्य न होने पर भी सतीश आज पंजाब नेशनल बैंक की स्थानीय शाखा में 'क्लर्की' कर रहा है। ऐसा निरुद्देश्य जीवन इस देश के असंख्य नव-युवक यापन करते हैं। सतीश के लिए विधाता की ओर से कोई विशेष नियम लागू नहीं हुए हैं। उसने बी० ए० तक शिक्षा पाई है। इंटर कॉमर्स लेकर किया था, मगर स्थानीय कालेज में बी०काम० न होने और बाहर जाकर पढ़ने की क्षमता के अभाव के कारणों से उसे बी० ए० में भर्ती होना पड़ा। लिटरेचर, फिलासफी और एकनामिक्स का काम्बीनेशन उसके लिए काफी मंहगा पड़ा। दो बार चेष्टा करने पर भी वह बी० ए० न कर सका। सतीश के जीवन में यह असफलता कसक बनकर रह गई है। वह कहा करता "काश मैं ग्रेजुएट हो जाता तो……"

अपने प्रारम्भिक विद्यार्थी-जीवन में उसका लक्ष्य किसी ऊँचे पद की प्राप्ति की ओर था। वह ग्रेजुएट होकर क्या करेगा, यह उसकी चिन्ता का प्रिय विषय था। वह समझता था मेरे लिए सब द्वार खुले हैं। ऊँची-से-ऊँची नौकरी पर मैं पहुँच सकता हूँ। योग्यता की मेरे अन्दर कमी नहीं होगी। अध्यवसाय और परिश्रम से मैं घबराता नहीं। फिर क्या है, प्रतियोगिता में मैं सफल होकर निकलूँगा।'

कौन जानता था, भगवान् को यह सब मंजूर नहीं। सतीश के मधुर स्वप्नों का जाल अज्ञात के एक झोंके से विदीर्ण हो जाएगा।

सतीश की माता का देहान्त हो गया और परिस्थितियों के फेर में पड़कर उसके पिता ने सोलह वर्ष की उम्र में ही उसकी शादी कर दी। सतीश उस समय एफ०-ए० में पढ़ता था। सतीश की मानसिक वेदना का अनुमान कैसे लगाया जा सकता है ? उसका कोई चिह्न भी तो जीवित नहीं…सतीश स्वयं सब कुछ भूल चुका है। सतीश के पिता ओ० टी० रेलवे में बुकिंग क्लर्क थे। जब सतीश बारह वर्ष का था तभी वह रिटायर हो गए। उन्हें गाय-भैंस पालने का बड़ा शौक था। रेलवे से जो 'प्राविडेण्ट फंड' मिला, उसे लगाकर उन्होंने एक डेरी खोली थी। डेरी में अच्छी-से-अच्छी नस्ल के जानवर लाने की वह कोशिश करते। आस-पास में होनेवाले मेलों और पैठों के भी इसीलिए फेरे करते। मगर काम ज्यादातर नौकरों के हाथ में था। जानवर की स्वयं उन्हें ज्यादा पहचान नहीं

थी। जो खरीद-फरोख्त होती, वह नौकरों के द्वारा। दूध बेचने में निहायत ईमानदारी से काम लेते। ताला पड़ी हुई 'सील' लगी बाल्टियों में दूध वितरण के लिए भेजा जाता। मगर उनकी ईमानदारी ने उनका भला नहीं किया। नौकर सब खाऊ थे, खराब-से-खराब जानवर लाकर उनके सिर मढ़ देते और अच्छी-से-अच्छी रकम पटोल लेते। दूध की पैदावार दिन-दिन घटती गई। यहाँ तक कि रोज के ग्राहकों को भी पूरा नहीं पड़ता था। भाव बढ़ा नहीं सकते थे क्योंकि बाजार के साथ चलना था। नौबत यहाँ तक पहुँची कि ग्राहकों के पास कूपन जमा हो गए और उन्हें दूध मिलना बंद हो गया। अब उन कूपनों के बदले में उनकी रकम वापस करनी पड़ी। डेरी की इस दारुण दशा के काल में ही सतीश की माता का स्वर्गवास हो गया। सतीश के पिता को इस घटना से बड़ा आघात पहुँचा। कुछ समय बाद सारी पूंजी फूंककर उन्हें डेरी बन्द कर देनी पड़ी। स्वयं उन्हें बड़ा अकेलापन लगने लगा। अपनी क्षीण अवस्था का विचार कर सतीश का शीघ्र ही ब्याह कर दिया। कम-से-कम मेरे बाद इस बेचारे के दुःख दर्द का साथी तो हो जाएगा। कुछ दिनों बाद वे भी चल बसे, मानों विधाता किसी रूपक की क्रमपूर्वक रचना कर रहा हो। इन घटनाओं का तारतम्य सतीश के लिए जीवन की एक पहेली बन गया, जिसका उचित समाधान वह आज भी कर सकने में असमर्थ है।

सतीश को अपने विवाह की घटना किसी समय बड़ी दुखद प्रतीत हुई थी; पर वही पिता की मृत्यु के उपरान्त उसके सुख और आशा की केन्द्र बन गई। उसकी गृहणी शशि बड़ी सुशील स्त्री है, गरीबी में वह उसके लिए अमूल्य निधि बनी हुई है। उसकी पति-परायणता ने सतीश के जीवन में कुछ न होते हुए भी एक आंतरिक उल्लास भर दिया है, जिसके कारण घर का काम-काज शांति-पूर्वक चला जा रहा है।

फिर भी विवाहजीवन में जो कोमल परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, उनके चंगुल से सतीश भी न बच सका। उसका पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगा, इस समय घर-गृहस्थी की चिन्ता में ग्रस्त रहने लगा और कालांतर में दो बच्चे भी हो गए।

बी० ए० पास करने के प्रयास में निष्फल रहने पर उसने सर्वप्रथम किसी नौकरी के लिए आवेदन-पत्र भेजा। निस्सन्देह वह क्लर्की के स्थान के लिए ही था। उन दिनों महायुद्ध अपनी प्रचण्ड गति के साथ छिड़ा हुआ था। भारत में भी युद्ध-सम्बन्धी कार्यों के बढ़ जाने से नए-नए विभाग खुल गए थे। पुराने विभागों में भी नौकरियाँ बहुत खाली थीं। सतीश को भी 'डायरेक्टर ऑफ सिविल सप्लाईज' के दफ्तर में एक जगह मिल गई। विद्यार्थी के लिए यह नया जीवन था। इसमें संकुचित आय में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी थी। फिर दिल्ली जैसे विशाल नगर में प्रलोभनों के साधन भी प्रचुरता से उपलब्ध थे। तिस पर भी नवदम्पति रूखे-सूखे अपने दिन काट ही लेते थे। शशि को निश्चय ही उन बीते दिनों का स्मरण हो आता जब उसकी ससुराल धनधान्य से परिपूर्ण रहा करती थी।

समय की हलचल ने सन् बयालीस का आन्दोलन दिखाया। सतीश की रगों में भी नया खून था, विचारों की मौलिकता थी और देश के प्रति कर्त्तव्यपरायणता। उसने भी आन्दोलन में भाग लिया, शशि के लाख मना करने पर भी, खद्दर भी पहना और चर्खा भी काता। परिणाम स्पष्ट था, उसे नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

इधर सतीश की गृहस्थी बढ़ रही थी और पैसा पास में नहीं था। घर पर खाली बैठकर कहाँ से खाया जा सकता था! दूसरी नौकरी तलाश की। कई महीने हाथ-पैर फेंकने पर बैङ्क की उदारता का पट खुला और सतीश वहीं चिपक गया।

अंग्रेजों द्वारा राज्यसत्ता हस्तान्तरित होने पर सतीश ने केन्द्रीय सरकार से अपनी पुनर्नियुक्ति के विषय में लिखा-पढ़ी भी की। अपनी बर्खास्तगी का सबूत पेश किया मगर कोई आशाजनक उत्तर न मिला। उसकी पुनर्नियुक्ति नहीं हो सकती, यद्यपि राज्यद्रोह का अभियोग उसके ऊपर से हटा लिया गया है...सरकार के पास से यही उत्तर आ गया।

\+ \+ \+

पिछले कई वर्षों से सतीश लगातार कुछ-न-कुछ सीख रहा है। उसका जीवन किसी वैज्ञानिक की प्रयोगशाला बना हुआ है। वह अपने प्रत्येक कृत्य का सिंहावलोकन किया करता है। कदाचित् इसी कारण उसके स्वभाव में दैन्य का अंश आ गया है। बड़ी-से-बड़ी बात हो जाने पर उसकी मुद्रा कठोर नहीं होती।

उसके जीवन में यदि कोई समस्या शेष रह गई है तो वह शान्तिपूर्वक पेट पालने की। इसी की चिन्ता में वह दिन-रात मग्न रहता है। कभी सोचता है क्रासवर्ड पजिल' हल करूँ, मगर अपने भाग्यदेवता को इतना प्रसन्न नहीं समझता। इसीलिए रुक जाता है। कभी ख्याल करता कि शशि को विद्याध्ययन कराके विदुषी बना लूँ। वह पढ़-लिख जाएगी तो किसी स्कूल में अध्यापन का कार्य कर सकेगी। इस बहाने सौ-पचास रुपए की आय वृद्धि हो आएगी। फिर यह सोचकर कि बूढ़े तोते कहीं रामायण पढ़ा करते हैं, वह चुप हो जाता। शशि को घर पर ही इतना काम लगा रहता है कि पल भर को छुट्टी नहीं मिलती। और अगर निरंतर पास होती चली आए तो कम-से-कम आठ वर्ष में कुछ कमाने लायक हो सकेगी। इतने दिनों में तो उसका लड़का भी बड़ा हो जायगा। अपनी मां को इस प्रकार पढ़कर नौकरी करते देख उसे मुझ पर कितनी ग्लानि होगी।

बैंक की नौकरी सतोश को बिलकुल पसन्द नहीं। सुबह दस बजे पहुँचकर शाम को छः बजे तक छुट्टी मिल पाती है। उसके सेक्शन में काम भी सबसे अधिक रहता है और तनख्वाह अपेक्षाकृत इतनी वाजबी है कि काम चल ही नहीं पाता। बहुत दिनों से उसका विचार आटे की चक्की लगाने का हो रहा है मगर ढाई-तीन हजार की रकम का कोई इन्तजाम नहीं हो पाता। सतीश के सास-ससुर दोनों मर चुके हैं। दो साले हैं, उनसे राम-जुहार तक ही नातेदारी सीमित है। कभी दो-तीन महीने में कुशल-क्षेम का एकाध पत्र आ जाता है। सतीश जानता है, उसकी निर्धनता ही इस रिश्ते को इतना शिथिल किए हुए है।

दोस्त बनाने का उसके पास कोई साधन नहीं। वह किसी क्लब, सभा-सोसायटी आदि का सदस्य नहीं। बैंक एसोसियेशन का उसे अनिवार्य रूप से मेम्बर बनना पड़ा। वहाँ लाचार था, यद्यपि दो रुपए साल का खर्चा बाँधना उसके लिए असह्य था। दोस्ती निभाने के लिए आज-कल टके चाहिए और इन टकों का ही सतीश के पास सर्वथा अभाव था। सतीश की चक्की की लागत के दाम बढ़ते ही जा रहे थे। और उसकी खरीदारी का कोई प्रबन्ध नहीं हो पा रहा था। साझे का काम वह करना नहीं चाहता और फिर साझा भी बराबर का ठीक होता है। लौट-फेर के उसके दिमाग में एक ही पेशा घूमता है वह ट्यूशन!

न जाने इस देश के कितने शिक्षित नव-युवकों की जीविका इस व्यवसाय के सहारे चला करती है। सतीश को मास्टरी का भी बड़ा कटु अनुभव हो चुका है। इसलिए कदाचित् उसका मन इस पेशे की ओर झुकता नहीं। अपने विद्यार्थी-जीवन में वह एक सहपाठी रणजीत् के यहाँ जाया करता था। रणजीत इन्जीनियर का लड़का था। बड़े लाड़-प्यार से पाला गया था। उसकी पढ़ाई के लिए घर पर मास्टर साहब आया करते थे। शायद उन्हें दस रुपए मिला करते थे। रणजीत की माँ मास्टर साहब के आने और जाने के दोनों अवसरों पर घड़ी देखा करती थीं। मास्टर साहब ने जिस दिन भी दो-चार मिनट जल्दी जाने की चेष्टा की कि बस उन पर फटकार पड़ने लगी। जब कभी रणजीत का बड़ा भाई विक्रम प्रयाग विश्वविद्यालय से छुट्टियों में घर आया करता तो वह परदे के पीछे कुर्सी डालकर मास्टर साहब की शिक्षा का निरीक्षण करता। एकाध बार रणजीत के सामने ही उसने मास्टर साहब की गलती पकड़ी। मास्टर साहब बेचारे को बड़ी शर्म महसूस हुई। वह जरा सा रणजीत भी उनसे कह देता, "मास्टर साहब, ठीक-ठीक पढ़ाया कीजिए, हम मुफ्त में नहीं पढ़ते हैं। आपको तो कुछ आता ही नहीं।"

रणजीत को जिस विषय को पढ़ने की तबियत होती, वह वही पढ़ता। मास्टर साहब कुछ न कह सकते। पास और फेल होने की जिम्मेदारी भी उन्हीं की थी। एक बार उन्होंने रणजीत के पिता से रणजीत की शिकायत कर दी। पिता जी ने उल्टा मास्टर साहब को ही आड़े हाथों लिया—"मैं देखता हूँ, मास्टर साहब, आप रणजीत को पढ़ा नहीं सकते। आपको कुछ आता-जाता तो है नहीं, खाली ट्यूशन करने चले हैं। रणजीत को जिस चीज में दिक्कतें महसूस होती है, वही आपसे पूछता है और आप टालने की कोशिश कर दूसरा विषय पढ़ाने लगते हैं। मैंने आपको अपने लड़के के साथ याराना करने को तो रक्खा नहीं है। उसकी कमजोरी दूर करने का काम आपको सौंपा था।" मास्टर साहब बेचारे अपना मुँह लेकर रह गए। श्याम बहुत जरूरतमंद थे। इसलिए इतना सब कुछ पी गए।

यदि 'प्राइवेट ट्यूटर' का यही जीवन है तो उससे

कैसे निभेगी। इस क्षेत्र में तो पदार्पण करने के बाद स्वाभिमान से भी हाथ धोना पड़ेगा। फिर यदि पेट की रक्षा का प्रश्न इन सबसे प्रधान है तो एक दिन उसे भी अपनी मान-मर्यादा से होली खेलनी ही होगी। आवश्यकताओं के आगे तो श्याम ने सिर झुकाया है।

❀ ❀ ❀

प्रान्तीय बैंक कर्मचारी संघ का वार्षिक अधिवेशन इस बार लखनऊ में था। माननीय श्रममंत्री ने उद्घाटन किया था। बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव रक्खे गए थे। 'वर्किंग आवर्स' कितने होने चाहिए? 'ओवरटाइम' किस 'रेट' से मिलना चाहिए? वेतन कितना बढ़ाया जाए? मंहगाई का भत्ता गवर्नमेंट रेट पर मिलना चाहिए। बैंक कर्मचारियों के लिए अनिवार्य धन-संचय की कोई स्कीम चालू होनी चाहिए। इस धन पर कम-से-कम ५) प्रतिशत बैंक को सूद देना चाहिए आदि।

अपने नगर की यूनियन की ओर से सतीश को भी जाना पड़ा। प्रतिनिधियों के ठहरने का प्रबंध नवाब बन्ने मियाँ की कोठी में हुआ था। कोठी बड़ी शानदार थी। नवाब साहब स्वयं उसी में रहा करते थे। नवाब साहब ने मेहमानों के लिए उसका एक हिस्सा खाली कर दिया था।

पहले दिन सतीश को रात के बारह बजे सम्मेलन से लौटना पड़ा। रास्ते में कुत्तों ने उसका लखनवी ढंग से स्वागत किया। दिन भर उसने काफी परिश्रम किया था; विस्तर पर पड़ते ही गहरी नींद में सो गया। लगभग चार बजे उसकी आँख खुल गई। देखा तो भोर हो गया है। सतीश के लिए यह अजीब बात थी। बरसों से उसने उषाकाल के दर्शन नहीं किए थे। आज तक पहले कभी वह इतना सबेरे नहीं जागा। नींद पूरी न होने के कारण एक दो जम्हाई लेने के बाद फिर पड़ रहा। दो-चार मिनट के बाद चारों ओर से गूंजती हुई आवाजें आने लगीं—'कुकड़ूं कूं.........' और इसके बाद थोड़ा-थोड़ा से अवकाश देने के उपरान्त पुनरावृत्ति जारी हो गई। सतीश इस बेढंगी आवाज़ का सामना न कर सका। वह उठकर बैठ गया और बाहर दालान में आ गया। यहाँ आकर उसने नवाब साहब के मुर्गों की पाली देखी। मुर्गे पर फड़फड़ाते थे और गर्दन ऊँची उठाकर "कुकड़ूं कूं... .."कर रहे थे।

सतीश ने मुर्गों के बारे में सुना तो बहुत कुछ था पर प्रातःकाल के किस भाग में उसकी कुकड़ूं कूं चलती है, इसका कभी अनुभव नहीं हुआ था। उसकी बस्ती के आस-पास किसी को मुर्गा पालने का शौक नहीं था।

उसने बिस्तर समेटकर सूटकेस पर रक्खा और स्नानादि से निवृत्त होकर घूमने निकल गया। रास्ते में सोचता जाता था—"यह मुर्गा अगर रोज इसी वक्त बोला करे तो कितना अच्छा हो। यह मेरे लिए एलार्म का काम दे सकता है। यदि मैं नित्य चार बजे उठ बैठा करूँ तो दो ट्यूशनें पढ़ाकर पचास रुपए अधिक कमा सकता हूँ। मुर्गों की कीमत भी ज्यादा न होगी, यही कोई एक-दो रुपया।"

घूमकर लौटा तो सतीश बहुत खुश था मानो कोई दुर्ग जीतकर आ रहा हो।

कान्फ्रेंस के काम से सतीश को दो दिन उसी कोठी में और रहना पड़ा। प्रत्येक दिन चार बजे के लगभग उसकी आँख खुल जाती और उसे अपूर्व आनन्द का अनुभव होता। वह सोचता भगवान् ने गरीबों का भी यथोचित ध्यान रक्खा है। पक्षियों को समयज्ञान से कितना परिचित करा रक्खा है। गरीबों के लिए तो मुर्गा घड़ी का काम दे सकता है।

❀ ❀ ❀

सतीश को घर से गए हुए आज पाँच दिन हो गए थे। आज शाम को उसकी प्रतीक्षा थी। शशि मुन्ना को समझा रही थी, देख तेरे बाबू जी तेरे लिए लखनऊ रेवड़ियाँ लाते होंगे, तू जल्दी मत सो जाना, नहीं तो, तेरे पीछे हम दोनों खा लेंगे।

शशि अपने लिए भी कुछ आशा कर रही थी। प्रत्येक अवसर पर जब सतीश बाहर से लौटता तो शशि के लिए एकाध धोती गज दो गज़ जम्परों की छींट आदि लेता आता। शशि हमेशा यह कहकर उनको स्वीकार करती, "मेरे पास क्या इन चीजों की कमी थी, जो नई ले आए।" मगर सतीश जानता था कि शशि के इन शब्दों में सत्य की अपेक्षा त्याग की मात्रा कितनी प्रचुर है। उसे मालूम था कि शशि के पास दो-एक से अधिक जीवित धोतियाँ भी नहीं। वह अपनी बेबसी पर कलेजा मसोसकर ही रह जाता।

मगर इस बार तो सतीश घर घुसा तो एक बड़ा पिटारा लिए हुए, शशि कुछ समझ न सकी। हो सकता है लखनऊ से कुछ फल खरीद लाए हों। सतीश ने आते ही शशि को खुशखबरी सुनाई, "शशि, सुबह के उठने का इंतजाम हो गया है।"

"क्या घड़ी ले आए?"

"हाँ, एक सस्ती 'एलार्म टाइम पीस' मिल गई।"

"कहाँ है, मैं भी देखूँ।"

"अच्छा, वह टोकरी उठा लाओ।" और शशि ने टोकरी उठाई। टोकरी में से किसी के परों की फड़-फड़ाहट सुनाई दी।

"इसमें क्या कबूतर बंद कर लाए हो?"

"नहीं तो, इसी में तो सुबह का एलार्म है।" और सतीश ने टोकरी का ढकना खोल दिया।

"अरे, यह तो मुर्गा है।"

"हाँ, तो क्या हुआ?"

"इससे क्या करोगे?"

"अब देखना इसका क्या होता है।"

और सुबह को चार बजे के करीब सतीश के मकान से नया टाईम पीस एलार्म बोल रहा था—कुकड़ूँ कूँ...... कुकड़ूँ कूँ!

ऋग्वेद की ऋक्संख्या

श्री युधिष्ठिर मीमांसक

ऋग्वेद में कितनी ऋचाएँ हैं, इस विषय में प्राचीन अनेक विद्वानों ने लिखा है परन्तु यह प्रश्न अभी तक रहस्यमय बना हुआ है। किन्हीं भी दो विद्वानों की ऋग्गणना परस्पर नहीं मिलती। हमारा मत है कि प्राचीन आचार्यों की ऋग्गणना प्रायः ठीक हैं परन्तु उनके गणना-प्रकार में भेद होने से परस्पर विभिन्नता प्रतीत होती है। आधुनिक विद्वानों ने प्राचीन आचार्यों के गणनाप्रकार को भले प्रकार न समझकर अनेक भयङ्कर भूलें की हैं। इस लेख में उनकी भूलों का निदर्शन और ऋग्वेद की शुद्ध ऋक्संख्या दर्शाने का प्रयत्न किया जाएगा।

शतपथ ब्राह्मण १०।४।२।२३ में लिखा है—

"स ऋचो व्यौहत द्वादश बृहती सहस्राणि, एतावत्यो हर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः।"

अर्थात्—प्रजापति ने १२००० सहस्र बृहती छन्द के परिमाण की ऋचाएँ उत्पन्न कीं। इतनी ही प्रजापति-सृष्ट ऋचाएँ हैं।

बारह सहस्र बृहती छन्द का १२००० × ३६ = ४३-२००० अक्षर-परिमाण होता है।

शतपथ के इस प्रकरण को भले प्रकार देखने से विदित होता है कि यह अक्षर-परिमाण केवल ऋग्वेद की ऋचाओं का नहीं है अपितु वेदचतुष्टयान्तर्गत समस्त ऋचाओं का है क्योंकि शतपथ के इस प्रकरण में त्रयी विद्या का वर्णन करते हुए ऋक्, यजुः और साम का ही परिमाण दर्शाया है, अथर्व का नहीं। अतः इस प्रकार के ऋक्, यजुः और साम शब्द ग्रन्थ-विशेष के वाचक न होकर मन्त्रप्रकार के वाचक हैं। आचार्य जैमिनि ने त्रयी विद्या के लिए प्रयुक्त होनेवाले ऋक्, यजुः और साम शब्द का अर्थ इस प्रकार दर्शाया है—

"यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था सा ऋक्।
गीतिषु सामाख्या।
शेषे यजुः शब्दः।" मीमांसा २।१।३५-३७॥

अर्थात् चारों वेदों में जितने पादबद्ध (पद्यमय) मन्त्र हैं, वे 'ऋक्', गानात्मक 'साम' और गद्य मन्त्र 'यजुः' कहाते हैं।

आचार्य शौनक-कृत अनुवाकानुक्रमणी के अन्त में भी ऋचाओं का ४३२००० अक्षर-परिमाण लिखा है परन्तु वह अक्षर-परिमाण किन ऋचाओं का है, यह वहाँ स्पष्ट नहीं लिखा है।

अनुवाकानुक्रमणी में उपर्युक्त अक्षर-परिमाण से पूर्व लिखा है—

"ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं संप्रकीर्तितम्॥४३॥

अर्थात् ऋग्वेद के पारायण में समस्त ऋचाओं का परिमाण १०५८० और १ पाद है।

किन्हीं विद्वानों का विचार है कि अनुवाकानुक्रमणी में लिखा हुआ ४३२००० अक्षर-परिमाण ऋग्वेद की समस्त शाखाओं में पठित १०५८० और १ पाद ऋचाओं का है। हमें यह कल्पना ठीक प्रतीत नहीं होती क्योंकि बालखिल्य-रहित १०४७२ ऋचाओं का अक्षर-परिमाण ३९४२२१ होता है। यह अक्षरसंख्या पादपूर्त्यर्थ किए गए अक्षर-व्यूह को मानकर उपलब्ध होती है। अतः शेष १०८ ऋचाओं और १ पाद का लगभग ३८ सहस्र अक्षर-परिमाण किसी प्रकार नहीं हो सकता। इस हेतु से भी शतपथोक्त ४३२००० अक्षर-परिमाण वेदचतुष्टया-न्तर्गत समस्त पादबद्ध (पद्य) मन्त्रों का समझना चाहिए।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि शतपथ ब्राह्मण में ऋचाओं का द्वादश बृहती सहस्र (१२००० × ३६ = ४३२००० अक्षर) परिमाण लिखना और अनुवाकानुक्रमणी में ४३२००० अक्षर-परिमाण बताना ऋग्वेद की ऋक्संख्या जानने में कुछ भी सहायक नहीं हैं।

ऋग्वेद की विशिष्ट ऋग्गणना-पद्धति

ऋग्वेद की विभिन्न विद्वानों-द्वारा प्रदर्शित ऋक्संख्या पर विचार करने से पूर्व ऋग्वेद में ऋग्गणना की जो विशिष्ट पद्धति है, उसका समझ लेना अत्यावश्यक है क्योंकि इसी को यथार्थतया न समझने के कारण समस्त आधुनिक विद्वानों ने ऋग्गणना में भयङ्कर भूलें की हैं।

ऋग्गणना और द्विपदा ऋचाएँ

ऋग्वेद में कुछ मन्त्र ऐसे हैं, जिनको किसी समय दो-दो पाद का एक मन्त्र मानकर गिनते हैं और किसी समय उन्हें चार-चार पादों का एक मंत्र मानते हैं, अर्थात् उस समय दो-दो द्विपात् मन्त्रों का एक चतुष्पाद मन्त्र माना जाता है। द्विपदा पक्ष में ऋग्वेद में समस्त १५७ द्विपदा ऋचाएँ हैं। इनमें से १७ नित्य द्विपदा ऋचाएँ हैं। शेष १४० द्विपदा ऋचाएँ नैमित्तिक हैं—अर्थात् ये १४० ऋचाएँ वस्तुतः द्विपदा नहीं हैं अपितु १४० ÷ २ = ७० चतुष्पदा ऋचाएँ हैं। अतः ब्राह्मण ग्रन्थों में "द्विपदाः शंसति" वाक्यों-द्वारा ये ऋचाएँ द्विपदा बनाकर यज्ञ में युक्त की जाती हैं। अतएव इन ७० × २ = १४० ऋचाओं को "नैमित्तिक द्विपदा" कहा जाता है। इनके विषय में ऋक्सर्वानुक्रमणी के परिभाषा-प्रकरण में इस प्रकार लिखा है—

"द्विर्द्विपदास्त्वृचः समामनन्ति।"

इस सूत्र की व्याख्या करता हुआ षड्गुरु शिष्य लिखता है—

"ऋचोऽध्ययने त्वध्येतारो द्वे द्वे द्विपदे एकैका-मृचं कृत्वा समामनन्ति समामनेयुः अधीयिरन्। म्ना अभ्यासे, लिङर्थे लेट्, शपिमनादेशः। द्वे द्विपदे यासां ता ऋचो द्विर्द्विपदाः। समामनन्तीति वचना-च्छंसनादौ न भवन्ति. तेन 'पश्वा न तायुम्' (ऋ० १।६५) इति शंसने दशर्चत्वम्, आसां चाध्ययने तु पञ्चत्वं भवति।"

अर्थात् ऋचाओं के अध्ययनकाल में अध्येता दो-दो द्विपदाओं को एक-एक ऋचा बनाकर अभ्यास करें। 'समामनन्ति' कहने से यज्ञान्तर्गत शंसन (स्तुति) काल में दो द्विपदाओं की एक ऋचा नहीं होती है। इसलिए "पश्वा न तायुम" (ऋ० १। ६५) सूक्त शंसनकाल में दश ऋचाओं का माना जाता है और ये ही दस ऋचाएँ अध्ययनकाल में पाँच मानी जाती हैं।

सायणाचार्य ने ऋ० १।६५ के भाष्य में लिखा है—

"तत्र पश्वेत्यादीनि षट्सूक्तानि द्वैपदानि। तेष्व-ध्ययनसमये द्विपदे द्वे द्वे ऋचौ चतुष्पदामेकैकां कृत्वा समाम्नायते। अयुतसंख्यासु तु यान्त्यातिरिच्यते सा तथैवाम्नायते। प्रायेणार्थोऽपि द्वयोर्द्विपदयोरेक एव प्रयोगे तु ताः पृथक् पृथक् शंसनीयाः। सूत्र्यते हि-पश्वा न तायुम् (ऋ० १।६५) इति द्वैपदम् [आश्व० ८।१२] इति।"

अर्थात् 'पश्वा' (ऋ० १।६५—७०) इत्यादि छः सूक्त द्वैपद है। उनमें अध्ययन-काल में दो-दो द्विपदाओं की एक-एक चतुष्पदा ऋचा बनाकर पढ़ी जाती है। जिस सूक्त में विषम संख्यावाली द्विपदाएँ हैं, उसमें जो अन्तिम द्विपदा शेष रह जाती है, वह द्विपदारूप में ही पढ़ी जाती है। अर्थ भी प्रायः दो-दो द्विपदाओं का एक ही है। प्रयोग या यज्ञकाल में उनका पृथक्-पृथक् द्विपदा-रूप में ही शंसन होता है। आश्वलायन श्रौत (८। १)

में भी 'पश्वा न तायुम्' (ऋ० १।६५) सूक्त द्विपदारूप से विनियुक्त है।

अतएव चरणव्यूह के टीकाकार महीदास ने भी लिखा है—

"हवन एकैका अध्ययने द्वे द्वे आमनन्ति। पृष्ठ १५

अर्थात् हवनकाल में एक एक द्विपदा पढ़ी जाती है और अध्ययनकाल में दो दो द्विपदाएँ [एक ऋचा मानी जाती है]!

(यहाँ यह बात विशेषरूप से ध्यान में रखनी चाहिए कि कात्यायन ने ऋक्सर्वानुक्रमणी में जो प्रति सूक्त मन्त्र-संख्या लिखी है, उसमें उसने इन १४० नैमित्तिक द्विपदाओं को द्विपदा ऋचा मानकर ही गणना की है। अतः कात्यायन के मत में 'पश्वा न तायुम्' (ऋ० १।६५) सूक्त दशर्च ही है। मैक्समूलर के ऋक्संस्करण तथा तदाश्रित छपे हुए अजमेर आदि के संस्करणों में इस सूक्त में १० द्विपदाओं को ५ चतुष्पदा बनाकर छापा है।)

नैमित्तिक द्विपदाओं का संकलन

ऋग्वेद में जो १४० नैमित्तिक द्विपदाएँ हैं, उनका संग्रह चरणव्यूह के टीकाकार महीदास ने निम्न प्रकार दर्शाया है—

"पश्वा न तायुम् (ऋ० १।६५।१-१०) रयिर्न (ऋ० १।६६।१-१०) दश, वनेषु (ऋ० १।६७।१-१०) दश, श्रीणन् (ऋ० १।६८।१-१०) दश, शुक्रः शुशुकान् (ऋ० १।६९।१-१०), दश, वनेम पूर्वीः (ऋ० १।७०।१-१०) दश, अग्ने त्वं नः (ऋ० ५।२४।१-१४) चत्वारि, अग्ने भव (ऋ० ७।१७।१-६) षट् प्रशुक्रैतु (ऋ० ७।३४, १-१०) दश, राजा राष्ट्राणां (ऋ० ७।३४।११-२०) क ईं व्यक्ता (ऋ० ८।२६।१-१०) दश परिप्रधन्व (ऋ० ९।१०९।१-१०) दश तं ते सोतारः (ऋ०९।१०९।११-२२) द्वादश इमा नु कं (ऋ० १०।१५७।१-४) चत्वारि आ याहि वनसा (ऋ०१०।७२।१-४) चत्वारि इति नैमित्तिकद्विपदाश्चत्वारिंशोत्तरशतमिति (१४०) चरणव्यूह टीका पृष्ठ १५।"

चरणव्यूह की यह पृष्ठसंख्या बनारस संस्कृत सीरीज में प्रकाशित शुक्लयजुः प्रातिशाख्य के साथ मुद्रित चरणव्यूह परिशिष्ट का है।

इनके अतिरिक्त १७ नित्य द्विपदाओं का उल्लेख उपलेख सूत्र (वर्ग ९।१-२) में मिलता है।

इस प्रकार ऋग्वेद में समस्त १७+१४०=१५७ नित्य-नैमित्तिक द्विपदा ऋचाएँ हैं। आचार्य कात्यायन ने ऋक्सर्वानुक्रमणी में प्रतिसूक्त जो ऋक्संख्या लिखी है, उसमें इन १४० नैमित्तिक द्विपदाओं को द्विपदा मानकर ही गिना है, यह हम पूर्व लिख चुके हैं।

मैक्समूलर का ऋक्संस्करण और द्विपदा ऋचाएँ

मैक्समूलर ने सन् १८७३ में ऋग्वेदमूल का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया था। यह संस्करण वस्तुतः उसके महान् परिश्रम का फल है, जो किसी भी सम्पादन-कला-भिज्ञ पाठक से छिपा नहीं है। इतना होते हुए भी निःसंकोच कहना पड़ेगा कि मैक्समूलर के ऋक्संस्करण में कुछ भयङ्कर दोष रह गए हैं। उनमें सबसे महान् दोष नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं के मुद्रण में हुआ है, जिसके कारण उत्तरवर्ती अनेक विद्वानों से भयङ्कर भूलें हुई।

मैक्समूलर ने अपने मूल ऋग्वेद के संस्करण में मं० १, सूक्त ६५-७० तक की ६० नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं को ३० चतुष्पदा ऋचा बनाकर छापा है, और प्रत्येक चतुष्पदा ऋचा पर मन्त्रसंख्या[1] दी है। पञ्चम मण्डल के २४ वें सूक्त की ४ चार द्विपदा ऋचाओं को दो-दो चतुष्पदा ऋचा बनाकर छापा है, परन्तु प्रथम के अन्त में १। २ और द्वितीय के अन्त में ३। ४ संख्या छापी है। शेष मण्डलों की अवशिष्ट ७६ नैमित्तिक द्विपदाओं का द्विपदारूप से ही मुद्रण किया है। इस प्रकार मैक्समूलर ने नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं के मुद्रण में तीन प्रकार आश्रित किए हैं। अर्थात्—

१—प्रथम मण्डल ६५-७० सूक्त की ६० नैमित्तिक द्विपदाओं को चतुष्पदा बनाकर छापना और चतुष्पदा के अनुसार मन्त्रसंख्या देना।

---

१. मैक्समूलर-सम्पादित ऋग्वेद सायण भाष्य के द्वितीय संस्करण (सन् १८९०) में प्रति चतुष्पदा ऋचा के आगे दुगुनी संख्या (१।२॥ ३।४॥ ५।६॥ इत्यादि) उपलब्ध होती है, जो ठीक है। सायण-भाष्य के प्रथम संस्करण में मन्त्रसंख्या किस प्रकार छपी थी, यह हमें ज्ञात नहीं, क्योंकि हमें उसका प्रथम संस्करण प्राप्त नहीं हुआ।

२—पञ्चम मण्डल २४ वें सूक्त की ४ नैमित्तिक द्विपदाओं को २ चतुष्पदा बनाकर छापना और उन पर द्विगुणित (द्विपदा के अनुसार) मन्त्रसंख्या देना।

३—शेष मण्डलों की ७६ नैमित्तिक द्विपदाओं को द्विपदा रूप में ही छापना।

सम्पादन-कला की दृष्टि से यह दोष अक्षम्य है। इससे यह भी विदित होता है कि मैक्समूलर को इन १४० नैमित्तिक द्विपदाऋचाओं का वास्तविक स्वरूप भी समझ में नहीं आया था।

मैक्समूलर की उपर्युक्त भूल यदि उसके संस्करण तक ही सीमित रहती तो कुछ विशेष हानि नहीं थी। परन्तु उसके संस्करण को प्रमाणित मानकर उत्तरवर्ती अनेक विद्वानों से भयङ्कर भूलें हुईं (जिनका इस लेख में हम यथा स्थान निदर्शन कराएँगे)। अतः उसे किसी प्रकार क्षम्य नहीं कहा जा सकता।

अनुवाकानुक्रमणी और ऋक्संख्या

शौनक ने अपनी अनुवाकानुक्रमणी में दो स्थानों पर ऋक्संख्या का निर्देश किया है। श्लोक ४०, ४१, ४२ में वर्गसंख्या का निर्देश करता हुआ लिखता है—

"एकर्च एकवर्गः (१) स्यादेकश्च (१) नवकस्तथा।
द्वा (२) वर्गौ तु द्वृचौ ज्ञेयौ त्र्यूनं तृचशतं (६७) स्मृतम् ॥ ४० ॥
चतुष्कं शतमेकं च चत्वारः सप्ततिस्तथा (१७४)।
पञ्चानां सहस्रं तु द्वे च सप्तोत्तरे शते (१२०७) ॥४१॥
त्रीणि शतानि षट्कानां चत्वारिंशत् षट् च (३४६) वर्गाः।
शतमूनविंशतिः (११६) सप्तकानां न्यूना षष्टिर् (५८) अष्टकानाम् ॥ ४२ ॥

इन श्लोकों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

प्रतिवर्ग ऋक्संख्या		वर्गसंख्या		समस्त ऋक्संख्या
१	×	१	=	१
२	×	२	=	४
३	×	६७	=	२०१
४	×	१७४	=	६९६
५	×	१२०७	=	६०३५
६	×	३४६	=	२०७६
७	×	११६	=	८३३
८	×	५६	=	४७२
६	×	१	=	६
		२००६		१०४१७

तदनुसार ऋग्वेद में २००६ वर्ग और १०४१७ ऋचाएँ होती हैं। शौनक के मतानुसार यह ऋक्संख्या शाकलचरणान्तर्गत शैशिरीय शाखा की है। वह लिखता है—तान् पारणे शाकलो शैशिरीये वदन्ति (३६)। इस संख्या में बालखिल्य ऋचाएँ सम्मिलित नहीं हैं और नैमित्तिक द्विपदाओं का भी द्विपदारूप में परिगणन नहीं है। वर्तमान ऋग्वेद में बालखिल्य ऋचाओं को छोड़कर वर्गसंख्या २००६ ही है, परन्तु मन्त्रसंख्या १०४०२ है (यह हम आगे दर्शाएँगे)। इस प्रकार इसमें जो १५ ऋचाओं की अधिकता है, वह शाखाकृत समझनी चाहिए।

इसके आगे वह पूर्वोद्धृत 'ऋचां दशसहस्राणि' श्लोक पढ़ता है। तदनुसार ऋग्वेद में १०५८० ऋचाएँ और १ पाद है। यद्यपि इन दोनों स्थानों पर कही हुई ऋक्संख्याओं में महती भिन्नता है तथापि इसका समाधान बहुत साधारण है। 'ऋचा दशसहस्राणि' श्लोक में "पारणम्" पद विशेष ध्यान देने योग्य है। शौनक ने "पारणम्" शब्द-द्वारा १०५८० और १ पाद ऋक्परिमाण ऋग्वेद की समस्त शाखान्तर्गत ऋचाओं को दर्शाया है। यह लौगाक्षिस्मृति के निम्नलिखित श्लोकों के साथ तुलना करने पर स्पष्ट विदित हो जाता है। यथा—

"ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च।
ऋचामशीतिपादश्च पारायणविधौ खलु ॥
पूर्वोक्त संख्यायाश्चेत्तु सर्वशाखोक्तसूत्रगाः।
मन्त्राश्चैव मिलित्वैव कथनं चेति पुनः पुनः ॥

(श्री पं० भगवद्दत्त जी द्वारा 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' भाग १ पृष्ठ १३४ से उद्धृत।)

इन श्लोकों में १०५८ और १ पाद ऋक्परिमाण दर्शाकर स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि यह संख्या सर्वशाखोक्त मन्त्रों की है। यद्यपि इन श्लोकों का पाठ अत्यन्त भ्रष्ट है तथापि उपर्युक्त अभिप्राय सर्वथा स्पष्ट है।

---

१. १५ संख्या का आधिक्य देखकर शैशिरि शाखा में संज्ञान सूक्त के समावेश की कल्पना नहीं करनी चाहिए क्योंकि संज्ञान सूक्त का समावेश होने पर उसके चार वर्गों का भी वर्गसंख्या में समावेश होगा। वैसा होने पर वर्गसंख्या २००६ न होकर २०१० हो जाएगी। अनुवाकानुक्रमणी में वर्गसंख्या २००६ ही लिखी है।

चरणव्यूह परिशिष्ट में भी लिखा है—

"ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ।
ऋचामशीतिपादश्चैतत् पारायणमुच्यते ॥ पृष्ठ ११

इसकी टीका करता हुआ महीदास लिखता है—

"अथ पारायणे ऋक्परिमाणा उच्यते······एतत् पारायणं बालखिल्यैर्विना संख्यातम् । बालखिल्यानि पारायणे न सन्ति । पृष्ठ १४ ॥

अर्थात् ऋग्वेद के पारायण में १०५८० और १ पाद ऋक्परिमाण होता है । इस संख्या में बालखिल्य मन्त्र सम्मिलित नहीं हैं ।

महीदास का १०५८० और १ पाद ऋक् परिमाण में बालखिल्य ऋचाओं का समावेश न मानना भूल है । क्योंकि बालखिल्यसंज्ञक ११ सूक्त ऋग्वेद का अंश है; हाँ, इतना अवश्य है कि शाखान्तरों में इनकी गणना न्यूनाधिक है । महीदास के पूर्वोक्त लेख में पूर्वापर विरोध भी है । वह स्वयं आगे लिखता है—

"सूक्तसहस्रमप्तदशाधिकादष्टौ सूक्तानि बाष्कलस्याधिकानीत्यार्थः+ प्रति ते,युवं यमृत्विजः, इमानिवाम् इति चतुर्णां बालखिल्यसूक्तानां लोप इत्यर्थः ।" पृष्ठ २२ ।

+एतत् सहस्रं दश सप्त चैवाष्टावतो बाष्कलकेऽधिकानि ।

तान् पारणे शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्टा न खिलेषु विप्राः । अनुवाकानुक्रमणी ३६ ॥

अर्थात् (शैशिरि शाखान्तर्गत) १०१७ सूक्तों की अपेक्षा बाष्कलशाखा में ८ आठ सूक्त अधिक हैं । ११ बालखिल्य सूक्तों में से "प्रति ते, युवं देवाः, यमृत्विः, इमानि वाम्" इन चार सूक्तों का बाष्कल शाखा में लोप समझना चाहिए । अर्थात् बाष्कल शाखा में शैशिरि शाखा की अपेक्षा ७ बालखिल्य सूक्त और १ संज्ञान सूक्त (८ सूक्त) अधिक समझने चाहिए ।

इस उद्धरण में महीदास ने स्वयं बाष्कल शाखा में ७ बालखिल्य सूक्त गिने हैं । ये सात सूक्त बाष्कल शाखा के परिशिष्ट नहीं हैं, अपितु उसके अंग हैं । अतः उन सूक्तों के मन्त्रों की गणना पारायण में अवश्य होगी । इसी प्रकार अन्य शाखाओं के विषय में भी समझना चाहिए । इससे स्पष्ट है कि बालखिल्य ऋचाओं को १०५८० और १ पाद ऋक्परिमाण से पृथक् समझना महीदास की महती भूल है ।

शौनकीय अनुवाकानुक्रमणी १०५८० और १पाद ! छन्दसंख्या–परिशिष्ट–१०४०२ । ऋ॰ र्वानुक्रमणी टीकाकार जगन्नाथ वेङ्कटमाधव—१२४०२ तथा १०४८० । चरणव्यूह टीकाकार महीदास–बालखिल्य-सहित १०५५२, बालखिल्य-बिना १०४७२, उसके द्वारा उद्धृत श्लोकानुसार १०४१६ । स्वामी दयानन्द सरस्वती १०५२१ तथा १०५८६ । प्रो॰ मैकडालन १०४४२, द्विपदापक्ष में—१०५६६ तथा ८ । ८ । १६ पत्रानुसार १०५६५ । पं॰ सत्यव्रत सामश्रमी–१०५२२ । पं॰ हरिप्रसाद ।

[क्रमशः

वह पत्र

श्री सुरेन्द्र

अभी कुछ समय पहले तक जब मैं कुछ वर्ष पहले की याद करता तो अपने को बड़ा मूर्ख समझता और अपनी उस मूर्खता पर हँसता । लेकिन अभी-अभी मैंने अपनी राय बदल दी है और अब मेरी यह राय है कि जो भाव उस समय मेरे हृदय में उठते थे, वे नितान्त स्वाभाविक थे और उनमें मूर्खता की कोई बात न थी ।

उस समय मैं कुछ खोया-खोया-सा रहता था । सुन्दरता मुझे पर कुछ जादू का-सा असर करती । मैं जब किसी सुन्दर लड़की को देखता तो मेरा दिल एक बार जोर से धड़कता और मेरा हाथ तुरन्त अपने सीने पर जाता । सम्भवतः यह देखने के लिए कि कहीं दिल ने धड़कना बन्द तो नहीं कर दिया है । और फिर कुछ दिन तक मेरी अजीब-सी हालत रहती । न दिन को खाना अच्छा लगता और न रात को नींद आती । दिन-रात उसी लड़की की सूरत मेरी आँखों के सामने नाचा करती । जल्दी ही मैं इस निष्कर्ष पर पहुँच जाता कि मैं उस लड़की से प्रेम

करने लगा हूँ और उसके बिना मेरा जीना कठिन होगा और फिर एक पागल प्रेमी की तरह मुझे एक ही धुन रहती, किसी तरह उसे देखना और हो सके तो उससे बात करना।

लेकिन मैं जाने क्यों बचपन से ही लड़कियों से दूर रहता आया हूँ और एकाएक उनसे परिचय करने की मेरी हिम्मत नहीं होती। शायद मेरे दिल में यह डर रहता हो कि कहीं वह मेरा मतलब गलत न समझ जाए और मेरे निःस्वार्थ अनुराग को कुत्सित रूप में देखने लगे। अतएव मैं प्रायः दूर से ही उसे देखकर अपने दिल को शान्ति दिया करता। पर मेरा आकर्षण उस समय बहुत अस्थायी था। ज्योंही मेरी मनोनीता कहीं चली जाती, मैं उसे भूलकर किसी दूसरी में चित्तवृत्ति को केन्द्रित कर देता। कभी-कभी संघात भी हो जाता अर्थात् एक ही समय में एक से अधिक आकर्षण-केन्द्र जुट जाते। आप क्या कहेंगे इसे? मेरी कमज़ोरी न। शायद आप यह भी सोचें कि जिस अवस्था में मैं उस समय था, उसमें सभी लड़कों की यही दशा होती है।

पर मुझे एक बात से संतोष है। वह यह कि मैं लड़कियों से शरमाता था। अगर ऐसा न होता तो मैं जाने कितनी लड़कियों के दुःख का कारण बन जाता। मैं एक महीने से अधिक किसी को अपने हृदय-भवन में न टिका सका—एक को छोड़कर। फिर उन देवियों में से मैं बोला भी नहीं, एक को छोड़कर। इन्हीं दिनों मैं कुछ भावुक भी हो गया था और मैंने कहानियाँ लिखना भी शुरू कर दिया था। मेरी उस समय की प्रेमिका मेरी कहानी की नायिका होती और मैं स्वयं नायक। पर यह रहस्य मैं किसी को बताता नहीं था। हाँ, उन कहानियों को मैंने चुपचाप पत्रों में भेजा और वे छप भी गईं।

इस लड़की को, जिससे मैंने एक मास से अधिक प्रेम किया था और जिससे बोला भी था, मैंने पहली बार एक दूसरी लड़की के साथ सड़क पर जाते देखा था। मैं उस समय खेलने के लिए जा रहा था। पर उसे देखते ही मैं सब कुछ भूल गया। कुछ देर बाद मैंने अपने आपको 'फुटबाल ग्राउंड' की जगह 'सिनेमा हाल' में बैठे पाया। मुझे स्मरण नहीं कि उस दिन कौन खेल था। मैं तो बस एकटक उस लड़की की ओर देख रहा था। उसका नाम ज्योति था। सम्भवतः उसे मेरी ओर से कुछ शक हो गया था क्योंकि 'इन्टरवेल' में उसने पलटकर मेरी ओर ध्यान से देखा और मेरी धृष्टता के लिए (उसे घूरते रहने के) वह कुछ कहनेवाली भी थी। पर जैसे ही उसने मेरी ओर देखा, मेरी निगाह जमीन में गड़ गई और, शायद, मेरा चेहरा लज्जा से आरक्त हो उठा, जिसे देखकर वह चुप हो गई।

फिर मेरा यह नियम-सा हो गया कि शाम को मैं उस सड़क के किनारे, जिस पर वह घूमने निकलती थी, खड़ा हो जाता था और जब वह वापस लौट जाती तो मैं भी लौट आता। मैं अपना खेल और पढ़ाई सब कुछ भूल गया। मेरी बस एक लगन थी—ज्योति।

एक दिन मैं नित्य के अनुसार देवी जी के दर्शनों को न जा सका। कोई बाहर की फुटबाल की टीम आई हुई थी और बहुत मना करने पर भी मित्रगण मुझे खेलने को ले ही गए। उस दिन मैं बहुत उदास रहा और दूसरे दिन मैं समय से पहले ही उस सड़क पर जा बैठा। ज्योति और उसकी सहेली ने प्रतिदिन मेरा वहाँ रहना लक्ष्य कर लिया था। उस दिन पास से निकलते हुए उसने मुस्कराते हुए कहा—"कल आप कहाँ रह गए थे?" मैं बौखला गया।—ज्योति मुझसे बोल रही थी—मेरा कल वहाँ न आना उसने लक्ष्य कर लिया था—जरूर उसके हृदय में मेरे लिए जगह होगी। मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा, अपनी खुशी और बौखलाहट में मैं कुछ कह भी न सका। वह पास से निकल गई। मुझे उसके उस प्रश्न में असीम प्रेम दीखता था यद्यपि था वह शुद्ध व्यंग्य ही।

दूसरे दिन मैं फिर वहाँ खड़ा था। भर के सोच-विचार के बाद मैंने कई सुन्दर बातें अपने दिमाग में भर रक्खी थीं, जिनको ज्योति के साथ घूमते हुए उगलने की मेरी मंशा थी लेकिन जब ज्योति अपनी सहेली के साथ वहाँ से निकली तो मैं सिर्फ नमस्ते ही कह पाया और मेरी जबान रुक गई। मेरे दिमाग की सब सुन्दर बातें जाने कहाँ चरने चली गईं उसे देखते ही। अब ऐसा प्रायः प्रतिदिन होने लगा। उनके वहाँ से निकलने पर मैं नमस्ते कहता और ज्योति थोड़ा सिर हिलाती हुई निकल जाती। मुझे कुछ दिनों बाद ऐसा मालूम होने लगा कि उसके सिर हिलाने में कुछ रुखाई-सी आगई है। मुझे ऐसा भी लगने लगा कि वह मुझे झिड़कना चाहती पर शायद मेरी भोली और मूर्ख सूरत ही उसे ऐसा नहीं करने देती थी।

और इस प्रकार करीब तीन महीने बीत गए। इस बीच एक दिन मैंने हिम्मत करके उससे पूछ ही लिया—"क्या मैं आपके साथ थोड़ी दूर घूमने आ सकता हूँ?" उत्तर में वह सिर हिलाती हुई निकल गई। इसके बाद मैं अपनी नमस्ते से आगे न बढ़ पाया। फिर एक दिन वह घूमने न आई। दो दिन, तीन दिन, चार दिन हो गए, फिर भी वह घूमने न आई। मेरी बेचैनी बहुत बढ़ गई और पाँचवें दिन मैं उसके घर पहुँच ही गया। मुझे उसका घर मालूम था ही क्योंकि पहिले दिन ही मैं सिनेमा के बाद उसके पीछे-पीछे उसके घर तक गया था।

हाँ, मैं उसके घर गया। वहाँ पहुँचकर मैंने जो देखा, उसे देखते ही मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि मेरा दिल सचमुच ही धड़कना बन्द कर देगा। ज्योति दुलहन के कपड़े पहने हुई थी और धीरे-धीरे लजाती हुई मोटर पर चढ़ रही थी। उसकी सहेली भी पास ही खड़ी थी और पास में खड़ा था एक युवक भी, जो उसका पति होगा। वैसे वहाँ काफ़ी भीड़ थी लेकिन इन लोगों के सिवाय मैंने और किसी को नहीं देखा। मैं खोया हुआ सा लौटकर घर आया। मुझे लग रहा था कि ज्योति ने मुझे ठगा है। वह मेरी तरफ देखकर मुस्कराती थी, मेरा नमस्ते स्वीकार करती थी यानी मुझे आशा दे रही थी और फिर अचानक उसने किसी दूसरे से ब्याह कर लिया। इसे सिवाय ठगी के और क्या कहा जाए?

दो-दिन के बाद मैंने फौज में भर्ती होने की अर्जी दे दी। निराश प्रेमी ऐसा ही किया करते हैं और इससे मुझे बड़ी सान्त्वना मिली। मैंने सोचा कि यदि ज्योति ने अपना कर्तव्य नहीं निभाया तो इसके लिए मैं क्यों अपने कर्तव्य से च्युत होऊँ। उस समय फौज में भरती होने को मैं ज्योति के प्रति अपना कर्तव्य समझने लगा।

मैंने एक कहानी लिखना प्रारम्भ कर दिया। कहानी एक पत्र के रूप में थी, जिसे निराश प्रेमी ने अपने फौज में भरती होने के बाद व मोर्चे पर जाने के पहिले लिखा था। उसमें उनकी पहली मुलाकात का वर्णन था और उन हँसी-खुशी के दिनों की याद दिलाई गई थी, जो उन्होंने एक-दूसरे को प्रेम करते बिताए थे। फिर प्रेमिका से प्रेमी के फौज में भर्ती होने की और मोर्चे पर जाने की बात कही गई थी। इस बात पर दो आँसू बहाए गए थे कि उसे आशा दिलाकर उसने दूसरे को अपना लिया। फिर उस प्रेमिका के सुख के लिए प्रार्थना की गई थी और यह आशा की गई थी कि अगर वह कभी उसके मरने की खबर सुने तो दो आँसू बहाएगी। यह भी कहा गया था कि वे आँसू ही उस निराश प्रेमी की आत्मा को शांति पहुँचाएँगे। कहानी समाप्त कर जब मैंने उसे पढ़ा तो मुझे अपने आप पर आश्चर्य हुआ।

उस दिन शाम को जब मैं कहानी की 'फेयर कापी' समाप्त कर, घूमकर घर लौटा तो मेरे लिए एक तार प्रतीक्षा कर रहा था, जिसमें मुझे फौजी सेलेक्शन-बोर्ड ने दिल्ली बुलाया था। मुझे प्रातःकाल की गाड़ी से ही रवाना होना था, इससे मैं जल्दी जल्दी विस्तर बाँधने लगा। कहानी को मैंने एक मासिक पत्र में भेज दिया और 'रफ' प्रति पता नहीं किस बक्स में फेंक दी।

मैं फौज में भरती कर लिया गया और क्योंकि लड़ाई की वजह से बहुत से अफसरों की आवश्यकता थी, चुनाव के बाद मैं सीधा ट्रेनिंग के लिए भेज दिया गया।

ट्रेनिंग समाप्त कर मैं एक माह की छुट्टी पर घर आया। मुझसे छिपाकर पिताजी ने मेरे ब्याह का पूरा प्रबन्ध कर दिया था और मेरे घर आते ही मेरे बहुत मना करने पर भी मेरी शादी कर ही दी गई। शादी के बाद मैंने भगवान् को लाख-लाख धन्यवाद दिए कि पिताजी ने मेरी बात न मानी और शादी कर दी। मैं पहले दिन से ही श्रीमती जी का पुजारी हो गया। अब मुझे मालूम हुआ कि प्रेम किसे कहते हैं। मैंने पहले कभी प्रेम नहीं किया था। वह तो सिर्फ मेरी भावुकता थी, जिसे मैं प्रेम समझ बैठा था। यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं कि श्रीमती जी भी मुझसे प्रेम करती थीं। हम दोनों एक दूसरे के पीछे पागल थे। एक माह में ही इस लड़की ने, जिसे एक माह पहले मैं जानता तक न था, मेरे दिल में कितना मजबूत घर बना लिया था, यह मुझे तब मालूम हुआ जब छुट्टी समाप्त होने पर मैं अपनी यूनिट लौटा। ऐसा मालूम होता था कि मैं अपना दिल पीछे ही छोड़ आया हूँ। मैं अपने फालतू समय का एक एक मिनट श्रीमती जी को पत्र लिखने में बिताता। और श्रीमती जी को तो पत्र लिखने के सिवाय और कोई काम था ही नहीं। हम दूर रहते हुए भी एक दूसरे के पत्र पढ़कर प्रसन्न हो लिया करते थे। दोनों दीवाने से थे जो

एक साल बाद मेरी छुट्टी फिर स्वीकृत हुई। मैंने इस छुट्टी के बारे में श्रीमती जी को लिखा और हम दोनों उत्सुकता से छुट्टी की प्रतीक्षा करने लगे। पर मैं छुट्टी पर रवाना हो सकूँ, उसके पहले ही मेरी छुट्टी रद्द कर दी गई। और मैं अपने आदमियों के साथ मोर्चे पर दूसरों को रिलीव करने भेज दिया गया। फिर करीब महीने भर तक दम लेने की फ़ुर्सत न मिली और मैं श्रीमती जी को खत लिखकर यह भी न बता सका कि मेरी छुट्टी रोक दी गई है। लगभग महीने भर बाद मुझे काफी समय मिलने लगा और मैंने फिर श्रीमती जी को अपने लम्बे-लम्बे प्रेमपत्र भेजने शुरू कर दिए लेकिन अब श्रीमती जी की ओर से कोई पत्र न आते थे। मैं बहुत निराश था और बहुत दुखी भी। कोई कारण नजर नहीं आता था उनकी चुप्पी का। पहले तो मैंने सोचा कि शायद बीमार होंगी पर पिताजी के पत्र से इस शंका के लिए कोई स्थान न रहा। और कोई कारण मुझे नजर नहीं आया। अतः मैं सुख और निराशा में अपने दिन बिताने लगा। आखिर हमारी छुट्टियाँ फिर चालू हुईं और मैं जल्द ही छुट्टी लेकर अपने घर पहुँचा। मैंने अपने आने की खबर किसी को नहीं दी थी।

मेरे एक दिन सवेरे अचानक घर पहुँचने पर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ और बहुत खुशी भी। सबके चेहरे हँस रहे थे। लेकिन श्रीमती जी की आँखों में आँसू थे। मैं समझा कि ख़ुशी के आँसू होंगे लेकिन यह मेरा भ्रम था। बात कुछ और ही थी पर जैसे-जैसे मैं उनसे पूछता, उनके आँसुओं का वेग बढ़ता जाता और यह यहाँ तक हुआ कि मुझे अपने आँसू रोकने कठिन हो गए। मैं श्रीमती जी का दुख और अधिक न देख सका और मैंने आखिरी पत्ता फेंक दिया। मैंने कहा—"यह साफ है कि मुझे देखकर आपको खुशी नहीं हुई है। मेरे विचार से तो आपको दुःख ही अधिक हुआ है। यह बात आपके आँसुओं से साफ मालूम पड़ती है। मैंने यहाँ आकर आपको जो दुःख पहुँचाया, उसका मुझे बहुत दुःख है और आपको और दुःख से बचाने के लिए मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि मैं फौरन जहाँ से आया हूँ, वहीं वापस चला जाऊँ।" और मैं कमरे से बाहर निकलने के लिए पलटा। मेरे पलटते ही श्रीमतीजी की जबान खुली।

श्रीमती जी ने थोड़े शब्दों में मुझे अपना दर्द कह सुनाया। उन्होंने मेरे बारे में कुछ ऐसी बातें कहीं, जो मुझे स्वयं मालूम न थीं। मुझसे कहा गया कि मैंने उनके साथ विश्वासघात किया है। मैं ज्योति नाम की किसी लड़की से प्रेम करता हूँ। मैं छुट्टी लेकर घर आने के बजाय ज्योति से मिलने चला गया था और इसी कारण से मैंने उन्हें पूरे महीने पत्र नहीं लिखा था। अगर मैं पत्र लिखता तो पोस्ट आफिस की मोहर से मेरा भेद न खुल जाता। और इतना सब कुछ होने पर भी मैं उन्हें धोखा देने का प्रयत्न कर रहा था, लम्बे-लम्बे प्रेमपत्र लिखकर। एक साथ इतने आक्षेप सहने का सामर्थ्य मुझमें नहीं था। मैं आहत-सा एक कुर्सी पर बैठ गया और धीमे शब्दों में अपनी सफाई देने लगा। मैंने कहा कि मैं ज्योति नाम की किसी लड़की को न जानता हूँ, न कभी जानता था और न कभी जानूँगा। मैं छुट्टी पर न आ सका इसका कारण...। लेकिन मुझे अपनी पूरी सफाई देने का अवसर न दिया गया। मुझे बीच में ही रोककर कहा गया—"बस, बहुत हो गया। अब और मुझे धोखा देने का प्रयत्न क्यों कर रहे हैं?" श्रीमतीजी के चुप होने पर मैंने फिर अपनी सफाई देनी शुरू की। मैंने उनसे कहा किस तरह एकदम मेरी छुट्टी रोक दी गई और मैं मोर्चे पर भेज दिया गया। वैसे मेरी आत्मप्रशंसा करने की आदत नहीं है किन्तु यह तो अवसर ही ऐसा था। मैंने उस महीने की दो-चार घटनाओं का वर्णन किया, जिनमें मैंने प्रमुख भाग लिया था और मेरी बातों का इन पर अधिक असर हो इसलिए मैंने उनसे यह भी कहा कि मिलेट्री-क्रास' के लिए मेरी सिफारिश की गई है। श्रीमती जी के आँसू सूख गए थे और वे मेरी ओर एक अजीब दृष्टि से देख रही थीं। मुझे विश्वास हो गया कि मेरी बातों का और मेरी वीरता का श्रीमती जी पर काफी असर पड़ा है और मैं श्रीमतीजी से उस सत्कार की आशा करने लगा, जो वीर को सुन्दरता से सदा मिलता आया है। मैं जमकर कुर्सी पर बैठ गया क्योंकि मुझे विश्वास हो गया था कि श्रीमतीजी दौड़कर मेरा आलिंगन करनेवाली हैं और कहीं उसकी टक्कर से मैं गिर न जाऊँ।

पर यह क्या? श्रीमती जी भी जमकर बैठ गईं और उन्होंने फिर रोना शुरू कर दिया। मैंने भी फिर वह दवा शुरू कर दी, जिसने उन्हें पहले चुप किया था। पर इस बार श्रीमतीजी ने गर्मी के साथ मुझे चुप होने को

कहा और मुझे राय दी कि गलती करने के बाद झूठ बोलकर मैं और खराब न बनूँ। और फिर उन्होंने कहा कि—"मेरे पास आपकी बेवफाई का अकाट्य प्रमाण है।" और वे मेरी ओर विजय-गर्व से देखने लगीं। उनके हाथ में कागज के कुछ पन्ने थे। उस समय उन्हें देखकर मुझे जाने क्यों बड़ी-बड़ी मूछोंवाले अपने थानेदार मित्र की याद आगई। वह भी तो अपने शिकार को यह विश्वास दिलाता रहता है कि वह उसकी बातों पर विश्वास कर रहा है और फिर एकदम उसके सामने उसकी गलती का सबूत फेंककर उसे अवाक् कर देता है। मुझे अपने पर सन्देह होने लगा लेकिन फिर भी मुझे याद नहीं आया कि कब मेरा किसी भी लड़की से किसी तरह का सम्बन्ध था। मैंने डरते-डरते वे कागज के पन्ने उठाए।

मैं आश्चर्य से उन्हें पढ़ने लगा। वह एक पत्र था, मेरे ही हाथ का लिखा हुआ और पत्र भी क्या था, मैंने अपना दिल खोलकर उस पत्र में रख दिया था। मैंने अपने बदन को टटोला, यह देखने के लिए कि मैं जिन्दा हूँ या नहीं, क्योंकि उस पत्र में जो भाव प्रदर्शित किए गए थे, उनके अनुसार तो मुझे कभी का स्वर्गधाम पहुँच जाना चाहिए था। मुझे खुशी हुई कि मैं अभी भी जीवित हूँ। लेकिन यह ज्योति कौन है? मैं सोचने लगा और श्रीमतीजी थानेदार की तरह मेरी स्वीकारोक्ति और क्षमा-प्रार्थना की प्रतीक्षा करने लगी। धीरे-धीरे मुझे याद आने लगा कि मैंने कब वह पत्र लिखा था। मैंने श्रीमती जी की ओर देखा और मैं जोर से हँसा। श्रीमती जी के चेहरे से क्रोध और निराशा एक साथ झलक रही थी। मैं अपनी छोटी-सी लाइब्रेरी में गया और वहाँ से कुछ मासिक पत्र और कुछ हस्त-लिखित कहानियाँ लेकर श्रीमती जी के पास बैठ गया। मैंने अपनी कहानियों के बारे में श्रीमती जी से कुछ नहीं कहा था क्योंकि मैं एक दिन उन्हें आश्चर्य में डालना चाहता था।

घण्टे भर बाद मैं सब कुछ एक साथ बन गया। एक वीर सैनिक, जिसे मिलिट्री क्रास मिलनेवाला था और एक प्रतिभाशाली लेखक भी-सिर्फ श्रीमती जी की निगाहों में। करीब एक घण्टा और लगा श्रीमती जी को यह विश्वास दिलाने में कि मुझे कोई क्रास मिलनेवाला नहीं है। लेकिन अब श्रीमती जी ने उस झूठे को मेरी कल्पना की सजीवता कहा और मेरे प्रतिभाशाली लेखक होने में उन्हें कोई सन्देह न रह गया। मैंने धन्यवाद दिया उस पत्र को।

सन्तुलित बजट

श्री अवनीन्द्रकमार विद्यालङ्कार

भारत का आर्थिक पोत तूफानों और आँधियों को पार कर शान्त सागर के बीच आ गया है। भारत का १९४९-५० का सन्तुलित बजट इसका एक प्रमाण है। पिछले दस सालों में भारत का बजट घाटे का रहा है। इस बजट के साथ आशा करनी चाहिए कि उस पर दीर्घ काल के लिए पटाक्षेप हो गया है। भारतीय आर्थिक तन्द्रा के लिए यह नवीन आशा और नूतन जीवन का वर्ष है।

पिछले साल आय-व्यय का अनुमान इस प्रकार किया गया था :—

(करोड़ रु०)

आय	२५५.२४
व्यय	२५७.३८

अब संशोधित अनुमान किया गया है :—

(करोड़ रु० में)

आय	३३८.३२
व्यय	३३६.३७

दोनों में अन्तर क्रमशः ८३.०८ करोड़ रु० ८२.४६ करोड़ रु० का है। आय-व्यय की ओर बजट में ३३ प्रतिशत की गलती ठीक बजट का द्योतक नहीं है। अनुमान में इतनी भारी भूल होना स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। इसका एक अर्थ है कि अर्थ-विभाग का व्यय पर और अन्य विभागों पर उचित नियन्त्रण नहीं है। अर्थमन्त्री डा० जान मथाई का यह कहना कि काश्मीर-युद्ध व हैदराबाद की पुलिस कार्रवाई के व्यय का उस समय अनुमान नहीं किया जा सकता था, ठीक नहीं है। इन दोनों के कारण ३४-३५

करोड़ रु० की सैनिक-व्यय में वृद्धि हुई है। यह खर्च अनावश्यक था, यह कोई नहीं कहता पर पिछले साल बजट के समय काश्मीर-युद्ध को चलते हुए छः मास हो गए थे। जूनागढ़ के बाद हैदराबाद में भी वैसी कार्रवाई की सम्भावना बनी हुई थी। इसलिए इन दोनों व्ययों का अनुमान बजट के समय किया जा सकता था। मुल्की खर्च ४८ १४ करोड़ रु० आनुमानिक व्यय से अधिक हुआ है। मितव्ययिता और खर्च घटाने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया, यह इससे प्रकट है। सबसे बड़े आश्चर्य की तो बात यह है कि ५६ करोड़ रु० का व्यय जनता और पार्लमेंट के सामने साल भर आया ही नहीं। जब आनुमानिक व्यय से अधिक व्यय हो रहा है तब सरकार को उसके लिए पार्लमेंट की स्वीकृति लेनी चाहिए पर इस नियम का पालन नहीं किया गया।

क्या सन्तुलित है—१९४९-५० के व्यय का यह कहकर स्वागत किया गया है कि यह सन्तुलित बजट है पर यथार्थ सत्य इससे भिन्न है। निश्चय से यह सन्तुलित बजट है, यह एक आंशिक सत्य है क्योंकि पूँजीगत बजट का इसमें समावेश नहीं किया गया है। आयगत बजट में ४५ लाख रु०—नई विज्ञप्ति के अनुसार ४६ लाख रु० साधारण बचत के कारण इसको सन्तुलित बजट कहना ठीक नहीं है। पूँजीगत बजट में १३४·१ करोड़ रु० की कमी वैसे ही छोड़ दी गई है और उसको पूरा करने का कोई यत्न नहीं किया गया है। आय और पूँजीगत दोनों बजटों को यदि एक साथ जोड़कर देखा जाए तो बजट १३३·६५ करोड़ रु० की सीमा तक असन्तुलित है। १४·३६ करोड़ के आयगत घाटे को पूरा करने का सब तरह से प्रयत्न किया गया है पर पूँजीगत १३४·१ करोड़ रु० के अन्तर को पूरा करने की कोई कोशिश नहीं की गई है। यह राजस्व की उपेक्षा है। इसके सिवाय इसको इस प्रकार छोड़ देने का और क्या कारण दिया जा सकता है?

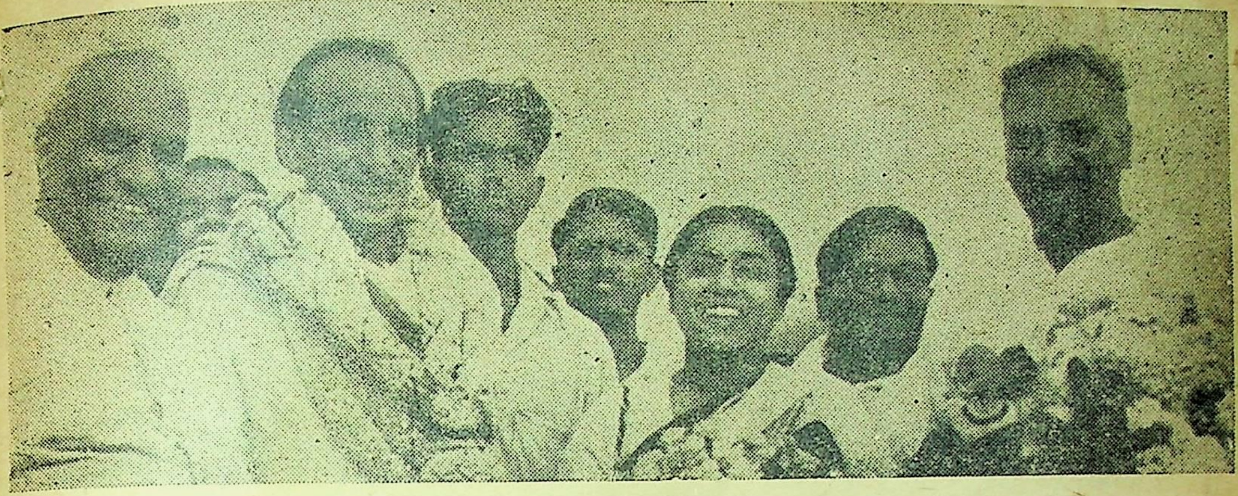
मुद्रास्फीति के विरुद्ध—डा० मथाई का बजट मुद्रास्फीति के विरुद्ध दृढ़ मोर्चा बताया गया है। क्या यह दावा सत्य है? सचाई यह है कि जब तक सरकार के वर्त्तमान खर्च में कमी न होगी और आज के समान वह बना रहेगा, उस समय तक उसको पूरा करना एक ही उपाय से सम्भव है। वह है मुद्रास्फीति के उपाय से। १९४८-४९ में जकात और आयकर ने सरकार की सहायता की है। इसके कारण घाटा बहुत कम रह गया है। अन्यथा संकट-पूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती। १९४८-४९ में मूल बजट की अपेक्षा सरकार ने ८३ करोड़ रु० अधिक व्यय किया है पर पूँजीगत बजट में मूल बजट में जहाँ ११२·५७ करोड़ घाटे का अनुमान था, वह अब बढ़कर १८५·०६ करोड़ रु० हो गया है। मुद्रास्फीति को रोकने का प्रथम उपाय यह है कि बजट सन्तुलित हो। घाटा शेष न रखा जाए। अर्थमन्त्री ने, जहाँ तक आयगत घाटे का प्रश्न है, इसको पूरा कर दिया है। पर पूँजीगत व्यय को सन्तुलित करने का यत्न नहीं किया गया। सम्भवतः इसका कारण राजनीतिक है। पार्लमेंट और प्रान्तिक धारासभाओं का चुनाव सम्भवतः १९५१ में होगा। जन-मंगल की योजनाओं को ऐसे समय रोकना सम्भव नहीं है। इसलिए नासिक के नोट छापनेवाले प्रिंटिंग प्रेस को अविराम गति से चलते रहना है क्योंकि वोट पर आश्रित रहनेवाली गवर्नमेंट इस पक्ष की उपेक्षा नहीं कर सकती है पर क्या कोई गवर्नमेंट विशाल परिमाण में व्यय दिखाकर ही जनता का वोट प्राप्त कर सकती है?

पिछले दस साल—१९३९-४० के बजट में केवल ३ लाख की बचत का अनुमान किया गया था। संशोधित बजट में वह बढ़कर ६१ लाख रु० हो गई पर वस्तुतः बचत ७-८ करोड़ रु० की हुई। बात यह है कि १९४२-४३ तक महायुद्ध का पूर्ण प्रभाव भारतीय बजट पर नहीं पड़ा था पर खर्च बढ़ता गया। इसके साथ आय भी बढ़ी। यथा:—

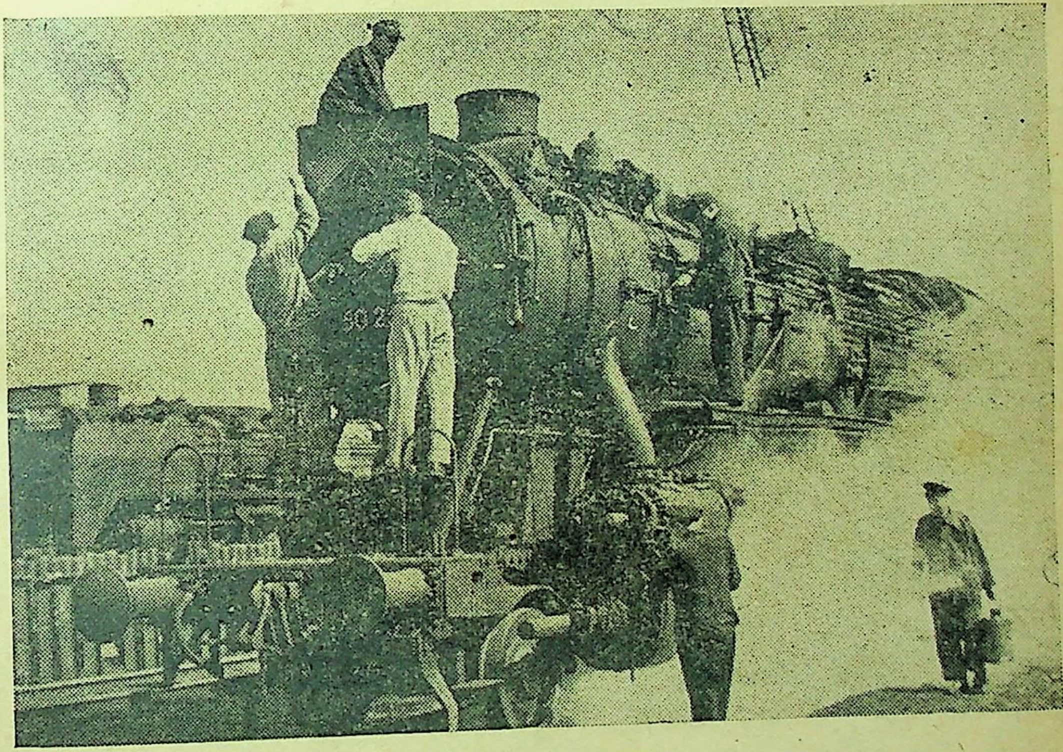
	(करोड़ रु० में)
१९३९-४०	९४·५७
१९४०-४१	११४·१८
१९४१-४२	१४७·२६

पर आय भी बढ़ती गई। नए कर लगाए गए। लड़ाई के कारण व्यापार-व्यवसाय में तेजी आई। फलतः १९४०-४१ में ९४·३ प्रतिशत और १९४१-४२ में ९१. ४ प्रतिशत खर्च पूरा किया जा सका। राष्ट्रीय ऋण में इसके कारण विशेष वृद्धि नहीं हुई। इन तीन वर्षों में राष्ट्रीय ऋण इस प्रकार रहा:—

लङ्का में भारतीय नेता



पिछले दिनों लङ्का के भारतीयों की समस्या को लेकर वहाँ की भारतीय राष्ट्रीय सभा ने एक सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें भारत के प्रमुख नेता श्री गिरि, श्री कृपलानी, श्रीमती सुचिता कृपलानी आदि ने भाग लिया। उक्त अवसर का एक दृश्य चित्र में अंकित है।



बर्लिन-समस्या

रूस ने बर्लिन के आवागमन पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, जिससे विश्व के प्रमुख राष्ट्रों के सम्मुख कठिन समस्या उपस्थित हो गई थी। अब रूस ने स्वयं ही उक्त प्रतिबन्ध को हटा दिया है। इससे विश्व के तनातनीपूर्ण वातावरण में बहुत कुछ सुधार हुआ है। चित्र में प्रतिबन्ध के उठने पर पहली गाड़ी बर्लिन-पथ पर जाने को उद्यत दिखाई दे रही है।

जगन्नाथपुरी में

हिंदुओं के तीर्थों में पुरी का स्थान अनूठा है। यही वह स्थान है, जहाँ आज भी हिंदू-समाज के वास्तविक संगठन की झलक देखने को मिलती है। वर्णभेद की विषम समस्या का निराला समाधान यहीं दृष्टिगत होता है।



नीचे—पुरी का बाजार। यहा खाने-पीने को सभी प्रकार की सामग्री मिलती हैं और हिंदू बिना किसी भेदभाव के उसे उपयोग में लाते हैं।



(करोड़ रु० में)

१९३९-४०	१२०३·८६
१९४०-४१	१२४७·६७
१९४१-४२	१२०९·२१

नए कर इस काल में जो लगाए गए, वे सब प्रत्यक्ष कर थे। मार्च १९४० में अतिरिक्त आयकर ५० प्रतिशत लगाया गया। नवम्बर १९४० के पूरक बजट में सुपरटैक्स कार्पोरेशन टैक्स (निगम कर) समेत सब आयकरों पर २५ प्रतिशत सरचार्ज (अधिभार) मार्च १९४१ में अतिरिक्त आयकर बढ़ाकर ६२३ प्रतिशत कर दिया गया और आयकर और सुपर टैक्स पर केन्द्रीय अधिभार (सरचार्ज) बढ़ाकर ३३ प्रतिशत कर दिया गया। अप्रत्यक्ष करों में खाँड पर उत्पादबलि (एक्साइज ड्यूटी) १ रु० हण्डरवेट से ३ रु० हण्डरवेट कर दिया गया और आयातकर भी इसी के समान बढ़ा दिया गया और मोटरस्प्रिट पर आयातकर १० आना से १२ आना कर दिया गया। १९४१-४२ में दियासलाई पर उत्पादबलि (एक्साइज ड्यूटी) दुगनी कर दी गई। नकली रेशमी सूत और धागे पर क्रमशः ८ आना और ५ आना लगाई गई और पहली बार न्यूमेटिक ट्यूब और रबड़ टायर पर उत्पादबलि १० प्रतिशत के रेट से लगाई गई पर विदेशी व्यापार, विशेषतः आयात व्यापार, कम हो रहा था। इस कारण जकात (निराक्रम्य कर) में कमी हो रही थी। भारत सरकार के व्यावसायिक विभाग केन्द्रीय कोष बड़ी मात्रा में अंशदान दे रहे थे। भारत सरकार की आय के स्रोतों में इन वर्षों में किस प्रकार का परिवर्तन आया, यह निम्न तालिका से स्पष्ट है :—

(करोड़ रु० में)

	१९३८-३९	१९४०-४१	१९४१-४२
निराक्रम्य कर (जकात)	४०·५१	३७·३०	३७·८९
केन्द्रीय उत्पादबलि	८·६६	९·४६	१३·१५
निगम (कार्पोरेशन) कर	२·०४	४·१४	११·६६
			(७·०२)
अतिरिक्त आय-कर	...	...	
आय-कर	१५·२४	२१·७९	३२·४०
			(१·६७)
अतिरिक्त आयकर			
टकसाल	०·५८	२·१३	३·४०
(रिजर्व बैंक का लाभ)	०·२०	(१·९४)	(२·४५)
रेलवे का अंशदान	१·३७	१२·१६	२०·१७
डाक-तार	०·१९	१·२५	३·४१
कुल कर-आय	७३·८४	७९·६६	१०३·२६
कुल कर-आय में कुल आयकर का प्रतिशत	२३	३३	४५

(आयकर-आय में प्रान्तों का अंश भी सम्मिलित है, यह न भूलना चाहिए।)

१९४०-४१ में मुद्रास्फीति के चिह्न दीखने लगे थे। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट से युद्ध-व्यय मद में १९३९-४० में ४ करोड़ रु० ही मिले थे पर अगले साल यह राशि ५३ करोड़ रु० हो गई और १९४१-४२ में यह १९४ करोड़ रु० हो गई। इस बड़े खर्च को पूरा करने के लिए न कोई नया कर लगाया गया और न कर्ज लिया गया। सरकारी कुल व्यय में आय का अनुपात बराबर घटता गया। १९३९-४० में यह ९५·९ प्रतिशत था, पर १९४०-४१ में ६४·४ प्रतिशत और १९४१-४२ में ३९·४ प्रतिशत ही रह गया। मार्च १९४२ को ४२१·०६ करोड़ रु० के नोट चलन में थे, जब कि एक साल पहले अन्तिम शुक्रवार मार्च १९४१ को २५२·२१ करोड़ रु० के नोट ही चलन में थे। मुद्रास्फीति के कारण उत्पन्न अन्तर दृष्टिगोचर होने लगा था।

दूसरा अध्याय—१९४२-४३ से १९४५-४६ तक का युद्ध-काल भारतीय बजट में दूसरा अध्याय उत्पन्न करता है। सरकार का व्यय-विशेषतः समर-व्यय उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। इसको करों और कर्ज दोनों उपायों से पूरा करने पर सारी सरकारी शक्ति जुटी हुई थी। ७ दिसम्बर १९४१ को जापान ने पर्लहारबर पर बमवर्षा की। इसके साथ मलाया और बर्मा में भी युद्ध छिड़ गया। एशिया में जली युद्ध-ज्वालाओं के बीच भारत अछूता न रह सका। १९४२ में १५०० रु० से अधिक की आय पर आय-कर लगाया गया। २००० रु० से अधिक आमदनी पर सरचार्ज (अधिभार) ३३ प्रतिशत से ५० प्रतिशत कर दिया गया। निगम-कर (कार्पोरेशन टैक्स) प्रति रु० १ आना और उससे अगले साल २ आना प्रति रुपया कर दिया गया। २५००० रु० से ३·५ लाख रु० की आय पर लगे सुपरटैक्स पर अधिभार २ आना और बढ़ा दिया गया। १९४३ में पुनः २००० रु० से कम आय पर आय-कर नहीं लगाया गया। एक आर्डिनेंस (अध्या-

देश) अतिरिक्त आयकर के सम्बन्ध में बताया गया कि कर-योग्य मात्रा का २० प्रतिशत वापस दिया जाएगा। आय-कर अगाऊ जमा करने का भी नियम किया गया। इस प्रकार प्रत्यक्ष करों के सब स्रोतों को सब तरह से सोख लिया गया। मार्च १९४५ में केवल एक प्रत्यक्ष कर लगाया गया। इससे पहले ३५००० रु० से अधिक आय पर ३ आना सुपरटैक्स लगाया जा चुका था पर अवितरित लाभ पर १ आना रिबेट दिया जाना तै किया था। १९४५ में १५००० रु० से अधिक की आय पर अधिभार (सरचार्ज) बढ़ाया गया। अतिरिक्त आय-कर ६६⅔ प्रतिशत ही बना रहा।

१९४२-४३ में डाक-तार-टेलीफोन की दर बढ़ा दी गई। कपास, नमक और पेट्रोल को छोड़कर सब आयात वस्तुओं पर २० प्रतिशत अधिभार बढ़ा दिया गया। मोटर स्प्रिट पर प्रति गैलन ३ आना उत्पाद बलि (एक्साइज ड्यूटी) और जकात (निराकाम्य कर) बढ़ा दिया गया। १९४३-४४ में डाक-तार के रेट और बढ़ाए गए और तम्बाकू और वनस्पति घी पर उत्पादबलि (एक्साइज ड्यूटी) लगाई गई। इससे अगले साल १९४४ में स्प्रिट, तम्बाकू, सिगार और सिगरेट पर अतिरिक्त बलि बढ़ाई गई, और सुपारी, चाय और काफी पर नई उत्पादबलि (एक्साइज ड्यूटी) लगाई गई। मार्च १९४५ में फ्लू क्योर्ड तम्बाकू एक्साइज ड्यूटी (उत्पादबलि) और बढ़ाई गई। इन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के फलस्वरूप महायुद्ध-काल के दूसरे पर्व में भारत सरकार की आय के विभिन्न स्रोतों से हुई आय का निम्न सारिणी से विवरण मालूम होगा :—

चरम सीमा पर—महायुद्ध के दूसरे पर्व में १९४४-४५ के अन्दर प्रत्यक्ष कर चरम सीमा पर पहुँच गए। १९३८-३९ में प्रत्यक्ष करों से कुल कर-आय का २२.६ प्रतिशत आय थी पर १९४४-४५ में ६८.१० प्रतिशत पहुँच गई। १९४५-४६ से इसका परिमाण घटने लगा। उत्पाद बलि और रेल डाक-तार भी आय के प्रधान स्रोत रहे। १९३८-३९ में करों से कुल आय ७६ करोड़ रु० थी पर १९४५-४६ में ३११.३६ करोड़ थी। १९३८-३९ में करों की कुल आय राष्ट्रीय आय का ४ प्रतिशत थी पर १९४५-४६ में ८ प्रतिशत से कुछ अधिक थी पर आमदनी खर्च के मुकाबले कम थी। १९४१-४२ से १९४५-४६ के बीच व्यय तीन गुणा बढ़ गया। १४७.२६ करोड़ रु० ४८४.५७ करोड़ रु० हो गया। १९३९ की अपेक्षा छः गुणा व्यय बढ़ गया। सैनिक-व्यय उत्तरोत्तर बढ़ता गया। १९३८-३९ में कुल व्यय का सैनिक व्यय ५४.२ प्रतिशत था १९४१-४२ में ७०.६ प्रतिशत और १९४३-४४ में ८१.१ प्रतिशत हो गया। १९४५-४६ में पुनः वह घटने लगा और ७४.३ प्रतिशत हो गया। १९४२-४३ से आय से व्यय पूरा करने के अनुपात में बराबर कमी होती गई। १९४१-४२ में आय द्वारा ६१.४ प्रतिशत व्यय पूरा किया जाता था पर १९४३-४४ में ५७ प्रतिशत ही रह गया। फिर बढ़ा और १९४५-४६ में ७५.४ प्रतिशत हो गया। फलतः बजट में घाटा उत्तरोत्तर बढ़ता गया। यथाः—

(करोड़ रु० में)

			२७९.८४
१९४०-४१	६.५३	१९४१-४२	११२.६६
१९४२-४३	११२.१७	१९४३-४४	१८९.७८
१९४४-४५	१६१.१४	१९४५-४६	१२३.९०
जोड़	२७९.८४	कुल योग	७०६.२१

(करोड़ रु० में)

	१९४२-४३	१९४३-४४	१९४४-४५	१९४५-४६
निराकाम्य कर (जकात)	२५.१२	२६.२०	३९.७१	७३.६१
उत्पादबलि	१२.७५	२७.४२	३८.१४	४६.३६
निगम (कार्पोरेशन) कर	३१.४०	५१.४५	८४.२२	७५.७३
अतिरिक्त आय-कर	(२२.४०)	(३९.८६)	(५७.४४)	(६८.३३)
आय-कर	५४.३६	७७.६६	१०७.०२	१०२.३०
अतिरिक्त आय-कर	(३.६०)	(१३.७१)	(२४.६७)	(११.१६)
टकसाल	५.२५	६.६७	१२.४६	१६.७५
(रिजर्व बैंक का लाभ)	(३.२४)	(७.५०)	(१०.०७)	(१४.६६)
रेलवे का अंशदान	२०.१३	३७.६४	३२.००	३२.००
डाक तार	४.५२	९.०३	१०.२५	११.३१
कुल कर-आय में कुल आयकरों का अनुपात	६४.००	६६.८०	६८.१०	५७.२०

(आय-करों की आय में प्रान्तों का भाग सम्मिलित है।)

इन छः वर्षों का ७०६.२१ करोड़ रु० का घाटा इन वर्षों की कुल आय के आधे से कुछ अधिक है। इस घाटे को पूरा करने के लिए जून १९४० में डिफेन्स-लोन का प्रोग्राम शुरू किया गया। इस प्रकार निम्न धन प्राप्त हुआ :—

	(करोड़ रु० में)
१९४०-४१	८५.९६
१९४१-४२	६४.६२
१९४२-४३	१००.६८
१९४३-४४	३४१.४९
१९४४-४५	२६६.६३
१९४५-४६	३७६.६४
कुल	१२३५.६४

कर और ऋण के इस विशाल प्रोग्राम के बाद भी मुद्रास्फीति को सरकार रोकने में विफल रही। १९३९-४० से १९४५-४६ तक सरकार का कुल व्यय ३९४५.८० करोड़ रुपया हुआ और उसको आय हुई १४६१.६७ करोड़ रुपया। दूसरे शब्दों में सरकारी व्यय का ३६.६ प्रतिशत आय से पूरा किया गया। राष्ट्रीय ऋण में इस काल के अन्दर १०७६.६२ करोड़ रु० की वृद्धि हुई। इसका अर्थ है कि सरकार की आय और कर्ज में १४५१.३१ करोड़ रु० का अन्तर था। इस अवधि में ब्रिटिश गवर्नमेंट से सरकार को युद्धव्यय का १७३६.७३ करोड़ रु० मिलना था। इससे प्रकट है कि युद्धव्यय का जो भाग ब्रिटिश गवर्नमेंट से मिला, उसका कोई भाग भारतीय कोष में नहीं आया। प्रत्यक्ष करों की वृद्धि का कारण ढूँढ़ने के समय इस बात का ख्याल रखना चाहिए।

युद्धोत्तर काल में—इस पार्श्वभूमि को ध्यान में रखकर शान्तिकाल का पहला १९४६-४७ का बजट देखना चाहिए। उद्योगों और कम आय के लोगों को इस बजट में रियायतें दी गईं। अतिरिक्त आय-कर हटा दिया गया। कम्पनियों-द्वारा आयकर पर दिया जानेवाला सुपर-टैक्स १॥ आना कर दिया गया। आय का अनुमान २९९.४९ करोड़ रु० किया गया था जब कि इससे पिछले साल ३१३.०२ करोड़ रु० किया गया था। कुल आय में आय-करों का भाग ६०.४ से घटकर ५४.७ प्रतिशत रह गया। बजट में ४४ करोड़ रु० का घाटा बना रहने दिया गया। यद्यपि १९४५-४६ में व्यय जहाँ ५०५.६१ करोड़ रु० था, वहाँ १९४६-४७ में ३५५.७१ करोड़ रु० ही रह गया था। सर आर्चीबाल्ड रालैण्ड ने उद्योगों को रियायत इस ख्याल से दिया था कि मन्दी आनेवाली है पर यह अनुमान गलत निकला। पर कर-क्षमता समाप्त होगई थी, यह धारणा गलत नहीं थी। पर १९४६-४७ में इस नीति में सर्वथा परिवर्तन होगया। फाइनान्स एक्ट १९४७ में उद्योगों पर भारी भार डाला गया। यह भार उस समय पड़ा जब महंगी बढ़ रही थी, उत्पादन-व्यय बढ़ रहा था, श्रम-अशान्ति उग्र रूप धारण कर रही थी और राजनीतिक स्थिति अस्थिर थी और बराबर बदल रही थी। इस स्थिति में लियाकत-बजट ने भय और घोर निराशा का संचार किया। वातावरण एकदम बदल गया। व्यवसाय लाभ-कर २५ प्रतिशत, पूंजी लाभ-कर, कार्पोरेशन (निगम) कर दुगना किया गया। सुपर-टैक्स में क्रमिक वृद्धि की गई। कर बढ़ाने पर भी २९.४६ करोड़ रु० का घाटा पूरा किए वगैर छोड़ दिया गया। मुद्रास्फीति को बढ़ाने-वाले तत्व अनुत्पादक व्यय को घटाने की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया। १९४७-४८ की बजट-नीति शरारत भरी सिद्ध हुई। १९४८-४९ के बजट में पिछले साल हुए नुकसान की भरपाई करने और बाजार में विश्वास उत्पन्न करने का यत्न किया गया। व्यवसाय लाभ-कर की दर घटाई गई और पूँजी लाभ-कर हटा दिया गया। इससे बाजार में अवश्य कुछ विश्वास उत्पन्न हुआ पर मुद्रास्फीति का प्रतिरोध और निरोध नहीं हुआ। मुद्रास्फीति-निरोधक प्रोग्राम का इस दिशा में आरम्भ भी नहीं किया गया है, यह निम्न सारिणी से स्पष्ट है :—

(करोड़ रुपयों में)

	१९४६-४७	१९४७-४८	१९४८-४९	१९४९-५०
	(संशोधित)	(संशोधित)	(संशोधित)	(बजट)
आय	३६६.१९	१७८.७७	३२८.३२	३२२.६८
व्यय	३८१.४८	१८५.२९	३३९.८७	३२२.५३
(सैनिक	(२४०.११)	(८६.६३)	(१०८.५२)	(१५७.३७)
बचत या घाटा	–४५.२९	– ६.५२	–१.५५	०.४५

(१६४७-४८ का यहाँ दिया बजट ७॥ मास का १५ अगस्त १६४७ से ३१ मार्च १६४८ तक का है)

इस साल के इस संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि बजट-नीति का निर्माण राष्ट्रीय आवश्यकता को ध्यान में रखकर नहीं किया गया। इस सिंहावलोकन को ध्यान में रखते हुए १६४६-५० के बजट के कर-प्रस्तावों पर दृष्टि-पात करना चाहिए।

कर-प्रस्ताव—कर-प्रस्तावों की जाँच करने की एक कसौटी है। ये किस मात्रा में आर्थिक पतन को रोकने में समर्थ हैं। यह मान लिया गया है कि प्रत्यक्ष-कर की सीमा पार हो चुकी है। अप्रत्यक्ष करों, विशेषतः जकात (निराक्राम्य कर) से आय और बढ़ सकती है, यह सन्दिग्ध है। इसलिए बजट में बचत करने का एकमात्र तरीका खर्च में कमी करना है। सरकार ५० करोड़ व्यय अपना सरलता से कम कर सकती है। यह बचत शासन-प्रबन्ध, सेना और अन्न-सहायता के व्यय में कमी करके की जा सकती है।

इस वर्ष बजट में ५.३५ करोड़ रु० का रिलीफ दिया गया है। पूंजी लाभ-कर मिटाने से शेयर बाजार में दृढ़ता और उत्साह नहीं आया है। १०००० रु० से कम आय-वालों को जो साधारण राहत दी गई है, उसके लिए मध्यम वर्ग सरकार का कृतज्ञ न होगा। आय-कर की सर्वोच्च दर एक रुपए में १४ आना करने से सर्वोच्च आम-दनी के समूह को उत्तेजना मिलेगी, यह लक्षणों से नहीं मालूम देता पर ये मामूली परिवर्तन हैं।

खांड पर उत्पादबलि (एक्साइज ड्यूटी) १२ आना हण्डरवेट कर दी गई है। इसका विपरीत परिणाम होगा। पाकिस्तान का चीनी-बाजार भारत ने खो दिया है। इससे १.५ करोड़ ही आय होगी। चीनी के मंहगी होने से उसकी खपत कम होगई है। उसका स्टाक बढ़ रहा है। देश के अन्दर भी उसकी खपत बढ़ नहीं रही है। सुपारी पर आयात-कर लगाया गया है। इससे देश के उत्पादकों को प्रोत्साहन मिलेगा पर इससे आय १ करोड़ रु० होगी। टायर पर उत्पादबलि लगाने से ७० लाख रु० की आमदनी होगी। मोटर-स्प्रिट पर कर बढ़ाने से २.५५ करोड़ रु० आय होगी पर इससे औद्यो-गिक उत्पादन का व्यय बढ़ जाएगा।

कपड़े पर उत्पादबलि लगाना अपनी आय में एक ऐतिहासिक घटना है। जिस कर को हटाने के लिए वर्षों आन्दोलन किया गया, उसका स्वतंत्र भारत में पुनः लगना वस्तुतः आश्चर्यजनक है। इस समय उत्पन्न सारा कपड़ा वर्तमान बाजार-भाव पर न बेचा जा सकेगा। इस कारण यह नया कर और अधिक बाजार में अव्यवस्था उत्पन्न करेगा। कपड़े की कीमत बढ़ने से मुद्रास्फीति को बल मिलेगा या नहीं, इस विषय में विशेषज्ञ एकमत नहीं हैं। अन्न और वस्त्र के दाम साथ-साथ चलते हैं, यह निर्विवाद नहीं है। पर यह सत्य है कि कपड़े का दाम बढ़ने से उसकी बिक्री रुक जाएगी। इससे जन-साधारण के लिए कपड़ा सस्ता न होगा। वस्त्र-उत्पादन बढ़ेगा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। इस अवस्था में कपड़े पर उत्पाद-बलि लगाने से किसको लाभ पहुँचेगा, यह कहना कठिन है। इसी प्रकार कार्ड का दाम तीन पैसा करना और लिफाफा दो आना करना भी दूरदर्शितापूर्ण नहीं हुआ है। हवाई मार्ग से २५ प्रतिशत ही कार्ड जा सकेंगे। साधारण जन पर यह भार अनावश्यक रूप से भारी है। इससे अधिक अच्छा यह होता कि भावना का ध्यान न करके नमक कर पुनः लगा दिया जाता। यह प्रति व्यक्ति एक पाई भी नहीं पड़ता पर इससे ६ से ११ करोड़ रु० की आय निश्चित है।

खर्चीला शासन—ब्रिटिश शासन-काल में इस देश के अन्दर जो शासन मैशीनरी स्थापित की गई, वह बहुत खर्चीली और भारी भरकम थी। वह युद्धकाल में और अधिक बढ़ गई है। युद्ध समाप्त होने के चार साल बाद भी उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आई है। केन्द्रीय सरकार का मुल्की खर्च ४८.१४ करोड़ रु० पहुँच गया है। १६३७–१६४७ तक मुल्की खर्च किस प्रकार बढ़ता गया है, यह निम्न सारिणी से प्रकट है:—

(नागरिक खर्च का विश्लेषण)

१९३२-१९४७

वर्ष	साधारण शासन-प्रबन्ध	आंकेक्षण (आडिट)	न्याय	जेल	पुलिस	परराष्ट्र	विज्ञान-विभाग	शिक्षा, स्वास्थ्य-चिकित्सा	कृषि, पशु-चिकित्सा-सहयोग	उद्योग व सप्लाई	ब्राडकास्टिंग	विविध	योग
१९३८-३९	१८७	९९	१०	२४	२६	६४	६७	६०	६१	२३	२१	४४५	१०६०
१९३९-४०	१९४	९७	१०	२६	३४	७०	६५	५६	५२	२२	२५	४५५	१११२
१९४०-४१	२०३	९९	१०	३३	४२	७०	६६	८०	५४	२०	३०	५३५	१२४४
१९४१-४२	२२३	९३	९	३०	६७	७८	६८	६७	७३	५	५०	५५८	१३२१
१९४२-४३	२६६	८३	१६	१२	२०४	१०१	५७	७७	१६६	—	६१	६२२	१६७६
१९४३-४४	३३१	१०३	११	१०	२६७	११३	५८	८६	२३२	—	५८	५६६	१८७८
१९४४-४५	४२४	११६	१५	१०	२७१	११४	१३२	१०५	२५६	—	६५	७८८	२४०२
१९४५-४६(बजट)	४८५	१३२	१८	२०	२६१	११६	१३०	१२०	२३५	—	६४	१११८	२७५५
१९४५-४६ संशो०)	५३६	१५०	२१	२१	२८८	१३६	१४२	१३१	२६५	—	९०	११९९	२९९५
१९४६-४७(बजट)	५६४	१५४	१७	६	१२५	१५६	२२२	२५३	२२६	२९५	९९	१२४७	३५००

दस सालों में मुल्की शासन का व्यय बढ़कर चार गुणा हो गया है। क्या इस वृद्धि के अनुपात में जनता को अधिक शासनसुविधाएँ प्राप्त हुई हैं। १९३९ की अपेक्षा कीमतें बढ़ गई हैं। पर क्या शासन के कार्यों में कोई नई वृद्धि हुई है? शरणार्थी और पुनर्वासन का एक नया काम अवश्य बढ़ा है। इसके अतिरिक्त सरकार के कार्यों में कोई नई वृद्धि नहीं हुई है। पाकिस्तान के अलग बन जाने से केन्द्रीय मुल्की शासन-व्यय एक चौथाई घट जाना चाहिए था। पर ऐसा नहीं हुआ है। १९४६-४७ में संयुक्त भारत के मुल्की-शासन का व्यय १३ करोड़ रु० था। अब इससे १३ करोड़ रु० अधिक है। १९४२-४३ के बाद से विशेषज्ञों के मत में राष्ट्रीय आय बढ़ी नहीं है बल्कि घटी है। इस अवस्था में शासन-व्यय बढ़ाना क्या बुद्धिमानी हुई है? प्रति व्यक्ति अन्न की खपत ३८८ पौं० से घटकर ३५७ पौं० रह गई है। और कपड़ा प्रति व्यक्ति १६ गज से घटकर ११॥ गज रह गया है। इस अवस्था में शासन-व्यय को बढ़ाना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? छटनी कमेटी की सिफारिशों को 'ठण्डागार' में रख दिया गया है। एक फाइल को देखने के लिए छः सेक्रेटरी नियुक्त करना घोर अपव्यय है। यह दो से सम्भव है। मुल्की शासन-व्यय में कम-से-कम १० करोड़ रु० की कार्यक्षमता घटाए बगैर कमी करना सम्भव है।

सैनिक-व्यय—जब विश्व दो भागों में विभक्त है, अटलाण्टिक पैक्ट ने मार्शल वैसिलेवस्की के शब्दों में शान्ति के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया है, शस्त्रीकरण की दौड़ और अणु बम की खोज में होड़ प्रारम्भ हो गई है, युद्ध के बादल सिर पर गरज रहे हैं, और महाविनाश और महासंहार सामने खड़ा है, उस समय क्या कोई देश सैनिक-व्यय में कमी करने का विचार भी क्या कर सकता है? भारत जैसा देश, जिसके पास नाम लेने योग्य न नौ सेना है और न हवाई सेना है, क्या सैनिक-व्यय में कमी कर सकता है? हिन्द महासागर की लहरों और आकाश पर आज भारत का राज्य नहीं है। इस अवस्था में सैनिक-व्यय में क्या कमी करना सम्भव है? फिर भी अन्य देशों की तुलना में भारत सेना और राष्ट्ररक्षा पर अपनी आय का कितना भाग खर्च करता है, देखना अप्रासंगिक न होगा।

बड़े तीन राष्ट्रों की स्थायी सेना, सैनिक खर्च और हवाई-सेना का व्यय

सेना का अनुपात

नाम देश	जनसंख्या		क्षेत्रफल		राष्ट्रीय व्यय का सैनिक व्यय से अनुपात
	कुल जनसंख्या	सेना का अनुपात	कुल क्षेत्रफल	प्रति भू भाग एक सैनिक	
ईकाई	०००	प्रतिशत	००० वर्गमील	वर्गमील	प्रतिशत
संयुक्तराष्ट्र अमरीका	१४२६५६	०·३८	३६२४	६·६८	२५ (२७८७० लाख डालर)
सोवियत रूस	१९३०००	०·९८	८३०९		१७ (२० सैनिक-व्यय का अनुपात)
ब्रिटेन	४८४१८	...	९४	४·३७	१३ ८५४४ लाखडालर

(कोष्टक में दिए गए अंक हवाई सेना का व्यय है)

यह उन राष्ट्रों का सैनिक-व्यय है, जिनके कन्धों पर विश्व-शान्ति की रक्षा का भार है और जिनके लड़ने से विश्व पुनः युद्धानल की ज्वालाओं में भुन सकता है। इनके अनुवर्त्ती राष्ट्रों का सैनिक-व्यय भी इस दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। तब हम आसानी से किसी निर्णय पर पहुँच सकेंगे कि भारत की आय का कितना भाग सैनिक-व्यय पर खर्च होना चाहिए; निम्न सारिणी से इस पर विशद प्रकाश पड़ेगा :—

	कुल आबादी (हजार में)	कुल का अनुपात (सेना प्रतिशत)	क्षेत्रफल (वर्गमील)	विस्तार के अनुपात में सैनिक	राष्ट्रीय व्यय में सैनिक व्यय का अनुपात
अर्जेण्टाइन	१६१०९	०·६	१०८०	१०·००	३८
आस्ट्रेलिया	७५८१	१·४	२९७५	२७·००	३०
बेल्जियम	८३४५	०·७५	१२	०·२०	१०
ब्राजील	४१३५७	०·०२	३२८५	४०·००	४२
कनाडा	१२५८२	०·१५	३६९०	१९२·००	१२
चीन	४७००२६	१·३९	४३७८	०·६६	८०
चेकोस्लोवाकिया	१२१७१	१·३	४९	०·३०	२०
डेन्मार्क	४०४५	०·५३	१७	०·६९	१३
मिश्र	१९०९०	०·०८	३८३	३·८३	१०
फ्रांस	४०५१८	१·५	२१३	०·४२	३२
ग्रीस	७५००	२·२	५२	०·३३	३५
भारत	२३८१६२	०·२४	१२२०	१·०५	४७
नीदरलैण्ड	९६३६	१·७	१३	०·०७	२५
नार्वे	३१६४	०·४७	१२५	८·३०	८
पाकिस्तान	७४१८२	०·४७	३६१	१·४३	५५
पोलैण्ड	२३६२२	०·८५	१२१	०·६०	२५
स्पेन	२७३७४	१·८	१९०	८·३०	८
स्वीडन	६७१९	०·८५	१७३	०·४	४०
स्विटजरलैण्ड	४५०६	१·०	१६	०·३	२५
तुर्की	१८८६१	१·१	२९७	१·६	५०
युगोस्लेविया	१६२६१	५·०	९६	०·१२	२५

चीन और ग्रीस गृह-युद्ध में फंसे हुए हैं, अतः उनके युद्धव्यय को मापदण्ड मानना ठीक न होगा। स्विटजरलैण्ड एक तटस्थ राष्ट्र है पर वह अपनी आय का २५ प्रतिशत सेना पर व्यय कर रहा है। स्वीडन सोवियत रूस का पड़ोसी है और पिछले दो महायुद्धों के समान तटस्थ रहना चाहता है। फलतः वह राष्ट्रीय व्यय का ४० प्रतिशत सेना पर व्यय कर रहा है। तुर्की को रूसी आक्रमण

का भय है अतः वह ५५ प्रतिशत खर्च कर रहा है चील ४२ प्रतिशत खर्च कर रहा है क्योंकि वह लेटिन अमरीका का नेतृत्व ग्रहण करना चाहता है। अर्जेण्टाइन से वह इसके लिए प्रतियोगिता कर रहा है। इसके झुकाव से भारत ४७ प्रतिशत और नए बजट में ५० प्रतिशत खर्च कर रहा है और पाकिस्तान ५५ प्रतिशत खर्च कर रहा है। विश्व की और कोई शक्ति इतना खर्च नहीं कर रही है। क्या यह विभाजन का दुष्परिणाम है? क्या दोनों के बीच शस्त्रीकरण के लिए भी होड़ प्रारम्भ हो गई है? तीन बड़े राष्ट्र अमरीका, रूस और ब्रिटेन इसके प्रतिकूल क्रमशः २५, १७ और १३ प्रतिशत ही सेना पर खर्च कर रहे हैं। यह मानी हुई बात है कि रक्षात्मक सेना से आक्रमणात्मक सेना दुगनी होनी चाहिए पर भारत का उद्देश्य शान्ति स्थापित करना है। पर वह ऐंग्लो अमरीका और रूस के बीच शान्ति तभी स्थापित कर सकता है, जब वह इनके तुल्य बली हो। इस दृष्टि से १५७.३७ करोड़ रु० सैनिक बजट अधिक नहीं है। यद्यपि भारत की आय के अनुपात में ज्यादा है पर भारत के धार्मिक उद्देश्य के लिए एशिया की स्वाधीनता और विश्व-शान्ति को बढ़ाना अधिक नहीं है। यह खेद की बात है कि रक्षा-योजना के लिए १४.९९ करोड़ रु० दिया गया। पूंजीगत व्यय में से केवल ६.६१ करोड़ रु० ही व्यय हुआ। देश की आन्तरिक शान्ति के विचार से भी बाह्य आक्रमण के भय से देश को मुक्त होते रहना आवश्यक है।

अन्न का आयात—पिछले साल २० लाख टन अनाज आयात करने का अनुमान किया गया था पर किया गया २८००००० । इस वर्ष सम्भवतः ४० लाख टन अन्न आयात करना पड़े। आयात अन्न बाजार में सस्ता बिके, इसके लिए सरकार अपनी ओर से सहायता देती है। खर्च की चौथे नम्बर पर सबसे बड़ी मद यही है। यह इस वर्ष ३२.९७ करोड़ रु० है। १९४८-४९ में संशोधित बजट के अनुसार ३२ करोड़ रु० व्यय हुआ जब कि अनुमान १६.६१ करोड़ रु० का ही था। अन्न-सहायता में दिया गया धन साधारण कोष से आता है। इसका अर्थ है कि भारतीय किसान की अपेक्षा विदेशी किसान को प्रति टन १०० रु० अधिक देकर सरकार अनाज का आयात करती है। यदि ३२ करोड़ रु० विदेशी किसानों को देने के बदले भारतीय किसानों की सहायता में खर्च किया जाता तो आश्चर्यजनक परिणाम होता और विदेशी विनिमय विशेषतः डालर की समस्या स्वतः हल हो जाती। यदि भारत अन्न का आयात बन्द कर दे जैसा कि १९५१ से बन्द करने की घोषणा की गई है तो भारत की आर्थिक स्थिति का रूप ही सर्वथा बदल जाएगा। इस वर्ष ४० लाख टन अनाज आया ही होगा। यह आन्तरिक उत्पादन का १० प्रतिशत है। यदि आयात अनाज जिस भाव पर आता है, उसी भाव पर बेचा जाए, तो ६-७ प्रतिशत आबादी से अधिक पर उसका प्रभाव न होगा। पर वह जनसंख्या का वह भाग है, जो श्रमी और बौद्धिक वर्ग कहलाता है। मंहगा अनाज मिलने पर देश की शान्ति खतरे में पड़ सकती है। औद्योगिक झगड़े घटने के बजाय और बढ़ेंगे। केन्द्रीय सरकार प्रान्तों को अन्न-सहायता अब दो-तिहाई की जगह तीन-चौथाई देती है पर प्रान्त सन्तुष्ट नहीं हैं। वे अधिक की ही माँग करते रहते हैं। केन्द्रीय सहायता के फलस्वरूप जीवन-निर्वाह के व्यय में प्रति वयस्क २ आना प्रति सप्ताह और प्रति वर्ष ६ रु० ८ आना की कमी होती है। यदि चार वयस्क व्यक्तियों का परिवार हो तो यह सहायता २६ प्रति वर्ष पड़ती है। इस सहायता में कमी करने का प्रभाव उच्च मध्यम वर्ग पर भले ही न पड़े पर निम्न मध्यम वर्ग श्रमी वर्ग पर भारी प्रभाव पड़ेगा और महान् असन्तोष की सृष्टि करेगा। इसलिए खर्च की इस मद में कमी करने की बात सोचना राजनीतिक अशान्ति की आँधी को आने का निमंत्रण देना है।

शरणार्थी और पुनर्वास पर १०.०४ करोड़ रु० की जगह १६.४५ रु० करोड़ रु० व्यय होगा। इस वृद्धि का कारण यह है कि कुछ बकाया भुगतान बाद में किए गए। प्रान्तीय सरकारों को देने का जो वचन दिया गया था, उसकी अदायगी में विलम्ब होने से यह वृद्धि हुई है पर भारत सरकार ने कुल कितना व्यय इस कार्य पर किया, इसका कोई उत्तर बजट से नहीं मिलता।

पाकिस्तान पर भारत का देय बराबर बढ़ता जाता है। बर्मा से भी भारत को कुछ मिल नहीं रहा है। कहीं पाकिस्तान भी वही राह न पकड़े, यह भय होना स्वाभाविक है। पाकिस्तान पर भारत का ३०० करोड़

रु० ऋण है। १९५२ से इसकी अदायगी प्रारम्भ होगी। ५० सालों में वह इसको चुकाएगा। इसमें ६३·३७ करोड़ रु० और जोड़ना चाहिए। भारत ने यह रकम ब्रिटेन को पाकिस्तान की ओर से दे दी है। डिफेन्स सोर्स का १३३·३२ करोड़ रु० व्यय हुआ है। ५·०८ करोड़ रु० इस वर्ष और ६२ लाख रु० अगले साल भारत पाकिस्तान को देगा, जिससे वह आर्डनेन्स फैक्टरी और अन्य संस्थाएँ स्थापित कर सके।

पूंजीगत बजट—अर्थमन्त्री का दावा है कि उनका बजट मुद्रास्फीति के विरुद्ध है। अतः स्वभावतः प्रश्न उठता है कि वह उसको रोकने में क्या और कितना अंश-द[illegible]ना है? क्या पूंजीगत बजट मुद्रास्फीति से लड़ाई लेता है? क्या यथार्थ में बजट मुद्रास्फीति-विरोधी है और जनता के हाथ में आवश्यकता से अधिक विद्यमान धन की पूंजी बनाने में [illegible] सहायक होगा?

पूंजीगत बजट अलग पेश करने का सूत्रपात फरवरी १९४६ में सर आर्चीबाल्ड रोनाल्ड ने किया था। संशोधित बजट ३०० करोड़ रु० का और नया बजट ३३४ करोड़० रु० का था। इसके अतिरिक्त अन्य पूंजीगत प्राप्ति सरकार के विभिन्न स्थानों में जमा राशि १०६ करोड़ रु० की थी। इस प्रकार कुल पूंजीगत बजट ८०० करोड़ रु० का था। इसके मुकाबले आय और पूंजीगत व्यय ७०० करोड़ रु० का था। इससे स्पष्ट है कि १९४६ में मुद्रास्फीति-विरोधी फण्ड सरकार के मुल्की और सेना के पूंजीगत और आय गत व्यय से अधिक था। इस वर्ष युद्ध-व्यय के बदले मिलनेवाली राशि ३४७ करोड़ रु० थी। युद्ध-व्यय को पूरा करने के लिए १५० करोड़ रु० के नोट जारी किए गए थे। फलतः स्थिति यह थी कि मार्च १९४६ में सरकार के व्यय और पूंजीगत आय और प्राप्ति सन्तुलित अवस्था में पहुँच गए। केन्द्रीय सरकार के व्यय-द्वारा समाज को जहाँ ९५० करोड़ रु० की आय थी, उसमें ८०० करोड़ रु० की राशि मुद्रास्फीति-विरोधी प्रकृति की थी।

१९४६-४७ के संशोधित बजट में आय ३३९ करोड़ रु०, नया ऋण ३७५ करोड़ रु० और अन्य फण्ड और जमा १२७ करोड़ रु० था। प्राप्ति इस प्रकार ८३८ करोड़ रु० थी। इसके विपरीत सैनिक-व्यय-समेत आयात व्यय ३५५ करोड़ रु० और सैनिक-व्यय-समेत पूँजीगत व्यय ५६३ करोड़ रु० था। इस प्रकार कुल प्राप्ति से कुल व्यय लगभग ८० करोड़ रु० अधिक था। इस वर्ष युद्ध-व्यय ४० करोड़ रु० केवल प्राप्त हुए। सरकार का कुल व्यय ९५८ करोड़ रु० हुआ। यह सरकार को पूँजीगत हुई आय और प्राप्ति से १२० करोड़ रु० अधिक था। इसका सरकार के नगदी रोकड़ पर प्रभाव पड़ा और वह लगभग ९५ करोड़ घट गया। नोटों की चलन में इस समय केवल २६ करोड़ रु० की वृद्धि हुई। इससे यह प्रकट है कि १९४६-४७ में सरकारी व्यय के कारण समाज की मुद्रा-आय अमुद्रास्फीति के आधार पर प्राप्त हुई थी।

मार्च, १९४७ में राजस्व में विषय सन्तुलन बहुत कम था। इसका कारण यह था कि युद्ध-व्यय घट गया था, मिलनेवाले युद्ध-व्यय में भी कमी हो गई थी। ऊँची सतह पर कर होने के साथ जकात (निराकाम्य कर) की आय में भी वृद्धि हुई। पर अगले दो सालों में यह स्थिति नहीं रही। १९४७-४८ के बजट में, जो फरवरी १९४७ में उपस्थित किया गया था—आयगत घाटा १९·९६ करोड़ रु० का था और पूंजीगत बजट में १·६६ करोड़ रु० की बचत दिखाई गई थी। पर विभाजन और अन्य कारणों से यह अनुमान पूरा नहीं निकला। नवम्बर में १५ अगस्त १९४७ से ३१ मार्च १९४८ तक के लिए आयगत घाटा ६·५२ करोड़ रु० रखा गया। पूंजीगत बजट में बचत की जगह १३३·४१ करोड़ रु० का घाटा दिखाया गया क्योंकि सरकारी ऋण-प्रोग्राम का पूरा होना सम्भव नहीं था। फरवरी १९४७ में सरकार ने १५० करोड़ रु० ऋण लेने का निश्चय किया पर वह ४०·९५ करोड़ रु० ही प्राप्त कर सकी। इस वर्ष केन्द्रीय गवर्नमेंट का सेण्ट्रल रिजर्व बैंक में जमा धन ४५०·९४ करोड़ रु० से घटकर २७८·६७ करोड़ रु० रह गया, अर्थात् १७२ करोड़ रु० की कमी हो गई। इस अवधि में चलन में नोटों की संख्या में ५९ करोड़ रुपए की वृद्धि हुई। १९४७-४८ में सरकारी व्यय में इस प्रकार मुद्रास्फीति के तत्वों का बाहुल्य था। उस साल की असाधारण राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति इसका एकमात्र कारण है।

कर्ज—१९४८-४९ के संशोधित बजट में १·५५ करोड़ का घाटा बिना पूरा किए छोड़ दिया गया है। पूँजीगत बजट में प्राप्ति और व्यय में अमुद्रास्फीतिक सन्तुलन

स्थापित करने का कोई यत्न नहीं किया गया है। ११२·५१ करोड़ रु० का घाटा बजट में पूरा करने का कोई यत्न नहीं किया गया था। संशोधित में यह घाटा बढ़कर १८५ करोड़ रु० हो गया। यह ठीक है कि इस घाटे के कारण मुद्रास्फीति में कोई वृद्धि नहीं हुई है पर रिज़र्व बैंक में सरकार का जमा धन २७८·६७ करोड़ रु० (मार्च १९४८) से घटकर ३०·१३ करोड़ रु० रह गया है। पूँजीगत बजट में और अधिक घाटा रहना सम्भव था पर अक्टूबर १९४९ में मुद्रास्फीति-विरोधी योजना अपनाई गई। २६ करोड़ रु० का पूँजीगत खर्च रोक दिया गया और प्रान्तों के विकास के लिए दी जानेवाली १२ करोड़ रु० की ग्राएट (अनुदान) रोक ली गई। १५० करोड़ रु० का कर्ज सरकार का लेने का संकल्प था पर वह ५५ करोड़ रु० प्राप्त कर सकी। इस विफलता को सरकार ने स्वीकार कर लिया है। पूँजीगत बजट में १२४ करोड़ का घाटा छोड़ दिया गया है। १९४९-५० में सरकार का संकल्प ८५ करोड़ रु० नया ऋण लेने का है। इसके अतिरिक्त क्षुद्र बचतों से ३७·५६ करोड़ प्राप्त करने की योजना है। इसके विरुद्ध सरकार को इस साल ६७ करोड़ रु० १९४९-५२ का ३ प्रतिशत का ऋण चुकाना है। यदि सरकार संकल्पित कर्ज प्राप्त करने में सफल हुई तो उसकी बचत केवल १८ करोड़ रु० की होगी। पर आज बाजार की जैसी स्थिति है, सूद की दर जितनी नीची है, उसको देखते हुए ८५ करोड़ रु० का संकल्पित ऋण भी पूरा होना कठिन दीखता है। पूँजीगत बजट का व्यय किस प्रकार विनियोग किया गया है, यह निम्न सारिणी से ज्ञात होगा :—

(करोड़ रु० में)

पूँजीगत खर्च	१९४८-४९ (बजट)	१९४८-४९ (संशोधित)	१९४९-५० (बजट)
रेलवे	२४·४५	२७·१५	२८·४९
औद्योगिक विकास	७·८८	१०·४९	१३·१५
मुल्की काम	११·११	५·६८	७·३०
प्रान्तों को विकासार्थ अनुदान	३०·००	१८·००	२६·८१
स्थायी ऋण की अदायगी	१०३·७८	१०४·९५	७१·६४
प्रान्तिक सरकारों को उचन्त	३८·००	३८·९२	५८·२५

इसको देखने से स्पष्ट है कि पिछली तीन मदों को छोड़कर काट-छाँट करने की कोई गुञ्जाइश नहीं है। यदि सरकार इस वर्ष २० करोड़ रु० के दो ऋण सफलतापूर्वक प्राप्त कर ले तो उसका पूँजीगत घाटा बहुत कुछ कम हो जाएगा। प्रान्तों को पिछले बजट के समान अनुदान देने का निश्चय किया गया है। इससे प्रकट होता है कि गवर्नमेंट ने अक्टूबर १९४८ में जो नीति निश्चित की थी, उसमें कुछ अन्तर आ गया है।

पूँजी-निर्माण—बजट को देखने की एक और कसौटी है। वह यह है। यह राष्ट्रीय आय को बढ़ाने और जनता में रुपया बचाने की आदत बढ़ाने और मित-व्ययिता का स्वभाव बद्धमूल करने में कितनी मात्रा में सहायक है। यह आज के समय बहुत जरूरी है क्योंकि विशेषज्ञों का कहना है कि प्रतिव्यक्ति आमदनी एक प्रति-शत प्रति वर्ष घटती जाती है। इसका एक उपाय है कि पुनः ५०० करोड़ रु० प्रति वर्ष पूँजी का निर्माण किया जाए। इस समय सम्भवतः २०० करोड़ रु० पूँजी प्रतिवर्ष वैयक्तिक रूप से बन रही है। राष्ट्रीय बजट इसलिए इस ह्रास को रोकनेवाला और प्रति व्यक्ति वार्षिक आय बढ़ाने-वाला होना चाहिए। कर-प्रस्तावों पर इसलिए इस दृष्टिकोण से भी दृष्टिपात करना आवश्यक है।

राष्ट्रीय विकास के लिए प्रचुरमात्रा में धनराशि की जरूरत है। कर का स्तर बहुत ऊँचा है। भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी यही स्थिति है। इसलिए कर-भार का समभाव से वितरण हुआ है या नहीं, यह देखना पर्याप्त नहीं है। १९३९-४० से केन्द्रीय और प्रान्तिक सरकारों की आय राष्ट्रीय आय का कभी भी १०·७ प्रतिशत से कम नहीं हुआ। १९४७-४८ में जो १५·५ प्रतिशत था। निम्न सारिणी इसका प्रमाण है :—

वर्ष	राष्ट्रीय आय (करोड़ रु० में)	सरकार की आय (लाख रु० में) केन्द्र	प्रान्त	कुल	राष्ट्रीय आय का भाग सरकारी आय प्रतिशत
१९३९-४०	१९३४	१२५८	९०८	२२६६	११·६
१९४०-४१	२०५८	१४५१	९७५	२४२६	११·८
१९४१-४२	२३२९	१७३७	१०७४	२८११	१२·१
१९४२-४३	३३७३	२२५४	१२४३	३५९७	१०·७
१९४३-४४	४२३३	३०२९	१६३३	४७६२	११·२
१९४४-४५	४२७१	३९९४	२०८२	६०७५	१३·०
१९४५-४६	४२३८	४०८२	२२९३	६३७५	१५·०
१९४६-४७	४५०७	३९७१	२४३०	६४०१	१४·२
१९४७-४८	३९४२	३५२८	२६००	६१२८	१५·५

इसलिए इस समय आर्थिक नीति केवल तात्कालिक आवश्यकता को पूरा करने और जनता में असन्तोष उत्पन्न किए बगैर कर लगाने की न होनी चाहिए बल्कि राष्ट्र का आर्थिक स्वास्थ्य ठीक रहे, इसके लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने की होनी चाहिए। नीचे की सारिणी से पता चलेगा कि वर्तमान और युद्धपूर्व की कमियों के अनुसार १६३६-४० से १६४६-४७ तक ब्रिटिश भारत में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय क्या रही :—

	१६३६-४०	१६४०-४१	१६४१-४२	१६४२-४३	१६४३-४४	१६४४-४५	१६४५-४६	१६४६-४७
राष्ट्रीय आय (करोड़ रु० में)	१६३४	२०५८	२३३६	३३७३	४२३३	४२७१	४२३८	४४८७
जनसंख्या (लाखों में)	२६०	२६४	२६८	३०२	३०५	३०६	३१०	३१४
प्रति व्यक्ति आमदनी (रु० में चालू कीमतों में)	६७	७०	७८	११२	१३६	१३६	१३७	१४३
प्रति व्यक्ति आय (रु० में १६३६-४० की कीमतों में)	६७	६७	६७	७०	६४	६४	६३	५६

इससे स्पष्ट है कि १६४२-४३ के बाद से भारत गरीब हो रहा है, इसलिए आज समस्या यह है कि जनता के जीवन का मान-दण्ड युद्धपूर्व के समान कैसे किया जाए? इसका अर्थ है कि इस समय जो माल और सेवा में उत्पन्न किया जाता है, उस सारे की खपत न की जाए, बल्कि उसका एक भाग पुनः उत्पादन में लगाया जाए। इसी को 'पूँजी-निर्माण' कहते हैं। इसमें केवल मैशीन और फैक्टरी ही सम्मिलित नहीं है, बल्कि उत्पादन में सहायक प्रत्येक-वस्तु शामिल है। कोलिन क्लार्क, डीवेटिया और त्रिवेदी के अनुसार यदि राष्ट्रीय आय का ८ प्रतिशत प्रति वर्ष विनियोग किया जाए तो युद्ध-पूर्व के समान जनता का जीवन-मान किया जा सकता है। इस आधार पर 'ईस्टर्न एकानमिस्ट' ने निम्न सारिणी तैयार की है। प्रति वर्ष पूँजी-निर्माण के लिए कितनी रकम दरकार होगी!

१६३६-४० का जीवनमान पुनःस्थापित करने के लिए आवश्यक धन

वर्ष	जीवन-निर्वाह व्यय (बम्बई) १६३६-४०-१०००	आबादी (लाखों में)	प्रतिव्यक्ति आय (रुपयों में)	कुल राष्ट्रीय आय (करोड़ रु० में)	पूँजी निर्माण की आवश्यकता (रु० करोड़ में)
१६३६-४०	१००	२६०	६७	१६३४	१५५
१६४०-४१	१०५	२६४	७०	२०६७	१६५
१६४१-४२	११७	२६८	७८	२३३६	१८७
१६४२-४३	१६०	३०२	११२	३२३७	२५६
१६४३-४४	२१७	३०५	१३६	४४३५	३५५
१६४४-४५	२१६	३०७	१३६	४४४२	३५५
१६४५-४६	२१६	३१०	१३७	४५४८	३६४
१६४६-४७	२४२	३१४	१४३	५०६०	४०७
१६४७-४८	२५८	२४६	१६०	४२५३	३४०

इससे स्पष्ट है कि जब तक भारत ५०० करोड़ प्रति वर्ष न बचाएगा और इस प्रकार बनी पूँजी को उत्पादन में न लगाएगा तब तक युद्ध-पूर्व का जीपन-मान जनता का होना सम्भव नहीं है। प्रश्न यह है, क्या डा० जान मथाई का बजट इसमें सहायक है? बजट इसका नकारात्मक उत्तर देता है। बजट भावी मुद्रा या आर्थिक नीति को सर्वथा सूचित नहीं करता। इसमें योजना का अभाव है। मूल्य स्तर मन्दी या अमुद्रास्फीति के सम्बन्ध में भी कुछ नहीं कहा गया है। गाँवों में बसनेवाले लोगों से अधिक और फालतू क्रय-शक्ति को कैसे समवेत किया जाएगा, यह भी नहीं बताया गया है। १६४६-५० का बजट जनता और बाजार में छाए अवसाद व्याप्त निराशा और हताशा को दूरकर नवीन आशा और नूतन विश्वास उत्पन्न नहीं करता। आज बाजार और जनता का मनोवैज्ञानिक परिवर्तन करने की आवश्यकता है और इस आवश्यकता को इस वर्ष की बजट भी पूरा करने में असमर्थ है।

सत्रह सौ उनतीस

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

ख्वाजा शिष्टाचार के पीड़ापूर्ण बोझ को अलग हटाने का यत्न करते हुए कहने लगा, "सवारी उधर से आ रही थी। इन लोगों ने रास्ता घेर लिया। जहाँपनाह परेशान थे कि क्या बला है। मालूम हुआ कि शिकायत अर्ज करने के लिए ठठ-के-ठठ लोग अड़े हुए हैं। शिकायत की गई कि राजा शुभकर्ण के आदमियों ने उनके हुक्म से एक बुडढे हाजी को मार डाला है। जहाँपनाह ने फरमाया कि राजा को गिरिफ्तार किया जाए और उनके सिपाहियों को भी। यह भीड़-भाड़ उन्हीं लोगों की है।"

रोशनुद्दौला ने दाढ़ी पर हाथ फेरकर कहा, "बुरा हुआ साहब, मगर शुभकर्ण ऐसे आदमी हैं तो नहीं।"

भीड़ फिर चिल्लाई।

शेर अफगन ने जरा सी त्योरी चढ़ाकर कहा, "समझ में नहीं आता ये लोग यहाँ क्यों शोर कर रहे हैं।"

ख्वाजा बोला, "शुभकर्ण की गिरफ्तारी देखने के लिए आए हैं ये लोग।"

शेर अफगन ने पूछा, "फिर यहाँ क्यों जमा हैं?"

ख्वाजा ने स्पष्ट कहा, "माफ कीजिएगा, खान साहब! शक किया जा रहा है कि शुभकर्ण और उनके सिपाही आपकी हवेली में छिपे हुए हैं।"

शेर अफगन ने तमतमाकर प्रश्न किया, "कौन इस तरह का शक करने की हिम्मत कर रहा है जनाब?"

अब दरबारी ने अपने आने का सविस्तर कारण बतलाया।

शेर अफगन ने ठंडक के साथ कहा, "मेरी हवेली में राजा शुभकर्ण या उनका कोई आदमी नहीं है।"

ख्वाजा बिना संकोच या शिष्टाचार के बोला, "मगर वजीरुद्दौला साहब को पूरा यकीन है कि वह आप ही की हवेली में हैं और आप उनको पनाह दिए हुए हैं।"

"मैं कहता हूँ कि नहीं हैं। यकीन करिए।"

"मगर शहर के सब आदमियों को और वजीरुद्दौला साहब को यकीन है कि यहीं हैं।"

"मैं एक बार, लाख बार कहता हूँ कि नहीं हैं।"

"वजीरुद्दौला करोड़ बार कहते हैं कि वे सब आपकी आलीशान हवेली के किसी कोने में छिपे हुए हैं।"

"अच्छा यही सही। कौन जिद करे।"

"तब फिर उनको मेरे हवाले कर दीजिए, मैं जाऊँ।"

"गैरमुमकिन।"

"यानी आप बादशाह सलामत के फरमान की भी तौहीन करने पर उतारू हैं?"

"वजीरुद्दौला कमरुद्दीन अभी बादशाहत करने के काबिल नहीं हुए हैं।"

"हुक्म बादशाह सलामत का है, वजीर का नहीं।"

"मुझको सब पता है। कह दीजिएगा वजीर से।"

"क्या कह दूँ?"

"जो मन में आवे।"

"यानी कह दूँ कि आप मुलजिमों को मेरे हवाले करने से इनकार करते हैं।"

"कतई इनकार करता हूँ—कतई। वजीर को जो दिखलाई पड़े, सो करलें।"

"नतीजा सोच लीजिए, नवाब साहब।"

"नतीजे की बात वजीर को सोचना है और उनके हिमायतियों को।"

दरबारी झुलस गया। उठने लगा। रोशनुद्दौला ने मिठास के साथ प्रस्ताव किया, "पान तो कबूल कर लीजिए। आखिर ऐसी क्या जल्दी है, ख्वाजा साहब?"

"आप देखते नहीं हैं, जनाब ?" दरबारी ने उत्तेजित स्वर में कहा, "गरीबों के साथ जुल्म हुआ है। वे इन्साफ के लिए कराह रहे हैं। बादशाह सलामत और वजीरुल्मुल्क उनको इन्साफ देने के लिए कोशिश कर रहे हैं, मगर खानेसामाँ बहादुर टाँग अड़ाए जा रहे हैं। एक काफिर के लिए इतनी जिद। समझ में नहीं आता कि क्या राज़ है। ऐसी हालत में क्या दिल लेकर पान चबाऊँ ?"

रोशनुद्दौला उत्तर नहीं दे पाया। ओठों पर मुस्कराहट खेलती रह गई। शेर अफगन ने तपाक से कह डाला,

"राजा शुभकर्ण को काफिर कहना कुफ्र बकना है। शुभकर्ण मेरी हवेली में हैं, और हैं। वे किसी हालत में भी भेड़ियों के हाथ में नहीं दिए जाएँगे। मेरी पनाह में हैं। पठान की पनाह में ख्वाजा साहब ! मेरे निज भाई से बढ़कर। वजीर से कह दीजिएगा कि एक पठान नहीं, सारे हिन्दुस्तान के पठान उस एक शुभकर्ण के लिए अपने और दूसरों के खून की नदियाँ बहा देंगे।"

शेर अफगन की आँखें लाल हो गईं। उसका शरीर काँप रहा था।

रोशनुद्दौला रोकता ही रह गया परन्तु ख्वाजा बिना पान-इत्र के वहाँ से चला आया।

बाहर निकलते ही ख्वाजा के मुँह से निकला, "तोबा, तोबा।"

भीड़ के लोगों ने उत्सुकता के साथ प्रश्न किए।

ख्वाजा ने कहा, "पठानी अकड़, पठानी गरूरी शाही इन्साफ के रास्ते में है। मैं बादशाह सलामत को खबर देता हूँ।"

ख्वाजा चला गया।

(१८)

भीड़ भी शेर अफगन की हवेली से हट आई परन्तु कुछ हथियारबन्द इधर-उधर छिप गए-यदि शुभकर्ण या उसका कोई आदमी हवेली से निकले तो तुरन्त खतम कर दिया जाए। हाजी की लाश की रखवाली के लिए भी काफी हथियारबन्द लोग शुभकर्ण की हवेली के चारों ओर जम गए। कुछ अपना उत्साह समाप्त करके घर भी चले गए। बाकी लोग कुहराम मचाते हुए दिल्ली भर में घूमने लगे। 'दीन', 'दीन', 'इन्साफ', 'इन्साफ' के नारों के साथ जोर-जोर से कहा जा रहा था :

"जूताफरोशों के कई बच्चों और बुड्ढों को शुभकरन ने मारा और मरवा डाला है। लाशों को कुओं में फेंक दिया है। शेर अफगन वगैरह पठान सरदार हिन्दुओं को बहकाए हुए हैं और चौक सादुल्ला खाँ के सारे मुसलमान दुकानदारों को लूट लेना चाहते हैं।"

इस प्रबल तथा गरम अफवाह ने जोश और उन्मत्तता को सघनता की अन्तिम सीढ़ी पर ठेल दिया। भीड़ के लोग चीख रहे थे, कोई बनावटी रुदन कर रहे थे, बहुत से अपने सिर पर धूल डाल-डालकर गालियाँ और अभिशाप बरसा रहे थे, कोई-कोई सान्त्वना दे-देकर पूरा बदला चुकाने के लिए लोगों को उकसा रहे थे। हिन्दुओं ने भयभीत होकर दूकानें बन्द कर ही ली थीं, मुसलमानों ने भी बन्द करलीं। दूकानों के बन्द हो जाने से गरीब हिन्दू-मुसलिम जनता त्रस्त हो उठी परन्तु मुसलमानों ने लूट-मार नहीं की। वे पठानों पर अधिक क्षुब्ध थे। उनको शीघ्र ही विदेशी दल का नेतृत्व प्राप्त हो गया। अरब, हब्शी, तुर्क इत्यादि जत्थे बांध-बांधकर यत्र तत्र इकट्ठे होने लगे। भीड़ के जो लोग थकावट के कारण धीमे पड़ गए थे, खिसक गए, परन्तु घरों से ताजा होकर जो लोग लौट पड़े, वे विदेशियों के जत्थों में शामिल हो गए।

कोई कहता था, "जजिया लगाओ।"

"कमबख्तों की पालकी बन्द कर दो। बड़े घमण्ड के साथ झूमते-झूमते पालकियों में निकलते हैं जैसे दिल्ली इनके बापों की हो।"

"हाय रे, कहाँ गया शाहन्शाह आलमगीर का जमाना ! ओफ, कैसा अदल था !! कितना इन्साफ़ था !!! घी-दूध के दरिए बहते थे। क्या मजाल थी कि बनिए-बक्काल नालकियों पालकियों पर बैठे-बैठे शहर के मीरों और मुगलों के सिरों पर अपने पैर की धूल फेंक सकें।"

"निजामुलमुल्क ने आलमगीरी आईनों को फिर से कायम करने की कोशिश की तो इन्हीं पठानों ने सब गुड़ मिट्टी कर दिया।"

"दिल्ली को नापाक कर दिया ! दिल्ली को बरबाद कर दिया ! सल्तनत मिटा दी !"

गुलाबखां भी इस भीड़ में था।

उसने भीड़ के एक बड़े समूह को एकत्र करके कहा; "इन्साफ जब होगा तब होगा। फिलहाल शुभकर्ण के मकान में आग लगाओ। फिर दीवारों को तोड़-ताड़कर खंडहर कर दो। इसके बाद उसी खंडहर में हाजी की लाश को दफना दो। जो दीवारें बच जाए, उन पर एक मसजिद खड़ी करदो।"

भीड़ को कुछ करने को मिल गया। वह इसी काम के लिए शुभकर्ण के मकान की ओर चल दी।

ख्वाजा ने शेर अफगन की हवेली से लौटकर वजीर को सब हाल सुनाया। भीड़ के मिजाज का समाचार उसको गुलाबखां ने दिया। वजीर गुलाबखां से कहकर बादशाह के पास चला गया, "लोग इससे ज्यादा और कुछ न करने पाएँ। शाम को मुझसे मिलना।"

(१६)

वजीर को मुहम्मदशाह की भेंट जरा देर में प्राप्त हुई। अभिवादन के उपरान्त वजीर ने निवेदन किया—

"जहाँपनाह, शेर अफगन हुकुम अदूली कर रहे हैं। शुभकर्ण वगैरह को अपनी हवेली में छिपाए हुए हैं। गिरफ्तारी का हुक्म सुनाया गया तो बिगड़ पड़े और—"

"मियां, किस्से को लम्बा मत करो। आज जफर खाँ के बाग को क्या गया, मुसीबत मोल लेली। सिर में दर्द हो गया है। जरा चैन लेने दो।"

"जहाँपनाह का हुक्म हो तो फिर किसी वक्त हाजिर होऊँ!"

"मगर इस दर्द-सिर से तो अभी निबटना चाहता हूँ। कह डालो।"

"शेर अफगन ने कतई इनकार कर दिया।"

"रोशनुद्दौला की मदद लो। पठान से पठान को जुझा दो।"

"वे दोनों रिश्तेदार हैं। ख्वाजा जब शुभकर्ण की गिरफ्तारी के लिए गए तो शेर अफगन की हवेली में रोशनुद्दौला भी थे।"

"उन्होंने क्या कहा?"

"वे आए तो ख्वाजा के साथ अच्छी तरह पेश, मगर हामीं शेर अफगन के हैं।"

"अजीब शक्की आदमी हो मियां तुम! किसी का तो एतबार करना सीखो। रोशनुद्दौला की मदद लो और मामले को ठंडा करो।"

"हुजूर, हवेली में से शुभकर्ण को गिरफ्तार करना है।"

"हवेली क्या बहुत बड़ी है?"

"हुजूर।"

"उसमें तलघरे होंगे?"

"शायद हों, जहाँपनाह।"

"तब वहाँ पता लगना मुश्किल होगा। और शेर अफगन की बेगमें भी अन्दर होंगी। बाहर से कोशिश करो, हवेली के अन्दर किसी को मत जाने देना।"

वजीर ने माथा टटोला।

बादशाह ने कहा, "यार मेरे, अगर तुमने गाना बजाना सीखा होता तो अक्ल कुछ काम करती। समझे मैंने क्या कहा?"

"हुजूर।"

"और कोई काम है?"

"रोशनुद्दौला के नाम फरमान मिल जाए।"

"कोकीजू से लिखवा लो। वह मुहर लगा देगी। मेरी मुहर उसी के पास है।"

"हुजूर, दिल्ली इस वक्त पागल हो उठी है।"

"इलाज करो। इतने हकीम दिल्ली को किस मतलब से घेरे बैठे हैं?"

"जहाँपनाह, ये लोग आपस में कट मरेंगे।"

"दुनिया का उतना बोझ कम हो जाएगा।"

"सल्तनत कमजोर पड़ जाएगी।"

"यह जरूर गौर करने लायक बात है।"

"जहाँपनाह को तकलीफ देने मैं कल फिर हाजिर होऊँ?"

"बिलकुल नहीं। जो मुनासिब समझो, करो। तुमको पूरा अख्तियार देता हूँ मगर इस वक्त मेरा पीछा छोड़ो। हाँ—रोशनुद्दौला को हर बात में अपने साथ रखना। समझे न? बहुत बड़ी जरूरत पड़े तो मेरे पास आना वरना अपना काम करना। और, देखो, यह ख्याल रहे कि मामले को जैसे बने वैसे ठंडा किया जाए। और हाँ—इन्साफ जरूर किया जाए।"

"जहाँपनाह, सादुल्ला चौक के दूकानदार शुभकरन के मकान को तोड़कर वहीं हाजी मरहूम की लाश दफनाना चाहते हैं। किसी तरह नहीं मान रहे हैं।"

"हर्ज भी क्या है। मकान क्या बड़ा है?"

"बहुत बड़ा नहीं है, जहाँपनाह।"

"कोई बात नहीं। इतने में लोगों का गुस्सा मुलायम पड़ जाए तो सौदा बुरा नहीं।"

"पठान शायद शुभकर्ण की तरफदारी करें, हुज़ूर।"

"तुम तो मुफ्त में जान खा गए। कह दिया कि रोशनुद्दौला को अपने साथ में रक्खो। और—हाँ—फौज को बिलकुल मुस्तैद रखना। कहीं ऐसा न हो कि शुभकर्ण के मकान को खतम करने के बाद तुम्हारी हवेली या मेरे महल पर ये बेहूदे नजर डालें।"

"जहाँपनाह, गैरमुमकिन। बन्दा बहुत होशियारी से काम करेगा।"

(२०)

सन्ध्या के समय वजीर की बैठक में गुलाब खाँ पहुँचा। अमीर आजमखाँ के लिए भी बुलावा भेजा गया था।

गुलाबखाँ ने कहा, "हुज़ूर, जूताफरोशों ने शुभकर्ण के मकान में आग तो नहीं लगाई मगर तोड़ना शुरू कर दिया है। हवा चल रही थी और मुहल्लेवालों को डर था कि कहीं आग फैल गई तो दिल्ली का बहुत बड़ा हिस्सा खाक हो जाएगा, इसलिए आग लगाने से बाज रहे। कल तक मकान तोड़-ताड़कर बराबर कर दिया जाएगा। तै हुआ है कि उसी के खंडहर में हाजी की लाश दफनाई जाएगी और बाद को वहीं मसजिद बना दी जाएगी।"

वजीर ने सकारा, "इसमें बादशाह सलामत को भी उज्र न होगा।"

गुलाबखाँ—"इसके बाद फिर और क्या करना है, इसके बाबत कल जुमा मसजिद में तै किया जाएगा। कल जुमे की नमाज के लिए सब लोग इकट्ठे होंगे।"

उसी समय अनुमति पाकर आजम खाँ आ गया। मुटाई के मारे हाँफता-हाँफता एक मसनद पर बैठ गया। उसको वजीर के पास गुलाबखाँ की पैठ का हाल मालूम था और वह अपने रिश्तेदार को साम्राज्य के इतने बड़े आदमी की निकटता में पहुँचा हुआ पाकर सन्तुष्ट था।

वजीर ने कहा, "आप आ गए अमीर आजमखाँ, अच्छा हुआ। पठान सरदारों में आप एक ऐसे समझदार हैं, जिनकी मैं दिल से कद्र करता हूँ। कल अपने सिपाहियों के साथ तैयार रहिएगा। जुमा मसजिद में काफी तादाद में लोग जमा होंगे! शायद कुछ गुमराह पठान शरारत करने पर आमादा हो जाएँ तो वहीं करीब में रहिएगा। मुगलपुरा के लोग और अरबी तुर्की सिपाही भी वहाँ काफी होंगे, और मेरे ऊँट सवार भी तैनात रहेंगे, मगर आप सरीखे दोस्तों की भी जरूरत रहेगी। रोशनुद्दौला साहब भी मदद के लिए वहाँ रहेंगे। उनके लिए शाही फरमान जारी हो गया है।"

"रोशनुद्दौला आपके साथ!" गुलाब खाँ के मुँह से यकायक निकला।

वजीर ने कहा, "हाँ, बादशाह सलामत ने उनको साथ रखने के लिए फरमाया है।"

गुलाबखाँ बोला, "उनके सामने जुमा मसजिद में सलाह मश्विरा कैसे होगा?"

वजीर ने उत्तर दिया, "जो कुछ तै करना है, खुले आम तै होगा। वे मौजूद होंगे तो बाद को दुनिया को समझा तो सकेंगे कि मामले क्यों और कैसे हल हुए।"

गुलाबखाँ को अच्छा नहीं लगा। आजमखाँ ने कहा, "रोशनुद्दौला का ऐसे मौके पर रहना अच्छा होगा। गुलाब, कोई अन्देशे की बात नहीं। रोशनुद्दौला अगर कोई बेअदबी या गुस्ताखी करेगा तो मैं उसको दबा दूँगा। समझे न बेटा? रोशनुद्दौला चाहे जैसा कद्दावर क्यों न हो और भले ही मेरा दामाद है, मगर हुज़ूर वजीरुद्दौला की मर्जी के खिलाफ अगर उसने जरा अमल किया तो बस ढेर कर दूँगा।"

वजीर बोला, "आपको खान साहब, जल्द किसी सूबे की सूबेदारी दी जाएगी।"

गुलाबखाँ को ग्लानि हुई।

[क्रमशः

विचार विमर्श

श्री त्यागराज के राम *

श्री वारणासि राममूर्ति "रेणु"

त्यागराज की भक्ति का चरम व परम लक्ष्य 'स्व-स्वरूपानुसंधान' ही रहा। उस निराकार पर-तत्त्व की प्राप्ति के लिए उन्होंने सगुणोपासना को प्रधान साधन बना लिया था। साथ-साथ संगीत उनके हाथ का वह दीप बना, जिसके प्रकाश में वे अपना मार्ग-निर्देश कर पाए। अन्य साधकों से उनका अनुष्ठित पथ इस माने में विलक्षण तथा विशिष्ट रहा कि उन्होंने अपने निराकार लक्ष्य का दर्शन नादब्रह्म के रूप में कर लिया था। इतना सब होते हुए भी उनके जीवन में मर्यादा पुरुषोत्तम राजा रामचंद्र जी ने जो स्थान कर लिया था, वह शिव, गौरी, ब्रह्मा आदि और किसी देवता ने नहीं, यद्यपि उन देवी-देवताओं से वे सर्वथा विमुख नहीं थे। स्मार्त ब्राह्मण होने के कारण सभी देवताओं पर उनकी आस्था बराबर बनी रही। इस बात का उन्हें पूरा विश्वास रहा कि--

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

उनकी निर्गुण-भावना सगुण-भावना-सापेक्ष है, जैसे प्रकाश की व्याप्ति अंधकार की अपेक्षा रखती है। श्री त्यागराज के इस विश्वास और गुसाईं तुलसीदास जी के नीचे के दोहे पर नजर डालने पर हमें आश्चर्य होता है कि भारत के सन्त महात्माओं में कैसा अद्भुत मतैक्य पाया जाता है!

ज्ञान कहै अग्यान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास॥

यहाँ मैं यह दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि सगुणोपासना के जब हर, गौरी, गणेश, कृष्ण, लक्ष्मी, हनुमान्, नृसिंह आदि इतने आधार हैं, तो श्री रामचंद्र ही को त्यागराज ने अपना आदर्श व आराध्य क्यों बना लिया था? उन दशरथकुमार में ऐसा कौन-सा अद्वितीय आकर्षण है, जिसने उन्हें मोह लिया है, समग्र रूप से विजित बना डाला है! प्रत्येक साधक के लिए अपने साध्य व आराध्य का बहुत ही महान् एवं आदर्श 'नमूना' सामने रखना आवश्यक होता है। आराध्य के इस चुनाव पर ही उसकी सफलता कई अंशों में निर्भर रहती है; इस बात से श्री त्यागराज भली-भाँति परिचित थे। अतः उन्होंने बहुत सोच-विचार के बाद ही अपना 'नमूना' निश्चित कर लिया था, जिसके लिए बाद को उन्हें कभी पछताना नहीं पड़ा था। स्वयं रामचंद्र जी के आगे वह संक्षेप में अपना यह अटल विश्वास प्रकट करते हैं--

राग तोडी—रूपक

निनुविना सुखमु गान;--नीरजनयन!
मनसुनकेंतो आनंद मै--मेयि पुलकरिंचग ॥ निनु० ॥
रूपमु, प्रतापमु, शर-चापमु, सल्लापमु गल ॥ निनु० ॥
करुणारस परिपूर्ण! वरद! मृदुवार्तलु गल ॥ निनु० ॥

हे नीरजनयन राम! आपके बिना अन्यत्र मुझे सुख-प्राप्ति की आशा नहीं दीखती है। आपके रूप, प्रताप, शर-चाप, दया से सराबोर मृदु वार्तालाप ने मुझे आपका दास बना डाला है प्रभु!

स्पष्ट है कि इन महात्मा की भक्ति की नींव भी वही रही, जिस पर गुसाईं जी ने अपना भक्ति-प्रासाद खड़ा कर दिया था। अर्थात् सौंदर्य, शील एवं शक्ति। इन अनन्य-सुलभ तीनों गुणों का समन्वय किस प्रकार श्रीराम में

---

*दक्षिण के आंध्रप्रदेश के अमर गायक भक्त-कवि श्री नादयोगी त्यागराज के आलोचनात्मक अध्ययन का यह एक अध्याय है। मूल रचना अप्रकाशित है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें श्री त्यागराज की जीवनी, विचारों तथा कविता के साथ श्री गोस्वामी तुलसीदास जी की भी तुलना की गई है। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन भारतीय सन्तों की विचार-धारा तथा संस्कृति की एकसूत्रता का ज्ञान कराने में सहायक होते हैं। मूल रचना का नाम है श्री 'नादयोगी त्यागराज'।

हमारे नादयोगी ने देखा है, उसी का थोड़ा-सा परिचय यहाँ कराया जाता है--

सबसे पहले भगवान् रामचंद्र के अपूर्व रूप-सौंदर्य पर उनकी दृष्टि जाती है। बस, उनकी आत्मा वहीं प्रेम और आनंद-विभोर हो अपना समर्पण कर बैठती है।

१ पूर्णषड्ज—रूपक

लावण्य रामु कनुलार जूडरे, अति ।। लावण्य० ।।
श्रीवनिता-चित्त-कुमुद-शीतकर शतानन्यज ।। लावण्य० ।।
नीमनसु, नी सोगसु, नी दिनुसु वेरे ।।
तामस मद दैवमेल ? त्यागराजनुत अति ।। लावण्य० ।।

और :--

२ मायामालव गौल—देशादि

मेरुसमान धीर! वरद! रघुवीर! जूतामु, रारा महा।
सार सार! वय्यारपुनडकलनु--नीरदकांतिनि, नीठीविनि,
महा ।। मेरु० ।।

अलकल मुद्दुनु, तिलकपुतीरुनु
तलुकु जेक्कुलचेदनरु नेम्मोमुनु
गलमुन शोभिल्लु कनकभूषणमुलु
दलित दुर्मानव, त्यागराजनुत ।। मेरु० ।।

१. अहा! नख से शिख तक लावण्य से भरे हुए रामचंद्र की झाँकी भर-आँख देख लो। ये महानुभाव श्री (लक्ष्मी) देवी के चित्तरूपी कुमुद को पूर्ण-चंद्र के समान आनन्द देनेवाले हैं। अनन्य सुन्दर हैं। हे प्रभो! प्राणों के प्राण राम, जैसे आप हैं, वैसे ही आपका हृदय है, सौंदर्य है और शरीर-तत्त्व हैं! ये तीनों निराले, अपने ढंग के हैं। विशेष कर जिस धातु से आपका शरीर बना है, वह तो एकदम अनुपम विलक्षण है। हे त्यागराजविनुत! ऐसे आपको छोड़कर तमोगुणप्रधान अन्य देवों के पीछे पड़ने की आवश्यकता ही क्या है?

२. हे मेरुसमान-धीर! भक्त-वरद! रघुवीर! तनिक इधर आओ तो स्वामिन्! देखूँ, तुम्हारी छवि कैसी है। अहा, विश्व के समस्त सार-तत्त्वों के सार, तुम्हारी नीरद कांति, चलने की बाँकी अदा एवं राजसी शान मेरे मन में पैठकर अड़ गई है। जरा देख लेने दो प्रभुं! हवा के हल्के झोंकों से लहरानेवाली घुँघराली अलकों की मिठास के आगे तो मैं बिक जाऊँ। भाल पर शोभित तिलक आरसी से कपोलोंवाला चेहरा, शंख से गल-प्रदेश में सुशोभित स्वर्णाभूषणों की जगमगाहट, इन सभी ने तो मानो मुझ पर टोना-सा कर दिया है। दुष्ट मानवों का दलन करनेवाले हे भगवन्! तनिक नयन-पथ में आ जाओ, तुम्हारी अनुपम छवि पी जाऊँ।

यों तो श्रीरामचंद्र का प्रत्यंग त्यागराज के मन में भक्ति व आनंद का नशा पैदा करनेवाला है किंतु सबसे बढ़कर उनकी सुन्दर अलकें भक्त के हृदय में जो तूफान खड़ा करती हैं, उसकी चर्चा वे अपने गीतों में पग-पग पर करते हैं। एक छोटे किंतु भावना से ओत-प्रोत पद में, राजर्षि विश्वामित्र के भाग्य की जो भूरि-भूरि प्रशंसा उन्होंने की है, उसके लिए कारण वे अलकें ही बनती हैं। अलकों को एक निमित्त बनाकर विश्वामित्र के अंतर्जगत की जो मार्मिक एवं अपूर्व ध्वनिमय व्यंजना की गई है, वह त्यागराज के कविहृदय की गहराइयों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है।

मध्यमावती—रूपक

अलक लल्ललाडग गनि या राणमुनि येट्टु पोंगेनो!
चेलुवुमीरगनु मारीचुनि मदमणचुवेल ।। अलक० ।।
मुनि कनुसैग देलिसि शिवधनुवुनु विरिचेडि,
समयमुन, त्यागराजविनुतुनि मोमुन रंजिल्लु ।। अलक० ।।

वाच्यार्थ संक्षेप में यह है—अत्यंत सौंदर्य के साथ मारीच का मान-मर्दन करते समय श्रीरामचंद्र के दर्पण-से चिकने माथे पर लहरानेवाली अलकों को देख, जाने वह राणमुनि (राजर्षि) कितना फूल उठा होगा! (फिर) अपनी आँख का इशारा मात्र पाकर पिनाक तोड़ते समय, त्यागराज के भगवान् के मुख पर उड़नेवाली अलकों की छवि पानकर, जाने वह राजर्षि कितना फूल उठा होगा!

इस छोटे से पद में रामायण के दो प्रसंगों का जिक्र आता है,—विश्वामित्र-याग-रक्षण और हरधनुर्भंग का। दोनों प्रसंगों पर विश्वामित्र की दृष्टि रामचंद्र के भाल को छोड़ और किसी भी अङ्ग पर नहीं पड़ती है। मानों वह ललाट पार्थिव एवं स्वर्गीय सौंदर्य का अक्षय कोष हो; लौकिक एवं आध्यात्मिक छवि की संधि-स्थली हो! जिस पर-तत्त्वप्राप्ति के पीछे सारा जीवन लगाए बैठे हों, उसी को शिष्य के रूप में अपने आज्ञापालन में व्यस्त देख आनंद-हृद में गोते लगानेवाले विश्वामित्र का भाग्य-ही-भाग्य है! यहाँ यह समझना भूल होगी कि उन राजर्षि की दृष्टि केवल घुँघुराले केशों की ओर ही गई थी। भला, उन अंतर्दृष्टिवाले तपस्वी का ध्यान कभी

शारीरिक लावण्य की तरफ होना संभव है ? उन्हें तो अपनी आत्मा में रमनेवाली परम-सत्ता ही मूर्त-रूप धारण किए सामने खड़ी दिखाई पड़ी। उस अमूर्त और सूक्ष्म (नीवारशूकवत्) तत्त्व का यह मूर्त और स्थूल रूप देख वे अवश्य आनंद से गद्गद् हो जाएँ, यह सहज था। अथवा यों भी समझ सकते हैं, उन्होंने तो काकपक्षालङ्कृत रामचंद्र जी के उन्नत भाल पर उस दिव्य ज्योति का दर्शन किया होगा, जिसकी अनुभूति यदा-कदा निर्विकल्प समाधि की दशा में पा लेते थे। उन महर्षि के हृदय की उमङ्ग का एक और भी कारण हो सकता है। उन्हीं की देख-रेख में रामचंद्र जी ने अपने अवतार लेने के प्रयोजन को कार्यान्वित करने का श्रीगणेश किया है। यही नहीं, लोक-रक्षा एवं कल्याण का प्रतीक कोदंड (धनुष) धारण कराने तथा अचूक बाण चलाने की शिक्षा देकर वे ही उन जगद्गुरु के अस्त्र-गुरु बने हैं! अर्थात् लोक-रक्षा के काम में उन्हें प्रवृत्त करने का श्रेय पहले पहल वे (विश्वामित्र) ही लूट बैठे हैं! क्या यह किसी भी महर्षि के लिए, चाहे वह कितने ही निर्द्वंद्व स्वभाव का हो, कम हर्ष की बात है? अतिरिक्त इनके एक और भी विषय रह जाता है, जिसके लिए कौशिक जितने भी हर्षित हों, अपर्याप्त ही होगा। रामचंद्र जी के लिए उत्तरदायी वही जो हैं! उन्हीं ने धनुर्विद्या में कुशल बनाकर श्रीराम को इस योग्य बनाया है कि बात-की-बात में वे उसे तोड़ बैठे! जिस घड़ी प्रभु अयोध्या छोड़ उनके पीछे चल पड़े, तभी से लोकरक्षा का कार्य प्रारंभ हुआ है। उसी घड़ी पर रामायण की उल्लेखनीय घटनाओं का सूत्रपात हुआ है। भगवान् के अपूर्व आशय—लोकरक्षा—की पूर्ति में साधन बनने का अवकाश उन्हीं को मिला। अतः विश्वामित्र का भाग्य-ही-भाग्य कहा जाएगा।

इस प्रकार न मालूम कितनी भावनाएँ उक्त छोटे पद से व्यंजित होती हैं! उर्वर हृदय व मस्तिष्कवाले सज्जन जितनी गहराई में पैठेंगे, उतने ही मूल्यवान् भाव-मुक्ता हाथ लगेंगे।

त्यागराज की तरह हिन्दी के प्रेम रस-खान रसखानि भी, जिन भगवान् को, 'नारद से सुक व्यास रटैं, पचिहारे तेऊ पुनि पार न पावैं।'

ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचाते हुए देखकर भाव-विह्वल हो उठे थे! त्यागराज के विश्वामित्र और रसखानि की 'अहीर की छोहरियों' के जीवन ही जीवन हैं! हाँ, तो श्रीरामचंद्र जी के भव्य एवं दिव्य सौंदर्य ने ही सर्वप्रथम त्यागराज पर जादू चलाया था, जिससे वे उन भगवान् के बिना मूल्य के दास बन गए थे।

दूसरी बात, जिसने जबर्दस्ती त्यागराज को श्रीराम का भक्त बना डाला था, उन मर्यादा पुरुषोत्तम का शील है। उनके बोलने-चालने में वह आकर्षण परिलक्षित होता है, जिसके कारण सभी लोग आप ही उनके बशंवद् हो जाते हैं। अपने आराध्य के इस शील-सौंदर्य पर त्यागराज लट्टू हो जाते हैं! वार्त्तालाप तथा शील के बल पर दुनियावालों को वश में कर पाना कितना कठिन है, इसका अनुभव प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। तभी तो श्रीराम के शील की प्रशंसा सुन वे विस्मय प्रकट करते हैं।

तोडी—आदि

येमनि माटाडितिवो ! राम ! येवरिमनसु
येविधमो देलिसि ॥ येमनि० ॥
माम, मरदुलनुजुलु, तलिदंड्रुलु,
भामलु, परिजनुलु, स्ववशमौट ॥ येमनि० ॥
राजुलु, मुनुलु, सुरराजुल, वरदिग्राजुलु
मरिशूरुलु शशिधर दिनराजुलु लोबडि नडुवनु
त्यागराजविनुत, नय भयमुग मुद्दुग ॥ येमनि० ॥

हे प्रभु श्रीराम! पता नहीं आप किन-किन लोगों के हृदय समझकर किस प्रकार उनसे बोला करते हैं, क्योंकि आपके भाई, ससुर, माँ-बाप, अन्य स्त्रियाँ, नौकर-चाकर सभी आपके आज्ञानुवर्ती रहते हैं। जाने आपके पास शब्दों का कैसा अनोखा जाल है, जिसमें राजा लोग, ऋषि-मुनि, दिशापालक, बड़े-बड़े वीर, सूर्य, चंद्र आदि सभी आप ही आकर फँस जाते हैं। क्या मालूम किस-किसको मीठे बोल बोलकर, विनयवचनों से अथवा आवश्यक होने पर तनिक भय भी दिखाकर आपने वशवर्ती बना लिया है।

और सभी तरीकों से जान पड़ता है, रामचंद्र मीठे बोल बोलकर ही औरों के मन रखते और जीत लेते हैं। उनके प्रिय तथा मृदुभाषण की समता कोई कर सकता है? उन बोलों के आगे खंड-शर्करा की मिठास फीकी लगती है। वे दशरथनंदन, अपने सभी दरबारियों को एक एक

कर पास बुलाकर उनसे जो प्रेमभरी बातें करते हैं, वे मिठास में मिश्री की हँसी उड़ाती हैं।

पलुकु कंडचक्करनु गेरुने ! पणतुलार ! जूडरे ॥
कोलुवु कूटमुनमु गोलुचुवारिनि
बिलिच दाशरथि प्रेममिर बलुकु ॥ पलुकु० ॥

ठीक तो है, राजा राम ऐसे ही रहे—

'प्रियवादी च भूतानां सत्यवादी च राघवः
स्मितपूर्वाभिभाषी च, धर्मं सर्वात्मनाश्रितः
उत्तरोत्तरयुक्तौ च वक्ता वाचस्पतिर्यथा ॥'
(रामायण)

फिर तुलसी के राम तो शिशुपन से शील के समुद्र ही रहे—

सुनि सीतापति-सील-सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलकि नैन जल, सो नर खेहर खाउ ॥

खेलत संग अनुज बालक नित जुगवत अनट उपाउ
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ ॥
सिला साप संताप विगत भई, परसत पावन पाउ।
दुई सुगति सो न हरि हरषि हिय, चरन छुये पछताउ ॥
कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गे राउ।
ता कुमातु के मन जुगवत ज्यों, निज तनु मरम कुघाउ ॥
निज करुना करतूति भगत पर, चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फरि गाउ ॥
समुझि समुझि गुन ग्राम राम के, उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास राम पद, पइहै ! प्रेम-पसाउ ॥

बलिहारी ! कैसा सौहार्द्र है !

भक्त-लौहशकलों के महान् चुंबक दशरथनन्दन का तीसरा और सबसे प्रबल आकर्षण उनका अद्भुत बल है। अपूर्व बल कहने से हमारा अभिप्राय वह विवेक-रहित शक्ति नहीं, जो बहुधा पशुओं में पाई जाती है। जो प्रजा-रञ्जन अथवा लोक-रक्षा के काम न आए, वह बल भी कोई बल है ? यदि यही सही माना जाए तो महिष, वाराह, हाथी आदि जड़-जंतुओं की शक्ति का आदर्श मानना पड़ेगा किंतु बात कुछ दूसरी ही है। क्षमा, विवेक आदि सद्गुणों से युक्त एवं मानव-कल्याण के व्यापारों में प्रयुक्त शक्ति ही आदर्श शक्ति है। ऐसी विवेक-सहित शक्ति का जैसा सुन्दर समावेश त्यागराज को श्री रामचंद्र जी के जीवन में लक्षित हुआ, वैसा अन्य किसी भी देवी-देवताओं में नहीं। समस्त सद्गुणों की मर्यादा और शील के मूर्त-तत्त्व उन महात्मा के लिए कौन काम असम्भव होगा ? 'क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतान्नोपकरणे' यह सूक्ति मुधा कब हो सकती है ! श्री राम का संकल्प ही उनका बल है। वे बोलते बहुत कम हैं; किंतु जो कुछ बोलते हैं, काफी सोच-समझ कर, निश्चित धारणा के साथ। कोई काम करना चाहते हैं, तो संकल्प कर लेने भर का विलंब रहता है; तुरंत वह कैसा भी कठिन काम हो, आप ही समाप्त हो जाता है। ऐसी ही विभूतियों को लक्ष्य कर उपर्युक्त उक्ति चल पड़ी है। एक विचार, एक बात, एक बाण और एक पत्नी, यही त्यागराज के आराध्य के जीवन का अमर आदर्श है।

ओक माट, ओक बाणमु, ओक पत्नी व्रतुडे मनसा।
ओक चित्तमु गलवाडे, ओक नाडुनु मरुवकवे ॥ ओक० ॥

हे मन ! एक बात, एक बाण, एक पत्नी और एक चित्तवाले प्रभु का स्मरण एक दिन के लिए भी मत भूलो।

श्रीराम के चित्त (शील) और बोली की चर्चा ऊपर हो चुकी है। फिर उनका बाण याने बल होता है कैसा ? उनके धनुष-बाण की कल्पना मात्र से भक्तवर का हृदय विस्मयाविल हो उठता है। अद्भुत तथा आनंद के भावांबुधि में गोते लगाते हुए वे अपने भगवान् से स्वयं पूछ लेते हैं :—

मध्यमावती—आद

येवरिच्चिरिरा ? शर चापमु नीकिनकुलाब्धिचंद्र !
अवतरिंचुवेल नुंडेनो ? लेक यवनिकेगि यार्जिंचितिवो ?
नी ॥ केव० ॥
ओकटेसि पदि नूरै, वेय्यै, चकपकलाडि शत्रुल नणचेनट।
विकलुनि काकिनि ब्रोव त्रिमूर्तुलु-वेनुकदीसिरट ॥
सकल द्रुमकुल्युल नदीपति कै सहरिंचेनट ! (!)
प्रकटकीर्ति गल्गिन कोदंडपाणि ! श्रीत्यागराज विनुत !
नी ॥ केव० ॥

हे इनकुल-सागर-चंद्र श्रीराम ! भला, ये शर और धनुष आपको किसने दिए हैं ? आपके साथ ये अवतार लेते समय ही जग आए हैं, अथवा आपने इन्हें पृथ्वी पर आने के बाद प्राप्त कर लिया है ? सुनता हूँ, आपके धनुष से छूटता तो एक ही बाण है किंतु वही एक देखते-देखते दसों, सैकड़ों और हजारों की संख्या में परिवर्तित एवं

परिवर्द्धित हो, अपनी फुर्ती और चमक से दुनियावालों को चकाचौंध बना डालता है; शत्रुओं का मान-मर्दन कर डालता है! विकृत अंगवाला काकासुर आपकी बाणाग्नि से व्याकुल हो त्रिमूर्तियों की शरण में गया तो मालूम होता है, उसकी तीव्रता कम करने की हिम्मत उनमें से किसी को भी नहीं पड़ी थी! अहा, ऐसे महिमावाले शर-चाप आपको किसने दिए थे, प्रभु?

अपने आराध्य की अपूर्व शर-शक्ति के इस वर्णन से त्यागराज के मन को संतोष नहीं होता है। हमारा ध्यान वे श्रीराम की प्रत्यञ्चा की ओर लगाते हैं, जो अकेले अपनी टङ्कार से ही, उनकी सेना में नवजीवन एवं उत्साह का सञ्चार करा देती है!—

सावेरी—आदि

रामबाण त्राण-शौर्य मेमनि देलुपुदुरा? ओ मनसा ॥
भामकास पट्ट रावणु मूलबलमुल नेल गूलजेयु ॥ राम०
तम्मुंडु बडलिन वेल, सुररिपु तेम्मनि
चक्केर पंचिय्यग गनि,
तेम्मनुचुनु इंद्रारि बल्क समयम्मनि लेवगा।
सम्मतितो निलबडि कोदंडपु ज्या-घोषमु
लशनुल जेसि, नेम्मतिगल तोड्डु जूचेनुरा,
निजमैन त्यागराजनुतुडगु ॥ रामबाण०॥

त्यागराज इस अपूर्व पद में अपने मन का ध्यान श्रीराम के बाण की रक्षक शक्ति की ओर कराते हैं:—

हे मन, श्रीरामबाण की त्राण-शक्ति का वर्णन मैं किन शब्दों में करूँ? स्त्री के पीछे पागल त्रिलोक-विजयी रावण के मूल-बल नगर-रक्षा के लिए नियत सेना का सर्वनाश करनेवाले राम-बाण की रक्षक शक्ति की प्रशंसा मुझ जैसा अल्पमति कैसे कर पाएगा? रण-भूमि में भाई लक्ष्मण शक्ति लगने से मूर्छित हो गए तो इंद्रारि (रावण) के पक्षवाले आनंद के अतिरेक से आपस में मिठाइयाँ बाँटने लगे; इधर अपनी कपि-सेना का धीरज टूटने लगा! यह मौका पाकर रावण अपने सैनिकों को नए सिरे से आक्रमण करने के लिए ललकारने लगा। 'बंधु-बिछोह' से अल्पकाल के लिए उदास बैठनेवाले प्रभु ने यह देखा तो तुरंत सम्भलकर उठ खड़े हुए और ज्या-टङ्कार कर बैठे! फिर क्या था, शत्रु-सेना पर हजारों बिजलियाँ टूट पड़ीं! उनके पैर उखड़ गए। (बेचारे रावण के मनसूबों का महल ढह गया) राम ने अपने साथियों में गए हुए उत्साह और आशा का पुनः प्रवेश होते देखा। ऐसे त्यागराज के प्रभु के शर की त्राण-शक्ति का उल्लेख किन शब्दों में करूँ?

इस सुन्दर 'कृति' के द्वारा त्यागराज ने अपने आराध्य की कई अपूर्व एवं गूढ़ शक्तियों पर प्रकाश डाला है। राम-बाण की शक्ति त्राण-शक्ति ही है न कि भक्षक-शक्ति। दुष्ट प्रकृतियों का भक्षण एवं शिष्ट मनस्तत्वों का त्राण अर्थात् रक्षण, यही उस बाण का—एक ही बाण, उससे अधिक नहीं—एकमात्र लक्ष्य है। एक स्त्री का सतीत्व हरण करने में आसक्त इन्द्रारि के समस्त मूल-बलों तक को उस बाण का शिकार बनना पड़ा। यहाँ रावण के लिए 'इंद्रारि' शब्द का प्रयोग करने में कविवर त्यागराज का औचित्य-विचार स्पष्ट दीखता है। राम-बाण का एकवचन प्रयोग और इंद्रारि शब्द से व्यंजित होनेवाली रावण की अनन्य-शक्ति, इन दोनों का एक साथ समावेश कर उन्होंने अपने अद्भुत कवि-हृदय का परिचय दिया है। भाव-व्यंजना की दृष्टि से 'मूलबल' शब्द का प्रयोग भी अधिक महत्त्व रखता है। विश्वविजयी रावण को रणरंग में अपने मूल-बल का प्रयोग करने की जरूरत तभी पड़ी थी, जब उनकी शेष सभी छँटी हुई सेनाएँ निश्शेष हो गईं! इतना सारा उत्पात मचाया था श्रीराम के धनुष से छूटे एक बाण ने! किंतु यह सारी शक्ति जड़ शर की ही हो और उसकी बराबरी करनेवाली धी-शक्ति का उसमें लोप हो; सो बात नहीं। समर-विजयी राम समर-तंत्र के मर्मों से, बारीकियों से अनभिज्ञ नहीं थे, उलटे इस 'फन में उस्ताद' ही थे। वे जानते थे कि युद्ध में सब कुछ गवाँ कर भी अपने सैनिकों के धीरज एवं उत्साह की रक्षा अंत तक करनी आवश्यक है। वही विजय की कुञ्जी है। जहाँ सैनिकों में पस्त-हिम्मती और ढिलाई नजर आई, बस, समझना चाहिए बाजी हाथ से निकल गई। इस सूक्ष्म रहस्य से भली-भाँति परिचित होने के कारण श्रीराम ने जहाँ यह देखा कि लक्ष्मण-मूर्च्छा का सत्यानाशी प्रभाव अपने दलवालों पर पड़ रहा है, तुरंत शोक छोड़कर बिजली की कड़क-सी ज्या-टङ्कृति के द्वारा उनके गिरे हुए साहस व उत्साह को उठाया! फिर एक बार ग्रीष्म-संतप्त लतिका में वर्षागमन के कारण परिलक्षित नव-जीवन की सी उमंग अपने लोगों में पाकर वे स्वस्थ-चित्त हुए थे। इस अपूर्व पद में एक और शब्द 'तोड्डु' याने 'मुट्ठी भर

साथी' का प्रयोग भी भाव-व्यंजना में अत्यंत सहकारी है। यह शब्द श्रीराम की शर-शक्ति की आत्यंतिकता की अद्भुत व्यंजना करता है! एक ओर युद्धभूमि में रावण खड़ा है और दूसरी तरफ राम। एक के पास असंख्य लाखों करोड़ों सेनाएँ और उनके अतिरिक्त नगर-रक्षार्थ नियत मूल-बल हैं। उनके मुकाबिले में श्रीराम के मुट्ठी भर लोग (तोड़ु) साथ हैं! और-तो-और श्रीराम युद्ध कर रहे हैं, शत्रु की नगरी में जाकर! अपने घर में कुत्ता भी शेर होता है, तो रावण जैसे प्रतापी आतंकवादी की बात कहना ही क्या? इतना सब होते हुए भी श्रीराम के एक बाण ने, ज्या-टङ्कार मात्र ने, उस राजा की आशाओं पर पानी फेर दिया था! कैसे शक्तिशाली हैं, श्रीराम! साथ लगे एकमात्र भाई के बिछोह पर भी वे युद्ध की गति-विधि से विमुख अथवा विमन न रह सके! कैसी स्थिरबुद्धि है उन महापुरुष की! ऐसे शक्तिशाली के चरणों पर यदि त्यागराज बिक गए, तो आश्चर्य क्या है? किसी का, ऐसे अपूर्व बल, शील व सौंदर्य से अप्रभावित रह जाना ही वास्तव में अचम्भे और धिक्कार की बात है! तुलसीदास जी के शब्दों में—

"अवलोकि हौं सोच-विमोचन को ठगि सी रही,
जे न ठगे धिक से।"

"सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नैन जल, सो नर खेहर खाउ।"

ऐसे अनन्य-सुलभ शील, बल एवं सौंदर्यवाले प्रभु का अंग-प्रत्यंग भक्तवर को लोक-रक्षा और दुष्ट-संहार का मूर्त-तत्त्व लगता है। तभी तो उनके दर्शन की प्यास से उनका हृदय छटपटाने लगता है। मानों, लोक-कल्याण एवं दुष्ट-शक्तियों का दलन, इन दोनों विषयों से रहित श्रीराम का उनके समक्ष कोई महत्त्व ही नहीं हो!

सौराष्ट्र—चापु

विनयमुननु कौशिकुनि वेंट जनिनां, ग्रुलनु जूचुन
देन्नटिको।
अंदु वेनुक रातिनि नातिग जेसिन, चरण मुलनु जूचुन
देन्नटिको॥
चनुवुन सीतनु बोट्टु गट्टिन, करमुनु जूचुन देन्नटिको।
कोपमुन भृगुसुतु चापबल मंदुकोन्न, बाहुवु जूचुन देन्नटिको।
वनमुन जनि विराधुनि जंपिन, चेतुलनु जूचुन देन्नटिको।
अल्लमुनिजनुलनु गनि यभयमिच्चिन हस्तमुनु जूचुन
देन्नटिको।
वनधि मदगर्व मडचिन, सायकमुनु जूचुन देन्नटिको।
वनचराधिपुनि चल्लग जूचिन, नेत्रमुनु जूचुन देन्नटिको॥
दिनमुनु लंक वर्द्धिल्लनु जूचु, लोचन मुनु जूचुन देन्नटिको।

अहा! विश्वामित्र के पीछे अत्यंत विनय के साथ चलनेवाले तथा पत्थर का शाप दूर करनेवाले (सौशील्य तथा लोककल्याण के प्रतीक) चरणों को देखने का योग जाने कब मिलेगा? बड़े प्यार से सीताजी के गले में मांगल्य पहनाने तथा परशुराम जी के धनुष के साथ-साथ कुपित नेत्रों से उनकी सारी शक्ति भी छीन लेनेवाले हाथों को जाने कब देखने का भाग्य मिले! जंगल में विरोध का बध कर तपस्वियों को अभयदान देनेवाले हाथों तथा जलधि का मान मर्दन करनेवाले बाण के दर्शन जाने कब होंगे! सुग्रीव की तरफ दया बरसाते हुए तथा लंका-नगरी को सुख-शांति प्रदान करते हुए प्रसारित लोकरक्षा-दक्ष नेत्रों को पता नहीं कब देखने का संयोग मिले!

बलिहारी! श्रीराम का लोक-मंगलकारी कैसा सौम्य रूप है! नीचे के पद में श्री गुँसाई जी भी कुछ इसी प्रकार की उत्कण्ठा व्यक्त करते हैं।—

कबहुँ देखाइहौ हरि, चरन!
समन सकल कलेस कलिमल, सकल मंगल करन,
गंग जनक, अनंग अरि प्रिय, कपट्ठ वटु बलि-छरन।
विप्र तिय नृग, बधिक के दुख-दोष-दारुन-दरन॥

राजनीति में भी, त्यागराज को, श्रीराम बड़े ही असमान प्रवीण नजर आते हैं। उन्होंने शत्रु रावण को, पहले सीधे वचनों से, फिर अपनी अयोध्या देने तक का (दान) संदेश भेजकर, बाद को उसके पक्ष में फूट डालकर विभीषण को अपनी तरफ मिलाकर—समझाने तथा सही मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया था किन्तु जब उनमें से कोई भी उपाय कारगार सिद्ध न हुआ अंतिम नीति 'दंड' का सहारा लिया था। अपने अपकारी के प्रति बदला लेने की हिंसक प्रवृत्ति उनमें कभी नहीं थी। समस्त राक्षस जाति से उन्हें कोई द्वेष न रहा। राक्षस-राजा की पापी नीति से ही वे नफरत करते थे। उस विषवृक्ष के निरसन के अनंतर समस्त लंका फूली फली! 'पाप से द्वेष करो, किन्तु पापी से नहीं' वाली रामराज्य की यही सर्वोत्तम नीति

स्व० राष्ट्रपिता बापू आमरण जपते रहे। हाँ तो, श्रीराम को बल-प्रयोग करना पड़ा था, अंत में विवश होकर—

कापि नारायणी—देशादि

सरस साम-दाम-भेद-दंड चतुर! साटि दैव मेवरे? ब्रोववै ॥ सर०॥
परम शांभवाग्रेसरु डनुंचु बल्कु रावणुडु तेलियलेक पोये ॥ सर०॥
हितवु माटलेतो बागा बल्किनतिवि, सतमुगा नयोध्यनिच्चु
नटिवि नत सहोदरुनि राजु चेसि, राक हतमु जेसितिवि त्यागराजनुत ॥ सर०॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने आराध्य को चुनते समय त्यागराज ने भी उन्हीं बातों पर ध्यान दिया था, जिनको तुलसीदास ने महत्वपूर्ण समझा—यानी भगवान् का शील-सौंदर्य एवं शक्ति। लोक-मंगलाशा तथा मर्यादा, वाद के विचारों से पूर्ण उन महानुभावों की आत्माओं को पूर्ण आलंबन तथा प्रश्रय उन मर्यादा-पुरुषोत्तम की सुखद छत्रछाया में ही, अमृतोपम कथा-श्रवण में ही, मिल सका था। राम-कथा-सुधारस-साम्राज्य का जो भव्य रूपक श्रीत्यागराज ने बाँधा है, उसका दर्शन कराकर यह प्रसंग समाप्त करूँगा।

मध्यमावती—रूपक

राम-कथा सुधारस मोक् राज्यमु चेसुने ॥ रा०
भामा मणि जानकि सौमित्रि भरतादुलतो भूमिवेलयु ॥ रा
धर्माद्यखिल फलदमे, मनसा! धैर्यानंद सौख्य निकेतनमे।
कर्मबंध ज्वलनाब्धि नाममे! कलिहरमे! त्यागराज विनुतुडगु! ॥ राम

हे मन, रामकथा-सुधारस-पान एक साम्राज्य ही है! उसमें माता जानकी, लक्ष्मण, भरत आदि विभूतियों का नित्य-प्रति विहार चलता रहता है! उस राज्य में समस्त धर्मों की खेती चलती है; सुख, धैर्य, आनंद आदि परम शक्तियों का वह अपूर्व निकेतन है! कर्म-बंधन रूपी समुद्र जल को सोखनेवाली बाड़व ज्वाला, वह नाम है। त्यागराज के भगवान् के उस अमर राज्य में कलि के समस्त व्यापारों पर रोक लगा दी गई है।

कैसा अच्छा होता कि हम भी थोड़े समय के लिए सही, उस साम्राज्य के निवासी बन जाते!

अमर हैं त्यागराज।
अमर हैं उनके श्रीराम!!

गद्य काव्य

यदि जा सको

कुमारी प्रभा पारीक

"जाओ!"

"यदि तुम्हारा मन कहता है—समस्त इन्द्रियों की, तुम्हारी अन्तर्वेदना की, समस्त चेतना की, पुकार है तो अवश्य जाओ।"

"हमने तुम्हें कब रोका था, पथिक?"

"वसन्ती प्रभा छा गई थी। मधुवात मधुमयी लहरें उठाता कण-कण को श्री-सम्पन्न करता चला जाता था। हमारी यौवन-सुषमा खिल उठी थी। भावनाएँ किसी राग पर नाच उठी थीं। जीवन किसी मुग्धता में सुमन-सा स्मित हो उठा था। उस समय तुम्हीं तो उन्मत्त हो हमारे पास भाग आए थे। सब ओर से विस्मृत हो हमारे साथ तन्मय हो कुछ न देख सके थे। आज ये पतझर के पीले पात, पवन की धूल झोंकनेवाली गति, अट्टहास करने वाला स्वर, यदि तुमसे कहता है जीवन उपहास है, व्यंग्य है, समस्त श्री विश्री हो जाएगी, तो तुम जाओ। हम न रोकेंगे, हम न पकड़ेंगे। हमारा रुदन तुम्हारी करुणा को पुकारेगा। हमारा हास्य तुम्हें मोहेगा। तुम्हारी भावना सारा ज्ञान भूलकर हमसे लिपटेगी; तुम रुकोगे?"

"पश्चिम की लालिमा विदा ले चुकी थी। राका रजत परी-सी उड़ती आ रही थी। धरा बेसुध-सी हो रूप में लीन लहलहा रही थी। हम रजत-सुमनों से सज, विलास-स्वप्नों में हँस, सौन्दय की प्रतिमा बने साकार आकर्षण-से हँस रहे थे। तुम हमारी ओर बेसुध-से बह आए थे। हममें निमग्न सब कुछ भूले, निशा की नीरव अँधियारी को भी न देख सके थे। तारों ने रात्रि के मध्य कोई मन्त्र फूँक दिया है। निशा ने तुम्हें नैराश्य से भर दिया है। तुम हमसे ऊब अँधियारा समझ चल दिए। तो जाओ, हम न रोकेंगे। हमारी मदभरी हँसी, आकर्षक विलास, हमारे शरीर की सुगन्धभरी बास, तुम्हें फिर हमसे लिपटने को पुकारेगी। तुम रुकोगे। जा न सकोगे!

"इन्द्र धनुषी सतरंगी आभा में हम प्राची के किसी कोने में चित्रित हो गए थे। तुम सौन्दर्य-विलासी मुग्ध हमारे रंगों में ही रंगने आए। आज तुमसे कोई नभ के पार कह रहा है—'वह केवल छलना थी—वाष्प थी।' तुम जा रहे हो। हम वैसे ही रंगों में सजकर फिर सजीव चित्र बनेंगे। तुम मुग्ध हो रुकोगे। जा सको तो चले जाना।

'मधुमास था'। जगती के सौन्दर्य को, वैभव-विलास को, मथकर युवक-हृदय के लिए मदिरा भर ली। तुम दौड़ आए। बिना पूछे ही विलास-विभोर हुए ओठों से लगा लिया। प्रकृति का शान्त वातावरण कोई निहित आत्मा, ऋषि मुनियों के दार्शनिक वाक्य, तुम्हें पुकार रहे हैं। तुम छोड़कर जा रहे हो। हम फिर चषक भरेंगे तुम पानकर भूल जाओगे। ठुकरा सकोगे? तो तुम जाओ, हम तुम्हारा मार्ग न रोकेंगे।"



विविध विषय

गीतों का देश

यों तो प्रत्येक देश और जाति के अपने-अपने गीत होते हैं और इन गीतों में सभी प्रकार के रसों का समावेश रहता है, किन्तु प्रकृति-भेद तथा परिस्थितियों के कारण कहीं किसी रस के गीतों की अधिकता होती है तो कहीं किसी रसकी। हिमालय के अंचल में स्थित गढ़वाल जैसे अपने प्राकृतिक दृश्यों के लिए प्रसिद्ध है, वैसे ही सुन्दर उसके गीत भी हैं। यहाँ का अणु अणु काव्यमय है। प्रकृति के निरन्तर मधुर गान को सुनकर यहाँ के मानव की हृत्तन्त्री झंकृत हो उठती है और वह मुखर हो जाता है, उसकी भाषा गान बन जाती है। जन्म के गीत तो स्वाभाविक हैं पर यहाँ मृत्यु का रुदन भी गीतमय होता है। कोई इन गढ़वालियों के सम्पर्क में आए तब वह देख पाएगा कि यहाँ का साधारण चरवाहा भी कैसा सहृदय और भावुक है। पर जहाँ ये प्रकृति के पुजारी होते हैं, वहाँ इनमें वीरता की भी कमी नहीं। प्रकृति इनको अपनी रूपछटा दिखाकर शिथिल नहीं कर सकती। ये सदैव जागरुक रहते हैं। इसके कारण भी हैं। पुराने जमाने में गढ़वाल पर अपने पड़ोसी राजाओं-द्वारा बराबर आक्रमण होते रहे और उसका अधिकांश समय लड़ाइयों में ही बीता। कभी कभी वह स्वयं भी आक्रामक बना। उस समय की गाथाएँ आज भी 'पँवड़ों' के रूप में यहाँ विद्यमान हैं, आधुनिक युग की लड़ाइयों में भी गढ़वाली पल्टनों की वीरता प्रसिद्ध है। और यही कारण है कि शृंगार, करुणा, आदि रसों के बजाय यहाँ वीररस के गीतों की अधिकता है। यहाँ इतने अधिक गीत हैं कि इसे गीतों का देश कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं। यद्यपि यहाँ की लिपि देवनागरी है और पाठशालाओं में पढ़ाई हिन्दी भाषा में ही होती है पर बोलचाल की भाषा गढ़वाली है, जो अन्य किसी भी जिले की भाषा से नहीं मिलती। ये ग्रामगीत इसी भाषा में गाए जाते हैं। गढ़वाली भाषा का अपना लिखित साहित्य भी है। इसकी अब बराबर वृद्धि होती चली जा रही है। शिक्षित वर्ग का ध्यान इस दिशा की ओर पलट चुका है। लेखक और कवि इस ओर बराबर प्रयत्नशील हैं। समय आएगा और इन सभी ग्रामगीतों का संग्रह होकर गढ़वाली साहित्य की यह थाती और सुरक्षित हो जाएगी।

रसों की दृष्टि से इन गीतों को कई भागों में विभाजित किया जा सकता है। पर मुख्यतया इन्हें सात श्रेणियों में रखा जा सकता है—

१—प्रेमगीत, जो अधिकांश बादियों द्वारा गाए जाते हैं।

२—स्त्रियों के जंगलों में या चक्की पर गाए जानेवाले गीत

३—बाँसुरी पर बजाए जानेवाले गीत।

४—थड़िया गीत (साधारण, चौंफुलो, झुमैलो आदि), जो सामूहिक रूप में बसन्तपंचमी की रात्रि से लेकर विषुवत् संक्रान्ति की रात तक गाए जाते हैं।

५—वीरगाथाएँ (पँवड़ा, भटगारुड़े आदि)। ये हुड़की वाद्य बजाकर भी गाए जाते हैं।

६—देवताओं-सम्बन्धी गीत (वार्ता, जागर, राँसा आदि)। ये ढोलदमाऊँ और डमरूथाली वाद्य-विशेष बजाकर गाए जाते हैं।

७—विवाहादि उत्सवों पर गाए जानेवाले गीत, (मांगल आदि)।

देवता-सम्बन्धी गीतों में बाजे बजते हैं और नृत्य भी होता है। थड़िया गीतों में केवल नृत्य होता है, बाजे नहीं बजते। पँवड़े अधिकांश हुड़की बजाकर गाए जाते हैं और कई मनचले लोग नाचते भी हैं। बाकी गीत केवल गाए जाते हैं। उनमें न तो नृत्य होता है, न बाजे ही बजते हैं पर प्रेमगीत या अन्य गीत जब बादियों-द्वारा

गाए जाते हैं तो बाजा भी बजता है और वादियों की बधुएँ नृत्य भी करती हैं।

कुछ गीत यहाँ ऐसे भी हैं, जिनके केवल दो ही चरण होते हैं पर पहला चरण कुछ अर्थ नहीं रखता केवल तुकबन्दी के लिए ही वह मिलाया जाता है। पर देखा जाए तो वह निरर्थक चरण गीत की लय में बड़ा सहायक सिद्ध होता है। यदि यह न हो तो गीत की गति ही रुक जाए। बाकी गीतों के दोनों चरण अर्थ रखते हैं, पर ऐसे गीत किसी कथा के रूप में होते हैं और ये सिलसिलेवार ही गाए जाते हैं। पाठकों के मनोरंजनार्थ दो एक गीत फुटकर रूप में उदाहरण के लिए यहाँ दे रहा हूँ।

एक प्रेमगीत, जिसका पहला चरण निरर्थक है—प्रेमी प्रेमिका से कह रहा है।

"तोमड़ी को घ्यू च
बालातन बिटी त्वै मा मेरूज्यू च"

प्रेयसि ! मैं बचपन से ही तुझे प्यार करता हूँ।

"घ्यू खायो मारव्यूँ न"
"क्वी खायो मायान मैं खायो आख्यूँ न

कोई प्रेम के कारण बेचैन है पर मुझे तो तुम्हारी आँखों ने बेचैन कर दिया है।

"घुघुती ब्योंदार
"कै भागी की होली इती मायादार"

तुम इतनी ममताशील किस भाग्यवान् की होगी। उत्तर सुनिए—

'चाँदी का बटण
"माया लाणी सौंगी, निभौणी कठण"

प्रीति करनी सरल होती है, पर उसका निभाना कठिन होता है।

हाँ, ठीक है पर—

'पाणी को तोमियाँ
"जो दगा करलो वे खालो भूमियाँ"

जो विश्वासघात करेगा, उसे भूमियाँ देवता नष्ट कर दे।

'माछी को रकत
"तू मेरी जोगण मैं तेरो भगत,"

तू मेरी उपास्य देवी है और मैं तेरा भक्त हूँ। सब कुछ है पर—

"सुलफा की सापी
"मैं छौ दिलदार तू छैं मन पापी"

मैं तो हृदय देनेवाला हूँ, पर तू मन पापी है। अच्छा कहा, अरे—

'आँगुड़ा की कारवी
"तराजू न तोल कै की माया बाकी"— तराजू ले तौल लो, किसका अधिक प्रेम है। किन्तु—

"लोण भरे दोण
"तेरी मेरी माया छुयाँलू न खोण"

तेरी मेरी प्रीत चुगली करनेवाले तोड़ देंगे आदि। प्रेमी परदेश में हैं। प्रेमिका की बेचैनी देखिए—

"काटी जालो घास
"पंछी होन्दो उड़ि जान्दों सुआ का ले पास"

पक्षी होता तो उड़कर प्रियतम के पास पहुँच जाता।

"आँगुड़ा की तोई
"जसी याद औंद हुकमद रोई'

"जब याद आती है तो बरबस आँसू टपक पड़ते हैं।

अब स्त्रियों के जंगलों में गाए जानेवाले गीतों की कुछ पंक्तियाँ देखिए। इनके सभी चरण अर्थ रखते हैं।

पौष का महीना, पहाड़ की भयानक शीत, ग्राम-बधुएँ विश्राम के लिए अपने अपने मैके चली गई हैं, पर एक स्त्री जिसके मैके में मा नहीं है, कहती है—

"बौड़ी, बौड़ी ऐगे ब्वै देख पूष मैना;
गौं की बेटी ब्वारी ब्वै मैतू आई गैना;
मैतुड़ा बुलाली ब्वै बोई होली जौंकी।
मेरी जिकुड़ी मा ब्वै कुयेड़ी सी लौंकी॥

लौट-लौटकर पौष का महीना आ गया है। गाँव की बहूबेटियाँ मैके चली गई हैं। आह, जिनकी मा होंगी, वे तो अपनी पुत्रियों को बुलाएँगी, पर मुझ मातृहीन के हृदय में तो आज माँ की स्मृति से कुहासा-सा फैलकर रह जाता है।

एक दूसरी स्त्री, जिसके मैके में सब कुछ है, पर वह कारणवश नहीं जा पाती, अपनी सहेली से सन्देश कहती है—

"जा तू भग्यानी मैत जा, मेरो रैबार बोई मू लीजा;
बोई को बोल्यान बोई मेरी,
मैं खुद लगीं च बोई तेरी।"

ओ भाग्यशीला सहेली, जा तू अपने मैके जा और मेरा सन्देश भी लेती जा। मेरी मा से कहना, मा ! मुझे तेरी स्मृति ने विह्वल कर दिया है।

विस्तार-भय से अधिक उदाहरण नहीं दे सकता। बाकी अनुवाद में वह रस भी नहीं रह जाता ! कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनका ठीक पर्यायवाची शब्द हिन्दी में मिल ही नहीं सकता। इस भाषा के ज्ञाता ही इन गीतों की उत्कृष्टता समझ सकते हैं। —भगवतीचरण शर्मा 'निर्मोही'

सामयिक साहित्य

ग्राम-निवासियों को स्वराज्य की पहली किश्त

[गताङ्क से आगे]

६६—(६) कोई नालिश जिसकी सुनवाई संयुक्त प्रांत के गांव—पंचायत ऐक्ट, सन् १६२० ई० के अधीन स्थापित किसी पञ्चायत को, संयुक्त प्रांत के किसानों और मजदूरों को कर्जे से छुड़ाने के ऐक्ट, सन् १६३६ ई० की धारा २८ के अधीन करने का अधिकार नहीं है।

नालिश में पूरा मुतालबा शामिल होना चाहिए

६७—(१) ऐसी हर एक नालिश में जो पञ्चायती अदालत के सामने दायर की जाए वह पूरा मुतालबा शामिल होगा जिसका विवादास्पद विषय के सम्बन्ध में मुद्दई को अधिकार प्राप्त है, लेकिन वह इस उद्देश्य से कि उस नालिश की सुनवाई पञ्चायती अदालत कर सके, अपने मतालबे का कोई भी भाग छोड़ सकता है।

(२) यदि कोई मुद्दई उसके किसी भाग के बारे में दावा न करे या उसको छोड़ दे तो उसको उन दावा न किए हुए या छोड़े हुए भागों के बारे में दायर करने का अधिकार न होगा।

मियादें

६८—हर ऐसी नालिश जो परिशिष्ट में इस संबंध में दी हुई मियाद की नियत अवधि के बाद पंचायती अदालत के सामने दायर की जाए, खारिज कर दी जायगी, भले ही मियाद के सम्बन्ध में मुद्दालेह ने कोई भी आपत्ति न की हो।

६९—इस्तहकाक, कानूनी हैसियत, मुआविदा या दायित्व के प्रश्न पर पंचायती अदालत का निर्णय फरीकों पर, उस नालिश के अतिरिक्त जिसमें ऐसे मामले का निर्णय किया गया हो, बाध्य न होगा।

७०—ऐसे सब विवादास्पद मुकदमों को जो ऐक्ट मालगुजारी आराजी संयुक्त प्रान्त, सन् १६०१ ई० की धारा ३३, ३४, ३५, ३६, ४० और ४१ के अधीन कार्यवाहियों से पैदा हों, तहसीलदार उस पंचायती अदालत को, यदि कोई हो, भेज देगा जिसे सुनवाई करने का अधिकार हो।

पर शर्त यह है कि कुल विवादास्पद जायदाद पंचायती अदालत के अधिकार-क्षेत्र में हो।

और शर्त यह भी है कि ऐक्ट मालगुजारी आराजी संयुक्त प्रान्त, सन् १६०१ ई० की धारा ३४ और ३५ के अधीन ऐसी कार्यवाइयाँ, जो किसी ऐसी आराजी के सम्बन्ध में हों जिसकी मालगुजारी २०० रु० से अधिक हो, किसी पंचायती अदालत को न भेजीं जाएगी।

और यह भी शर्त है कि तहसील कागजात या नामों के दाखिल-खारिज की कोई दरख्वास्त पंचायती अदालत न लेगी।

७१—उन सारी कार्यवाहियों में, जिनका उल्लेख धारा ७० में किया जा चुका है, सब-डिवीजनल आफिसर को, अपने प्रस्ताव पर या उस दशा में जब उनके पास फैसले के लिए भेजा जाए, नजरसानी करने का अधिकार होगा, लेकिन किसी पंचायती अदालत की किसी आज्ञा के विरुद्ध अपील न हो सकेगी, भले ही इसके विपरीत ऐक्ट मालगुजारी सयुक्त प्रान्त, सन् १६०१ ई० में कोई आदेश हो।

७२—ऐक्ट मालगुजारी आराजी सन् १६०१ ई० के अधीन कार्यवाहियों में पञ्चायती अदालत नियत कार्य-विधि के अनुसार काम करेगी।

निबटाए हुए झगड़े और ऐसी नालिशें जिनका फैसला न हुआ हो

७३—(१) कोई पञ्चायती अदालत किसी ऐसे मामले के बारे में किसी नालिश की कार्यवाई या तमकीह की सुनवाई न करेगी जो किसी अधिकृत अदालत के

विचाराधीन हो या जिसकी सुनवाई या जिसका निर्णय कोई अधिकृत अदालत किसी ऐसी पहली नालिश में कर चुकी हो जिसके फरीक वही लोग हों या ऐसे फरीक हों जो उन्हीं फरीक या उनमें से किसी फरीक के ताबेदार हों।

(२) जब किसी अभियुक्त के विरुद्ध किसी अपराध के बारे में अदालत में मुकदमा चल रहा हो या जब किसी अभियुक्त के विरुद्ध किसी अपराध के बारे में मुकदमे की सुनवाई हो चुकी हो तो कोई पञ्चायती अदालत ऐसे अपराध या उन्हीं तथ्यों के आधार पर किसी ऐसे अपराध की सुनवाई न करेगी, जिसके बारे में अभियुक्त पर दोष लगाया जा सकता था या उसको दंड दिया जा सकता था।

अदालतों का बराबर अधिकार

७४—जब किसी मुकदमे, नालिश या कार्रवाई की सुनवाई एक से अधिक पञ्चायती अदालतों में ली जा सकती हो तो मुद्दई या दरख्वास्त देनेवाले या मुस्तगीस, जैसी भी दशा हो, नालिश या मुकदमा या कार्रवाई ऐसी किसी भी एक पंचायती अदालत में दायर कर सकता है। सुनवाई के अधिकार के सम्बन्ध में किसी झगड़े का फैसला ऐसा सब-डिवीजनल मैजिस्ट्रेट या मुंसिफ या सब-डिवीजनल आफिसर, जैसी भी स्थिति हो, जिसे सुनवाई का अधिकार प्राप्त हो, करेगा।

नालिशों और मुकदमों का दायर किया जाना

७५—ऐसा कोई व्यक्ति, जो इस ऐक्ट के अधीन कोई नालिश या मुकदमा या कार्रवाई किसी पंचायती अदालत में दायर करना चाहता हो, वह अदालती पंचायत के सरपंच से या जब वह क्षेत्र में न हो तो किसी ऐसे पंच से, जिनको उसने इस काम के लिए नियुक्त किया हो, जबानी या लिखकर दरख्वास्त करेगा और उसी के साथ वह नियत फीस अदा करेगा। पंचायती अदालतों पर कोर्ट फीस ऐक्ट, सन् १८७० ई० लागू न होगा, उस दशा के अतिरिक्त जो नियत की गई हो, हर एक नालिश में मुद्दई उसकी मालियत लिख देगा।

७६—(१) जब किसी नालिश या कोई मुकदमा या कोई कार्रवाई जबानी दायर की जाए तो वह सरपंच या पंच, जो दरख्वास्त ले, बिना देर किये नियत विवरण को रजिस्टर में लिख लेगा और रजिस्टर में दरख्वास्त देनेवाले के हस्ताक्षर कर लिए जाएँगे या उसके अँगूठा का निशान लगवा लिया जाएगा।

(२) इसके बाद सरपंच या उसकी अनुपस्थिति में पंच, जिसका उल्लेख धारा ७५ में किया गया है, धारा ४९ के अधीन पंचायती अदालत की एक बेंच स्थापित करेगा और उस दरख्वास्त को आवश्यक कार्रवाई के लिए उस बेंच के सुपुर्द कर देगा और उस बेंच के सामने उस दरख्वास्त की सुनवाई के लिए पहली पेशी की तारीख भी नियत कर देगा और दरख्वास्त देनेवाले को और ऊपर बताई हुई पंचायती अदालत की बेंच के मेम्बरों को उस तारीख की सूचना दे देगा।

कार्रवाई का तरीका

(४) हर नालिश, मुकदमा या कार्रवाई, जो धारा ७६ के आदेशों के अनुसार दायर की गई हो, नियत तारीख को पञ्चायती अदालत की बेंच के सामने पेश की जाएगी और बेञ्च, जब तक कि सरपंच उस बेंच का मेम्बर न हो, अपने मेम्बरों में से एक को उस बेंच के चेयरमैन के स्थान के लिए चुन लेगा जो कार्रवाइयों का सञ्चालन करेगा।

संबंधित फरीक के उपस्थित न होने की दशा में नालिशों और मुकदमों का खारिज किया जाना

७८—(१) यदि मुद्दई या मुस्तगीस या दरख्वास्त देनेवाला मुकदमे की सुनवाई के समय और स्थान की सूचना पाने पर भी उपस्थित न हो तो पंचायती अदालत उस नालिश, मुकदमे या कार्रवाई को खारिज कर सकती है या ऐसी आज्ञा जारी कर सकती है, जो वह उचित समझे।

(२) पंचायती अदालत किसी नालिश, मुकदमे या कार्रवाई को मुद्दाअलेह, मुलजिम (अभियुक्त) या फरीक मुखालिफ की अनुपस्थिति में सुन सकती है और उसका निर्णय कर सकती है यदि मुद्दाअलेह, मुलजिम (अभियुक्त)या मुखालिफ फरीक पर सम्मन की तालीम कर दी गई हो या यदि उसको मुकदमे की सुनवाई के लिए नियत समय और स्थान की सूचना दे दी गई हो।

७९—(१) उस दशा के अतिरिक्त, जिसके सम्बन्ध में उप-धारा २ में आदेश है या जब लिखनेवाले की कोई गलती सुधारनी हो, पंचायती अदालत को किसी

ऐसी डिग्री या आज्ञा को जो उसने दी हो, मंसूख करने या उस पर नजरसानी करने या उसको बदलने का अधिकार न होगा।

(२) आज्ञा या डिग्री होने या अगर व्यक्तिगत तौर पर सम्मन की तालीम न हुई हो तो, उसके मालूम होने की तारीख से एक महीने के अन्दर दरख्वास्त देने पर पंचायती अदालत पर्याप्त कारणों के आधार पर जो लिख दिए जायँगे, किसी भी नालिश, मुकदमे या कार्रवाई को फिर से कायम कर सकती है, जो कि उपस्थित न होने के कारण खारिज कर दी गई हो या जिसमें एकतरफा डिग्री या आज्ञा दे दी गई हो।

क़ानून का पेशा करनेवाला कोई व्यक्ति पैरवी न करेगा

८०—पंचायती अदालत के सामने किसी नालिश, मुकदमे या कार्रवाई में किसी फरीक की ओर से किसी कानूनपेशा व्यक्ति को पैरवी करने की इजाजत न होगी।

८१—धारा ८० के आदेशों की पाबन्दी के साथ, किसी नालिश, मुकदमे या कार्रवाई का कोई फरीक, पञ्चायती अदालत के सामने स्वयं या ऐसे नौकर (जो दलाल–मुकदमा न होगा), हिस्सेदार, सम्बन्धी या मित्र-द्वारा जिसको उसने इसके लिए अधिकार दिया हो और जिसके बारे में पञ्चायती अदालत यह मान ले कि यह उसका प्रतिनिधित्व कर सकता है, उपस्थित हो सकता है।

ऐसे मामलों के बारे में, जिसमें राजीनामा इत्यादि हो गया हो, विशेष अधिकार—सीमा

८२—इस ऐक्ट में या किसी और कानून में जो उस समय जारी हो, भले ही कोई बात हो, पंचायती अदालत को मान्य होगा कि वह किसी ऐसे दीवानी या माल के झगड़े का जो स्थानीय अधिकार-क्षेत्र की सीमा के अंदर हो और जो किसी ऐसे समझौते या राजीनामे या हलफ़-नामे के अनुसार जिस पर फरीक राजी हो किसी अदालत के विचाराधीन न हो, निर्णय कर दे और उसी तरह किसी मुकदमे का फैसला कर दे अगर उसमें राजीनामा हो सकता हो।

सच्चाई का पता चलाने का अधिकार और तरीका

८३—पञ्चायती अदालत किसी नालिश, मुकदमे या कार्रवाई में ऐसी शहादत सुनेगी जो फरीक पेश करे और वह ऐसी और शहादत तलब कर सकती है जो उसकी राय में विवादास्पद विषयों का फैसला करने के लिए आवश्यक हो। पंचायती अदालत का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हर नालिश, मुकदमे या कार्रवाई के, जो उसके सामने पेश हों, तथ्यों को हर ऐसे उचित साधन से जो उसके अधिकार में हो, मालूम करे और उसके बाद ऐसी डिग्री या आज्ञा खर्चा-सहित या बिना खर्चा के दे, जो उसको उचित और कानूनी जान पड़े। वह उस गाँव में, जिससे कि झगड़े का सम्बन्ध हो, स्थानीय जाँच--पड़ताल कर सकती है। वह इस ऐक्ट के अधीन या उसके द्वारा मियत कार्य--विधि के अनुसार काम करेगी। दीवानी–नियम--संग्रह (मजमुआ जाब्ता दीवानी) सन् १९०८ ई० का, दण्ड--विधि--संग्रह (मजमुआ जाब्ता फौजदारी) सन् १८९८ ई०, भारतीय गवाही ऐक्ट, सन् १८७२ ई० और भारतीय काल--अवधि ऐक्ट (ऐक्ट मियाद समाअत हिंद), सन् १९०८ ई० पञ्चायती अदालत की किसी भी नालिश, मुकदमे या कार्रवाई पर लागू न होंगे, उस दिशा के अतिरिक्त जहाँ उसका उपयोग निश्चित कर दया गया हो या जब इस ऐक्ट में इनके बारे में कोई आदेश दिए गए हों।

बहुमत का निर्णय मान्य होगा

८४—यदि सब पञ्चों की राय एक न हो तो बहुमत का निर्णय मान्य होगा।

पंचायती अदालतों के सम्बन्ध में हाकिम परगना (सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट) और मुंसिफों के अधिकार

८५—(१) यदि किसी मुकदमे, नालिश या कार्रवाई में अन्याय हुआ हो या अन्याय होने की आशंका हो तो हाकिम परगना किसी मुकदमे में और मुंसिफ किसी नालिश में और सब–डिवीजनल अफसर संयुक्त प्रान्त के ऐक्ट मालगुजारी आराजी, संयुक्त प्रान्त, सन् १९०१ ई० के अधीन किसी कारर्वाई के बारे में, किसी फरीक की

दरख्वास्त पर या स्वयं अपने ही प्रस्ताव पर मुकदमे, नालिश या कार्रवाई, जैसी भी स्थिति हो, विचाराधीन होने के बीच किसी समय और डिग्री या आज्ञा की तारीख से ६० दिन के अन्दर मुक़दमा, नालिश या कार्रवाई के कागजात को, जैसी भी दशा हो, पञ्चायती अदालत से माँग सकता है और उन कारणों के आधार पर, जिन्हें वह लिखेगाः—

(क) किसी मुकदमा, नालिश, या कार्रवाई के बारे में पंचायती अदालत की अधिकार-सीमा को रद्द कर सकता है; या

(ख) पञ्चायती अदालत की दी हुई किसी डिग्री या आज्ञा को किसी भी अवस्था में रद्द कर सकता है; या

(२) जब हाकिम परगना ने उप-धारा (१) के अधीन किसी मुकदमे में. या तहकीकात या इस्तगासे पर हुक्म दिया हो तो उसी जुर्म के बारे में इस्तगासे दायर किए जाने पर या किसी दूसरे तरीके के मुकदमे की सुनवाई उस मजिस्ट्रेट की अदालत में शुरू हो सकती है जिसे ऐसे मुकदमे का फैसला करने का अधिकार प्राप्त हो।

(३) जब किसी मुंसिफ ने उप-धारा (१) के अधीन किसी नालिश के बारे में आज्ञा दे दी हो तो मुद्दई मुंसिफ की अदालत में उसी दावे के आधार पर और उसी दादरसी (सहायता) के लिए नालिश कर सकता है और पंचायती अदालत में नालिश करने और ऐसी आज्ञा के दिए जाने तक की अवधि, कोई नई नालिश के दायर करने की मियाद समाप्त (काल अवधि) में सम्मिलित नहीं किया जाएगा।

संयुक्त प्रान्त का ऐक्ट नं० ३ सन् १९०१ ई०

(४) जब सब-डिवीजनल अफसर ने संयुक्त प्रांत के ऐक्ट मालगुजारी आराजी, सन् १९०१ ई० के अधीन किसी कार्रवाई के बारे में आज्ञा दे दी हो तो उसी दादरसी के लिए और उन्हीं तथ्यों के आधार पर कार्रवाइयाँ किसी ऐसी अदालत माल के सामने शुरू की जा सकती है, जिसे उस मामले में सुनवाई करने का अधिकार हो, और पंचायती अदालत के सामने ऐसी कार्रवाई के पेश होने की तारीख से ऐसी आज्ञा दिए जाने की तारीख तक की अवधि को नई कार्रवाई दायर करने की मियाद-समाप्त (काल-अवधि) में सम्मिलित नहीं किया जाएगा।

(५) उपर्युक्त दशाओं के अतिरिक्त इस ऐक्ट के अधीन किसी मुकदमे, नालिश या कार्रवाई के सम्बन्ध में पञ्चायती अदालत की दी हुई डिग्री या उसकी आज्ञा अन्तिम होगी और उसकी किसी अदालत में अपील या नजरसानी नहीं हो सकेगी।

अगर उपधारा (१) के अधीन कोई दरख्वास्त निरर्थक हो तो दरख्वास्त देनेवाले को हाकिम परगना या मुंसिफ या सब-डिवीजन अफसर, जैसी भी स्थिति हो, ५० रु० तक जुर्माना कर सकता है।

गवाहों के नाम सम्मन जारी करना

८६—पंचायती अदालत, यदि वह किसी नालिश, मुकदमे या कार्रवाई में किसी व्यक्ति की शहादत का गुजारा जाना या दस्तावेज का पेश किया जाना आवश्यक समझे तो वह नियत ढङ्ग पर ऐसे व्यक्ति के नाम सम्मन जारी कर सकती है और उसकी उस पर तामील करा सकती है जिसमें उसे यह आदेश दिया गया होगा कि उसे उपस्थिति होना पड़ेगा या उसे ऐसा दस्तावेज पेश करना या पेश कराना होगा और वह व्यक्ति उस आदेश का पालन करने के लिए बाध्य होगा जो सम्मन में दर्ज हो।

पंचायती अदालत के सामने उपस्थित न हो सकने के लिए दंड

८७—यदि कोई व्यक्ति, जिसे पंचायती अदालत ने लिखित आज्ञा द्वारा गवाही देने या कोई कागजात पेश करने के लिए तलब किया हो, सम्मनों या नोटिसों या आज्ञाओं की जानबूझकर तामील न करे तो पंचायती अदालत ऐसे मजिस्ट्रेट से शिकायत कर सकती है जिसको स्थानीय मुकदमे सुनने का अधिकार प्राप्त हो और ऐसे व्यक्ति को जुर्माने का दण्ड दिया जाएगा जो २५ रु० तक हो सकता है।

पर शर्त यह है कि किसी औरत को खुद पंचायती अदालत के सामने उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। उसका नियम तरीके के कमीशन-द्वारा बयान लिया जा सकता है।

पर यह भी शर्त है कि अगर इस धारा के अधीन जारी किए हुए सम्मन की तामील में कोई दस्तावेज पेश किया जाए तो पंचायती अदालत उस दस्तावेज की नकल

लेगी और असल से मुकाबला करने के बाद उस नकल पर लिखेगी कि वह सही नकल है और असल दस्तावेज उस व्यक्ति को वापस कर देगी जिसने उसे पेश किया था।

नालिशों वगैरह का खारिज किया जाना

८८—पंचायती अदालत किसी नालिश या कार्रवाई को खारिज कर सकती है अगर मुद्दई या दरख्वास्त देने वाले का बयान लेने के बाद उसको इस बात का विश्वास हो जाए कि वह नालिश कार्रवाई निरर्थक, दुःखदायी या झूठी है।

नजरसानी

८९—पंचायती अदालत की दी हुई किसी डिग्री आज्ञा की नजरसानी मुकदमे की सूरत में, हाकिम परगना (सब-डिवीजनल मैजिस्ट्रेट) के सामने नालिश की सूरत में, मुंसिफ के सामने और संयुक्त प्रांत के ऐक्ट मालगुजारी आराजी, सन् १९०१ ई० के अधीन की हुई किसी कार्रवाई की सूरत में ऐसे सब-डिवीजनल अफसर के सामने की जाएगी जिसे इस मामले में सुनवाई करने का अधिकार हो।

मुद्दालेह या अभियुक्त (मुलजिम) के नाम सम्मन का जारी होना।

९०—कोई पञ्चायती अदालत, धारा ७५ के अधीन दरख्वास्त दिए जाने के बाद जब तक कि वह इस ऐक्ट के आदेशों के अधीन खारिज न कर दी गई हो या उस पर कोई कार्रवाई न कर दी गई हो नियत फार्म में और नियत ढङ्ग के अनुसार, मुद्दालेह या मुलजिम (अभियुक्त) या फरीक-मुखालिफ पर सम्मन की तामील कर देगी जिसमें उसको यह आदेश दिया हुआ होगा कि वह ऐसे समय और स्थान पर जो सम्मन में दर्ज हों उपस्थित होकर अपनी शहादत दे और पञ्चायती अदालत साथ-ही-साथ मुद्दई या मुस्तगीस या दरख्वास्त देनेवाले को यह आदेश करेगी कि वह उस समय और उस स्थान पर उपस्थित होकर अपनी शहादत दे।

वारंट

९१—अगर पञ्चायती अदालत को यह विश्वास हो जाए कि कोई व्यक्ति सम्मन की तामीली से भाग रहा है तो वह उसके विरुद्ध अधिक-से-अधिक २५ रु० तक का जमानती वारंट जारी कर सकता है।

डिगरी के अदा किए जाने के बारे में इन्दराज किया जाएगा

९२—यदि डिग्रीदार या मदयन डिग्री की दरख्वास्त पर उस पञ्चायती अदालत को जिसने डिग्री दी हो तहकीकात के बाद यह मालूम हुआ कि डिग्री का कुल या उसका कुछ भाग अदा कर दिया जा चुका है तो वह नियत रजिस्टर में इस बात को दर्ज कर लेगी।

डिगरी का दायर होना

९३—(१) किसी पञ्चायती अदालत द्वारा दी हुई डिग्री या आज्ञा का इजरा ऐसे ढङ्ग पर किया जाएगा जो नियत किया जाए। यदि मुद्दालेह की सम्पत्ति उस पंचायती अदालत के अधिकार-सीमा के बाहर स्थित हो जिसने ऐसी डिग्री या आज्ञा दी है, तो वह उस डिग्री या आज्ञा को नियत ढङ्ग पर इजरा किए जाने के लिए उस पंचायती अदालत के पास भेज सकती है जिसकी अधिकार-सीमा में वह सम्पत्ति स्थित हो और यदि ऐसी कोई पंचायती अदालत हो तो वह डिग्री या आज्ञा को उस मुसिफ की अदालत में भेज सकती है जिसकी अधिकार-सीमा में वह सम्पत्ति स्थित हो।

(२) यदि कोई पञ्चायती अदालत किसी डिग्री के इजरा में कठिनाई अनुभव करे तो वह डिग्री को मुंसिफ के पास भेज सकती है और मुंसिफ उस डिग्री का इजरा उसी तरह कराएगा मानों वह डिग्री स्वयं उसी ने दी है।

संयुक्त प्रान्त के ऐक्ट मालगुजारी आराजी, सन् १९०१ ई० के अधीन किसी कार्रवाई के सिलसिले में खर्चे के लिए किसी आज्ञा का इजरा, जहाँ तक संभव होगा, उप-धारा (१) और (२) में दिए हुए आदेशों के अनुसार किया जाएगा। उप-धारा (१) इस तरह पढ़ी जाएगी और समझी जाएगी मानो शब्द "मुंसिफ" की जगह शब्द "सब-डिवीजनल अफसर" रख दिए गए हैं।

जुर्माने का वसूल किया जाना

९४—किसी मुकदमे में पञ्चायती अदालत के लगाए हुए जुर्माने की रकम दंड-विधि-संग्रह (मंजमुआ जाब्ता फौजदारी) सन् १८९८ ई० की धारा ३८६ के अधीन दिए हुए तरीके पर वसूल की जाएगी। लेकिन यदि पञ्चायती अदालत उसकी वसूलयाबी में कोई कठिनाई अनुभव करे तो वह उस हाकिम परगना से पञ्चायती अदालत जिसकी अधिकार-सीमा में वह जुर्माना वसूल कराने की दरख्वास्त कर सकती है और हाकिम परगना उसे उसी प्रकार वसूल करेगा मानो उसने स्वयं जुर्माने का दण्ड दिया हो।

[समाप्त

प्रकाशक और मुद्रक—के० मित्रा, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक
हरिकेशव घोष : उमेशचन्द्र मिश्र

भाग ५०, खण्ड १] १९४९ [जनवरी से जून

अर्धवार्षिक लेख और चित्रसूची

लेखसूची

चित्र सूची

बिना चीर फाड़ के अंडकोष का शर्तिया इलाज

किसी प्रकार का फोता हो, चाहे पानी उतर आया हो, बादी का हो या पोते के ऊपर गोश्त उतर आया हो या चोट लग गई हो, वर उतर आई हो या पोते में दर्द होता हो, पोता बढ़कर कितना ही वजनी क्यों न हो गया हो, आँत उतर आई हो, इस दवा के लेप करने से तमाम बादी का पानी सूख-सूखकर पोता अपनी असली हालत पर बगैर किसी तकलीफ के आ जायेगा। कीमत फी टीन ४) रु०, डाक महसूल अलावा। मिलने का पता :—

दी अमृतसागर एन्ड को० नं० ३, मथुरा (यू० पी०)

जादू का शीशा

ये शीशे अमेरिकन साइन्सदानों के तजुर्बों की रोशनी में तैयार होकर हाल ही में आए हैं। तरकीब इस्तेमाल के मुताबिक इसमें से देखने पर आपको एक बहुत बूढ़ा दिखलाई देगा, जो आपकी किस्मत सम्बन्धी भविष्य में होनेवाली सारी बातों, नफा, नुकसान, रोजगार, तिजारत, नौकरी, उन्नति, अवनति, बीमारी, देश-विदेश की यात्रा, सन्तान, किसी से नया मेल जोल, दिलपसन्द सगाई, शादी, जमीन में गड़ा धन, लाटरी, सट्टा, किसी नामालूम जरिये से धन का मिलना, गुमशुदा चीज या चोरी का पता लगाना, गर्ज यह है कि आपके हर एक सवाल का जवाब बताएगा, साथ ही हर एक मुश्किल का उपाय बताएगा, हर एक कामना पूरी करेगा, जल्द मँगा लें, फिर ऐसा मौका हाथ न आयेगा। एक शीशे का मूल्य चार रुपया खर्च ।।।) अलग। थोड़े दिनों के बाद इस शीशे की कीमत बीस रुपये होगी। तीन शीशे एक साथ मँगाने पर डाक खर्च माफ! अपना नाम व पता आर्डर देते समय साफ लिखें।

एँग्लो अमेरिकन ट्रेडर्स, (टी)
पोस्ट बाक्स ७०, मेरठ, यू० पी०

बिलकुल मुफ्त

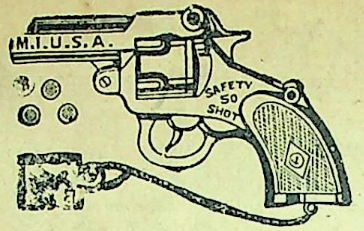
जातीय जीवन के गुप्त प्रश्नों का भेद समझाकर शारीरिक व मानसिक शक्ति प्राप्त कराने की मार्ग दर्शक

दम्पति विकाश

पुस्तकें बिना डाक-खर्च मुफ्त भेजी जाती है आज ही मँगावें।

मदन मंजरी फार्मेसी—जामनगर

मुफ्त मुफ्त मुफ्त



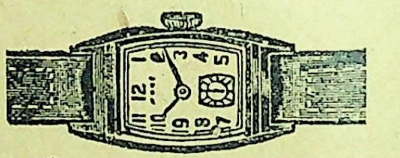
६ शॉट ऑटोमेटिक अमेरिकन मॉडल

डमी पाकेट रिवाल्वर

यह रिवाल्वर अभी होशियार कारीगरों द्वारा अमेरिकन नमूने पर तैयार कराया गया है। यह रिवाल्वर देखने में असली से मिलता-जुलता है। इसमें एक चरखी लगी है जिसमें शॉट रखे जाते हैं। असली के मानिन्द घोड़ा लगा है जिसके दबाने से चरखा अपने आप घूमकर ६ शॉट चलाते हैं। चोर, डाकू, लुटेरे, बदमाश जंगली जानवरों को धोखा देने के लिए अच्छी चीज है। सिनेमा, नाटकवालों शौकीनों के लिए खास तोहफा है। इसके रखने के लिए लायसंस की कोई जरूरत नहीं है। कीमत ५) रिवाल्वर के साथ १०० शॉट मुफ्त भेजे जाते हैं। अलहदा १०० शॉट का ३), चमड़े का पट्टा ३), डाक खर्च १।।)

शंकर अन्ड कम्पनी २९९ गोपालपुरा, मथुरा

जिवेल-जड़ित लिवर घड़ियाँ



सभी घड़ियाँ स्विस-निर्मित हैं—ठीक समय देने वाली मजबूत मशीन, टिकाऊ और आकर्षक डिजायन। प्रत्येक से लिए ५ वर्षों की गारण्टी। ३ जिवेल चपटा आकार क्रोमियम ११), उत्तम १४); ५ जिवेल १८); सेंटर सेकण्ड सहित छोटा आकार २०); सुनहली २४), १५ जिवेल ३५), ५ जिवेल चौकोर, घेरेदार और टोनी क्रोम की २८); ८ जिवेल ३३); ७ जिवेल रोल्ड गोल्ड १० वर्षों की गारण्टी २५); श्रेष्ठ ४२); १७ जिवेल ६०), श्रेष्ठ ६५)। टाइमपीस १४), श्रेष्ठ १८)। डाक व्यय अतिरिक्त। एक बार में किन्हीं दो के मँगाने पर डाक व्यय माफ और एक फाउण्टेन पेन मुफ्त। पत्र व्यवहार अंग्रेजी में।

कलकत्ता वाच कं० (एस० सी० ई० २० बी०)
पोस्ट बाक्स नं० १२२०३ कलकत्ता ५

विरहनी बाँसुरी



एकान्त चाहने वाले विरही प्रेमियो की संगिनी कृष्ण की बाँसुरी की आवाज़ गोपियों को मतवाला बना देती थी, और पीतल की विलायती पाइप से चतुर कारीगरों द्वारा तैयार की हुई हमारी यह बाँसुरी विरह और प्रेम के पंथियों की इच्छा पूर्ण कर रही है। चमकदार पालिश। मू० ३) डा० ख० व पैकिंग ॥=) अ० आर्डर दें। बाँसुरी शिक्षक मू० ॥=) पोस्टेज ।=)

ग्लोब ट्रेडर्स अलीगढ़

कोडक कैमरे

संसार में कैमरों के लिए

"KODAK" का नाम प्रसिद्ध है। हमारे पास भी कोडक कैमरों के कई अच्छे माडल तथा अन्य फोटोग्राफिक सामग्री आ गई है। फोटोग्राफी के कलापूर्ण कार्य के लिये लिखें।

"M. R. VARMA"
Chitra Kutir
GIDDAR BAHA (E. P.)



पैकबंद डब्बों में १०० तो० का १७) ५० तो० ९) २५ तो० ४॥)

भारत में ब्रांच का पता—

हींगघर काबुल फ्रण्टियर स्टोर, अलवर

घर बैठे डाक्टर बनिये

थोड़े पढ़े लिखे भी घर बैठे होम्योपैथी बायोकेमिस्ट्री, प्राकृतिक चिकित्सा, जल चिकित्सा, वायु चिकित्सा तथा सूर्य चिकित्सा के डाक्टर बन सकते हैं। नियमावली मुफ्त मँगाएँ।

इंटर नेशनल इन्स्टीट्यूट रजिस्टर्ड अलीगढ़

१०००० रु० की घड़ियाँ और सुन्दर आभूषण मुफ्त बाँट रहे हैं



हमारे प्रसिद्ध असली काला तेल नम्बर एक के उपयोग करने से बाल सदा के लिए काले हो जाते हैं और फिर जीवन भर ही काले उत्पन्न होते हैं यह तेल बालों के गिरने को रोकता है—सिर को ठंडक और ताकत देता है जंगली जड़ी-बूटियों से तैयार होता है—मूल्य प्रति शीशी २॥) दो रुपये आठ आने। तीन शीशी पूर्ण कोर्स का मूल्य ६॥) छः रुपये आठ आने। डाक-खर्च माफ। इस तेल को प्रसिद्ध करने के लिए प्रति शीशी के ग्राहक को एक फैन्सी म्यूट रिस्टवाच और एक जड़ाऊ अँगूठी एक जोड़ी कान्टा नकली जवाहर जड़ी सोना मिनवर्र न्यू गोल्ड बिलकुल मुफ्त बाँटी जाती है। नापसन्द होने पर दाम वापस। शीघ्रता करें क्योंकि ऐसा अवसर बारम्बार नहीं आया करता।

दी हिलसन वाच इम्पोर्ट कम्पनी
बाड़ा काठी मेम (S. A.) देहली

५००) रु० मासिक पैदा करें

थोड़े पढ़े-लिखे भी किस प्रकार फिल्म ऐक्टर बन सकते हैं या अवकाश के समय में १००) से ५००) तक आसानी से पैदा कर सकते हैं। नियमावली मुफ्त मँगा लें।

पता—डायरेक्टर श्यामसुन्दर एन्ड संस लि०, फ़िल्म निर्माता अलीगढ़

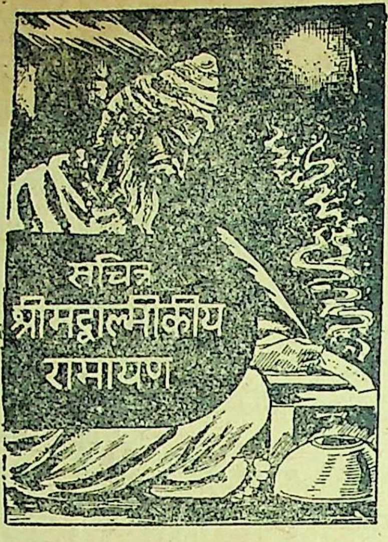
शुभ सूचना

मध्यभारत की जनता की सेवा के लिए हमने इंदौर शहर में अपनी शाखा खोल दी है। अतः यहाँ के लोगों को इंडियन प्रेस, इंदौर 'ब्रांच' से पुस्तकें लेने में लाभ होगा।

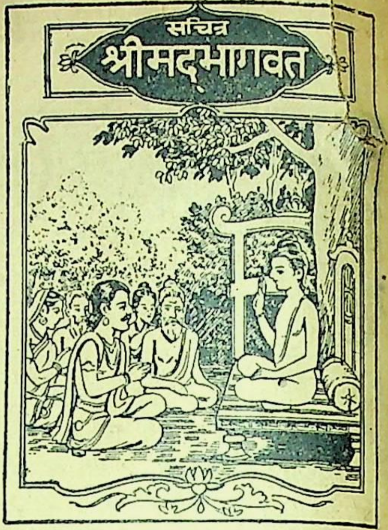
मैनेजर इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग



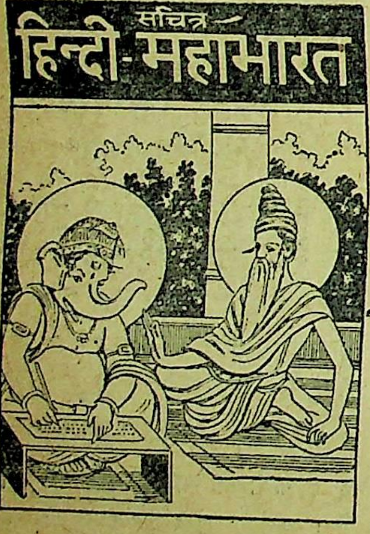
टीकाकार—रायबहादुर डाक्टर श्यामसुन्दरदास। यह संस्करण अपने ढंग का एक ही है। प्रामाणिक पाठ है। सीधी सरल भाषा में अर्थ है। रंगीन और सादे चित्रों की भरमार है। बढ़िया जिल्द है। मूल्य १२) बारह रुपए।



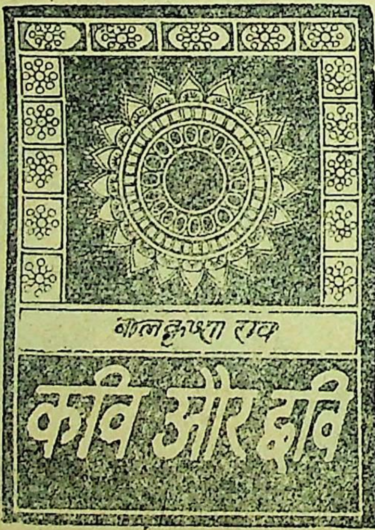
यह आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि के प्रसिद्ध ग्रन्थ का हिन्दी रूप है। हिन्दुओं में तो इसका मान है ही, संसार के विद्वानों में भी इसका आदर है। भाषा सुबोध और मनोहर है। दो भागों में ग्रन्थ समाप्त हुआ है। सजिल्द प्रति का प्रत्येक भाग का मूल्य ६॥) छः रुपए आठ आने।



(दो जिल्दों में) महर्षि वेदव्यास के श्रीमद्भागवत का सरल सुबोध भाषा में रूपान्तर। स्त्री, पुरुष, बूढ़े और युवक, सभी के लिए उपयोगी। अच्छे कागज पर बढ़िया छपाई। सैकड़ों सादे और रंगीन चित्रों से युक्त सजिल्द पुस्तक का मूल्य १६) सोलह रुपए



यह व्यास भगवान् के प्रसिद्ध महाभारत का हिन्दी रूप है। सरल भाषा में कठिन विषय समझाया गया है। रंगीन और सादे चित्र मन को मुग्ध कर लेते हैं। पुस्तक १० जिल्दों में पूर्ण हुई है। मूल्य ८०) अस्सी रुपए।



यह प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव के नये गीतों का संग्रह है। प्रत्येक गीत, भावना, अनुभूति, आकांक्षा, कल्पना और अन्तर्द्वन्द्व से पूर्ण है। छपाई सफाई नयनाभिराम। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य २) दो रुपए।



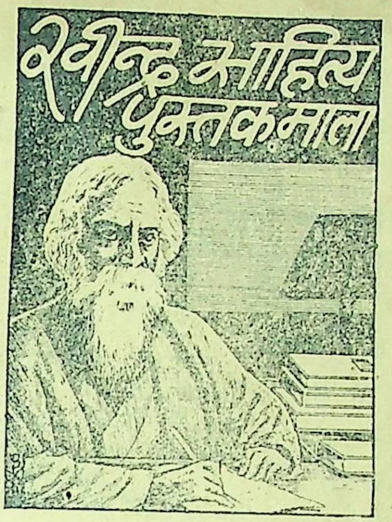
यह श्री श्यामनारायण पाण्डेय की प्रसिद्ध रचना है। इसमें महाराणा प्रताप के हल्दीघाटीवाले समर का वीरतापूर्ण वर्णन श्रेष्ठ छन्दों में है। सजिल्द प्रति का मूल्य २॥।) दो रुपए बारह आने।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

हमारे अनुपम प्रकाशन



कवि अंचल की मादक-मधुर कविताओं का अनूठा संग्रह। भाषा-सौष्ठव, अनुभूति की तीक्ष्णता और कल्पना की उड़ान की दृष्टि से ये कविताएँ अनुपम हैं। सजिल्द प्रति का मूल्य ३) तीन रुपये।



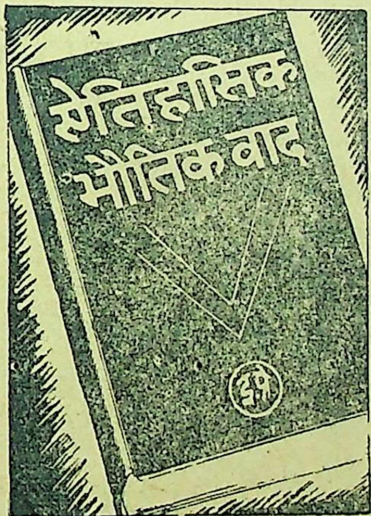
रवीन्द्र-साहित्य पुस्तक-माला के (१) योगायोग, (२) विश्व-परिचय, (३) रूस की चिट्ठी और (४) चार अध्याय का ब्योरा विज्ञापन में अन्यत्र पढ़िए।



शान्त शिष्ट सत्याग्रही प्रताप ने अपने मधुर व्यवहार से विरोधियों को किस प्रकार कट्टर देशभक्त बना दिया और उनको अपना अनुगत बना लिया, इस उपन्यास में पढ़िए। मूल्य १।।) एक रुपया आठ आने।



किस प्रकार उन्नति करने पर पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड के साथ राजा बहादुर की बेटी एना का विवाह हो सका, इसका विचित्र वर्णन इस उपन्यास में पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २।।≋) दो रुपये ग्यारह आने।



लेखक भूतपूर्व काकोरी कैदी श्री मन्मथनाथ गुप्त और रमेन्द्र वर्मा। समाजवाद के अध्ययन के लिए इसे अवश्य पढ़िए। मार्क्सवाद के दर्शनों में यह सबसे गहन है। एक दर्जन अध्यायों में विषय का प्रतिपादन हुआ है। मूल्य ६) छः रुपये।



लेखक कुँवर सुरेशसिंह। यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। मन-बहलाव के साथ-साथ विविध जानवरों की जानकारी के लिए इसे पढ़िए। १०० से अधिक चित्र। सजिल्द प्रति का मूल्य ४) चार रुपये।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

हमारे अनुपम प्रकाशन

अपनों की खोज में

(बुकसेलर की डायरी)

लेखक, श्रीयुत रामप्रसाद विद्यार्थी (रावी)

यह ऐसा भ्रमण-वृत्तान्त है जिसमें लेखक ने काफी सूझ-बूझ से काम लिया है। लेखक ने बुकसेलर न होने पर भी बुकसेलर बनकर ही इसके लिखने का अधिकार कमाया है। मनुष्य को पहचानने की कला और दूसरे को अपने अनुकूल करने की युक्ति पाठक को इस पुस्तक के वर्णन में मिलेगी जो बड़े काम आवेगी। मूल्य १) एक रुपया।

संसार का संक्षिप्त इतिहास

(प्रथम व द्वितीय भाग) अनुवादक, श्री मदनगोपाल, बी० ए० एल्-एल० बी०। यह पुस्तक अँगरेजी के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक एच० जी० वेल्स के इतिहास का हिन्दी अनुवाद है। इसमें पृथ्वी के आदिकाल से लेकर जीसस के निर्माण के पूर्व तक की कथा सक्रम वर्णित है। द्वितीय भाग में जीसस के निर्माण से लेकर संसार के पुनर्निर्माण तक का वर्णन आ गया है। मूल्य प्रत्येक भाग का ४) चार रुपये।

गांधी-मीमांसा

लेखक, पंडित रामदयाल तिवारी। गांधीजी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की ऐसी तर्कपूर्ण विवेचना आज तक किसी ने नहीं की है। इसे एक बार आद्योपान्त पढ़ जाने पर गांधीवाद पूर्ण रूप से हृदयङ्गम हो जाता है। विद्वानों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। ८५० पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४) चार रुपये।

रणभेरी

(चार मौलिक एकांकी)

रचयिता श्रीयुत वैकुण्ठनाथ दुग्गल की इस पुस्तक में (१) आन, (२) पुनसँगठन, (३) राष्ट्रधर्म और (४) अजेय भारत नाम के एकांकी हैं। पहले में वीर चम्पतराय और उनकी रानी सारन्धा की एक महत्त्वपूर्ण घटना है; दूसरे में महाराज शाहू की, तीसरे में हर्षवर्धन की बहनवाली प्रसिद्ध घटना और चौथे में युवराज अग्निमित्र के यूनानी नरेश मीनेंडर को जीतने की रोचक कथा है। संग्रह की भाषा सुलझी हुई, कथानक बढ़िया और बीच-बीच में सुन्दर कविताएँ हैं। मूल्य केवल १) एक रुपया।

बाल-नाटक-माला

(चार भाग)

श्री दशरथ ओझा बी० ए० के प्रस्तुत किये इन एकांकी नाटकों में इतिहास, राजनीति, समाज-विज्ञान, चरित्र और मनोविकारों का सफल प्रदर्शन है। शैली सरल और आकर्षक है। मूल्य प्रत्येक भाग का ।।) आठ आने।

सन्त कबीर

प्रणेता—प्रो० साधुराम शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०

यह सच्चित्र नाटक है। कबीर साहब का जीवन हिन्दू-मुसलमानों के मन से असहिष्णुता और वैमनस्य को हटाकर एकता और भाईचारे की स्थापना में बीता था। पांच सौ वर्ष पहले हिन्दू-मुस्लिम-एकता की जितनी जरूरत थी उससे आज अधिक ही है। कबीर का उद्देश्य समझने में यह नाटक बहुत काम देगा। इसमें प्रणेता ने कबीर साहब की जीवन-घटनाओं का आश्रय लेकर देशवासियों के सामने सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। मूल्य ।।।) बारह आने।

भूख

(सामाजिक नाटक)

लेखक श्रीयुत वीरदेव 'वीर' बी० ए०

लेखक ने इस नाटक में भूख से होनेवाले कष्टों का करुण चित्र उपस्थित किया है। हिन्दू-मुस्लिम-एकता, व्यापारियों के जनता को निर्दयता से लूटने और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं के सेवा भाव के अनोखे दृश्य इस नाटक में हैं। बीच-बीच में गीत भी बढ़िया हैं। मूल्य १) एक रुपया।

देवयानी

यह नाटिका कुमारी तारा वाजपेयी की रचना है। इसमें शुक्राचार्य की बेटी देवयानी के कन्यात्व का आदर्श बड़ी सफलता से उपस्थित किया गया है। कथा महाभारत से ली गई है। इसमें आर्यों के व्यापक वैवाहिक सम्बन्ध के इस एक अपवाद—क्षत्रिय वर और कन्या ब्राह्मणपुत्री—का स्पष्टीकरण बड़ी सतर्कता से हुआ है। पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। मूल्य केवल १) एक रुपया।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

विविध विषय की बढ़िया पुस्तकें

विनयपत्रिका (सटीक)

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में विनय-पत्रिका का स्थान बहुत उच्च है। इसमें गोस्वामी जी के विनय-सम्बन्धी पद्यों का संग्रह है। इसके टीकाकार हैं पंडित रामेश्वर भट्ट। मूल्य ४) चार रुपए।

दैत्यवंश

लेखक, श्रीयुत हरदयालसिंह। इसमें दैत्यराज हिरण्याक्ष से लेकर स्कन्द तक दैत्यवंश के प्रभावशाली नरेशों का वर्णन व्रजभाषा के ललित छन्दों में पुरानी शैली के अनुसार किया गया है। इस पुस्तक पर देव-पुरस्कार दिया जा चुका है। मूल्य ३।=) तीन रुपए पाँच आने।

मतिराम-मकरन्द

इसमें काव्यालोचन के साथ-साथ कवि मतिराम के ३ प्रसिद्ध ग्रंथों--मतिराम-सतसई, ललित-ललाम और रसराज--का संक्षिप्त सरस संग्रह भी कर दिया गया है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १।=) एक रुपया पाँच आने।

नीरजा

सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा की चुनी हुई कविताओं का संग्रह। इस पुस्तक के लिए लेखिका को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से ५००) का सेकसरिया पुरस्कार मिला है। मूल्य १।=) एक रुपया पाँच आने।

ज्योतिष्मती

इस संग्रह में ठाकुर गोपालशरण सिंह जी की नवीन प्रकार की कविताएँ संगृहीत की गई हैं जो हिन्दी-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं। खासकर इस संग्रह में छोटे-छोटे गीत बहुत ही मधुर और भावपूर्ण हैं। मूल्य २।=) दो रुपए पाँच आने।

आदर्श महिला

इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैव्या और चिन्ता आदि पाँच देवियों की जीवन-घटनाओं का सजीव वर्णन किया गया है। मूल्य २॥≋) दो रुपए ग्यारह आने।

शिशु-पालन

यह पुस्तक स्त्रियों के बड़े काम की है। इसमें प्रसूति-चर्या से लेकर बच्चों के पालन-पोषण के सम्बन्ध की सभी आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला गया है। मूल्य २) दो रुपए।

शासक

सुप्रसिद्ध राजनीति-विशारद निकोलो मेकियावली की 'प्रिंस' नामक पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर। इसमें राजा के कर्तव्यों तथा राज्य-शासन-प्रणाली का बहुत ही विशद विवेचन किया गया है। मूल्य २) दो रुपए।

मार्क्स का दर्शन

यह श्रीयुत भूपेन्द्रनाथ सन्याल का लिखा हुआ है जो मार्क्सवाद के अच्छे विद्वान् हैं। यह दर्शन सर्व-साधारण के लिए है। खास कर मजदूर और शोषित वर्ग के लोग इसे अवश्य पढ़ें। मार्क्स का दर्शन क्रान्ति से ओत-प्रोत है। मार्क्स ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों द्वारा मजदूर श्रेणी के स्वार्थ की पुष्टि की है। बढ़िया कागज पर छोटे टाइपों में छपी सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) दो रुपए।

नवयुवकों के लिए हवाई शिक्षा

नाम से ही पुस्तक का विषय प्रकट है। हवाई जहाजों के युग में इस विषय की थोड़ी बहुत जानकारी प्रत्येक भारतवासी को कराने के लिए पंडित श्रीराम वाजपेयी ने इस पुस्तक की रचना की है। मूल्य १) एक रुपया।

ऋद्धि

जो लोग धनहीन हैं, ऋण-ग्रस्त हैं, बहु-कुटुम्बी हैं, साथ ही जिनकी आय भी बहुत कम है, वे इस पुस्तक के उपदेश के अनुसार चलकर सुख से जीवन बिता सकते हैं। मूल्य २।) दो रुपए पाँच आने।

भारत के धुरन्धर कवि

आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि से लेकर महाकवि कालिदास, भवभूति आदि छब्बीस संस्कृत के धुरन्धर कवियों तथा चन्द-बरदाई से लेकर राजा लक्ष्मणसिंह तक अट्ठाईस हिन्दी-कवियों का संक्षिप्त परिचय। मूल्य ।।) आठ आने।

मैनेजर बुकडिपो--इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

विविध विषय की चुनी हुई पुस्तकें

सोहराब-रुस्तम

फारस भाषा में शाहनामा नाम की एक बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है, जिसमें बहुत से शूरवीरों की कहानियाँ लिखी गई हैं। यह कहानी उसी में से ली गई है। मूल्य ।।।-) तेरह आने।

कुलबोरन

श्री चन्द्रभूषण वैश्य ने इस उपन्यास को सत्य घटना के आधार पर लिखा है। समाज की अन्ध-परम्पराओं से देश की जो हानि हो रही है उसका इसमें सजीव चित्र है। सुधार करनेवाले को रूढ़ियों के अन्ध-भक्तों से जैसा लोहा लेना पड़ता है उसका नमूना उपन्यास का मुख्य पात्र 'कुलबोरन' है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) दो रुपए आठ आने।

नवीन संन्यासी

इस उपन्यास में ग्राम्य और नागरिक जीवन का यथार्थ और सुन्दर चित्रण प्रभात बाबू ने किया है। हास्य और विनोद की सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में है। मूल्य ४॥≶) चार रुपए ग्यारह आने।

छुटकारा

एक निठल्ले और बेरोजगार भाई की सहायता उपार्जनशील भाई को किस प्रकार करनी चाहिए, यह बात इस उपन्यास से भली भाँति सीखी जा सकती है। मूल्य १।-) एक रुपया पाँच आने।

शीला देवी

महास्थान-राजकुमारी शीलादेवी की बुद्धिमत्ता, शूरता और सुजनता का वर्णन इसमें पढ़िए। योगिनी माता का कार्य-कौशल विचित्र है। चिहलन का पतन और मित्र मुराद की सचाई आदर्श स्थानीय है। विचित्र उपन्यास है। मूल्य २॥≶) दो रुपए ग्यारह आने।

कथा-सरित्सागर

इस पुस्तक में आद्योपान्त बड़ी सुन्दर कथाएँ संगृहीत हैं। प्रत्येक कथा अपने साथ कुछ-न-कुछ दृष्टान्त रखती है। मूल्य २॥≶) दो रुपए ग्यारह आने।

सोहाग-बिन्दी नाटक

यह पुस्तक कुछ एकांकी नाटकों का संग्रह है। इन सभी नाटकों में सामाजिक समस्याओं पर विचार किया गया है। मूल्य १।-) एक रुपया पाँच आने।

पुरातत्त्व-निबन्धावली

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस पुस्तक में समाविष्ट किये गये निबन्धों के लिखने में देश-विदेश के कितने ही दुष्प्राप्य ग्रन्थों के अध्ययन तथा दुर्गम स्थानों के भ्रमण से प्राप्त की गई अगाध ज्ञानराशि का उपयोग किया है। मूल्य २॥≶) दो रुपए ग्यारह आने।

माधव मिश्र-निबन्धमाला

हिन्दी-गद्य के प्रारम्भिक काल के प्रतिभाशाली लेखक पंडित माधव मिश्र के चुने हुए निबन्धों का संग्रह। मूल्य ३।-) तीन रुपए पाँच आने।

व्यंग्य कौतुक

इस पुस्तक में कवीन्द्र रवीन्द्र बाबू के द्वारा व्यंग्य और विनोदमयी भाषा में लिखे गये कुछ निबन्धों का संग्रह है। मूल्य ॥≶) ग्यारह आने।

मेरी आत्म-कहानी

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के जन्मदाता बाबू श्यामसुन्दरदास जी की आत्म-कहानी एक प्रकार से हिन्दी-साहित्य के वर्तमान युग का इतिहास है। इस पुस्तक में बाबू साहब ने केवल अपनी जीवन-घटनाओं का विवरण ही नहीं लिखा वरन् अपने समय के उन सभी साहित्य-सेवियों के कार्यों की विवेचना भी की है, जिन्होंने हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि में योगदान किया है। मूल्य २) दो रुपए।

एक आत्म-कथा

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के एक प्रतिष्ठित विद्वान् मुंशी लुत्फुल्ला की आत्म-कथा का सारांश। इसमें विलायत-यात्रा तथा मार्ग में पड़नेवाले स्थानों का तत्कालीन वर्णन दिया गया है। मूल्य २) दो रुपए।

मैनेजर बुकडिपो—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद


CAUTION
SEE THAT THE
INNER LID
UNDER THIS
IS INTACT.
LIPTON'S
FINEST DARJEELING TEA
LIPTON'S TRADE MARK
INDIAN CHIEF OFFICE
TEA SHIPPING GODOWNS & EXPORT OFFICE
LIPTON'S BUILDINGS
CALCUTTA

हमारी नई पुस्तकें

सङ्गति

—आकाशरंजन मेहता नामी डाक्टर थे। उनकी खासी आमदनी थी। किन्तु उनकी अर्द्धाङ्गिनी सुशिक्षित हेमप्रभा यह समझती थी कि डाक्टर मेहता सिर्फ आविष्कार की धुन में रहते हैं; मेरे पिता के दिये धन से ही गुजर होता है। इससे वह सिर-चढ़ी स्त्री बन गई थी। और डा० मेहता उसकी फटकार सुनकर भी भीगी बिल्ली बने हुए अपने काम में लगे रहते थे। उनका मित्र जौहरी कई वर्ष विलायत में रह आया था। उन्होंने हेमप्रभा से उसका परिचय करा दिया। परिचय इतना घनिष्ठ हो गया कि उससे बचने को डा० मेहता आँखों का इलाज कराने के बहाने दूसरे प्रान्त में चले गये। इधर उसका रंग गहरा होता गया। कई महीने बाद डा० मेहता नकली अन्धे बनकर लौटे और इसी रूप में उन्होंने हेमप्रभा के खोये हुए प्रेम पर अधिकार किया। लेखक ने विलक्षण कथानक की सृष्टि करके गिरते हुए चरित्र को समुन्नत बनाया है। मूल्य १॥) एक रुपया आठ आने।

यात्री

श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बी० ए० ने इस पुस्तक में लिखा है कि हम सभी अनन्त पथ के यात्री हैं। यह जीवन-यात्रा कब आरम्भ हुई और कहाँ इसकी समाप्ति होगी। लेखक ने क्यों लिखूँ, जीवन-पथ पर, स्मृति और शिक्षक-जीवन आदि २० शीर्षकों में विभिन्न विषयों पर परिमार्जित भाषा में उच्च विचार प्रकट किये हैं। यात्री अपने ढंग की अनुपम पुस्तक है। सचित्र आवरण की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

अनातोले फ्रांस की चुनी हुई कहानियाँ

फ्रांस के इस नामी कहानी लेखक की प्रतिभा का अनुमान पाठकों को छाया-सुन्दरी, उसका पति, रूप परी, मदारी, पेरिस की सुन्दरी और माल आदि कहानियों से लगेगा। प्रत्येक कहानी बेजोड़ है। ये कहानियाँ मनोरंजन के साथ ही उपकार भी करेंगी। मूल्य १) एक रुपया।

विषवृक्ष

यह सुप्रसिद्ध उपन्यास-प्रणेता रायबहादुर बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का बढ़िया उपन्यास है। इसका हिन्दी रूपान्तर किया है कृतविद्य श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने। इस उपन्यास में विषवृक्ष है कुन्दनन्दिनी जो थोड़ी अवस्था में अनाथ हुई और नगेन्द्र बाबू का आश्रय पाकर उनके रिश्तेदार से व्याही गई। फिर सत्रह साल की उम्र में विधवा हो गई। इसके रूप पर नगेन्द्र बाबू ऐसे रीझे कि उसके साथ विधवा-विवाह कर लिया। उपन्यास की भाषा और कथानक सभी विचित्र है। मूल्य २) दो रुपये।

नवदुर्गा

नवदुर्गा बंगाली पण्डित की बेटी थी। उसके विवाह की चिन्ता में माँ-बाप और बेटी तीनों घर से कलकत्ते के लिए चले। रास्ते में केदारेश्वर तीर्थ में ठहर गये। वहाँ के महन्त अम्बिकाचरण पुरी ने नवदुर्गा को प्राप्त करने के लिए जाल रचा। अन्त में महन्त का चरण चाकर अधरचन्द्र मुखोपाध्याय 'मियाँ की जूती और मियाँ का सिर' की कहावत के अनुसार महन्त जी से खासी रकम ऐंठकर और नवदुर्गा को विधि से पत्नी बनाकर चलता हुआ। लेखक ने महन्त जी की जो दुर्गति काशी में लाकर कराई है उससे पाठक विस्मित और खिन्न हुए बिना न रहेंगे। मूल्य १।) एक रुपया चार आने।

हार या जीत

इस उपन्यास में लेखक डा० व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०, डी० फिल० ने एक देहाती लुहार की अल्पवयस्क बेटी को घटनाक्रम से, अनाथ दशा में, देहात से महरानगंज की रानी पृथाकुंवरि के आश्रय में पहुँचा दिया है। वहाँ रानी की कृपा से इस लड़की ने विद्या पढ़ी। फिर इसमें उन गुणों का विकास हुआ जिससे मनुष्य सभ्य होकर सम्मान पाता है। इसने असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और अन्त में कलकत्ता जाकर नौकरी कर ली। कई पुस्तकें लिखीं, विदेश-यात्रा के बाद रानी के कुँवर की प्रार्थना पर उससे विवाह किया। मूल्य २) दो रुपये।

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद





सरस्वती



अगस्त १९४९



शुद्ध बादामरोगन पर बना

अलकपरी

केशों में प्रतिमास ३-४ इञ्च वृद्धि।
६ महीने में एड़ी-चुम्बी केश।

'अलकपरी' का कोर्स

पहले सप्ताह में रूसी-खुश्की दूर हो जाती है।

दूसरे सप्ताह में केशों का झड़ना और उनके सिरों का फटना रुकता है।

तीसरे सप्ताह में नये केश उगते दिखाई देते हैं।

चौथे सप्ताह के अन्त तक केश ३-४ इञ्च बढ़ जाते हैं। फिर प्रतिमास इसी औसत से बढ़ते रहते हैं।

६ महीने में केश एड़ी-चुम्बी बन जाते हैं।

मूल्य एक शीशी का २॥) है जो एक महीने को काफी होती है। डाक-खर्च व पैकिङ्ग पृथक्। ६ से अधिक शीशियाँ डाक से नहीं भेजीजाएँगी। अधिक के लिए ५) पेशगी भेजिए और अपने रेलवे स्टेशन का नाम लिखिए।

प्रयोग करने वालों की सम्मतिः—

अनेक कम्पनियों की लम्बी-चौड़ी तारीफें पढ़कर मेरा विश्वास उठ चुका था, पर आपकी अलकपरी को मैंने प्रशंसा के अनुरूप ही गुणकारी पाया। इसके लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें और तीन शीशियाँ शीघ्र भेज दें। —राजकुमारी लालन, राजसदन, मैनपुरी।

Alak Pari is giving much much satisfactory improvement, kindly despatch 6 Phials of it more. Chadra P. Sethi B. A.
Ramnagar, Lahore.

अपनी पत्नी के लिये अलकपरी मँगाई थी। बहुत लाभ हुआ और बाल बढ़े भी खूब! कृपया १२ शीशियाँ और भेजें। —गोस्वामी मुकुन्द शर्मा, बड़ा मन्दिर, बम्बई २।

I found Alak Pari to be one of the excellent oils. In fact it has shown well progress in the hair and satisfied me to the most. Kindly despatch 6 Phials more.
Miss Malini V. Nagpurkar, Dadar.

पूर्व आपके यहाँ से अलकपरी मँगाई थी। बहुत लाभकारी प्रमाणित हुई। १ दर्जन शीशियाँ और भेज दें। —गोस्वामी श्री० १०८ श्री गिरधारीलाल जी महाराज, झबुआ स्टेट।

प्रत्येक बड़े शहर में दूकानदारों के पास मिलती है। न मिलने पर इस पते से मँगाइए—

व्यवस्थापिका—'अलकपरी', नया कटरा, इलाहाबाद।

पेटभर भोजन करिये

गेसहर
[गोलियाँ] गेस का चढ़ना, पैदा होना, मन्दाग्नि, बादी, वायु पेट में पवन का घुंचवाना, भूख की कमी, दिमाग़ में अशांति हो जाना, घबराहट, थकावट, हृदय की कमज़ोरी, पल्पीटेशन ब्लडप्रेसर, दस्त की रुकावट, नींद की कमी वग़ैरह को दूर कर, दस्त हमेशा साफ और खुलासा लाती है। अन्न पाचन करके कड़ाके की भूख लगाती है, शरीर में रुधिर बढ़ाकर शक्ति प्रदान करती है, लिवर, आँत, प्लीहा और पेट की हर एक शिकायत के लिए, अद्वितीय इलाज है। की० १।) रु० तीन की ३।।) रु० पोस्टेज अलग।

कुव्वत देनेवाली दवा

दुग्धानुपान
[गोलियाँ] •धातु क्षीणता, स्वप्नदोष, बन्धकोष्ठ, पुरुषत्व की कमी, पेशाब की शिकायतें, दिमाग़ की कमज़ोरी, बीमारी के बाद की निर्बलता, रुधिर की कमी, शरीर में दर्द का होना, सुस्ती थकावट का आना, छाती में दर्द का होना, इत्यादि शारीरिक और मानसिक रोगों को दूर करके, शक्ति और उत्साह तथा स्फूर्ति प्रदान करती है। वज़न बढ़ता है, शरीर तंदुरुस्त बनता है। की० १।) रु० तीन के ३।।) रु०। वी० पी० खर्च अलग। तीन शीशियों से संपूर्ण आराम।

कामविलास
[गोलियाँ] वीर्य ज्यादा अरसा तक रोककर युवकों और वृद्धों को संसार-सुख में सच्चा आनन्द देती हैं। की० १।) रु०

आँखों की तमाम शिकायतों के लिए शर्तिया

न० प्र० सुरमा
सच्चे मोतियों के इस सुरमे से मोतिया-बिंद, फुला, खील, जाला, शोर्ट-साइट (Short Sight) सुर्खी, रतौंधी, पानी निकलना वगैरह दूर होकर रोशनी बढ़ती है, फी शीशी का १।) रु० तथा २।।) रु०।

प्रमेहहर
[गोलियाँ] सुजाक, प्रमेह, पेशाब में जलन, पीप आना वगैरह मूत्रमार्ग के भयंकर रोगों के लिए अक्सीर। की० १।।) रु०

खील, दाग के लिए
खीलोन लोशन
मुँह पर के खील, भद्दे व काले दाग आदि मिटाकर चर्म को मुलायम व कोमल बनाता है। काली चमड़ी को सफेद बनाकर सौंदर्य व कांति में वृद्धि करता है। फी शीशी १।) रु० तीन शी० ३।।) रु०

गर्भांकुश
[पिल्स] दवा के सेवन से हमेशा के लिए गर्भ नहीं रहता, मासिक धर्म नियमित जारी रहता है, गर्भ निरोध होता है, हानिरहित है, संतति नियमन के लिए उत्तमोत्तम उपाय है। कीमत प्रति शीशी ४) रुपया।

दिव्यांगना
[गोलियाँ] स्त्रियों के लिए खास शक्तिवर्धक दवा है। प्रदर, रक्तप्रदर, गर्भ न रहना, गर्भपात हो जाना इत्यादि दूर होकर शरीर तन्दुरुस्त बनता है। की० १।) रु० तीन शीशी ३।।)।

बालकुसुम
छोटे बच्चों को ताकत देने-वाली अद्वितीय दवा है, बच्चों के हर प्रकार के रोग, दुर्बलता आदि दूर कर बालक को हृष्ट-पुष्ट बनाता है। फी शीशी १) रु०

बहिरापन
कान में से पीप-मवाद निकलना, चस्का-शूल होना, पर्दे में तकलीफ, सीं-सीं आवाज़ होना, बधिरता-बहिरापन इत्यादि कान के भयंकर रोगों के लिए

'रसिक' कर्णबिन्दु [ईयर ड्राप्स]
इस्तेमाल करें। कीमत शीशी १।) रु० तीन शीशी ३।।) रु०। तीन शीशी के सेवन से पुनः श्रवण-शक्ति प्राप्त होती है।

वी० पी० से मँगाने का पता—**दुग्धानुपान फार्मेसी** सी०, ४ जामनगर (काठियावाड़)

एजेन्ट्स—

इलाहाबाद—अग्रवाल मेडीकल हॉल, ६६ जॉनस्टोनगंज।
लखनऊ—इन्द्रचन्द एण्ड कुं०, चौक केमीस्ट।
बनारस—राधेलाल एण्ड सन्स चौक बेटरीवाला।
देहली—जमनादास एण्ड कुं०, चाँदनी चौक।
नागपुर—अनन्तराय ब्रदर्स, किराना ओंल इतवारी।
जबलपुर—दिगम्बर जनरल स्टोर्स जवाहीरगंज।
बम्बई—वींछी ब्रदर्स एण्ड कं० ७६ प्रीन्सेस स्ट्रीट।
अयोध्या—हमारा दवाखाना बाबू बजार।
पटना—अशोक फार्मेसी, मखनीआँ कुआँ बाँकीपुर।
जयपुर—डॉ० आर० पी० गुप्ता, चाँदपोल बाजार।
कलकत्ता—बनेचन्द मावजी, १८ मलीक स्ट्रीट।
कानपुर—गुजरात मेडीकल स्टोर्स जनरलगंज।
अजमेर—महेता स्टोर्स नयाबाजार।

गोरखपुर—भैषज्य भंडार, अलीनगर

स्त्रियों के लिए सर्वोत्तम शक्ति-वर्धक औषधि

जोमेस्त्री

कमर-दर्द, हाथ-पैर का टूटना, हड्डियों का दर्द, बेचैनी, जी घबड़ाना, हिस्टीरिया वगैरह रोग 'जोमेस्त्री' के सेवन से मिट जाते हैं। दुर्बलता नहीं आती। स्त्रियों का आरोग्य आयुष्काल बढ़ जाता है।



जोमेस्त्री लेनेवाली माता का बालक तन्दुरुस्त और हृष्ट-पुष्ट होता है।

हरेक दवाफरोश के यहाँ मिलेगी

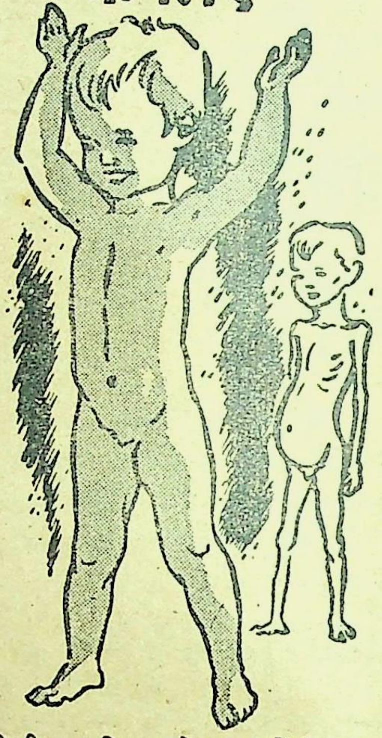
जसमाईन एजेन्सी नड़ीयाद (गुजरात)

एजेंट श्रीकेमिकल्स, २३३२, महाराजा लाल बिल्डिंग खुशालराय कटरा, देहली

कान्तीलाल परीख, चाँदनी चौक, दिल्ली

एकमात्र अचूक औषधि

बच्चों के बढ़े हुए यकृत व तिल्ली के लिए



जेम्मीका "लिवर क्योर" बच्चों के यकृत व तिल्ली के रोगों के निदान के लिए वद्यैक-शास्त्र को एक सर्वश्रेष्ठ एवं अत्याव-श्यक देन है।

भारत भर के लब्ध प्रतिष्ठ डाक्टरों ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। बढ़े हुए यकृत व तिल्ली के रोगों की अत्यन्त वृद्धि की दशा में भी इस चमत्कारिक औषधि से लाभ पहुंचा है।



जेम्मी का

लिवर क्योर

जेम्मी वेंकटरामनैय्या एण्ड सन्स

माइलापुर, मद्रास, (फो. नं. ८१३९)

सैण्डहर्स्ट रोड, बंबई ४. (फो. नं. ४१५९३)

हरिसन रोड, कलकत्ता।

अन्य स्थान-लखनऊ, बंगलोर, त्रिचनापल्ली, इत्यादि।

J. 233 A Hindi.

महात्माजी का चमत्कार

प्रेमवटी ने अपनी खूबी से सारी दुनिया में तहलका मचा दिया

कांग्रेस की राय

(प्रेमवटी वास्तव में एक अद्वितीय औषधि है। पहले हमें इस औषधि पर इतना विश्वास न था, किन्तु जब हमने इसक स्वयं परीक्षण किया तब हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह औषधि विज्ञापन में दिये गये तमाम रोगों की केवल एक मात्र अचूक औषधि है। हम आशा करते हैं कि भविष्य में यह कम्पनी इससे भी उत्तम औषधियों का निर्माण कर जनता को ला पहुँचायेगी।—कांग्रेस देहली)

भारत के योगियों ने वनों और पर्वतों की कन्दराओं में रहकर वह चमत्कार दिखलाये हैं जिससे बड़े-बड़े वैज्ञानिक औ चिकित्सक हैरत में आ गये हैं। आधुनिक चिकित्सकों को जब कोई रोग की औषधि से० सफलता नहीं मिलती तब वह लाइलाज घोषि कर देते हैं। परन्तु महात्मा लोग जड़ी-बूटियों की सहायता से मुर्दे को भी जिला देने का दावा करते हैं। भाइयो, इसे ध्यान से पढ़ तथा अपने इष्ट-मित्रों को सुनाओ। यह लेख जो लिखा गया है, कोई गप्प नहीं है बल्कि मेरे जीवन की चन्द घटनाएँ हैं जो आप सम्मुख रखता हूँ। मेरा जन्म एक धनी परिवार में हुआ। अपने पिता का लाडला पुत्र होने के कारण मैं धन और व्यसन में घि रहता था, लेकिन फिर भी मैं सुखी नहीं था। कुसंगत में पड़कर मुझे जरियान और प्रमेह रोग हो गया। पहले तो एक दो साल मैं लोकलाज के कारण अपना भेद छिपाये रखा परन्तु रोग ने भयानक सूरत अख्तियार कर ली। अब मैं घबड़ा उठा, संसार में चारों ओ अंधेरा मालूम होने लगा तब मेरी आँखें खुलीं। इलाज शुरू किया गया। बड़े-बड़े डाक्टरों, हकीमों, वैद्यों के फ़ीस रूप में रुपये औ कीमती दवाइयों के खरीदने में पानी की तरह रुपया बहाने लगा फिर भी मैं निराश ही रहा। अब मैं घबरा उठा और चारों तरफ अन्धकार दिखलाई देने लगा और सोचने लगा कि इस दुःखमय जीवन से मर जाना बेहतर है।

परन्तु यह बीस साल पहले की बात है। अब आज मैं खुश हूँ। आज उस परमात्मा की कृपा से आरोग्य हूँ और मेरे ती स्वस्थ बच्चे भी हैं जो बिलकुल आरोग्य हैं।

हुआ क्या ? मुझमें इतना परिवर्तन कैसे हो गया ? यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि मैंने एक दवा सेवन की। दवा मैंने सेवन की, वह एक महान् त्यागी परोपकारी साधु की बनाई हुई थी, जो समय काटने के लिए गाँव से कुछ दूर एक ईंट खेड़े पर रम रहे थे। यह मेरा सौभाग्य था कि और लोगों के साथ मैं भी दर्शनों के लिए जा पहुँचा। दैवी शक्ति से मेरे दुःखी जीव के पिछले अध्याय उनके हृदय-पट पर खिंच गये और मेरी आँखों ने हृदय का सारा भेद अपने आप उस महान् पुरुष पर प्रकट क दिया। मेरी कच्ची उम्र पर महात्मा को दया आई और उन्होंने मुझे कुछ जड़ी-बूटियाँ एकत्र करने की आज्ञा दी। मैंने वैसा ही कि और तब उनके सम्मुख ही मुझे उनके आदेश और निजी देख-रेख में 'प्रेमवटी' तैयार करनी पड़ी। यद्यपि मुझसे ४० दिन लगात 'प्रेमवटी' का सेवन करने को कहा गया था, तथापि केवल बीस दिन के सेवन से ही मुझमें परिवर्तन हो गया। मेरी कमजोरी औ तमाम गुप्त बीमारियाँ जड़ से दूर हो गई। पीले और उदास मुख पर लाली दौड़ने लगी, आँखों में उन्माद झूमने लगा और हृदय जवानी का जोश उमड़ आया। महात्माजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के साथ ही अपने वादे को पूरा करने के लिए दुःखी जनों निमित्त पिछले बीस साल से लगातार मैं इस प्रयोग को मुफ़्त बाँट रहा हूँ। यह अनेक पत्र-पत्रिकाओं में भी छप चुका है। मुझे हर्ष कि इस अमृत तुल्य प्रयोग ने सैकड़ों की प्राण-रक्षा की, हजारों को मौत के मुँह से निकाला और लाखों का इससे भला हुआ। महात्म प्रदत्त 'प्रेमवटी' का नुस्खा इस प्रकार है; नोट कर लें—

शुद्ध त्रिफला ५ तोला, त्रिकुट चूर्ण ५ तोला, शुद्ध सूर्यतापी शिलाजीत ५ तोला, शुद्ध बङ्ग भस्म ६ माशा, असली सूर्यछा केशर ३ माशा, असली अकरकरा ६ माशा, असली नेपाली कस्तूरी ३ रत्ती। इन सब औषधियों को कूट-छानकर खल में डालक ऊपर से शीतल चीनी का तेल २० बूँद, सन्दल तेल २० बूँद, विरोजे का तेल २० बूँद एक-एक करके मिलायें। उसके बाद ता ब्राह्मी बूटी के अर्क में १२ घण्टा घोंटकर झरबेरी बेर के बराबर गोलियाँ बनावें और छाया में सुखा लें। एक-एक गोली सुबह शाम पा भर गाय के दूध में एक तोला शक्कर मिलाकर सेवन करें। इसकी प्रशंसा हम अपने ही मुँह से नहीं करते बल्कि बड़े-बड़े वैद्यों, डाक्टर हकीमों, सेठ-साहूकारों तथा रईसों, जमींदारों, सरकारी आफ़िसरों तक ने इसकी सराहना की है। वैद्यराज श्री जमुनादत्त शर्मा, भों का कहना है कि यह वटी धातु का पतलापन, २० प्रकार के प्रमेह के लिए अक्सीर है।

'प्रेमवटी' में कोई हानिकारक चीज नहीं पड़ती। गुणकारी चीजें नुस्खे से ही प्रकट हैं। यह औषधि वीर्य का पतलाप बीसों प्रकार के प्रमेह पेशाब के साथ चूने की तरह वीर्य का जाना, पाखाने के समय धातु का जाना, स्वप्नदोष, सुस्ती, कमजोरी, नामर्द डाइबटीज, मधुमेह, सूजाक, जवानी में बुढ़ापे की-सी हालत हो जाना, असली ताकत की कमी, स्मरण-शक्ति कमजोर पड़ जाना त स्त्रियों के भी प्रदर-सम्बन्धी रोग दूर करके अत्यन्त ताकत देती है और० नस नस में नवजीवन का सञ्चार करती है। अन्त में उ भाइयों को जिन्हें फ़ुरसत नहीं मिलती या शुद्ध औषधि प्राप्त नहीं कर सकते यह प्रयोग स्वयं बनाकर दाम के दाम में भेजने व व्यवस्था की है। ४० दिन के लिए पूरी खुराक विधिवत् ८० गोलियों का मूल्य ५॥=) २० और २० दिन के लिए ४० गोलियों दाम ३=) डाक खर्च ॥|-)

पता—बाबू श्यामलाल जी रईस, प्रेमवटी आफ़िस नं० ५०, धनकुट्टी, कानपुर।

१०००) रु० माहवार कमाइए

इस 'दौलत की खान' पुस्तक में १९२ हुनर छपे हैं, जिससे लोग लखपती हो गये, जो बेकार थे। इस पुस्तक में हर तरह के तैल, साबुन, बाल उड़ाने का साबुन, बाल काले करने का खिजाब, हर तरह के अचार, खानी तम्बाकू, कुलफी की बर्फ, पेटेंट दवाएँ आदि बनाने का नुस्खा छपा है। इन्हें लोग हजारों खुशामद करने पर मरते वक्त तक नहीं बतलाते हैं। कीमत फी पुस्तक २॥) डाक-खर्च व पैकिंग माफ।

अमेरिकन पिस्तौल

यह पिस्तौल अमेरिका से बनकर आई है। बिलकुल असली पिस्तौल के मानिन्द मालूम होती है। इसे बखूबी कोट की जेब में रख सकते हैं। इसमें ६ खाने हैं। घोड़ा दबाते ही चरखी खुद घूमती है। इसकी आवाज निहायत डरावनी है। चोर, डाकू, शत्रु और जंगली खूँख्वार जानवर इसकी शकल ही देखकर भाग जाते हैं। इसके रखने में सरकार से लाइसेन्स लेने की जरूरत नहीं पड़ती। बाज वक्त यह पिस्तौल जान-माल की रक्षा करने में बहुत अच्छी साबित हुई है। इसको हर एक मनुष्य रख सकता है। मूल्य मय ५० स्पेशल कारतूस के फी पिस्तौल ४) डाक-खर्च प्रतिपिस्तौल १।-) अलग। कारतूस फी सैकड़ा ३)।

असली कलीद सट्टा

यदि आप सट्टा-लाटरी का शौक रखते हैं और लाटरी सट्टा का नम्बर जानकर फायदा उठाना चाहते हैं, तो हमारी असली कलीद सट्टा नामक पुस्तक मँगाकर मालामाल बनिए। इसका नम्बर कभी खाली नहीं जाता। सिर्फ गुणा-भाग करने से ही नम्बर निकल आता है। कीमत फी पुस्तक २) डाक-खर्च व पैकिंग माफ।

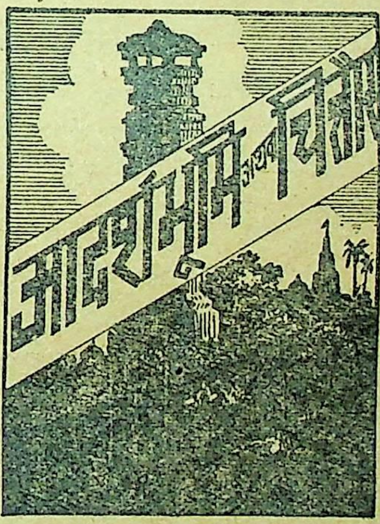
ओटो पुष्पलता

यह ओटो तमाम सेंटों का सरताज है। लगाते ही आपकी तबीअत मस्त हो खुशबू से बागबाग हो जायेगी। इस ओटो को लगाकर आप जिस रास्ते निकल जाएँगे पास के लोगों को ताज्जुब होगा कि यह खुशबू किस बगीचे से आ रही है। रूमाल में लगा लेने से महीनों खुशबू नहीं जाती है। कीमत प्रतिशीशी ।॥) दर्जन का ६) डाक-खर्च १।-) एक दर्जन एक साथ मँगाने पर एक जोड़ी हाथ व गले के बटनों का सेट व एक बम्बई फैशन सोने की तरह चमकनेवाली अँगूठी, एक फैन्सी रूमाल व एक खूबसूरत शीशा मय कंघी के इनाम में मुफ्त दिया जाएगा। इस ओटो का प्रचार करने की वजह से यह ऐलान निकाला है। दो दर्जन एक साथ मँगाने पर ऊपर दिए हुए सामान के अलावा एक बढ़िया फाउन्टेनपेन और दिया जाएगा।

आजाद कम्पनी, नं० १ धनकुट्टी, कानपुर



लंका के युद्ध में लक्ष्मणजी को मेघनाद की शक्ती लगने और उनकी चिकित्सा होने का सुन्दर वर्णन कवि राजाराम श्रीवास्तव, बी० एस्-सी०, एल्-एल० बी० ने इस खण्ड-काव्य में बड़ी सफलता से किया है। मूल्य ।॥) बारह आने।



चित्तौर भारतवासियों की शूरता का प्रसिद्ध तीर्थ है। इसे क्षत्रिय वीरांगनाओं ने अपने बलिदान से अनुप्राणित किया है। इसका पुनीत वर्णन हमारे मन में वीरता का संचार कर पुरानी स्मृतियों को जाग्रत् कर देता है। इसकी कथा प्रत्येक भारतवासी को जाननी चाहिए। ढाई सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

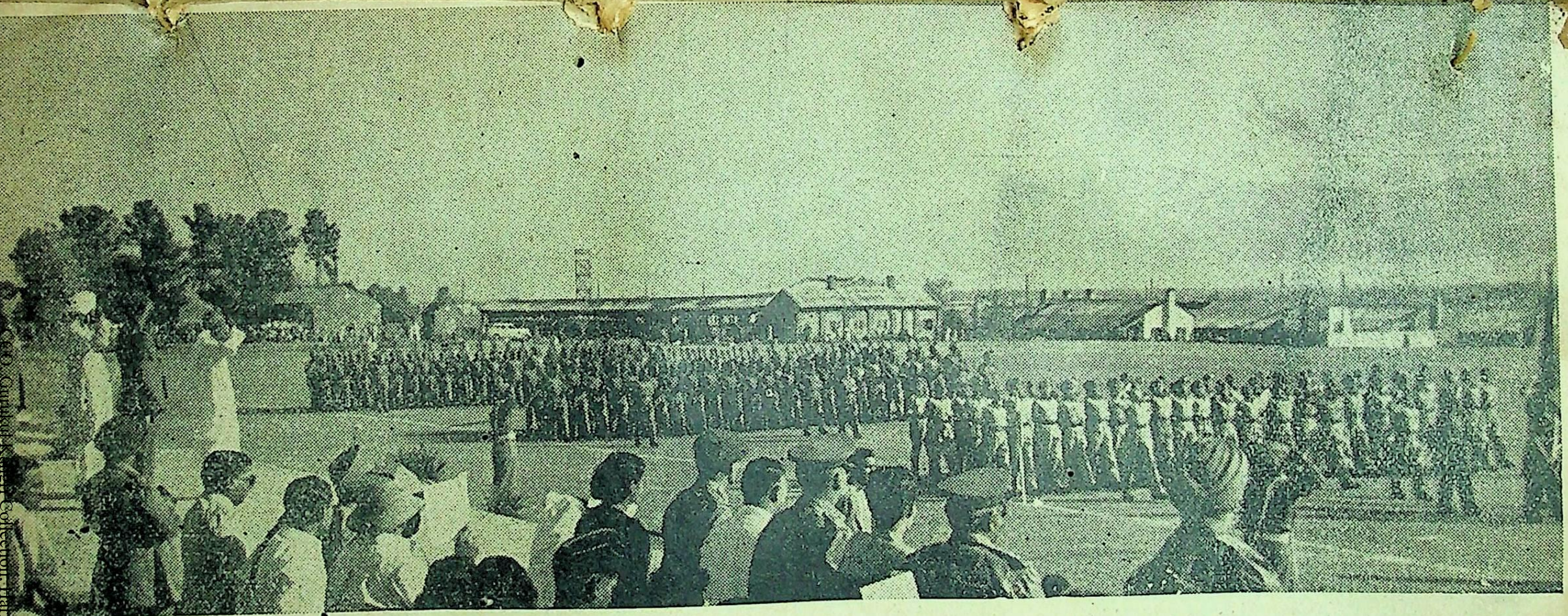


इस संग्रह में श्री चैतन्य महाप्रभु, गो० नित्यानन्द, भक्त हरिदास, रघुनाथदास और श्री शंकराचार्य, रामानुज स्वामी, सन्त तुकाराम, कबीर साहब आदि १७ सुप्रसिद्ध महापुरुषों के जीवन-चरित हैं। ४०० से अधिक पृष्ठों की सचित्र, सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३।-) तीन रुपये पाँच आने।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड इलाहाबाद।

लेख-सूची

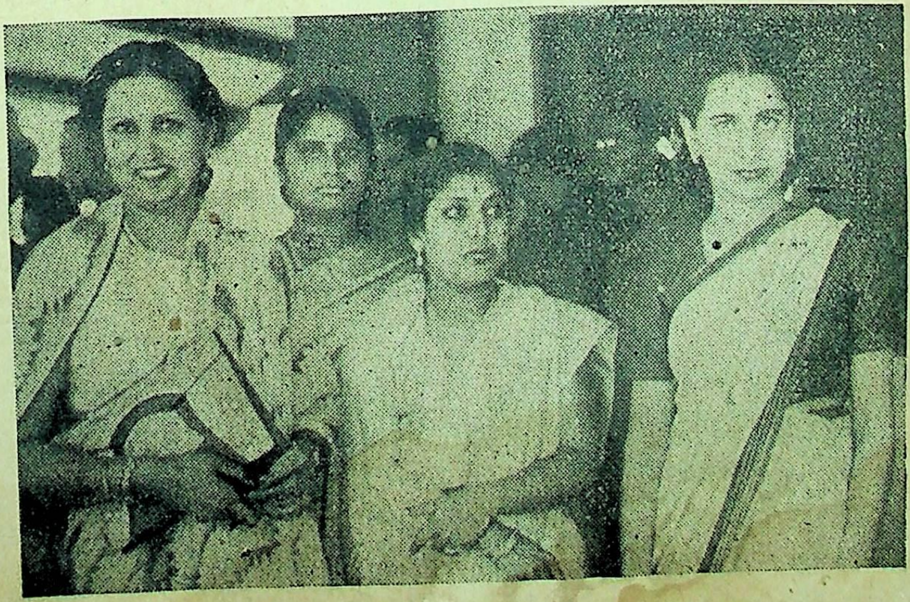
चित्र-सूची

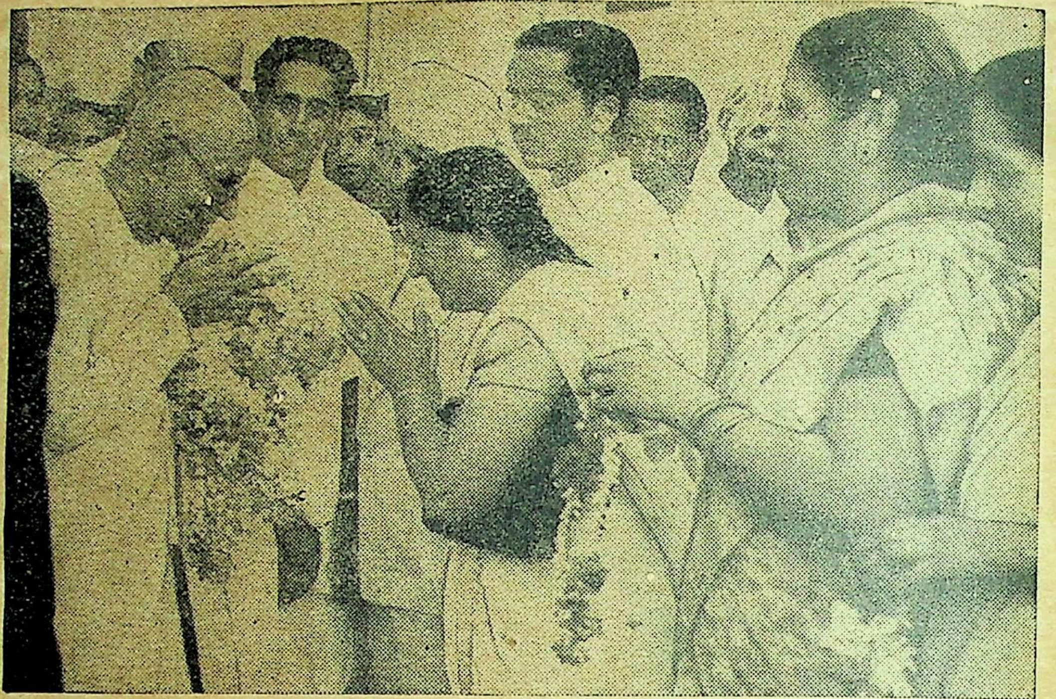


सशस्त्र सैन्य-शिक्षणालय

ऊपर——देहरादून में सशस्त्र सैन्य-शिक्षणालय के उद्घाटन-समारोह के अवसर पर सरदार पटेल सैनिकों की सलामी स्वीकार कर रहे हैं। उक्त शिक्षण-संस्था में स्थल, जल और वायु तीनों शाखाओं के सैनिक शिक्षा प्राप्त करेंगे।

दाईं ओर——सशस्त्र सैन्य-शिक्षणालय के उदघाटन-समारोह में उपस्थित कुछ महिलाएँ।



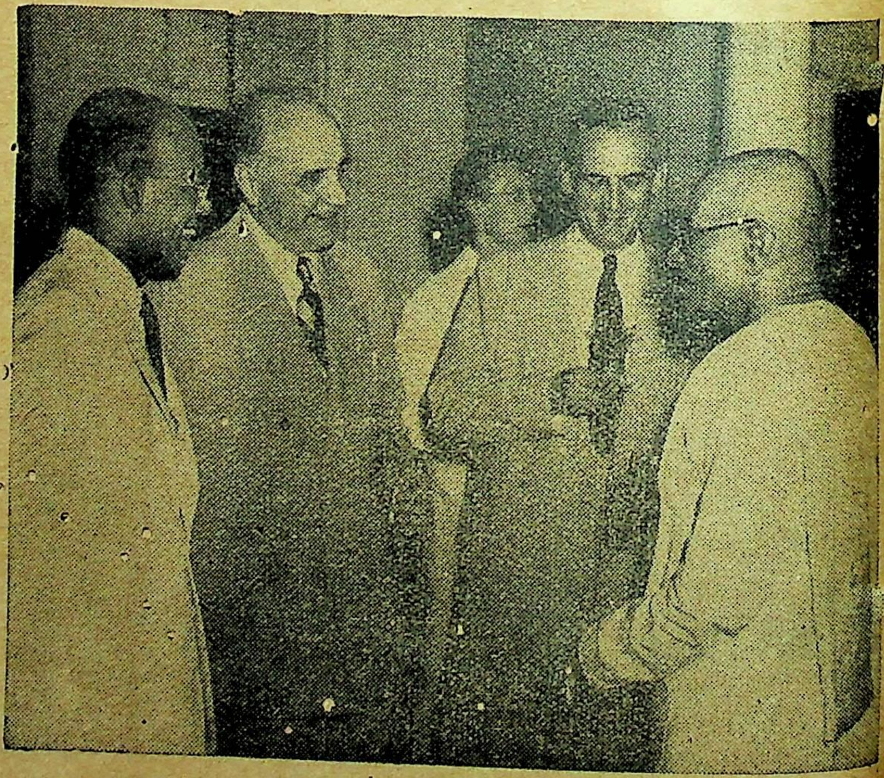


संगीत-परिषद् में श्री राजाजी

पिछले दिनों अखिल भारतीय संगीत-परिषद्-द्वारा दिल्ली में गवर्नर जनरल श्री राजाजी के सम्मान में एक समारोह आयोजित किया गया था। उसी समारोह का एक दृश्य चित्र में अंकित है।

श्री राजाजी अमेरिका के राजदूतावास में

स्वदेश के स्वाधीनता-दिवस-समारोह के अवसर पर अमेरिका के राजदूत डा० लो० हेण्डर्सन अपने दूतावास में गवर्नर जनरल श्री राजाजी का स्वागत कर रहे हैं।





सम्पादक—हरिकेशव घोष : उमेशचन्द्र मिश्र

अगस्त १९४९ श्रावण २००६ ; भाग ५० खण्ड २ ; संख्या २ पूर्ण संख्या ५९६

सम्पादकीय

उत्थातव्यम्

भारत का नया शासन-विधान बनकर तैयार हो गया है। इस विधान में भारत को 'स्वतंत्र प्रजातंत्रीय जनतंत्र' माना गया है। प्रजातन्त्रीय जनतंत्र के प्रतिनिधियों को जनता के अधिक-से-अधिक भाग का समर्थन प्राप्त होना चाहिए, इसी दृष्टि से बालिग मताधिकार को स्वीकार किया गया है। अब तक जाति और समुदाय के आधार पर कुछ स्थानों को सुरक्षित रखने की जो परम्परा चली आ रही थी, और जिसने न केवल भारत को टुकड़ों में बाँट दिया, भारतीय समाज को भी छिन्न-भिन्न कर दिया, उस राष्ट्रघातक प्रथा को भी विधान से च्युत कर दिया गया है। पुराने विधान की कुछ ऐसी त्रुटियाँ भी नए विधान में नहीं रहने दी गई हैं, जिनके कारण हमारा शासनतंत्र एकांगी बन जाता था और जनता जनतंत्र का उपभोग वास्तविक रूप में नहीं कर पाती थी। इस नए विधान के अनुसार चुनाव होने में अभी लगभग डेढ़ वर्ष की देर है, पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसे चुनाव के पश्चात् जो सरकार बनेगी, वह देश के भारी बहुमत की प्रतिनिधि होगी और उसका प्रत्येक कार्य 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' ही होगा।

सत्ता हस्तान्तरित होने के बाद से हमारे देश में जो सरकार काम कर रही है, वह भी प्रजातांत्रिक ही है। उसके सूत्रधार भी जनता के चुने हुए प्रतिनिधि ही हैं। पर एक तो वे सन् १९३५ के विधान के अनुसार चुने हुए हैं जब कि पृथक् निर्वाचन लागू था और बालिग मताधिकार भी नहीं था ; दूसरे उन्हें शासनाधिकार जब हस्तान्तरित किए गए तब जनता का अनुमोदन नए सिरे से प्राप्त नहीं किया गया। उस समय ऐसा हो सकना सम्भव और व्यवहार्य भी नहीं था। ब्रिटिश सरकार अपना भार उतार फेंकने को आतुर थी, अतः जो दल केन्द्रीय सरकार में बहुमत में था, उसी के ऊपर उसे लाद देना विधानानुकूल था। कांग्रेस दल उस समय केन्द्र और प्रान्तों में बहुमत में था, कांग्रेस के चोटी के नेता उसमें सम्मिलित थे, इस दशा में जनता को यही सन्तोष था कि अन्ततः इनसे अधिक योग्य शासन-सञ्चालक और आएँगे भी कहाँ से ! पक्ष में एक और बात यह भी थी कि कांग्रेस का कार्यक्रम भारतीय सङ्घ की जनता का जाना और समझा हुआ था। उसके उसूलों पर जनता की अटूट आस्था थी और कांग्रेस के नाम पर श्रद्धा तो अब भी वैसी ही अटल है !

इतना सब होते हुए भी प्रजातंत्रीय जनतंत्र का यह सच्चा रूप नहीं था; यह केवल अन्तरिम काल के लिए कामचलाऊ जनतन्त्र था। इस जनतंत्र के निर्माण में जनता का हाथ नहीं रहा था। इसका फल अब—स्वराज्य मिलने के डेढ़-पौने दो साल बाद ही—सामने आ रहा

है। हमारे विश्वासपात्र नेताओं के मस्तिष्क में अनेक जनहितकारी कार्यक्रम थे, विशाल योजनाएँ थीं। जनता की दृष्टि में नेता आत्मबलिदानी, निस्स्वार्थी, तपस्वी और सच्चे लोक-सेवक थे। अतः उसे आशा थी कि वे सत्ताधिरूढ़ होते ही देश का कायापलट कर देंगे; दैन्य-दारिद्र्य का मूलोच्छेदन हो जाएगा; दूध और मधु की नदियाँ बहने लगेंगी; 'अपने देश में अपना राज' होगा; हम स्वयं अपने भाग्य-विधाता होंगे; हम स्वयं सरकार होंगे; सरकारी उच्चाधिकारी हमारे सेवक होंगे; 'अभाव' केवल कोषग्रन्थों में रह जाएगा और 'विभाव' रीतिग्रंथों में। सारा देश भावपूर्ण हो उठेगा! पर अब जनता देख रही है कि उसकी यह धारणा स्वप्नदर्शन से अधिक सिद्ध नहीं हुई। जिनसे आशा थी, उन्होंने आशा से विपरीत आचरण किया। इसलिए कांग्रेस के प्रति अटल श्रद्धा रहते हुए भी कांग्रेसियों से उसे घृणा हो गई है, जो उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है।

जनता की यह बदली हुई मनोवृत्ति हमारे चोटी के नेताओं से भी अब छिपी नहीं है। माननीय रफी अहमद किदवई ने अभी हाल में ही कहा था कि कुछ कांग्रेसियों के कांग्रेस-विरोधी कारनामों के कारण जनता में भारी क्षोभ है; वह खद्दर और 'गांधी टोपी' से घृणा करने लगी है और खद्दर-धारियों को सन्देह की दृष्टि से देखती है।

नेहरू जी भी बंगाल की परिस्थिति का निकट से अध्ययन करने के पश्चात् इसी नतीजे पर पहुँचे हैं। कलकत्ता और उसके बाद लखनऊ के अपने भाषण में उन्होंने कहा है कि 'कांग्रेस की इस तेजी से गिरावट नहीं होनी चाहिए। इसमें यदि संकीर्णता या तंगखयाली आती है, और हम उसे दूर नहीं कर सकते तो इससे अच्छा है कि इस संस्था को अपने आप ही खत्म कर दें या राजनीति से बिल्कुल अलग करके इसे रचनात्मक संगठन बना दें।' आचार्य कृपलानी, विनोवा भावे और श्री मश्रुवाला तो अनेक बार हमें चेतावनी दे चुके हैं और बराबर दे रहे हैं।

कांग्रेसी सरकार जनता का अपनत्व प्राप्त नहीं कर सकी, मूल बात केवल इतनी है। कारण सब जानते हैं। जनता को सरकार के निर्माण में हिस्सा नहीं मिला और सरकार ने शासन-संचालन करते समय जनता के सहयोग की अपेक्षा नहीं की। उसके कुछ कर्णधार तो सम्भवतः यह समझते हुए कि शासन का उत्तरदायित्वपूर्ण अधिकार उन्हें उनकी तपस्या के बल पर दैवी वरदान के रूप में मिला है, जन-सम्पर्क से सर्वथा पृथक् ही हो गए। जनता ने जब देखा कि उसका कल तक का यह साथी आज पहाड़ियों की चोटियों पर नन्दन-विहार करने लगा है, प्रतिवर्ष नए माडल की कार खरीदता है, आलीशान कोठियों में रहता है और उससे मिलना भगवान् से मिलने के समान कठिन है, तब वह शासन की ओर से निराश और उदास होने लगी। शासन करनेवालों में न उसकी श्रद्धा रह गई और न आस्था। स्नेह, सहानुभूति और सहयोग का वातावरण ऐसी वस्तुस्थिति में उत्पन्न ही कैसे हो सकता था और जब तक सरकार के साथ लाखों-करोड़ों जनता का अपनत्व और सहयोग न हो, तब तक जनतंत्र कैसा?

आज जनता का मन आवेग से भरा हुआ है और उसके लक्षण यत्र-तत्र नहीं, सर्वत्र व्यक्त हो रहे हैं। देश के नवनिर्माण की बात पीछे पड़ गई है, आगामी चुनाव विभीषिका के रूप में छाती पर सवार हो गए हैं। कलकत्ते के चुनाव-परिणाम और उत्तेजित वातावरण से इन्द्रराज का सिंहासन भी डोल उठा है। अब जनता में कांग्रेस के उसूलों की चर्चा नहीं होती, सोशलिस्टों और कम्यूनिष्टों से देश का कितना हित-अहित होगा, इसके विवरण में जाने की कोई आवश्यकता नहीं समझता; अब उसूलों की विवेचना का स्थान व्यक्तिगत आलोचना-प्रत्यालोचना ने ले लिया है! हमारे मंत्रियों के वक्तव्य जनता समाचारपत्रों में पढ़ती है, पर उन वक्तव्यों की शुभाशंसा पर से जैसे उसका विश्वास उठ गया है। वह उनके व्यक्तिगत आचरणों की आलोचना पर उतर आती है, कुछ गढ़ी हुई और सुनी-सुनाई बातों के आधार पर! आज वस्तुतः कांग्रेस से ध्यान हट गया है—गांधी जी की कांग्रेस से—और कांग्रेसी जनता की सन्देहपूर्ण दृष्टि के लक्ष्य बन गए हैं। इन कांग्रेसियों ने कांग्रेस को डेढ़ साल में ही कहाँ से लाकर कहाँ पटक दिया है! जब तक कांग्रेस के हाथ में शासन-भार नहीं आया था तब तक सिद्धान्तों की छाया व्यक्तियों पर थी पर शासनाधिकार हाथ में आते ही व्यक्ति सिद्धांत पर छा गया है। ऐसा होने पर कांग्रेस की प्रतिष्ठा को धक्का न लगे तो क्या हो! सत्तारूढ़ों के प्रति जनता में श्रद्धा, विश्वास और सम्मान की कमी क्यों न हो।

प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में मूल्य या महत्त्व व्यक्ति का नहीं, उसूलों का होता है। 'डिक्टेटरशिप' में ठीक इससे उल्टा होता है। प्रजातंत्र की शक्ति विचार में केन्द्रित रहती है और 'डिक्टेटरशिप' की तलवार में। विचार को उत्तेजना आदर्श से मिलती है, अतएव जनमंगल को आदर्श बनाकर ही प्रजातन्त्र पनपता और फलता-फूलता है। व्यक्ति का इसमें कोई मूल्य नहीं, वह कितना ही महान् क्यों न हो। प्रजातन्त्र में जो व्यक्ति उसूलों को अमल में नहीं लाता, केवल ढोल पीटकर अपने व्यक्तित्व का विज्ञापन करता है, वह अधिकारी बने रहने के योग्य नहीं होता। लोकरुचि उसका विरोध करने लगती है और जनतन्त्रीय व्यवस्था लोकरुचि पर ही आधारित है। यह लोकरुचि, हमारे नेताओं के इतना परिश्रम करने के बावजूद भी, कांग्रेसियों के विरुद्ध होती जा रही है।

जिन कांग्रेसियों पर राजवंशी होने का नशा छा गया है; एक-डेढ़ वर्ष के कांग्रेसी शासनकाल में ही जिनके दिमाग सातवें आसमान पर पहुँच गए हैं; जो चोरबाजार और भ्रष्टाचार के सजीव माध्यम बने घूम रहे हैं और सरकारी आफीसरों को अपना बिना दाम का नौकर समझते हैं; जो जनसेवा को छोड़ चुके हैं और जिनका काम परमिटें और लाइसेन्स प्राप्त करना और उनसे स्वयं पैसा कमाना और अपने सगे-सम्बन्धियों को कमवाना रह गया है; स्वराज्य मिलने से पूर्व जो देवता के रूप में थे पर स्वराज्य मिलते ही जो शोषक दैत्य और ग्रामकंटकों के रूप में दिखाई देने लगे हैं; उन्हें अपनी मोहनिद्रा छोड़ देनी चाहिए—धीरे-धीरे नहीं, एकदम और एक साथ। अन्यथा वे स्वयं तो डूबेंगे ही, अपने साथ कांग्रेस को भी ले डूबेंगे। कलकत्ते के चुनाव ने सिद्ध कर दिया है कि कांग्रेसियों के लिए, यदि वे कांग्रेस को जीवित रखना चाहते हैं, अपने पुराने जनसेवा के मार्ग को अपनाना अनिवार्य हो गया है।

सरकार बनाम सच्चे जनसेवक

जनता तो निराश हुई ही, शासन की ओर से अब वे लोग भी निराश होते जा रहे हैं, जिन्होंने निस्स्वार्थ लोकसेवा को अब तक अपना लक्ष्य बना रक्खा था। उन्हें विश्वास था कि जनता की सरकार होने पर सच्ची लोकसेवा का मार्ग सुगम हो जाएगा और वे साधारण परिश्रम से ही नागरिकता के कष्टों को दूर कर सकेंगे। पर उन्हें अनुभव हो रहा है कि हमारी लोकप्रिय सरकार में अन्यायी और भ्रष्टाचारी अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतों की सुनवाई नहीं होती। वे किसी भ्रष्टाचारी को रँगे हाथों पकड़ते हैं, उसके विरुद्ध प्रबल और सच्चे प्रमाण एकत्र करते हैं, मामला स्थानीय अधिकारियों के सामने पहुँचाते हैं, प्रमाण देते हैं, यही नहीं उस मामले को अधिक जोरदार बनाने के लिए मंत्रियों के पास भी भेजते हैं और उसकी खुली जाँच कराने को चिनौती देते हैं; पर सरकार की ओर से कोई कार्रवाई होती दिखाई नहीं देती। जैसे सारा मामला बिना जाँच-पड़ताल के ही 'दाखिल दफ्तर' कर दिया जाता है। ऐसे मामलों के सम्बन्ध में भेजे गए तारों और रजिस्टर्ड पत्रों की प्राप्ति-स्वीकृति तक तो मिलती नहीं, और क्या आशा की जाए! जैसे—'कूपहि में वहाँ भाँग परी है।'

प्रजातंत्रीय शासन-व्यवस्था में सत्तारूढ़ पार्टी जन-सेवकों से निकट सम्पर्क स्थापित करके ही शासन चला पाती है। लोकसेवा के एक ही कार्यक्रम को अपनानेवाले इन दो विभिन्न हैसियतों के लोकसेवकों के बीच पूरा-पूरा सामञ्जस्य होना चाहिए, जिससे वे एक-दूसरे के पूरक बनकर लोकोपकारी योजनाओं की पूर्त्ति में परस्पर सहयोग कर सकें। चोटी के लोग तो शासन-व्यवस्था में चले गए हैं और लोक-सम्पर्क से दूर हैं, इस दशा में जनता के बीच में कार्य करनेवाले लोक-सेवकों से ही उन्हें आँख और कान का काम लेना चाहिए। यही वस्तुतः सत्तारूढ़ों के विश्वास-पात्र सैनिक हैं, जो जनता के संगठन को कायम रख सकते हैं। जब ये भी सरकार से निराश और उदासीन हो जाएँगे तब कांग्रेस को और कांग्रेसी सरकारों को बल प्राप्त होगा कहाँ से? कारण, समाज को उठानेवाले, सावधान रखनेवाले और शासन तथा जनता के बीच सामंजस्य स्थापित करनेवाले तो ये ही लोग हैं, वे दस-पाँच लक्ष्मी-वाहन नहीं, जो आए दिन मंत्रि महोदयों को चाय और 'डिनर' पर आमंत्रित करते रहते हैं, और जिनका निकट-सम्पर्क हमारे 'चन्द्रों' को 'चतुर्थश्चन्द्रः' बना रहा है।

कांग्रेस का सङ्गठन

कांग्रेस का पुनः संगठन आज की सनसनीदार राज-नैतिक परिस्थिति में पहली आवश्यकता है। कांग्रेसी सर-कार के प्रति अनास्था उत्पन्न होने में प्रधान कारण वे

कांग्रेसी हैं, जो पदलोलुपता के शिकार हैं; जिनकी सारी शक्ति पार्टियों की तोड़-फोड़ में व्यय होती है; जो मेम्बर बनाने की बहियाँ अपने दल से बाहर जाने ही नहीं देते; जो मंत्रियों से मिलने का अवसर दूसरों को प्राप्त ही नहीं करने देते; जो सरकारी कर्मचारियों को दिन-रात घेरे रहते हैं। शासन के औचित्य और अनौचित्य को जनता तक पहुँचानेवाली यह सेना अब वस्तुतः गद्दारों का काम करती है, और उसी कसौटी पर जनता सरकार को भी कसती है—क्योंकि सरकार भी अन्ततः 'कांग्रेसी सरकार' ही कही जाती है।

ऐसे अवसरवादियों और तिकड़मियों को जाँच-जाँच-कर कुछ समय के लिए या तो अकर्मण्य बना देना होगा, या उनको पुनर्निर्माण आदि की ओर मोड़ देना होगा। साथ ही उन लोक-सेवकों को प्रोत्साहित करना होगा, जो कांग्रेस के प्रति, महात्मा गांधी के प्रति और कांग्रेसी सरकारों के उसूलों के प्रति अब भी निष्ठावान् हैं, पर जो तिकड़मी न होने के कारण 'बैक ग्राउण्ड' में पड़े हैं। जनता और सरकार परस्पर सम्बद्ध रहें और जनता की धारणा सरकार के विपरीत न हो जाए, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि जनता की ओर से जो शिकायतें सरकारी अधिकारियों या अधिकार-प्राप्त कांग्रेसियों के विरुद्ध पहुँचें, उनकी सावधानी से जाँच की जाए और अपराध प्रमाणित होने पर आदर्श दण्ड दिया जाए! नए रक्त का प्रवेश, शिथिल संस्था में जान डालने के लिए आवश्यक होगया है, इस ओर अविलम्ब ध्यान देना चाहिए! यदि ये उपाय शीघ्र और संगठितरूप से किए जाएँ तो कोई कारण नहीं है कि कांग्रेस के प्रति उत्पन्न अनास्था शीघ्र ही दूर न की जा सके, कांग्रेस-विरोधी संगठनों को हतःप्रभाव न किया जा सके और आगामी चुनावों में कांग्रेस के प्रबल बहुमत की चुनाव से पूर्व ही गारण्टी न की जा सके। हमें आशा है कि कांग्रेसजन प्राणपण से कांग्रेस को संगठित करने में जुट जाएँगे और वे माननीय गोविन्द-वल्लभ पन्त के इस वाक्य को कि 'अभी २० वर्ष तक कांग्रेस को कोई अपदस्थ नहीं कर सकता' ब्रह्मवाक्य सिद्ध करके दिखा देंगे। यदि ऐसा हो गया तो डाक्टर लोहिया का यह दावा कि—"कांग्रेस आगामी एक या दो वर्ष में अपना प्रभाव खो बैठेगी। यह एक महान् और आक-स्मिक पतन होगा", स्वयं धूल में मिल जाएगा।

दूध

सुयोग्य सरकारों का ध्यान भावी नागरिकों की ओर अधिक रहता है पर हमारे देश में यह बात नहीं पाई जाती। हमारी राष्ट्रिय सरकार को इन नौनिहालों की ओर देखने का जैसे अभी तक अवसर ही नहीं मिला है। जापानी बालकों को प्रसन्न करने के लिए जो सरकार हाथी भेज सकती है, भारतीय बालकों की प्राणरक्षा के लिए वह बकरी मुहैय्या नहीं कर सकती!

अच्छी नस्ल की गाएँ पंजाब के हरियाना प्रदेश में पाई जाती हैं। वहीं से वे भारत के अन्य भागों में पहुँच-कर बच्चों को पालतीं और पुरखों को तारती थीं। उनके बलवान् बच्चे भूमि को चीरकर सोना निकालते थे और ग्राम्य जीवन के प्रधान उपकरण थे। सुनने में आया है कि केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार ने नियम बनाकर उक्त प्रान्तों से गाय-बैलों का 'निर्यात निषिद्ध' कर दिया है!

शहरों में दूध का भाव आजकल एक रुपए सेर का है। इस पय में मखनिया पय का, भूजन्य पय का या गाढ़ा करने के लिए अरारोट का मिश्रण किस अनुपात में रहता है, यह विशेषज्ञों के अन्वेषण का विषय है! हाँ, म्यूनिसिपेलिटियों की ओर से नियुक्त कुछ पय-निरी-क्षक जब-तब चौराहों पर अवश्य दिखाई दे जाते हैं। वे ग्वालों से दूध का नमूना लेते हैं और उनका चालान भी करते हैं। चालान का आधार दूध में 'केलरियों' की मात्रा होती है या जल का अनुपात, यह हम नहीं जानते। हम केवल यह समझते हैं कि शाम तक ये इन्सपेक्टर अपनी जेबें काफी भर लेते होंगे, बच्चों को मिलनेवाले दूध में पानी का अनुपात बढ़े या घटे। सरकार साफ-साफ स्वीकार कर रही है कि जिसे भ्रष्टाचार के निवारण के लिए नियुक्त किया जाता है, वह स्वयं ही भ्रष्टाचार करने लगता है। इस दशा में सरकार क्या करे! जनता का नैतिक स्तर इतना गिर गया है, वह इतनी भ्रष्ट होगई है कि सरकार की ओर से किया जानेवाला प्रत्येक उपाय निष्फल हो जाता है। बात ठीक है। ग्वाले पानी में दूध मिलाकर बेचेंगे ही, और गृहस्थ बिलबिलाते बच्चों को चुपाने के लिए उसे रुपए सेर लेंगे ही! इस मामले में नेहरू जी और पटेल, पंतजी और राजेन्द्र बाबू कर भी क्या सकते हैं! एक प्रश्न अवश्य उठता है, वह यह कि

माननीय पंत जी, माननीय किदवई जी तथा ऐसे ही अन्य अनेक माननीयों के बच्चों को जो दूध मिलता होगा—यह हम पहले ही मान लेते हैं कि सद्-गृहस्थों की हैसियत से वहाँ 'डब्बे के दूध' का प्रवेश अवश्य निषिद्ध होगा—उसमें भी 'केलरियों' की मात्रा प्रति आउंस उतनी ही रहती होगी, जितनी बाजार में मिलनेवाले दूध में रहती है ? और जब तक राष्ट्र का एक भी बच्चा दूध के न मिलने के कारण रात को रोता-रोता सो जाता हो, तब तक महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी, राष्ट्र के तपे हुए नेता और लोकतंत्र के पूर्ण समर्थकों के बच्चे विशुद्ध, विटेमिनपूर्ण गोदुग्ध का कलेवा और बयालू करते होंगे, एक कांग्रेसी के नाते हम यह भी मानने को तैयार नहीं हैं। निस्सन्देह शुद्ध और पर्याप्त दूध के अभाव में वे बच्चे भी उतना ही कष्ट स्वेच्छा से भोग रहे होंगे, जितना राष्ट्र या प्रान्त के अन्य साधारण बच्चों को हो रहा है !

ग्वाले कह रहे हैं, 'कुछ दिन बाद दूध रुपया पाव बिकेगा, आप लोग पानी की बात कर रहे हैं ! सरकार पंजाब से गाएँ आने नहीं देती। यहाँ की अच्छी-अच्छी गाएँ रुपया सेर तुलकर अमरीकी 'गोघ्नों' के पेटों में हज्म होगईं। जो बच गईं, वे अब तक बुड्ढी होचुकी हैं। खाती हैं पाँच रुपया रोज तो दूध देती हैं दो-ढाई सेर प्रतिदिन ! दूध आएगा कहाँ से ? और गायों की 'खाजी' ही कहाँ है, जो दूध दें।'

वास्तविकता से आँखें बन्द करके कल्पना के लोक में विचरण करनेवाला कवि-सम्पादक यह सब सुन-समझ-कर केवल एक निर्णय पर पहुँचता है और वह यह कि यदि किसी दैवी विधान ने इस व्यवस्था में हस्तक्षेप न किया तो हमारे मंत्रिमण्डल की आगामी पीढ़ी में न पन्त जी से साढ़े छः फुटी नवयुवक-प्रौढ़ दिखाई पड़ेंगे, न जवाहरलाल जी से चिरयुवा, न पटेल से लौह पुरुष और न नवीन जी से वृद्ध रसिक ! वहाँ होंगे—माननीय लालबहादुर शास्त्री के प्रतिस्पर्धी !

पर क्या इस संभावना को टाला नहीं जा सकता ? हम समझते हैं, अवश्य टाला जा सकता है, यदि सरकार इसकी आवश्यकता का अनुभव करे ! प्रत्येक नगर-कस्बे के हलवाई प्रतिदिन जितना दूध जलाकर खोया बना देते हैं, उसका योग कई लाख टन अवश्य होगा। कुछ समय के लिए खोया बनाना जुर्म ठहरा दिया जाए तो यह लाखों टन दूध बच जाएगा ! फिर खोए की मिठाइयाँ जीभ को चटकाने के लिए ही तो बनती हैं, स्वास्थ्य के लिए तो वे हानिकारक ही होती हैं ! दुग्ध जैसे भूलोक के अमृत को खोया और छेना जैसे विषैले खाद्यों में परिवर्तित होते देख, जितना दुःख बाल-बच्चेदार गृहस्थ को होता है, उतना ही दुःख हमारे मंत्रिमण्डल को भी होना चाहिए ! कार्य तो वे लाखों-करोड़ों के माता-पिता का ही कर रहे हैं !

अधिक अन्न उपजाओ

अन्न के उत्पादन में वृद्धि करना भारत की आज पहली आवश्यकता है। हमारे प्रधानमंत्री ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि सन् १९५१ के बाद अन्न हम विदेशों से नहीं मँगाएँगे, अतः उससे पूर्व ही भारत को इस मामले में स्वावलंबी बन जाना होगा।

अन्न के अधिक उत्पादन के लिए सरकार की ओर से भी प्रयत्न किए जा रहे हैं और उनमें सफलता भी मिल रही है। पर उतने ही प्रयत्नों से काम चलता नहीं दीखता। देश को २५ प्रतिशत अधिक अन्न उपजाना है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब १ करोड़ एकड़ कृषियोग्य भूमि और बढ़ाई जाए और किसान इस कार्य में दूने उद्योग और उत्साह से जुट जाएँ तथा सरकार अपनी ओर से उन्हें सुविधाएँ देने और प्रोत्साहित करने की भरसक चेष्टा करे।

सभाएँ करने, रेडियो में ब्राडकास्ट करने, पर्चे बाँटने तथा सरकारी अखबारों में लेख छपने भर से ही देश में अन्न की उपज बढ़ जाएगी, इस पर हमें विश्वास नहीं है। इस दिशा में कुछ व्यावहारिक कदम उठाने की आवश्यकता है। इसके लिए कुछ सुझाव हम यहाँ दे रहे हैं :—

(१) अनेक प्रान्तों की अधिक उपजाऊ भूमि में आजकल तम्बाकू की खेती की जाती है। सिगरेट, बीड़ी, खाने की तम्बाकू व जर्दा आदि का व्यसन इधर गत १५-२० साल से उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है, अतः उनके धंधों के लिए तम्बाकू की माँग भी बढ़ती जा रही है। एक एकड़ भूमि में गेहूँ उपजाकर किसान उतने पैसे नहीं पाता, जितने तम्बाकू पैदा करके पाता है। यह अति-

रिक्त आर्थिक लाभ किसान को गेहूँ के स्थान पर तम्बाकू उगाने की प्रेरणा देता है, जब कि इससे राष्ट्र की दुहरी हानि होती है--अर्थात् एक ओर स्वास्थ्य और आचरण बिगड़ता है, दूसरी ओर अन्न कम पैदा होता है। यदि सरकार तम्बाकू की खेती पर भी उसी तरह लाइसेन्स का बन्धन लगा दे, जिस तरह अफीम तथा भाँग की खेती पर है, तो अन्न के लिए सहज ही कई हजार एकड़ भूमि प्रति प्रान्त बच रहेगी।

(२) जमाए तेल की खपत बढ़ने के साथ-साथ मूँगफली की खेती का प्रचार गत ८-१० वर्ष से इतना बढ़ा है कि देखकर आश्चर्य होता है। जिन रेतीले खेतों में अब मूँगफली बोई जाती है, उनमें बाजरा, उरद, मूंग आदि खरीफ की फसलें उत्पन्न होती थीं। जमाए तेल पर यदि प्रतिबन्ध लगा दिया जाए तो खरीफ के अन्न की उपज अधिक नहीं तो १०-१२ प्रतिशत तो अवश्य बढ़ जाएगी। जमाया तेल या वनस्पति हमारे खाद्य का अनावश्यक अंश है। खरीफ के अन्न के मूल्य पर उसे नहीं चलने देना चाहिए। इस उद्योग को उखाड़ना ही होगा।

(३) शहरों में अब भी बहुत भूमि ऐसी पड़ी है, जो अच्छा अनाज पैदा कर सकती है। उदाहरण के लिए प्रयाग में ही 'मिलिटरी-ग्राउण्ड' में सैकड़ों एकड़ जमीन फँसी है। लगभग उतनी ही भूमि यहाँ का 'सरकिट हाउस' घेरे है, जब कि उसका कभी-कभी काम में आनेवाला अंश एक कोठी और उसके सामने का आँगन भर है। क्यों नहीं यह भूमि किसानों को सालाना पट्टे पर खेती के लिए दे दी जाती ? अल्फ्रेड पार्क का जो भाग बेकार पड़ा है, उसमें भी खेती अच्छी हो सकती है और युद्ध के दिनों में हुई भी थी! अन्य बड़े-बड़े शहरों में भी ऐसी जमीनें हैं। उन्हें भी उपयोग में लाकर एक करोड़ एकड़ की कमी पूरी की जा सकती है।

(४) रेलवे लाइनें और सड़कें अपने इर्द-गिर्द की बहुत सी जमीन बेकार घेर लेती हैं। यदि उसे खेतिहरों को दे दिया जाए तो रेलवे-विभाग की कुछ भी हानि नहीं होगी, न सड़क पर चलनेवालों को कष्ट होगा। हमारी समझ से कई लाख एकड़ भूमि इसी तरह कृषि के कार्य में और बढ़ाई जा सकती है और इस प्रकार २५ प्रतिशत अधिक खाद्यान्न पैदा किया जा सकता है, बिना किसी महत् आयोजन के! क्या इस सुलभ और व्यवहार्य योजना पर विचार करने की कृपा भी प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारें करेंगी!

जमाया हुआ तैल

घी भारतीय भोजन का प्रधान उपादान है। हमारे साधारण दैनिक भोजन से लेकर दावतों में दिए जाने वाले स्वादिष्ट व्यंजन तक बिना घी के नहीं बनते। हमारे देश में इस अमूल्य द्रव्य का प्रयोग वैदिक काल से होता आरहा है। ब्रिटिश शासन-काल से पूर्व शुद्ध घी प्राप्त करना कुछ भी कठिन नहीं था। क्योंकि भारत से बाहर के देशों में घी का व्यवहार नहीं होता था और न वहाँ के निवासी घी का प्रयोग जानते थे, इसलिए घी की गणना अंताराष्ट्रिय व्यापार की वस्तुओं में नहीं थी। देश में घी प्रचुर मात्रा में था ही। इन्हीं दो कारणों से घी में कुछ मिलावट करने की आवश्यकता यहाँ के मनुष्यों को अनुभव नहीं हुई।

ब्रिटिश राज्य ने हमें बड़े पैमाने पर व्यापार करना सिखाया और इसी के साथ-साथ हमने जीवनतत्त्वों में अहितकारी पदार्थों का मेल करना सीख लिया। घी में अनेक द्रव्य सहज ही मिलाए जा सकते हैं। प्रथम महायुद्ध के चलते हुए समाचार-पत्रों में पढ़ा था कि किसी व्यापारी ने अजगर की लाखों टन चरबी घी में मिलाकर बेंची थी और लाखों रुपया पैदा किया था। अभी कुछ ही दिन पहले पढ़ा है कि आगरे या मथुरा का एक घी का ठेकेदार--जो शायद रेलवे को हजारों टिन घी सप्लाई करने का ठेका लिए था और काफी ऊँचे भाव पर--घी में शकरकन्द की पिष्ठी और किसी तैल का मिश्रण करते हुए अपने कारखाने में ही रँगे हाथों पकड़ा गया था। जब से 'बनास्पती' नामक पदार्थ का आविष्कार हुआ है तब से किसी घी को विशुद्ध घी मानने का साहस ही नहीं होता, भले ही—वह ५) सेर के स्थान में ६।।) सेर बेंचा जाता हो! 'बनास्पती' नामक यह भ्रमात्मक द्रव्य, जिस मात्रा में चाहें मिल सकता है। अतः शहरों के बनिए ही नहीं, देहातों के ग्वाले भी इसका मिश्रण दिल खोलकर करने लगे हैं। दूध को औटाते समय ही

वे उसमें यथेष्ट 'बनास्पती' मिला देते हैं, फिर दही जमाकर और उसे मथकर इतना घी निकाल लेते हैं, जितने की आशा एक जानवर के दूध से नहीं की जा सकती। इस घी में मिलावट की परीक्षा शायद विशेषज्ञ भी नहीं कर सकते।

हमारे देश में 'बनास्पती' के कारखाने काफी अधिक हैं। जमाने के लिए प्रायः ये सभी कारखाने मूँगफली का तेल ही व्यवहार करते हैं, क्योंकि मूँगफली सस्ती भी है और प्रचुरमात्रा में प्राप्त भी हो सकती है। मूँगफली की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई खेती इसका प्रमाण है। कहा गया है कि कुछ कारखाने बिनौले और गरी का तेल भी इस कार्य के लिए उपयोग में लाते हैं। पर इसका ठीक पता तो तभी लगेगा जब आगे सरकारी आदेश के अनुसार टिनों पर तैल का नाम लिखा जाने लगेगा।

यह जमाया हुआ मूँगफली का तैल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, इस संबंध में दो मत नहीं हो सकते। विशेषज्ञों की बात जाने दीजिए क्योंकि आज का विशेषज्ञ इतना ईमानदार नहीं है कि प्रचुर पैसा लेकर उससे अनुकूल सम्मति प्राप्त न की जा सके। व्यवहार करनेवालों की स्पष्ट राय तो यह है कि इसमें घी तो दूर शुद्ध तैल के गुण भी नहीं होते। इसे जमाने के लिए जो रासायनिक क्रियाएँ की जाती हैं, उनके कारण यह मनुष्य की जठराग्नि की पाचनशक्ति से बाहर की चीज बन जाता है। शरीरावयवों में इसका शोषण नहीं होता, अतः यह बिना पचे ही बाहर निकल जाता है। हाँ, रासायनिक द्रव्यों के विकार शरीर में अवश्य छोड़ जाता है, जिसके कारण केश अकाल में पकने लगते हैं, हाजमा बिगड़ जाता है, दृष्टिशक्ति मन्द पड़ जाती है, आँतें कमजोर हो जाती हैं, अर्थात् सब मिलाकर कुछ ही काल में स्वास्थ्य चौपट हो जाता है।

इटली में जब इस 'घी' का प्रसार हुआ था तब वहाँ की जनता ने सरकार से इसका उत्पादन रोकने की प्रार्थना की थी। इसके विपरीत व्यापारी वर्ग ने अनेक विशेषज्ञों के प्रमाणपत्र उपस्थित करते हुए यह सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि यह वैज्ञानिक द्रव्य स्वास्थ्य के लिए अमृत ही है। फिर भी जनहित की कामना से इसके उत्पादन पर सरकार ने कुछ साधारण-से प्रतिबन्ध लगा दिए, जिन्हें व्यापारी बड़ी आसानी से पार कर गए। अन्त में पूरा जोर लगाकर वहाँ के किसानों ने कानून के द्वारा इस अहितकारी व्यापार को रुकवाया।

हमारी सरकारों के सामने भी 'बनास्पती' की समस्या जटिल रूप में आज उपस्थित है। एक ओर गिने-चुने मुट्ठी भर कोटिपति हैं, जो लाखों-अरबों इसके व्यापार से अब तक कमा चुके हैं और खरबों और कमाने की इच्छा रखते हैं; दूसरी ओर जनता है, जिसके पास विशेषज्ञों की सम्मति प्राप्त करने के लिए पैसा तो नहीं है, पर जिसे अपनी राष्ट्रिय सरकार की नेकनीयती पर पूरा विश्वास है। सरकार ने अभी तक इसके उत्पादन पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया, यह सचमुच आश्चर्य की बात है। यदि मामला इसकी उपयोगिता-अनुपयोगिता के निर्णय पर ही तुला हो, और उसी के कारण सरकार कोई कड़ा कदम उठाने में झिझकती हो, तो हमारा विनम्र सुझाव यह है कि हमारे चोटी के नेता, जिनके हाथ में शासन की नकेल है—अधिक नहीं तो केवल चालीस दिनों के लिए यह निर्णय कर लें कि वे अपने दैनिक भोजन में 'बनास्पती' और उससे बने व्यञ्जनों-शाकों का ही उपयोग करेंगे, घी, तैल या अन्य स्नेहों से निर्मितों का नहीं। तब उनको इसके लाभ-हानि की ठीक जानकारी हो जाएगी और उस दशा में तथा-कथित विशेषज्ञों का अनुकूल-प्रतिकूल मत उनके निर्णय को डाँवाडोल न कर सकेगा।

कई वर्षों से इस 'वनस्पती' का विरोध जनता-द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किया जा रहा है, पर इसे बन्द करना तो दूर, इसे रँग देने का निश्चय भी हमारी सरकार अभी तक नहीं कर पाई।

ऐसे ढीलेपन से काम अब नहीं चलेगा। इस वस्तु का बनना-बेंचना अब सर्वथा बन्द हो जाना चाहिए। हम जानते हैं कि सरकार के पास अभी भारी-भारी भीतरी-बाहिरी समस्याएँ काफी अधिक हैं, जिनके कारण वह इस मामूली से काम की ओर विशेष ध्यान नहीं देगी। यह बात दूसरी है कि जनशक्ति सरकार को इधर ध्यान देने को मजबूर कर दे!

हिन्दुस्तानी की सिफारिश

अभी हाल ही में समाचारपत्रों में राष्ट्रलिपि के सम्बन्ध में तीन आचार्यों का एक संयुक्त वक्तव्य प्रका-

शित हुआ है, जिसमें जनता से अपील की गई है कि वह ये राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के विवाद को समाप्त करके और दुराग्रह छोड़कर राष्ट्रभाषा का नाम 'हिन्दुस्तानी और राष्ट्रलिपि का नाम 'नागरी' स्वीकार कर ले। सुझाव यह दिया गया है कि केन्द्र में राष्ट्रभाषा का नाम 'हिन्दुस्तानी' ही रहे, चाहे प्रयोग में उसे कोई हिन्दी ही कहे। इस 'हिन्दुस्तानी' के रंग-रूप और व्याकरण के सम्बन्ध में उक्त तीनों आचार्यों की व्यवस्था यह है कि 'उसका व्याकरण और उसकी वाक्यरचना दिल्ली और उसके निकटवर्त्ती भागों में बोली जानेवाली भाषा के सदृश हो, विदेशी शब्दों का उससे बहिष्कार न हो, नए शब्द प्रांतीय भाषाओं और संस्कृत से बनाए जाएँ तथा सरकारी सूचनाएँ नागरी तथा उर्दू दोनों लिपियों में प्रकाशित कराई जाएँ।'

इस व्यवस्था को देनेवाले आचार्यत्रय देश-विश्रुत काका कालेलकर, आचार्य विनोबा भावे और श्री मशुवाला हैं। तीनों महानुभाव गांधीवाद के अधिकारी व्याख्याकार माने जाते हैं और तीनों की त्यागवृत्ति, निष्पक्षता और निःस्पृहता असन्दिग्ध है। फिर भी उनकी यह अपील जनता के गले से नीचे उतरेगी, इसमें सन्देह है।

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि का विवाद अब काफी बढ़ चुका है। इसलिए इसका अन्त होना ही चाहिए इसे सब स्वीकार करते हैं। किसी राष्ट्र के लिए यह बात भी शोभनीय नहीं कि वह दो साल के लम्बे समय में अपनी राष्ट्रभाषा के नाम और स्वरूप का भी निश्चय न कर सके। यह बात सचमुच दुराग्रही प्रवृत्ति की सूचक है। विचारणीय केवल यह है कि यह दुराग्रह है किस ओर।

जब से भारत का विभाजन हुआ है और पाकिस्तान जैसा नया राष्ट्र सत्ता में आगया है, तब से 'हिन्दुस्तान' शब्द का प्रयोग देश के नाम के रूप में शायद ही कहीं देखने को मिलता है। केन्द्र में 'इण्डिया' नाम स्वीकृत किया गया है। हिन्दीभाषी जनता 'भारतीय यूनियन' या 'भारतीय संघ' का प्रयोग कर रही है। जवाहरलाल जी अपने प्रत्येक भाषण के आरम्भ में कहते हैं—'जय हिन्द!' 'हिन्दुस्तान' की जब सत्ता ही शेष नहीं है, तब 'हिन्दुस्तानी' की व्युत्पत्ति क्या हो सकती है?

भाषा के नामकरण का प्रचलित आधार देश का नाम होता है, जिसमें वह भाषा बोली जाती है। देशवासी को भी उसी विशेषण से समझते हैं। यथा इंग्लिश, फ्रेंच और जर्मन उन-उन देशों के नागरिकों को भी परिचायक हैं और भाषाओं का भी। अपने यहाँ 'यूनानी' शब्द का प्रयोग यूनान के निवासी, भाषा तथा चिकित्सा-प्रणाली आदि विज्ञानों के लिए पाया जाता है। जब 'जय हिन्द' का अभिवादन सर्व-सम्मत है, तब 'हिन्द' की भाषा 'हिन्दी' नाम ही पा सकती है, 'हिन्दुस्तानी' नाम नहीं। हमारे कथन से आधुनिक पाकिस्तान के जन्मदाता इकबाल भी सहमत हैं—"हिन्दी हैं हम" कहकर उन्होंने 'हिन्दी' शब्द की अच्छी वकालत कर दी है।

भारत-संघ के लिए जब पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'इण्डिया' नाम प्रस्तावित किया था, और जब विधान-परिषद् ने उसे अंगीकार कर लिया था, तभी हमारे विधान-निर्माताओं को यह समझ लेना चाहिए था कि 'इंडिया' के रहनेवाले 'इण्डियन' कहलाएँगे और उनकी भाषा या तो 'इण्डियन' कहलाएगी या 'इण्डियानी'। उस समय 'इण्डिया' शब्द के प्रति कुछ ऐसा व्यापक मोह था कि उक्त आचार्यत्रय का ध्यान भी इस ओर आकर्षित नहीं हुआ। अब वे 'हिन्दुस्तानी' नाम चाहते हैं जो केवल 'इण्डियानी' का भद्दा और भोंड़ा अनुवादमात्र होगा। गांधी जी 'हिन्दुस्तानी' नाम के समर्थकों में प्रथमतम और अन्यतम थे। अब यह शुद्ध गांधीवाद का आग्रहमात्र है कि चूँकि गांधी जी 'हिन्दुस्तानी' नाम कह गए हैं, इसलिए यही नाम रहना चाहिए। गांधी जी का प्रत्येक आग्रह 'सत्याग्रह' होता था, तो उनके व्याख्याकारों का आग्रह 'दुराग्रह' कैसे कहा जा सकता है?

युक्तप्रान्त, विहार, पूर्वी पंजाब, मध्यप्रदेश, मध्य-भारत, राजस्थान और मत्स्यसंघ हिन्दी को राजभाषा घोषित कर चुके हैं। इनके अधिकांश विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी को स्वीकार कर चुके हैं। देश का बहुमत, यहाँ तक कि केन्द्रीय धारासभा का बहुमत हिन्दी के पक्ष में है। इस वस्तुस्थिति में हिन्दुस्तानी के पक्ष में विवाद को समाप्त करने की अपील उलटी गंगा बहाने की चेष्टा करना है, जो प्रजातंत्र के अनुकूल कदापि नहीं है, गांधी जी की आत्मा के अनुकूल भले ही हो।

वर्धा की राष्ट्रभाषा-समिति का हिन्दुस्तानी-प्रचार

प्रोफेसर महादेव सीताराम करमरकर

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से 'राष्ट्रभाषा' का प्रचार अहिंदीभाषी सात प्रांतों में करने की कल्पना से वर्धा में राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति की स्थापना की गई थी।

जिस समय कार्यारंभ हुआ, हिंदी के प्रचार की ही कल्पना से इसका स्वागत किया गया और हिन्दी-प्रचार-सभा मद्रास की परीक्षाओं को मध्यहिंदुस्तान में बंद करके रा० भा० प्रचारसमिति की ओर से प्रारंभिक, प्रवेश, परिचय और कोविद प्रचार परीक्षाएँ शुरू की गईं।

धीरे-धीरे हिंदी शब्द पर ही आक्षेप होने लगा और उसे हटाने की या प्रारंभ में उसमें व्यापक अर्थ लाने की राजनीतिक कोशिश शुरू हुई। दूसरे नाम के साथ समझौते की भी पहली कोशिश निश्चित हुई। समिति की स्थापना के बाद एकाध वर्ष में ही यह बात स्पष्ट रूप में सामने आई थी क्योंकि १९३७ के करीब वर्धा-समिति की स्थापना हो गई और चालीस के करीब हिंदी याने हिंदुस्तानी शब्दावली का परिचय अहिंदीभाषी प्रांतों को भी हो गया। इसी समय से राजनीति के 'समझौते' का तत्त्व भाषा में भी घुस आया और 'नाम में क्या है' कहते-कहते नाम पर ही अड़ जानेवाले राष्ट्रभाषा के प्रचारकों ने भी अपना अलग रूप दिखाना प्रारंभ किया।

राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के नामकरण के समय राष्ट्रभाषा शब्द पर किसी ने आक्षेप नहीं किया था, यह सच है। क्योंकि 'राष्ट्रभाषा' और 'हिन्दी' एक साथ मिल गए थे। हिन्दी का प्रचार १९२०से '४० तक राष्ट्रभाषा के नाते होता रहा और इसीलिए किसी ने 'राष्ट्रभाषा' शब्द पर आक्षेप नहीं किया। दूसरे, यह समिति 'हिंदी-साहित्य-सम्मेलन' प्रयाग की ही शाखा के रूप में काम करनेवाली संस्था थी। अपेक्षा यही थी कि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के उद्देश्यों का ही परिपालन यह नई संस्था करेगी।

इसी विश्वास पर जनता ने प्रथम रा० भा० प्रचार-समिति की स्थापना में स्वार्थत्याग-पूर्वक सहयोग दिया। हर एक शहर में, जहाँ राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर हिंदी का प्रचार पूज्य महात्माजी की प्रेरणा से हुआ था, सभी केन्द्र वर्धा-समिति की परीक्षाओं के लिए विद्यार्थी तैयार करने लगे। उस समय किसी तरह की फूट या संदेह की बात नहीं थी। प्रचारक भी सभी अवेतन काम करते थे और उनमें कांग्रेसी होने के कारण जो निष्ठा थी, वह बेजोड़ थी; इसमें अभिमान की ही बात है।

लेकिन इसी विश्वास की पूँजी पर निर्माण की हुई और अहिंदीभाषी प्रांतों के धन से विकसित हुई वर्धा समिति का रुख हिंदी दिखाने मात्र के लिए था और नीति हिंदुस्तानी के प्रचार की ही थी। हिंदी याने हिंदुस्तानी का नारा बलवत्तर होता जा रहा था। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की नीति नाम की निश्चिति के कारण स्पष्ट थी लेकिन उसी की शाखा वर्धा-समिति का नाम 'राष्ट्रभाषा' ही था, जो पहले हिंदी की ओर इंगित करता था परन्तु बाद में उसका अर्थ 'हिंदुस्तानी' होने लगा। महात्मा जी का कार्य और उनके राजनीतिक कार्य के सामने उनके हिंदुस्तानी के विरोध में आना असंभव था। राष्ट्रभाषा शब्द के अर्थ इसीलिए बदलते गए और प्रचार भी इसी तरह अनिश्चित रूप में चलता रहा क्योंकि किसी को भाषा की निश्चित कल्पना नहीं थी।

हिंदीभाषी प्रांतों में हिंदी-हिंदुस्तानी के नाम पर भयभीत होने की बात नहीं थी क्योंकि वे प्रांत अपनी भाषा की गतिविधि को जानते हैं और राजनीतिक प्रचार से उनके व्यवहार की भाषा में कोई फर्क आने की बात नहीं थी। लेकिन अहिंदीभाषी प्रांतों में उसके पढ़ने की बात थी, इसलिए हरएक शब्द महत्त्व का था। इसीलिए निश्चित नाम, निश्चित भाषा और निश्चित आदर्श की आवश्यकता थी। हिंदी के राष्ट्रभाषा के नाते २० साल के प्रचार में यह निश्चितता थी, नाम की, भाषा की और आदर्श की भी।

'वर्धासमिति' की 'हिंदुस्तानी' के प्रचार की बात पर हिंदीभाषी जनता का ध्यान जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। लेकिन अहिंदीभाषी प्रांतों में प्रचार की भाषा

फा० २

में जो फर्क लाए गए, वे ध्यान में जरूर आते रहे। लेकिन राजनीतिक अधिकारों के साथ राष्ट्रियता का भी तो तकाजा था कि उसके विषय में कुछ न कहा जाए क्योंकि हिंदुस्तानी के विरोधी लोगों की आवाज को कम बताने के लिए वर्धा-समिति के हाथ में हिंदीभाषी प्रांतों का मत था।

१९३९ में प्रकाशित राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति की 'राष्ट्रभाषा-प्रचार-सर्वसंग्रह' किताब में वर्धा-समिति के उस समय के आचार्य कालेलकरजी की भूमिका पाठकों के सामने रख रहा हूँ। ध्यान रहे कि उसके पहले से ही वर्धा-समिति का कार्य चल रहा था और वर्धा-प्रचार-समिति की प्रगति को दिखाने के लिए यह पुस्तक संकलित की गई थी। सभी केन्द्रों की सूची इसमें दी गई है, जिनकी संख्या १००० से कम नहीं है। ये सभी केन्द्र हिंदी के प्रचार की बात को ध्यान में रखते हुए कार्य में संलग्न थे और वर्धा-समिति को हिंदी के प्रचार का प्रधान केंद्र मानकर। अब कालेलकरजी की भूमिका को देखिए:—

'हिंदी का प्रचार किसलिए और किन उपायों से'

लेखक—काका साहब कालेलकर

१. "हम उन प्रांतों में हिंदी का प्रचार करने के लिए कटिबद्ध हुए हैं, जहाँ वह बोली या समझी नहीं जाती......"

२. "राष्ट्रभाषा के प्रचार का काम शिक्षा और संस्कृति से संबंध रखता है। इसका संबंध न तो किसी किस्म की राजनीति से है और न किसी धर्म या संप्रदाय से।...हम तंगदिली से कोसों दूर रहेंगे और फिरकापरस्ती के तंग दायरे से हमेशा बाहर रहेंगे।"

३. "हम तो अपने यहाँ कोई नई भाषा बनाने नहीं जा रहे हैं। जिस भाषा को उत्तर हिन्दुस्तान के शहराती और देहाती लोग मिलकर बोलते हैं...उसी को हम भारत की राष्ट्रभाषा—हिंदुस्तान की कौमी जवान मानेंगे।"

४. "हम राष्ट्रभाषा से संस्कृत और अरबी फ़ारसी शब्दों के निकालने के पक्ष में नहीं हैं।......हिंदी में प्रांतीय भाषाओं के वे शब्द भी शामिल किए जाएँगे, जो सभी भाषाओं में आमफ़हम हो गए हैं।...ये दिन प्रजातंत्र के हैं, आम लोग जिस भाषा को पसंद करेंगे, वही भाषा लोकप्रिय होगी...।"

५. "सारे भारतवर्ष को हिंद कहते थे। इसी से यहाँ की भाषा का नाम हिंदी बना। अंग्रेज अमलदारों और मिशनरियों को इस मुल्क में प्रवेश करते ही यहाँ की बोली सीखनी पड़ती है। उन्होंने इस भाषा को हिंदुस्तानी कहना ज्यादा पसंद किया। उत्तर की आमफ़हम की बोली में संस्कृत कुटुंब और अरबी खानदान के शब्द बिना किसी संकोच के इस्तेमाल किए जाते हैं इसलिए उस भाषा को हिन्दुस्तानी कहना भी ठीक है। इसी भाषा का पुराना नाम उर्दू है। उर्दू को फ़ारसी रस्मखत में लिखते हैं और हिंदी देवनागरी में लिखी जाती है। पहले ही से हिंदी में सभी भाषाओं के शब्दों को लेकर व्यवहार करने की ओर लोगों का झुकाव रहा है।"

६. "...अंग्रेजी शिक्षा फैलने लगी...क्लासिकल भाषाओं में शिक्षा अधिक होने लगी और उनके लिए अभिमान भी पैदा होने लगा।...यहीं से सारी बुराई, शेखी और अविश्वास का भाव...अगर सच कहें तो भाषा के नाम के इस झगड़े का तसफ़िया उत्तरी भारत या संयुक्तप्रांत के समझदार लोगों को ही मिलकर करना चाहिए। मगर हम जानते हैं कि इसका निर्णय करना उनकी ताकत से बाहर की बात है।"

७......"चुनांचे हमने लाचार होकर ही अपनी राष्ट्रभाषा को हिंदी-हिंदुस्तानी या हिंदुस्तानी-हिंदी कहना तय किया है।...अगर किसी एक नाम में इकतरफापन आता भी हो तो दूसरे नाम की मदद से हम उसे हटा देंगे।"

८. "हिंदी की साहित्यिक साहिबी भी कुछ कम नहीं है। हिंदी प्राचीन होते हुए भी नवयौवनसंपन्न है। उसमें नए-नए संस्कारों को ग्रहण करने की क्षमता है। ...समस्त प्रांतों का वैभव हिंदी ही का वैभव तो है।"

—राष्ट्रभाषा-प्रचार-सर्वसंग्रह
प्रथम संस्करण—१९३९.

इसमें पहले परिच्छेद में हिंदी शब्द का ही आदेश है और आखीर में फिर हिंदी की प्रशंसा है। उसे छोड़कर बीच में प्रस्तावना की मूल बातें हैं। १९३९ के समय

की भाषा का नमूना भी इसमें दिखाई देता है। १९३९ में ही अपनी ओर से यह हवाला दिया गया है कि इसका संबंध राजनीति से नहीं है। लेकिन आज हमको क्या दीखता है? यही कि हिन्दुस्तानी के प्रचार के लिए नई संस्था का निर्माण किया गया, जिससे राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति का अब तक का कार्य असंतोषजनक रहा, यह स्पष्ट होगया। इस संस्था के पदाधिकारी वे ही आचार्य कालेलकरजी हैं, जिन्होंने हिंदी के प्रचारक के नाते अपना परिचय अहिंदीभाषी जनता को प्रथम दिया था।

लेकिन उनकी भाषा की नीति इसी तरह के विचारों से पहले परिचित होती आई थी। और विरोध के साथ ही राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति की ओर से उसी राष्ट्रिय हिंदुस्तानी की पढ़ाई का प्रमाण धीरे-धीरे बढ़ता गया।

इसका एक ही कारण था। वर्धासमिति का नाम 'राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति' ही तो था। राष्ट्रभाषा शब्द में चाहे जिस भाषा का प्रचार हो सकता है अगर उसका परिचित अर्थ हटाया जाए। पहले राष्ट्रभाषा का अर्थ हिंदी ही था; उसे हटा दिया गया और भाषा के रूपों में फर्क होने लगा। यह लुका-छिपी जैसा खेल चलता रहा।

अहिंदी-भाषी प्रांतों को इस तरह 'राष्ट्रभाषा' जैसे अनिश्चित शब्द का विरोध करना आवश्यक था। जब राष्ट्रभाषा के लिए एक ही भाषा का प्रचार करना था तब 'हिंदी' नाम से और उसके साहित्य से काम लेने में सहूलियत थी और सच्चापन भी था। लेकिन वही दुरंगा प्रचार उसी 'राष्ट्रभाषा' शब्द से प्रारंभ हुआ तब वह शब्द सिर्फ धोखा बन गया। हिंदी में फिरकापरस्ती की बात १९३९ में ही हमको मालूम हुई। तब तक इस भाषा में वह संकीर्णता संस्कृत शब्दों का बाहुल्य नहीं था। एकाएक २० साल के प्रचार के बाद उसका साक्षात्कार हुआ। हिंदी-हिंदुस्तानी के विवाद के उठते ही हिंदी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग का अपनी वर्धा-समिति का नाम हिंदी-प्रचार-समिति करना आवश्यक था। लेकिन सम्मेलन की ओर से वर्धा-समिति को प्रचार के लिए स्वाधिकार प्राप्त थे। इसीलिए उसकी ओर से इसके बारे में प्रयत्न नहीं हुए। वर्धा-समिति के बारे में शिकायत करते रहने पर भी उसका कोई उपयोग नहीं हुआ।

इसीलिए 'राष्ट्रभाषा' शब्द में वह उदारता का भाव नहीं रहा, सिर्फ धोखा रहा। और इसी धोखे की टट्टी की आड़ में हिंदुस्तानी का प्रचार हिंदी-साहित्य-सम्मेलन (प्रयाग) की एक शाखा की ओर से सात प्रान्तों में चलता रहा। राष्ट्रभाषा शब्द में हिंदीवालों और राजनीतिक हिंदुस्तानीवालों दोनों को खुश रखने का या दोनों को धोखे में रखने का प्रयत्न था। इसी तरह 'राष्ट्रभाषा' शब्द की खींचातानी के लगातार सात-आठ साल तक चलाने के बाद जब अति आवश्यक और सुविधाजनक दिखाई दिया तब उसी वर्धा-समिति के प्रायः सभी केंद्र अपने हाथ में करके वर्धा-समिति के वही मान्यवर और हिन्दी के प्रचारक आचार्य और मंत्री अब हिन्दुस्तानी प्रचार का कार्य कर रहे हैं, उसके लिए नई हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा की स्थापना करके।

वर्धा-समिति का 'राष्ट्रभाषा' प्रचार किस तरह चलता रहा, वह उसकी पाठ्य पुस्तकों से भी स्पष्ट होगा। सभी पुस्तकों के प्रारंभ में आचार्य कालेलकरजी की भूमिका है, उसके कुछ अंश नीचे दे रहा हूँ:—

दो शब्द

"हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-द्वारा स्वीकृत राष्ट्रभाषा की व्याख्या बहुत व्यापक है। **उत्तर भारत के शहरों और गाँवों की आम जनता** जिसे बोलती और समझती है और नागरी या फारसी लिपि में लिखी जाती है, वही हमारी राष्ट्रभाषा है। शिक्षित, शिष्ट और संस्कारी लोगों में जो भाषा व्यापक रूप में प्रचलित है, **वह भी** राष्ट्रभाषा का ही एक रूप है। जब कि राष्ट्रभाषा का प्रचार पश्चिम-दक्षिण और पूर्व हिन्दुस्तान में दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है तब उसे देश के उस हिस्से की जनता की सहूलियत का खयाल जरूर रखना होगा। राष्ट्रभाषा एक होते हुए भी उसके साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रकार की शैलियों के लिए अवकाश तो रहेगा ही।... हमारी यह कोशिश होनी चाहिए कि राष्ट्रभाषा में किसी भी **स्वाभाविक** संस्कार और शैली का बहिष्कार न किया जाए। सब संस्कारों को पचाकर वह सीधी, आसान और लोकसुलभ बनी रहे..."

——काका कालेलकर

(रा० भा० प्र०-समिति वर्धा की पाठ्य-पुस्तकों की भूमिका)

इस भूमिका के बारे में पाठक ही विचार करें कि कहाँ तक उसमें भाषाविषयक तथ्य है। 'शहरों और गाँवों'

की भाषा पहले भी 'हिन्दी भाषा' के साहित्य के सहारे पढ़ाई जाती थी। राष्ट्रभाषा में भिन्न प्रकार की शैलियों का होना कोई विशेष बात नहीं है। हर एक भाषा में भिन्न शैलियाँ रहती ही हैं। लेकिन विशिष्ट शैली पर ही जोर देकर पढ़ाने का भाषा का तरीका नहीं है, चाहे 'राष्ट्रभाषा' का हो। स्वाभाविक सस्कार और शैली का बहिष्कार न करने के बल पर ही सिर्फ हमारा आक्षेप है क्योंकि पूर्व, पश्चिम और दक्षिण जनता की सहूलियत का भी प्रश्न है और इसे भूमिका में ही स्वीकार किया गया है।

खैर भूमिका में जिस तत्त्व का संशोधन किया है, उसी के अनुसार पाठ्यक्रम के भी उदाहरण दे रहा हूँ। यही देखना है कि तत्त्व और विवरण में कहाँ तक सामंजस्य रहा है। उदाहरण के लिए कविता की पुस्तकों में से एक पुस्तक को मैं ले रहा हूँ। दूसरी, तीसरी और चौथी परीक्षा के लिए गुलदस्ता, भाग १, २, ३ नियुक्त हैं। चौथी परीक्षा का नाम कोविद है, जो मैट्रिक या एडमिशन के समकक्ष है। उनमें से दूसरे भाग में से कुछ उद्धरण मैं दे रहा हूँ। किसी भी भाग को लीजिए, बात वही मिल सकेगी। उर्दू का प्रमाण उसी राजनीतिक प्रमाण पर चला है। कुल कविताएँ दूसरे विभाग में २६ हैं, जिनमें नौ कविताएँ उर्दू की हैं। नमूने देखिए।

(१) तक्बीर का जो कुछ मतलब है
नाक़ूस की भी मंशा है वही,
तुम जिनको निमाज़ें कहते हो,
हिंदू के लिये पूजा है वही।
क्या क़त्ल व ग़ारत खूँरेज़ी
तारीफ़ यही ईमान की है?
क्या आपस में लड़कर मरना
तालीम यही क़ुरआन की है?
इन्साफ़ करो तफ़सीर यही
क्या वेदों के फ़रमान की है,
क्या सचमुच यह खूँख़ारी ही
आला खसलत इन्सान की है?

—रामरहीम (सईद)

(२) न आलम से मतलब, न दुनिया से मतलब
हमारे लिये बस हमारा वतन है,
मुसीबत भी आफ़त भी ज़ुल्मोसितम भी
तेरे वास्ते सब गंवारा वतन है।

हमारा वतन (बिस्मिल इलाहाबादी)

(३) जब ग़रदिशे देहर ने मारा हो,
मुतलक़ न किसी का सहारा हो,
जो आप तसल्ली दें न मुझे
ताहम दुख मैंने पछाड़ा हो।
... ...
राहत जो मिले मसरूर रहूँ
ममनून रहूँ, मशकूर रहूँ,
लेकिन बरवक्त मुसीबत भी,
विश्वास से मैं भरपूर रहूँ।

—अज्ञात (आप बचा लूँ अपने तईं)

ख़ाहिश हो मालोज़र का
तमन्ना न नाम की,
हरवक्त जानो दिल से
वतन पर फ़िदा रहे।
मिट जाय जुस्तजूए तरक्क़ी में क़ौम की
ज़िंदा हमेशा जिससे वह बादेफ़ना रहे।

—हमदम (हौसला)

काम करने का समय है काम करना चाहिए,
हार कर रंजो मसायब से न डरना चाहिए,
खूँ रगों में गर है कुछ क़ौमी हमैयत का रवाँ
मर्देमैदाँ बन के माँ का दुःख हरना चाहिए।
... ...
सब्रो इस्तक़लाल पर क़ायम रहे हरदम सभी,
बढ़ गया है जो कदम पीछे न हटना चाहिए।

—श्री गंगाराम शर्मा
(न डरना चाहिए)

इन कविताओं का आशय अच्छा है, राष्ट्रिय भी हैं, लेकिन भाषा और काव्य अच्छा होने पर भी वह राष्ट्रभाषा के तौर पर नहीं सिखाया जा सकता, यही हमारी शिकायत है। इस भाषा से अन्य प्रांतीय भाषाएँ भी आसान हैं और उनमें राष्ट्रिय विचार भी मिल सकेंगे। उर्दू को राष्ट्रभाषा के नाते हम नहीं स्वीकार कर सकते, उसी बल पर जब मराठी या गुजराती या कान्नड भाषाओं को राष्ट्रभाषा के नाते हम स्वीकार नहीं कर सकते। इसमें

द्वेष की बात ही नहीं है। राष्ट्रभाषा की कसौटी निष्पक्ष रहे और जो भाषा उस कसौटी पर उतर सके, वह हमारी राष्ट्रभाषा है।

मेरा विश्वास है कि 'क्या हिंदी क्या हिन्दुस्तानी' कहनेवाले हिंदीभाषी भी इस तरह की कविताओं को मैट्रिक या एडमिशन के पहले की कक्षाओं में पढ़नेवाले विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में नहीं रखते होंगे। अगर रखते हों तो भी वह हिन्दीभाषी प्रांतों की अपनी विशेषता होगी। अहिन्दीभाषी प्रांतों में इस तरह की कविताएँ पढ़ाने के लिए मजबूर करना और प्रारंभ की प्रचारात्मक परीक्षाओं में, उनपर भाषिक अन्याय ही है। वर्धासमिति के पाठ्यक्रम में यह बात दिखाई देती आई है। धीरे-धीरे कुछ परिवर्तन श्री भदंतजी के मंत्रीपद के स्वीकार करने के बाद होते आए हैं, लेकिन वे भी बहुत ही धीरे। जिससे राष्ट्रप्रेमी हिन्दुस्तानियों को धक्का न बैठ जाए, और उनके ध्यान में यह परिवर्तन की बात भी न जाए, इस तरीके से। यही तरीका हिन्दुस्तानी के प्रचार के प्रारंभ में बरता गया, यही बात अब भी हो रही है। वह भी तो एक धोखा था, यह परिवर्तन भी धोखे के साथ ही तो हो रहा है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिकारियों को इस तरह के पाठ्यक्रम की जानकारी नहीं थी, ऐसी कोई बात नहीं लेकिन उसकी नीति भी इस मामले में लचर रही। क्योंकि राजनीति में प्रतिष्ठाप्राप्त वे भी थे। बात सुनी-अन-सुनी करके टाल देने में ही वह प्रतिष्ठा बनी रहने की संभावना थी। भाषा के विकसित रूप की ओर दोनों शैलियों की यह उदारता दूसरे प्रांतों के लिए तो थी। 'राष्ट्र-भाषा' के अनिश्चितता प्राप्त शब्द से 'हिन्दुस्तानी' के प्रचार में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भी कम जिम्मेदार नहीं है। वर्धासमिति ने उसका प्रत्यक्ष रूप से प्रचार किया और साहित्य-सम्मेलन अप्रत्यक्ष रूप से उसका पृष्ठ-पोषक बन गया। वर्धासमिति के पाठ्यक्रम का यही रूप है और इसीलिए मध्य-हिन्दुस्तान के सात प्रांतों में उसका विरोध दस साल से होता आया है।

ठठरी किसकी ?

श्री युगल

बात उन दिनों की है जब अंगरेज हिन्दुस्तान छोड़ रहे थे। जिन अंगरेज किसानों ने एक बड़े पैमाने पर खेती जुटा रखी थी, वे भी अपनी जायदाद बेंच रहे थे। उनके मन में आशंका थी कि जब गोरी फौज नहीं रहेगी, तो शायद उनकी सुरक्षा न हो सके। दो-चार वर्ष पहले वे '४२ देख चुके थे। इसलिए उन लोगों ने सोचा; चलो भाई, अपने देश ! समेटो यह बोरिया-बिस्तरा !

ऐसे ही भगोड़े साहब की काश्त मैंने खरीदी। काफी जमीन। लम्बी-चौड़ी कोठी। खेती-बारी के काम में आनेवाले बहुत सारे सामान—कई ट्रैक्टर, कई हार्वेस्टर। उन लोगों को भाग-भाग जो लगी थी, सो उसने सिर्फ डेढ़ लाख में ही कम-से-कम पाँच लाख का सामान बेच डाला। मैंने इधर-उधर से रुपए जुटाकर वह काश्त खरीदी। इसलिए कुछ जमीन बेंच दी और कर्ज के रुपए अदा कर दिए। फिर खेती-बारी चलती रही।

उडरफ की यह काश्त मेरे मकान से सोलह मील दूर थी। व्यवसाय का काम पिता जी पर छोड़कर मैं खेती की सम्हाल में आया। उडरफ साहब अपनी पत्नी एंजिला के साथ '४७ में ही मिडबर्ग लौट गए थे। जब मैं खेती की सम्हाल में आया, तब '४८ मार्च था।

उडरफ के चले जाने के बाद बहुत से नौकर हटा दिए गए थे। पुराने नौकरों में वह गुरखा चौकीदार था और बूढ़ा माली। माली उडरफ के साथ बहुत दिनों पहले से रहता आ रहा था। वह उडरफ के निजी जीवन की बहुत सी बातें जानता था।

मेरे आने के पहले ही कोठी की सफाई कर ली गई थी। मैं जिस समय वहाँ पहुँचा, लगभग साँझ हो गई थी। घर से जो एक नौकर आया था, वह चाय-पानी के इन्तजाम में लगा। कोठी के सामने जो बेले की क्यारियाँ थीं, उनमें कलियों के खिलने का आभास मालूम हो रहा था। बँगले को देखकर कोई भी आदमी समझ सकता है कि उडरफ साहब कितने सुरुचिपूर्ण व्यक्ति थे।

ग्यारह बजे रात तक मैं जमीन से ताल्लुक रखनेवाले मुकदमों की मिसल उलटता रहा। एक सत्रह बीघे का प्लाट था, जिसका मुकदमा अभी ताजा चल रहा था। बात यह थी कि अब तक उस जमीन को उडरफ के मैनेजर की बंगालिन विधवा जोत रही थीं। लेकिन उडरफ ने जब काश्त मेरे हाथ बेच दी, तो उस जमीन पर मैंने अधिकार कर लिया क्योंकि दस्तावेज बतला रहा था कि वह जमीन भी उडरफ की ही है।

फाइलों को आलमारी में डालकर जब मैं लेटने जा रहा था, तो मुझे लगा कि कोठी के पिछवाड़े कोई चीखा है। चीख ऐसी कि मुझे लगा कि मरता हुआ व्यक्ति आर्त्तनाद कर उठा है। उस आर्त्तनाद में ऐसी वेदना थी कि मैं अपने को भीतर जब्त नहीं कर सका। ऐसा लगा कि कोई इस कोठी के पीछे किसी व्यक्ति की हत्या कर रहा हो।

मैं बाहर आया। बरामदे में माली लेटा था। उसे उठाया। बन्दूक सम्हाली। गुरखा चौकीदार को बुलाया। कोठी के चारों ओर छान गया। कहीं कोई नहीं था। न कहीं से चीख की आवाज आ रही थी और न कराहने की आवाज ही। मुझे अवश्य ही भ्रम हुआ था। ये नौकर-चाकर मुझे कितना डरपोक समझते होंगे।

मैं बरामदे में जाकर आरामकुर्सी में लेट गया। बूढ़ा माली दीवार से उँगठा बैठा रहा। मैंने कहा—"मैं समझता हूँ, मैंने यह चीख जरूर सुनी है।"

माली बोला—"सुनी होगी सरकार! नदी के उस पार डोमरों का घर है। रात भर लोग चीखते-चिल्लाते रहते हैं। उडरफ साहब के एक दोस्त ने इसी तरह चीखने-चिल्लाने के लिए डोमरों को पीटा था।"

मैंने पूछा—"माली, उडरफ के परिवार में कौन-कौन थे?"

"कोई नहीं! उडरफ साहब थे और उनकी बीबी। कोई बाल-बच्चा नहीं था।"

"उडरफ साहब के दोस्त क्या यहीं रहते थे?"

"नहीं, वह कहीं दूर रहते थे। लेकिन आते थे तो बहुत-बहुत दिनों तक रह जाते थे।"

आगे मैं क्या पूछता? माली भी चुप रहा। मुझे लगा कि वह दीवार से लगा-लगा ही सो गया है। थोड़ी देर के बाद वह बोला—"उडरफ साहब का वह दोस्त बड़ा भला आदमी था, लेकिन उडरफ साहब ने उसे गोली मार दी?"

"गोली क्यों मार दी?"

"मारता नहीं? वह उडरफ साहब की बीबी से फँसा था। साहब ने अपनी आँखों देखा। बस, खून उतर आया। गोली मार दी।"

"और उडरफ की बीबी का क्या हुआ?"

"उसे तो साहब अपने घर ले गए।"

"गोली नहीं मारी?"

"नहीं; साहब उसे बहुत चाहते थे।"

मैं बहुत देर तक बैठा-बैठा माली की बातों को सोचता रहा। प्रेम भी क्या इतना बड़ा अपराध है, जिसके लिए व्यक्ति को गोली मारी जा सकती है?

दीवार घड़ी ने जब बारह बजाए तो मैं उठकर सोने के कमरे में आया। दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया और बिछावन पर लेट गया।...

दर्शन-शास्त्र की जो ये मोटी-मोटी पोथियाँ हैं, सुना है, उनमें लिखा है, जो कुछ प्रत्यक्ष है, वही सत्य नहीं, वह मिथ्या है। सत्य वह है जो अदृश्य है, अगोचर है। सो मैं दर्शन-शास्त्र की बात नहीं कहता। मैं कहता हूँ, जो कुछ आँखों देखा, वही सत्य है; और नहीं तो मिथ्या। मिथ्या पर कौन विश्वास करता? लेकिन एक सत्य जो मैंने उस दिन देखा, उस सत्य पर मैं आज भी विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ। लगता है कि विश्वास नहीं कर सकूँगा।

मैं जो लेटा था, सो न जाने कब नींद आगई। तभी लगा कि दरवाजा किसी ने खोला है। एक ओर दीवार से जड़े शमादान में मोमबत्ती जल रही थी। उसी के प्रकाश में मैंने देखा कि कोई भीतर आया है। इतनी रात को यह कौन? बन्दूक सिरहाने में दीवार से उँगठाकर रखी थी। मैंने उसे उठा लिया।

भीतर आनेवाला व्यक्ति हँसा—"शायद मेरे लिए बन्दूक की जरूरत नहीं होगी।"

मैंने उस निःशंक और निःसंकोच व्यक्ति की ओर देखा। वह कोई अँगरेज था। चेहरे पर रोब था। लेकिन मुझे लगा कि उसमें शालीनता ज्यादा है, विनय ज्यादा है। उसने अपना फेल्ट हैट उतारकर

छोटी मेज पर रख दिया और स्वयं एक कुर्सी में बैठता हुआ बोला—"इतनी रात को जो मैंने आपको तकलीफ दी है, उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

वह अच्छी हिन्दी बोल रहा था।

मैं उसकी आकृति को देखता रहा—देखता रहा। न जाने कब मेरे हाथ की बन्दूक वापस अपनी जगह चली गई थी। मैं कोच पर बैठ चुका था।

तब उसने कहा—"मेरा नाम विलियम रफस है। मैं जो इस समय आपके सामने हूँ वह एक खास मतलब से।"

उसे बहुत देर तक कुछ बोलता न देखकर मैंने कहा—"आप निःसंकोच कहें। मुझसे जितना कुछ हो सकेगा—"

उसने मेरी ओर देखा। उसकी पुतलियाँ गहराई में डूबती-सी लगीं। शायद वह मुझे तौल रहा था। बोला—"यह जो सतरह बीघे का प्लाटवाला मुकदमा चल रहा है—"

"उसके बारे में क्या कहना है?"

"मैं चाहता हूँ, उस जमीन को आप विधवा के अधीन ही रहने दें।"

"क्यों?"

"उस पर उसका अधिकार है। आपका नहीं।"

"यह बात गलत है।"

"मैं चाहता हूँ। आप जिद न करें। उस जमीन की बाबत मैं सबसे ज्यादा जानता हूँ। उस जमीन को मैंने खरीदा था और—और वह जमीन एंजिला के नाम से है। एंजिला ने उसे मैनेजर की विधवा को दे रखा है। मैं जानता हूँ, उसका दस्तावेज यहाँ मौजूद है। आप कहें तो इस आलमारी से मैं वह दस्तावेज निकाल दूँ।" और रफस उठकर खड़ा हो गया। रात में जब मैं मिसल आलमारी में बन्द कर रहा था, तो चाभी आलमारी में ही फँसी छोड़ दी थी। रफस ने आलमारी खोली। क्षण भर वह आलमारी में देखता रहा। फिर उसने एक कागज निकाला। लाल फीते में बँधा था। मैं हैरत में था कि यह व्यक्ति इस आलमारी के कागजात के निस्बत कैसे इतना कुछ जानता है।

रफस ने वह कागज खोलकर मेरे आगे रखा। कागज में जो कुछ लिखा था, उसका सारांश यही था कि एंजिला वह जमीन मैनेजर की विधवा ज्ञानदा चटर्जी को इसलिए देती है कि वह उसकी उपज अपने जीवन भर खाती रहे। बिना एंजिला की सम्मति के कोई भी व्यक्ति इस स्वत्व से ज्ञानदा चटर्जी को अलग नहीं कर सकता।

जब मैं वह कागज पढ़ चुका, तो सिर उठाकर रफस की ओर देखा। उसने पूछा—"आपने क्या निर्णय किया?"

"मैं इस पर सोचूँगा।"

"इसमें सोचने की कोई बात नहीं है, महाशय! इस जमीन के हाथ से निकल जाने पर विधवा भूखों मरने लगेगी। उसका एक लड़का स्कूल में पढ़ता है। एंजिला को ज्ञानदा से प्रेम है। और एंजिला दूर भी है, तो क्या? ज्ञानदा को अगर किसी प्रकार की तकलीफ होगी तो एंजिला कभी सुखी नहीं रह सकती। और मैं अपने सामने ही यह सारा अन्याय कैसे होने दूँ?" रफस चुप हो गया।

हम दोनों सिर झुकाए खामोश सोचते रहे।

विलियम रफस का कण्ठ आर्द्र हो आया था—"अगर आपको एंजिला को निकट से देखने का मौका मिलता, तो आप समझते वह ज्ञानदा को कितना चाहती है।"

मैंने स्वीकार किया—"नारी के प्रेम में उत्कटता होती है। शायद एंजिला किसी पुरुष को भी चाहती थी।"

रफस ने एक दीर्घ साँस ली—"हाँ, चाहती थी। और उस नाटक का पटाक्षेप कहाँ हुआ, क्या वह सब आप देखना चाहते हैं?" रफस उठ खड़ा हुआ—"आप मेरे पीछे पीछे आइए!"

मैं उठा नहीं। बैठा रहा। सोचता रहा कि यह व्यक्ति कौन है? यह कहाँ ले जाना चाहता है? और बहुत सी दुष्कल्पनाएँ मन को उद्वेलित कर गईं।

रफस बोला—"आप डरें नहीं। मुझपर विश्वास करें। मैं आपको कहीं दूर नहीं ले जाऊँगा। यहीं आपकी कोठी के पीछे—"

और मैं रफस की आकृति को गौर से देखता रहा। क्या इस व्यक्ति पर भी अविश्वास किया जा सकता है? इतना भोला! इतना निष्कलुष!

मैं रफस के पीछे-पीछे चलने लगा।

घूमकर हम दोनों एक ऐसी कोठरी के सामने पहुँचे, जिसके दरवाजे पर एक पुराना जंग लगा हुआ ताला

जड़ा था। रफस ने वह ताला खोला। हम लोगों ने अन्दर कदम रखा। वह एक मामूली कोठरी थी। वहाँ अन्धेरा नहीं था। चीजें साफ-साफ नजर आ रही थीं। उस दिन मैंने गौर नहीं किया कि कमरे की चीजें बिना किसी रोशनी के ही साफ-साफ नजर क्यों आ रही थीं। जहाँ तक मैं समझता हूँ, वहाँ कोई चिराग नहीं जल रहा था। फिर भी उस कोठी में रोशनी थी। वह रोशनी कैसी थी और कहाँ से आ रही थी, मैं नहीं सोच सका।

उस कोठरी में प्रवेश करने के बाद सबसे पहले जिस चीज पर मेरी नजर पड़ी, वह थी आदमी की ठठरी। ठठरी कोठरी के बीचो-बीच पड़ी थी। मेरा तो खून जमने लगा। मैं ठिठककर जहाँ-का-तहाँ खड़ा हो गया। एक बार जी में आया कि वहाँ से भाग जाऊँ। लेकिन सोचा भला यह रफस मुझे कितना डरपोक समझेगा !

रफस ठठरी के पास जाकर खड़ा हो गया; इस समय रफस को मैंने देखा, वह रो रहा था। वातावरण का सन्नाटा कुछ बड़ा भयावना लग रहा था। मैं चाहता था कि कोई कुछ बोले। मैं बोलने के लिए विकल था, लेकिन बात देखो कि मैं कोई बात नहीं सोच पा रहा था। कोठरी के एक कोने में एक टब रखा था, एक छोटी मेज थी। मुझे लगा कि यह कोठरी कभी लेवेटरी का काम देती होगी। हो सकता है, उडरफ-परिवार इसे गुसलखाने के व्यवहार में लाता हो। लेकिन मैं जानता हूँ, लैवेटरी और गुसलखाना रसोईघर के बगल में है।

जहाँ ठठरी पड़ी थी, उसकी बगलवाली दीवार में खूँटियाँ गड़ी थीं। एक खूँटी से नीले रंग का एक कोट टँगा था। मेरी क्षिप्र आँखें सतर्कता से प्रत्येक चीज पर घूम रही थीं। तभी रफस बोला। कण्ठ में वेदना की आर्द्रता थी—"आप जो यह ठठरी देख रहे हैं, वह कभी चलता-फिरता आदमी थी। इसके प्राणों में प्यार था और हृदय में एंजिला की तस्वीर थी! उस प्रेम का नतीजा क्या हुआ, वह शायद आप जानते हैं! गोली मार दी गई!"

मेरा हृदय भी भर आया था। मैं रफस का मुँह देखता खड़ा रहा। बोला—"मैं प्रेम की स्वतंत्रता को मानता हूँ; इसलिए प्रेम को अपराध नहीं मानता। लेकिन मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि अगर कोई युवक मेरी पत्नी को भी प्यार करे—"

मैं आगे कुछ नहीं कह सका। रफस की आकृति पर जो निरीहता गहरी होती जा रही थी, उससे मुझे आन्तरिक वेदना हुई। उसने कहा—"मैं अपने प्रेम के लिए सहानुभूति नहीं चाहता महाशय!"

और रफस बाहर निकल आया। तब उसने उसी धीरता से दरवाजे पर ताला लगाया। असीम वेदना से आलुलायित, नीरव, निस्पन्द गति से वह अन्धकार में विलीन होगया। दूर कहीं से सुनाई पड़ा—"गुडबाई फ्रेंड, चियर यू दिस नाइट।"

तब मैंने अपने कमरे में आकर दरवाजा बन्द कर लिया। दरवाजा बन्द करते समय जैसे मैंने सोचा कि पहली बार भी जब मैं भीतर सोने आया था तो दरवाजे को भीतर से ही बन्द कर लिया था। लेकिन रफस भीतर आया तो कैसे? जैसे सिटकिनी खुलने की आवाज स्पष्ट सुनी थी। क्या यह सिटकिनी बाहर से भी खोली जा सकती है? हो सकता है, मैंने दरवाजे को खुला हुआ ही छोड़ दिया हो।

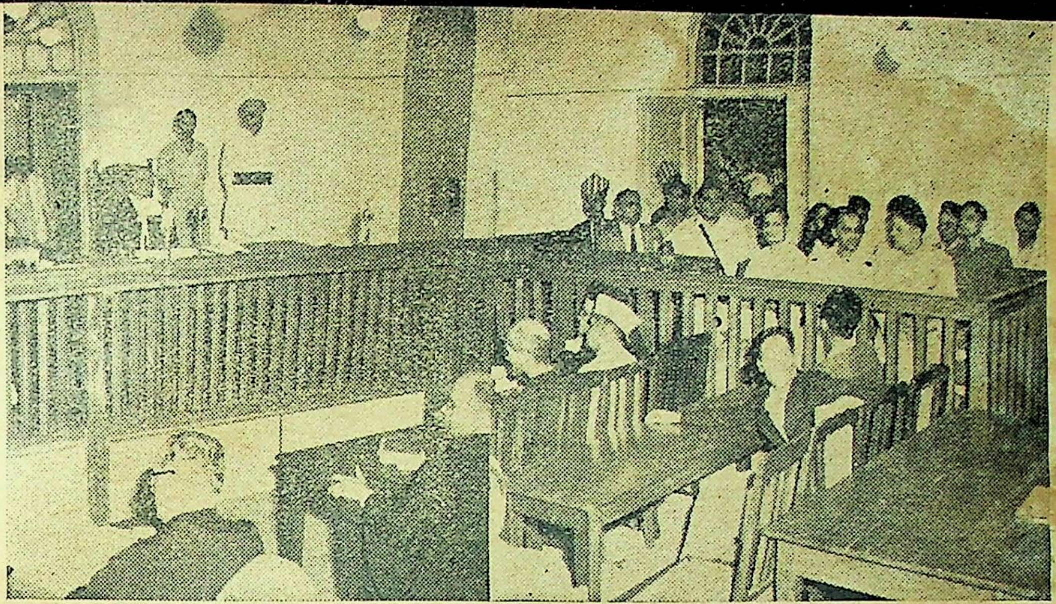
सबेरे मैं देर से उठा। फारिग होकर जब फाइलों को उलटने बैठा, तो उस कागज पर नजर पड़ी जो लाल फीते से बँधा था। उसे खोलकर मैंने एक बार और पढ़ा। कागज के नीचे सारा कुछ एंजिला ने लिखा था। फिर रात की सारी घटनाएँ सिलसिलेवार दिमाग में घूमने लगीं।

मैं उठकर दरवाजे के पास आया। उसे अच्छी तरह देखा। क्या इसकी सिटकिनी बाहर से भी खुल सकती है? नहीं, बाहर से नहीं खुल सकती। तो शायद मैंने रात में भ्रम से समझ लिया था कि रफस ने सिटकिनी खोली है। लेकिन मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने दरवाजे को भीतर से ही बन्द कर लिया था।

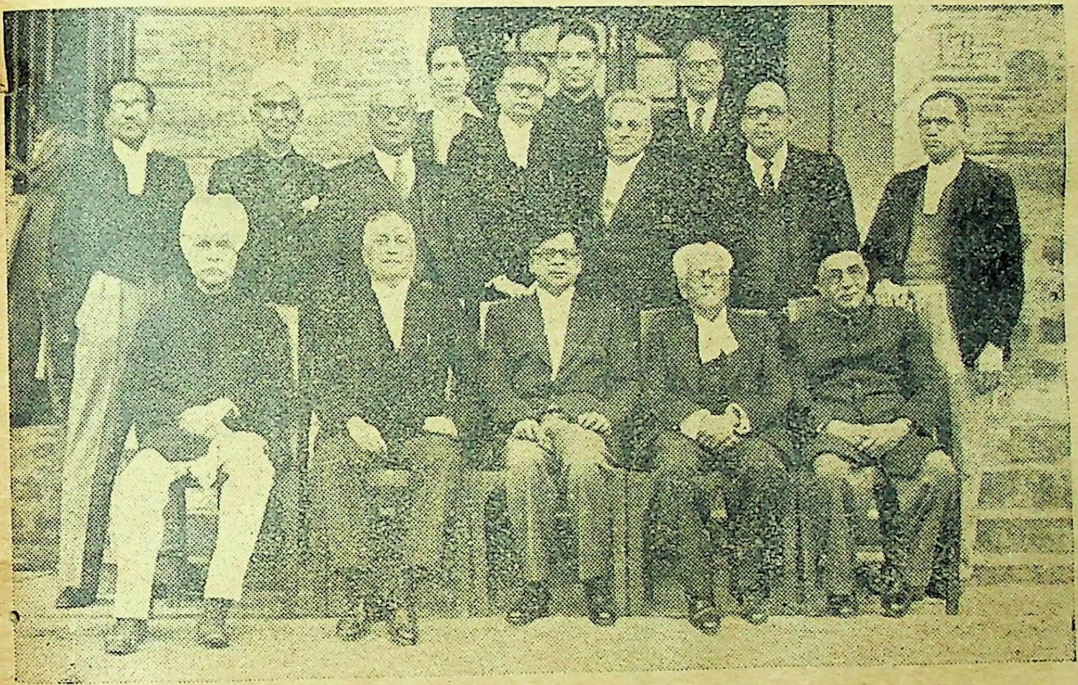
मैंने चौकीदार को बुलाया। माली को बुलाया। उन्हें लेकर मैं अहाते के उस तरफ गया जहाँ कभी उडरफ ने मैनेजर के रहने के लिए एक क्वार्टर बनवा दिया था। वह क्वार्टर नदी किनारे था। माली ने बतलाया कि मैनेजर साहब के मर जाने के बाद से यहाँ कोई नहीं रहा। पिछले दिनों जब साहब के दोस्त आए थे तो इसी में ठहरे थे।

मैंने पूछा—"साहब के दोस्त पिछले दिनों यहाँ कब आए थे?"

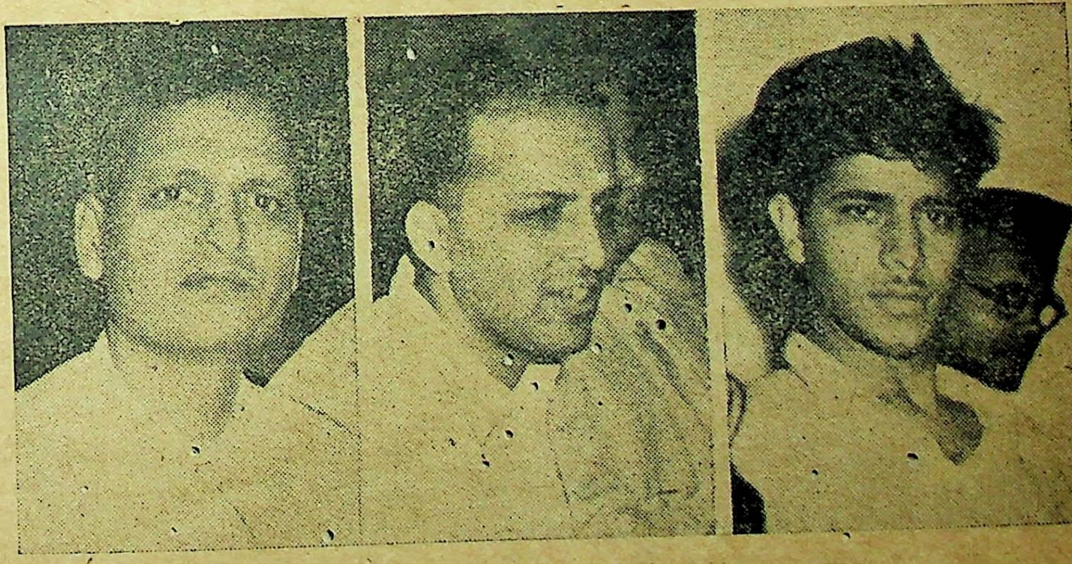
गांधी-हत्याकांड का मुकदमा



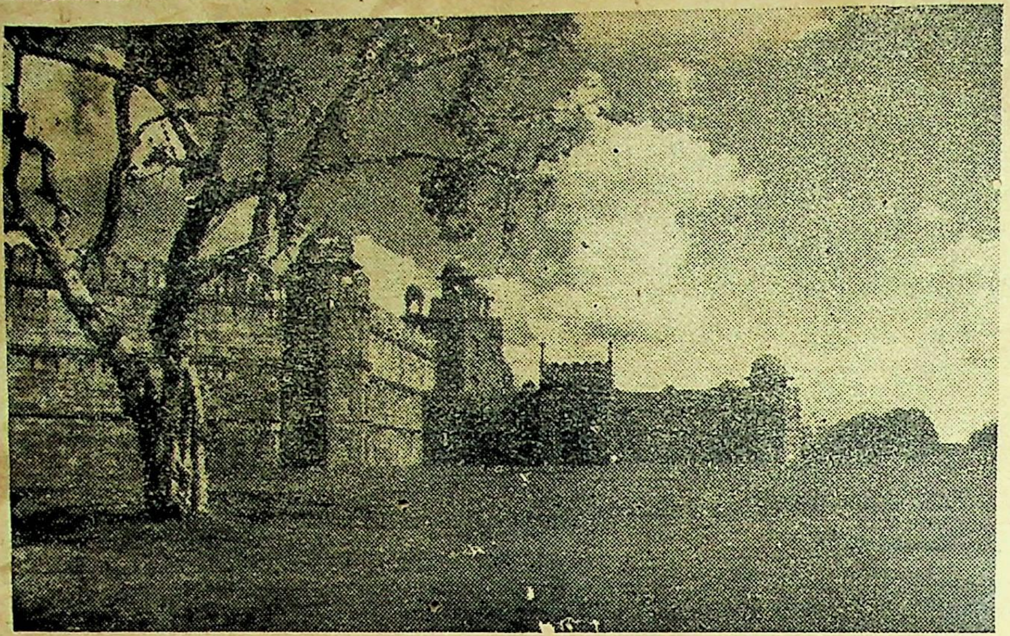
(१)
दिल्ली के लाल किले में अदालत का एक दृश्य।



(२)
मुकदमे के न्यायाधीश, वकील तथा अन्य अधिकारी गण।



(३)
प्रमुख अपराधी। बाएँ से दाएँ -- नाथूराम गोडसे, नारायण आप्टे और मदनलाल।



(४)

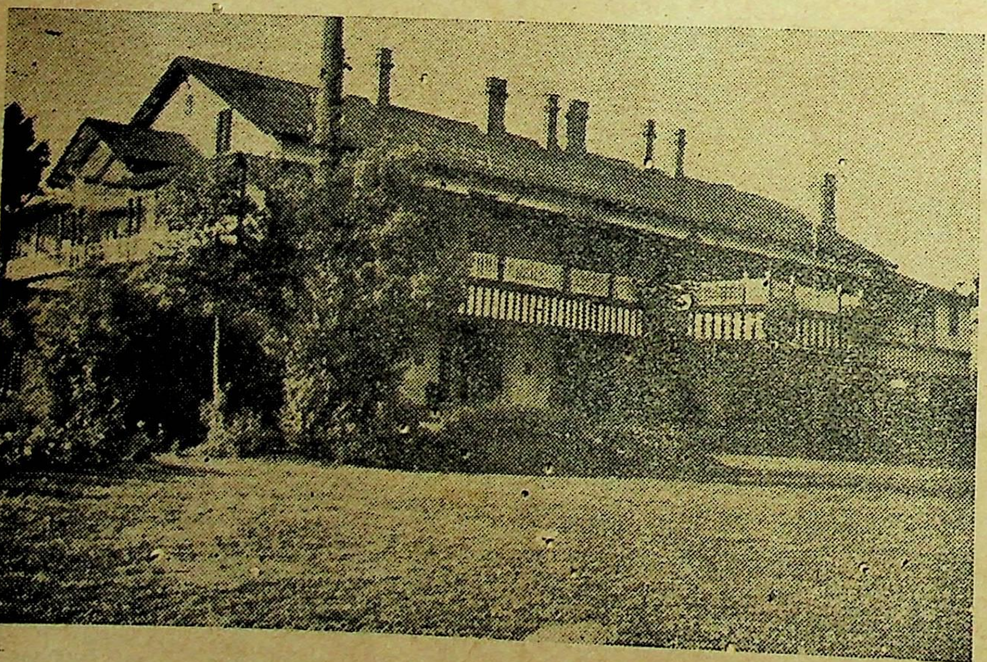
दिल्ली का ऐतिहासिक लाल किला, जहाँ गांधी-हत्याकाण्ड का ऐतिहासिक मुकदमा चला था।

(५)

अपील के न्यायाधीश। बाएँ से दाएँ—श्री अछरूराम, श्री भण्डारी और श्री खोसला।







(६)

शिमला का वह भवन, जहाँ इस मुकदमे की अपील की कार्यवाही की गई।

"जिस दिन साहब यहाँ से अपने देश जा रहे थे, उसी दिन।"

"साहब ने अपने दोस्त को गोली मार दी थी, यह तुमने कैसे जाना ?"

"मैंने मैनेजर साहब की विधवा से एक दिन सुना था।"

"तुम्हें मालूम है, गोली मारकर साहब ने लाश कहाँ फेंक दी ?"

"पता नहीं।"

मैं रातवाली उस कोठरी के दरवाजे पर आकर ठहर गया। पूछा—"इसमें ताला कब से बन्द है ?"

"इसमें मैंने सब दिन ताला बन्द देखा है। कोई जरूरत नहीं हुई कि ताला खोला जाए।"

मैं खड़ा-खड़ा गौर से माली को देखता रहा कि क्या यह माली इस हत्या के विषय में कुछ नहीं जानता ? फिर मैंने वह ताला तुड़वाया। रात में भीतर जो कुछ देख गया था, वही देखा। वह कोठरी बहुत दिनों से इस्तेमाल में नहीं आई थी। चारो ओर मकड़ियों ने जाल बुन रखा था। गर्दोगुब्बार से सारी कोठरी भरी थी। ठठरी नंगी नहीं थी। ऊपर का मांस गल चुका था या कीड़ों ने चाट-चाटकर खतम कर दिया था। कमीज और पतलून के कपड़े सड़कर चिथड़े बन चुके थे। उन चिथड़ों से कहीं-कहीं वेष्ठित वह ठठरी पड़ी थी। खूँटी में वह नीला कोट अब भी टँगा था।

मैंने माली की ओर देखा। वह हैरत से ठठरी की ओर देख रहा था—"यह तो आदमी की ठठरी है !"

"हाँ, जिस आदमी को तुम्हारे साहब ने गोली मार दी थी, यह उसी की ठठरी है।"

"आपको इसका पता कैसे लगा ?"

"मैं रात में यहाँ आया था।"

माली अचरज से मेरी ओर देखता रहा—"आप यहाँ रात में आए थे ?—अकेले ?"

मैंने मुस्कराकर कहा—"हाँ !"

"तभी यहाँ धूल में आपके पैरों के निशान लगे हैं।"

तब जाकर मैंने देखा। कोठरी की सहन पर जो धूल की परत जमी थी, उस पर मेरे पैरों के निशान लगे थे। रफस के पैरों के नहीं। मेरे पैरों में चप्पल थे और रफस के पैरों में जूते लेकिन सहन पर सिर्फ चप्पलों के ही निशान लगे थे।

देखा, ठठरी की उँगलियों के पास एक अँगूठी पड़ी थी। अँगूठी ठठरी की हो। माँस-पेशियों के गल जाने के बाद शायद वह बाहर निकल आई थी। मैंने अँगूठी उठाकर देखी। गौर से देखी। यह अँगूठी ठीक वैसी ही थी जैसी रफस की उँगली में थी। अँगूठी पर लिखा था—डब्ल्यू रफस। जहाँ से मैंने अँगूठी उठाई थी, रात में वहीं रफस खड़ा था। हो सकता है रात में उसकी अँगूठी यहाँ गिर गई हो, लेकिन मेरे भीतर सन्देह, रहस्य घर करता आया।

मैंने कोट की खानातलाशी ली। जेब में कुछ नहीं था। एक छोटी पेंसिल थी और कागज का एक टुकड़ा था। उसमें लिखा था—

प्यारे रफस,

मैं २४ सितम्बर को मीडबर्ग लौट जाऊँगी। तुम एक बार मुझसे जरूर मिल लो।

—एंजिला

यह कोट जो खूँटी से टँगा है, वह किसका हो सकता है ? क्या इस ठठरी का ? हो सकता है कि यह व्यक्ति कोट उतारकर लेवेटरी में मुँह-हाथ धो रहा हो। उसी समय उडरफ ने गोली मार दी हो लेकिन इस कोट की जेब में जो पत्र है, वह रफस के नाम है। क्या यह कोट रफस का है ? तब क्या रफस ही एंजिला का प्रेमी था ? यह ठठरी क्या रफस की है ?

नहीं, नहीं। रफस तो रात में मेरे साथ था। उसकी ठठरी यह कभी नहीं हो सकती। और यह भी तो हो सकता है कि वह व्यक्ति रफस न हो। उसने अपना नाम जो रफस बतलाया, वह झूठ हो। तब वह कौन हो सकता है ? लेकिन उसकी उँगली की अँगूठी तो यही थी ? तो क्या वह रफस का प्रेत था ?

लेकिन मैं भूत-प्रेत पर विश्वास नहीं करता। फिर भी एक सन्देह, एक रहस्य मेरे चारों ओर घिरा है। रात में जो चीख आई थी, वह अवश्य ही इसी तरफ से आई थी। फिर मेरे दरवाजे का उस तरह खुल जाना। और रात में जिस व्यक्ति के साथ मैंने घंटों गुजार दिए, वह प्रेत नहीं हो सकता, यह मेरा विश्वास है। लेकिन अगर वह व्यक्ति सचमुच रफस था तो वह कोट किसका था ? वह ठठरी किसकी थी ?

———

क्या जाने है कौन यहाँ पर!

श्री भगवतीचरण वर्मा

'लेनेवाला देनेवाला ?' क्या जाने है कौन यहाँ पर !

बनने का क्रम मिटने का क्रम
युगों-युगों से चलता आया !
शमा जलाती रही सदा,
सदा पतिंगा जलता आया !
कितने चाँद उगे हैं अब तक
कितने सूरज अस्त हो चुके,
रात बीतती आई हरदम,
दिन हरदम ढलता है आया !
कब प्रकाश शाश्वत है बोलो ?
अन्धकार है कब अविनश्वर ?
अविश्वास के असह भार से
आज विकम्पित है कवि का स्वर !
'आनेवाला जानेवाला ?' क्या जाने है कौन यहाँ पर !

कब सरिता उपवन से उलझी ?
और हुई कब मरु में पागल ?
हिम आच्छादित ग्रीष्म प्रताड़ित,
पर पर्वत है वैसा निश्चल !
जब कि हवा में मदहोशी है,
फूलों में है मधु की पुलकन,
लिए कौन-सा दर्द हृदय में
डाल-डाल पर कूकी कोयल ?
आज अचानक ही जाने क्यों
आई हैं कवि की आँखें भर
काश खून पानी बन सकता,
काश हृदय बन सकता पत्थर !
'पानेवाला खोनेवाला ?' क्या जाने है कौन यहाँ पर !

यह अनजानी राह अटपटी,
इस पर चलते रहना पर बस !
पानी का-सा क्षणिक बुलबुला
ऊँचे-नीचे का जस-अपजस !
इस अतृप्ति का स्रोत वहीं पर
इस अतृप्ति का अन्त जहाँ है !

कितने ग्रीष्म तपे हैं अब तक
बरस चुके हैं कितने पावस !
किन्तु धरा वैसी ही प्यासी
और भरा वैसा ही अम्बर, !
असफलता की तीव्र जलन से
झुलस रहा कवि का अन्तर !
'हँसनेवाला रोनेवाला ?' क्या जाने है कौन यहाँ पर !

नित्य नए इतिहास बन रहे
फटते पन्ने नित्य पुराने !
अन्तरिक्ष में लोप हो चुके
कल के कितने रसमय गाने !
आदि कहाँ है ? अन्त कहाँ है ?
कौन आज तक जान सका है ?

मृत्यु लिए निज सर पर जीवन—
क्या है सत्य ? कौन क्या जाने ?
आज स्वयम् असहाय बन रहा
कवि अपने प्रश्नों का उत्तर !
काश साँस आँधी बन सकती
काश अश्रु बन सकता सागर !

संक्रांतिकालीन एशिया में भारत का दायित्व

डाक्टर बदरीनारायण जोशी, एम. ए., डि. लिट्

रोजेनबर्ग के इतिहास की योरप में ही नहीं, एशिया में भी पुनरावृत्ति हो रही है। एंग्लो-अमेरिकन साम्राज्य-वाद के विकराल तंतु योरप की जनता का रक्त पीकर प्रशांत महासागर से आवृत जन-समाज को अपना बलि-पशु बनाने का दानवीय षड्यन्त्र कर रहे हैं। अंताराष्ट्रिय राजनीति की काली छाया प्रशांत की लहरों में अवसाद की नित्य नई गहराई भरती जा रही है। रोजेनबर्ग के मतानुसार एंग्लो-सेक्सन जातियों में एक ऐसी स्वभावगत कुत्सा होती है, जो उनको विवश कर देती है कि वे स्वयं के अतिरिक्त शेष सारी मानवता को अपने स्वार्थ-साधन का खरीदा हुआ पशु समझें। एशिया के विषय में रोजेनबर्ग लिखता है :—

"प्रशान्त महासागर के समस्त भूभाग पर एंग्लो-सेक्सन साम्राज्यवाद ने जन-तंत्रवाद की अनेक समाधियाँ बना रक्खी हैं। अमेरिका ने फिलिपाइन में, फ्रांस ने हिन्द चीन में और अंग्रेजों का तो जिक्र ही क्या ? एशिया की भूमि के किस चप्पे को उन्होंने मानवता की कब्र नहीं बनाया ? लेकिन 'कयामत' आगई है। बाइबिल के मुर्दों की भाँति एशिया के मुर्दे भी अपने हत्यारों से प्रति-शोध लेने के लिए जी उठे हैं। आगामी पच्चीस वर्ष एशियाई संघर्ष की पार्श्व-भूमि होंगे।"

एशिया का जागरण

एशिया में राष्ट्रीय जागरण का श्रीगणेश सन् १९१४ के महायुद्ध की समाप्ति के बाद हुआ। युग के मानदंड परिवर्तित होरहे थे, मानवता नए नकशों में ढलने लगी थी और अन्ताराष्ट्रिय राजनीति अपने पुरातन स्वरों को छोड़कर नए मंतव्यों में अभिव्यक्त हो रही थी। सन् '१४ के महायुद्ध में गोरी जातियाँ भूखे कुत्तों की भाँति आपस में लड़ीं। एशिया की गुलाम जातियों के लिए गोरों की पारस्परिक फूट का यह नग्न रूप बड़ा कल्याणकारी सिद्ध हुआ। माननीय स्वतंत्रता एवं जनतंत्र के पवित्र सिद्धान्तों की रक्षार्थ एशियाई जातियों के सहयोग को आमंत्रित करनेवाले योरपीय राष्ट्र नैतिक-पतन की जिस निम्न पराकाष्ठा पर उतर गए थे, उसे देखकर एशिया का सांस्कृतिक चैतन्य एकदम विद्रोह कर उठा।

युद्ध के बाद गोरों की पैशाचिक स्वार्थ-लिप्सा और पाखंडी विज्ञप्तियों ने समस्त एशिया को झकझोर कर जगा दिया। कड़वा घूँट पीते हुए उसने महसूस किया कि स्वतंत्र एवं आत्म-निर्णय से उद्घोषित सिद्धान्त स्वेज की नहर के इस पार कोई औचित्य नहीं रखते। युद्धकाल में इनकी रक्षा की जो दुहाइयाँ दी गई थीं, वे गोरी जातियों के अपने निजी स्वार्थों को अक्षत बनाए रखने की प्रवंचनाएँ मात्र ही थीं। दो कदम आगे बढ़कर एशिया की जनता ने यह भी देखा कि एक गुप्त संधि के द्वारा फ्रांस और ब्रिटेन ने ओटोमन साम्राज्य को परस्पर बाँट लिया है। उधर मानवता को युद्धों और संकटों से बचाने के लिए 'राष्ट्र-संघ' की स्थापना हुई किन्तु जब संघ का विधान ही बनाया जा रहा था तभी चीन और जापान के प्रतिनिधियों ने जातीय समानता को स्पष्ट मान्यता देने के प्रसंग का एक प्रस्ताव पेश किया। लेकिन गोरी जातियों ने उस पर विचार करने के बजाय प्रस्तावकों की खिल्ली ही उड़ाई। एशिया एक आघात खाकर तिलमिला उठा। इसके बाद की घटनाएँ तो और भी अधिक भयप्रद और आँखें खोलनेवाली सिद्ध हुईं। युद्ध के बाद योरपीय शक्तियों ने एशिया की राष्ट्रीय जागृति का क्रियात्मक रूप से दमन करना शुरू कर दिया। भारत से ही इसका श्रीगणेश हुआ।

अमृतसर की रक्त-रंजित घटना के बाद तो अंग्रेजी राज्य का प्रत्येक दिन 'सैनिक विजय' ही कहा जाना चाहिए। गोरों की सेनाओं से भरे जहाज चीन की राष्ट्रीय क्रांति को दबाने के लिए चीनी बन्दरगाहों पर उतरे। डाक्टर सनयात सेन के क्रांति-स्वप्न को भंग करने में सबसे बड़ा हाथ इन्हीं श्वेताङ्ग शक्तियों का रहा है। चीन के प्रति जापान की पाशविक लोलुपता को उभाड़ने का दायित्व भी गोरों के ही कन्धों पर है। दमन की ज्वालाएँ धीरे-धीरे सारे प्रशान्त महासागर में विस्तृत होगईं। सन् १९२६-२७ में डच ईस्ट इंडीज में भयंकर बलवे हुए,

जिन्हें अंग्रेजों की मदद से क्रूर डच शासकों ने रक्त की नदियाँ बहाकर दबाया। मलय प्रायद्वीप के मजदूरों और किसानों को रौंदकर ऐसा असमर्थ बना दिया गया कि चौथाई शताब्दी तक वे उठ नहीं सके। १६२६ और १६३१ के बीच योरपीय सभ्यता के कथा-प्रसिद्ध नेता फ्रांस ने हिन्द-चीन के राष्ट्रीय जागरण को इतनी नृशंसता से दबाया कि फ्रांसीसी जनता तक अपनी सरकार की बर्बरता से काँप उठी। सरकारी मंत्रियों को त्यागपत्र देने के लिए विवश किया गया। इस प्रकार जागृति की ज्योति एशिया में बल नहीं पकड़ पाई। शस्त्रहीन एशिया का प्रचण्ड असंतोष अपरिमित शस्त्र-बल के सामने शिथिल पड़ गया किन्तु अंगारे अंदर-ही-अंदर सुलगते रहे, ज्वालामुखी पनपता गया। द्वितीय महायुद्ध ने एशिया के असंतोष को और भी स्थिर तथा ठोस बुनियाद पर प्रतिष्ठित कर दिया। गोरों की 'अजेय' कही जानेवाली सेनाएँ जापान के सामने भूलुण्ठित होगईं। जातीय महत्ता के गर्व से उन्मत्त योरपीय जातियों का नैतिक पतन प्रशांत महासागर के युद्धों में नग्न रूप से स्पष्ट हो गया। एशिया की जनता के अंतःकरण से हीनता की शताब्दी-गत भावना के उच्छेदन के लिए यह काफी महत्त्वपूर्ण सामग्री थी। युद्ध के उपरान्त विजय-दर्पोन्नत गोरी जातियों ने अटलांटिक चार्टर की जो धज्जियाँ उड़ाईं, उसमें एशियाई राष्ट्र के रहे-सहे सन्देह भी काफ़ूर होगए। एशिया की जनता ने अपनी भ्रान्तियों के समस्त आवरण विच्छिन्न करके स्पष्ट रूप से देख लिया कि गोरे राष्ट्रों की तथाकथित घोषणाएँ पाखण्ड और प्रवंचना के ही मूर्तरूप हैं। अतः आज एशिया में जो विभीषिका विकास पा रही है, उसके मूल में इसी मानसिक जागरण की प्रेरणा है।

गत महायुद्ध ने संसार को जो वसीयतें दीं, उनमें से चाहे अनेक हमारे विस्मरण की पात्र हों; किन्तु दो प्रमुख वसीयतें आज के युग की दृष्टि से परे नहीं हो सकतीं। ये हैं—एटम बम और औपनिवेशिक जनता का विद्रोह-मूलक जागरण। एटम बम अपनी राजनीतिक महत्ता के सूत्र एकत्र करता हुआ भावी विश्व के लिए नवीन रंग-भूमि तैयार कर रहा है। एटम बम के आस-पास कई डरानेवाली लोलुप मनोवृत्तियाँ विश्व-मानवता को दो विभिन्न शिविरों में विभक्त कर रही हैं। सद्भावना और नैतिक सौजन्य के हेतु जो इन दो विपरीत शिविरों को मिला रहे हैं, वे आज अपनी स्थिति में चलायमान हो रहे हैं। उनकी बुनियादें लड़खड़ा रही हैं। एशिया की वर्तमान राजनीति में एटम बम के राजनीतिक तकाजों ने जो आकार ग्रहण किया है, उनका भावी रूप हृत्कंपी भयानकता की सूचना देता है। एटम बम का सबसे प्रथम प्रयोग एशिया की रंगीन जाति पर ही हुआ था। एशिया के राष्ट्र उसे किसी भी शर्त पर भुला नहीं सकते। भुलाना सम्भव है भी नहीं क्योंकि सत्य की अवहेलना अपनी ही अंतःप्रेरणा का अपमान है, जिसका परिणाम आत्म-भ्रान्ति ही नहीं बल्कि आत्महत्या भी है। गोरी और रंगीन जातियों के दो शिविर फिर एटम बम के प्रयोग ने ही किए। रंग-विद्वेष की विस्फोट-भावना ने मानवता की अविभाज्य इकाई के जो दो खंड कर दिए हैं, उन्हें जोड़ने का प्रयत्न गोरी जातियाँ करेंगी—ऐसी धारणा बनाना दिवा-स्वप्न है। गोरी जातियों के पास अन्तःकरण का ऐसा वैभव कहाँ, जो मानवता की बिखरी हुई शृङ्खलाओं को स्नेह-सूत्र में आबद्ध कर सके। यह दायित्व तो एशिया के कंधों पर है और आज ही क्या पिछली शताब्दियों में भी जब-जब मानवता का पोत मँझधार में मँडराया तब-तब एशिया की मंगल-भावना मानवाकार धारण करके उठी और अपने कर्तृत्व के द्वारा मानवता का उसने उद्धार किया। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद और गांधी त्रस्त मानवता के परित्राण का ही संकल्प लेकर एशिया की गौरवमयी वसुन्धरा पर अवतीर्ण हुए थे। अतः आज भी विश्वमानव के अभ्युत्थान की सारी जिम्मेदारी एशिया के ही कंधों पर है। त्रस्त और पथभ्रष्ट मानव-समाज का विशाल पोत मौत की लहरों से बचने के लिए एशिया की ही विश्वस्त वसुन्धरा पर अपने लंगर फेंक रहा है। क्या एशिया का नैतिक बल इतना समर्थ है कि इस शरणागत की रक्षा कर सके? और एशिया के किस भूभाग में आज यह नैतिक शक्ति अपने सर्वोच्च ऊर्जस्वित रूप में लहरा रही है, संसार की विदग्ध दृष्टि यही केन्द्र खोज रही है।

भारत की जिम्मेदारी

लेकिन एशिया तो स्वयं अपने भविष्य में उलझ रहा है; गोरे साम्राज्यों की दासता से मुक्ति पाने के लिए

प्राणों की बाजी लगा रहा है। फारस की खाड़ी से लेकर कोरिया के प्रायद्वीप तक एक प्रबल चेतना गोरों के अनीति-मूलक शोषण और स्वामित्व का संकल्पबद्ध विरोध कर रही है। करीब १२० करोड़ जन-समाज का राजनैतिक भविष्य नव निर्माण की रेखाएँ खींच रहा है। एशिया की शिथिल-प्राण राष्ट्रियता गोरों की रंग-विद्वेष की विषाद भावना का आधार छूकर प्रचंड आवेग में परिणत हो रही है। संघर्ष की मनःस्थिति बदल गई है। हाँ, दासत्व से मुक्ति के लिए जो आन्दोलन खड़ा हुआ था, उसके सामने एक और नया दायित्व आगया। उसका दायरा विश्व-व्यापी होगया। संघर्ष का मोर्चा अकस्मात् एक नए धरातल पर प्रतिष्ठित हो गया है। एशिया की अनेक जातियों में जो राष्ट्रीय चेतनाएँ जागी हैं, वे अपने देश की स्वतंत्रता तक ही सीमित नहीं रहीं, वरन् समस्त मानवता की राजनीतिक मुक्ति के दायित्व को ओढ़कर चलने लगीं। परिणामतः एशिया की तमाम गुलाम जातियाँ एक बलवती शृंखला में बँध गई, समय का यही तकाजा था।

द्वितीय महासमर ने दुनिया के नकशे में जो परिवर्तन किए, उनके प्रभाव धीरे-धीरे स्पष्ट होते जा रहे हैं। इस युद्ध की विभीषिका से अमेरिका और रूस दो ही राष्ट्र अपने शक्तिशाली व्यक्तित्व को लेकर प्रकट हुए हैं। विश्व में शान्ति की स्थापना अथवा तीसरे नरमेध का सूत्रपात इन्हीं दोनों राष्ट्रों की विचार-प्रगति पर निर्भर है। इसके साथ राजनीतिक शतरंज भी बदल गई है—शक्ति का केन्द्र-विंदु पश्चिम से पूर्व में आगया है और अटलांटिक का महत्व आज प्रशान्त महासागर के हाथों में आ गया है। ईरान और चीन में आज अमेरिका और रूस एक दूसरे के सामने मोर्चा बनाए हुए खड़े हैं। ईरान में रूस ने अपने वर्चस्व-स्थापना की जो बाजी लगा रक्खी है, वह हिन्द महासागर में प्रविष्ट होने की भूमिका है। इसी प्रकार प्रशान्त महासागर की भावी राजनीति में चीन के भाग्य का निर्णय भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। साथ ही एशिया के राष्ट्रों को यह बात भी याद रखनी चाहिए कि जापान के विरुद्ध युद्ध-संचालन के लिए अमेरिका ने काफी बड़ा बलिदान देकर गुआम द्वीपों पर अधिकार प्राप्त किया था क्योंकि आज की अन्तर्राष्ट्रिय राजनीति में जिब्राल्टर का नहीं वरन् गुआम का ही सर्वोच्च महत्व है। इसी प्रकार भूमध्यसागर के माल्टा द्वीप का समस्त सामरिक महत्व सिंगापुर में केन्द्रित होगया है। इसीलिए ब्रिटेन मलय प्रायद्वीप से हटने को तैयार नहीं है।

गत महायुद्ध के फल-स्वरूप अमेरिका की शक्ति का इतना अधिक विकास हुआ कि आज परिस्थिति को संभालना कठिन होगया है। अमेरिका के सामने बेकारी और तज्जनित सामाजिक संघर्ष की विकट समस्या है, जिसको हल करने के लिए अमेरिका को नए बाजार ढूँढ़ने पड़ेंगे। अमेरिकन पूंजीवाद की रक्षा के लिए यह अनिवार्य है। चीन, ईरान और प्रशान्त में अमेरिका के प्रवेश करने का आज यही उद्देश्य है।

रूस की अंताराष्ट्रिय नीति के मुख्यतः दो आधार हैं। बाह्य आक्रमणों से अपने सीमाप्रान्तों की रक्षा और अपनी निजी सामुद्रिक शक्ति का विकास। दरेंदानियाल से लेकर पोर्ट आर्थर तक रूसी दाँव-पेचों का यही एकमात्र उद्देश्य था। इस प्रकार प्रशांत महासागर में एक ओर रूस एवं दूसरी ओर एंग्लो-अमेरिकन शक्तियों की मुठभेड़ निश्चित है। दो नए साम्राज्यवाद आपस में टकराने का उपक्रम कर रहे हैं। इस अचानक परिस्थिति से एशिया का समाज स्वाहा हो जाएगा।

अतः मौत की घण्टी सुनकर एशिया को आत्मरक्षा की तैयारी में प्राण-पण से संलग्न हो जाना चाहिए। समस्त एशियाई राष्ट्रों का ठोस संगठन ही एशिया की जनता को इस विनाश से बचा सकता है किन्तु एशिया के किस राष्ट्र में इतनी सामर्थ्य है, जो अपने नेतृत्व में तमाम एशियाई मानवता की मांग को मूर्त कर सके? एशिया में भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं वरन् सांस्कृतिक दृष्टि से भी तीन राष्ट्र ही सबसे प्रमुख हैं—जापान, चीन और भारत। तीनों को ही योरप-अमेरिकन शोषण से लोहा लेना है। तीनों में से किसी एक को बिल्ली के गले में घण्टी बाँधनी होगी। जापान आज भग्नावशेष है। उसकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा एटम बम के प्रहारों से क्षारशेष हो चुकी है। उसे पुनर्जीवन प्राप्त करने के लिए काफी समय चाहिए। चीन की परिस्थिति संकटाकीर्ण है। गृह-युद्ध में चीन खण्ड-खण्ड होकर 'त्राहिमाम्' कर रहा है। रूस और अमेरिका के शक्ति-अर्जन की लिप्साएँ वहाँ तीसरे नरमेध की आशंकाएँ

पूरी कर रही हैं। दूसरे चांगकाई शेक की सरकार में अब इतना नैतिक बल नहीं है कि वह समस्त एशिया के तकाज़ों को आत्मसात् करने का साहस कर सके। वहाँ राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण की ऐसी शालीनता भी विकसित नहीं हो पाई है, जो अपने साथ दूसरों को भी अभ्युदय के राज-मार्ग पर प्रतिष्ठित कर सके। अभी तो वह अपने ही रोगों का उपचार कर सकने में समर्थ नहीं हो पाया है। जापान में राजनैतिक दृष्टिकोण की दूरदर्शिता और महत्ता थी किन्तु पाश्चात्य देशों की अनुकरण-लालसा में वह मानवता के दायित्वों को कुचल बैठा, त्राता के बजाय वह त्रास-दाता बन बैठा। अतः एशिया का नेतृत्व जापान अथवा चीन नहीं कर सकता। यह नेतृत्व तो केवल भारत ही कर सकता है क्योंकि भारत के पास अपना सांस्कृतिक गौरव ही अननुरण रूप में नहीं है वरन् नव-जागरण की ऐसी शक्तियाँ भी हैं, जो स्वार्थ-भावना से पूर्ण तथा निर्विकार हैं।

संयोग-वियोग

श्रीराम शर्मा 'राम'

अभी वर्ष पूरा नहीं हुआ कि रामलाल अपनी नव-विवाहित पत्नी मालती को छोड़कर नौकरी पर चला गया। जब वह गया तो मालती को वचन दे गया कि वह शीघ्र आएगा, महीने-दो-महीने की छुट्टी लेकर घर पर रहेगा। उस दम्पत्ति के लिए दुर्भाग्य की बात यह हुई कि कुछ दिन पूर्व रामलाल की माता का भी देहावसान होगया। मालती का जो सहारा था, वह छिन गया। उस पुरवे में, जिसमें रामलाल का पुश्तैनी घर था, पिछले दिनों महामारी के कारण आधे से अधिक आदमी मर गए, घर बरबाद होगए। इसलिए अब वह पुरवा पहले के समान कोलाहल से पूर्ण नहीं था। लगता था कि जैसे वह जन-शून्य हो गया लेकिन अपनी पैतृक भूमि का मोह और गाँव के समीप ही जाह्नवी की श्यामल तरंगित लहरें सदा ही रामलाल को आकर्षक लगतीं। संध्या की धूमिल छाया में उस जाह्नवी के तट पर बैठकर अनेक बार रामलाल ने मालती को बताया कि एक दिन हमारा गाँव दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। यहाँ से अनाज और फलों का लदान होता था। आज तो आधा भी नहीं रहा गाँव; एक दिन था कि जब इस गङ्गातट पर आस-पास के गाँवों का मेला आ लगता था। वह बताता कि हम बचपन में गङ्गा में नहाते, बैल, गाय और भैंसों को भी गङ्गा में उतारते और उनकी पीठ पर चढ़-चढ़ गङ्गा पार कर जाते। निश्चय ही ऐसे अवसर पर रामलाल अतिशय आनन्द पाता। वह अपने गाँव, पूर्वजों का बखान करते हुए जैसे किसी अपूर्व भावना को पा जाता।

अपने पति की आनन्दित वाणी में मालती भी डूब जाती। वह भी अनुभव करती कि सच, वे दिन अपूर्व होंगे कि जब बचपन में गङ्गा में तैरते, तरबूज और खरबूजे खाने को मिलते होंगे। और रामलाल बताता था कि वे बड़े-बड़े तरबूज और खरबूजे कुछ खाते, कुछ गङ्गा में फेंकते। तब मछली और कछुवे किनारे पर आ-आकर अपना पेट भरते। रामलाल ने एक दिन यह बताया था कि एक बार वह एक कछुवा चादर में लपेटकर ले गया और बूढ़ी दादी की गोद में जाकर रख दिया किन्तु जब कछुवे ने अपनी गर्दन निकाली तो दादी चौंक गई और चीख मारकर डर गई। उस समय उसने छूटते ही कहा, अरे, तू मर जा, रामलाल! किन्तु रामलाल ने तो सुना और हँस दिया लेकिन उस दादी ने जो अशुभ बोल अपने मुँह से निकाला, तो उसका प्रायश्चित्त भी स्वयं उसी को करना पड़ा। वह कई दिन निराहार रही, उदास रही, घर की और पुरवे की दूसरी औरतों ने जब उसे बारबार समझाया, तो उसने कहा—अरी! मेरे मुँह से क्या निकल गया, इतना अशुभ...हाय! हाय!

और उसी समय रामलाल ने साँस भरकर कहा था—'मालती, वे दिन तो गए! वे बाबा और दादी, माता और पिता भी! सच, एक अजीब ही प्रेम पाया था, मैंने! उस प्रेम में त्याग था, भाव था। उसमें अवगुण को छोड़ भला स्वार्थ कहाँ था?

लेकिन अपने पति के पास बड़े घर में अकेली रह गई मालती। नित्य सोचती कि दुर्भाग्य उसका है कि जो

अकेली है वह ! भरा घर था पर वह आई है तो सूना है,—एकाकी ! अपने विवाह से पूर्व उसने गाँव का जीवन नहीं पाया था। वह बड़े शहर में रही थी। अपने चारों ओर कोलाहल और मानव की चीख-पुकार सुनते सुनते ही वह अपने बचपन को पारकर यौवन की भरी दोपहरी में आगई थी। अपने घर के अकेलेपन में बैठी हुई वह प्रायः सोचती, अजीब जीवन है यह,—यह नारी का जीवन—कि जिसकी थाह नहीं, कहीं टिकाव नहीं, इसका कोई कूल-किनारा नहीं ! बरबस, वह अपने पीछे छूट आए दिनों को भी याद करती और मन में कहती, वह भी जाने कैसी सुघड़ और सलोनी घड़ी थी कि जब पिता जी अपने साथ घर में अतिथि लाए और माँ से बोले—इसका नाम रामलाल है। इसके गाँव का नाम है गङ्गापुरा गङ्गा किनारे। बड़ा अच्छा लड़का है। यह पिछले दिनों ही कारखाने में आया है। मेहनती है। तीन-चार महीने में ही तरक्की कर गया है। अभी और आगे बढ़नेवाला है।

और माँ ने जो रामलाल को देखा तो खुशी से भर गई, वह छूटते ही बोली, 'मेरी मालती को ऐसा ही लड़का चाहिए था। अपनी जाति का ?'

पिता जी ने कहा 'हाँ, हाँ, अपनी जाति का ?'

ऐसे अवसर पर, तब जैसे आसमान से छूट, पृथ्वी पर आते-आते मालती कहती—पर यह हुआ क्या ! मैंने सुख क्या दिया ? अपने प्राणाधार का मैंने तो जीवन ले लिया। पराजित और पराश्रित भी बना दिया। मैं आई तो पेट भरने की चिन्ता का बोझ सिर पर डाल दिया।

सम्भवतः मालती की इसी भावना को पा, इस बार नौकरी के लिए जाते हुए, रामलाल ने कहा—'न, न, रोया नहीं करते, मालती, धीरज रखो। ईश्वर को याद करो। हम दोनों अपने पुरखों की लाज रखें और यह जो काँपती हुई जीवननैया भव-सागर की लहरों पर पड़ी है, हिल-मिलकर इसे पार कर लें,—हम इसी प्रकार हँसते-बोलते यह जीवन बिता लें, मालती।'

किन्तु मालती के पास इतने बोल नहीं थे। उसके मन में तो इस बात को लेकर जैसे काँटे चुभ रहे थे कि उसके कारण पति जा रहा है, उससे पति दूर हो रहा है क्योंकि जब उसका विवाह नहीं हुआ था तो विवाह की बातों के बीच में ही एक दिन रामलाल ने उसके घर पहुँचकर कहा था—ओ मालती ! मैं गरीब हूँ, मजदूर हूँ, भला ऐसे तुझे किस प्रकार सुखी बना सकता हूँ परन्तु इतना सुनकर तो उस मालती ने जाने किस भावना से भरकर रामलाल की छाती पर अपना सिर रखा और कहा 'यह तुम कहते हो न, तुम मत कहो, मालती तुम्हारे जीवन में आ रही है......तुम्हें दुःख देने......तुम्हारा सुख लेने !

और तब रामलाल ने जैसे उत्साहित होकर उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा था—'यह जीवन तो भागने के लिए है, चलने के लिए है, मालती ! यह रुकने के लिए नहीं ! आओ, हम बहेंगे, साथ-साथ चलेंगे। एक दूसरे की सुनेंगे। हम दोनों आत्मा-आत्मा का मेल करेंगे, मालती।'

तब इतनी-सी बात को उस मालती ने बड़े मन के साथ अपने मनःप्रदेश में उतार लिया था। उस समय उसे जाने कितना सुख और आत्म-गौरव का आभास भी मिल सका था।

लेकिन आज, जब कि रामलाल उसे अकेली छोड़कर दूर देश को चला गया तो अनेक प्रयत्न करने पर भी मालती के मन का यह काँटा नहीं निकल रहा था कि उसने क्यों अपने पति को जाने दिया। निदान, वह काँटा कसक रहा था। गाँव में और पुरवे में जितनी युवा और प्रौढ़ नारियाँ थीं, वे जब मालती के पास आकर बैठतीं और उसे उदास तथा खिन्न अवस्था में पातीं तो कोई अचरज करतीं, कोई समवेदनासूचक शब्दों में उसे समझाने का प्रयत्न करतीं लेकिन जिनके पास समवेदना थी और जिन्हें मालती की निरन्तर दीखती हुई उदास मुखाकृति से कुछ चिढ़-सी हो चली थी, वे सभी मालती की इस अवस्था से किसी प्रकार भी सहमत नहीं हुईं कि जब देखो वह अपने मकान के ऊपरी बारजे में बैठी हुई गङ्गा की ओर देखती रहती। जिन विवाहित लड़कियों और बहुओं को 'नेह' नाम के शब्द में आकर्षण मिलता और अपने पति की आकुल प्रतीक्षा में जीवन का परम सत्य भी दिखाई देता, उन्होंने भी जब यह सुना कि मालती इसलिए गङ्गा की ओर देखती है कि इसी प्रकार देखते हुए उसने अपने पिया को विदा किया था, वह इसी रास्ते से गया था, गङ्गा की इन्हीं लहरों पर नाव में चढ़ा हुआ

वह पार उतर गया था, तो उन्हें जैसे अच्छा नहीं लगा। उनकी दृष्टि में मालती की यह बेहयायी भी थी और पागलपन भी था। इसका परिणाम यह हुआ कि मालती की यह बात गाँव भर में फैल गई। बुढ़िया-बुड्ढों को भी मालूम हुई और जवान लड़के-लड़कियों को भी। जो भी मालती के पास आता, उनमें से कोई समवेदना के साथ रामलाल के समाचार पाना चाहता, पत्र आने की बात पूछता और कोई मालती के पागलपन की उस बात को हँसी के साथ उड़ाने का प्रयत्न करता। वह मालती का भी मजाक उड़ाता। कोई इतना कहने की भी हिम्मत कर जाता, 'क्या जाने मालती, रामलाल सुन्दर है, जवान है तो कहीं और—हाँ, आदमी का भरोसा क्या! बहता पानी है, जहाँ भी झील देखेगा, ढुलक जाएगा।'

किन्तु ऐसे अवसर पर तो मालती की अतिशय दयनीय अवस्था हो जाती, वह कुछ कह तो नहीं पाती परन्तु उसकी सुन्दर और सलोनी दृष्टि में क्रोध की छोटी-छोटी चिनगारियाँ आ छिटकतीं। वे निश्चय ही उसकी वेदना को व्यक्त कर देतीं। तब वह इतना ही कहती—यही कहने आए हो इस मालती से न, इससे मत कहो। इसके पति के लिए नहीं।

परन्तु कहनेवाला स्त्री है या पुरुष, कोई युवा लड़की है या लड़का; वह बात सुनकर हँसता, ठहाका मार देता, फिर जब मालती की ओर देख पाता तो अपनी बात रोक लेता क्योंकि मालती की आँखों में जो आँसू छलछला आते, वे इतने दीन और आतुर दिखाई देते कि कहनेवाले की वाणी अपने आप रुक जाती! वह काँप भी जाती। उसे लगता कि मालती की आत्मा में बल है, उसकी आत्मा निर्बल है इसलिए बरबस ही अपने को हीन पा,—मालती से छोटा पा,—बात जहाँ-की-तहाँ रह जाती।

लेकिन उस गाँव में सब एक प्रकार के तो व्यक्ति नहीं थे, मालती के प्रति कुछ सद्भाव्य भी थे। कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे कि जो अपनी इच्छापूर्ति के लिए मालती की परिस्थिति से फायदा उठा लेना पसन्द करते थे। उन्हीं में थे उस पुरवे के गजाधर पाण्डे। वे यद्यपि आयु में प्रौढ़ थे परन्तु जीवन भर अविवाहित रहने के कारण नारी की इच्छा प्राप्ति का भाव वह अभी तक अपने मन में लिए हुए थे। मालती के प्रति गाँव में जितनी बातें उड़ चली थीं, उनके निर्माता और सूत्रधार स्वयं गजाधर पाण्डे थे। सर्वप्रथम उन्होंने मालती को आकर सुनाया कि रामलाल जल्दी नहीं लौटेगा। शायद लौट भी नहीं सकेगा। वह मनुष्य की इच्छा और दूषित प्रवृत्ति का एक नक्शा भी मालती के सामने खींच गए थे लेकिन जब अन्त में उन्होंने इतना सुना कि मालती के पास पैसा नहीं, भोजन का कोई उचित आधार नहीं तो एक दिन की सन्ध्या में वह मालती के द्वार पर आए। मालती उस समय दीपक जला रही थी। आवाज सुनी तो बाहर आ गई। पाण्डे जी को देख, शिष्टतावश वह उन्हें बैठने के लिए भी कह सकी। बैठकर पाण्डे जी ने कहा—'सुना है, तुम्हारा हाथ तंग है। जब पाण्डेय है, तो तुम्हें यह शोभता है, न बहू! कोई काम हो, तो आधी रात बताओ।' कहते हुए उन्होंने जेब से कुछ रुपए निकाले और मालती के आगे करते हुए कहा—'इन रुपयों का हिसाब तुमसे नहीं माँगूँगा। रामलाल आएगा तो उससे ले लूँगा।

किन्तु रुपए देखकर ही, मालती ने कहा—'आपको धन्यवाद पण्डितजी! मुझे अभी आवश्यकता नहीं। होगी, तो माँग लूँगी। किसी और से न सही, आप से ही ले लूँगी।'

पाण्डेजी ने इतना सुना तो जैसे उनके मुँह पर तमाचा लग गया। वे गाँव के पंडित थे, कुछ रुपया भी पास रखते थे, लेन-देन में भी वे रुपया लगाए हुए थे, वे कुछ दिन काशी भी रह आए थे, संस्कृत पढ़े थे, गीता, महाभारत और पुराण जब वह पढ़ते और लोगों को सुनाते तो लगता कि वे उस गाँव में एक तेजस्वी और धार्मिक व्यक्ति थे। पुरुष की और नारी की, जीवन की और जगत की व्याख्या करते, तो यह साफ़-साफ़ ही बताते कि धन माया है......जीवन माया! जो इसके अन्दर डूबता है, वह खो जाता है। भ्रष्ट हो जाता है। वे कहते जो सच्चा जीवन है, वह तो विवेक, धर्म और निष्ठा पर टिका है। जीवन एक पूजा है, संकल्प है। जो इसका ठीक से उच्चारण नहीं करता, इस पाठ को नहीं पढ़ता, दया, धर्म, नैतिकता को नहीं मानता, वह पशु है,—क्रीतदास! किन्तु गाँव के वही उपदेशक जब सुन्दर और नवयौवना मालती को देखकर स्वयं अपने आप में ही डूब गए तो उन्हें दीखा किनारा दूर है। वे जिस भव-सागर में पड़े हैं, वह गहरा है, अगम है। उसमें से जो लहरें

उठ रही हैं, वे एक-एक ही इतने जोर से उन्हें झकझोरने में समर्थ हैं कि पाण्डेयजी जैसे जीवन नहीं, मौत पा रहे हैं, उसी मृत्यु की ओर वे निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। और अब, जब कि वे मालती के सामने रुपए रखकर भी सफलता की ओर नहीं बढ़े, तो बोले—'अरे मालती ! मूर्ख न बन ! जीवन चला ! इसे मार मत !'

सुनकर मालती ने कहा—पंडितजी, मैं जीवन को मानती हूँ, पूजती हूँ।

'तू पूजती है ? जीवन को मानती है।'

'हाँ, मैं जीवन पूजती हूँ, इसे सँजोती हूँ।'

पंडित जी ने कहा--'यही तेरी भूल है। जीवन देखा जाता है, समझा जाता है, पढ़ा जाता है। और तू.. तू......'

मालती ने कहा--'पंडितजी मैं अधिक नहीं जानती। इतना नहीं समझती। मेरे पिता जी कहा करते थे कि जीवन किताब का एक पन्ना है। किस पन्ने पर जाने क्या लिखा है !'

पंडितजी बोले--'हाँ, हाँ, तेरे पिता ने ठीक कहा। पर उस किताब को, उसके एक-एक शब्द और पन्ने को समझना पड़ता है, बहूरानी ! बता, तूने क्या समझा ! यह नारी का जीवन पाकर तूने क्या देखा ! बस, रामलाल को याद करती है...उसके लिए ही दिन में जाने कितनी बार जीती है और मरती है ! अरी, पगली ! इसका नाम है, भोग ! मोह ! दलदल ! जीवन का काल ! वही काल तुझे ग्रस लेना चाहता है। तेरी आँखों पर तो परदा है, पर वह कालकूट जहरीले सर्प की तरह फुफकारता हुआ—'

बात बीच ही में रोककर मालती बोली—'वह काल तो सभी को ग्रसता है, पण्डित जी।'

पण्डित जी ने जैसे चिढ़कर कहा—'हाँ, हाँ, सभी को !' और बोले वह—'पर किसी को जल्दी और किसी को—'

मालती ने कहा--'यही तो भ्रम है।'

पण्डितजी खड़े हुए और बोले—'अच्छा, तू रुपए नहीं लेगी ! न ले। सुना मैंने, तो सोचा और चला आया। रामलाल अपना आदमी था। उसकी पत्नी कष्ट में हो तो यह मुझे अच्छा नहीं लगेगा।'

पण्डितजी चले गए और मालती ऊपर आसमान में आए चन्द्रमा की ओर देखकर अपने-आप मुसकुराई और तब तत्क्षण ही गहरी ईर्षा के साथ अपना सिर पीछे दीवार पर टिकाकर कहा--'सब ऐसा ही सोचते हैं, ऐसा ही देखते हैं।' उसके मन में बात थी कि पण्डित अच्छे आदमी नहीं...गाँव के और व्यक्ति भी अधिकांश में ईमानदार नहीं। जैसे वे उसे पाना चाहते हैं, ठगी और चोरी करना चाहते हैं किन्तु तदनन्तर ही, उसके मन में आया कि मर्द और ये गाँव के जवान लड़के, जो उसकी विवशता और एकाकीपन का लाभ उठाना चाहते हैं, तो ये नई लड़कियाँ और बहुएँ भी तो उसके प्रति सद्भाव्य नहीं। उनमें भी उपेक्षा है, ईर्षा है, जलन है। उसका अन्तर प्रश्न कर रहा था—क्यों ? ऐसा क्यों ? तो बोली मालती, 'इसीलिए तो कि मैं अपने पिया की याद करती हूँ। उसकी बाट जोहती हूँ। जिस तरह समस्त नारियाँ अपने पति पर अधिकार रखतीं हैं, उस अधिकार को पाना चाहती हैं, तो मैं क्यों न चाहूँ। मैं क्यों न अपने आदमी की याद करूँ ! मैं क्यों न उसका पथ निरखूँ ?' इस अवस्था में ही मालती ने अपना मुँह गिराया और उदास भाव में, जैसे वेदनासिक्त बनकर कहा--'पर मैं अकेली हूँ, मैं गाँव की हँसी और उपेक्षा की वस्तु बन गई हूँ, भला मेरे पति ने इतना कहाँ सोचा ! कल पत्र आया है। लिखा है, मैं आ रहा हूँ, छुट्टी लेने की चेष्टा कर रहा हूँ।' लेकिन तभी मालती ने जैसे झुँझलाते हुए कहा—'अभी छुट्टी माँग रहे हैं, चेष्टा कर रहे हैं। हर चिट्ठी में तो यही लिखा आता है, मुझे समझाया जाता है, मेरा मन देखा जाता है, सोचते होंगे न, रोती होगी, रास्ता देखती होगी। और लिखा है चिट्ठी में, मैं रात-दिन तेरी याद करता हूँ, मालती ! पर मेरी विवशता है। नौकरी है, छोड़ने की बात भी मन में आती है। अब आऊँगा तो तुम्हारे लिए रेशमी साड़ी, माथे की बिन्दियाँ, माँग का सिन्दूर और महावर के लिए अच्छा रंग मैं यहाँ से खरीद लाऊँगा।'

किन्तु उसी समय झटका-सा खा, मानो ऐंठन-सी लेकर मालती ने एकाएक कहा—'जी, लाए मेरे लिए महावर ! खुद ही आजाएँ, तो वही मेरे माथे की बिन्दी और माँग का सिन्दूर हैं।' कहते हुए उठी और जैसे अपने-आप में एक हिलोर-सी ले कमरे में गई। सामने आले में शीशा रखा था, वह उसे हाथ में उठा अपना

मुँह देखने लगी। उसके मन में आ रहा था कि वह घटी तो नहीं है उसकी सुन्दरता में कमी तो नहीं आई है पर देखा उसने, आँखें वैसी ही सुन्दर हैं। गालों पर वही लाली है। उसकी माँग में जो सिन्दूर है, माथे पर बिन्दी है, वह उसकी सुहागरातवाली रात की तरह आज भी दिप रही है। वैसी ही सुन्दर है, वैसी ही सरल किन्तु उसी समय उसके मन में एक बात उठी। वह उसके कलेजे पर जैसे काँटे की तरह आ खड़ी हुई। उसे याद आई वह बात, जो एक दिन कई स्त्रियों के बीच में उससे कह दी गई थी। वह बात एक ने कही थी और फिर उसका समर्थन भी हुआ। उससे कहा गया कि जब तेरा आदमी नहीं, घर पर नहीं तो यह शृङ्गार, यह माँग-चोटी, यह सिन्दूर और बिन्दी किसको रिझाने के लिए लगाती है री, मालती! जब रामलाल आए तो लगाना। अब बेकार मत कर। उस समय इतनी बात सुनकर मालती काँप गई थी, वह क्रोध में भर गई थी। उसकी आँखें भी उभर आई थीं किन्तु उस रात के पहर में जब वही बात फिर मालती को याद आई तो उसकी छाती में धड़कन उठी। दिल काँपा। उसके मन में आया कि चीखे, चिल्लाए। वह अड़ोसी-पड़ोसियों को सुनाकर कहे, मेरे आदमी को बुला दो, अभी बुला दो। ये गाँव की औरतें मूर्ख हैं, ये मेरा नाश चाहती हैं। आदमी भी मूर्ख हैं। मुझे ठगना चाहते हैं किन्तु मालती चीखी नहीं, वह अपने बिस्तर पर पड़ गई। उसके मन में जो अशांति थी, वह बढ़ रही थी। वह अपनी छाती को दाब रही थी, आँखें भर आई थीं। वे उसके गोरे और सलोने गालों पर बह आई थीं।

दूसरे दिन जब पड़ोसिनें मालती के यहाँ आईं तो यह देखकर चकित रहीं कि मालती ने आज शृंगार नहीं किया। माथे पर बिन्दी और माँग में सिन्दूर भी नहीं भरा। दिखता है, आज इसने अपने बालों में कङ्घा भी नहीं किया, स्नान भी नहीं। निदान, उससे कहा गया, कारण पूछा गया परन्तु मालती ने बात का उत्तर नहीं दिया। उसका स्वर अवरुद्ध हो गया। आँखों में उद्वेग भी उभर आया।

इतना देखकर एक स्त्री ने, जो प्रौढ़ थी, उससे कहा--'अरी, रोती है! रामलाल आएगा। वह भला है। वह तेरे साथ बेईमानी नहीं करेगा। वह तुझे नहीं ठगेगा। तूने सुनाई तो चिट्ठी, सच, वह तेरे लिए सभी कुछ लाएगा।'

किन्तु इतना सुनकर तो मालती अतिशय तड़प गई। उसने अपना मुँह घुटनों पर रख लिया और फूटकर रोते हुए कहा—'अम्माजी, मेरा मन घबड़ा रहा है। रात से ही मुझे उनका अधिक ध्यान आ रहा है। मुझे लगता है कि उन्हें--

अम्माजी ने बीच ही में उसकी बात रोककर कहा—'पगली!'

❀ ❀ ❀

आठवें दिन गाँव में शहर का एक आदमी आया। वह रामलाल बाबू का घर पूछ रहा था। सुनकर लोग चले और उससे मिले। बैठकर उसने बताया, मैं रामलाल बाबू की पत्नी से मिलने आया हूँ। मैं यह दुःखद समाचार लाया हूँ कि चार दिन हुए बाबू रामलाल का कालरा से देहावसान हो गया।

लोगों ने सुना और सिर उठाकर आसमान की ओर देखते हुए कहा-'हे राम!'

खिन्न और उदास भाव में लोगों ने बताया—'भाई, चार ही दिन हुए हैं इस घटना को कि रामलाल की बहू ने तीन दिन के बुखार में अपने प्राणों को त्याग दिया।'

ऋग्वेद की ऋक्संख्या

श्री युधिष्ठिर मीमांसक

[गताङ्क से आगे]

छन्दःसंख्या-परिशिष्ट और ऋग्गणना

छन्दःसंख्यासंज्ञक ऋग्वेद की किसी शाखा का एक प्राचीन परिशिष्ट उपलब्ध होता है। इसमें केवल ११ श्लोक हैं। प्रारम्भ के दस श्लोकों में गायत्र्यादि पृथक् पृथक् छन्दों के अनुसार ऋक्संख्या का उल्लेख किया है, तत्पश्चात् अन्तिम श्लोक में सामूहिक रूप से ऋक्संख्या का निर्देश है। वे श्लोक इस प्रकार हैं—

"एकपञ्चाशद् ऋग्वेदे गायत्र्यः शाकलेयके।
सहस्रद्वितयं चैव चत्वार्येव शतानि तु ॥"१॥
त्रीणि शतानि सैकानि चत्वारिंशत्तथोष्णिहः।
अनुष्टुभां शतान्यष्टौ पञ्चाशत् पञ्चसंयुता ॥ २ ॥
बृहतीनां शतं ज्ञेयमेकाशीत्यधिकं बुधैः।
शतानि त्रीणि पङ्क्तीनां द्वादशाभ्याधिकानि तु ॥३॥
पञ्चाशत् त्रिष्टुभः प्रोक्तास्तिस्रश्चैव ततोऽधिकाः।
सहस्राण्येव चत्वारि विज्ञेयं तु शतद्वयम् ॥ ४ ॥
चत्वारिंशत् तथाष्टौ च तथा चापि शतत्रयम्।
जगतीनामियं संख्या सहस्रं तु प्रकीर्तितम् ॥ ५ ॥
दशैवात्यतिजगत्योऽपि तथा सप्त न संशयः।
शक्वर्योऽपि तथैवोक्तास्तथा नवविचक्षणैः ॥ ६ ॥
नव चैवातिशक्वर्यः षडष्टयः प्रकीर्तिताः।
अशीतिश्च चतस्रश्च तथात्यष्टि ऋचः स्मृताः ॥ ७ ॥
धृतिद्वयं विनिर्दिष्टमेकातिधृतिरेव च।
एकपदास्तु षट् प्रोक्ता द्विपदा दश सप्त च ॥८॥
प्रगाथा बार्हता येऽत्र तेषां शतमुदाहृतम्।
चतुर्नवतिरेवोक्तस्तद्वद् दृचास्त्वसंशयः ॥ ९ ॥
काकुभानां तु पञ्चाशद् विज्ञेया पञ्चसंयुता।
महा बार्हत एवैकः एवं सार्धशतद्वयम् ॥ १० ॥
एवं दशसहस्राणि शतानां तु चतुष्टयम्।
ऋचां द्व्यधिकमाख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥११॥

इन श्लोकों के अनुसार ऋग्वेद में गायत्री २४५१, उष्णिक् ३४१, अनुष्टुभ् ८५५, बृहती १८१, पंक्ति ३१२, त्रिष्टुप् ४२५३, जगती १३४८, अतिजगती १७, शक्वरी १६, अतिशक्वरी ९, अष्टि ६, अत्यष्टि ८४, धृति २, अतिधृति १, एकपदा ६, द्विपदा १७, बार्हतप्रगाथ १९४, काकुभ प्रगाथ ५५, महाबार्हत प्रगाथ १ छन्द हैं। इस प्रकार तत्त्वदर्शी महर्षियों ने ऋग्वेद की समस्त ऋचाओं की संख्या १०४०२ कही है।

छन्दःसंख्या परिशिष्ट में उल्लिखित ऋग्गणना के विषय में पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने ऐतरेयालोचन पृष्ठ १४३ पर लिखा है—

छन्दःसंख्योल्लिखितोक्तसर्वसंकलनसंख्या। तु प्रतिछन्दः संख्यातोऽपि विरुद्धैव प्रतीयते। तथथा तत्रोक्त श्लोकैः—गायत्र्यः २४५१, उष्णिहः ३४१, अनुष्टुभः ८५५, बृहत्यः १८१, पङ्क्तयः ३१२, त्रिष्टुभः ४२५३, जगत्यः १३४८, अतिजगत्यः १७, शक्वर्यः ९, अतिशक्वर्यः ९, अष्टय ६, अत्यष्टयः ८४, धृत्यौ २, अतिधृति १, द्विपदाः १७, एकपदाः ६, बार्हतप्रगाथाः १९४, ककुप्प्रगाथाः ५५, महाबार्हतप्रगाथः १। तदेवं तदुक्तप्रतिच्छन्दस्संख्यानां संकलनया १०१४२ ऋचः स्युः। पूर्वप्रदर्शितश्लोकतस्तु गम्यन्ते १०४०२। तदत्र प्रायः सर्वत्र संकलनभ्रमोऽस्माभिर्ग्रन्थदृष्ट्या प्रमाणित एव।

अर्थात्—छन्दःसंख्या नाम के परिशिष्ट में कही हुई सब छन्दों की संकलन-संख्या (पूर्णयोग) प्रतिच्छन्द दर्शाई हुई छन्दःसंख्या के संकलन (योग) से विरुद्ध ही प्रतीत होती है। जैसा कि श्लोकों में कहा है—गायत्री २४५१.........शक्वरी ९.........*। इस प्रकार प्रतिछन्द निर्दिष्ट संख्याओं का संकलन करने से १०१४२ ऋचाएँ होती हैं। पूर्वप्रदर्शित (११ वें) श्लोक से १०४०२ संख्या जानी जाती है। इस तरह सर्वत्र संकलन-भ्रम हमने ग्रन्थों से प्रमाणित कर दिया।

पं० सत्यव्रत सामश्रमी के इस लेख पर हमें अत्यन्त आश्चर्य होता है। अन्य आचार्यों के दोष दर्शाने का दुःसाहस और उनका उपहास † करनेवाले पं० सत्यव्रत

---

* यहाँ प्रतिछन्द मन्त्रसंख्या पूर्ववत् समझनी चाहिये। पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने केवल शक्वरी छन्द की संख्या १६ के स्थान में ९ लिखी है।

† ऐतरेयालोचन पृष्ठ २८।

सामश्रमी को छन्दःसंख्या परिशिष्ट के साधारण श्लोकों का भाव भी भली-भाँति समझ में नहीं आया।

पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने इन श्लोकों के समझने में दो भूलें की हैं। प्रथम भूल—छठे श्लोक के उत्तरार्ध में दो बार 'तथा' शब्द का प्रयोग है। पहला 'तथा' शब्द पूर्वार्धगत अतिजगती की गणनाप्रकार का निर्देशक है। दूसरा 'तथा' शब्द पूर्वोक्त १० संख्या का समुच्चायक है। श्लोक का भाव यह है जैसे अतिजगती की संख्या १०+७=१७ कही है वैसे ही शक्करी की गणना में भी पूर्वसंख्या १० और उत्तरसंख्या ६ समझनी चाहिए अर्थात् शक्करी छन्द की १०+६=१६ ऋचाएँ हैं। पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने 'शक्वर्योऽपि तथैवोक्ताः' चरण का भाव न समझकर शक्करी छन्द की केवल ६ ऋचाएँ गिनी हैं। द्वितीय भूल—प्रगाथों की संख्या का निर्देश करते हुए ६ वें श्लोक में स्पष्ट कहा है कि ये प्रगाथ 'द्वृच' हैं। अतः इन १९४+५५+१=२५० प्रगाथों की ५०० ऋचाएँ गिननी चाहिए। ऋक्सर्वानुक्रमणी के परिभाषा-प्रकरण में स्पष्ट कहा है कि बार्हत प्रगाथ=बृहती और सतोबृहती, काकुभप्रगाथ=ककुप् और सतोबृहती तथा महाबार्हतप्रगाथ=महाबृहती और महासतोबृहतीसंज्ञक छन्दों के योग का नाम है। पाणिनि के 'सोऽस्यादिरितिच्छन्दसः प्रगाथेषु' (अष्टा० ४।२।५५) सूत्र से बार्हत काकुभ आदि में अणप्रत्यय इसी अर्थ में होता है।* पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने इस साधारण-सी बात को न समझकर २५० प्रगाथों का २५० ऋचाएँ ही गिन लीं। दोष है अपनी समझ का और मत्थे मढ़ा छन्दःसंख्या परिशिष्टकार के। यदि पं० सत्यव्रत सामश्रमी की इन दोनों त्रुटियों को ठीक कर लिया जाए तो छन्दःसंख्या परिशिष्ट की दोनों गणनाओं में परस्पर कोई विरोध नहीं रहता।

पं० हरिप्रसाद जी वैदिकमुनि ने भी छन्दःसंख्या परिशिष्टोक्त ऋग्गणना को नहीं समझा। उन्होंने पं० सत्यव्रत सामश्रमी का ही अनुकरण किया है। देखो—वेदसर्वस्व पृष्ठ ६५,६६। अतः उनके लेख में भी पूर्वोक्त दोष समझने चाहिए।

छन्दःसंख्यापरिशिष्ट और द्विपदा ऋचाएँ

ध्यान रहे कि छन्दःसंख्या परिशिष्टोक्त १०४०२ ऋचाओं में १४० नैमित्तिक द्विपदाएँ चतुष्पदा बनाकर ७० ऋचाएँ गिनी गई हैं। अतएव यहाँ जो १७ द्विपदाएँ गिनी हैं, वे नित्य द्विपदाएँ हैं। यदि ७० चतुष्पदाओं को ७०×२=१४० द्विपदा बनाकर गिना जाए तो कुल ऋक्संख्या १०४७२ होगी। इसी प्रकार छन्दःसंख्या परिशिष्टोक्त ऋग्गणना में ८० बालखिल्य मन्त्रों का भी समावेश नहीं है। सम्भव है छन्दःसंख्या परिशिष्ट शैशिरि-शाखा का हो। हम पूर्व लिख चुके हैं कि शैशिरि शाखा में बालखिल्य ऋचाएँ नहीं हैं।

प्रो० मैकडानल्ड ने ऋग्वेद में १२७ द्विपदा ऋचाएँ गिनी हैं (उनकी गणना में जो भूल है, उसे आगे व्यक्त किया जाएगा)। उन्होंने छन्दःसंख्या परिशिष्ट में द्विपदाओं की १७ संख्या देखकर कल्पना की है कि छन्दःसंख्या परिशिष्टोक्त द्विपदा संख्या में मध्यवर्ती २ की संख्या नष्ट हो गई है अर्थात् १२७ के स्थान में भूल से १७ संख्या लिखी गई है। देखो, ऋक्सर्वानुक्रमणी की भूमिका पृष्ठ १८।

प्रो० मैकडानल्ड की यह कल्पना सर्वथा अयुक्त है क्योंकि हम ऊपर सप्रमाण दर्शा चुके हैं कि ऋग्वेद में १४० नैमित्तिक द्विपदाएँ हैं और १७ नित्य द्विपदाएं। छन्दःसंख्या परिशिष्ट में केवल नित्य द्विपदाओं का उल्लेख है, नैमित्तिक द्विपदाओं का नहीं। सम्भव है मैकडानल्ड ने स्वयं अशुद्ध गिनी हुई १२७ द्विपदा संख्या में छन्दःसंख्या परिशिष्टोक्त १७ द्विपदा संख्या में आद्यन्त संख्या (१ और ७) की समानता देखकर उक्त कल्पना की होगी।

ऋक्सर्वानुक्रमणी और ऋक्संख्या

आचार्य कात्यायन ने ऋक्सर्वानुक्रमणी में प्रतिसूक्त जो ऋक्संख्या लिखी है, उसका योग करने पर बालखिल्य

---

* प्रगाथ दो प्रकार के होते हैं एक ऋक्संबन्धी, दूसरे सामसंबन्धी। पाणिनि का उक्त सूत्र आर्च प्रगाथ संबन्धी है। परन्तु काशिकाकार ने प्रगाथ का लक्षण करते हुए 'यत्र द्वे ऋचौ प्रग्रथनेन तिस्रः क्रियन्ते स प्रगथनात् प्रकर्षगानाद्वा प्रगाथ इत्युच्यते' लिखा है, वह सामसंबन्धी है।

सूक्तों के बिना १०४६२ ऋचाएँ होती हैं*। ११ बालखिल्य सूक्तों के ८० मन्त्र मिलाने पर १०५५२ ऋक्संख्या उपलब्ध होती है। इस संख्या में नैमित्तिक द्विपदाएँ सम्मिलित हैं। ऋक्सर्वानुक्रमणी के टीकाकार जगन्नाथ के मत में भी ऋग्वेद में १०५५२ ऋचाएँ हैं†। चरणव्यूह के टीकाकार महीदास का भी यही निर्णय है। वह लिखता है—

"बालखिल्यसहिता सर्वानुक्रमणीयमन्त्ररूपीसंख्या उच्यते—द्विपञ्चाशदधिकपञ्चशतदशसहस्राणीति १०५५२। बालखिल्यव्यतिरिक्तसंख्या तु द्विसप्तत्यधिकचतुःशतदशसहस्रऋक् १०४७२। एतत्संख्या नित्यद्विपदानैमित्तिकद्विपदासहिता।" पृष्ठ १५।

अर्थात्—बालखिल्य-सहित सर्वानुक्रमणी-निर्दिष्ट मन्त्रसंख्या १०५५२ है बालखिल्य ऋचाओं के बिना १०४७२। इस संख्या में नित्य और नैमित्तिक दोनों प्रकार की द्विपदा ऋचाएँ सम्मिलित हैं।

वेङ्कटमाधव और ऋक्संख्या

वेङ्कटमाधव ने ऋग्वेद के दो भाष्य लिखे हैं। एक लघु और दूसरा बृहत्‌ॐ। वेङ्कटमाधव का काल विक्रम की १२वीं शताब्दी के लगभग माना जाता है। वेङ्कट ने ऋग्वेद के लघु भाष्य के ५वें अष्टक के ५वें अध्याय के उपोद्घात में ऋग्वेद की ऋक्संख्या का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"शतैश्चतुर्भिरधिकमयुतं गणितं मया।
द्वे च यान्यतिरिच्येते द्विपदाश्चात्र संगताः ॥२१॥
पृथक् यदा तु गणनं द्विपदानां तदाधिकाः।
चतुःशतादशीतिश्च वाक्यं च ग्रहवालयम् ॥२२॥

अर्थात्—मैंने ऋग्वेद में १०४०२ ऋचाएँ गिनी हैं। इनमें द्विपदाएँ सम्मिलित हैं। जब द्विपदाएँ पृथक् गिनी जाती हैं तब १०४८० ऋचाएँ होती हैं।

वेङ्कटमाधव ने १४० नैमित्तिक द्विपदाओं को ७० चतुष्पदा मानकर जो १०४०२ ऋक्संख्या लिखी है, वह ठीक है परन्तु द्विपदाओं को पृथक् गिनकर जो १०४८० ऋक्संख्या लिखी है, वह ठीक नहीं है क्योंकि जब द्विपदाएँ पृथक् गिनी जाएँगी तब नैमित्तिक द्विपदाओं की केवल ७० संख्या बढ़ेगी, जो कि पहली गणना में चतुष्पदा बनाकर गिनी गई है। अतः १४० द्विपदाओं की आधी संख्या ७० ही बढ़ानी चाहिए। इसलिए १०४७२ के स्थान में १०४८० संख्या लिखना भूल है।

वेङ्कटमाधव की भूल का कारण

हम ऊपर कह आए हैं कि ऋग्वेद में १४० नैमित्तिक और १७ नित्य द्विपदाएँ हैं अर्थात् समस्त द्विपदाएँ १५७ हैं। गणना-भेद से केवल नैमित्तिक द्विपदाजन्य संख्या बढ़ेगी, नित्य द्विपदाओं की संख्या तो दोनों गणनाओं में समान रहेगी। प्रतीत होता है कि वेङ्कटमाधव ने १०४०२ ऋक्संख्या में भूल से समस्त (नित्यनैमित्तिक) १५७ द्विपदाओं में से १५६ सम ऋचाओं की (१५६ ÷ २ =) ७८ चतुष्पदा ऋचाएँ सम्मिलित समझ लीं। अतएव जब उसने द्विपदाओं को पृथक् गिना तब पूर्वोक्त १४० ÷ २ = ७० के स्थान में ७८ संख्या को द्विगुणित कर दिया। यह वेङ्कटमाधव की महती भूल है।

इसके आगे २३, २४, २५ श्लोकों में वेङ्कटमाधव वर्गानुसार ऋक्संख्या का उल्लेख करता है, जो कि निम्न प्रकार है—

प्रतिवर्ग ऋक्संख्या		वर्गसंख्या		ऋक्संख्या
१	×	१	=	१
२	×	२	=	४
३	×	९९	=	२९७
४	×	१७५	=	७००
५	×	१२०९	=	६०४५
६	×	३४३	=	२०५८
७	×	१२१	=	८४७
८	×	५४	=	४३२
९	×	२	=	१८
		२००६		१०४०२

तदनुसार ऋग्वेद में २००६ वर्ग और १०४०२ ऋचाएँ होती हैं। वर्गसंख्या तो शौनकीय अनुवाकानुक-

---

*ऋक्सर्वानुक्रमणी के दो प्रकार के पाठ उपलब्ध होते हैं। एक पाठ में बालखिल्य ऋचाओं के ऋषि, देवता, छन्द का निर्देश मिलता है। दूसरे पाठ में नहीं मिलता। अतएव यहाँ पृथक् निर्देश किया है।

†ऐतरेयालोचन पृष्ठ १४२, १४३।

मणी से मिलती है परन्तु मन्त्रसंख्यानुसार निर्दिष्ट वर्ग-संख्या में पर्याप्त भेद है। हाँ, वेङ्कटमाधव की दोनों (प्रतिवर्गगणना और समस्त गणना की) ऋक्संख्याएँ परस्पर अवश्य मिलती हैं।

वह आगे लिखता है—

"ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्च शतानि च।
ऋचामशीतिः पादश्च पाठोऽयं न समञ्जसः ॥२६॥

अर्थात्—अनुवाकानुक्रमणी आदि में ऋग्वेद की जो १०५८० और १ पाद ऋग्गणना लिखी है, वह ठीक नहीं है।

वेङ्कटमाधव ने केवल स्वसंख्यात ऋक्संख्या के आधार पर अनुवाकानुक्रमणी आदि निर्दिष्ट "१०५८० और १ पाद" ऋक्संख्या को अशुद्ध बताया है। प्रतीत होता है उसने उसके "पारणम्" पद पर किञ्चिन्मात्र ध्यान नहीं दिया, अन्यथा वह इस संख्या को अशुद्ध कहने का साहस न करता।

महीदास और ऋक्संख्या

चरणव्यूह के टीकाकार महीदास ने ऋग्वेद की ऋग्गणना के विषय में कुछ विस्तार से लिखा है। यद्यपि इस ग्रंथ के अत्यधिक अशुद्ध मुद्रित होने के कारण अनेक स्थानों में उसका वास्तविक अभिप्राय पूर्णतया समझ में नहीं आता तथापि उससे ऋग्वेद की ऋग्गणना-सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य बातें विदित होती हैं।

महीदास के मत में ऋग्वेद में बालखिल्य-सहित १०५५२ मन्त्र हैं, बालखिल्य के बिना १०४७२। इनमें नित्य नैमित्तिक दोनों प्रकार की द्विपदाएँ सम्मिलित हैं। पृष्ठ १५।

आगे (पृष्ठ १८ पर) महीदास १०५८० और १ पाद ऋक्परिमाण की उपपत्ति दर्शाता है परन्तु ग्रंथ के अत्यधिक अशुद्ध मुद्रित होने के कारण वह हमें पूर्णतया समझ में नहीं आई। अतएव हम उसे उद्धृत नहीं करते।

आगे (पृष्ठ २०, २१ पर) महीदास ऋग्वेद के वर्गों तथा ऋचाओं की संख्या प्रदर्शक कुछ श्लोक उद्धृत करता है, जो इस प्रकार हैं—

"एकर्च एकवर्गश्च एकर्चं नवकस्तथा।
द्वौ वर्गौ द्व्यृचौ ज्ञेयौ ऋक्त्रयस्य शतं स्मृतम् ॥
चतुर्ऋचां पञ्चसप्तत्यधिकं च शतं तथा।
पंचर्चं तु द्विशतकं सहस्रं रुद्रसंयुतम् ॥
पञ्चचत्वार्यधिकं तु षडृचां तु शतत्रयम्।
सप्तऋचां शतं ज्ञेयं विंशतिश्चाधिकाः स्मृताः ॥
अष्टऋचां तु पञ्चाशत् पञ्चाधिकास्तथैव च।
एवं दशाधिकसहस्रद्वयवर्गा इत्यर्थः पञ्चशाखासु निश्चिताः ॥
वर्गाः संज्ञानसूक्तस्य चत्वारश्चात्र मीलिताः।
एवं पारायणे प्रोक्ता ऋचां संख्या न न्यूनतः।"

इन श्लोकों के अनुसार वर्गों और ऋचाओं की संख्या इस प्रकार है—

प्रतिवर्ग ऋक्संख्या		वर्गसंख्या	ऋक्संख्या
१	×	१	१
२	×	२	४
३	×	१००	३००
४	×	१७५	७००
५	×	१२११	६०५५
६	×	३४५	२०७०
७	×	१२०	८४०
८	×	५५	४४०
९	×	१	९
		२०१०	१०४१९

यह वर्गसंख्या शाकलचरण की पाँच शाखाओं की है। इसमें संज्ञान सूक्त के ४ वर्ग सम्मिलित हैं। इसी प्रकार १०४१९ मन्त्रसंख्या में संज्ञान सूक्त की १५ ऋचाओं का भी समावेश है। उन्हें न्यून करने पर १०४०४ ऋक्संख्या उपलब्ध होती है, जो पूर्वोक्त छन्दःसंख्या परिशिष्ट की संख्या से २ अधिक है। यह अधिकता भी शाखान्तरकृत है।

शौनक वेङ्कटमाधव और महीदास ने वर्गान्तर्गत ऋक्संख्यानुसार जो वर्गसंख्या लिखी है, उसमें परस्पर पर्याप्त विभिन्नता है, यह तीनों की वर्गानुसार ऋग्गणना की दी हुई सारणियों की तुलना से व्यक्त है। इन तीनों में से किसकी गणना ठीक है इसके लिए हमने ऋग्वेद की वर्गान्तर्गत ऋक्संख्या के क्रम से वर्गसंख्या की गणना की है। गणना करने पर ज्ञात हुआ कि हमारी गणना पूर्वोक्त तीनों गणनाओं से भिन्न है। अतः हमने अपनी

गणना की अनेक प्रकार से परीक्षा की किन्तु हमें उसमें कहीं भूल उपलब्ध नहीं हुई। हमने वर्गगणना तीन प्रकार से की है। एक—द्विपदापक्ष में, दूसरी—नैमित्तिक द्विपदाओं को चतुष्पदा बनाकर, तीसरी—नैमित्तिक द्विपदाओं को चतुष्पदा बनाकर बालखिल्य के ८० मन्त्रों के १८ वर्ग न्यून करके।

नैमित्तिक द्विपदाओं को द्विपदारूप में गिनकर ऋग्वेद की बालखिल्य-सहित समस्त वर्गसंख्या निम्न प्रकार है—

अष्टक	एकर्च	द्वृच	तृच	चतुर्ऋच	पञ्चर्च	षडर्च	सप्तर्च	अष्टर्च	नवर्च	दशर्च	एकादशर्च	द्वादशर्च	योग
१	१	...	१२	२२	१७३	४२	५	४	...	५	१	...	२६५
२	...	...	१७	१५	१२४	४६	१२	७	...	...	...	...	२२१
३	...	...	४	१६	१३५	४१	२०	९	...	...	...	...	२२५
४	...	...	१२	२६	१५८	२९	१५	१०	...	...	...	...	२५०
५	...	१	१३	१६	१३७	४०	२१	७	...	३	...	...	२३८
६	...	...	११	२८	२०७	५८	१६	१०	...	१	...	...	३३१
७	...	...	८	३६	१५६	३३	१०	२	१	१	...	१	२४८
८	...	...	२३	२१	१२०	५२	२४	६	...	...	...	...	२४६
	१	१	१००	१८०	१२१०	३४१	१२३	५५	१	१०	१	१	२०२४
बालखिल्यान्तर्गत वर्ग	...	...	२	६	१०	...	...	...	..	...	...	...	१८
बालखिल्यातिरिक्त वर्गसंख्या	१	...	९८	१७४	१२००	३४१	१२३	५५	१	१०	१	१	२००६

वर्गान्तर्गत ऋक्संख्यानुसार समस्त ऋग्वेद की वर्गसंख्या तथा तदाश्रित ऋक्संख्या निम्न प्रकार है—

प्रतिवर्ग ऋक्संख्या	वर्गसंख्या	समस्तऋक्संख्या
१	१	१
२	१	२
३	१००	३००
४	१८०	७२०
५	१२१०	६०५०
६	३४१	२०४६
७	१२३	८६१
८	५५	४४०
९	१	९
१०	१०	१००
११	१	११
१२	१	१२
	२०२४	१०५५२

ऋग्वेद में आई हुई १४० नैमित्तिक द्विपदाओं को चतुष्पदा बनाकर वर्गसंख्या और तदाश्रित ऋक्संख्या इस प्रकार है—

प्रतिवर्ग ऋक्संख्या	वर्गसंख्या	समस्तऋक्संख्या
१	१	१
२	३	६
३	१०१	३०३
४	१७९	७१६
५	१२१९	६०९५
६	३४३	२०५८
७	१२२	८५४
८	५५	४४०
९	१	९
	२०२४	१०४८२

१४० नैमित्तिक द्विपदाओं की दो-दो ऋचाओं को एक चतुष्पदा मानकर १४०÷२=७० चतुष्पदाएँ होती हैं। अतः इस गणना में वर्गसंख्या तो वही २०२४ है परन्तु ऋक्संख्या में ७० संख्या न्यून हो गई।

यदि नैमित्तिक द्विपदाओं को चतुष्पदा गिनकर दर्शाई हुई उपर्युक्त वर्गसंख्या में से बालखिल्यान्तर्गत १८ वर्ग और उनकी ८० ऋचाएँ न्यून कर दें तो वर्गसंख्या और ऋक्संख्या निम्नलिखित होगी —

प्रतिवर्ग ऋक्संख्या	वर्गसंख्या	समस्त ऋक्संख्या
१	१	१
२	३	६
३	९९	२९७
४	१७३	६९२
५	१२०९	६०४५
६	३४३	२०५८
७	१२२	८५४
८	५५	४४०
९	१	९
	२००६	१०४०२

अब हम क्रमशः शौनक, वेङ्कटमाधव, अपनी और महीदास की वर्गगणना नीचे लिखते हैं जिससे प्रत्येक की वर्गगणना में जो भेद है, वह व्यक्त हो जाएगा। शौनक और वेङ्कटमाधव ने जो वर्गगणना लिखी है, उसमें १४० नैमित्तिक द्विपदाओं को ७१ चतुष्पदा बनाकर गणना की है और उसमें बालखिल्य ऋचाओं की गणना नहीं है। अतः हमने तुलना के लिए अपनी वर्गगणना भी इसी प्रकार की लिखी है। यह भी ध्यान रहे कि महीदास की वर्गगणना शाकलाचरण की पाँच संहिताओं की है। यह हम उसी के शब्दों में पूर्व लिख चुके हैं परन्तु उसकी गणना में भी बालखिल्य का समावेश नहीं है।

प्रतिवर्ग ऋक्संख्या	शौनक	वेङ्कटमाधव	हमारी गणना	महीदास
१	१	१	१	१
२	२	२	३	२
३	९७	९[illegible]	९९	१००
४	१७४	१७५	१७३	१७५
५	१२०७	१२०९	१२०९	१२११
६	३४६	३४३	३४३	३४५
७	११९	१२१	१२२	१२०
८	५९	५४	५५	५५
९	१	२	१	१
	२००६	२००६	२००६	२०१०

हमारा विचार है कि चारों की वर्गसंख्याओं में जो विभिन्नता है, उसका कारण शाखाभेद है।

[क्रमशः

कुर्सी पर बैठकर

श्री शान्तिनन्दन, एम० ए०

"कहिए बाबू साहब! क्या आप भी एफ० ए० की परीक्षा दे रहे हैं?" उसका यह प्रश्न सुनकर मैंने अपनी गर्दन ऊपर को उठाई। वास्तव में वह भी पुस्तक हाथ में लिए हुए था, जिसे मैं इतने ध्यान से पढ़ रहा था। मुझे एफ० ए० की परीक्षा देने के लिए इस नगर में आना पड़ा था, और पढ़ने के लिए एकान्त स्थान उचित समझकर मैं इस बाग में आ गया था। मेरे आने के पश्चात् यह सज्जन भी चुपचाप आकर कुछ दूरी पर बैठ गए थे। अब इस प्रश्न से ज्ञात हुआ कि यह भी एफ० ए० के परीक्षार्थी हैं।

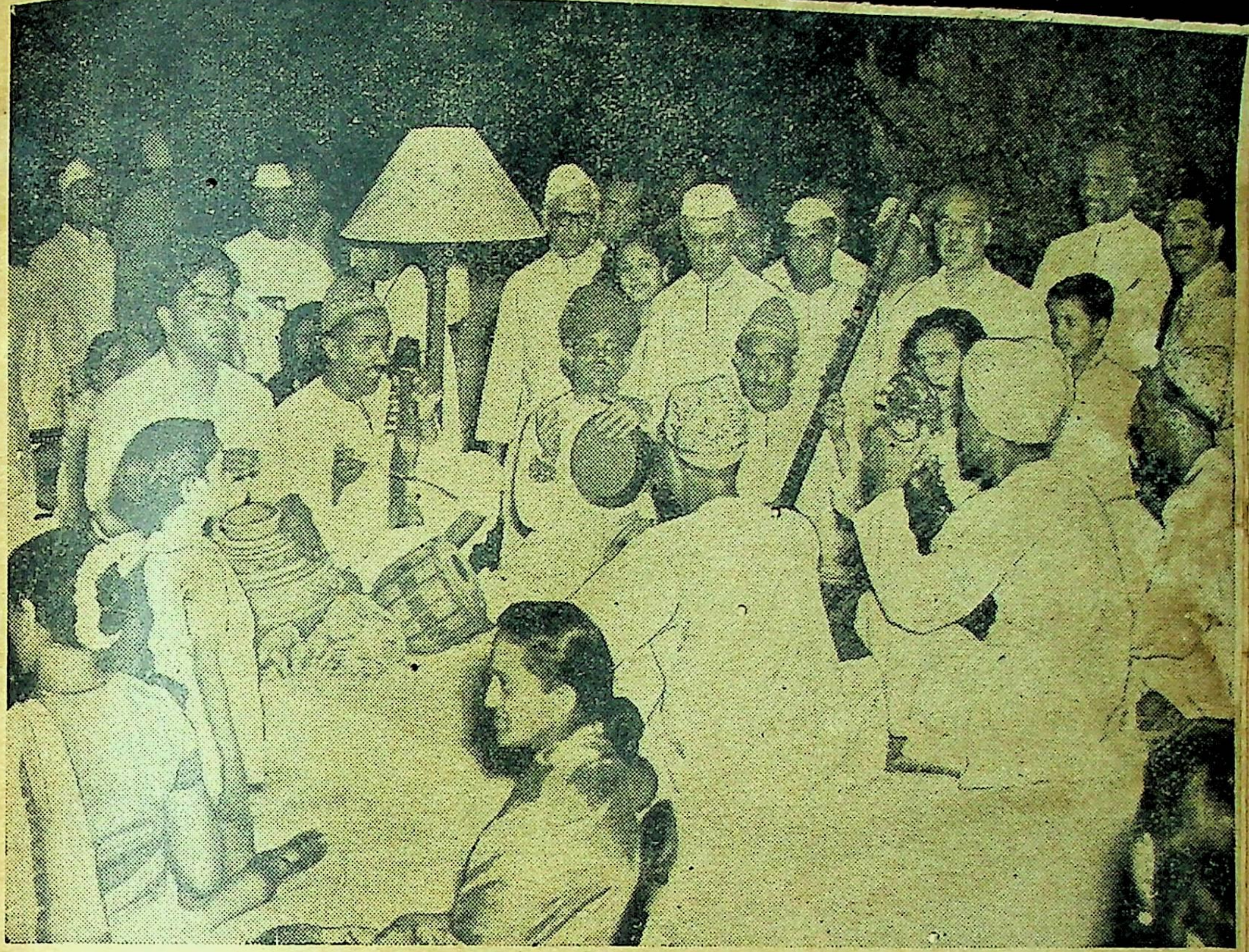
मैंने कुछ उदास भाव से उत्तर दिया, "जी हाँ।"

"मैं भी एफ० ए० की परीक्षा दे रहा हूँ। आप कहाँ से आ रहे हैं?" इस प्रश्न के साथ ही उसने प्रश्नों की लड़ी खोल दी। मैं शिष्टाचार के नाते उत्तर देता गया। मुझे ज्ञात हुआ कि ये सज्जन स्थानीय कालिज के छात्र हैं और किसी तहसीलदार के एकलौते बेटे हैं। नाम अपना श्यामसिंह बताया। इन प्रारम्भिक प्रश्नोत्तरों के पश्चात् श्यामसिंह ने कहा, "इस पर्चे के दो-तीन प्रश्न मुझे ज्ञात होगए हैं और आप निश्चय समझिए कि ये प्रश्न परीक्षा में अवश्य आएँगे। अपने सहपाठियों से तो पूछ नहीं सकता, इसमें मैं अपमान समझता हूँ पर यदि कृपा करके आप मुझे उनके उत्तर स्पष्ट कर दें तो मैं अत्यन्त अनुगृहीत रहूँगा।"

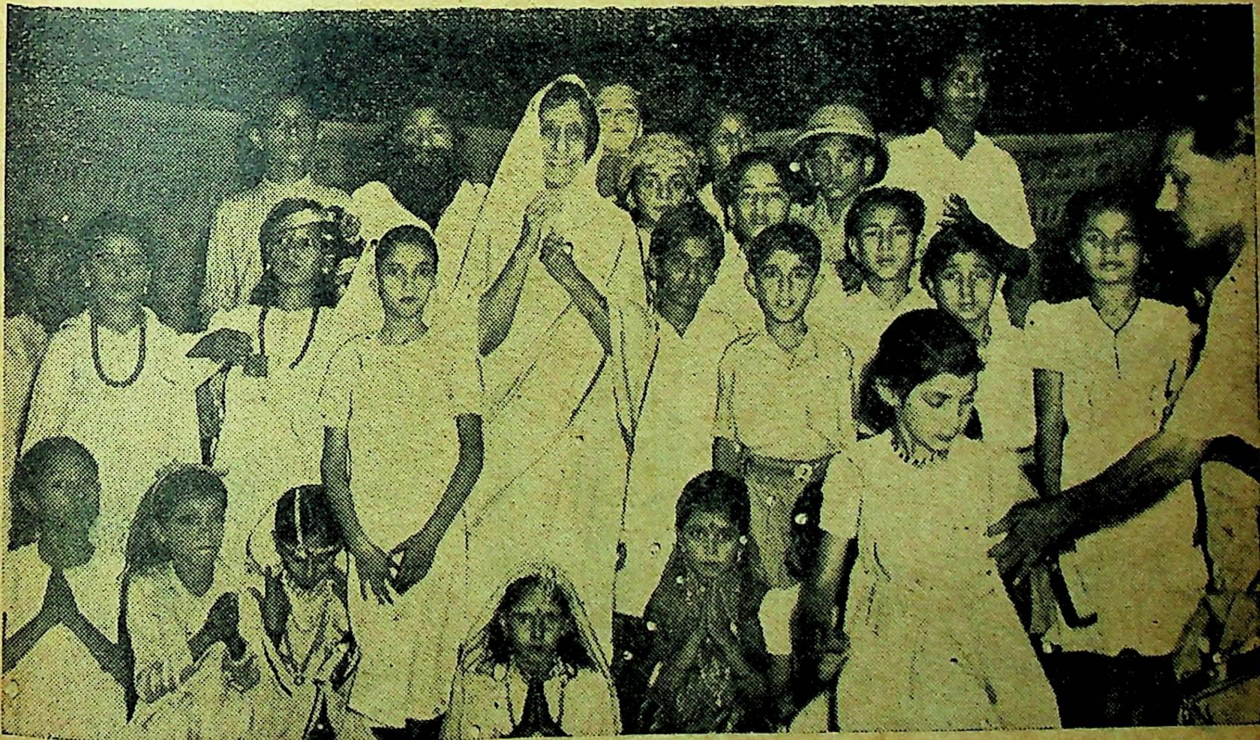
बड़े-बड़े ईमानदारों के हृदय में कहीं-न-कहीं बेईमानी की मात्रा छिपी रहती है। मैं पढ़ने में अच्छा था, सारी पुस्तकें मुझे याद थीं परन्तु फिर भी मैं श्यामसिंह की ओर आकर्षित हो गया।

उसने प्रश्न बताए, मैंने उनको स्पष्ट किया। अन्त में धन्यवाद देकर श्यामसिंह चला गया। मैं अब भी और कुछ पढ़ना चाहता था पर मन न लगा। इधर-उधर दो-एक पृष्ठ उलट-पलटकर मैंने पुस्तक रख दी। उठकर खड़ा हुआ और न जाने क्या-क्या सोचता हुआ मैं वहाँ से चल पड़ा।

दूसरे दिन हम लोगों का पर्चा था। ठीक वही तीनों प्रश्न आए। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। पर्चा समाप्त करके परीक्षा-भवन से निकला। चारों ओर श्यामसिंह को ढूँढ़ा पर वह कहीं दिखाई न दिया। मन में अपनी दुर्बलता पर पछताने लगा। बड़ी मूर्खता की, उसके रहने का स्थान



मनोरञ्जन-समारोह--नई दिल्ली में पिछले दिनों पण्डित नेहरू ने विधान-परिषद् के सदस्यों के लिए एक मनोरंजन-समारोह का आयोजन किया, जिसमें काश्मीरी कलाकारों ने उपस्थित व्यक्तियों का विशेष मनोरंजन किया। समारोह का एक दृश्य चित्र में देखिए।



बालकों की बाड़ी--दिल्ली की 'बालकों की बाड़ी' नामक बाल-संस्था में राजकुमारी अमृतकौर।



विवाह-समारोह में पंडित नेहरू—वैदेशिक विभाग के एक कर्मचारी के विवाह-समारोह में पंडित नेहरू।



बिरला मन्दिर में विवाह-समारोह—नई दिल्ली के बिरला मंदिर में संपन्न एक विवाह-समारोह में

तो ज्ञात कर लेता। कहीं उसे और पर्चे ज्ञात हो गए हों। फिर मन में सोचता, आवश्यकता ही क्या है ? ईमानदारी भी तो कोई चीज है, और फिर मैं अनुत्तीर्ण तो हो ही नहीं सकता। याद मुझे सब है ही। पर दूसरे ही क्षण में सोचने लगता, हर्ज ही क्या है, याद सही, पर यदि पर्चा ज्ञात हो जाता तो और भी अच्छा था। आजकल बेईमानी वही है, जो खुल जाए और जो न खुले, वह चतुरता है, कुशलता है, समझदारी है। और फिर चाहिये ही क्या ? मेरे मित्रों को तो यह ज्ञात होगा ही नहीं कि मुझे प्रश्न ज्ञात थे। मैं धर्मशाला में ठहरा ही हुआ था। यही सोचता-सोचता धर्मशाला आ गया। खाना खाया, आराम किया, पुस्तकें उठाईं, पर मन नहीं लगता था। बड़ी कठिनता से चार बजे और मैं एक किताब बगल में दबाकर उसी बाग की ओर चल दिया। सोचता था कि शायद वह आज फिर वहीं आए।

बाग में पहुँचते ही देखा कि वह वहाँ पहले से बैठा था। मैंने अपनी मुखाकृति ऐसी बना ली जैसे मुझे उससे मिलने की कोई चिन्ता ही न हो। उसने मुझे दूर से देखकर ही कहा, 'कहिये भाई साहब, अब मुझे शाबाशी दीजिए।" मैंने गम्भीरता प्रदर्शित करते हुए कहा, "कहिए, आपका पर्चा कैसा हुआ ?" श्यामसिंह ने कहा, "कुल पाँच प्रश्न तो करने ही थे, तीन आपके बताए हुए कर आया, दो ऐसे ही अटकलपच्चू कर आया।"

मैं चुप हो गया, अब कुछ कहने की बात रही ही नहीं। मुझे दो-तीन मिनट तक चुप देखकर वह फिर बोला, " भाई साहब, अब तो शायद आप मेरा कुछ-कुछ विश्वास करेंगे। आज केवल दो प्रश्न ही ज्ञात हैं।"

मैं चाहता था कि तत्काल ही कह पड़ूँ "कौन से ?" पर गम्भीरता का चोला पहने हुए था। गम्भीर मुद्रा में कहा, "जो कुछ मुझे आता है, मैं आपको समझाने को तैयार हूँ।"

आज समय पर्याप्त था। कुछ गपशप भी हुई। ज्ञात हुआ कि तहसीलदार साहब खूब रुपया भेजते हैं। माता से अलग ले आता है। शादी भी हो गई है, वहाँ से भी कभी-कभी मिल जाता है। प्रतिदिन सिनेमा देखना, मैचेज खेलना और मित्रों को पार्टियाँ देना इसका काम है। मैं समझ गया कि यह लड़का अत्यन्त दुराचारी है। बड़ी प्रसन्नता के साथ उसने अपनी शरारतों की कथा सुनाई। मैं बचपन से ही कुछ धर्मभीरु हूँ। चुपचाप सुनता रहा, पर मन-ही-मन यह प्रतिज्ञा कर ली कि अब कल से इस बाग में नहीं आऊँगा। धर्मशाला से यह सोचकर चला था कि आज उसके रहने का स्थान अवश्य ज्ञात कर लूँगा पर हृदय को दृढ़ करके मैंने उससे कुछ भी नहीं पूछा। जी में आता था कि पूछने में हर्ज क्या है पर न पूछना ही अच्छा समझा। आश्चर्य की बात यह है कि जहाँ उसने मुझसे और बहुत सी बातें पूछीं, वहाँ रहने का स्थान उसने भी मुझसे नहीं पूछा।

अंत में मैंने कहा "चलिए, अब बहुत देर हो चुकी है, कुछ बातें कल के लिए भी तो रहने दीजिए।" कहने को तो मैं कह गया पर हृदय में तत्काल आया कि ओहो, यह भी दुर्बलता ही रही। फिर सोचा कि अपना पीछा छुड़ाने के लिए और कहा भी क्या जाता। यह तो निश्चय ही है कि मैं कल यहाँ नहीं आऊँगा।

दूसरा दिन भी हुआ और पर्चे में वे दो प्रश्न भी ज्यों-के-त्यों आए। मैंने सोचा कि धर्म और ईमानदारी को थोड़े दिनों के लिए छोड़ देना चाहिए।...पर क्या इस दुराचारी लड़के की संगति से मुझे कुछ भी हानि न होगी ? फिर सोचता कि जब कह दिया है तो आज तो चलना ही चाहिए, कल से नहीं जाएँगे। आज न जाना भी अधर्म होगा। बहुत चाहा कि न जाऊँ पर मैं ठीक चार बजे बाग में पहुँच ही गया। अगले दिन कोई पर्चा भी नहीं था, पर यह सोचकर कि कहीं वह मेरी दुर्बलता को ताड़ न जाए, मैंने एक किताब भी अपने साथ ले ली थी।

वह वहाँ पहले से ही बैठा था। पहुँचते ही उसने दौड़कर मेरे गले में बाहें डाल दीं। मुँह से उसके बदबू निकल रही थी पर मैं जितना उससे दूर हटना चाहता था, उतना ही उसका बन्दी होता जाता था। बड़े जोर से हँसते हुए उसने कहा "कहो यार, कैसी रही !"

श्यामसिंह के पास कोई पुस्तक नहीं थी। मेरी बगल में पुस्तक देखकर उसने कहा "अरे यार ! अब पढ़कर क्या करोगे !"

मैं अपने मन में स्वयं लज्जित हो रहा था। मैं अपनी गम्भीरता और पढ़ूपन का ढोंग बना रहा था, धोखा दे रहा था, असत्याचरण कर रहा था पर श्याम-

सिंह जैसा था, वैसा ही अपने आपको प्रदर्शित भी कर रहा था। वह निष्कपट भाव से मुझसे मिलना चाहता था पर मैं बड़प्पन की सनक में था।

मेरा हाथ पकड़कर उसने कहा "गोपाल, दो एक घंटे यहीं बैठकर आज गपशप होगी फिर सिनेमा देखने चलेंगे। दो दिन से सिनेमा नहीं देखा है।" मैंने मन में सोचा कि यदि यह मूर्ख अपने ही पैसे से सिनेमा दिखाए तो हर्ज ही क्या है। पर फिर भी धर्मात्मा बनने के लिए मैंने कहा "देखो भाई, मैं तो सिनमा देखना अच्छा नहीं समझता और कम-से-कम परीक्षा के दिनों में तो अत्यन्त अनुचित समझता हूँ।"

पर वह न माना। मैं भी यही चाहता था। थोड़ी देर तक उसने फिर अपनी शरारतों की कथा सुनाई। शाम हुई और हम पास के सिनेमाघर में पहुँचे। मैंने जेब से रुपए निकालने का अभिनय किया। श्यामसिंह बोला "भाई साहब! क्या गजब करते हो। मैंने आपको सिनेमा देखने के लिए निमंत्रित किया है, यह कैसे हो सकता है कि आप पैसे दें।"

दो-चार बार मैंने हठ-सी की पर वह टिकट लेने चला गया। सिनेमा देखकर खूब चाट खाई और लेमनेड पिया। साढ़े नौ बजे सिनेमाघर से लौटे। श्यामसिंह ने सिनेमा-घर के फाटक से निकलते हुए कहा "अरे यार, तृप्ति नहीं हुई, चलो एक तमाशा और दिखाऊँ।"

मैंने कहा "रात बहुत हो जाएगी।" पर उसने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया। मैं भी शायद नहीं चाहता था कि वह उत्तर दे। एक और स्थान पर पहुँचे। टिकट मोल लिए। अन्दर पहुँचे। देखा तो नाच हो रहा था। बहुत वाहियात नाच, अत्यन्त असभ्यता और अश्लीलता से भरा हुआ पर जाने क्यों मैं चुपचाप देखता रहा। श्यामसिंह ने थोड़ी देर पश्चात् कुछ मँगवाया। मैं समझ गया। उसने शराब पी और मुझे लेमनेड पिलाया। मैं चाहता तो विरोध कर सकता था पर न जाने मुझे क्या हो गया था। नाच-घर में जो कुछ हुआ, वह मुझ जैसे व्यक्ति के योग्य नहीं था। ग्यारह बज गए। श्यामसिंह झूमता हुआ उठा। उसने कहा "चलिए, आपको आपके स्थान तक पहुँचा आऊँ।" मैं चाहता था कि वह मेरा स्थान न देखे पर वह न माना। धर्मशाला पहुँचे, दरवाजा बन्द हो चुका था। बड़ी कठिनता से दरवाजा खुलवाया।

धर्मशाला का नौकर बोला, "बाबूजी, आज कहाँ गए थे? बड़ी रात कर दी।" मैंने कहा, "पढ़ने गया था। एक मित्र मिल गए हैं। उनके साथ पढ़ता हूँ।"

इतने ही में नौकर की दृष्टि श्यामसिंह के ऊपर पड़ी। वह न जाने क्या अंड-बंड बक रहा था। किसी तरह श्यामसिंह से पीछा छुड़ाकर मैं अपने कमरे गया और सो गया। मुझे अपने किए पर बहुत पश्चात्ताप था।

सुबह को कमरा साफ करने के लिए नौकर आया और बोला, "बाबूजी, रात ये कौन थे? मुझे तो बहुत डर लगा।"

नौकर को डर लगा हो या न लगा हो पर मैं उसकी इस बात को सुनकर बहुत डर गया। कुछ भी उत्तर न दे सका। सोचा, कहीं यह बात मेरे पिता जी को ज्ञात हो गई तो क्या होगा। मैंने निश्चय कर लिया कि अब सायंकाल होने पर बाग को नहीं जाऊँगा, पर जैसे-जैसे सायंकाल का समय आता गया, मेरा निश्चय शिथिल होता गया। अन्त में मैंने निश्चय किया कि जब श्यामसिंह से मेरा इतना परिचय हो गया है तो उसे समझाना ही मेरा कर्तव्य है। यह सोचकर मैं चलने को तैयार हो गया। एक पूरा-का-पूरा व्याख्यान मन में बना डाला। उपदेशक बनकर तैयार हुआ ही था कि श्यामसिंह स्वयं ही आता हुआ दिखाई दिया। मैंने मन में सोचा 'अब कुशल नहीं है। इसने मेरे रहने का स्थान भी देख लिया, अब यह मुझे बहुत परेशान करेगा।'

पन्द्रह या सोलह दिन मुझे वहाँ रहना पड़ा, पर चाहते हुए भी न जाने क्यों मैं श्यामसिंह का साथ न छोड़ सका। यदि वह मेरे पास न आता तो मैं ही उसके पास चला जाता था। उसमें धन से होनेवाले सभी दुर्गुण थे पर कोई ऐसा आकर्षण भी था, जिसने मुझे विवश कर दिया था। अंतिम दिन जब हम बिदा होने लगे तो श्यामसिंह स्टेशन तक आया और मैंने देखा उसकी आँखों में आँसू थे।

मुझे मानना पड़ा कि श्यामसिंह दुराचारी है पर मन से निष्कपट है और मैं......

(२)

पन्द्रह वर्ष व्यतीत हो गए। प्रारम्भ में कुछ महीने तो हम लोगों का पत्र-व्यवहार रहा पर धीरे-धीरे बन्द हो गया। यह मुझे मालूम हो चुका था कि तहसीलदार

साहब की मृत्यु हो गई और श्यामसिंह की पढ़ाई समाप्त हो गई।

मैं सपरिवार पञ्जाब एक्सप्रेस से यात्रा कर रहा था। एक स्टेशन पर ट्रेन रुकी। प्लैटफार्म पर बड़ी भीड़ थी। एक लड़का खिड़की में से होकर उसी डिब्बे में आने लगा, जिसमें हम बैठे हुए थे। मेरे लड़के ने उसे बाहर को धक्का देते हुए कहा, "दरवाजे से क्यों नहीं आता, देखता नहीं ड्योढ़ा दर्जा है। जा, तीसरा दर्जा उधर है।" मैंने भी इसी बात का समर्थन किया।

इतने में एक अधेड़ व्यक्ति ने हाथ जोड़ते हुए कहा, "भाई साहब! गाड़ी सारी भरी है, मेरे साथ में स्त्री और बच्चे हैं, आपकी बड़ी कृपा होगी।"

इस 'भाई साहब' में एक विशेष आकर्षण था। मैंने फौरन कहा, "श्यामसिंह?"

विचारा श्यामसिंह शर्मा गया। कहने लगा, "ओहो, आप हैं!"

मैं भी शर्मा गया। उसकी स्त्री ने कुछ घूँघट आगे को कर लिया। उसी खिड़की से, जिससे पहले हम लोगों ने उस लड़के को नहीं चढ़ने दिया था, उन पाँचों को चढ़ाया और उन्हें समुचित स्थान दिया। श्यामसिंह के मुख की ओर मैं बार-बार देखने लगा, "क्या यह वही हँसमुख चेहरा पन्द्रह वर्ष में इतना मुरझा गया है?"

अन्त में श्यामसिंह ने स्वयं कहना आरम्भ किया, "कहो भाई गोपाल, क्या करते हो?"

मैंने कहा, "डिप्टी कलक्टर हो गया हूँ।" शिष्टाचार के नाते मैंने भी उससे वही प्रश्न किया।

उसने बड़े दुखी हृदय से कहा, "क्या कहूँ भाई साहब! पिता जी की मृत्यु के पश्चात् सारा भार मुझ पर ही आ पड़ा। पिताजी धन छोड़कर तो क्या मरते, उलटा ऋण छोड़कर मरे। मेरी आदतें उन्होंने ऐसी बिगाड़ दी थीं कि आपको ज्ञात ही है। जब किसी तरह गुजर न हो सकी तो चुङ्गी में क्लर्की करनी पड़ी। ये तुम्हारी भाभी भी एक बड़े बाप की बेटी हैं। इन्हें भी खर्च कम करने की आदत नहीं है। बच्चे अपनी ननसालवालों की बराबरी करना चाहते हैं। मैं हूँ जो अपने सारे खर्चे बन्द किए बैठा हूँ। न जाने क्या-क्या करके ६०-७० की आमदनी हो जाती है।"

यह कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू आ गए। उस दिन मेरी ट्रेन चलने पर भी उसकी आँखों में आँसू आ गए थे पर इन आँसुओं और उन आँसुओं में महान् अन्तर था मैं किंकर्तव्यविमूढ़ की तरह अपना सिर खुजलाने लगा पर परिस्थिति ऐसी थी कि कुछ कहना और थोड़ी सान्त्वना देनी आवश्यक ही थी। मैंने कहा, "भाई, घबराने की क्या बात है? आपत्ति आदमी पर ही आती है और मैं जो कुछ कर सकता हूँ उसके लिए हर समय तैयार हूँ। यह बड़ा लड़का कौन से दर्जे में है?"

श्यामसिंह ने कहा, "छठे दर्जे में है, बिना फेल हुए यह आगे बढ़ता ही नहीं।"

मैंने यह बात विषय बदलने के लिए पूछी थी पर इसमें भी दुख की मात्रा देखकर मैंने कहा, "तुमसे तो नहीं, पर भाभी जी से तो अपनी अशिष्टता के लिए क्षमा माँगूँगा ही।" मैंने हाथ जोड़े और श्यामसिंह से क्षमा की सिफारिश करने की प्रार्थना की पर वह विचारी क्या कहती। लजाकर उसने मुख दूसरी ओर फेर लिया। इतने ही में एक बड़ा स्टेशन आया। मेरी धर्मपत्नी ने कुछ मीठा खरीदा। सबसे पहले उसने श्यामसिंह के बच्चों को मीठा दिया। बड़ी कठिनता से उन बच्चों ने वह मीठा लेना स्वीकार किया। अपने बच्चों को देने के पश्चात् श्यामसिंह को और मुझे मीठा दिया गया। श्यामसिंह की स्त्री को मेरी स्त्री ने कई बार सौगन्ध दिलाई पर उसने मीठा तभी खाया जब उसने यह समझ लिया कि जब तक मैं न खाऊँगी यह भी नहीं खाएगी। इस प्रकार स्त्री की इस चतुरता के कारण कुछ थोड़ा सा समय और व्यतीत हुआ पर मुझे कोई बात ऐसी न सूझी, जिससे मैं इन लोगों को थोड़ी देर के लिए भी प्रसन्न कर सकूँ। अन्त में हमारा स्टेशन आ गया। हम उतर गए।

चलते-चलते मैंने बड़े आदमियों की तरह फिर श्यामसिंह से कहा, "देखो भाई, घबराने की कोई बात नहीं है, पत्र लिखते रहा करो। मैं जो कुछ कर सकता हूँ, तुम्हारे लिए हर समय करने को तैयार हूँ।"

(३)

श्यामसिंह ने कोई पत्र नहीं लिखा। मैं तो लिखता ही क्यों?

तीन वर्ष व्यतीत हो गए। हम अपनी कोठी के बाहर

वाले कमरे में बैठे थे। लगभग १० बजे प्रातः का समय था। एकाएक मेरी लड़की, जो खिड़की से बाहर को देख रही थी, बोली, "पिताजी, पिताजी, एक बाबू साहब! एक बाबू साहब!"

उसकी माँ ने कहा, "बाबू साहब क्या?"

उसने फिर ताली बजाते हुए कहा, "एक बाबू साहब! एक बाबू साहब!"

उत्सुकता के कारण उसकी माँ ने भी खिड़की में से झाँककर देखा! उसने कहा, "हाँ, है तो अवश्य! एक लड़के को सिपाही बाँधे लिए जा रहे हैं और ऐसा लगता है जैसे इसे कहीं देखा है।"

"कहीं देखा है" सुनकर मैंने भी झाँककर देखा। सचमुच यह श्यामसिंह का लड़का था। मैं अच्छी तरह पहचान गया। मैं रुक न सका। चपरासी को मामला ज्ञात करने को भेजा। उसने लौटकर उत्तर दिया कि आज इस लड़के का मुकदमा है। कोई अंग्रेज वेटिङ्ग-रूम में सो रहा था, इसने उसकी जेब में से सिगरेट की डिब्बी निकाल ली थी।

मैं कुछ सोचने लगा और कचहरी जाने के लिए कपड़ा पहनने लगा। स्त्री ने कहा, "यदि इसका मुकदमा तुम्हारी ही अदालत में हुआ तो?"

मैंने कहा "क्या बताऊँ?"

राष्ट्रीकरण का प्रश्न

श्री वेदानन्द, एम० कॉम, 'साहित्य-सुधाकर'

"सरकार विरले ही किसी चीज का निर्माण करती है...सरकार शेक्सपियर की कृति का एक सुन्दर संस्करण मुद्रित कर सकती है किन्तु उसे लिखवा नहीं सकती... म्यूनिसिपल बिजली-घर का शव कर्मचारीवर्ग की संपत्ति है; उसकी आत्मा (कल्पनाशक्ति) का अधिकारी स्वतंत्र व्यवसाय है।"

—प्रो० अल्फ्रेड मार्शल

"सभी प्रकार की उत्पादन-व्यवस्थाओं के तुरन्त समाजीकरण की कोई आवश्यकता नहीं है चाहे यह कभी वांछनीय ही क्यों न प्रतीत हो। यदि कोई उत्पादन-व्यवस्था समाजीकृत की जाए तथा समाजीकरण का कोई सुपरिणाम न हो तो कोई कारण नहीं है कि वह सुरक्षित ढंग से वैयक्तिक व्यवसाय के हाथों न सौंप दी जाए। उत्पादन की एक ही शाखा में ऐसे विभाग हो सकते हैं, जिनका समाजीकृत होना वांछनीय प्रतीत हो। और कुछ ऐसे हैं, जिनके लिए वैयक्तिक स्वामित्व तथा नियंत्रण ही सर्वोत्तम है। जितनी ही कोमलता से यह (विभाजन) रेखा खींची जाएगी, उतना ही अधिक क्षेत्र विभिन्न प्रयोगों तथा...सुखी होने के सुअवसर के लिए होगा।"

—जी० डी० एच० कोल

आधुनिक समाज आर्थिक असमानता का प्रतिरूप है। व्यक्तिगत लाभ की प्रेरणाशक्ति ने सर्वत्र हाहाकार मचा रखा है। दरिद्रता का लगभग सर्वत्र साम्राज्य है। राष्ट्रीय आय का अधिकतम भाग पूँजीपतियों की जेब में चला जाता है। फलतः इने-गिनों को छोड़कर देश की समग्र जनसंख्या दारिद्र्य के विकट चंगुल में पड़ी छटपटाती है। इस लाभ-प्रवृत्ति का या लाभ-प्रवृत्ति को प्रेरणा देनेवाले अवसरों का नियंत्रण या उन्मूलन आज की प्रमुख समस्या है। राष्ट्रीकरण एक ऐसी ही विधि है, जो आधुनिक औद्योगिक प्रणाली के कर्णधारों—बड़े-बड़े पूँजीपतियों—के हाथ से लेकर उत्पादन-व्यवस्था सरकार के हाथों सौंप देती है। किसी की सम्पत्ति सार्वजनिक रूप से उस देश की होनी चाहिए और किसी की नहीं—औद्योगिक प्रजातन्त्रवाद का यह मूल सूत्र है! राष्ट्रीकरण-द्वारा देश की सम्पत्ति का स्वामित्व सरकार के हाथों सौंप दिया जाता है क्योंकि सरकार ही किसी देश की पूर्ण प्रतिनिधि होती है।

अहस्तक्षेपकारिता (Laissez Faire) की नीति का अन्त

वर्तमान औद्योगिक अर्थ-प्रणाली के अभ्युदय तथा सफलता का श्रेय स्वतन्त्र व्यवसायवाद को है। इस स्वतंत्र व्यवसायवाद का आधार अहस्तक्षेपकारिता की नीति रही

है। क्विस्ने[1] तथा तुर्गो ने जिस विचार-धारा को प्रतिपादित किया, एडम स्मिथ तथा उनके अनुयायियों ने उसे वैज्ञानिक परिधान पहना दिया। मिल तथा बेंथम आदि उपयोगितावादियों ने उसे और भी संवर्द्धित तथा परिमार्जित किया। 'सरकार को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार या करने की कोई आवश्यकता नहीं है,' इस दार्शनिक सिद्धान्त को वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय रूढ़िवादी अर्थशास्त्रियों को है। इस अर्थ-प्रणाली का आधार पूर्ण प्रतियोगिता की संभाव्यता थी किन्तु रूढ़िवादी अर्थशास्त्रियों की यही सबसे बड़ी भूल थी। वास्तविक जीवन में पूर्ण-प्रतियोगिता एक कल्पना मात्र है और सार्वजनिक हित-साधन तथा वैयक्तिक हित-साधन में कोई अनुरूपता सम्भव नहीं है।

इस त्रुटिपूर्ण दार्शनिक विचारधारा ने समाज में भीषण क्षोभ फैला दिया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरकाल में उपभोक्ताओं की स्थिति अति दयनीय हो गई। फलस्वरूप चारों ओर से इसकी आलोचना होने लगी[2]। प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४-१८) में तो इस नीति की धज्जियाँ उड़ गईं तथा प्रत्येक दिशा में राष्ट्र का हस्तक्षेप होने लगा। व्यक्तिवादिता के कारण सार्वजनिक हितों की उपेक्षा स्वाभाविक ही थी। फलतः समाज में वर्ग-भावना तीव्र हो चली। परोपजीवी धनियों (बूर्जुवा क्लास) तथा निर्धन श्रमजीवियों (प्रोलीटेरियट) में वर्गयुद्ध स्पष्ट रूप धारण करने लगा। सोवियत रूस ने १९१८ में राष्ट्रीय हस्तक्षेपकारिता का वृहत्तम प्रयोग किया। तब से प्रत्येक देश में राष्ट्रीय हस्तक्षेप बढ़ता ही जा रहा है। वस्तुतः सरकार अब देशवासियों की न केवल राजनैतिक वरन् आर्थिक अभिभावक भी बन गई है।

पूँजीवाद जनतन्त्रवाद का आर्थिक प्रतिरूप है किन्तु इसके अन्तर्गत आर्थिक स्वतन्त्रता तथा समानता का अधिकार न मिल सका। अतः राजनैतिक दृष्टि से पूँजीवाद असहाय तथा असमर्थ प्रतीत हो रहा है। नैतिक दृष्टि से वैयक्तिक व्यवसाय अनुचित है क्योंकि ऐसी दशा में सामाजिक हितों की पूर्ण उपेक्षा होती है। आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र व्यवसायवाद की क्षमता तथा सामर्थ्य अब अविश्वसनीय हो गई है। भीषण मन्दी की अनन्त आवृत्ति के कारण इस अर्थ-प्रणाली से लोग निराश हो चले हैं। वस्तुतः लार्ड कींस के शब्दों में 'वर्तमान आर्थिक व्यवस्था के प्रमुख दोष पूर्ण-वृत्तिदान (Full Employment) की अक्षमता (तथा असफलता) एवं सम्पत्ति तथा आय का मनमाना और विषम वितरण है। अहस्तक्षेपकारिता की दशा में विनियोग (investment) की मनोवृत्ति में बिना क्रान्तिकारी परिवर्तन के वृत्तिभियता (employment) की भीषण अस्थिरता का रोकना असम्भव है।'[1]

सम्प्रति पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रिय आय का वितरण अतिशय विषम है। मुट्ठीभर पूँजीपति अपने श्रम के अनुपात से कहीं अधिक राष्ट्रिय आय में हिस्सा बँटाकर दिन-पर-दिन धनी होते जाते हैं, जब कि श्रमिकवर्ग दिन-पर-दिन निर्धन होता जाता है। जो सम्पत्ति श्रमजीवी अपना खून सुखाकर निर्मित करता है, उससे उसे कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं होता। उससे तो अधिकतर पूँजीपति की जेब भरती है। राष्ट्रीकरण के पश्चात् लाभ से धनिकों की जेब नहीं वरन् सरकार की जेब भरेगी। इस प्रकार लाभ सारे देश को होगा न कि केवल देश के अल्पसंख्यक धनियों को।

उद्योग-धंधों का राष्ट्रीकरण समाजवादी संस्कारों को जन्म देता है तथा इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था स्थिरता तथा समष्टि के हितों की रक्षा की ओर अग्रसर होती है। सोवियत रूस के तत्त्वदर्शियों की दृष्टि में किसी देश का राष्ट्रीकरण उसके उद्योग-धंधों के राष्ट्रीकरण से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत देशवासियों की समग्र जीवन व्यवस्था का आमूल समाजीकरण हो जाता है[2]।

साधारणतया पहले मूल उद्योगों (Key Industries)

१—फ्रांसीसी अर्थशास्त्रज्ञ

२—जैवन्स सर्वप्रथम रूढ़िवादी अर्थशास्त्रज्ञ था, जिसने सन् १८७० में इस नीति की खरी आलोचना की।

१—लार्ड जे॰ एम॰ कींस—जेनरल थियरी आव एम्प्लायमेंट, इंटरेस्ट एण्ड मनी, पृष्ठ ३२०, इंडियन जर्नल आव कामर्स (कान्फरेंस नम्बर), सितम्बर १९४८ से उद्धृत।

२—इनसाइक्लोपीडिया आव दि सोशल साइंसेज, पृष्ठ ३२४।

के राष्ट्रीकरण का प्रश्न उठता है। कारण यह है कि मूल उद्योगों-द्वारा निर्मित सामग्री अन्य उद्योगों-द्वारा प्रयुक्त की जाती है। इस प्रकार वैयक्तिक व्यवसाय के हाथ में रहने पर मूल उद्योगों-द्वारा निर्मित सामग्री लाभ के लोभ में अधिक मूल्य पर बेची जाती है। इससे अन्य उद्योग-धंधों की आय पर आघात पहुँचता है। मूल उद्योगों के राष्ट्रीकरण के फलस्वरूप सामग्रियाँ सस्ती बिकेंगी तथा श्रमिकों को अधिक मजदूरी मिलेगी। निस्सन्देह वस्तुस्थिति में सुधार होगा; किंतु चूँकि अन्य उद्योग-धंधे भी पूँजीपतियों के ही हाथ में हैं, उन्हें अनुपात से अधिक लाभ मिलता ही जाएगा। स्पष्टतः ऐसा प्रयास एकाङ्गी होगा तथा पूँजीपतियों का लाभोपार्जन बन्द न होगा। रोग की तीव्रता भले ही कम हो जाए, रोग न जाएगा। केवल पूर्ण राष्ट्रीकरण की योजना-द्वारा ही यह प्राप्त हो सकता है।

मार्क्सवादी विचारकों के मतानुसार उद्योग-धंधों तथा बैङ्कों का राष्ट्रीकरण साथ-ही-साथ होना वांछनीय है। वस्तुतः एक दूसरे का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। लेनिन के मतानुसार उद्योग-धंधों तथा बैंकों का राष्ट्रीकरण समाजवादी प्रगति का प्रथम चरण है, देश में समाजवादी क्रान्ति का अत्यावश्यक साधन है।'[१]

साधारणतया राष्ट्रिय हस्तक्षेप के तीन रूप हैं—राष्ट्र-स्वामित्व, राष्ट्रप्रबन्धन तथा राष्ट्र-नियंत्रण। तीनों ही रूप भिन्न-भिन्न श्रेणी के उद्योग-धंधों के सम्बन्ध में प्रयुक्त हो रहे हैं। कुछ उद्योग-धंधे तो ऐसे हैं, जिन पर स्वभावतया राष्ट्रिय एकाधिकार होना चाहिए। सुरक्षा-सम्बन्धी उद्योग-धंधे जैसे अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण तथा तत्सम्बन्धी अन्य सामग्रियों का उत्पादन इस श्रेणी के अन्तर्गत है। अब इन उद्योग-धंधों पर सभी देशों में राष्ट्रिय एकाधिकार हैं। इनके पश्चात् मूल उद्योगों[२] का प्रश्न आता है। सुरक्षा-सम्बन्धी उद्योग-धन्धे इन उद्योग-धंधों पर निर्भर रहते हैं। अतः मूल उद्योगों तथा बृहत् उद्योगों (Heavy industry) का भी राष्ट्र के हाथों में रहना वांछनीय प्रतीत होता है। हमारी औद्योगिक नीति के अन्तर्गत १८ बृहत् उद्योग राष्ट्रिय संरक्षण तथा नियंत्रण के अधीन रखे गए हैं। सुरक्षा-सम्बन्धी उद्योग-धंधे, परमाणु शक्ति का उत्पादन तथा नियंत्रण एवं रेलों का प्रबन्ध राष्ट्रिय एकाधिकार हैं। शेष औद्योगिक क्षेत्र में वैयक्तिक उद्योगियों के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता है। ग्रामोद्योगों का पृथक् क्षेत्र है। इनकी उन्नति के लिए सरकार विशेष सहायता तथा प्रोत्साहन देने को प्रस्तुत है।

समस्या की समीक्षा

उद्योग-धंधों का राष्ट्रीकरण समाजवादी व्यवस्था के निर्माण का प्रमुख साधन है। ऐसी दशा में बहुत सी संक्रमण-कालीन अस्थायी कठिनाइयों तथा असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

राष्ट्रीकरण के प्रति प्रथम दोष आरोपित किया जाता है कि इससे व्यक्तिगत प्रेरणा-शक्ति का लोप हो जाता है। लोगों में व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना न रहने के कारण काम को सुचारु रूप से करने के निमित्त कोई प्रलोभन नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त प्रबन्धकारिणी सत्ता के केन्द्रीकरण के कारण मानसिक शक्ति का अपरिमित नाश होता है।

प्रायः ऐसा देखा गया है कि सरकार व्यापार के क्षेत्र में पदार्पण करने पर पूरी व्यवसायी बन जाती है और कभी-कभी एक व्यवसायी के हीनतम चरित्र का प्रदर्शन करती है। अधिकार तथा उद्दंडता के वातावरण में पले रहने के कारण सरकारी कर्मचारियों का व्यवहार अप्रियकर होता है। उन्हें एक व्यापारिक जैसी योग्यता, क्रियाशीलता तथा व्यवहार-मृदुता प्राप्त करने की कोई फिक्र नहीं रहती। कर्मियों (मजदूरों) के हितों से भी उन्हें कोई वास्ता नहीं रहता। कारण यह है कि उन्हें अपनी आय में कमी होने का कोई भय ही नहीं रहता।

उद्योग-धंधों के राष्ट्रीकरण के पश्चात् व्यक्तिगत कठिनाइयों तथा असुविधाओं का समाधान होना प्रायः असम्भव हो जाता है। बहुत हुआ तो जन-सभा (पार्लियामेंट) के सदस्य महोदय ने सरकार से प्रश्न कर लिया किन्तु ऐसा अनुभव है कि इस

१—प्रो० ई० ब्रेगेल, डी० एस० सी० का लेख—लेनिन आन नेशनलाइजेशन आव इंडस्ट्री एंड बैंक्स—सोवियट वीकली, जनवरी २२, १६४८, पृष्ठ ४

२—भारत सरकार की वर्तमान औद्योगिक नीति के अनुसार मूलोद्योगों के अन्तर्गत निम्नलिखित उद्योग-धंधे आते हैं—कोयला, लोहा तथा इस्पात, वायुयान-निर्माण, पोत-निर्माण, टेलीफोन, टेलीग्राफ तथा वायरलेस एपरेटस का निर्माण तथा मिनरल आयल। दस वर्ष पश्चात् तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार ये राष्ट्रीकृत किए जाएँगे।

प्रकार कुछ होता नहीं। व्यक्तिगत उद्योग के समर्थकों का कथन है कि भागधारी (Share holder) पूर्ण अधिवेशन अपने विचार सफलतापूर्वक व्यक्त कर सकता है तथा उसे समुचित महत्ता दी जाती है।

राष्ट्र-संचालित औद्योगिक इकाई की कार्य-क्षमता तथा योग्यता अनावश्यक राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण नष्ट-प्राय हो जाती है। एक सुप्रबन्धित वैयक्तिक उद्योग के निर्देशक-गण (Board of Directors) की जैसी व्यापारिक योग्यता, क्षमता, दूरदर्शिता तथा निर्णय शक्ति का सरकारी शासन-प्रणाली में प्रायः अभाव रहता है। और यदि सरकारी कर्मचारियों में व्यापारिक योग्यता तथा अनुभव हो भी तो व्यक्तिगत प्रेरणा न रहने तथा सार्वजनिक आलोचना के भय के कारण उसका पूर्ण उपयोग भी नहीं करते। इसके अतिरिक्त 'सरकार के उत्पादन अपने हाथ में ले लेने पर उद्योग-धंधों का अनिवार्यतः केन्द्रीकरण हो जाता है। राजनीति शासन-नीति का आधार बन जाती है। एकाधिकारी पूँजीवाद की दिशाएँ उत्पन्न हो जाती हैं तथा कभी-कभी सरकार साधारण व्यवसायियों की जैसी प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करने लगती है।'[1]

औद्योगिक क्षमता बहुत कुछ शीघ्र तथा अविलम्ब निर्णय पर निर्भर रहती है। सरकारी प्रणाली के अन्तर्गत परम्परागत रूढ़ियों से छुटकारा पाना कठिन होता है। प्रो० रॉबिंस के कथनानुसार सिद्धान्ततः राष्ट्र द्वारा सम्पादित कार्यों में कर्मचारीगण न केवल बुद्धि तथा कौशल का पूर्ण उपयोग करते हैं वरन् ऐसा करने में सुदीर्घ समय भी लगाते हैं। जब तक आप धूम्रमय समिति-कक्षों में अविलम्ब निर्णय प्राप्त करने नहीं बैठते, इन धारणाओं के मूलगत दोषों का भान नहीं हो सकता।[2]

आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था में सङ्कट-प्रियता तथा सङ्कट-सहिष्णुता-दोनों ही गुणों की आवश्यकता पड़ती है। सरकार एकाधिकार या लगभग एकाधिकार के क्षेत्र के अन्तर्गत आनेवाले उद्योग-धंधों को छोड़कर अन्य उद्योगों में संकट उठाने से हिचकती है क्योंकि असफल होने पर सारे समाज को हानि उठानी पड़ेगी। वैयक्तिक व्यवसाय के अन्तर्गत लाभोपार्जन की प्रवृत्ति संकट उठाने के लिए पर्याप्त प्रेरणा देती है।

प्रायः सरकारी शासन-प्रणाली नवीन आविष्कारों तथा खोजों का उत्पादन-विधियों में उपयोग करने में अन्यमनस्कता दिखलाती है क्योंकि ऐसा करने में पुरानी मशीनों को निकाल बाहर करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अनभिज्ञ जनता की आलोचना कर्मचारियों को भय-त्रस्त किए रहती है।

नियंत्रण (control) आधुनिक जीवन में अनिवार्य दोष की तरह घर कर गया है। उद्योग-धंधों के राष्ट्रीकरण के पश्चात् तो आर्थिक क्षेत्र में नियंत्रणों की भरमार हो जाती है। नियंत्रण के पश्चात् सरकारी कर्मचारियों में अत्यन्त भ्रष्टाचार फैल जाता है। अतः कुछ आदर्शवादियों का कथन है कि नियंत्रण-प्रणाली स्वतः दोषपूर्ण है तथा असामाजिक मनोवृत्तियों को उत्प्रेरित करती है किन्तु यह धारणा बड़ी भ्रामक है। मूल दोष रोग के कारण में निहित है, रोग तो केवल उस कारण का बाह्य प्रदर्शन है। जब तक व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना समष्टि की सेवा की भावना की अपेक्षा हेय नहीं समझी जाएगी, आर्थिक जीवन विषादपूर्ण बना ही रहेगा।

सरकारी उद्योग-धंधों में संकट की मात्रा कम हो जाती है। अतः ये उद्योग-धंधे अपेक्षाकृत कम दर पर उधार ले सकते हैं। सरकार को प्रबंधक तथा कर्मी (इंजीनियर आदि) अपेक्षाकृत कम भृतियों पर मिल जाते हैं क्योंकि सरकारी नौकरी सुरक्षित तथा सम्मानपूर्ण समझी जाती है। किन्तु कम भृतियों का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण नहीं है—प्रश्न है क्रियाशीलता तथा योग्यता का। राष्ट्रीकृत उद्योग-धंधों में सुरक्षा होने के कारण कर्मचारी अनुत्तरदायी तथा अकर्मण्य हो जाते हैं।

राष्ट्रीकरण के पश्चात् कर्मी, कार्यदाता तथा श्रमिक-सङ्घों में परस्पर नए सम्पर्क स्थापित करने की समस्या सम्मुख आती है। प्रतियोगी पूँजीवादी व्यवस्था जब कभी सुयोजित समाजवादी आर्थिक प्रणाली-द्वारा अपदस्थ की जाएगी मनोवैज्ञानिक प्रतिरोध का सामना करना पड़ेगा। जैसे-जैसे नव चेतना तथा सामाजिक सेवा की भावना का प्रसार होगा, नव संस्कारों में पोषित कर्मी वर्ग का जन्म होगा और मनोवैज्ञानिक प्रतिरोध नष्ट होता जाएगा। प्रमुख समस्याएँ जो सम्मुख आती हैं, निम्नलिखित हैं—

१—देखिये प्रो० के० के० दास का लेख—आवर पालिसी ऑव नेशनलाइजेशन; इंडियन जर्नल आव कामर्स, कान्फरेंस नंबर, सितम्बर १९४८, पृष्ठ ६

२—वही।

(१) कर्मियों की प्रेरणा-शक्ति तथा कर्म-प्रलोभन का ह्रास या। और नाश; (२) श्रमिकों के शिक्षण तथा दक्ष-कर्मियों और विशेषज्ञों की समस्या तथा (३) उद्योग-धंधों की विभिन्न शाखाओं में उनका वितरण; (४) भृतियों की योजनाकारिता (Planning of wages) का प्रश्न।

इन समस्याओं को हल करने के लिए कर्मियों को नैतिक तथा भौतिक प्रलोभन देने की सबसे बड़ी आवश्यकता पड़ती है। वस्तुतः ये कर्मियों की उत्पादन शक्ति बढ़ाने तथा उत्प्रेरणा देने के सफल साधन हैं। सोवियत रूस में युद्धकालीन साम्यवाद (१९१८-१९२१) के युग में जब समग्र आर्थिक प्रणाली का पूर्ण राष्ट्रीकरण कर दिया गया तो देश में चतुर्दिक् दुर्व्यवस्था फैल गई १ विवश होकर पूँजीवाद का पुनः स्थापन करना पड़ा। पंच-वर्षीय योजनाओं के प्रारंभ के साथ ही राष्ट्र ने सुयोजित ढंग से कार्यभार अपने हाथ में ले लिया। तब से निरन्तर आर्थिक व्यवस्था प्रगति के पथ पर बढ़ती ही गई।

उत्पादन-वृद्धि के लिए रूस में नैतिक प्रलोभन विशेष रूप से सहायक रहे। वैयक्तिक लाभ की भावना का स्थान राष्ट्रिय सेवा तथा समष्टि के हितों की रक्षा की भावना ने ले लिया। कोयले की खान में काम करनेवाले एक साधारण श्रमजीवी अलेक्सी स्टाखनोव का नाम रूस में अमर हो गया है क्योंकि उसने छः घंटे में १०२ टन कोयला खोद एक 'रेकार्ड' स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् सारे रूस में स्टाखनोव आन्दोलन फैल चला। कर्मियों को नैतिक पुरस्कार राष्ट्रिय उपाधियों के रूप में दिए गए। 'हीरो ऑव दि ट्रायल' 'रेड बैनर' 'आर्डर ऑव लेनिन' इत्यादि प्रमुख उपाधियाँ थीं। इनके अतिरिक्त भौतिक पुरस्कार भी दिए गए। सन् १९३९ में पहले पहल १००,०००; ५०,००० तथा २५,००० रूबल के स्टालिन-पुरस्कार दिए गए। समाजवादी चेतना के प्रसार तथा जागरूक प्रेरणा-शक्ति के द्वारा ही राष्ट्रीकृत उद्योग-धंधों की समस्याओं का समाधान हो सकता है।

मिश्रित अर्थ-प्रणाली

उद्योग-धंधों के क्षेत्र उनके स्वभाव के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। इसी प्रकार राष्ट्र-प्रबन्धन तथा वैयक्तिक उद्योग के क्षेत्र भी निर्दिष्ट किए जा सकते हैं। विशेषतया जब कि देश आर्थिक दृष्टि से अविकसित हो। बारबारा वूटन के शब्दों में "प्रत्येक अर्थ-प्रणाली में मिश्रण है—वैयक्तिक तथा राष्ट्रिय उद्योगधंधे विभिन्न मात्राओं में एक दूसरे से संयुक्त हैं। ...कोई एक विशुद्ध प्रणाली असंभव है।" यहाँ तक कि सोवियत रूस में भी व्यक्तिगत उद्योग के लिए स्थान दिया गया है। 'लन्दन इकानामिस्ट' ने स्पष्ट कहा है, "ठीक प्रकार तथा ठीक मात्रा की योजनाकारिता तथा स्वतंत्रता उपादेय ढंग से मिश्रित करना इस शताब्दी की प्रमुख समस्या है।...निस्सन्देह कोई कारण नहीं है कि योजनाकारिता तथा स्वतंत्र

---

१. जिन महत्त्वाकांक्षाओं की प्राप्ति के उद्देश्य से सोवियत रूस में पूर्ण राष्ट्रीकरण किया गया उनकी प्राप्ति न हुई और राष्ट्रीकरण की नीति असफल हो गई। पूँजीवादी व्यवस्था के हटाए जाने पर जो समस्याएँ सम्मुख आती हैं अपने तीव्रतम रूप में प्रकट हुईं। कर्मियों के अनुशासन का आश्चर्यजनक ह्रास हुआ। अनुपस्थित तथा विलम्ब के १९१९ में सोवियत रूस के उद्योग-धंधों के ६५ कार्य-दिवसों (work-days) की हानि हुई। श्रमजीवियों की उत्पादन-शक्ति घटकर १९१३ की वार्षिक शक्ति की २८ हो गई। इन कारणों से विवश होकर लेनिन ने पार्टी के दसवें अधिवेशन में नव आर्थिक नीति की घोषणा करते हुए कहा "नव आर्थिक नीति पूँजीवाद के पुनःसंस्थापन के निमित्त एक परिवर्तन है।" इस पूँजीवाद की रूपरेखा लेनिन ने स्पष्ट बताई" हमारे मामले राष्ट्रीय पूजीवादसे तात्पर्य उस पूँजीवाद से है जिसको हम सीमाबद्ध करने में समर्थ होंगे तथा जिसका निरोध हमें ज्ञात होगा।" इस युग में नव चेतना तथा भावनाओं का प्रसार हुआ तथा प्रत्येक दिशा में उन्नति हुई। फिर पंच वर्षीय योजनाओं के प्रारंभ से इन नवीन प्रवृत्तियों ने आर्थिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। उत्पादन शक्ति में आश्चर्य जनक उन्नति हुई तथा श्रमजीवियों के अनुशासन तथा उत्तरदायित्व में विस्मयकारी परिवर्तन हुआ। सामाजिक प्रतिस्पर्द्धी (socialist emulation) का हर दिशा में प्रसार हुआ जिससे दिन-दूनी उन्नति होती गई। और आज रूस संसार की प्रमुख औद्योगिक शक्तियों में से एक है। विस्तृत विवरण के लिए देखिए एलेक्ज़ेंडर बेकोव कृत 'सोवियट इकनामिक सिस्टम'।

व्यवसाय पर आधारित अर्थ-प्रणाली क्यों न दोनों प्रणालियों (प्रतियोगी तथा केन्द्रीकृत) से योग्यतर न हो।"

इस समय बहुत से भारतीय उद्योग-धंधे अपनी शैशवावस्था में हैं। ऐसी दशा में व्यक्तिगत प्रेरणा, कौशल तथा अनुभव उनकी शीघ्र उन्नति के लिए अपरिहार्य हैं। पूर्ण राष्ट्रीकरण द्वारा ही समाजवादी व्यवस्था का निर्माण हो सकता है किन्तु ऐसी अवस्था में जब कि राष्ट्रिय आय अल्प हो, देश में दरिद्रता फैली है; समान वितरण का अर्थ दरिद्रता का वितरण होगा। वर्तमान समस्या उत्पादन की है; वितरण की नहीं।

हमारा औद्योगिक विकास विदेशियों की अधीनता तथा अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण वातावरण में हुआ। अतः औद्योगिक विकास अत्यल्प रहा। औद्योगिक दृष्टि से भारत में दोनों ही प्रकार के उद्योगों के निमित्त विस्तृत क्षेत्र पड़ा हुआ है। राष्ट्रीकरण का कोई भी अन्ध-सूत्र इस संकट का तत्काल समाधान नहीं कर सकता।

पूँजीवादी व्यवस्था रोग-ग्रस्त है। इसकी दारिद्र्यपूर्ण धनाढ्यता की विडम्बना से चतुर्दिक विक्षोभ फैला हुआ है। सभी धीरे-धीरे समाजवादी व्यवस्था की ओर अग्रसर हो रहे हैं। कोई विकासवादी प्रणाली का अनुसरण करता है—जैसा इँगलैंड इत्यादि जनतंत्रवादी देशों में हो रहा है; तो कोई क्रान्तिकारी विप्लव के द्वारा इसे प्राप्त करता है—जैसे रूस ने किया है। समस्या का समाधान तो निर्विवाद है; प्रश्न केवल व्यक्तिगत अभिरुचि तथा मान्यता का है।

चौथा प्यार

श्री 'रावी'

"बचपन और बुढ़ापा मनुष्य की उड़ती हुई, अस्थायी अवस्थाएँ हैं और उसकी स्थायी वास्तविक अवस्था जवानी ही है, और प्रेम करना ही उसका स्वभाव, पेशा, बल्कि एकमात्र काम है—यह एक ऐसा वाद या 'थ्योरी' है, जिस पर विश्वास करनेवालों में निकम्मों की संख्या अधिक और कर्मशील पुरुषों की कम निकलेगी," यह मिस्टर रायजादा की राय है।

मेरा अनुमान है कि अधिकतर पढ़े-लिखे और दुनिया में कुछ ठोस काम करनेवाले लोगों की भी यही राय होगी।

और इस वाद का विरोध करनेवाली जीती-जागती मिसालों की भी दुनिया में कमी नहीं है।

मिस्टर जोशी अगर इस प्रेम के पेशे में न पड़े होते तो आज दिन तक इस योग्य अवश्य हो गए होते कि अपनी पत्नी के लिए उसकी मन-पसन्द साड़ी और अपने लिए हर साल कम-से-कम एक ठंडा सूट खरीद सकते। अगर उनका मन किसी के प्रेम में दिनरात के अठारह घण्टे अनमना न रहता होता तो वे जरूर अपने दफ्तर में मन लगाकर छः घण्टे काम कर सकते और उनकी तनख्वाह भी सत्तर रुपए से ज्यादा होती। मिस्टर एम० अगर मिस एल्० के प्रेम में न पड़े होते तो वे घर-बार छोड़कर चिथड़े लपेटे बस्तियों की धूल न छानते, न जेल जाते और न उनका दिमाग ही खराब होता। मिस्टर ए० ने अगर मिसेज एस्० के साथ प्रेम-व्यापार में साझा न किया होता तो आज वे दुनिया के एक सुपरिचित सिंहासन पर बैठकर राज करते होते।

आप जानते हैं, ये मिस्टर ए० और मिसेज एस्० कौन हैं? एक बार मेरे कमरे में बैठे हुए पाँच मित्रों में से चार ने मेरे मुँह से इन दोनों अधूरे नामों को सुनकर पूरे नाम बता दिए थे।

तो फिर इस प्रेम के सिलसिले में ऐसे ही नतीजे आम तौर पर दुनिया के सामने हैं और इस चीज के बारे में लोगों की राय ज्यादा अच्छी नहीं है।

लेकिन इन सब बातों के होते हुए भी मिस्टर बी० की राय इस प्रेम के बहुत ही पक्ष में है और इस लेख के पहले वाक्य में जिस 'वाद' की मैंने चर्चा की है, उसमें उनका पूरा विश्वास है।

और सच तो यह है कि उस वाद में मेरा भी विश्वास हो चला है।

आप इससे कहीं यह न समझें कि मैं मिस्टर बी० का कोई पिछलगा या भक्त या कर्जदार हूँ। मिस्टर बी० के प्रति मित्रतापूर्ण सम्मान के साथ यहाँ यह बता देने में कोई हर्ज नहीं है कि मेरे बाबा ने किसी जमाने में मिस्टर बी० के बाबा और पिताजी की जो परवरिश की थी, उसी की बदौलत मिस्टर बी० की भी आज की हैसियत बनी है।

इस प्रेम के विषय में मिस्टर बी० के साथ मैंने लगातार छः महीने तक रोजाना छः-छः घण्टे तक बहस की है और इस बहस में हम दोनों ने अक्सर छोटी और बड़ी, नई और पुरानी किताबों के भी हवाले दिए हैं।

इस विषय में मिस्टर बी० की जिन बातों से मैं सहमत हूँ, उनमें से कुछ ये हैं।

१—भोजन, कपड़ा, मकान और सोसायटी यानी दूसरे लोगों का सङ्ग-साथ—ये चार मनुष्य की खास जरूरतों में मुख्य हैं।

२—आमतौर पर आदमी बिना भोजन के जीवित नहीं रह सकता, बिना कपड़े के स्वस्थ पर आराम से नहीं रह सकता, बिना मकान के सुरक्षित नहीं रह सकता और बिना दूसरों के सङ्ग-साथ के शिक्षित तथा मानसिक सुखों को समझने और भोगने के योग्य नहीं हो सकता।

३—इन चार जरूरतों में से पहली तीन के सहारे मनुष्य जीता है और उम्र पाता है और चौथी के लिए जीता है और जीने में इस चौथी का सहारा भी उसे भरपूर लेना पड़ता है। इसीलिए यह चौथी ही उसकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और न टाली जा सकनेवाली जरूरत है। (इस अन्तिम बात पर मिस्टर बी० के साथ थोड़ी-सी बहस अभी बाकी है।

४—यह सङ्ग-साथवाली चौथी जरूरत मनुष्य की इसलिए है कि उसमें प्रेम करने का स्वभाव मौजूद है और इसके लिए उसे किसी न-किसी 'दूसरे' की या थोड़े बहुत 'दूसरों' की जरूरत पड़ती है। बिना 'दूसरे' के यह स्वभाव पनप नहीं सकता, बल्कि पैदा ही नहीं हो सकता।

५—बिना इस चौथी चीज के कोई मनुष्य डाक्टर, इंजीनियर, वकील, शिक्षक, किसान, व्यापारी, सैनिक, नेता या और कुछ नहीं बन सकता। (इस सम्बन्ध में हम लोगों ने एक जंगली जाति के सिपाही का, जिसके बारे में यह दावा किया गया था कि वह किसी से प्रेम नहीं करता—निरीक्षण किया था और अन्त में बड़ी कठिनाई से यह पता लगा पाए थे कि उसका भी एक डाकू से प्रेम था, जिससे कि उसने पहले-पहल हथियार चलाना सीखा था।)

६—अगर किसी मनुष्य का ध्यान पहली तीन चीजों में ही लगा हो तो उसे वह चौथी चीज बिलकुल नहीं मिलेगी और पहली तीन चीजों की प्राप्ति भी कुछ कठिनाई और कमी के साथ होगी, और अगर किसी का ध्यान पहली तीन चीजों पर न होकर चौथी पर ही हो तो उसे चौथी चीज भरपूर मिलेगी और पहली तीन भी उसे कुछ तंगी या आसानी के साथ जरूरत भर को मिलती रहेगी।

मैं समझता हूँ कि गुफाओं में बैठकर योगाभ्यास करनेवाले महात्माओं और जङ्गलों में रहकर जानवरों का कच्चा मांस खानेवाले पशुमानवों को छोड़कर शेष सब पर ऊपर लिखी छहों बातें लागू होती हैं।

मोटे तौर पर आपको भी इन बातों में एतराज नहीं होगा।

और यह भी आपको स्वीकार होगा—उसी मोटे तौर पर ही—कि दूसरों के बीच रहने के लिए मनुष्य में प्रेम का कुछ माद्दा होना आवश्यक है।

लेकिन प्रेम बहुत तरह का होता है, जैसे माँ बेटे का प्रेम, पति-पत्नी का प्रेम, किसी युवा-युवती यानी प्रेमी-प्रेमिका का प्रेम, मित्र-मित्र का प्रेम, नातेदार-नातेदार का प्रेम, साझीदार-साझीदार का प्रेम, पड़ोसी-पड़ोसी का प्रेम, गुरु-शिष्य का प्रेम, मालिक-नौकर का प्रेम, ठग और बुद्धू का प्रेम, भूखे और भंडारी का प्रेम, पापी और पुण्यात्मा का प्रेम, कमजोर और बलवान् का प्रेम, आदि आदि।

इन प्रेमों में से साफ तौर पर कुछ अच्छे और कुछ बुरे कहे जा सकते हैं; लेकिन अलग-अलग लोगों की राय हर एक तरह के प्रेम के बारे में अलग-अलग हो सकती है।

मिस्टर लवानिया की राय में मित्र-मित्र का, मिस्टर वर्मा की राय में मा-बेटे का, मिस्टर सरीहा की राय में पति-पत्नी का, मिस्टर रोड़ा की राय में गुरु-शिष्य का,

मिस्टर सिनहा की राय में प्रेमी-प्रेमिका का, मिस्टर सारस्वत की राय में पापी और पुण्यात्मा का और मिस्टर चावला की राय में कमजोर-बलवान् का प्रेम सबसे ऊँचा है। मिस्टर भाटिया की राय में ठग और बुद्धू का, कामरेड शर्मा की राय में भूखे और भंडारी का या कमजोर और बलवान् का, मिस्टर आर्य की राय में गुरु और शिष्य का, मिस्टर शुक्ला के पिता की राय में पति-पत्नी का तथा मिस्टर अवस्थी, तहसीलदार साहब और मिस माथुर की राय में अविवाहित युवा-युवती का प्रेम सबसे बुरा है।

मिस्टर बी. ने एक बार किसी 'मूड' में कहा था कि माँ-बेटे के प्रेम से बढ़कर भयंकर और पड़ोसी पड़ोसी के प्रेम से बढ़कर कल्याणकारी और कोई प्रेम नहीं हो सकता।

ये सब राएँ कुछ भी हों, यह तय है कि प्रेम किसी-न-किसी समय हरेक के लिए वांछनीय और आवश्यक है। और आमतौर पर अपने-अपने मौकों पर हर तरह का प्रेम उचित ही कहा जा सकता है।

जीवन के गहरे और अधिक आनन्द देनेवाले सुखों की समझ-बूझ जगाने और फिर उनका रस लेने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य समाज के बीच रहे, और समाज के बीच रहने के लिए यह आवश्यक है कि वह दूसरों से अपनी समझ और उनके सुभीते के अनुसार किसी-न-किसी तरह का प्रेम करे।

मनुष्य का यह प्रेम किसी एक व्यक्ति से भी हो सकता है और अनेक से भी और सभी मनुष्यों के लिए सहज स्वाभाविक भी; यह लाभ और बदले की आशा में भी हो सकता है और बिना किसी वैसी आशा के भी; यह किसी से कुछ लेने के लिए भी हो सकता है और किसी को कुछ देने के लिए भी; यह डरते-सकुचाते और चोरी-छिपवा के रूप में भी हो सकता है और सरल और निर्भीक रूप में भी; यह मन-ही मन सुलगनेवाले धुएँ के रूप में भी हो सकता है और तेज हवा में बुझ जाने-वाले मसालरूप में भी और रात और बदली में अदृश्य हो होकर भी सदा एकरस बनी रहनेवाली सूरज की धूप के रूप में भी।

इन तरह तरह के प्रेमों में कौन सा अच्छा है और कौन बुरा, इसका मैं कोई ऐसा उत्तर नहीं दे सकता, जो बिलकुल ठीक ही हो और जिसे आप स्वीकार ही कर लें, लेकिन किस दर्जे के प्रेम में कितना मजा है, यह मैं शायद आपको किसी हद तक ठीक-ठीक बता सकता हूँ।

प्रेम का पहला दर्जा वह है, जिसमें मनुष्य को किसी दूसरे की कोई चीज पसन्द आ जाती है और वह उस चीज को अपने काम में लाना चाहता है—फिर चाहे उस दूसरे को इसमें सुख मिले चाहे दुःख मिले; इस बात की उसे परवाह नहीं होती।

दूसरा दर्जा वह होता है जब मनुष्य को किसी दूसरे की कोई चीज पसन्द आ जाती है, वह उसको अपने काम में लाना भी चाहता है और यह भी चाहता है कि ऐसा करने में उस दूसरे को कोई दुःख या हानि न हो, प्रत्युत सुख या लाभ ही हो तो अच्छा। इस दर्जे में वह यह भी चाहता है कि उसकी अपनी कोई चीज कुछ बदले के तौर पर, उस दूसरे के काम आ सके और वह बिना अपनी हानि किए उसे वह चीज दे सके तो अच्छा है। वह लेन-देन का हिसाब बराबर रखना चाहता है।

प्रेम का तीसरा दर्जा वह होता है जब मनुष्य को किसी दूसरे की कोई चीज नहीं, बल्कि स्वयं वह दूसरा ही पसन्द आ जाता है। वह इस दर्जे में उस दूसरे से कुछ लेना नहीं, बल्कि उसे अपनी अच्छी-से-अच्छी चीज देना ही चाहता है और हर तरह से उसे सुखी रखना चाहता है। इस दर्जे में चीजों और अपने-पराएपन से उसका ध्यान हटकर अपने प्रिय पर ही लग जाता है।

प्रेम का चौथा दर्जा वह होता है जब मनुष्य का वह तीसरे दर्जेवाला प्रेम किसी एक मन-पसन्द व्यक्ति के लिए ही न रहकर प्रत्येक परिचित-अपरिचित, पड़ोसी और परदेसी के लिए भी हो जाता है।

इसके आगे प्रेम के पाँचवें, छठे और सातवें दर्जे भी होते हैं लेकिन उनका मुझे कोई अनुभव नहीं है।

क्या आप यह मानने को तैयार हैं कि मेरे हिसाब से ऊपर लिखे प्रेम के चार दर्जों में से प्रत्येक में अपने ऊपर के दर्जे से कम और नीचे के दर्जे से ज्यादा आनन्द है?

मिस्टर कुशवाहा अभी अठारह साल के नौजवान ही हैं; बहुत नटखट और कुछ लोगों के लिए खतरनाक भी हैं; लेकिन इन चारों दर्जों के प्रेमों का—पहले तीन का पूरा और चौथे का थोड़ा-थोड़ा—अनुभव है। वे ऊपर की बात में मुझसे बिलकुल सहमत हैं।

अपने मकान के पासवाले आम के बाग के ठेकेदार माली से उनका प्रेम है। वह अक्सर उसके पास जा बैठते हैं और उससे मीठी-मीठी बातें करते हैं और चलते समय उससे कहते हैं—"लाना तो कल्लू दादा, उसी कलमी पेड़ के दो-चार आम तो तोड़ लाना" और कल्लू माली दो आम तोड़कर उन्हें ला देता है। मिस्टर कुशवाहा आमों को लेकर चल देते हैं। माली पीछे भुनभुनाने लगता है, "आए लाट साहब कहीं के, जब देखो आम दे दो, आम दे दो। बाप के पैसे नहीं खर्च किए जाते बच्चू से।" और उधर मिस्टर कुशवाहा अपने दोस्तों से कहते हैं—"यह कलुआ माली बड़ा खूसट है। दो आम तोड़ते इसकी नानी मरती है। इसकी कलूटी शकल से मुझे नफरत होती है। इसकी छोकरी भी चेचक के दागवाली कितनी बदशकल और कलूटी है कि देखने को जी नहीं करता। पहलेवाले माली की लौंडियाँ कितनी सुन्दर और हँसमुख थीं! फिर भी आदमी सीधा है और जिस पेड़ के आम मैं माँगता हूँ, उस पेड़ के देने में बेईमानी नहीं करता।" उधर वह माली भी जानता है कि अगर किसी दिन उसने कुँवर साहब को आम देने से इनकार किया तो दूसरे ही दिन उस पेड़ का एक भी कच्चा-पक्का आम डाल में नहीं बचेगा। माली के साथ मिस्टर कुशवाहा का यह प्रेम पहले दर्जे का प्रेम है और इसका मजा, बिना किसी झंझट और शिकायत के, करीब-करीब हर दूसरे दिन, दो मीठे आमों के रस के बराबर है।

मि० कुशवाहा को घर पर स्कूल के सवाल हल करने से बेहद नफरत है; उनमें उनका मन भी नहीं लगता और वे उनके लिए होते भी बहुत कठिन हैं। इसलिए उनका एक गरीब पड़ोसी अक्सर उनके घर आता है और उनकी 'रफ' कापी पर उन सवालों को निकाल जाता है, जिसे वह अपनी असली कापी में नकल करके अगले दिन मास्टर साहब को दिखा देते हैं। उस पड़ोसी से भी उनको प्रेम है और वह अक्सर उसे घर में खरीदकर आए हुए आमों के खाने में साझीदार बना लेते हैं। वे इस पड़ोसी लड़के की अक्सर कुछ-न-कुछ खातिर करते रहना चाहते हैं। यह उनका दूसरे दर्जे का प्रेम है और इस प्रेम में उन्हें पहले के मुकाबले ज्यादा सुख मिलता है।

उनका तीसरे दर्जे का प्रेम अपने छोटे तीन साल के चचेरे भाई से है, जो कि अभी कुछ महीने से ही उनके घर आकर रहने लगा है। वह लड़का बहुत खूबसूरत और बातूनी है। मिस्टर कुशवाहा का सबसे गहरा प्रेम शायद इस लड़के से ही है; और पड़ोस के माली से वे जो आम लाते हैं, अब इस बच्चे के लिए ही लाते हैं। यों तो आम उन्हें बहुत पसन्द हैं लेकिन उसी हालत में वह उन्हें खाना पसन्द करते हैं जब उस लड़के के खाने से वे ज्यादा हों। खाने-खेलने की हर चीज, जो उन्हें पसन्द है, वह अगर इस बच्चे के पसन्द की होती है तो वे पहले इसे ही देना चाहते हैं और उस चीज के उपभोग से ज्यादा सुख उन्हें इस बच्चे को खिलाने में मिलता है। इस प्रेम के सुख के मुकाबले पहले के दोनों सुख उनके लिए फीके हैं।

और कभी-कभी मिस्टर कुशवाहा के मन में ऐसी मौज उठती है कि अपने पसन्द की खाने-खेलने या पहनने की चीज किसी अपरिचित लड़के या बड़े को उसके माँगने पर और कभी-कभी बिना माँगे ही, उसके लिए प्रिय या जरूरी समझकर यों ही उठाकर दे देते हैं। एक बार उन्होंने अपने छोटे भाई के लिए तराशा हुआ एक आम सारे-का-सारा उठाकर पास खड़े हुए एक अपरिचित लड़के को दे दिया था। ऐसा वे कभी-कभी क्यों कर बैठते हैं, यह खुद उनकी समझ में नहीं आता लेकिन उनका कहना है कि ऐसा करने में उन्हें जो सुख मिलता है, वह और किसी बात में नहीं मिलता। वास्तव में यह उनके चौथे दर्जे के प्रेम की शुरुआत है।

मिस्टर बी० ने जब पहले-पहल मिस्टर कुशवाहा को देखा था, उस समय वे कल्लू माली के बाग में आम के एक पेड़ के नीचे खड़े हुए माली से कुछ मीठी-मीठी बातें कर रहे थे और उनका एक साथी पहले से ही उसी पेड़ के ऊपर, पत्तों में छिपा हुआ चुपचाप आम तोड़-तोड़कर अपने थैले में भर रहा था। उस समय उनके पास से निकलते हुए, उन्हें देखकर, मिस्टर बी० ने मुझसे कहा था—इस लड़के को आपने देखा? मेरा अनुमान है कि यह अपनी नौजवानी पर पहुँची हुई एक ऐसी आत्मा है, जो इस समय अपनी 'एक जन्म-सम्बन्धी' बचपन की अस्थायी अवस्था में है और जल्द ही उसे पार करके अपनी स्वाभाविक युवावस्था में पहुँचनेवाली है और उसमें ३०-४० साल रहने के बाद फिर कुछ वर्षों के लिए

एक स्थायी बुढ़ापे को पारकर अपने स्वाभाविक युवावस्था के कामों में लगेगी। इसमें क़ाफी ऊँचे दर्जे तक के प्रेम की योग्यता है। यह आत्मा औसत आदमी की आत्मा के मुक़ाबले अधिक जन्म लेकर प्रेम करना अधिक समय से सीखती आई है और अब प्रेम करना इसका स्वभाव हो गया है। आप इससे अपरिचित होकर इसको अपना मित्र बना लीजिए—आपको इस लड़के में बहुत-सी चीजें देखने और सीखने को मिलेंगी।"

और अगले ही दिन मैंने मि० कुशवाहा से जान-पहचान कर ली थी। इनमें मुझे [illegible] कुछ बड़ी चीजें उगती दिखाई दे रही हैं।

मनुष्य का चौथे दर्जे का प्रेम उनमें जाग रहा है और मनुष्य-जीवन की चौथी आवश्यकता—सङ्ग-साथ की चाह—उनके स्वभाव में भरपूर मौजूद है।

इस चौथी आवश्यकता और चौथे प्यार, और बचपन, जवानी और बुढ़ापे की तीन अवस्थाओं के पार आत्मा की जवानी की चौथी अवस्थावाली बात क्या अब आपको भी कुछ जँच रही है?

राजस्थानी भाषा और सहित्य का महत्त्व

श्री अमरचंद नाहन

राजस्थान का महत्त्व

राजस्थान भारत का सबसे बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण प्रान्त है। यहाँ का अतीत बड़ा ही उन्नत एवं गौरवपूर्ण रहा है। मुस्लिम साम्राज्य के समय तो भारतीय साहित्य, संस्कृति और कला का संरक्षण और संवर्द्धन करने का सर्वाधिक श्रेय राजस्थान को है। यहाँ के वीर-बाँकुरों से मुस्लिम साम्राज्य भी थर-थर काँपता था। यद्यपि तथाविध ऐक्य के अभाव में इस प्रान्त को भी पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी, फिर भी स्वाधीनता के लिए यदि किसी ने सर्वाधिक लोहा लिया है तो इसी प्रान्त के स्वाभिमानी एवं स्वतन्त्रताप्रेमी वीरों ने। उस समय अनीतिपूर्ण एवं अमानुषिक मुस्लिम साम्राज्य से त्राण पाने का कोई स्थान था तो वह राजस्थान ही। इसे सुरक्षित स्थान समझकर गुजरात आदि से हजारों प्राचीन ग्रंथों को जैनाचार्यों ने जैसलमेर जैसे स्थान में प्रेषित कर उन्हें सुरक्षित किया। फलतः राजस्थान में संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी अपभ्रंश, गुजराती और राजस्थानी भाषा के और विविध विषयक हस्तलिखित ग्रंथों का जितना विशाल संग्रह है, अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। भारत के अन्य स्थानों एवं विदेशों में जो भारतीय हस्तलिखित ग्रंथ पहुँचे हैं, उनमें से अधिकांश राजस्थान प्रान्त से से ही संग्रहीत हैं। रायल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल एवं पूने के भांडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट में हमारे प्राचीन साहित्य की जो अनुपम निधि सुरक्षित है, उसमें राजस्थान की बहुत बड़ी देन है। लाखों हस्तलिखित प्रतियों के प्रान्त से बाहर चले जाने व नष्ट हो जाने पर भी आज राजस्थान में जैसा महान् संग्रह है, वह राजस्थान के लिए कम गौरव की बात नहीं। बीकानेर वैसे एक छोटा सा राज्य है पर बीकानेर शहर में ही ५० हजार से ऊपर हस्तलिखित प्रतियों का संग्रह है जिनमें से अनूपसंस्कृत लाइब्रेरी में १२०००, विविध जैन ज्ञानभंडारों में २५०००, हमारे संग्रहालय में १५००० हस्तलिखित प्रतियाँ विद्यमान हैं। इन संग्रहालयों में सहस्राधिक ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं, जिनकी दूसरी प्रति विश्व में उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार जैसलमेर, जोधपुर, उदयपुर, जयपुर, अलवर तथा अन्य सभी राज्यों में लक्षाधिक हस्तलिखित प्रतियाँ संरक्षित हैं। इनमें से जैसलमेर के जैन ज्ञान भंडार तो विश्व-विश्रुत हैं। नागरी लिपि में लिखित ताड़पत्रीय प्राचीन प्रतियों का इतना विशाल एवं सुन्दर संग्रह पाटण को छोड़कर भारत में अन्यत्र कहीं नहीं है। थोड़े वर्षों पूर्व राजस्थान के गाँव गाँव और घर-घर में आपको ऐसे भारतीय अनमोल साहित्य का आदर्श संग्रह मिलता था पर, हमारी उपेक्षावश बहुत कुछ नष्ट हो रहा है। यदि हमारी इसी प्रकार उदासीनता बनी रही तो अपने स्मृति मूर्तियों व पूर्वजों की बची-खुची असाधारण ज्ञान-संपत्ति से हम सदा के लिए वंचित हो जाएँगे। वर्त्तमान

की चकाचौंध में यद्यपि हमें यह ह्रास विशेष नहीं अखर रहा है पर हमारी भावी सन्तान हमें इस उपेक्षा के लिए कोसे बिना नहीं रहेगी। हर्ष है कि राजस्थान विश्व विद्यापीठ उदयपुर के शोध संस्था ने हमारे प्राचीन साहित्य और इतिहास के अन्वेषण में आंशिक योगदान किया है पर यह कार्य अति विशाल है। अतः इस परमावश्यक कार्य की ओर आप लोगों का ध्यान विशेष आकर्षित करता हूँ।

क्षेत्र विस्तार, जनसंख्या का आधिक्य, शौर्य एवं साहित्यिक महत्त्व के साथ-साथ राजस्थान का महत्त्व कला की दृष्टि से भी अजोड़ है। शिल्प स्थापत्य के अनुपम प्रतीक-पुराने मंदिर, प्रासाद, दुर्ग आदि जितने राजस्थान में मिलेंगे, अन्यत्र अप्राप्य हैं। आबू के कलापूर्ण जैन मंदिरों व चित्तौड़ के कीर्तिस्तंभ आदि की तुलना क्या कोई अन्य प्रान्त का स्थापत्य कर सकता है? यहाँ के दुर्ग इतने सुदृढ़ और भव्य हैं कि संसार में अपनी सानी नहीं रखते। राजस्थानी चित्रकला की तो निराली विशेषता है, जिस पर सभी कलामर्मज्ञ मुग्ध हैं। संख्या की दृष्टि से भी आपको इतने अधिक प्राचीन चित्र राजस्थान में मिलेंगे, अन्यत्र दुर्लभ हैं। मुस्लिम साम्राज्य के पतनकाल में उनके आश्रित सहस्रों कलाकारों को राजस्थान में ही आश्रय मिला था। मेरे नम्र मतानुसार अभी तक राजस्थानी चित्रकला के विषय में हमारी जानकारी अत्यन्त सीमित है और उसके अध्ययन एवं अन्वेषण की अत्यधिक आवश्यकता है। अभी तक सहस्रों राजस्थानी चित्र हमारे राजघरानों, ठिकानों, पुराने खानदानों व जैन ज्ञान भंडारों में अज्ञात-रूप में पड़े हैं, जिनके प्रकाश में आने पर हमें अपनी चित्र-कला का वास्तविक महत्त्व और भी सुचारु रूप से विदित हो सकेगा। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर व अलवर में राजस्थानी चित्रों का अनुपम संग्रह है। जयपुर में तो सैकड़ों चित्र आज भी खरीदे जा सकते हैं। हमें अपनी चित्रकला को विशेष उन्नत बनाने की ओर शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए। म्यूजियमों के अतिरिक्त व्यक्तिगत राजाओं एवं विशिष्ट व्यक्तियों के पास चित्रों का जो महान् संग्रह है, उन्हें देखने तक का सुअवसर हमारे कलामर्मज्ञों को अब तक नहीं मिला है। अतः उन्हें प्रकाश में लाना भी राजस्थान-निवासियों का आवश्यक कर्त्तव्य है।

राजस्थान वीरों की लीलाभूमि, सन्तों की साधना-स्थली, सतियों की समाधिभूमि, कला-उन्नायकों का क्रीड़ा-स्थल, साहित्य-स्रष्टाओं का पुण्यक्षेत्र, व्यापारकुशल एवं दानवीरों की जन्मभूमि होने से अत्यन्त महत्त्व-शाली प्रदेश है। उसके गौरव को घटाना या बढ़ाना उसके सपूतों के हाथ है। हमारे पूर्वजों ने तो हमारे लिए अनेक गौरव व अनुभव करने योग्य कार्य कर दिखाए, अब हमारी बारी है। वर्त्तमान समय हमारी परीक्षा का समय है। हमारे भाग्य से राजस्थान प्रान्त बन चुका है। शासन सत्ता भी हमारे हाथ में आ गई है। अब दूसरों को दोष देने का समय नहीं रहा। हमें जागृत होकर कर्त्तव्य क्षेत्र में डट जाना ही श्रेयस्कर है पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि हममें अपने प्रान्त के उत्थान के प्रति जैसी चाहिए, ममता नजर नहीं आती। हमारे श्रीमान् धीमान् बन्धुओं ने केवल पैसा संग्रह करने में एकांगी जीवन को अपना सर्वस्व समझ रखा है। मुझे तो भय इस बात का हो रहा है कि कहीं हम अपने पूर्वजों की विरासत साहित्य, संस्कृति और कला में हम पिछड़ न जाएँ। मैं प्रान्त के प्रत्येक निवासी से अपील करता हूँ कि वे अभी से सचेत होकर अपना कर्त्तव्य-पथ निर्द्धारित करें एवं तत्परता, उत्साह और कर्मण्यता से अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाने एवं मातृ-भूमि के सच्चे सपूत कहलाने के अधिकारी सिद्ध होने का प्रयत्न करें।

राजस्थानी भाषा का महत्त्व

प्रकृति के नियमानुसार विश्व की समस्त वस्तुएँ परिवर्त्तनशील हैं। प्रत्येक मनुष्य के रूप, रंग, आचार-विचार, भाषा, ध्वनि में कुछ न कुछ भिन्नता पाई जाती है। भाषा में भी परिवर्तन होता रहता है। भारतवर्ष के सर्वप्राचीन साहित्य—वेदों की भाषा—वैदिक संस्कृत —आज की संस्कृत से बहुत ही भिन्न है। इसी प्रकार प्राकृत के भी देश व काल के भेद से कई रूपान्तर हो गए हैं। उसके पश्चात् अपभ्रंश लोकभाषा हुई और उससे वर्त्तमान अनेक प्रान्तीय भाषाओं की धारा प्रवाहित हो चली। हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओं के क्रमिक विकाश का अध्ययन करने पर उनमें भी बहुत-सा परिवर्तन नजर आता है। विक्रम सम्वत् ८३५ में रचित 'कुवलयमाला' नामक जैन कथा ग्रंथ में तत्कालीन भारत की १६ प्रान्तीय भाषाओं की विशेषताओं के सूचक

महत्त्वपूर्ण उद्धरण पाए जाते हैं। उनके अनुसार हिन्दी भाषा मध्य-प्रदेश और पूर्वीय प्रान्त की बोली थी। राजस्थान की प्रधान भाषा का नाम मरु भाषा था। परवर्त्ती कवियों ने भी इसी नाम से राजस्थानी को सम्बोधित किया है। इसका राजस्थानी नामकरण आधुनिक है। जब से अंग्रेजों ने इस प्रान्त का नाम राजस्थान-राजपूताना प्रसिद्ध किया तभी से यहाँ की भाषा भी राजस्थानी नाम से प्रसिद्ध हुई। राजस्थानी का अपभ्रंश से अति प्राचीन और घनिष्ठ सम्बन्ध है। सोलहवीं शती से पूर्व इसका विस्तार गुजरात में भी पाया जाता है। पन्द्रहवीं शती तक की गुजरात एवं राजस्थान की रचनाओं की भाषा एक ही है। गुजरात प्रान्तवाले उन रचनाओं को जूनी गुजराती बतलाते हैं एवं राजस्थानी के विद्वान् इसे प्राचीन राजस्थानी के नाम से संबोधित करते हैं। सोलहवीं शती से इन दोनों भाषाओं के पृथक्करण का सूत्रपात हुआ और सतरहवीं में इन दोनों का अन्तर सर्वथा स्पष्ट हो गया। फिर भी गुजरात में चारण कवि बहुत से हुए हैं—और आज भी हैं। उन्होंने राजस्थानी की प्रधान साहित्यिक भाषा डिंगल को अपनाए रखा है।

राजस्थानी भाषा का शब्द-भंडार बहुत समृद्ध है। स्वर्गीय पं० रामकर्णजी मासोपा ने डिंगल शब्दकोश का काम प्रारंभ किया था और उसे विस्तृत एवं सुन्दर रूप से प्रकाशित करने का कार्य बीकानेर के सादूल राजस्थान रिसर्च इन्स्टीट्यूट द्वारा स्वामी नरोत्तमदास जी के तत्त्वावधान में चल रहा है। अनुमान किया जाता है कि यह कोष लक्षाधिक शब्दों का आकर होगा। राजस्थानी भाषा कितनी सजीव, स्वाभाविक, ओजपूर्ण और भावों के सुचारु व्यक्तीकरण में समर्थ है, इसका पता इसकी हजारों कहावतों व मुहाविरों से भी भली-भाँति मिल जाता है।

राजस्थानी कहावतों के संग्रह का कार्य कलकत्ते की राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, बीकानेर की राजस्थानी साहित्य पीठ, उदयपुर के हिन्दी विद्यापीठ और पिलानी में हुआ है, जिससे करीब दस हजार कहावतें संग्रहीत हुई हैं। राजस्थानी-साहित्य-परिषद् और हिन्दी-विद्यापीठ द्वारा कहावतों के दो संग्रह-ग्रंथ भी प्रकाश में आए हैं। राजस्थानी के मुहाविरों का संग्रहकार्य माननीय पं० मुरलीधर जी व्यास बड़ी लगन से कर रहे हैं। लगभग ३-४ हजार मुहावरों का अब तक संग्रह हो चुका है। व्यास जी की महत्त्वाकांक्षा तो एक लाख मुहावरों को संग्रह करने की है। राजस्थानी के लिए यह बड़े गौरव और चमत्कार की बात है। व्यास जी ने केवल आँख-संबन्धी १४० मुहावरों को राजस्थानी में प्रकाशित किया है। मेरे ध्यान से इतने अधिक आँख सम्बन्धी मुहाविरे अन्य भाषाओं में भी मिलने कठिन हैं और इससे राजस्थानी भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति का सुन्दर परिचय मिलता है।

राजस्थानी भाषा मुर्दों एवं कायरों में प्राण संचरण करने के लिए संजीवनी बूटी है। इसका प्रभाव इतना सचोट और मनोवैज्ञानिक है कि इसकी रचना—गीतों के श्रवण मात्र से लाखों वीरों ने स्वतंत्रता और स्वामिभक्ति की बलिवेदी पर प्राण निछावर कर दिए। हतोत्साह महाराणा प्रताप में राठौर पृथ्वीराज की कविता ने जो जादू-भरा जीवन फूँका, वह राजस्थान का मस्तक ऊँचा करने को पर्याप्त है। इसी शताब्दी में बारहठ केशरीसिंह जी के दोहों ने उसी चमत्कार की पुनरावृत्ति कर दिखाई। महाराणा फतैसिंह जी दिल्ली दरबार में सम्मिलित होने जा रहे थे कि कवि केशरीसिंह जी के ओजपूर्ण "चेतावणी रा चूंगट्या" उन्हें स्पेशल ट्रेन में मिले। उसे पढ़ते ही महाराणा को अपने वंश का प्राचीन गौरव स्मरण हो आया और फरमाया कि यह पत्र यदि पहले मिल जाता तो मैं रवाना ही नहीं होता, खैर मार्ग से लौटना ठीक नहीं, दिल्ली पहुँचकर विचार करूँगा। इन दोहों ने महाराणा पर जो असर किया, वह सर्वविदित है। दिल्ली-दरबार में महाराणा की कुरसी खाली रही। सन्तों ने इसी भाषा में जनता को नैतिकता का पाठ पढ़ाकर लोक-जीवन को उच्चस्तर पर उठाया। महाराणा प्रताप और वीर दुर्गादास की यह मातृभाषा है। प्रेमगैली मीराँ ने इसी भाषा में अपनी स्वर-लहरी को प्रसारित किया था। भक्तिविह्वल मीरा के भजन आज राजस्थान ही में क्यों, समूचे भारत में बड़े आनन्द और उत्साह के साथ गाए जाते हैं। राजस्थान के महान् कवियों और विद्वानों द्वारा संचित ज्ञान, धन एवं संस्कृति को सुरक्षित रखनेवाली यह प्राणवान और प्रेरणादायक अमर भाषा है।

राजस्थान भाषा भाषियों की संख्या १॥ करोड़ के लगभग है और इसका साहित्य अति समृद्ध है। भारत के प्रधान भाषा-भाषियों की जनसंख्या की दृष्टि से राजस्थानी का ७ वाँ स्थान और विश्व की भाषाओं में २२वाँ

है। इसकी प्रधानतया ४ शाखाएँ है १—मारवाड़ी, २—ढूंढाड़ी-हाड़ोती, ३—मेवाती, ४—मालवी। इसके उपभेद वणजारी, गूजरी, भीली व पहाड़ी हैं। राजस्थानी भाषा की चारों शाखाओं में भूमि विस्तार एवं साहित्यिक दृष्टि से मारवाड़ी बोली ही विशेष महत्त्वपूर्ण है। गुजराती का विकास भी प्राचीन मरुभाषा से हुआ बतलाया जाता है।

राजस्थानी में चारण कवियों की प्रधान साहित्यिक भाषा डिंगल है। जैन साहित्य एवं लोकसाहित्य बोलचाल की मरुभाषा में रचा गया है। कई लोग डिंगल को ही राजस्थानी का अपर नाम बतलाते हैं पर उन्हें राजस्थानी साहित्य से पूर्ण परिचय न होने के कारण ही यह भ्रम हुआ है। बोलचाल की मरुभाषा में जैन एवं लोकसाहित्य का परिमाण लाखों श्लोकों का है। वास्तव में डिंगल राजस्थान के एक वर्ग-विशेष की शैलीमात्र है। डिंगल नाम भी ज्यादा पुराना नहीं है।

प्रत्येक प्रान्त की अपनी भाषा है और उसमें शिक्षा-प्रचार व साहित्य-निर्माण निरन्तर होता रहता है। प्रान्त-वासियों को अपनी भाषा और साहित्य पर गौरव होता है पर अत्यंत खेद के साथ कहना पड़ता है कि राजस्थान का यह दुर्भाग्य है कि इसकी भाषा अपने ही सपूतों से समादृत नहीं है। कई लोगों का तो राजस्थानी के प्रचार से हिन्दी का अहित होने का अंदेशा है पर यह निरा भ्रम है, राजस्थान ने अपनी भाषा में साहित्य निर्माण करते हुए भी हिन्दी को कभी नहीं भुलाया। हिन्दी की सेवा में राजस्थान किसी भी प्रान्त से पीछे नहीं रहा है।

राजस्थानी साहित्य का महत्त्व

साहित्य का समाज के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। उसे समाज का प्रतिविम्ब या सांस्कृतिक रूप ही कह सकते हैं। साहित्य लोकजीवन को प्रेरणा देनेवाला शक्ति-शाली इंजन है। किसी भी समाज के सांस्कृतिक स्तर को मापने के लिए साहित्य ही उसका थर्मामीटर है। एक विद्वान् ने कहा है कि किसी भी समाज को नष्ट करना हो तो उसके साहित्य को पहले नष्ट कर डालो उसके न रहने से समाज अपने आप छिन्न-भिन्न एवं विलीन हो जाएगा। इसमें कोई शक नहीं कि राजस्थान का साहित्य अत्यन्त विशाल, सर्वाङ्गीण और महत्त्वपूर्ण है। प्रान्त के प्राचीन गौरव एवं सांस्कृतिक विकास का पता उससे भली भाँति मिल जाता है परन्तु वर्तमान में इस अनमोल साहित्य के प्रति जो उपेक्षा नजर आती है, वह बहुत ही अखरनेवाली है।

किसी भी साहित्य के महत्त्व का मूल्याङ्कन करने के लिए उसकी विविधता, विशालता, उपयोगिता और असाधारणता ही उसके मापदण्ड हैं। राजस्थानी साहित्य इन सभी बातों में पूर्ण है। वह विशाल होने के साथ-साथ सर्वाङ्गीण, जीवन में प्रेरणा व स्फूर्ति देनेवाला और उच्चस्तर है। संख्या की दृष्टि से छोटी बड़ी हजारों रचनाओं से यह समृद्ध है। वह गद्य और पद्य में सभी विषयों, नवरसों व विविध प्रकारों का पाया जाता है। प्राचीन गद्य की प्रचुर उपलब्धि एवं वीर-रस का प्राधान्य ये दो बातें अन्य भाषाओं की तुलना में राजस्थानी का अत्यन्त वैशिष्ट्य रखती हैं। हिन्दी-भाषा में प्रचीन गद्य की बड़ी कमी है पर राजस्थानी में १४ वीं शती से निरन्तर गद्य-रचना होती रही है। गद्य में भी वचनिकाशैली बड़ी निराली है, वास्तव में यह पद्यानुकारी गद्य है। वैसे बातों-ख्यातों व उपयोगी ग्रन्थों के अनुवाद के रूप में राजस्थानी प्रचुर गद्य-ग्रन्थरत्नों का समुद्र है। राजस्थानी पद्य में भी वेण-सगाई और डिंगल गीतों की शैली अपनी निजी विशेषता रखती है। चारण कवियों ने दूहादि छंदों में वयण सगाई के नियमों को बड़ी कठोरता से निभाया है। डिंगल गीत राजस्थानी साहित्य की अपूर्व सम्पत्ति है। ये हजारों की संख्या में पाए जाते हैं। ये गाए न जाने पर विशेष लय से पढ़े जाते हैं। इनकी एक विशेषता यह है कि एक गीत के सभी दोहलों में पहले पद का भाव भंग्यन्तर से कवि कहता चला जाता है। और सुकवि पुनरुक्ति दोष का आभास तक नहीं होने देता। "दूहा" राजस्थानी का सबसे प्रधान छंद है, इसमें सभी रस प्रचुरता से पाए जाते हैं। ढोला मारू रा दोहा, वीर सतसई और अनेक प्रेम काव्यों के अतिरिक्त फुटकर दोहों की संख्या भी संग्रह करने पर लाख तक पहुँच सकती है। स्वामी नरोत्तमदास जी ने कई वर्ष पूर्व "राजस्थान का दूहा" नाम से दोहों का संग्रह प्रकाशित किया था, जिसके कई दोहे महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी को सुनाने पर जो आह्लाद और आश्चर्य उन्होंने व्यक्त किया था, वह आज भी हमारी स्मृति में ताजा है।

राजस्थानी साहित्य की एक विशेषता उसमें इतिहास-सामग्री का प्राचुर्य है। बहुत से ऐतिहासिक काव्यों व ख्यालों के अतिरिक्त डिंगल गीतों में भी हजारों व्यक्तियों के कार्य-कलापों को स्थायित्व देने का प्रयत्न किया गया है पर अभी तक इन समस्त साधनों—विशेषतः डिंगल गीतों का उपयोग हमारे इतिहास-ग्रन्थों में बहुत ही कम हुआ है। डिंगल गीतों का संग्रह पहले 'महाराणासुयश-प्रकाश' में प्रकाशित हुआ था, अभी प्रो० स्वामी जी संपादित डिंगल वीरगीत और गीत-मंजरी सादूल राजस्थानी ग्रंथमाला से प्रकाशित हुए हैं। राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर के शोध-संस्थान डिंगल गीतों का अच्छा संग्रह किया है। श्रीयुत सीताराम जी लालस ने सैकड़ों गीतों का सम्पादन भी किया है।

राजस्थानी बातें सैकड़ों की संख्या में पाई जाती हैं। उनके कहने का ढंग भी निराला एवं राजस्थानी शान के अनुरूप है। बात कहनेवाला व्यक्ति कल्पित घटनाओं का भी इतना सजीव और सरस वर्णन करता है कि सुनते-सुनते समूची रात इतनी शीघ्रता से खतम हो जाती है कि श्रोता लोग तनिक भी श्रम अनुभव नहीं करते। श्रोता के हूँकारों के साथ कथक का उत्साह द्विगुणित हो जाता है और ऐसे अलंकार व अनुप्रास की परम्परा चल पड़ती है, जिसमें अनुपम साहित्यिक छटा का आस्वादन अनुभूत होता है। रामदेव जी, पाबू जी आदि के जमों में पवाड़े गाए जाते हैं। कृषक लोग तेजा का प्रसिद्ध गीत जब उच्च स्वर से मस्त होकर आलापते हैं तो सारे दुख-दर्द विस्मृत होकर अतीव आनंद छलक उठता है। वर्तमान पत्रिकाओं व ग्रन्थों में प्रकाशित कहानियाँ व फोनोग्राफ रेडियो के संगीत में उस अद्भुत रस-प्रवाह का आनंद हमें नसीब कहाँ? सच्चा सुखी जीवन तो उन श्रमजीवियों का है, जिनमें कोई दिखाव नहीं, अपितु स्वाभाविक रस-निर्झर निरन्तर प्रवाहित दृग्गोचर होता है।

प्राचीन हस्तलिखित राजस्थानी साहित्य को उनके स्रष्टाओं के वर्गीकरणानुसार प्रधानतया पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है—१ चारणी साहित्य, २ जैन साहित्य, ३ ब्राह्मणी साहित्य, ४ सन्त साहित्य, ५ लोक साहित्य। चारण, बारहट, भाट, ढाढी, डूम, ढोली आदि ने जो साहित्य-निर्माण किया है, वह चारणी साहित्य में समाविष्ट है। उसकी भाषा प्रधानतया डिंगल है और वह मुख्यतः वीररसात्मक है। चारण लोग केवल वाणी के विश्वासी ही नहीं पर तलवार के धनी भी थे। वीरों को रणाङ्गण में प्रोत्साहित करना; दानवीर, शूरवीर व सतियों के सुयश को अमर बनाना उनके साहित्य-निर्माण का प्रधान उद्देश्य था। चारण जाति राजपूतों की आश्रित थी। चारण इतिहासकार व राजकवि भी थे। राज्याश्रय पाकर काव्य बनाना उनका पेशा हो गया था। फलतः उनमें जन्मजात कवि उत्पन्न होते और राजाओं के गुणानुवाद कर सम्मान, धन और जागीर पाते थे। राजाओं के सम्बन्धी ऐतिहासिक काव्यों के अतिरिक्त कई भक्तिकाव्य भी उनके पाए जाते हैं, जैसे—रामरासो, नागदमण, रुक्मिणीहरण, महादेव-पार्वती-वेलि, हरिरस। इनके रचित दोहे, सोरठे, कुंडलियाँ, छप्पय, नाटक, धमाज, झूलणा आदि भी पर्याप्त प्रमाण में पाए जाते हैं। जैन यतियों को छोड़कर चारणों के सिवाय किसी राजस्थानीय ने इतना बड़ा साहित्य-निर्माण नहीं किया। राज्याश्रित होने से उनकी कविता में अतिशयोक्ति व चाटुकारिता का आना स्वाभाविक है, पर कई चारण कवि बड़े निर्भीक एवं आत्माभिमानी हुए, जिन्होंने आश्रयदाताओं को फटकारने व उनकी कड़ी आलोचना करने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं की।

राजस्थानी साहित्य की महान् सेवा करनेवालों में चारणों के समान जैनयतियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी भाषा बोल-चाल की होने के कारण जैनों-द्वारा रचित राजस्थानी साहित्य सुगम एवं सर्वजनसुलभ है। राजस्थानी जैन साहित्य का परिमाण १०-१२ लाख श्लोक से कम नहीं होगा। जैन विद्वानों ने धार्मिक एवं जन-साधारण के उपयोगी ग्रंथों का गद्य में अनुवाद किया एवं कथा-चरितों के रास चौपाई आदि प्रचुर ग्रंथ बनाए। स्तव-नसझायादि भक्ति, नीति एवं वैराग्य की फुटकर रचनाओं का भी बहुत आधिक्य है। रास चौपाई आदि में उन्होंने देशी लोकगीतों की चालों को अपनाकर उनको बहुत अधिक लोकप्रिय बना दिया। हमारे प्राचीन हजारों लोकगीतों का पता इन रासों में प्रयुक्त देशीयों से ही चलता है। लोक-कथाओं के सम्बन्ध में भी इन्होंने अनेक ग्रंथों का निर्माण किया। साम्प्रदायिक रचना के साथ इन्होंने सर्वजनोपयोगी रचनाओं की ओर भी बराबर ध्यान दिया है। राजस्थानी साहित्य के संरक्षण में भी जैनयतियों का बड़ा हाथ है। जैन यति निरन्तर भ्रमणशील थे और गुजरात एवं राज-

स्थान में तो उनका समानरूप से विहार होता था। अतः उनकी भाषा में गुजराती का प्रभाव होना स्वाभाविक है!

ब्राह्मणी साहित्य अधिकतर पुराणादि धार्मिक ग्रन्थों के एवं वैद्यक, ज्योतिषादि के ग्रन्थों के अनुवाद रूप में पाया जाता है। संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद कर उन्होंने उन्हें जनसाधारण तक पहुँचाने का अच्छा प्रयत्न किया है।

राजस्थान में अनेक उच्च कोटि के भक्त व संत हो गए हैं—नाथपंथी, दादूपंथी, रामस्नेही, निरंजनी आदि। अनेक सम्प्रदायों के आज भी राजस्थान के अनेक स्थानों में आश्रम हैं। वहाँ के संतों ने धर्म एवं नीति-सम्बन्धी रचनाओं-द्वारा जनता के सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाने का प्रशंसनीय उद्योग किया। यद्यपि संतों की प्रधान भाषा हिन्दी है पर राजस्थान-निवासी होने से उनकी रचनाओं में राजस्थानी भाषा का भी सम्मिश्रण पाया जाता है। कई रचनाएँ राजस्थानी में भी रची गई हैं।

हमारा लोक-साहित्य बहुत ही सरस एवं विशाल है। मौखिक होने से इसका बहुत अधिक विनाश हुआ। नए-नए गीत प्रचलित हुए, पुराने भुलाए जाते रहे, फिर भी हजारों लोकगीत, सैकड़ों कहानियाँ, हजारों दोहों के अतिरिक्त डूँगजी जवारजीरो गीत, जीणमातारोगीत तेजोरोगीत, पाबूजीरा पवाड़े आदि पाए जाते हैं। लोक-जीवन का इनसे सीधा सम्बंध है। जीणमातारोगीत व पाबूजीरा पवाड़ा तो सुनने से करुणा व वात्सल्य रस छलक उठता है। यह मौखिक साहित्य इस शताब्दी में बड़ी तेजी से लुप्त होता जा रहा है। बड़े-बूढ़ों के देहावसान के साथ इनकी समाप्ति समझिए; अतः इनके संग्रह करने का सबसे अधिक प्रयत्न करना आवश्यक है; अन्यथा थोड़े वर्षों में ही हमारी यह अमूल्य साहित्य सम्पत्ति सदा के लिए बिदा हो जाएगी।

राजस्थान में आज भी साहित्यकारों व कलाकारों की कमी नहीं पर उनको संगठित करना आवश्यक है। सबसे अधिक कमी उनको उचित प्रोत्साहन न मिलना है।

हमारे श्रीमान् राजस्थानी बन्धु यदि उन्हें समुचित प्रोत्साहन दें तो प्रान्त का उत्थान बहुत शीघ्रता से हो सकता है। मैं अपने धनकुबेरों से अनुरोध करूँगा कि वे साहित्य, संस्कृति, एवं कला की ओर भी ध्यान दें। मैं विशेष रूप से अपने छात्रों से भी अपने सांस्कृतिक यश में सहयोग देने की अपील करता हूँ। आशा है, कलकत्ता जैसी महानगरी से, जहाँ राजस्थान के हजारों महाभक्त निवास करते हैं, राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं कला के सम्बंध में रचनात्मक कार्य का शीघ्र ही प्रारंभ होगा।

राजस्थानी साहित्य के सम्बन्ध में प्रख्यात विद्वानों के अभिमतः—

१ महामना पं० मदनमोहन मालवीय ने कहा थाः—

"राजस्थानी वीरों की भाषा है। राजस्थानी का साहित्य वीर साहित्य है। संसार के साहित्य में उसका निराला स्थान है। वर्त्तमान काल के भारतीय नवयुवकों के लिए उसका अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए। इस प्राणभरे साहित्य और उसकी भाषा के उद्धार का कार्य अत्यन्त आवश्यक है। मैं उस दिन की उत्सुक प्रतीक्षा में हूँ जब हिन्दू विश्वविद्यालय में राजस्थानी का सर्वांगपूर्ण विभाग स्थापित हो जाएगा, जिससे भाषा और साहित्य की खोज तथा अध्ययन-अध्यापन का पूर्ण प्रबन्ध रहेगा।"

२ विश्व-कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने राजस्थानी के गीतों को सुनकर निम्नोक्त उद्गार व्यक्त किए थेः—

"कुछ समय पहले कलकत्ते में मेरे कुछ राजस्थानी मित्रों ने रण सम्बन्धी कुछ राजस्थानी गीत सुनाए। मैं तो उनको सुनकर मुग्ध हो गया। उन गीतों में कितनी सरसता, सहृदयता और भावुकता है। वे लोगों के स्वाभाविक उद्गार हैं। मैं तो उनको संत साहित्य से भी उत्कृष्ट समझता हूँ। क्या ही अच्छा हो यदि ये गीत प्रकाशित किये जाएँ। वे गीत संसार के किसी भी साहित्य और भाषा के गौरव को बढ़ा सकते हैं। ईश्वर ने चाहा तो मैं उनको शान्ति-निकेतन के हिन्दी-भवन-द्वारा प्रकाशित करवाऊँगा। राजस्थानी साहित्य को भारत की जनता के सामने लाने की मैं हिन्दी-भवन-द्वारा पूर्ण कोशिश करूँगा।"

३ श्रीयुत आशुतोष मुखर्जीः—

"साहित्य की दृष्टि से भी चारणी कृतियाँ बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। इनका अपना साहित्य अमूल्य है। और कुल मिलाकर वे ऐसी साहित्य-निधि हैं, जो अधिक प्रकाश में आने पर आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्यों में अवश्य ही अत्यन्त महत्त्व का स्थान प्राप्त करेंगी।"

प्राचीन हिन्दी साहित्य, जो वीरगाथाकालीन साहित्य के नाम से हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रसिद्ध

है, सभी राजस्थान के साहित्यकारों की देन है। वीसलदेव रासो, खुम्मान रासो की तो भाषा भी राजस्थानी है। पृथ्वीराज रासो में डिंगल का प्रभाव स्पष्ट है। सुन्दरदासादि राजस्थान के संतों का बहुत बड़ा साहित्य हिन्दी भाषा में है। राजस्थान के अनेक नरेशों ने हिन्दी में स्वयं रचनाएँ कीं व अनेक हिन्दी सुकवियों को आश्रय देकर हिन्दी-साहित्य के निर्माण में उन्हें प्रोत्साहित किया, जिसका परिचय स्वयं सूर्यकरण जी पारीक के निबंध से भली-भाँति मिल जाता है, जो कई वर्ष पूर्व 'वीणा' में प्रकाशित हुआ था। इधर नवीन अन्वेषण से और भी अनेक राजस्थान के कवियों के रचित हिन्दी ग्रन्थों का पता चला है। उदयपुर के हिन्दी विद्यापीठसे प्रकाशित मेरे द्वारा सम्पादित 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' भाग २ से विदित होता है कि राजस्थान के विभिन्न संग्रहालयों में सैकड़ों ऐसे हिन्दी ग्रन्थ सुरक्षित हैं, जिनकी प्रतियाँ अन्यत्र अप्राप्य हैं; अर्थात् हिन्दी साहित्य-निर्माण के साथ-साथ उसके विशिष्ट संरक्षण में भी राजस्थान का बहुत बड़ा हाथ है।

साठ रुपए

श्री भिक्खु

वह पढ़-लिखकर भी अपना नाम बिसम्बर ही लिखता था और शहर के किसी दफ्तर में साठ रुपए मासिक का बाबू हो जाने पर भी उसके गाँववाले उसे बिसम्बर ही कहते थे। बढ़े-बूढ़ों या यार-दोस्तों ने तो कभी इस नाम में कोई आदरवाचक शब्द जोड़कर इजाफत की नहीं थी जब कि गाँव का कोई दूसरा लड़का, जिसका कि वह आदर्श बन चुका था, जरूर ही उसे बाबू बिसम्बर-दयाल कहा करता था। पर बड़े शहर में भरापूरा परिवार लेकर ६०) की क्लर्की या बाबुई करनेवाले बाबू बिसम्बरदयाल अपने नाम के अन्तर्हित महत्त्व को जानते ही न थे। कारण यही कि ब्राह्मणों के घर में पैदा होकर भी उन्होंने बचपन से ही कहीं पेशकार होने की उम्मीद में उर्दू को ही अपनी पहली जबान अख्त्यार किया था। हाँ, यह तो नहीं कहा जा सकता कि पाँच वर्ष का शिशु बिसम्बर पाठशाला के बजाय मदरसे जाकर इतना महत्त्वाकांक्षी हो गया था पर उसके माँ-बाप के ध्यान में यह महत्त्वाकांक्षा अवश्य ही प्रबल रूप से विद्यमान थी। फलतः पेशकारी के फेर में वे संस्कृत को भी संस्कीरत कहा करते थे, फिर दूसरे शब्दों में उनसे अधिक शुद्ध होने की उम्मीद ही क्या चाहे वह उनका अपना ही नाम क्यों न हो। हाँ, तो पेशकारी के बजाय क्लर्की में आ गिरने पर भी उन्हें अपने नाम का शुद्ध रूप नहीं ज्ञात हुआ था। अच्छा ही हुआ; नहीं तो इस मुहावरे को अपने ऊपर चरितार्थ देखकर कि 'आँखों के अन्धे नाम नयनसुख' उन्हें विशेष हर्ष या सुख न मिलता।

हमारा यह सन्देह भी पूरा-पूरा ही फला, जब बिसम्बर को यह पता चलता कि वह विश्वम्भर है अर्थात् विश्वभर का भरण-पोषण करनेवाला—रोटी, कपड़े, पैसे इत्यादि सभी से, तो उसे अपने आपकों ही भूखे मरते देख अपने नाम के इतने बड़े झूठ पर क्या आश्चर्य न होता ? खैर, यह अच्छा ही हुआ कि उसे अपने नाम के इतने बड़े अर्थ का पता ही नहीं चला, साथ ही निठुर प्रभुओं की दुनिया में रहते-रहते वह यह भी भूल गया था कि बिसम्बर न सही, दयाल का भी तो सीधा-सादा पर बड़ा अच्छा अर्थ है। पर जब उसे अपने पिता की प्राणान्तक बीमारी में भी एक रोज की दफ्तर से छुट्टी न मिली थी और उसने उस गुस्से को जो उसे साहब पर आना चाहिए था, अपनी बीबी पर हाथ छोड़कर उतारा था, तो यह कैसे दयाल के महत्त्वपूर्ण अर्थ को समझ पाता। मतलब यह है कि जिस तरह वह ६०) की छोटी-सी परिधि में न आनेवाले अनन्त सुखों से अपरिचित था, इसी प्रकार अपने नाम के महत्त्व से भी। नहीं कह सकते कि दुनिया में काम से ज्यादा नाम क्या इसीलिए पुजता है कि यहाँ ऐसे पण्डितों की कमी नहीं, जो अपने नाम तक का मतलब नहीं जानते और जो जानते हैं वे लाला छदम्मीमल का अर्थ भी लखपति या करोड़पति लगाते हैं, साथ ही मल का अर्थ भी सोना-चाँदी या इसी तरह की कोई सी धन-दौलत कहने से नहीं भूलते।

किसी ने चाहे पेशकार से अचानक क्लर्क रूप में अवतरित हो जानेवाले उस २५ वर्ष के महत्त्वाकांक्षी पर असफल युवक को महत्त्व न दिया हो, किन्तु हमसे ऐसा नहीं होगा। अतएव जवानी में भी बूढ़ों की सी शक्ल लेकर घूमनेवाले उस आदमी या आदमी जैसे ढाँचे को हम बाबू बिसम्बरदयाल ही कहेंगे। हाँ, पं० विश्वम्भर-दयालु कहने की तो हमारी भी हिम्मत नहीं क्योंकि चाहे यह नाम भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कितना भी शुद्ध और सारगर्भित क्यों न हो, कानूनी दृष्टि से बिलकुल गलत ठहरेगा और उनके इस नाम पर छोड़े गए खत कभी भी उन्हें न मिलेंगे क्योंकि डाकिया बड़े-से-बड़े भाषा-विज्ञान की गवाही पर भी बाबू बिसम्बर दयाल को पं० विश्वम्भरदयाल समझने की मूर्खता न करेगा।

तो बाबू बिसम्बर दयाल अपने दफ्तर की बड़ी पुरानी कुर्सी पर बैठे कुछ सोच रहे थे। इस पुरानी कुर्सी का इतिहास यह है कि यह दफ्तर की सबसे पहली कुर्सी है, जो यहाँ का आज तक का इतिहास अक्षरशः जानती है। पहले इस पर, जब यह जवान या नर्म थी, दफ्तर का बड़ा बाबू, जो शायद कभी जवान या नया नहीं स्वीकार किया जा सकता था, बैठता था। पर बाद में बेचारी कुर्सी का महत्त्व इसलिए गिराना पड़ा, क्योंकि उसका साथ उसकी जवानी न दे सकी। बूढ़ा बाबू बदलकर जवान आ गया पर वह जवान से बूढ़ी हो गई और शायद इसीलिए बाबू बिसम्भर दयाल को इस असमय में बूढ़ी हो जानेवाली कुर्सी पर बिना उसका दिल-दर्द समझे बैठना पड़ता था। हाँ तो पहले इस कुर्सी की गद्दी टूटी थी, जो कि बढ़िया बेंत की जाली की बनी थी। जब मरम्मत हुई तो उसका स्थान योंही खुरदरे से चीड़ के फट्टों ने ले लिया था। तभी किस्मत ने ऐसा दगा किया कि बेचारी कुर्सी का एक हाथ भी टूट गया और चूँकि बाबू बिसम्बर दयाल जैसे आदमी और उनके बाप-दादा, यानी पुरखे भी टूटे हाथवाली कुर्सी तो क्या किसी तिपाई पर भी बाबू बनकर न बैठ पाए थे, अतएव उन्होंने उस कुर्सी पर बैठना भी अपना परम सौभाग्य समझा। वे इस पर बैठकर समझा करते थे कि वे भी कुछ हैं; और यदि उनके दफ्तर का वह नया बड़ा बाबू उन्हें अपने सामने खड़ा ही रखे और फटकारें भी इतनी बेहिसाब दे कि जिनका कुछ ठीक नहीं, फिर भी वे अपने रामू वा कालू, अब्दुल्ला या सादुल्ला चपरासी को तो करारी डाट दिला ही सकते हैं। कारण कि चाहे १२०) रु० पानेवाला बड़ा बाबू अपने से भी किसी बड़े बाबू से जो १४०) रु० या इससे भी ज्यादा तनख्वाह पाता हो, चौंककर उस पर रुआब ही झाड़ता हो, पर १२॥) महीना पानेवाला करीम या कासिम, नत्थू या फत्तू तो उसके ६०) का रोब मानेगा ही, क्योंकि वे उसकी तन-ख्वाह के लगभग पाँच गुने हैं, चाहे उस पर निर्भर उसका परिवार बाबू बिसम्बर दयाल के ही परिवार के बराबर हो।

पर बात तो चल रही थी की कुर्सी की और उसके महत्त्वपूर्ण इतिहास के समय की। बहुत सी बेढंगी बातों और अपने पतन को देखकर कुर्सी का दिमाग कुछ चिड़चिड़ा हो गया था। फलतः जिस समय की खुश्की ने उसे सिर्फ खुश्क किया, उसके फेर में आकर उसके सीट के फट्टे धनुषाकार होते-न-होते जाने क्या हो जाना चाहते थे। फलतः उन फट्टियों को बेमेल जोड़े रखने में जो कीलें समाज की रूढ़ि या दकियानूसीपने की कोटि में आ रही थीं, उसी तरह बारबार उठकर अपनी जड़ें छोड़ चुकी थीं, जिस तरह वे रूढ़ियों की जञ्जीरें भी आज झनझनाकर टूट जाना चाहती हैं। समाज और उन रूढ़ियों की बात तो अलग, पर यहाँ कुर्सी की फट्टियों का विद्रोह बाबू बिसम्बर दयाल के लिए ही विघातक सिद्ध हुआ। फट्टियाँ तो बार-बार ठोक-पीट-कर जहाँ-की-तहाँ जमा दी जातीं, पर कीलें फिर से उभड़-कर बाबू बिसम्बर दयाल की धेगलियों पर धेगलियाँ लगाए बिना न मानतीं। और इस पर जब कभी वे अपने ऊपर ही झुँझलाकर चुप रह जाते थे, तो चीड़ की चीड़ी फट्टियाँ अपनी संधों में उनकी जाँघों की ढीली खाल को पकड़कर जैसे नया मजाक ही खड़ाकर देती थीं। एकाध बार बाबू बिसम्बर दयाल ने पुरुषार्थ का परिचय देते हुए बिना बिहारी या मुरारी, अलाउद्दीन या जलालुद्दीन की सहायता के ही दफ्तर के रूल से उन कीलों का मुँह तोड़ देना चाहा था, तो बड़े बाबू बेहद बिगड़ उठे थे। ठीक भी तो है, भला दफ्तर है कि मजाक या लुहार की दुकान। धोती ही तो फट गई कि कोई आफत आ गई! तब बेचारा बिसम्बर, नहीं बाबू बिसम्बर दयाल, यह कहकर भी प्रत्याख्यान नहीं

कर पाते थे कि कल ही तो हुजूर थेगलीवाले कपड़े पहनकर आने के कारण बिगड़ रहे थे। भला इन बेलगाम क्लीकों की हरकतों को बर्दाश्त करते हुए मैं कैसे अपनी रईसी कायम रख सकता हूँ। और उस दिन की फटकारों का तो कोई ठिकाना रहा ही नहीं था, जब उन्होंने फट्टियों के बीच में अपने मांस या खाल को पकड़े जाने से बचाने के लिए किसी पुराने रजिस्टर से गद्दी का काम लेने की कोशिश की थी। उन फटकारों को यहाँ दोहराकर हम अपने पाठकों की आँखों में अपने बाबू बिसम्भर दयाल की हैसियत को कम नहीं कर देना चाहते। ज्यादा डर तो इस बात का है कि कहीं ये सब बातें उनके गाँव के उस युवक की आँखों के आगे न पड़ जाएँ, जो उन्हें अपना आदर्श मानकर किसी भी मूल्य पर मैट्रिक तो पास कर ही लिया चाहता है।

बाबू बिसम्भर दयाल उसी ऐतिहासिक कुर्सी पर बैठे हुए किसी ऐसी ही ऐतिहासिक मेज पर कोहनी टेक हाथों में सिर थामे कुछ-का-कुछ सोच रहे थे। बात यह है कि महीने का अखीर था, और आज सौभाग्य से उनका रजिस्टर भर गया था। यह नौबत नहीं आई कि नए महीने के पहले ही उस रजिस्टर को घर ले जाकर मिट्टी के तेल की डबिया के प्रकाश में टूटी खाट पर आधीरात तक बैठकर पूरा करना पड़ता। यह एक स्वर्ण संयोग था कि उनका काम इस बार दफ्तर में ही दफ्तर की छुट्टी से पहले ही खत्म हो गया था। फिर भी वे छुट्टी के समय से पहले अपने घर नहीं आ सकते थे चाहे समय के बाद तक क्यों न रुकते आए हों। इसका भी कारण यही था कि रुपए की इस दुनिया में उन साठ रुपयों की उनको जरूरत नहीं थी, अपितु उन्हें ही उनकी बेइन्तहा जरूरत थी; अतएव उन ६० रुपल्लियों के लिए उन्होंने बाबुई में छिपी उस गुलामी और उस शोषण को सदर्प स्वीकार कर रखा था। और करते भी कैसे न! साठ रुपए का मतलब केवल उनकी अपनी ही जिन्दगी न थी, अपितु सात-आठ या इससे भी अधिक प्राणियों की भी, जिनमें थे उनके बीबी-बच्चे, भाई-बहिन और एक अभागा साला भी। और इस साठ रुपए में न केवल उन सबकी रोटी ही थी, अपितु, सबका कपड़ा भी था—सबका भविष्य भी था—लड़कों की पढ़ाई, लड़कियों की शादी, मरने-जीने के साथ-साथ लगी रहनेवाली और भी हजार बातें।

तो इस समय वे कुछ ऐसा ही सोच रहे थे। दफ्तर के हिसाब से थके उनके दिमाग के सामने एक बड़ा चार्ट—अपने जीवन का, जीवन की जरूरतों का, साठ रुपए महीने में सिमटकर रहनेवाली जरूरतों का चार्ट—बिछा पड़ा था। पर हम एक महीने में ही उसे कैसे समेटें? वहाँ तो पिछले, या इस बीतते महीने का भी अभी बहुत कुछ था, जब कि आनेवाले महीने का तो सभी कुछ। यानी ६०) रु० और डेढ़ महीने, ६०) और ९-१० आदमी, ६०) और बड़े शहर की बड़ी मँहगी जिन्दगी, ६०) और दुनिया की बेइन्साफी, ६०) और पैसेवालों का शोषण, ६०) और गरीब और शोषित की बेबसी, कमजोरी, नपुंसकता—सब कुछ।

बाबू बिसम्भर दयाल उसी चार्ट पर गौर कर रहे थे। उस लम्बे-चौड़े चार्ट में खाने-ही-खाने बने हुए थे और हर खाने पर किसी-न-किसी जरूरत का नाम लिखा था। ये जरूरतें भी कैसी पागल और अन्धी हैं, जो आदमी की हैसियत का विचार किए बिना ही उससे लिपटती जाती हैं। चार्ट के पहले ही खाने में लिखा था रोटी—जनम के भूखे आदमियों की रोटी। महीने भर की रोटी! पर वह महीना ३० दिन का नहीं था। वह शायद तीस से बहुत ज्यादा का था। पिछले महीने के दस दिनों ने उसे चालीस दिन का कर दिया था, जिसमें मोदी का वह उधार खाता भी आ जाता है, जिस पर निर्भर करके ही वे पिछले महीने के दस दिन और जीवित रह सके। मतलब कि महीने की तनख्वाह मिलने से पहले ही भूखे न मर गए, जरूरतों की फाँसी खाकर खत्म न हो गए।

बाबू बिसम्भर दयाल की समझ में ही नहीं आता था कि इस खाने में चार्ट के चारों तरफ बिखरे हुए ६० रुपयों में से कितने रुपए रखूँ। मजा यह है कि चार्ट इतना बड़ा था और रुपए इतने थोड़े कि सैकड़ों मीलों के फासले पर एक एक पैसा डालने पर ही वे उस चार्ट के घेरे को पूरा कर पाते थे। पर अब तो सवाल था चार्ट में पूरी तरह बने हुए खानों में मोटी-मोटी रकमों के रूप में बैठने का और सभी खानों को पूरा करने का। यह रोटी का सवाल एक बात से और भी बेढब हो गया था। राशनवाला उधार राशन देने को तैयार न होता

था। इसलिए मजबूर होकर चोर बाजार से इतना मँहगा अनाज खरीदना पड़ता, जो बाबू बिसम्बर दयाल के ६०) के लिए एक असाधारण बात थी। फिर भी जीने के लिए सब कुछ करना पड़ता था। इसी रोटी के खाने के नीचे कुछ जरूरी हिदायतें भी फुटनोट की शक्ल में लिखी हुई थीं। जैसे—सबको सिर्फ दो बार रोटियाँ मिलेंगी, वह भी भरपेट नहीं। दिन में कभी किसी तरह का नाश्ता न होगा, चाहे भूख कितनी भी प्रबल क्यों न हो। दूध जैसी चीज के दर्शन भी बच्चों को न कराए जाएँगे, चाहे उनकी बाढ़ ही क्यों न मारी जाए। बीमार के लिए भी किसी खास तरह के खाने, जैसे फल इत्यादि की गुञ्जाइश नहीं, चाहे दुनिया का सबसे बड़ा डाक्टर ही इसकी सलाह क्यों न दे और जिनके न मिलने पर चाहे मरीज मर ही क्यों न जाए। किसी मेहमान के आ जाने पर घर के किवाड़ बन्द ही रखे जाएँगे और कैसा भी दिली दोस्त क्यों न हो, उसकी खातिर सिर्फ ठण्ढे जल से ही की जा सकेगी।

इसी तरह की और भी जाने कैसी कैसी हिदायतें थीं, जिन्हें पढ़ने का बाबू बिसम्बर दयाल को साहस ही नहीं होता था। एक बार उनके दिमाग में आया भी कि चाहे कोई भूखा उनके दरवाजे पर दम ही तोड़ दे पर उसे एक मुट्ठी अन्न भी दिया न जा सकेगा, उन्होंने इस हिदायत को भी मान लिया। फिर भी और बहुत से जरूरतों के खानों को देखते हुए वे एक भी पैसा रोटी के इस सबसे जरूरी खाने पर रख नहीं पा रहे थे। इस रोटी के खाने के सबसे ऊपर इसका आदर्श भी मोटे अक्षरों में इस प्रकार लिखा हुआ था—दूसरे देशों के आदमियों की औसत उम्र ५०–५० साल और इससे भी ज्यादा ६०–७० तक है जब कि हमारे गरीब देश की शायद लगभग २५ साल ही। इसका कारण है असामायिक चिन्ताएँ और पौष्टिक पदार्थों का न मिलना। प्रत्येक माँ-बाप को चाहिए कि अपने बच्चों को बचपन में हर प्रकार की चिन्ता से मुक्त रखें और सब प्रकार के पौष्टिक एवं विटामिनप्रधान खाद्यों का उन्हें सेवन कराएँ, जैसे दूध, घी, फल, ग्लूकोस, इत्यादि। स्वस्थ और मजबूत बच्चे हमारे राष्ट्र की महती आवश्यकता हैं, और आदर्श राष्ट्र की तो सबसे अधिक।

इस आदर्श को पढ़कर बाबू बिसम्बर दयाल के माथे पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आईं और उन्हें लगा कि हाय, किस प्रकार राष्ट्र-विधाताओं की हत्या उनके हाथों हो रही है और किस प्रकार उनके बच्चे पौष्टिक आहार के अभाव में अपनी जिन्दगी के अधिकांश से वञ्चित ही रहे हैं। माथे का पसीना पोंछने के लिए उनका हाथ उठना चाहकर भी उठ न सका और बरबस घबड़ाकर उन्होंने उस पहली जरूरत के खाने से अपनी दृष्टि हटा ली।

दूसरा खाना कपड़े का था और इसी के साथ एक छोटा सहायक खाना मकान का। ऊपर लिखा था—कपड़ा मकान। इसका आदर्श इस प्रकार था—'कपड़े शरीर को सजाने में ही सहायक नहीं होते अपितु साफ और अनुकूल कपड़े शरीर को स्वस्थ भी रखते हैं। इसी की व्याख्या और बढ़ाकर दे दी गई थी—कपड़ों को मौसम के आधार पर पहनना चाहिए। जैसे, जाड़ों में गरम और ऊनी कपड़े, गर्मी में छोटे ठंडे सूती या रेशमी कपड़े और बरसात में पतले हवादार तथा हलके कपड़े। नीचे के कपड़े जैसे बनियाइन, अण्डर वियर इत्यादि तो हर ऋतु में धुलने चाहिए जब कि बरसात और गर्मी में सभी कपड़ों, पसीने से तर कपड़ों को, बिना धोए और धूप में सुखाए पहनना आत्महत्या के बराबर है।......

इस खाने में और भी जाने कैसी-कैसी हिदायतें थीं, जिन पर बाबू बिसम्बर दयाल गौर करते डर रहे थे। उन्हें लग रहा था कि इन हफ्तों में बदले जानेवाले फटे-पुराने कपड़ों को पहनकर वे न केवल अपनी ही हत्या कर रहे हैं, अपितु अपने बीबी-बच्चों, भाई-बहनों और यहाँ तक कि साले की भी। फिर वे सोचने लगे कि कैसे उन्हें ठंडे और अपर्याप्त कपड़ों में ही जाड़े निकाल देने पड़ते हैं, जब कि बरसात में ऐसी मोटी गबरूनों में, जिनमें हवा आदि कुछ भी न छन सके। गर्मी में तो उचित वस्त्रों के अभाव में वे लुओं को ही सहने के आदी हो गए हैं। तब कैसे, इस खाने की हिदायतों को माना जा सकेगा? हाँ, कैसे?

और इसी की बगल में मकान के बारे में लिखा था—अच्छा मकान और अच्छी बस्ती ही जिन्दगी की दूसरी जरूरतों के समान पहली जरूरत है। अच्छी बस्ती का होना तो इसलिए जरूरी है, जिससे उसके सम्पर्क से अच्छा मकान भी बुरा न बन जाए और उसमें रहनेवाले

लोगों पर, खास तौर पर बच्चों पर बुरा प्रभाव न पड़े। अच्छे मकान के लिए उसका खुला, हवादार, रोशनीदार होना जरूरी है। हर कमरा ऐसा हो, जिसमें कम-से-कम दिन में एक बार तो सूरज की किरणें अन्दर तक पड़ जाया करें। कमरों की छतें ऊँची होनी चाहिए और फर्श तथा दीवारें साफ, सुन्दर बे-सीलन की। रात को सोने, दिन में उठने-बैठने, सामान रखने, रसोई बनाने और नहाने-धोने के सभी कमरे अलग होने चाहिए। रसोई ऐसी जगह हो कि इसका धुआँ दूसरे कमरों को काला न कर सके तथा पाखाना भी इतनी दूर कि उसकी बदबूदार हवा रहनेवाले कमरों तक न पहुँच सके। बच्चों के पढ़ने-लिखने और मेहमानों को ठहराने तथा आनेवाले लोगों से मिलने के कमरे भी अलग-अलग और खास-खास ढंग के होने चाहिए। इसके साथ-साथ माँ-बाप को चाहिए कि अविवाहित जवान लड़के-लड़कियों को विवाहितों से अलग कमरों में सुलाएँ। घर में कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाए तो उसे ऐसे कमरे में सुलाना और रखना चाहिए, जो खुला, हवादार, रोशनीवाला तो हो ही पर साथ ही एकान्त भी। मकान के बीच में आँगन का, खुले आँगन का, होना भी उतना ही जरूरी है, जितना कि उसके चारों तरफ खुली-फूली फुलवारी। मकान से सटकर बहनेवाली गन्दी नाली खुली नहीं होनी चाहिए। कोशिश तो यह हो कि नाली ही न हो। हर मकान में नल या कुएँ के पानी का भी पूरा-पूरा प्रबन्ध होना चाहिए।

बाबू बिसम्बर दयाल इन नुस्खों-जैसी बातों को पढ़ते गए पर उन्हें लगा कि हिन्दुस्तान में ऐसा सोचना तो हवाई किले बनवाना है। उनकी आँखों के सामने उनकी अपनी दुनिया और उस दुनिया के अपने महल का नक्शा घूम गया। ऐसा नक्शा, जिसमें रसोईघर और टट्टीघर सटे हुए और रसोईघर ही नहानघर और भण्डार के काम में आता है। इसके अलावा सिर्फ एक कमरा है, जो उनका ड्राइङ्गरूम, शयनकक्ष, गोदाम, अध्ययन-कक्ष इत्यादि सभी कुछ तो है। न अन्दर आँगन है, न बाहर बगीचा। गंदी नालियाँ या तो सटकर बहती हैं या छतों पर से दरवाजों के पास गिरती हैं। प्रकाश और हवा के नाम तो सफाया। कमरों में दरवाजों को छोड़कर कोई खिड़की न थी और वे भी दरवाजे न होकर खिड़की इसलिए हैं कि उनमें से गुजरते वक्त अपने सिर की रक्षा के लिए वामन को भी सिर झुका लेना पड़ता है।

यह सब पढ़-सोचकर बाबू बिसम्बर दयाल का सिर चक्कर खा रहा था। उनकी इच्छा हुई कि इस वाहियात चार्ट को फाड़ दें पर तभी शिक्षा के खाने पर उनकी नजर पड़ गई, जिसका उल्लेख इस प्रकार था—अच्छा नागरिक बनने के लिए शिक्षा प्राथमिक आवश्यकता है। शिक्षा के द्वारा ही हम अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों को समझते हैं। तभी अपने अधिकारों के लिए लड़ सकते हैं और कर्त्तव्यों का पालन भी यथावत् कर सकते हैं। शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य बनाकर पशु से पृथक करती है और जागरण का सिंहनाद कर उसकी अज्ञान-निद्रा भंग करती है। हमारे बाबू साहब को ये पंक्तियाँ पढ़ने में बड़ी भव्य जान पड़ीं। इसके आगे शिक्षा के प्रकार, प्रचार, बच्चों की रुचि और उच्चकोटि के मनोवैज्ञानिक शिक्षण के पटु अध्यापकों की चर्चा भी लिखी थी। बच्चे तो गीली मिट्टी होते हैं, जिन्हें किसी भी खिलौने की शक्ल दी जा सकती है। इसके लिए अच्छे अध्यापकों का होना आवश्यक है, जो अध्यापित की रुचि समझते हुए उसे उसकी प्रवृत्ति और योग्यता के अनुसार कार्यों में लगाएँ। तभी हमारे यहाँ अच्छे वैज्ञानिक, अच्छे दार्शनिक और दूसरे विद्वान् उत्पन्न हो सकेंगे।

बाबू बिसम्बर दयाल इस उच्चकोटि की शिक्षापद्धति के उल्लेख मात्र से ही प्रसन्न थे। उन्हें अपने श्यामू की याद आई, जो तोड़-फोड़ में बड़ा ही हद्द है और जिससे साफ प्रतीत होता है कि वह एक अच्छा और बड़ा इञ्जीयर बनेगा। वे ऐसा अपनी पत्नी से घोषित भी कर चुके हैं। इसके आगे लिखा था—'पर ऐसी शिक्षा तभी संभव है जब राष्ट्र की सरकार इसकी ओर ध्यान दे। वह न केवल शिक्षा को अनिवार्य कर दे, अपितु उसकी पद्धति का भी उद्धार करे। साथ ही अनिवार्य शिक्षा निःशुल्क होनी चाहिए, अन्यथा......।' अन्यथा से आगे बाबू बिसम्बर दयाल को पढ़ने की आवश्यकता ही न थी। वे भुक्तभोगी हैं। दस दर्जे तक तो उनके पिता ने उन्हें किसी तरह गाँव के खेत-जमीन बेंचकर इस आशा से पढ़ा दिया था कि पेशकार बनकर गाँव को खरीद लेगा पर जब उन्होंने स्वयं पी० सी० एस० की परीक्षा में बैठने के लिए बी० ए० भी करना चाहा तो

उनका स्वप्न चरितार्थ न हो सका, दूसरे इसकी वैसी कल्पना भी न थी। आखिर उन्हें अपने भाग्य के अनुसार क्लर्क बनना पड़ा, ऐसा क्लर्क जिसका भाग्य बड़े ही निष्ठुर हाथों से बनता है—चाहे वे हाथ किसी मान लिए गए भगवान् के ही क्यों न हों। और जब बाबू बिसम्भर दयाल को अपनी सफलता का ध्यान आया तो उनका अपने लड़के को इञ्जीनियर, वह भी मामूली नहीं, बनाने का स्वप्न आँख खुलने से पहले ही भङ्ग हो गया। इस सबसे उनके हृदय पर ऐसा आघात लगा कि वे उस वाहियात चार्ट को फाड़ने के लिए मेज पर रखे दफ्तर के रजिस्टरों को ही खत्म करने जा रहे थे कि सौभाग्य से अनर्थ होते-होते बच गया।

इस पर उन्हें झुँझलाहट भी आई और हँसी भी। एक लम्बी साँस छोड़कर बोले—ये सब वाहियात, बेकार, दिमागी पुलाव। ऐसा भी कहीं बदा है किसी क्लर्क के जीवन में! मुझे तो अपने इन साठ रुपयों से ही अपनी जरूरतों से लड़ना है। पिछले महीने का बकाया उधार साफ करना है और अगले महीने उधार लेने से बचना है। मुझे तो वही खाना, वैसा ही कपड़ा-लत्ता मिलता रहे तो बहुत। और मकान आज कल हैं ही कहाँ। पगड़ी चाहिए मकान के लिए, वह भी हजारों की और फिर मुझसे भी गन्दे और पुराने मकानों में लोग जूनपूरी कर रहे हैं। मैं लाख से बुरा सही, दस लाख से अच्छा हूँ। इस पढ़ाई से भी क्या? बड़े-बड़े बी० ए०, एम० ए० बेकार फिर रहे हैं। इञ्जीनियरों की भी क्या पूछ? बस म्युनिसिपैल्टी का यह मदरसा ही अच्छा। कम फीस में सस्ती पढ़ाई हो ही जाती है। फिर गरीबों का स्कूल है। बच्चे फटे-पुराने कपड़ों में भी निभ जाते हैं।

इतने में घड़ी ने ६ बजाए। "अरे छः बज गए" कहकर वे बड़बड़ाते-से उठे, "दफ्तर तो बन्द हो गया। चलूँ, खजानची के पास से तनख्वाह लेता चलूँ।" पर जब वे खजानची के पास पहुँचे तो उन्होंने उसे किसी दूसरे से शायद रामू या कालू से कहते सुना—बस जमादार, अब तनख्वाह कल बँटेगी। वक्त हो गया। आखिर मेरा भी घर है। सुबह से चाँदी पर सिर मार रहा हूँ। अब नहीं। ऐसा करारा जवाब सुनकर बाबू बिसम्भर दयाल को अपने लिए कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं हुई और वे 'तनख्वाह बँटेगी' के 'बँटेगी' शब्द भर विचार करते हुए घर की ओर मुड़ चले!

गीत

श्री सुरेशकुमार 'सुमन' साहित्य-रत्न

व्रीड़ा की कारा से, सहचरि!
मुक्त करो निज मरकत-काया।

प्राची की नव उजियाली से
हेम-किरण-दल की लाली से—
सौ-सौ कर सकरुण मनुहारें
रंग गुलाबी भर-भर लाया।

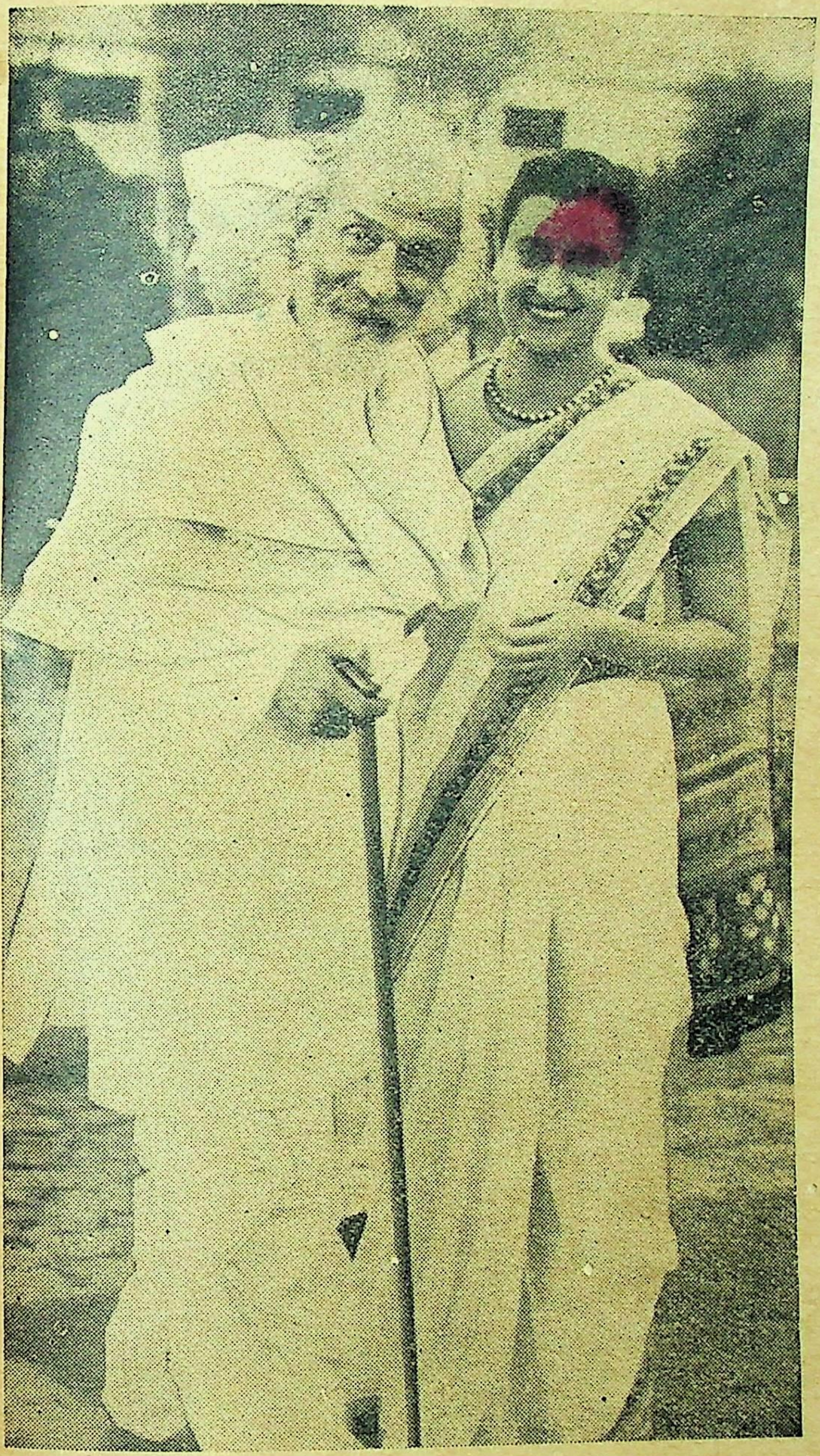
निःश्वासों की चंचल लहरी
अधरों के पनघट पर ठहरी;
स्वर के घट में अंतर-तर ने
शून्य सलिल हौले बिखराया।

आत्मा को वंशी पर तोलो,
कुहुक-भरी, छायामयि! बोलो,
मैं तुममें, तुम मुझमें लय हो
युगल तिरोहित कर दें माया।

तिमिर-अँजे-से दृग कजरारे
युगल प्रभासित ज्यों रतनारे—,
नत निसर्गतः होते जाते
यौवन-दूत सिमटकर आया।

मधुर कामनाओं से तारे
झिलमिल करतल सुभग पसारे—
छू न सकेंगे क्या उस क्षिति को
जिसके पार्श्व विहँसती छाया।

अंतरिक्ष की सान्ध्य-ललाई—
नीचे सर में समुद नहाई,
रँगती रुचिर कपोल तुम्हारे
जिसने अन्तर्द्वंद्व मिटाया।



राजर्षि टण्डनजी

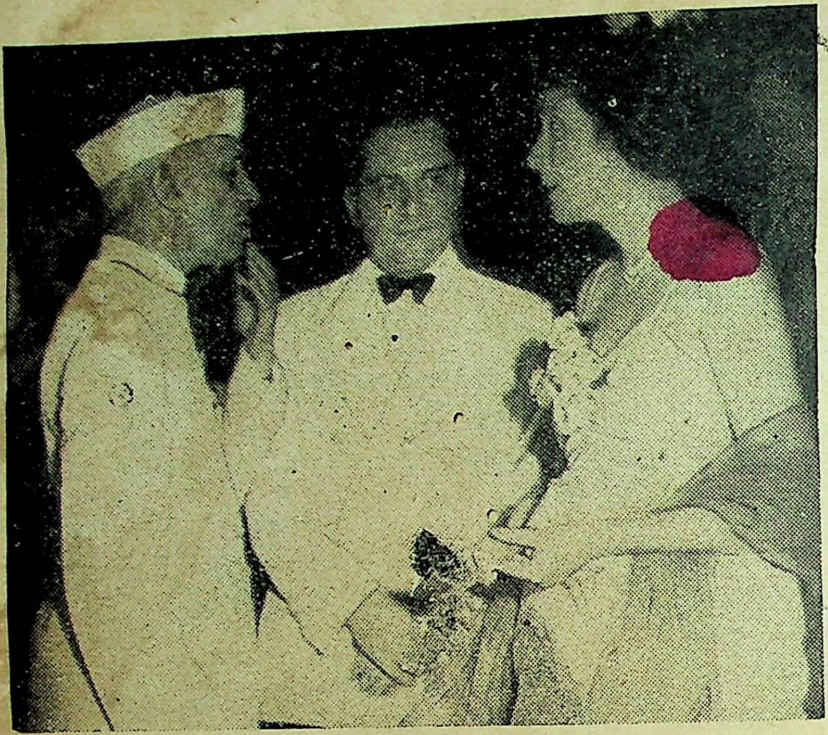
दिल्ली में पण्डित नेहरू-द्वारा आयो मनोरंजन-समारोह में राजर्षि टण्डनजी श्री इन्दिरा गांधी के साथ प्रसन्न मुद्रा में दिख रहे हैं।



दाईं ओर--

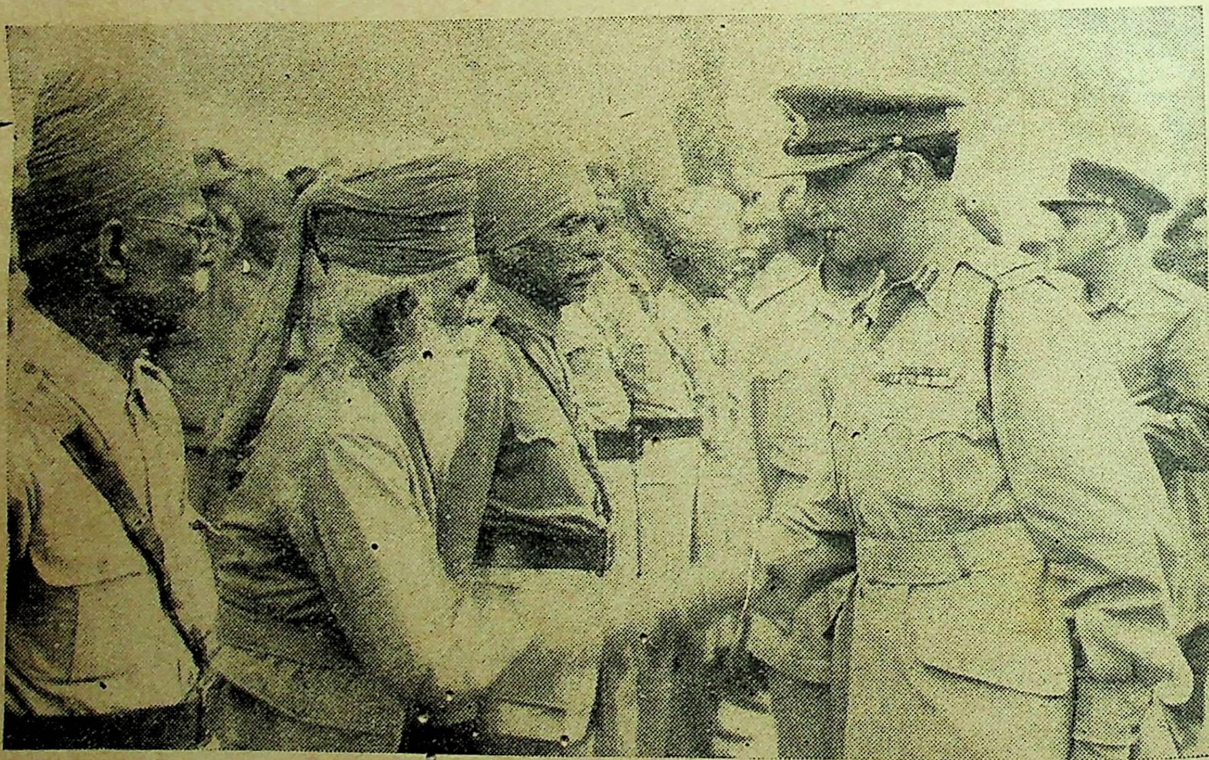
श्री मेनन

भारत के दूरदर्शी अधिकारियों में से एक--श्री वी० पी० मेनन।



विचार-विनिमय

पंडित नेहरू ब्रिटेन के हाई कमिश्नर श्री नाई की धर्मपत्नी और रूसी राजदूत श्री नोवीकोव के साथ किसी समस्या के सम्बन्ध में विचार-विनिमय कर रहे हैं।



भारतीय सेनाधिपति जेनरल कैरियप्पा

भारतीय सेनाधिपति जेनरल के० एम० कैरियप्पा गुरगाँव, पूर्वी पंजाब में अवकाश-प्राप्त सैनिक-अधिकारियों से परिचय प्राप्त कर रहे हैं।

सत्रह सौ उनतीस

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

(२१)

बृहस्पतिवार का दिन हो-हल्ला, क्रन्दन और नारों में समाप्त हुआ। छोटे-बड़े, संभव असम्भव मशिवरे भी हुए। अनेक सवालों और उनके हलों को भिन्न-भिन्न गिरोहों ने अपने-अपने पूर्व निश्चयों के अनुसार और अनुकूल, मन में निहित कर लिया। किसी की नियत किसी के मकान पर थी, कोई रुपया चाहता था, कोई नौकरी और कोई अपने साहूकार के फन्दे से मुक्ति। बहुत से लोग जजिया इत्यादि बड़े प्रश्नों पर दत्तचित्त हो गए तो कई मुखिया सरदारी, मनसबदारी और सूबेदारी पर लौ लगा उठे। दिन भर के थके हुए लोग रात को चैन से नहीं सोए, सलाह, मशिवरे, षड्यन्त्र जारी रहे।

बारह गाँव के सैयद भाई—अब्दुल्ला और हुसैन अली छोटे पद से बड़े पद पर पहुँचे थे और उनके हाथ में एक साथ इतनी सत्ता इकट्ठी हो गई थी कि जिसको चाहा उसको औरंगजेब का उत्तराधिकार दे दिया। हुसैनअली की गर्वोक्ति प्रसिद्ध हो गई थी कि 'मैं अपना जूता जिस किसी के सिर पर रख देता हूँ, वही दिल्ली का बादशाह हो जाता है, और, मेरे जूते की छाया भर जिसके सिर पर पड़ जाती है, वही तख्ते ताऊस का मालिक बन जाता है।' लोगों को ये उक्तियाँ खूब याद थीं और उनको विश्वास था कि वे भी, यदि मिलकर काम करें तो, बहुत कुछ कर सकते हैं। वे अपने को व्यर्थ नहीं समझते थे। वजीर और विदेशी दल के प्रतिपादन ने उनको अपने भीतर एक महान् बल के प्रतीत करने की आस्था दे दी थी। इसलिए उमड़ी हुई यह जनता किसी विशाल कार्य के करने की ठानकर मुश्किल से थोड़ी देर के लिए उस रात सोई।

जो लोग उद्विग्न मुसलिम जनता की इस उत्तेजना में होकर अपने स्वार्थों की ओर झाँक रहे थे, वे भी मोटे वा झीने आवरों को डाले हुए उस उद्विग्नता को अपने जीवन का प्रधान अंग बना रहे थे।

शुभकर्ण की हवेली फोड़े जाने में पठानों ने कोई विशेष बाधा नहीं डाली। उन्होंने सोचा, इतने से ये शान्त हो जाएँगे; दूसरी हवेली फिर बन जाएगी। हवेली फोड़नेवालों ने सोचा, सफलता की पहली मञ्जिल पार कर ली; बाकी मञ्जिलें भी सहज ही पार हो जाएँगी।

भड़की हुई जनता की उस उद्विग्नता को सफलता का समर्थन मिला, और वह कुछ अधिक कर गुजरने के लिए दृढ़ हो गई। छोटे-छोटे गिरोहों तक को यथेष्ठ नेता मिल गए।

(२२)

तारीख ११ मार्च सन् १७२९, शुक्रवार का दिन। पौ फटने के पहले ही से जूताफरोशों ने सारे शहर का गश्त लगाना शुरू कर दिया। अपने दीन और अपनी रक्षा के प्रयत्न के लिए प्रत्येक मुसलमान को जगाया। अपने दल के लिए सहानु-भूति का संग्रह करके जुमा मसजिद में इकट्ठे हो जाने की योजना बतला दी।

दोपहर की नमाज—जुहर—के शुरू होने के पहले ही मसजिद का विस्तृत आँगन भर गया। बहुत से लोगों को तो बाहर रह जाना पड़ा।

नमाज शुरू होते ही भीड़ इतनी बढ़ी कि नमाज के लिए उठने-बैठने का भी सुभीता न रहा। जुहर की नमाज में बारह रकातें होती हैं, मुश्किल से एक-दो हो पाईं—भीड़ उठने-बैठने को स्थान ही नहीं दे रही थी। काजी ने एतराज किया। मुअज्जिन ने भी प्रतिवाद किया। लोगों की

हड़बड़ाहट और धींगा-मस्ती कम नहीं हुई। नमाज के लिए देर हो रही थी। काजी ने कहा,

"यह बड़ी गैर मुनासिब बात है। इबादतगाह में भी दंगा-फसाद करने से बाज नहीं आते!"

जूताफरोशों ने दूसरे की ओर कनखियों देखा। बगलों में उँगलियों से टटोला और कुछ के हाथ चोगों की जेबों तक भी गए।

एक जूता फरोश बोला, "यह बोला पठानों का पिट्ठू! शेर अफगन और शुभकरन ने इसको मुकर्रर करवाया है।"

काजी ने गरज कर कहा, "खामोश! यह खुदा की जगह है। बेअदबी मत बर्तो। चुप रहो और चुपचाप नमाज में शरीक हो जाओ।"

एक हब्शी टूटी-फूटी हिन्दी में बोला, "हम सब जानते हैं। इसने हिन्दुओं से रिश्वत खाई है।"

काजी ने अपने कुछ आदमियों को आदेश दिया, "इसको यहाँ से हटा दो।"

काजी का जवान लड़का पास ही जमात में था। वह हब्शी की ओर बढ़ा। लड़के को एक कुर्द ने बीच में ही पकड़ लिया। काजी को ताव आ गया। उसने अपने अनुयायियों से कहा, "ये सब फसाद करने पर तुले मालूम पड़ते हैं। इबादतगाह को नापाक करने के लिए घुस आए हैं। इनको हटाओ और फिर खामोशी के साथ अपना फर्ज अदा करने में लग जाओ।"

तोपखाने का एक बगदादी घूँसा तानकर बोला, "तुम और तुम्हारे पठान यहाँ फसाद करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। तुम सबकी मरम्मत करने और फर्ज को समझाने के लिए ही हम सब आज यहाँ आए हैं।"

"निकालो इन बदमाशों को यहाँ से", काजी ने अपने बल का गलत अनुमान करके झल्लाहट प्रकट की, "दिल्ली का यह सब कूड़ा-कचड़ा यहाँ मजहब की तोहीन करने के लिए जमा हुआ है।"

फिर क्या था—अरबों, बगदादियों, हब्शियों और मुगलों ने अत्यन्त फोहश गालियाँ उगलीं और काजी तथा उसके लड़के पर टूट पड़े। मुअज्जिन ने मना किया तो उसको भी धर दबाया। उन सब पर बेतरह मार पड़नी शुरू हो गई। उन लोगों को मेहराब की ऊँची तख्ती से फर्श पर घसीट लाए और फिर मारा।

बीच-बिचाव करनेवाले बहुत थोड़े थे। क्रुद्ध-क्षुब्ध हुल्लड़ और भी अधिक अशान्त हो गया। विशाल योजनाएँ बनाकर आए थे परन्तु मन के कमजोर निषेधों को सहज ही हटाकर उनकी वृत्ति मार-पीट की ओर भभक पड़ी। इसलिए बीच-बिचाव के लिए जो थोड़े से लोग बढ़े, वे भी पीटे जाने लगे। इस दंगे का समाचार तुरन्त महलों में पहुँचा दिया गया। मुहम्मदशाह ने कमरुद्दीन वजीर और रोशनुद्दौला को पहले ही तैयार कर रक्खा था; वे दोनों ससैन्य आ गए। रोशनुद्दौला तो अपनी हवेली का भी पहरा कम करके सिपाहियों को साथ ले आया। बादशाह की आज्ञा थी कि शान्ति स्थापित करके नमाज का पढ़ना पूरा करवा दिया जाए।

वजीर मसजिद में सबसे पहले आया। जिस समय वजीर मसजिद के भीतर आया, काजी और मुअज्जिन इत्यादि पीटे जा रहे थे—इतने कि बेचारे बेसुध हो गए थे—लगभग मृत।

वजीर मसजिद के उत्तरी द्वार से दाखिल हुआ था। काफी सैनिक भीतर साथ ले आया। बाहर अपना हाथी, ऊँट-सेना, ऊँट-तोपखाना, रहकले इत्यादि बहुत काफी सेना के साथ छोड़ आया था।

वजीर के भीतर आते ही काजी इत्यादि की मार-पीट बन्द हो गई परन्तु बलवाइयों के हाथ खूनखराबी के लिए सुरबरा रहे थे—यद्यपि न तो उस समय तक हथियार उठे थे और न रक्त पात हुआ था।

भीड़ में से एक बोला, "पठान इन्साफ नहीं होने देते, हुजूर! इन लोगों को दिल्ली से निकालकर किसी दूसरे मुल्क में भेज दीजिए।" "निकालिए, निकालिए," भीड़ ने कठोर ध्वनि में समर्थन किया।

वजीर इस उद्गार को सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हुआ।

"धीरे-धीरे सब होगा", वजीर ने आश्वासन दिया।

"जिजिया कायम कीजिए।"

"हिन्दुओं की पालकी और घोड़े की सवारी बन्द कीजिए।"

"गल्ले की दूकानें हम लोगों के सुपुर्द कीजिए। भूखों मरने की नौबत आ गई है।"

"राजपूतों को उनके देश भेजिए।"

"नए मन्दिर मत बनने दीजिए।"

"शाही दफ्तरों में मुसलमान बढ़ाइए।"

वजीर ने हाथ के संकेत से भीड़ की पुकारों को चुप

किया। सान्त्वना देते हुए बोला, "आप लोगों के साथ इन्साफ होगा। दीन की तो हानि करनेवालों को सख्त सजा दी जाएगी। बादशाह सलामत जिजिया लगाने की बात फिर सोच रहे हैं। मुमकिन है लग जाए। पठानों की आप लोग फिक्र न करें। कितने हैं? जैसा करेंगे, वैसा भरेंगे। हिन्दुओं को नबकर दुनिया में चलना पड़ेगा। अनाज की दूकानें आगे से आप लोग चलाइए। कोई मना नहीं करेगा।" भीड़ में से एक बोला, "राजा जयसिंह के इशारे पर, कुछ दिन हुए, हिन्दू दूकानदारों ने हड़ताल करके जिजिया मन्सूख करवाया था।"

वजीर ने कहा, "आप लोग घबराएँ नहीं। यकीन है कि जिजिया फिर कायम हो जाएगा।"

"कभी नहीं," रोशनुद्दौला ने पूर्वीय दरवाजे से प्रवेश करते हुए कड़ककर कहा, "खबरदार, जो किसी ने मसजिद के अन्दर गुस्ताखी की।"

रोशनुद्दौला के साथ काफी संख्या में सशस्त्र पठान थे, जो खुर्जा, सिकन्द्रा, शाहजहाँपुर, शमसाबाद, फर्रुखाबाद इत्यादि इलाकों के रहनेवाले थे। ये लोग भीड़ को चीरते हुए मिहराब से जरा हटकर जा खड़े हुए। उत्तेजित भीड़ वजीर की सान्त्वना और मीठे वायदों को सुनकर काजी, मुअज्जिन इत्यादि पर से तो अपने हाथ हटा चुकी थी, परन्तु इतने बड़े आदमी को, अपने समक्ष, सहानुभूति और समर्थन में पाकर, किसी का भी मुकाबिला करने के लिए सन्नद्ध हो गई। रोशनुद्दौला और उसके पठानों को देखते ही भीड़ की हिंसावृत्ति विकट रूप में सचेत हो गई, फिर रोशनुद्दौला के वाक्य ने तो आग पर घी का काम कर डाला। भीड़ में से कुछ आवाजें तुरन्त आईं, "यही है, यही है, वह काफिर।"

इस पर भयङ्कर शोर हुआ।

(२३)

मसजिदवाली घटना के जरा देर पहले शेर अफगन ने हाजी हाफिजखाँ के नातेदार को बुलाया। उसने सोचा शुभकर्ण की हवेली को बलवाइयों ने गिरा ही दिया है, बाकी हिंसा कुछ दे-लेकर शान्त कर दी जा सकेगी।

शेर अफगन ने हाजी के उस नातेदार से कहा, "देखिए, जो होना था वह हो चुका, बिचारे शुभकर्ण की हवेली खण्डहर कर दी गई। हाजी मरहूम को या उनके नातेदारों को इससे कोई फायदा नहीं हुआ और न होगा। जो कुछ भी मावजा आप तै कर दें, मैं राजा की तरफ से देने को तैयार हूँ। झगड़ा बढ़ने से क्या फायदा?"

वह बोला, "हम लोग तो झगड़ा बढ़ा नहीं रहे हैं। शुभकर्ण और उसके बाल-बच्चों को कोतवाली में भेज दिया जाए, सब झंझट खतम हो जाएगा।"

"समझ से काम लीजिए। दुनिया में हमेशा से मावजा दिल के तमाम जख्मों का उम्दा इलाज माना गया है। आपको रकम की तादाद बतलाने भर की देर है। बतलाते ही हाजिर कर दी जाएगी।"

"खाँ साहब, गरीबों के खून रुपयों से नहीं खरीदे जा सकते।"

"भाई मेरे, यह खून खरीदना नहीं है। यह तो अमन को गद्दी पर बिठलाने की न्योछावर भर है।"

"शुभकर्ण अपने सिपाहियों के साथ हुजूर की हवेली में हैं या नहीं?"

"मान लीजिए कि हैं।"

"तब आप यह क्यों नहीं मान लेते कि उन सबको कानून के हवाले किया जाए?"

"क्योंकि उन्होंने कोई जुर्म नहीं किया है।"

"फिर आप रुपए किस बात के दे रहे हैं?"

"अपने पड़ोसियों और शहरातियों को खुश करने के लिए।"

"जिससे वे लोग इन्साफ की पुकार को दिल के भीतर ही दफना दें?"

"इन्साफ खून करने की जिद नहीं करता।"

"आप रिश्वत देने की जिद क्यों कर रहे हैं?"

"यह रिश्वत है, मियाँ! जरा होश में बात करो।"

"रिश्वत नहीं तो और क्या है, खान साहब! बादशाह सलामत और वजीरुद्दौला ने इन्साफ करने का वायदा किया है। शुभकर्ण वगैरह की गिरफ्तारी का फरमान जारी हो गया है, आप इन्साफ की इस रौ को रोक देना चाहते हैं। हम लोग क्या मुँह लेकर वजीरुद्दौला के सामने जाएँगे? वे कहेंगे हमलोगों ने रिश्वत लेकर खून हजम कर लिया है।"

"यह बात है! वजीरुद्दौला ही इस झगड़े के बढ़ाने की जड़ में हैं!! आप लोगों के लिए वजीरुद्दौला सब

कुछ और हम इतने होते हुए भी कुछ नहीं ? सोच लीजिए, शहर और सल्तनत के लिए इसका क्या नतीजा होगा।"

"ये बड़ी बातें तो आप लोग जानें, हम लोग तो सिर्फ यह जानते हैं कि सच्चे दीनवाले लोग ऐसी सलाह नहीं दे सकते जैसी आप दे रहे हैं।"

"अच्छा ! आपकी यह हिम्मत !"

उसी समय पहरे वाले ने समाचार दिया, "वजीरुद्दौला और रोशनुद्दौला फौजों के साथ जुमा मसजिद में पहुँच गए हैं। वहाँ हंगाम हो रहा है।"

रोशनुद्दौला हाजी के उस नातेदार को बिदा करके तुरन्त ससैन्य जुमा मसजिद की ओर चल पड़ा। हवेली पर थोड़े से पहरेदार छोड़ गया।

---

(२४)

शेर अफगन कुछ पठानों के साथ जुमा मसजिद के दक्खिणी द्वार से भीतर घुस आया। उस समय काफी शोर हो रहा था।

रोशनुद्दौला ने 'काफिर' शब्द का सम्बोधन पी लिया। उसका आत्मसंयम उसको सहज में मिल गया। वजीर चुपचाप खड़ा था। रोशन बोला, "चुपचाप नमाज पढ़कर घर जाइए। गाली-गलौज से कोई फायदा नहीं होगा।"

शेर अफगन को मसजिद के भीतर देखकर भीड़ बेकाबू हो गई।

लोग चिल्लाए, "जिजिया-जिजिया"। रोशनुद्दौला ने चिल्लाकर कहा, "अब वह नहीं लग सकेगा। झूठे भुलावों में मत आओ।"

इस बात ने और शेर अफगन की उपस्थिति ने बारूद के ढेर में मानो पलीता ठोक दिया। रोशनुद्दौला को देखते ही जूताफरोश जल उठे थे; उसकी बात ने उनको बहुत उत्तेजित कर दिया था—शेर अफगन को अपने बीच में इस प्रकार स्वतन्त्र पाकर तो वे बिलकुल ही आपे से बाहर होगए।

"दीन, दीन !"

"मारो काफिरों को।"

"मुँह तोड़ दो रोशन और अफगन का।"

जूताफरोशों का कट्टरपन सबसे पहले सक्रिय हुआ। वे लोग अपनी बगलों में नालदार जूते छिपा लाए थे और अँगरखों तथा चोगों में ईंट-पत्थर।

पहले तो इन लोगों ने उन दोनों सरदारों को अत्यन्त गंदी गालियाँ बकीं, जिनका प्रयोग वे अन्य समय अकेले में भी करते तो लाजों डूब मरते, परन्तु इस समय नियम, संयम, शरम, हया सबको दूर फेंक दिया था।

दरवाजों से और भीड़ आई। उनमें गुलाब खाँ भी था। रोशनुद्दौला ने मसजिद के फाटक बन्द करवा दिए।

बलवाइयों ने रोशन और अफगन पर अत्यन्त गन्दी गालियों सहित ईंट-पत्थर बरसाए। शेर अफगन इस हमले का पहला शिकार हुआ। कुछ जूते उसकी पगड़ी पर पड़े, कुछ शरीर के दूसरे अंगों पर।

कुछ रोशनुद्दौला के जरी और जरबफ्त तुर्रे पर पड़े। पठान सैनिक अपढ़ और गँवार थे परन्तु वे अपने सरदारों के पीछे कतार बाँधे अडिग खड़े थे। एक तरफ आजमखाँ भी कुछ आदमियों के साथ खड़ा था। उसको साँस लेने में मुश्किल पड़ रही थी परन्तु प्रहार करने के लिए वह भी उत्सुक था। लेकिन पठानों के बहुत निकट पड़ जाने के कारण वह सिवाय इशारे करने के और कुछ नहीं कर पा रहा था। तो भी उसके मुँह से निकल पड़ा, "मैं अकेला अपनी शमशीर से इन लोगों के टुकड़े किए डालता हूँ।" वजीर ने मना किया। वह हिलने लगा। वजीर अपने सशस्त्रदल के साथ बिलकुल तटस्थ बना खड़ा था—मानो शासन और अधिकार का कर्तव्य ऐसे भीषण अवसरों पर स्थिति की प्रतीक्षा करना मात्र हो, मानो तटस्थता ही शासन का सिद्धान्त हो, मानो राजनीति कुशलों की चतुरता की पराकाष्ठा केवल इसी सन्तोष में हो कि लोग आपस में कट-कुटकर अन्त में शान्त हो ही जाएँगे।

वजीर सन्तोषनिमग्न था।

नालदार जूतों और ईंट-पत्थर की वर्षा से कई पठान सरदार घायल हो गए। उनके अंगों से खून बहने लगा। रोशन और अफगन खतरे में थे ही। उनके पीछे खड़े हुए पठानों पर भी जूताफरोशों ने गालियों, जूतों और ईंट-पत्थरों की बौछार की। पठान और अधिक न सह सके। एक हाथ में ढाल और दूसरे में तलवार लेकर वे जूताफरोशों की भीड़ पर पिल पड़े। जूताफरोश थोड़ी ही देर में कट-कुटकर साफ हो जाते परन्तु तोपखाने के विदेशी

सैनिक हवाइयों और विलायती पिस्तौलों से सुसज्जित होकर आए थे। वे जूताफरोशों के पक्षपाती थे, पठानों पर टूट पड़े। इनके साथ मुगलपुरा के अनुशासनहीन मुगल भी। एक हब्शी ने मिहराब के पास से शेरअफगन पर पिस्तौल दागी। वह बच गया। पठान उन्मत्त हो-गए। आगे झपट पड़े। दोनों दल गुथ गए। पठानों की संख्या बहुत थी। बाजी उनके हाथ में आ गई। तलवारों और पिस्तौलों की मार से लोग धड़ाधड़ गिरने लगे। बाजी को जाता हुआ देखकर वजीर के साथी सिपाहियों ने भी हथियार खींचे। वजीर के मना करने पर भी वे लोग पठानों पर दौड़ पड़े और घमासान युद्ध मच गया। पिस्तौलों की धूम-धड़ाक और ढाल-तलवारों की खट-खटाहट की ध्वनियाँ मसजिद के बाहर भी पहुँचीं। वजीर की विशाल सेना ने द्वार-रक्षक पठानों को तितर-बितर कर दिया और उसने फाटकों को तोड़कर भीतर प्रवेश किया। उसी समय गुलाबखाँ के पास दौड़ते हुए कुछ आदमियों ने कहा,

"शेर अफगन की हवेली पर चलो। इसकी बेगमों को नंगा करें और हवेली में आग लगाएँ।"

वे लोग तलवार भाँजते हुए भीड़ में से निकल गए। गुलाबखाँ भी पीछे-पीछे गया।

जिस समय वजीर के बाहरवाले सैनिकों ने मसजिद के फाटक तोड़े और भीतर प्रवेश किया तो बहुत से लोग भीतर धँस पड़े और बहुत से भीतर से बाहर निकल आए। जो लोग भीतर से बाहर आए उनमें गुलाबखाँ था और वे लोग भी, जिन्होंने शेर अफगन की हवेली पर आक्रमण करने की इच्छा प्रकट की थी।

गुलाब दौड़कर अफगन की हवेली पर पहले पहुँचा। उन लोगों को अपने साथी इकट्ठे करने में कुछ क्षण अधिक लग गए। सब हथियारबन्द थे। आग लगाने की सामग्री इकट्ठी करने में भी इनको थोड़ा-सा विलम्ब और लगा। काफी संख्या में ये लोग शेर अफगन की हवेली की ओर बढ़े।

(२५)

गुलाब खाँ हवेली के भीतर धँस गया, पहरेवालों ने घेर लिया।

गुलाबखाँ ने उकताहट में कहा, 'बलवाइयों की भीड़ हवेली पर हमला करने के लिए चली आ रही है। फाटक बन्द करो, खिड़कियों, झरोखों और तीरकशों पर बन्दूकें सँभाल कर बैठ जाओ। वे लोग आग लगाने और बेगमों को बेइज्जत करने के मन्सूबे से आ रहे हैं।"

सिपाहियों का कोई भी सरदार वहाँ न था। उन लोगों ने गुलाबखाँ की सम्मति को मान लिया। तुरन्त फाटक बन्द कर लिए और मारके के स्थानों पर हथियार सँभाल-कर जा बैठे।

गुलाबखाँ धड़धड़ाता हुआ अन्तःपुर में चला गया स्त्रियाँ हड़बड़ाहट में इधर-उधर भागीं। केवल शबनम और देवकी सामने रह गईं।

हवेली के दूसरे भाग में शुभकर्ण और उसके थोड़े से सिपाही बन्द थे, अन्तःपुर में आने का मार्ग रुद्ध था।

गुलाबखाँ ने हाँफ को सँभालते हुए कहा, "शबनम होशियार हो जाओ। घूँघट डाले आपके साथ यह कौन है ?"

शबनम ने जरा घबराकर उत्तर दिया, "मेरी बड़ी बहिन, रानी देवकी।"

गुलाबखाँ का मुँह सूखा हुआ था। उत्तेजित होकर बोला, "शुभकर्ण की रानी! तब तो उन लोगों को किसी सबूत की जरूरत नहीं पड़ेगी।"

शबनम--"किन लोगों को ?"

गुलाबखाँ—"बलवाइयों को, जो हवेली को खाक में मिलाने के लिए बढ़े चले आ रहे हैं।"

शबनम—"हम लोग क्या करें ?"

गुलाबखाँ—"शुभकर्ण को और इन सबको बाहर कर दीजिए, वे लोग आपका बाल-बाँका नहीं करेंगे।"

शबनम—"कभी नहीं, इन लोगों के मरने के पहले मैं मरूँगी।"

गुलाबखाँ—"आपके वालिद शौहर सब मस्जिद में फँस गए हैं और अब आपकी बरबादी की बारी आ रही है।"

शबनाम--"और आप जिन्दा हैं!"

गुलाबखाँ—"अपने वालिद का लिहाज करिए। वे आप लोगों के खिलाफ हैं, वजीरुद्दौला और जूताफरोशों के तरफदार हैं।"

शबनम—"वे मेरे वालिद नहीं। आप क्यों यहाँ आए ?"

गुलाबखाँ—"आपको आगाह करने के लिए। आपकी बेवफाई और अपनी बेहयाई को साबित करने के लिए।"

(क्रमशः)



हिन्दी में सरल संक्षिप्त लिपि की आवश्यकता

संयुक्त प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में हिन्दी के राजभाषा घोषित किए जाने के पश्चात् यह आवश्यक हो गया है कि हिन्दी की एक सरल व सम्पूर्ण संक्षिप्त लिपि हो। साथ ही हिन्दी में राजकार्य के समुचित सञ्चालन के लिए भी ऐसा होना आवश्यक है क्योंकि समुचित संख्या में हिन्दी के 'संक्षिप्त लेखकों' की उपलब्धि के बिना राजकार्य का हिन्दी में चलना सम्भव नहीं। नवम्बर, १९४७ से हिन्दी युक्तप्रान्त में राजभाषा घोषित की गई है। डेढ़ वर्ष के इस लम्बे समय में अँगरेजी के स्टैनोग्राफर हिन्दी की संक्षिप्त लिपि सीखने में सफल न हो सके। इसका मुख्य कारण है हिन्दी संक्षिप्तलिपि की सरल व सुबोध प्रणाली का न होना।

अँगरेजी में शार्टहैण्ड की सबसे सरल व सफल प्रणाली पिटमैन प्रणाली है और इसी के जाननेवाले अधिकतर हमारे देश में पाए जाते हैं। अङ्गरेजी की इस सुबोध प्रणाली का ज्ञान जिन लोगों को है, उनको हिन्दी की प्रचलित प्रणालियाँ बहुत ही क्लिष्ट जान पड़ती हैं और उनकी समझ में नहीं आता कि क्या सीखें, कहाँ सीखें और कैसे ? हिन्दी की प्रचलित प्रणालियों में अधिकतर पिटमैन का ही अनुकरण किया गया है परन्तु ये प्रणालियाँ अङ्गरेजी की पिटमैन प्रणाली से यद्यपि रेखाओं में तो मिलती-जुलती हैं परन्तु कई स्थानों में ध्वनि में विपरीत हैं। इस कारण अङ्गरेजी के स्टेनो-ग्राफरों को सीखने में बड़ी कठिनाइयाँ प्रतीत हो रही हैं। जिन संकेतों की ध्वनि को वे पिछले १५-२० वर्ष (तथा उससे भी अधिक) से स्वीकार करते आ रहे हैं, उनमें नवीन परिवर्तन-द्वारा कठिनाइयों का होना स्वाभाविक ही है।

यही नहीं, केन्द्र से अंगरेजी का मोह अभी तक दूर नहीं हुआ है, इस कारण अगले कई साल तक, हिन्दी तथा अंगरेजी दोनों ही भाषाओं में राजकार्य का किया जाना आवश्यक ही है। अतएव हमको ऐसे संक्षिप्त लेखकों की आवश्यकता है, जो हिन्दी तथा अंगरेजी दोनों ही में कार्य कर सकें। परन्तु हिन्दी की प्रचलित प्रणालियाँ पिटमैन की अङ्गरेजी प्रणाली के साथ व्यतिक्रम उत्पन्न करती हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति दोनों ही (पिटमैन प्रणाली तथा प्रचलित हिन्दी प्रणाली) में कार्य करने में सफल नहीं हो सकता।

हमारी आवश्यकता—इस दशा में एक सुबोध सरल संक्षिप्तलिपि की तो हमको आवश्यकता है ही, साथ ही हमारी आज की मुख्य आवश्यकता है एक ऐसी प्रणाली, जिसको पिटमैन-प्रणाली के अङ्गरेजी के स्टेनोग्राफर सरलतापूर्वक स्वल्प काल में सीख लें और जो अङ्गरेजी की प्रणाली के साथ व्यतिक्रम उत्पन्न न करे, जिससे हिंदी तथा अङ्गरेजी दोनों ही भाषाओं में सुगमतापूर्वक एक ही व्यक्ति एक ही साथ कार्य कर सके। यदि हम यह चाहते हैं कि हिन्दी शीघ्रातिशीघ्र राजकार्य में अङ्गरेजी का स्थान ग्रहण कर ले और हमारा राजकार्य सचिवालय से लेकर पटवारी के कार्यालय तक हिन्दी ही में हो तो ऐसी सरल संक्षिप्त लिपि को प्रोत्साहन देना हमारा प्रथम कर्तव्य होना चाहिए।

अब प्रश्न उठता है कि ऐसी सरल संक्षिप्त लिपि कौन हो सकती है, जो पिटमैन-प्रणाली के साथ व्यतिक्रम उत्पन्न न करे और अङ्गरेजी के स्टैनोग्राफर उसे आसानी से स्वल्प काल में सीख लें ? इसका उत्तर है अङ्गरेजी पिटमैन-प्रणाली के सिद्धान्तों तथा संकेतों को पूर्णतः ग्रहण कर लिया जाए और १०० वर्ष की परिमार्जित प्रणाली का लाभ उठाया जाए। यदि ऐसा किया जाए तो अङ्गरेजी के स्टैनोग्राफरों को हिन्दी संक्षिप्त लिपि

सीखना अति सरल हो जाएगा और वे हिन्दी तथा अंगरेजी दोनों ही भाषाओं में कार्य कर सकेंगे। परन्तु क्या यह सम्भव है ? यदि पिटमैन-प्रणाली को हिन्दी में ग्रहण किया जा सकता है तो हम नई प्रणालियाँ क्यों निकालें जब कि पिटमैन-प्रणाली के जाननेवाले सहस्रों की संख्या में हमारे यहाँ विद्यमान हैं ? अधिकतर लोगों का विश्वास है कि पिटमैन प्रणाली हिन्दी में नहीं ग्रहण की जा सकती। लेकिन यह बात सर्वथा गलत है। वास्तव में पिटमैन-प्रणाली को हिन्दी में ग्रहण करने का प्रयास ही नहीं किया गया है। हिन्दी के संक्षिप्त लिपि आविष्कर्ताओं ने प्रयोग करने के पूर्व ही यह मान लिया कि पिटमैन-प्रणाली पर हिन्दी लिखी ही नहीं जा सकती और आरम्भ ही से वे हिन्दी शार्टहैण्ड की खोज में इधर-उधर भटकने लगे। यदि पिटमैन-प्रणाली का ठीक दिशा में अनुकरण पहले ही कर लिया जाता अथवा इस ओर केवल प्रयोग ही किए जाते तो आदर्श हिन्दी शार्टहैंड कभी की प्रचलित हो जाती और उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी न होता। नीचे कुछ विशेषताएँ दी जाती है, जिनके आधार पर यह स्पष्ट है कि पिटमैन-प्रणाली का हिन्दी में ग्रहण करना तनिक भी कठिन नहीं है।

१. पिटमैन-प्रणाली का मूल सिद्धांत है ध्वनि-लेखन, अर्थात् शब्द जैसे सुने जाएँ, वैसे ही लिखे जाएँ। हमारी वर्णमाला भी ध्वनि के अनुसार ही है। इस प्रकार ध्वनि पर निर्भर पिटमैन-प्रणाली के संकेत हिन्दी में पूर्णतः ग्रहण किए जा सकते हैं।

२. अंगरेजी में २६ वर्णाक्षर हैं परन्तु ध्वनि सिद्धान्तनुसार २४ व्यंजन हैं और १२ स्वर, २६ वर्णाक्षरों में ५ स्वर हैं और २१ व्यंजन इन २१ व्यंजनों में से सी (c), क्यू (q) तथा एक्स (x) का स्वतंत्र अस्तित्व न होने के कारण वे भी कम किए गए तो १८ व्यंजन रहे। च, थ, द, फ, श तथा ञ के लिए स्वतंत्र व्यंजन रोमन लिपि में नहीं हैं परन्तु ध्वनि-सिद्धान्त के अनुसार इनका स्वतन्त्र अस्तित्व है। (त के अँगरेजी में न होने के कारण थ को स्वतंत्र रूप दे दिया गया अन्यथा थ का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं) । इसलिए ये व्यंजनों में बढ़ा दिए गए और ध्वनि-सिद्धान्त के अनुसार २४ व्यंजन बन गए, जिनके लिए पिटमैन ने संकेत निर्धारित किए। हिन्दी में ३६ व्यंजन हैं परन्तु ञ, ष, क्ष, त्र, ज्ञ, ऐसे व्यंजन हैं, जिनकी ध्वनि-सिद्धान्त के अनुसार आवश्यकता नहीं। इस प्रकार व्यंजन घटकर ३१ रहे। ३१ व्यंजन में ध्वनि के अनुसार ख, घ, छ, ठ, ढ, थ तथा घ क्रमशः क, ग, च, ट, ड, त तथा द के अनुगत हैं अर्थात् उनके उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि के साथ क, ग, च, ट, ड, त तथा द की ध्वनि का हल्का संमिश्रण है। यदि इनके लिए विशेष नियम बनाकर इनको संक्षिप्त लिपि के लिए स्वतन्त्र व्यंजनों की सूची में से निकाल लें तो स्वतन्त्र व्यंजन ३६ से घटकर केवल २४ ही रह जाते हैं। पिटमैन-प्रणाली में २४ संकेत विद्यमान हैं और हमें उनके हिन्दी में ग्रहण करने में कोई कठनाई भी नहीं हो सकती। यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि हम पिटमैन-प्रणाली की २४ रेखाओं को तो स्वीकार करते हैं पर हम उनकी ध्वनि में परिवर्तन क्यों न करें, अर्थात् हम इन संकेतों को वे ही ध्वनियाँ क्यों न दें, जो हमारी भाषा में अधिक प्रयुक्त होती हैं ? इसका उत्तर यह है कि पिटमैन ने इन संकेतों का भाषा-विशेष के अनुसार आविष्कार नहीं किया था वरन् शब्दों के उच्चारणस्थान तथा ध्वनि के अनुसार किया था। इन संकेतों के ध्वनि के अनुसार निर्मित किए जाने के पश्चात् अँगरेजी भाषा के अनुसार विभिन्न नियम बनाए गए, जो शनैः-शनैः उत्पन्न हुए। अतएव हमें इन प्राकृतिक व वैज्ञानिक सिद्धान्तों को न छोड़ना चाहिए, प्रत्युत इनको ग्रहण करने के पश्चात् संक्षिप्तलिपि को स्वयं बढ़ने का अवसर देना चाहिए। यही प्राकृतिक है, वैज्ञानिक है।

३. नागरी लिपि में मूलतः १६ स्वर हैं परन्तु हिन्दी में केवल १२ स्वर प्रयुक्त होते हैं। उधर पिटमैन-प्रणाली में भी १२ स्वर हैं। वास्तव में पिटमैन-प्रणाली में स्वरों का नियम नागरी लिपि ही से ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। इस तरह हिन्दी के १२ स्वरों को पिटमैन-प्रणाली में ग्रहण करना कठिन नहीं।

यह स्पष्ट है कि ध्वनि, व्यंजन तथा स्वर तीनों ही सिद्धान्तों के अनुसार पिटमैन-प्रणाली हिन्दी में ग्रहण की जा सकती है, तो फिर नई प्रणालियाँ आविष्कृत करके अँगरेजी के स्टेनोग्राफरों की कठिनाइयाँ क्यों बढ़ाई जा रही हैं ? नवीन प्रणालियों का अर्थ है उन सहस्रों अँगरेजी के संक्षिप्त लेखकों को फिर से हिन्दी संक्षिप्त लिपि

का कोर्स (पाठ्यक्रम) पूरा करने के लिए बाध्य किया जाए और साथ ही राजकार्य में भी बाधा पहुँचाई जाए।

उपर्युक्त कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए इन पंक्तियों के लेखक ने हिन्दी को पिटमैन-प्रणाली के अनुसार लिखना केवल प्रयोगार्थ आरम्भ किया, यह पूर्ण निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि पिटमैन-प्रणाली हिन्दी में पूर्णतः अपनाई जा सकती है और किसी प्रकार का व्यतिक्रम अंगरेजी शार्टहैंड के साथ उत्पन्न नहीं होता, अँगरेजी ही की भाँति तीव्र एवं सरल गति से कार्य किया जा सकता है। केवल कुछ शब्दाक्षर (ग्रामोलाग), संक्षिप्त शब्द तथा कुछ नियमों के अभ्यास मात्र से अंगरेजी का स्टेनोग्राफर बहुत ही कम समय में हिन्दी का संक्षिप्त लेखक बन सकता है। लेखक उन सरल नियमों को देश के सम्मुख रखकर राष्ट्रभाषा के संक्षिप्तलिपि के प्रश्न को हल करने के लिए अपनी सेवा अर्पण करने के लिए प्रस्तुत है।—घनानन्द फुलारा

भारतीय इतिहास पर जात-पाँत का प्रभाव

हमारे स्कूल और कालिजों में आज जो भारत का इतिहास पढ़ाया जाता है, वह भारतीय जनता का इतिहास नहीं, वह यहाँ के राजा-महाराजों और विदेशी आक्रमण-कारियों का ही स्तोत्रमात्र है। भारतीय जनता का इतिहास जितना शिक्षा-प्रद है, उतना ही रोचक भी है। पर वह इतिहास अभी लिखा नहीं गया, शायद आगे लिखा जाए। उस सच्चे इतिहास से ही जनता को ज्ञान हो सकेगा कि भारत की दीर्घकालीन दासता और हिन्दुओं के ह्रास का कारण क्या था और उस कारण को दूर किए बिना हमारी नव-प्राप्त स्वतंत्रता भी जोखिम में पड़ जाएगी। इस विषय में मैं अपनी ओर से कुछ न कहकर इतिहास की कुछ सत्य घटनाएँ ही आगे देता हूँ और उनसे परिणाम निकालने का काम पाठकों पर छोड़ता हूँ।

तेरहवीं शताब्दी की बात है। रतनजू नामक एक युवक काश्मीर की उपत्यका में आया। उस समय राजा महादेव काश्मीर का शासक था। रतनजू बड़ा साहसी और चतुर था। किसी प्रकार राज-सभा में उसका प्रवेश हो गया और वह उन्नति करते-करते एक ऊँचे पद पर पहुँच गया। वह शक था। उसका अपना कोई धर्म न था। उसका झुकाव हिन्दू-धर्म की ओर हो गया। वह एक पण्डित से प्रतिदिन गीता की कथा सुनने लगा। कथा जब गीता के अठारहवें अध्याय पर पहुँची और उसके ४७ वें श्लोक की व्याख्या करते हुए पण्डित ने कहा कि अपना धर्म चाहे विगुण भी हो तो भी उसे छोड़कर दूसरे का अच्छा धर्म ग्रहण करना भयावह है। यह सुनकर रतनजू ने पूछा—"क्या मैं आपका धर्म ग्रहण नहीं कर सकता?" पण्डित ने कहा, "बिलकुल नहीं।" इस उत्तर से हताश हो रतनजू ने निश्चय किया कि कल सवेरे मुझे जो भी व्यक्ति सबसे पहले दृष्टिगोचर होगा, मैं उसी का धर्म ग्रहण करूँगा। उसके इस निश्चय का पता बुलबुलशाह नामक एक मुसलमान फकीर को भी लग गया। वह बहुत सवेरे लोटा लेकर रतनजू के भवन के नीचे पहुँचा। उसे देख रतनजू ने उसे अपने निकट बुलाया और पूछा—"तुम कौन हो?"

बुलबुलशाह—"मैं मुसलमान हूँ।"

रतनजू—"क्या तुम मुझे अपने धर्म में ले सकते हो?

बुलबुलशाह—"इस्लाम का द्वार मनुष्य मात्र के लिए खुला है। मेरे लिए इससे बढ़कर हर्ष और सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है कि एक प्रमुख राजाधिकारी मेरा धर्म-बंधु बनना चाहता है।"

इस पर रतनजू मुसलमान हो गया और उसने इस्लाम का खूब प्रचार किया। उसके पुत्र शाहमीर ने राज-सिंहासन पर अधिकार करके राजा सहदेव के पुत्र की रानी कोना को बलात् घर में बैठाल लिया, पर रानी ने पेट में छुरा भोंककर आत्महत्या कर ली। कहते हैं जिन काश्मीरी पण्डितों ने मुसलमान बनने से इनकार किया, उनको रतनजू और शाहमीर ने बोरियों में बंद करके झेलम नदी में डुबा दिया। श्रीनगर में जहाँ ये लोग डुबाए गए थे, वह स्थान अब तक भी "बट मजार" कहलाता है।

ऐसी ही एक दूसरी घटना बंगाल की है। वहाँ के टिपरा जिले में माहीमाल या मछली बेचनेवाले मुसलमान रहते हैं। पहले ये हिन्दू कैवर्त थे। कहते हैं, एक समय इनके निकटवर्ती एक गाँव में बहुत जोर का हैजा फैला। उससे वहाँ के सब लोग मर गए। केवल एक छोटा सा बालक बच रहा। उस बालक पर एक कैवर्त स्त्री को दया आई। उसने बालक को लेकर पाल लिया।

वह गाँव मुसलमान जुलाहों का था। जब यह लड़का कुछ बड़ा हुआ तो चर्चा होने लगी कि यह तो मुसलमान का लड़का है। इसलिए जिस स्त्री ने उसे पाला है और जो लोग उस स्त्री के साथ खान-पान करते रहे हैं, वे सब धर्म-भ्रष्ट हैं, वे सब मुसलमान हैं। कैवर्तों ने समाज के नेताओं की बहुतेरी अनुनय-विनय की, क्षमा माँगी, पर उनकी एक न सुनी गई। उनको हिन्दू समाज से ढकेलकर बाहर निकाल दिया गया। वे कुछ दिन तक प्रतीक्षा में रहे कि अब भी हिन्दू-समाज उनको दुबारा अपनी गोद में ले लेगा। पर उनको हताश होना पड़ा। फलतः आज वे कट्टर मुसलमान हैं।

"आजाद काश्मीर" के प्रधान सरदार मुहम्मद इब्राहीम चिब जाति के राजपूत हैं। सुना है, कोई चार वर्ष हुए इस जाति के कोई डेढ़-लाख मुसलमानों ने काश्मीर-नरेश से प्रार्थना की थी कि हमें पुनः हिन्दू बना लिया जाए; हिन्दू हमारी बेटी लें और हमें अपनी बेटी दें। पर हिन्दू राजपूतों ने उनकी प्रार्थना को ठुकरा दिया। इन और ऐसी ही दूसरी घटनाओं का इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका पता आपको सन् १९४६ के नोवाखाली में, सन् १९४७ के पंजाब में होनेवाले विनाश और विध्वंस से लग सकता है। जिन श्री जिन्ना को भारत का विभाजन करानेवाला कहकर इतना कोसा जाता है, वे उस खोजा जाति के थे, जो कभी हिन्दू थी; जिसके लोगों के नाम आज भी पुरुषोत्तम, लालजी, हरजी, रत्नबाई, कुसुम बहन और केसरबाई आदि हैं। विवाह-शादी पर अब भी वे गणेश पूजा आदि कई हिन्दू अनुष्ठान करते हैं। इन लोगों ने बहुतेरा यत्न किया कि हिन्दू समाज इनको पुनः अपने में ले ले। श्री जिन्ना चालीस वर्ष तक कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्त्ता रहे। उनके नाम पर बम्बई में कांग्रेस हाल बनाया गया। पर हिन्दुओं ने न तो रोटी-बेटी के संबंध द्वारा मुसलमानों को अपने में मिलाया और न उनसे घृणा करना ही छोड़ा। फलतः प्रकृति को वह कर्म करना पड़ा, जो पहले कभी न हुआ था। भारत को काटकर उसने दो टुकड़े कर दिया। ९ वीं शताब्दी में काबुल में भी पालवंश के हिन्दू राजे राज्य करते थे पर आज अमृतसर के परे लाहौर में भी हिन्दू का नाम-निशान नहीं रहा।

मुसलमान और हिन्दू का ही झगड़ा हो तो शायद वह पाकिस्तान के अलग हो जाने से शान्त हो जाता और देश में शान्ति हो जाती। पर हम देखते हैं कि जाट और गैर जाट का, ब्राह्मण और अब्राह्मण का, द्विज और शूद्र का, कायस्थ और भूमिहार का, सवर्ण और अवर्ण का वैमनस्य भी हिन्दू-मुस्लिम कटुता का ऐसा ही रूप धारण कर रहा है। मद्रास की धारा सभा में उस दिन ब्राह्मणों और ब्राह्मणेतर की मैं-मैं तू-तू हुई थी, वह मेरी बात का प्रमाण है। हिन्दू-समाज ऊपर से नारङ्गी की भाँति एक प्रतीत होता है। पर ऊपर का छिलका फटते ही भीतर से अलग-अलग फाँकें गिरने लगती हैं। हिन्दुओं की विभिन्न जातियों का पार्थक्य नगर-समितियों, जिला बोर्डों और धारा-सभाओं के चुनाव के समय और भी स्पष्ट हो जाया करता है।

अब इतिहास की दो घटनाएँ और लीजिए।

शेरशाह सूरी के समय में हेमचन्द्र (हेमूँ बक्काल) नामक एक बनिए ने अपना नाम विक्रमादित्य रखकर हिन्दू राज्य स्थापित करना चाहा। उसने दिल्ली आदि कई स्थानों पर मुगल-सेनाओं को हराया परन्तु राजपूतों ने उसकी सेना में भर्ती होने से इन्कार कर दिया। वे कहते थे कि हम क्षत्रिय होकर नीच वर्ण के वैश्य के अधीन काम नहीं कर सकते। फलतः जब हेमचन्द्र को बैरमखाँ से हार हुई तो उन्हीं राजपूतों को मुसलमानों का दास बनने में किसी प्रकार के अपमान का अनुभव न हुआ।

और लीजिए—

काठियावाड़ गुजरात का एक ढेढ़ (अछूत) जब तक हिन्दू रहा, वर्ण-व्यवस्था के ठेकेदारों ने उसे उठने न दिया परन्तु ज्यों ही मुसलमान बनकर उसने अपना नाम नासिरुद्दीन खुशरू रक्खा त्यों ही उसने खिलजी वंश की सारी सत्ता अपने हाथ में ले ली। हिन्दू रहते हुए वह किसी क्षत्रिय स्त्री का स्पर्श तो दूर दर्शन भी न कर सकता था। मुसलमान बनकर उसने राजा कर्णराव की स्त्री देवल देवी के साथ, जिसे अलाउद्दीन ले आया था, विवाह कर लिया। उसने खिलजी राजघराने की स्त्रियाँ अपने बंधु-बान्धवों में बाँट दी। वह कुरान के ऊपर मूर्तियाँ रखाया करता था। वह चाहता था कि हिन्दू-राज्य की पुनः स्थापना करे पर सवर्ण हिन्दुओं ने एक अछूत की सहायता करने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार मलिक

काफ़ूर भी एक नीच जाति का गुजराती हिन्दू था, जो मुसलमान हो गया था।

और लीजिए—

जब अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया और पानीपत के मैदान में सदाशिवराव भाऊ ने उसका सामना किया, तब मराठों की वीरता और भाऊ के शौर्य को देखकर अब्दाली के छक्के छूट गए। उसने घोड़े पर से उतरकर ईश्वर से प्रार्थना की कि यदि इस बार मैं सकुशल स्वदेश को लौट सकूँ तो फिर कभी भारत की ओर मुँह न करूँगा। इसी बीच में एक दिन रात्रि के समय उसने मराठों की छावनी पर दृष्टि दौड़ाई तो क्या देखा कि सैकड़ों-सहस्रों स्थानों पर थोड़ी-थोड़ी आगें जल रही हैं। उसने पूछा—"ये क्या हैं?" उसे बताया गया कि मरहट्टा लोग एक दूसरे के हाथ का बना भोजन नहीं खा सकते। इसीलिए वे अपना अलग भोजन बना रहे हैं।

यह सुन अब्दाली को ढाढ़स बँध गई। वह बोला—"जो लोग आपस में इकट्ठा खा नहीं सकते, उन को जीतना क्या कठिन है?" दूसरे दिन जब बारह बजे तो मुसलमानों ने तो खुरजा में से निकालकर घोड़े पर बैठे-बैठे ही रोटियाँ खालीं परन्तु मरहट्टे अपना अपना खाना बनाने में लग गए। अब्दाली ने अवसर देख एकदम उन पर धावा बोल दिया। कोई मरहट्टा नहा रहा था, कोई दाल छौंक रहा था, कोई आटा गूँध रहा था कोई खा रहा था। लाखों सिपाहियों में से दो सहस्र भी अब्दाली का सामना करने के लिए तैयार न हो सके। फलतः मरहठा सेना में भगदड़ मच गई। भाऊ मारा गया।

भरतपुर के राजा सूरजमल ने भाऊ को परामर्श दिया था कि अब्दाली के साथ आमने-सामने होकर लड़ाई करना ठीक नहीं। उस पर छिपकर छापे मारने चाहिए। भाऊ ब्राह्मण था और सूरजमल जाट। भाऊ ने सूरजमल के परामर्श को ठुकराते हुए कहा था—

दोशालो फाटो भलो साबत भलो न टाट।
राजा भया तो क्या हुआ अन्त जाट-का-जाट॥

ठीक है, एक जाट शूद्र का दिया सत्परामर्श भी उच्च ब्राह्मण क्यों मानता? इतिहास में ऐसे ही बीसियों और भी उदाहरण हैं, जहाँ जातिभेद के कारण हिन्दुओं की पराजय हुई।

अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् ब्लूम फील्ड लिखते हैं—"इस समय लगभग २००० उपजातियाँ तो केवल ब्राह्मणों की ही हैं। पंजाब के अकेले सारस्वत ब्राह्मण ही ४६९ बिरादरियों में बँटे हुए हैं। क्षत्रिय लोग ५९० उपजातियों में विभक्त हैं और बनियों में छोटी-छोटी उपजातियाँ इनसे भी अधिक हैं। भारत में एक कहावत प्रसिद्ध है—"आठ कनौजिए, नौ चूल्हे।" ये सब जातियाँ और उपजातियाँ एक दूसरे के साथ रोटी-बेटी का व्यवहार बिलकुल नहीं करतीं।

दक्षिण बंगाल में कटक नाम का एक ज़िला है, वहाँ के कुछ कुम्हार तो बैठकर छोटे बर्तन बनाते हैं और कुछ खड़े होकर बड़े बर्तन। बस, केवल इतने से भेद के कारण इनकी पृथक् पृथक् बिरादरियाँ बन गई हैं। वे आपस में रोटी-बेटी-व्यवहार नहीं कर सकते। इसी प्रकार बहुत से ग्वाले, जो कच्चे दूध से मक्खन निकालते हैं, उन ग्वालों के साथ रोटी बेटी-व्यवहार नहीं कर सकते जो दूध का दही बनाकर मक्खन निकालते हैं। इसी प्रकार जो मछियारे दाहिनी ओर से जाल बुनते हैं, वे उन मछियारों के साथ खान-पान और ब्याह-शादी नहीं करते, जो बाईं ओर से जाल बुनते हैं। प्रत्येक जाति और प्रत्येक उपजाति सदा अपने को दूसरी सब बिरादरियों से पृथक् रखने में ही अपनी उच्चता समझती है। इसलिए उस पार्थक्य को बनाए रखने के लिए बिरादरियों के मुखिया सदा प्रयत्नशील रहते हैं। आश्चर्य तो यह है कि इन बनावटी बिरादरियों के इसी प्रकार के बेहूदा नियमों ने ही अब धर्म का रूप धारण कर लिया है। प्रायः हिन्दू लोग धर्म का लक्षण यही समझते हैं कि एक विशेष ढंग से खाना, विशेष ढंग से पीना और विशेष ढंग से विवाह करना। उस पर काले बादल की भाँति एक दूसरी संस्था—वर्णों की व्यवस्था, वरन् अव्यवस्था—स्थित है।

यह भयंकर असंगतियाँ और कड़े अत्याचार ही हिन्दू-समाज की वर्तमान दुर्गति के लिए एक बड़े अंश में ज़िम्मेदार हैं। इसी एक वर्ण-व्यवस्था के भीतर-ही-भीतर दीमक की तरह चाट जानेवाले गुण भारत को एक राष्ट्र नहीं बनने देते। "तीस करोड़ लोगों पर साठ सहस्र सैनिकों और साठ सहस्र सिविलियन विदेशियों का राज्य करना एक असंभव-सी बात जान पड़ती है।

पर इस जात-पाँत ने असम्भव को भी संभव कर दिखाया है।"

—दि रिलीजन ऑव दि वेदाज़, पृष्ठ ४।

भारतवासियों में देश-प्रेम की कमी का एक कारण भी जात-पाँत है। एक अँगरेज या एक फ्रेञ्च पहले अपने कुटुम्बियों से प्रेम करता है। उसके बाद उसके लिए सब अंगरेज या सब फ्रेंच समान होते हैं। परन्तु हिन्दू के प्रेम का बहुत सा अंश तो उसके कुटुम्बियों को मिलता है। उनसे जो बचता है, वह उसकी उपजातिवालों को और उनसे बचा हुआ उसके जातिवालों को और उनके बाद उसके धर्म-बन्धुओं को मिलता है। उनके बाद देश की बारी आती है। मनुष्य में प्रेम की मात्रा अमित नहीं रहती। देश तक पहुँचने के पहले ही वह चुक जाती है।

जात पाँत लोकराज का उलटा है। जहाँ जात-पाँत है, वहाँ लोकराज नहीं चल सकता। लोकराज में सब मनुष्य बराबर समझे जाते हैं, जात-पाँत ब्राह्मण को ऊँचा और भङ्गी को नीचा मानती है। वह दोनों को एक से अधिकार नहीं देती। इस समय हमारी समाज-व्यवस्था को बड़े जोर से ललकारा गया है। यदि आप जात-पाँत को रखना चाहते हैं तो आपको लोकतन्त्र का विचार छोड़ देना पड़ेगा। और यदि आप देश में सच्चा लोक-राज स्थापित करना चाहते हैं तो जात-पाँत का मिटाना आपके लिए अनिवार्य हो जाता है। लोकराज कोई लबादा नहीं, जो चाहे जिसके तन पर पहना दिया जा सकता है। यह तो एक मन की विशेष अवस्था है, जो संस्कार-द्वारा प्राप्त की जा सकती है। जब तक शिक्षा एवं प्रचार-द्वारा जनता को लोकतंत्री न बनाया जाए तब तक लोक-राज-पद्धति उनमें सफल नहीं हो सकती। स्वतन्त्रता हमें मिल अवश्य गई है। पर उसे स्थायी और सुरक्षित करने का काम अभी शेष है। यदि जात-पाँत को न मिटाया गया तो यह लोकराज सब लोगों का राज न होकर केवल थोड़े से मनुष्यों का शासन होकर रह जाएगा, सर्व-साधारण के लिए यह केवल शासकों का ही परिवर्तन सिद्ध होगा। और यह बात हमारी स्वतन्त्रता के लिए घातक हो सकती है। भारत के इतिहास से हमें यही शिक्षा मिलती है।

—सन्तराम बी० ए०

दो गीत

(१)

विहग ने एक गीत गाया।
पुलकित विमल दिशाओं के तन
नवल लता कम्पित तरुवर तृण
सरस समीरण नूपुर रुनझुन
नयन प्राण भाया।
छूटे नभ से किरण कुसुम शर
अग-जग मुग्धप्राण भावों भर
युग युग की प्राचीन धरा पर
यौवन बरसाया।
मदिर स्वप्न परियों की चितवन
मुस्काती मधुस्नात सरल मन
विमल सीकरों के घूँघट से
कलियों की छाया।
अपने ही पंखों पर आश्रित
मैं अपने ही मन से शासित
जग जीवन का नाप अपरिमित
लघु करने आया।

(२)

एक विहग सुकुमार
तैर रहा गहरे नभ का।
तूफानी पारावार।
सूर्य अस्त सा होता जाता
धूल तरंग सिन्धु लहराता
काँप रहा है जड़ से चेतन
तरुओं का परिवार।
चिर अनजान अचिर सुखभूला
नव निर्माण स्वप्न में फूला
ढोए लिए चला आता है
विरस तृणों का भार।
नयनों में अभिलाषा छलकी
आज गया चिन्ता है कल की
वर्तमान से बाँध रहा है
भावी का अधिकार।
जिसको इसने जान न पाया
कब अदृष्ट भय से घबराया
इसीलिए तो बना हुआ है
कर्मवीर संसार।

—नीरव, एम० ए०

विचार-विमर्श

मुद्रा-प्रणाली और अर्थ-व्यवस्था

प्रोफेसर केदारनाथ गुप्त, एम० काम०, साहित्यरत्न

आज का युग यन्त्रप्रधान युग है। हम उत्पादन की कल्पना करते ही मशीन की कल्पना कर बैठते हैं। मनुष्य की अधिकांश भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति मशीन के द्वारा ही सम्भव है। अतः हमारा आज का पार्थिव जीवन यन्त्र की धुरी पर अवस्थित कहा जाए तो कुछ अत्युक्ति न होगी। इँगलैंड की औद्योगिक क्रांति और अणुबम के बीच का काल एक प्रकार से इस यन्त्र-प्रधान युग का इतिहास है जब कि हम पाते हैं कि आँखों को चकाचौंध कर देनेवाले और कल्पना को थका देनेवाले यन्त्र-सम्बन्धी आविष्कार हुए हैं। उत्पादन के क्षेत्र में आज की मशीनें विश्वकर्मा की किंवदन्तियों को भी लजा देनेवाले कार्य कर रही हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि उत्पादन और उपभोग के बीच प्रायः बहुत बड़ी खाई-सी हो गई है। आज के उद्योग-प्रधान देशों के सामने यह समस्या नहीं है कि कितना उत्पादन किया जाए बल्कि यह पीड़ाजनक है कि उत्पादित वस्तुओं की खपत में किस प्रकार शीघ्रता तथा बहुलता लाई जाए। यही कारण है कि प्रायः सभी देश, जिन्होंने उद्योग-धन्धों में कुशलता तथा अग्रगण्यता प्राप्त की है, इस बात की अनवरत चेष्टा करते हैं कि किन विधियों से वे औरों की अपेक्षा औद्योगिक दौड़ में आगे बढ़ जाँए।

इन प्रयत्नों के फलस्वरूप दो अहम् समस्याओं का हमारे युग को मुकाबिला करना पड़ रहा है। एक तो यह कि किस प्रकार एक देश की अर्थ-व्यवस्था दूसरे देश की अर्थव्यवस्था से अपेक्षाकृत सबल और दृढ़ बनाई जाए, जिसमें उसके बाजुओं में दूसरे देश की अपेक्षा ज्यादा शक्ति हो। दूसरी ओर उद्योग तथा उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ यह समस्या भी आ गई है कि कच्चे पदार्थों के कल-कारखानों में आने और निर्मित वस्तुओं के उपभोक्ताओं के बीच विनिमित होने के बीच को जो अवधि है, उसमें उत्पादन में सम्मिलित होनेवालों (भूमिपति, श्रमिक, पूंजीपति तथा उद्योगपति) को उनका पारिश्रमिक किस प्रकार दिया जाए क्योंकि उत्पादन के श्रीगणेश और विनिमय के इतिअध्याय के बीच की जो समय-सम्बन्धी खाई है, उसको पाटना आवश्यक ही नहीं प्रत्युत अनिवार्य है। बृहत्काय उत्पादन और केन्द्रीभूत व्यक्ति-साह्य व्यवस्था के कारण यह खाई और भी बढ़-सी गई है।

भिन्न-भिन्न देशों के द्वारा काम में लाई गई आयात-निर्यात-सम्बन्धी रुकावटों, उत्पादन-सम्बन्धी जटिलताओं तथा राजनीतिक शतरंजी चालों पर, जिनका अभिनय १६१४ और १६३६ के विश्वव्यापी युद्धों के बीच किया गया, ध्यान दे तो आसानी से यह बात समझ में आ जाती है कि पहली समस्या अर्थात् अपेक्षाकृत आर्थिक सबलता की प्राप्ति का समाधान किस प्रकार ढूँढ़ निकाला गया। इस विषय की बृहत्तर गवेषणा हमारा अभीष्ट इस निबन्ध में नहीं है।

हाँ तो इसकी समस्या की पूर्ति याने उत्पादन और उपभोग के बीच की खाई के पाटने--का भार हमारे युग की मुद्राप्रणाली को दिया गया। यही कारण है कि आज की मुद्राप्रणाली और अर्थव्यवस्था का सम्बन्ध दूध-पानी का सम्बन्ध हो गया है। फलस्वरूप हम पाते हैं कि उत्पादन का क्षेत्र ज्यों-ज्यों विस्तृत होता गया तथा उत्पादन में श्रमिकों के व्यक्तित्व का ज्यों ज्यों ह्रास होता गया अथवा यों कहिए कि श्रमिकों और उद्योगपतियों का सम्बन्ध ज्यों-ज्यों परोक्ष होता गया, त्यों-त्यों मुद्राजनित विनिमय की अनिवार्यता बढ़ती गई। यह भी एक आर्थिक स्वयं-सिद्धि है कि वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय का ढंग जितना ज्यादा परोक्ष होगा, मुद्रा की अनिवार्यता उतनी ही बढ़ती जाएगी। और आज तो हम देखते हैं कि मुद्रा-हीन उपभोक्ता की आवश्यकता आर्थिक दृष्टिकोण से आवश्यकता की श्रेणी में आ ही नहीं सकती, क्योंकि इस

उपभोक्ता के पास अपनी माँग की पूर्ति करने का कोई साधन उपलब्ध नहीं है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मुद्रा आज के जीवन की संचालक तथा आज के उत्पादन की विधायक है। अर्थशास्त्र का प्रारम्भिक ज्ञान हमें बताता है कि मुद्रा के प्राथमिक कार्य हैं—उपभोग्य तथा विनिमय-साध्य वस्तुओं के बीच मध्यवर्त्ती होकर विनिमय को सम्भाव्य बनाए तथा वस्तुओं का मूल्याङ्कन करे, मूल्यों को स्थानान्तरित करे, वस्तुओं के पारस्परिक मूल्यों के विनिमय का माध्यम बने तथा मूल्यों का संचयकरण भी करे। यहाँ मूल्यों से अर्थ उपभोक्त वस्तुओं में निहित उस तत्त्व से है, जिसकी उपलब्धि उपभोक्ता की आवश्यकताओं की पूर्ति कराती हो तथा जिसे अर्थशास्त्री उपभोग और उपभोक्ता के बीच का सम्बन्ध बताते हैं।

कहने का अर्थ यह है कि मुद्राप्रणाली जिसे प्रथमतः विनिमय-सम्पादन ही साध्य या एक बहुत बड़ी शक्ति का पुंजमात्र हो गई है और हमारी आर्थिक व्यवस्था प्रायः इसी की सीमा से मर्यादित है। मुद्रा में इस शक्तिसंचय का सीधा अर्थ यह हो गया है कि मुद्रा की बहुलता वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य को बढ़ाए तथा इसकी न्यूनता इनके मूल्यों को कम कर दे। इतना ही नहीं हमारे अभी ताजे अनुभव यह बताते हैं कि एक बार मुद्रा की अपेक्षाकृत बहुलता यानी मुद्रास्फीति की अवस्था पहुँच जाने पर समाज की मानसिक व्यवस्था इसकी बहुलता से उत्पन्न हुए दुर्गुणों से इतनी ज्यादा प्रभावित तथा सम्बद्ध हो जाती है कि फिर पीछे की ओर जाना प्रायः असम्भव हो जाता है। देखा यह गया है कि चलन की मुद्रासंख्या में वस्तुतः कमी करने के उपरान्त भी उपभोग तथा जीवन-निर्माण वस्तुओं के मूल्य में कोई कमी नहीं आई। इसके प्रतिकूल यह भी एक कटु सत्य है कि गत विश्वव्यापी आर्थिक गिरावट (Economic-Dipression) के समय कुछ देशों ने तीव्रता से गिरते वस्तुओं के मूल्यों में अटकाव देने के लिए चलन में अतिरिक्त सिक्कों की संख्या बढ़ाई लेकिन तब भी मूल्यों का अधःपतन नहीं रुका।

इसका निष्कर्ष यह निकला कि जन-साधारण मुद्रा की अपरिमित शक्ति के वशीभूत होकर यह सोचना भूल जाता है कि मुद्रा किसी उद्देश्य की साधक है, स्वयं साध्य नहीं। वह उद्देश्य है जीवनोपयोगी वस्तुओं तथा सेवाओं की उपलब्धि। यानी मुद्रा भृत्य है प्रभु नहीं। अब हम यह आसानी से कह सकते हैं कि मुद्रा-सम्बन्धी जन साधारण के बीच मनोवैज्ञानिक जड़ता ही हमारी आर्थिक विषमता का प्रधान कारण है। लेकिन मुद्रा-प्रधान अर्थव्यवस्था में जन साधारण के मस्तिष्क से यह धारणा कतई नहीं मिटाई जा सकती कि रुपया उसका सब कुछ है क्योंकि जनसाधारण के हाथ का एक रुपया उसके जीवन का सर्वस्व है।

अतएव हमारा अभीष्ट एक ऐसी अर्थव्यवस्था है, जिसमें मुद्राप्रणाली की इस अपरिमित शक्ति का समुचित विघटन या अपहरण कर दिया जाए। तभी मूल्यों के उतार-चढ़ाव की विभीषिका से जनसाधारण के जनपद को तथा उसकी रोटी को निरापद रखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में हमारा मतलब तटस्थ या दोषरहित मुद्राप्रणाली से है। तटस्थ मुद्राप्रणाली से अभिप्राय एक ऐसी मुद्राप्रणाली से है, जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था का स्तर या उसका ढाँचा ठीक नहीं किया जाए, वरन् अर्थव्यवस्था के अनुसार ही मुद्राप्रणाली का स्वरूप तथा उसका ठीक प्रकार निश्चित किया जाए। यहाँ पर प्रसंग-वश तथा विषय को बोधगम्य बनाने के लिए पूंजी-प्रधान आर्थिक व्यवस्था के बारे में भी एक दो शब्द कह देना उचित होगा, जिसमें व्यवस्थापक मुद्राप्रणाली को स्वतन्त्र तथा निरंकुश छोड़ देते हैं और जोर केवल उत्पादन पर देते हैं। उनका कथन है कि उत्पादन की बहुलता समाज की दरिद्रता तथा सामाजिकों की विपन्नता को दूर कर देने के लिये पर्याप्त होगा। उन्हें यह नहीं दीखता कि निरंकुश मुद्राप्रणाली उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ताओं के बीच वितरण करने में कितनी विषमता उत्पन्न कर देती है क्योंकि उपभोग का मापदण्ड मुद्रा के रूप में संचित उपभोक्ताओं की क्रयशक्ति है न कि उनकी जीवनोपयोगी आवश्यकता। कहने का सारांश यह है कि पूँजी-प्रधान अर्थव्यवस्था में उत्पादन-सम्बन्धी अड़चनों को दूर करने की चेष्टा तो की जाती है लेकिन वितरण-सम्बन्धी विषमताओं की ओर किसी का ध्यान भी नहीं जाता। आखिर इससे बढ़कर भी कोई हास्यास्पद बात हो सकती है! उत्पादन में योगदान देनेवाले श्रमिकों का पारिश्रमिक भी यदि मुद्रा की विभीषिका से उत्पन्न वितरण सम्बन्धी विषमता के कारण पर्याप्त और

सन्तोषजनक नहीं होता तो फिर वे असन्तुष्ट श्रमिक किस प्रकार अबाध गति से उत्पादन बढ़ा सकते हैं। जन-साधारण या श्रमिक बीस या पचास रुपए नहीं चाहता प्रत्युत वह अमुक परिमाण में कपड़े तथा इसी प्रकार अन्य वस्तुओं का निश्चित परिमाण चाहता है।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि यदि सिक्कों को विनिमय का साधन तो रहने दिया जाए लेकिन मूल्याङ्कन के मध्यम-पद से उन्हें हटा दिया जाए तो आज की अधिकांश अड़चनें आसानी से दूर हो सकती हैं। चूँकि वस्तुओं का मूल्यमाप भी सिक्के करते हैं इसीलिए इनकी वृद्धि और कमी मूल्यों को कम अधिक कर देती है।

यह कार्य बहुत अंशों में तटस्थ मुद्राप्रणाली के द्वारा सम्पादित हो सकता है। इंगलैंड के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जी० डी० एच० कोल महोदय ने अपनी पुस्तक Money its Present and Future में तटस्थ मुद्रा की युक्ति-संगत व्यवस्था बतलाई है।

लेकिन पाठकों को यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि तटस्थ मुद्रा-प्रणाली किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था से कोई भिन्न वस्तु नहीं है वरन् तदनुकूल है। तटस्थ मुद्राप्रणाली को पृष्ठभूमि में प्रायः निम्न-लिखित बातों की परमावश्यकता है—

(१) मुद्राप्रणाली तथा अर्थप्रणाली का द्विपक्षीय गठन, (२) आयस्तर तथा मूल्यस्तर के संतुलन को बनाए रखना, (३) उद्योग-धन्धों, विशेषतया केन्द्रीय बैंक तथा इसी तरह के महत्त्वपूर्ण मुद्राप्रणाली से संबद्ध संस्थाओं का राष्ट्रीकरण।

आर्थिक योजना के द्वारा पहले जन-साधारण के जीवनस्तर को ऊपर उठाना होगा तभी हम यह जान सकते हैं कि कैसी मुद्राप्रणाली उपयुक्त होगी। आर्थिक योजना का ध्येय सर्वहितों की अभिवृद्धि तथा जनसाधारण के जीवन में सर्वोदय। यहाँ पर सिक्कों के परिमाण का निर्धारण लोगों की आय के स्तर के अनुसार होगा।

इसके पश्चात् वस्तुतः आर्थिक विषमता का उत्तर-दायित्व आय और मूल्य के स्तरों के संतुलन के बिगड़ने पर किया जा सकता है। अतः आवश्यकतानुसार मुद्राप्रसार तथा मुद्रासंकोच की नीति मूल्य और आय के स्तर में सन्तुलन बनाए रहने में काफी सहायक सिद्ध हो सकती है। इसलिए यदि श्रमिकों तथा कार्यक्षम व्यक्तियों की आय तथा तदनुकूल क्रयशक्ति का अंकन यदि मुद्रा में न होकर इकाई तथा इसी तरह अन्य गणना सुलभ साधन में हो तो वास्तव में पर्याप्त मात्रा में हम मुद्रा की अपरिमित शक्ति को मर्यादित कर सकते हैं। कहने का सारांश यह है कि मुद्रा ऋण चुकाने तथा विनिमयांतर्गत लेन-देन करने का माध्यम तो रहे लेकिन उपभोक्ताओं की क्रयशक्ति तथा वस्तुओं में निहित उपभोग्य तत्वों के नापने का माध्यम न रहे तो मूल्य-परिवर्तन के तांडव से समाज निरापद रहे।

लेकिन यह तभी सुलभ हो सकता है जब उद्योग-धन्धों, बैंकों तथा भूमि का उत्तरोत्तर राष्ट्रीकरण हो और शासन ही समाज के प्रतिनिधि के रूप में उद्योगपति तथा देश के लोग श्रमिकवर्ग हों। सेन्ट्रल बैंक का राष्ट्रीकरण उपर्युक्त योजना के अंतर्गत प्रायः अनिवार्य-सा हो जाता है क्योंकि मुद्रासम्बन्धी उलट-फेर का उत्तरदायित्व व्यक्ति-साध्य संस्थाओं के ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता।

अमर कवि

विद्वान् के० एस० चिदम्बरम्, 'भारद्वाजन्', बी० ओ० एल०

किसी ने कहा है—कवि पैदा होता है, बनाया नहीं जाता। ऐसे कितने ही कवि अभी तक पैदा हुए हैं। लोग कहते हैं कि उनमें कई मर भी गए। मरे हुओं की श्राद्ध-तिथियों को धूमधाम से मनानेवाले लोगों की भी आज कमी नहीं है। कोई यह नहीं मानता कि कवि, जो बनाया नहीं जाता, कभी मरता भी नहीं है पर वह अमर होता है। कवि जब पैदा हुआ, तीनों कालों का हो जाता है, सिर्फ भूत या वर्तमान का नहीं। वह कहता भी तो यही है—

'वर्तमान मेरा किंकर है और भूत मेरा अनुचर,
कौन करेगा समता मेरी ? है भविष्य भी मेरा चर।
वस्तु देश या काल हमारा है प्रभाव सबके ऊपर ॥'

वह किसी से नहीं डरता, पर सब उससे डरते हैं। उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता पर वह सभी का सब कुछ बिगाड़ सकता है। वह सर्वशक्तिमान् है। विकराल कालपुरुष भी उसके वश में है, तभी तो वह कभी नहीं मरता। वह चिरंजीव है, इसलिए आँजनेय, विभीषण, अश्वत्थामा जैसे चिरंजीवियों के समान कभी-कभी अदृश्य हो जाता है अवश्य। पश्चिमवालों की बातों को बिना

किसी प्रकार की आनाकानी के सच्ची मान लेने के आदी हम पूर्ववाले, उन चिरंजीवियों की बातों को असत्य (Myth) माने बैठे हैं, और वैसे ही कवि को भी निःसंकोच मरा हुआ मान लेते हैं। लोगों ने समझा, कबीर मर गए क्योंकि उनका भौतिक शरीर काठ-सा उनके सामने पड़ा था। उस शरीर पर कफन पड़ा। तब उधर एक वाग्वाद छिड़ा। उनके शिष्यों में हिन्दू भी थे, मुसलमान भी। हिन्दू कहते थे—शरीर को जला देना है, मुसलमान कहते थे—गाड़ देना है। इस प्रकार जो हिन्दू-मुसलिम एकता का बड़ा उपदेशक था, उसी के निश्चेष्ट शरीर के कारण, शिष्यों में यह वाग्वाद छिड़ा। अचानक किसी की नजर उस जगह पर पड़ी, जिधर कबीर का शरीर लिटाया गया था। वहाँ पंचभूतात्मक शरीर नहीं था, फूल ही फूल थे। कहते हैं, हिन्दुओं ने आधे फूल लेकर जला दिए और मुस्लिमों ने आधे गाड़ दिए। तब कबीर कहाँ गए थे? क्या वे सचमुच इस दुनिया से कूच कर गए थे? गए होते तो उधर के वाग्वाद का यों अन्त कर देनेवाला कौन था? यह सब सोचने को हमें समय नहीं मिलता। वे अदृश्य हो गए। तब जो अदृश्य हुए, अभी तक अदृश्य ही हैं। पर आखिर एक दिन प्रकट होना ही पड़ेगा उन्हें। उस दिन वे कई जीवों पर नाचते दिखाई देंगे। उनका वह पहले का संकुचित आकार दिखाई नहीं देगा। दुनिया भर में विस्तृत 'विश्वरूप' में वे दर्शन देंगे। यही कवि हैं।

कालिदास और शेक्सपियर भारत और ब्रिटेन के होकर अस्त हुए पर आज वे दुनिया के होकर प्रकट हुए हैं। दुनिया भर के लोग आज उनसे परिचित हैं। कवि सार्वभौम होता है चाहे वह किसी भी देश में पैदा हुआ हो पर उसकी सार्वभौमता उसके सेवकों पर निर्भर करती है। अतः हर कवि को सार्वभौम करा देने की कोशिश ही उसकी सेवा है।

दुनिया में कई भाषाएँ हैं। देश-देश के साथ भाषा भी बदलती है। भिन्न-भिन्न भाषाओं के कई प्रान्त हमारे देश में हैं। हर प्रान्त के, हर भाषा के, कई कवि हुए हैं, होते हैं, होंगे। वे सब हमेशा के लिए, उन-उन प्रान्तों ही के नहीं रह जाएँगे। एक दिन होगा, जब वे सारी दुनिया के हो जाएँगे। तब हम सारे देश के लोगों के साथ मिलकर उनका स्मारक बना देंगे। और क्या-क्या नहीं करेंगे। जो कुछ करेंगे, वही थोड़ा होगा पर अभी जब कि वे हमारे ही बीच रह रहे हैं, हम उनकी परवाह भी नहीं करते। जिस इन्सान का नाम आज दुनिया भर में प्रसिद्ध है, वह उन दिनों, कहते हैं, कौड़ी-कौड़ी का मोहताज था। गोल्डस्मिथ को अपने जीवन-निर्वाह के लिए 'विकार आफ़ वेकफ़ील्ड' को मिट्टी के मोल बेच देना पड़ा। इसी शोचनीय अवस्था में जीवन बितानेवाले कितने ही कवि, हमारे देश में भी हुए हैं, अब भी कहीं कहीं हैं।

अभी कल की बात है। तमिषनाड् के एक गाँव में एक कवि पैदा हुआ। न पढ़ा, न लिखा, मानों स्कूली शिक्षा में, उसके सीखने लायक कुछ नहीं था। खेलता-खाता, छोटी-मोटी कविता करता, बढ़ता जाता था। खेल खेल में, गाँव के जमींदार के दर्बार से 'भारती' की उपाधि हासिल कर ली। बड़ा हुआ, पति हुआ, पिता हुआ सबकी सेवा करता था, उसकी सेवा करनेवाला कोई नहीं था। बड़ी गरीबी में उनके दिन बीते, हाँ, उनके कुटुम्ब की दाल-रोटी चलती थी, यही बस। एक दिन वह अस्त हुआ। अब कुछ दिन हुए, वे फिर प्रकट होने लगे हैं। उनके नाम पर मंडप बनाए जा रहे हैं, उनकी संतानों का बड़ा आदर होता है, उनकी कविताओं का प्रचार जोरों से हो रहा है। आज तमिषनाड् ही का नहीं, भिन्न भिन्न भाषा-भाषी प्रान्तों का बच्चा बच्चा तक उनके सरल देशीय गीत गाने लगा है। अब कौन कह सकता है कि 'भारती' मर गए?

उनका पूरा नाम 'सुब्रह्मण्य भारती' था। उनके देशीय गीत बड़े प्रभावशाली होते हैं। भारत की भूतपूर्व अङ्गरेज सरकार को उनके गीतों से बड़ा डर होता था। उनकी कृतियाँ जब्त की गई थीं पर अब उनके गीत बोलपटों में भी हम सुनते हैं। उनके ऐसे गीतों में 'वन्दे मातरम्' का एक गीत है। उसमें भारतीयता का थोड़े में परिचय देते हुए वे मजे से गा उठते हैं—

'ओन्ड्रु पट्टालुण्डु वाष्वे—नम्मिल्
ओट्रुमै नीङ्गिल् अनैवर्क्कु ताष्वे।'

'अगर हम सब एक हो रहे तो हमारी जिन्दगी बनी रहेगी। एकता चली गई तो सबका अधःपतन निश्चित है।' उनके इस विचार का परिचय देनेवाली एक छोटी सी कहानी उन्हीं की कही हुई है, जो यहाँ दी जाती है।

वही हमें बता देगा कि ऐसे उच्च आदर्शवाला जीव कभी नहीं मर सकता।

वे एक दिन अपने एक मित्र के साथ बातें कर रहे थे। सामने से होकर एक कीड़ा धीरे-धीरे चल रहा था। उसे देखकर उन्होंने कहा—'देखो, यह कितना सुन्दर है! इसका शरीर कितना सीधा है। यह सचमुच एक श्रेष्ठ ज्ञानी है। यह भूत-भविष्य की चिन्ता कभी नहीं करता। यह जानता है कि उतावला सो बावला। इसने मानों सारे शास्त्र पढ़े हैं।

"इसका जन्म मशहूर पानी में हुआ। इसके रिश्तेदारों में कई सुन्दर पङ्खवाले हैं। आकाश में उड़ उड़कर उन लोगों ने सारे तत्त्वों का परिचय पाया है। ऊँची शाखाओं पर जाकर फूलों से मधु पीकर उन्होंने मौज उड़ाया है। इसमें सत्वगुण बहुत है। अपने भोजन के लिए यह दूसरे जीवों को कभी नहीं मारता। 'अहिंसा परमो धर्मः'—नियम का यह माननेवाला है।

"पर देखो उन चींटियों को। कितनी भद्दी आकृति है उनकी! बिलकुल कुरूप हैं वे। शरीर में थोड़ा भी मांस नहीं। बिना मांस के ये जीव कैसे? पढ़ना लिखना कुछ नहीं। पर हैं ये निरन्तर प्रयत्नशील। अब तो पेट भर गया पर वे रुकीं नहीं, कल के लिए खाना खोजने चली गईं। गर्मियों में बरसात के लिए खाना इकट्ठा करेंगी। हमेशा इन्हें जल्दी-ही-जल्दी है। इनमें किन्हीं-किन्हीं के पंख भी होते हैं पर वे तितलियों के जैसे ऊँचा उड़ने में असमर्थ हैं। भद्दी और कमजोर होती हैं वे। इन चींटियों को सत्वगुण छू तक नहीं गया है। बड़ी क्रुद्ध और अत्याचारी हैं। भूख मिटाने के लिए किसी भी जीव को ये मार लेती हैं।

"एक कीड़ा यों स्वेच्छा से चल रहा था। एक चींटी उसके पास आई। कीड़े ने कहा—'चल जा, दूर हट जा, पास मत फटक'। क्यों? जानते हो? चींटी मांसभक्षिणी है। अज्ञान का साकार रूप है। यह बात कीड़े को मालूम थी, इसीलिए उसने ऐसे कहा।

"पर चींटी थी तो हठी। उसने कीड़े की बात सुनी अनसुनी कर दी। वह उसके पास तक चली ही गई। कीड़े ने पूछा—क्यों आई इधर?

"चींटी ने कहा—तुझे खाने के लिए।

"कीड़े ने सोचा—अरे कम्बख्त, क्या तूने मेरा आकार देखा? इतनी छोटी आकृति लेकर, मेरे सामने आने की हिम्मत तुझे कैसे हुई? फिर कहा—तुम्हारी हिम्मत अभी चूर-चूर हो जाती है देखो। अभी हट जा इधर से, वरना तुझे मैं पीस डालूँगा।

"चींटी ने उसकी सुनी ही नहीं। वह कीड़े के बहुत पास पहुँच गई और उसके शरीर के मध्य भाग को अपने छोटे-छोटे दाँतों से काटती खड़ी रही।

"कीड़ा दर्द से चिल्ला उठा—अरी बदमाश, छोड़ दे, छोड़ दे। अरी शैतान, तेरा सत्यानाश हो जाए।

"चींटी अब भी हटी नहीं। तब कीड़ा प्रार्थना करने लगा—अरे भाई, बड़ा दर्द हो रहा है। तुम्हें लाख बधाई है। जरा छोड़ तो दो, दर्द सहा नहीं जाता।

"इसका भी चींटी पर कोई असर नहीं पड़ा। पर अब तक चींटी समझ गई कि इतने भारी कीड़े को वह अकेले घसीट नहीं ले जा सकेगी। इसलिए वह उसे वहीं छोड़कर चली। कीड़े ने सोचा—गई वह कम्बख्त। अब मैं बचा। धीरे-धीरे वह चला और एक पौधे के साए में जाकर मानों ईश्वर का ध्यान करने लगा।

"अब तक वह चींटी दो-चार साथियों को लेकर वहाँ वापस आई। उसे आते देख कीड़ा थरथरा उठा और कहीं भाग खड़े होने की कोशिश में लगा।

"चींटियों में बड़ी एकता है। आपस की सहायता का ख्याल उनमें ज्यादा है। कीड़ों में यह बात बिलकुल नहीं होती। उन्हें सिर्फ अपनी-अपनी चिन्ता होती है। शायद उनका विचार है—हमें अपनी बात से मतलब है। दूसरों की मदद करने चलें तो कहीं हमें भी मुश्किल में फँस जाना पड़े। अतः कीड़ा कहीं भी भाग कर जाता, उसकी मदद करनेवाला कौन हो सकता है? आखिर उन सभी चींटियों ने उसे आकर घेर लिया और खा डाला।

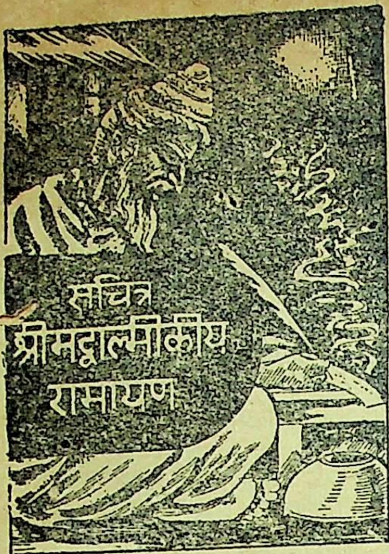
"इसलिए मैं कहता हूँ"—महाकवि भारती ने फिर दुहराया—

"ओन्ड्रु पट्टालुण्डु वाऴ्वे—नम्मिल्
ओट्रुमै नीङ्गिल् अनैवर्क्कुम् ताऴ्वे,
नन्ड्रिदु तेर्न्दिडल् वेण्डुम्—इन्द
ज्ञानं वन्दाप्पिन् नमक्केदु वेण्डुम्?
'वन्दे मातरम्' एन्बोम् ॥"

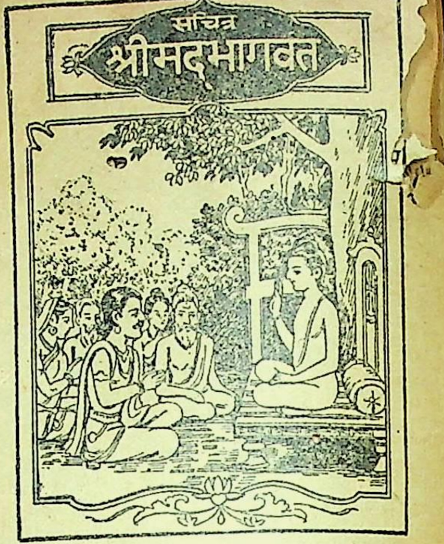
प्रकाशक और मुद्रक—के० मित्रा, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग



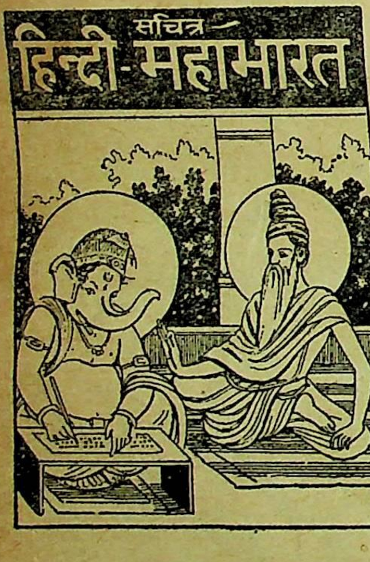
टीकाकार—रायबहादुर डाक्टर श्यामसुन्दरदास। यह संस्करण अपने ढंग का एक ही है। प्रामाणिक पाठ है। सीधी सरल भाषा में अर्थ है। रंगीन और सादे चित्रों की भरमार है। बढ़िया जिल्द है। मूल्य १२) बारह रुपए।



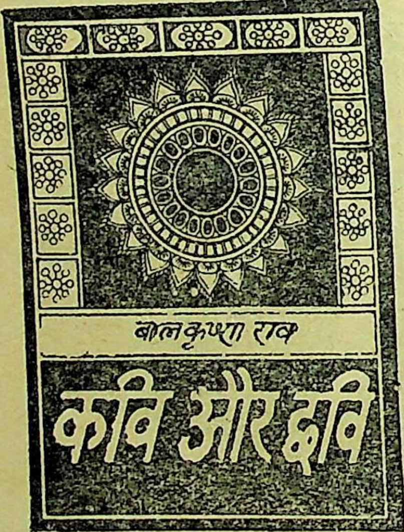
यह आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि के प्रसिद्ध ग्रन्थ का हिन्दी रूप है। हिन्दुओं में तो इसका मान है ही, संसार के विद्वानों में भी इसका आदर है। भाषा सुबोध और मनोहर है। दो भागों में ग्रन्थ समाप्त हुआ है। सजिल्द प्रति का प्रत्येक भाग का मूल्य ६॥) छः रुपए आठ आने।



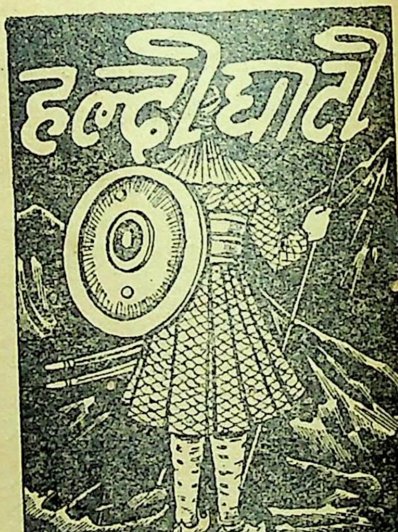
(दो जिल्दों में) महर्षि वेदव्यास के श्रीमद्भागवत का सरल सुबोध भाषा में रूपान्तर। स्त्री, पुरुष, बूढ़े और युवक, सभी के लिए उपयोगी। अच्छे कागज पर बढ़िया छपाई। सैकड़ों सादे और रंगीन चित्रों से युक्त सजिल्द पुस्तक का मूल्य १६) सोलह रुपए



यह व्यास भगवान् के प्रसिद्ध महाभारत का हिन्दी रूप है। सरल भाषा में कठिन विषय समझाया गया है। रंगीन और सादे चित्र मन को मुग्ध कर लेते हैं। पुस्तक १० जिल्दों में पूर्ण हुई है। मूल्य ८०) अस्सी रुपए।



यह प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव के नये गीतों का संग्रह है। प्रत्येक गीत भावना, अनुभूति, आकांक्षा, कल्पना और अन्तर्द्वन्द्व से पूर्ण है। छपाई सफाई नयनाभिराम। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य २) दो रुपए।



यह श्री श्यामनारायण पाण्डेय की प्रसिद्ध रचना है। इसमें महाराणा प्रताप के हल्दीघाटीवाले समर का वीरतापूर्ण वर्णन श्रेष्ठ छन्दों में है। सजिल्द प्रति का मूल्य २॥) दो रुपए बारह आने।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

बिना चीर फाड़ के अंडकोष का शर्तिया इलाज

किसी प्रकार का फोता हो, चाहे पानी उतर आया हो, बादी का हो या पोते के ऊपर गोश्त उतर आया हो या चोट लग गई हो, वरु उतर आई हो या पोते में दर्द होता हो, पोता बढ़कर कितना ही वजनी क्यों न हो गया हो, अँत उतर आई हो, इस दवा के लेप करने से तमाम बादी का पानी सूख-सूखकर पोता अपनी असली हालत पर बगैर किसी तकलीफ के आ जायेगा। कीमत फी टीन ४) रु०, डाक महसूल अलावा। लिखने का पता :—

दी अमृतसागर एन्ड को० नं० ३, मथुरा (यू० पी०)

बिलकुल मुफ्त

जातीय जीवन के गुप्त प्रश्नों का भेद समझाकर शारीरिक व मानसिक शक्ति प्राप्त कराने की मार्ग दर्शक

दम्पति विकाश

पुस्तक बिना डाक-खर्च मुफ्त भेजी जाती है आज ही मँगावें।

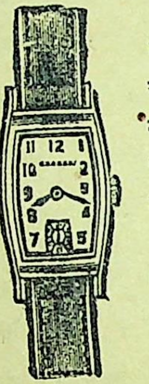
मदन मंजरी फार्मेसी—जामनगर

जादू का शीशा

ये शीशे अमेरिकन साइन्सदानों के तजुर्बों की रोशनी में तैयार होकर हाल ही में आए हैं। तरकीब इस्तेमाल के मुताबिक इसमें से देखने पर आपको एक बहुत बूढ़ा दिखलाई देगा, जो आपकी किस्मत सम्बन्धी भविष्य में होनेवाली सारी बातों, नफा, नुकसान, रोजगार, तिजारत, नौकरी, उन्नति, अवनति, बीमारी, देश-विदेश की यात्रा, सन्तान, किसी से नया मेल जोल, दिलपसन्द सगाई, शादी, जमीन में गड़ा धन, लाटरी, सट्टा, किसी नामालूम जरिये से धन का मिलना, गुमशुदा चीज या चोरी का पता लगाना, गर्ज यह है कि आपके हर एक सवाल का जवाब बताएगा, साथ ही हर एक मुश्किल का उपाय बताएगा, हर एक कामना पूरी करेगा, जल्द मँगा लें, फिर ऐसा मौका हाथ न आयेगा। एक शीशे का मूल्य चार रुपया खर्च ।||) अलग। थोड़े दिनों के बाद इस शीशे की कीमत बीस रुपये होगी। तीन शीशे एक साथ मँगाने पर डाक खर्च माफ! अपना नाम व पता आर्डर देते समय साफ लिखें।

एँग्लो अमेरिकन ट्रेडर्स, (टी)
पोस्ट बाक्स ७०, मेरठ, यू० पी०

सर्वोत्तम कलाई घड़ियाँ



स्विस मेड ठीक समय देनेवाली ८ वर्ष की गारण्टी के साथ क्रोमियम केस, गोली आकृति ४ ज्वेलसवाली १०||) रुपये, सर्वोत्तम ११), बीच में सेकण्ड की सुई वाली १३)-लेडी साइज १६) चौकोर आकृतिवाली क्रोमियम केस ७ ज्वेलस वाली १७)--सर्वोत्तम १८), चौकोर आकृति रोल्ड गोल्ड १२ वर्ष गारण्टी ८ ज्वेलस वाली २३) रुपये सर्वोत्तम २५)—१५ ज्वेलस २७) रुपए—अलार्म टाइम-पीस १३) रुपए सर्वोत्तम १४) रुपए—जेबी घड़ी ८) रुपए पैकिंग और पोस्टेज |||=) चौदह आने मात्र।

घरेलू जेबी प्रेस

नाम, पता, पत्र, लेवेल्स और कार्यक्रम इत्यादि इसकी सहायता से घर पर ही छापे जा सकते हैं। प्रत्येक घर में रखने लायक नम्बर १ का मूल्य १||) रुपए, नम्बर २ का २) रुपए, स्पेशल का ३) और सर्वोत्तम का ४) रुपए है। पैकिंग और डाक खर्च |||=)



कलकत्ता वाच कम्पनी 20 A.
पोस्ट बाक्स नं० १२८०३ कलकत्ता ५



मैजिक शो

जादू के अद्भुत, रहस्ययुक्त और रोमाञ्चकारी खेलों का सारा सामान पूरी विधि सहित लीजिये।

नियम और बड़ा सूचीपत्र मँगवाइये।

दी यूनाइटेड मैजिक कम्पनी लिमिटेड
मुरादाबाद यू.पी.

हमारे अनुपम प्रकाशन

अपनों की खोज में

(बुकसेलर की डायरी)

लेखक, श्रीयुत रामप्रसाद विद्यार्थी (रावी)

यह ऐसा भ्रमण-वृत्तान्त है जिसमें लेखक ने काफी सूझ-बूझ से काम लिया है। लेखक ने बुकसेलर न होने पर भी बुकसेलर बनकर ही इसके लिखने का अधिकार कमाया है। मनुष्य को पहचानने की कला और दूसरे को अपने अनुकूल करने की युक्ति पाठक को इस पुस्तक के वर्णन में मिलेगी जो बड़े काम आवेगी। मूल्य १) एक रुपया।

संसार का संक्षिप्त इतिहास

(प्रथम व द्वितीय भाग) अनुवादक, श्री मदनगोपाल, बी० ए० एल्-एल० बी०। यह पुस्तक अँगरेजी के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक एच० जी० वेल्स के इतिहास का हिन्दी अनुवाद है। इसमें पृथ्वी के आदिकाल से लेकर जीसस के निर्माण के पूर्व तक की कथा सक्रम वर्णित है। द्वितीय भाग में जीसस के निर्माण से लेकर संसार के पुनर्निर्माण तक का वर्णन आ गया है। मूल्य प्रत्येक भाग का ४) चार रुपये।

गांधी-मीमांसा

लेखक, पंडित रामदयाल तिवारी। गांधीजी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की ऐसी तर्कपूर्ण विवेचना आज तक किसी ने नहीं की है। इसे एक बार आद्योपान्त पढ़ जाने पर गांधीवाद पूर्ण रूप से हृदयङ्गम हो जाता है। विद्वानों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। ८५० पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४) चार रुपये।

रणभेरी

(चार मौलिक एकांकी)

रचयिता श्रीयुत वैकुण्ठनाथ दुग्गल की इस पुस्तक में (१) आन, (२) पुनर्संगठन, (३) राष्ट्रधर्म और (४) अजेय भारत नाम के एकांकी हैं। पहले में वीर चम्पतराय और उनकी रानी सारन्धा की एक महत्त्वपूर्ण घटना है; दूसरे में महाराज शाहू की, तीसरे में हर्षवर्धन की बहन-वाली प्रसिद्ध घटना और चौथे में युवराज अग्निमित्र के यूनानी नरेश मीनेंडर को जीतने की रोचक कथा है। संग्रह की भाषा सुलझी हुई, कथानक बढ़िया और बीच-बीच में सुन्दर कविताएँ हैं। मूल्य केवल १) एक रुपया।

बाल-नाटक-माला

(चार भाग)

श्री दशरथ ओझा बी० ए० के प्रस्तुत किये इन एकांकी नाटकों में इतिहास, राजनीति, समाज-विज्ञान, चरित्र और मनोविकारों का सफल प्रदर्शन है। शैली सरल और आकर्षक है। मूल्य प्रत्येक भाग का ।।) आठ आने।

सन्त कबीर

प्रणेता—प्रो० साधुराम शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०

यह सचित्र नाटक है। कबीर साहब का जीवन हिन्दू-मुसलमानों के मन से असहिष्णुता और वैमनस्य को हटाकर एकता और भाईचारे की स्थापना में बीता था। पांच सौ वर्ष पहले हिन्दू-मुस्लिम-एकता की जितनी जरूरत थी उससे आज अधिक ही है। कबीर का उद्देश्य समझने में यह नाटक बहुत काम देगा। इसमें प्रणेता ने कबीर साहब की जीवन-घटनाओं का आश्रय लेकर देशवासियों के सामने सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। मूल्य ।।।) बारह आने।

भूख

(सामाजिक नाटक)

लेखक श्रीयुत वीरदेव 'वीर' बी० ए०

लेखक ने इस नाटक में भूख से होनेवाले कष्टों का करुण चित्र उपस्थित किया है। हिन्दू-मुस्लिम-एकता, व्यापारियों के जनता को निर्दयता से लूटने और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं के सेवा भाव के अनोखे दृश्य इस नाटक में हैं। बीच-बीच में गीत भी बढ़िया हैं। मूल्य १) एक रुपया।

देवयानी

यह नाटिका कुमारी तारा वाजपेयी की रचना है। इसमें शुक्राचार्य की बेटी देवयानी के कन्यात्व का आदर्श बड़ी सफलता से उपस्थित किया गया है। कथा महाभारत से ली गई है। इसमें आर्यों के व्यापक वैवाहिक सम्बन्ध के इस एक अपवाद—क्षत्रिय वर और कन्या ब्राह्मणपुत्री—का स्पष्टीकरण बड़ी सतर्कता से हुआ है। पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। मूल्य केवल १) एक रुपया।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारी बढ़िया पुस्तकें

'रवीन्द्र-साहित्य पुस्तक-माला'

लेखक, डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

योगायोग

कवीन्द्र का यह उपन्यास जैसा कवित्वमय है वैसा ही मनोविज्ञान की बारीकियों से परिपूर्ण। इसमें बंगाल के समाज का अपूर्व चित्रण है। नायिका है धर्म-प्राण कुमुद और नायक है राजा बहादुर मधुसूदन घोषाल जो गरीब घर का लड़का होकर अपने पौरुष से बहुत बड़ा मालदार हुआ है। अपने विरोधी घराने की बेटी से विवाह करने पर उसके चित्त में जो विरोध के बादल उमड़ते हैं उनका गर्जन और नई दुलहिन कुमुद का शान्त-शिष्ट प्रतिकार देखकर बरबस लेखक की सराहना करनी पड़ती है। इसमें गृहिणी की क्षमता का अपूर्व उदाहरण है। भाषा, भाव और कथानक सभी दृष्टियों से 'योगायोग' कवीन्द्र के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ है। इसे एक बार पढ़कर दुबारा तिबारा पढ़ने को जी चाहता है। अच्छा कागज, बढ़िया जिल्द, पृष्ठ सवा तीन सौ से अधिक। मूल्य केवल ४) चार रुपये।

विश्व-परिचय

यह विज्ञान-विषयक पुस्तक है। इसमें परमाणुलोक, नक्षत्रलोक, सौरजगत्, ग्रहलोक और भूलोक आदि शीर्षकों में विषय का विशद विवेचन है। एक स्थान पर लेखक ने लिखा है "वस्तुएँ सब रंगों को ग्रहण नहीं कर सकतीं, किसी किसी को वापस कर देती हैं। वह लौटाया हुआ रंग ही हम देखते हैं। ब्लाटिंग पेपर जिस रस को सोख लेता है वह किसी काम नहीं आता—जिस रस को वह ले नहीं सकता वही बचा हुआ रस हमारा प्राप्य है।" इस प्रकार सरल रीति से कठिन विषय समझाया गया है। पुस्तक बालकों के लिए होने पर भी वयस्क विद्वानों को कम आनन्द न देगी। अच्छे कागज पर छपी हुई सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

रूस की चिट्ठी

डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर वृद्धावस्था में रूस गये थे। वहाँ का आँखों देखा हाल उन्होंने चिट्ठियों में लिखकर भेजा था। वह बड़ा विचित्र है। इधर तो रूस के सम्बन्ध में बहुत सी बातें प्रकट हो गई हैं पर जिस समय रवि बाबू वहाँ गये थे रूस का हाल हमें विकृत रूप में बताया गया था। उसको कवि ने सुन्दर भाषा में प्रकट किया है। पुस्तक सचित्र और सजिल्द है। अच्छे कागज पर छपी पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

चार अध्याय

इस पुस्तक का कथानक चार अध्यायों में समाप्त है। मुख्य नायिका कालेज की सुशिक्षित युवती एला ने विवाह न करके देशोद्धार के काम में जीवन लगाने का प्रण किया। अनेक विप्लवपन्थियों से उसकी घनिष्ठता बढ़ी। उसके कई प्रेमी खड़े हुए। राजनीति, समाज और स्त्री-पुरुष-समस्या आदि के विचार बड़े अच्छे रूप में इसमें हैं। सजिल्द पुस्तक का मू[illegible] एक रुपया आठ आने।

माँ और बच्चा

इसके लेखक नामी चिकित्सक डाक्टर बोधराज चोपड़ा, एम० बी०, सी-एच० बी० (एडिनबरा) हैं। यह पुस्तक अपने ढंग की अनुपम है। इसके ११ प्रकरणों में छोटे बच्चों की मृत्यु और उसके कारण, गर्भिणी माता, जन्म के समय से बालक की रक्षा, बच्चों को दूध पिलाना, दूध पिलानेवाली दाई, दूध छुड़ाना आदि आवश्यक विषयों की शिक्षा दी गई है। लेखक ने स्त्रियों की मृत्यु और रोगों को कम करने तथा छोटे बच्चों को मृत्यु से बचाने की दृष्टि से पुस्तक लिखी है। यों विद्वान् लेखक ने मनुष्यमात्र का उपकार किया है। अच्छे कागज पर छपी ढाई सौ से भी अधिक पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) दो रुपये।

भारतमाता के पुजारी

इसमें वैदिक काल से लेकर गांधी-युग तक के प्रतिनिधि-महात्मा के जीवनचरित्र के साथ-साथ यह दिखलाया गया है कि उस महापुरुष ने भारतीय जनता की विचार-धारा में क्या और कैसे परिवर्तन किया। इसमें १५ महापुरुषों का वर्णन है। पुस्तक समयोपयोगी और शिक्षाप्रद है। मूल्य १।।।) एक रुपया बारह आने।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

विविध विषय की चुनी हुई पुस्तकें

सोहराब-रुस्तम

फारस भाषा में शाहनामा नाम की एक बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है, जिसमें बहुत से शूरवीरों की कहानियाँ लिखी गई हैं। यह कहानी उसी में से ली गई है। मूल्य ।।।-) तेरह आने।

कुलबोरन

श्री चन्द्रभूषण वैश्य ने इस उपन्यास को सत्य घटना के आधार पर लिखा है। समाज की अन्ध-परम्पराओं से देश की जो हानि हो रही है उसका इसमें सजीव चित्र है। सुधार करनेवाले को रूढ़ियों के अन्ध-भक्तों से जैसा लोहा लेना पड़ता है उसका नमूना उपन्यास का मुख्य पात्र 'कुलबोरन' है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २।।) दो रुपए आठ आने।

सन्यासी

इस उपन्यास में ग्राम्य और नागरिक जीवन का यथार्थ और सुन्दर चित्रण प्रभात बाबू ने किया है। हास्य और विनोद की सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में है। मूल्य ४।।≥) चार रुपए ग्यारह आने।

छुटकारा

एक निठल्ले और बेरोजगार भाई की सहायता उपार्जनशील भाई को किस प्रकार करनी चाहिए, यह बात इस उपन्यास से भली भाँति सीखी जा सकती है। मूल्य १।-) एक रुपया पाँच आने।

शीला देवी

महास्थान-राजकुमारी शीलादेवी की बुद्धिमत्ता, शूरता और सुजनता का वर्णन इसमें पढ़िए। योगिनी माता का कार्य-कौशल विचित्र है। चिहलन का पतन और मित्र मुराद की सचाई आदर्श स्थानीय है। विचित्र उपन्यास है। मूल्य २।।≥) दो रुपए ग्यारह आने।

कथा-सरित्सागर

इस पुस्तक में आद्योपान्त बड़ी सुन्दर कथाएँ संगृहीत हैं। प्रत्येक कथा अपने साथ कुछ-न-कुछ दृष्टान्त रखती है। मूल्य २।≥) दो रुपए ग्यारह आने।

सोहाग-बिन्दी नाटक

यह पुस्तक कुछ एकांकी नाटकों का संग्रह है। इन सभी नाटकों में सामाजिक समस्याओं पर विचार किया गया है। मूल्य १।-) एक रुपया पाँच आने।

पुरातत्त्व-निबन्धावली

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस पुस्तक में समाविष्ट किये गये निबन्धों के लिखने में देश-विदेश के कितने ही दुष्प्राप्य ग्रन्थों के अध्ययन तथा दुर्गम स्थानों के भ्रमण से प्राप्त की गई अगाध ज्ञानराशि का उपयोग किया है। मूल्य २।।≥) दो रुपए ग्यारह आने।

माधव मिश्र-निबन्धमाला

हिन्दी-गद्य के प्रारम्भिक काल के प्रतिभाशाली लेखक पंडित माधव मिश्र के चुने हुए निबन्धों का संग्रह। मूल्य ३।-) तीन रुपए पाँच आने।

व्यंग्य कौतुक

इस पुस्तक में कवीन्द्र रवीन्द्र बाबू के द्वारा व्यंग्य और विनोदमयी भाषा में लिखे गये कुछ निबन्धों का संग्रह है। मूल्य ।।≥) ग्यारह आने।

मेरी आत्म-कहानी

काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के जन्मदाता बाबू श्यामसुन्दरदास जी की आत्म-कहानी एक प्रकार से हिन्दी-साहित्य के वर्तमान युग का इतिहास है। इस पुस्तक में बाबू साहब ने केवल अपनी जीवन-घटनाओं का विवरण ही नहीं लिखा वरन् अपने समय के उन सभी साहित्य-सेवियों के कार्यों की विवेचना भी की है, जिन्होंने हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि में योगदान किया है। मूल्य २) दो रुपए।

एक आत्म-कथा

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के एक प्रतिष्ठित विद्वान् मुंशी लुत्फुल्ला की आत्म-कथा का सारांश। इसमें विलायत-यात्रा तथा मार्ग में पड़नेवाले स्थानों का तत्कालीन वर्णन दिया गया है। मूल्य २) दो रुपए।

हमारी नई पुस्तकें

सङ्गति

आकाशरंजन मेहता नामी डाक्टर थे। उनकी खासी आमदनी थी। किन्तु उनकी अर्द्धाङ्गिनी सुशिक्षित हेमप्रभा यह समझती थी कि डाक्टर मेहता सिर्फ आविष्कार की धुन में रहते हैं; मेरे पिता के दिये धन से ही गुजर होता है। इससे वह सिर-चढ़ी स्त्री बन गई थी। और डा० मेहता उसकी फटकार सुनकर भी भीगी बिल्ली बने हुए अपने काम में लगे रहते थे। उनका मित्र जौहरी कई वर्ष विलायत में रह आया था। उन्होंने हेमप्रभा से उसका परिचय करा दिया। परिचय इतना घनिष्ठ हो गया कि उससे बचने को डा० मेहता आँखों का इलाज कराने के बहाने दूसरे प्रान्त में चले गये। इधर उसका रंग गहरा होता गया। कई महीने बाद डा० मेहता नकली अन्धे बनकर लौटे और इसी रूप में उन्होंने हेमप्रभा के खोये हुए प्रेम पर अधिकार किया। लेखक ने विलक्षण कथानक की सृष्टि करके गिरते हुए चरित्र को समुन्नत बनाया है। मूल्य १॥) एक रुपया आठ आने।

यात्री

श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बी० ए० ने इस पुस्तक में लिखा है कि हम सभी अनन्त पथ के यात्री हैं। यह जीवन-यात्रा कब आरम्भ हुई और कहाँ इसकी समाप्ति होगी। लेखक ने क्यों लिखूँ, जीवन-पथ पर, स्मृति और शिक्षक-जीवन आदि २० शीर्षकों में विभिन्न विषयों पर परिमार्जित भाषा में उच्च विचार प्रकट किये हैं। यात्री अपने ढंग की अनुपम पुस्तक है। सचित्र आवरण की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

अनातोले फ्रांस की चुनी हुई कहानियाँ

फ्रांस के इस नामी कहानी लेखक की प्रतिभा का अनुमान पाठकों को छाया-सुन्दरी, उसका पति, रूप की परी, मदारी, पेरिस की सुन्दरी और माल आदि कहानियों से लगेगा। प्रत्येक कहानी बेजोड़ है। ये कहानियाँ मनोरंजन के साथ ही उपकार भी करेंगी। मूल्य १) एक रुपया।

विषवृक्ष

यह सुप्रसिद्ध उपन्यास-प्रणेता रायबहादुर बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का बढ़िया उपन्यास है। इसका हिन्दी रूपान्तर किया है कृतविद्य श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने। इस उपन्यास में विषवृक्ष है कुन्दनन्दिनी जो थोड़ी अवस्था में अनाथ हुई और नगेन्द्र बाबू का आश्रय पाकर उनके रिश्तेदार से व्याही गई। फिर सत्रह साल की उम्र में विधवा हो गई। इसके रूप पर नगेन्द्र बाबू ऐसे रीझे कि उसके साथ विधवा-विवाह कर लिया। उपन्यास की भाषा और कथानक सभी विचित्र है। मूल्य २) दो रुपये।

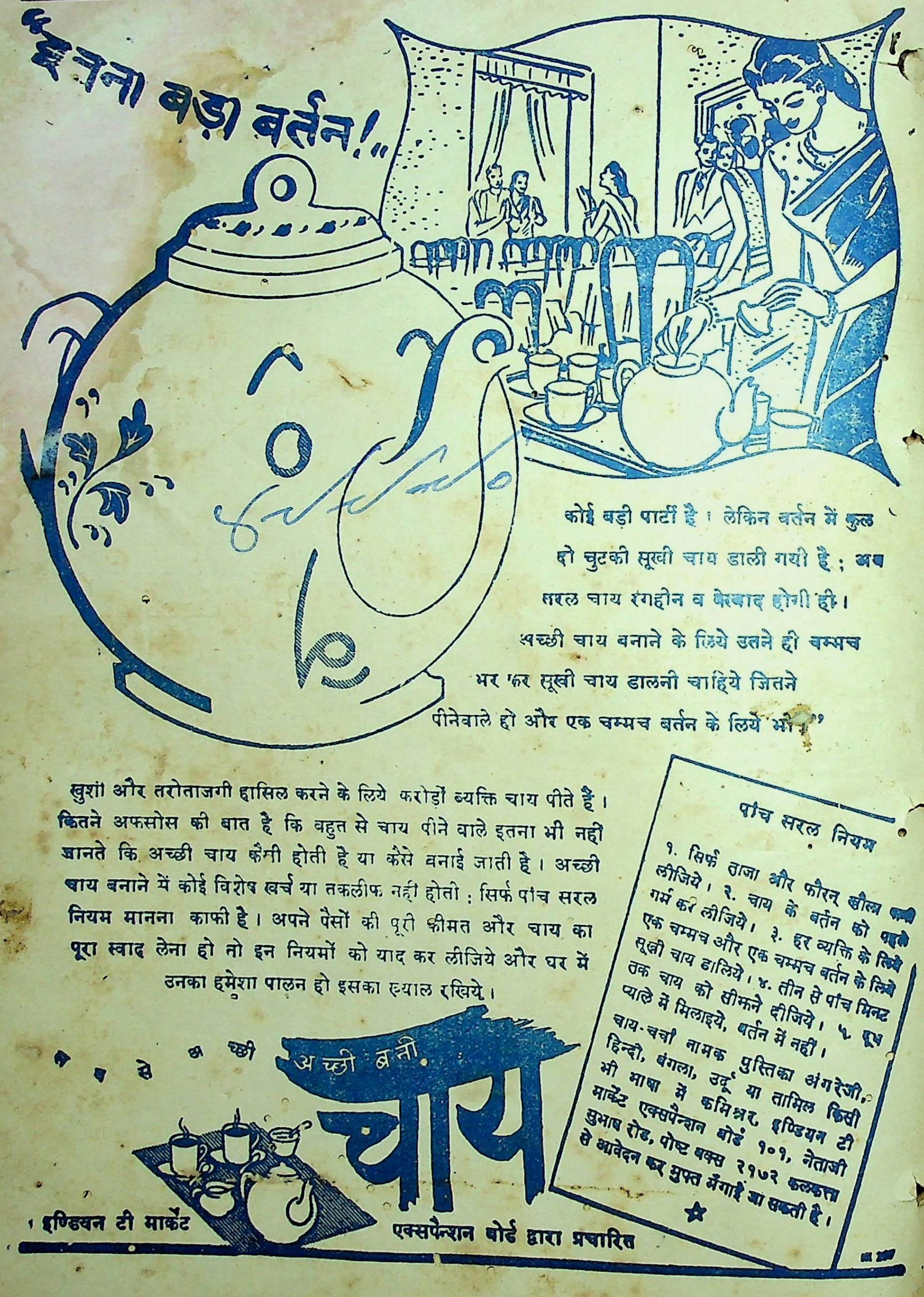
नवदुर्गा

नवदुर्गा बंगाली पण्डित की [illegible] उसके विवाह की चिन्ता में माँ-बाप और [illegible] तीनों वर से कलकत्ते के लिए चले। रास्ते में केदारेश्वर तीर्थ में ठहर गये। वहाँ के महन्त अम्बिकाचरण पुरी ने नवदुर्गा को प्राप्त करने के लिए जाल रचा। अन्त में महन्त का चरण चाकर अधरचन्द्र मुखोपाध्याय 'मियाँ की जूती और मियाँ का सिर' की कहावत के अनुसार महन्त जी से खासी रकम ऐंठकर और नवदुर्गा को विधि से पत्नी बनाकर चलता हुआ। लेखक ने महन्त जी की जो दुर्गति काशी में लाकर कराई है उससे पाठक विस्मित और खिन्न हुए बिना न रहेंगे। मूल्य १।) एक रुपया चार आने।

हार या जीत

इस उपन्यास में लेखक डा० व्रजेश्वर वर्मा एम० ए०, डी० फिल० ने एक देहाती लुहार की अल्पवयस्क बेटी को घटनाक्रम से, अनाथ दशा में, देहात से महराजगंज की रानी पुष्पकुँवरि के आश्रय में पहुँचा दिया है। वहाँ रानी की कृपा से इस लड़की ने विद्या पढ़ी। फिर इसमें उन गुणों का विकास हुआ जिससे मनुष्य सभ्य होकर सम्मान पाता है। इसने असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और अन्त में कलकत्ता जाकर नौकरी कर ली। कई पुस्तकें लिखीं, विदेश-यात्रा के बाद रानी के कुँवर की प्रार्थना पर उससे विवाह किया। मूल्य २) दो रुपये।

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद


"इतना बड़ा बर्तन!"
कोई बड़ी पार्टी है। लेकिन बर्तन में कुल दो चुटकी सूखी चाय डाली गयी है; अब सरल चाय रंगहीन व बेस्वाद होगी ही। अच्छी चाय बनाने के लिये उतने ही चम्मच भर कर सूखी चाय डालनी चाहिये जितने पीनेवाले हो और एक चम्मच बर्तन के लिये भी।"
खुशी और तरोताजगी हासिल करने के लिये करोड़ों व्यक्ति चाय पीते हैं। कितने अफसोस की बात है कि बहुत से चाय पीने वाले इतना भी नहीं जानते कि अच्छी चाय कैसी होती है या कैसे बनाई जाती है। अच्छी चाय बनाने में कोई विशेष खर्च या तकलीफ नहीं होती; सिर्फ पांच सरल नियम मानना काफी है। अपने पैसों की पूरी कीमत और चाय का पूरा स्वाद लेना हो तो इन नियमों को याद कर लीजिये और घर में उनका हमेशा पालन हो इसका ख्याल रखिये।
पांच सरल नियम
१. सिर्फ ताजा और फौरन् सील की लीजिये। २. चाय के बर्तन को पहले गर्म कर लीजिये। ३. हर व्यक्ति के लिये एक चम्मच और एक चम्मच बर्तन के लिये सूखी चाय डालिये। ४. तीन से पांच मिनट तक चाय को सीझने दीजिये। ५. दूध प्याले में मिलाइये, बर्तन में नहीं।
चाय-चर्चा नामक पुस्तिका अंगरेजी, हिन्दी, बंगला, उर्दू या तामिल किसी भी भाषा में कमिश्नर, इण्डियन टी मार्केट एक्सपैन्शन बोर्ड १०१, नेताजी सुभाष रोड, पोस्ट बक्स २१७२ कलकत्ता से आवेदन कर मुफ्त मँगाई जा सकती है।
अच्छी बनी
चाय
इण्डियन टी मार्केट एक्सपैन्शन बोर्ड द्वारा प्रचारित

सरस्वती



सितम्बर

१९४९

चुनी हुई बढ़िया पुस्तकें

हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास

यह हिन्दी भाषा और साहित्य का संक्षिप्त संस्करण है। इसमें भारत की प्राचीन भाषाएँ, आधुनिक भाषाएँ हिन्दी का ऐतिहासिक विकास, हिन्दी पर अन्य भाषाओं; का प्रभाव, साहित्यिक हिन्दी की उपभाषाएँ और हिन्दी का शास्त्रीय विकास पर सुन्दर विवेचन है। मूल्य ॥≋)

प्राकृतिकी

यह प्रसिद्ध लेखक श्री जगदानन्द राय की पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर है। इसमें पारस पत्थर, रसायन विद्या की उन्नति, धातुओं के कुछ गुण, वर्णछत्र, नूतन विश्लेष प्रथा, चाय पीना, अदृश्य किरणें, भूकम्प, बुलबुले, मनुष्यसृष्टि, जीवन क्या है? जीवों की देह की उष्णता, प्रकाश और वर्णज्ञान, घ्राणतत्त्व, अमृत और विष, वृक्षों की आँखें, दही, मिट्टी का तेल, मङ्गल ग्रह, ग्रहों की कक्षाएँ और शुक्रभ्रमण आदि शीर्षकों में ज्ञातव्य विषयों का मनोहर वर्णन है। मूल्य ३।-)

इस्लामी दुनिया का सिरताज

इसमें लेखक ने संक्षेप में तुर्किस्तान का इतिहास लिखकर बतलाया है कि तुर्की का साम्राज्य कैसा था, फिर क्रान्ति की तैयारी और सफलता कैसे हुई इसके बाद प्रथम महायुद्ध के पूर्व की दशा, कुनीति का परिणाम, राष्ट्रीय संकट, गृहयुद्ध और विजेता, एशिया में असन्तोष, सेव्र की सन्धि, यूनानियों का आक्रमण और पराभव, मित्रराष्ट्रों की पराजय, सुल्तान-पद की समाप्ति, प्रजातन्त्र की घोषणा, खलीफा का लोप; अधिनायकत्व की स्थापना, शरियत की समाप्ति तथा लिपि और भाषा आदि जटिल समस्याओं पर पूर्ण प्रकाश डाला है। पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। मूल्य २)

कुल बोरन

यह सामाजिक उपन्यास है। इसमें लेखक ने हिन्दू समाज की कुरीतियों का सुन्दर चित्रण करके नायक कुलबोरन के कार्यों से दिखलाया है कि कुरीतियों का निवारण किस प्रकार हो सकता है। पुस्तक अच्छे कागज पर सुन्दर टाइपों में छापी गई है। सचित्र पुस्तक का मूल्य २॥)

कलंक

यह चुनी हुई कहानियों का संग्रह है। ग्वालिन, फल, बेला, अनुभव, उमा, आराधना और प्रायश्चित आदि कहानियाँ पाठक को प्रसन्न करने के साथ ही कुछ सलाह भी देती हैं। मूल्य १)

दर्पण

इस संग्रह में फ्रेंच, इटालियन, पोलिश, आस्ट्रियन और जर्मन भाषाओं की बढ़िया कहानियाँ हैं। इससे पाठक को योरपियन समाज की रुचि और इच्छा का पता लगता है। मूल्य १।-)

चरित-चर्या

इसमें महात्मा रामकृष्ण परमहंस, श्री सीताराम-शरण भगवान् प्रसाद, बाबू शिशिरकुमार घोष, ब्रह्म-बान्धव उपाध्याय, मुंशी नानकचन्द, राजा सर टी० माधव राव, गायनाचार्य विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और वीरवर दुर्गादास आदि प्रसिद्ध पुरुषों की जीवन-गाथा का वर्णन है। मूल्य १=)

एक आत्मकथा

इसमें सन् १८०२ से १८४४ तक की जीवन कथा मुन्शी लुत्फुल्ला ने लिखी है। उन्होंने इसमें बतलाया है कि किस प्रकार उन्होंने कम्पनी सरकार के अफसरों को हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी पढ़ाकर अपना निर्वाह किया, फिर एक नवाब के साथ इंगलैंड गए और कहाँ पर क्या देखा। इसके पढ़ने से उस समय के पश्चिमी भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों तथा वहाँ के निवासियों के सम्बन्ध की अनेक रोचक और ज्ञातव्य बातें मालूम होंगी। अच्छे कागज पर छपी सजिल्द पुस्तक का मूल्य २)

मैनेजर बुकडिपो इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग

पेटभर भोजन करिये

गेसहर [गोलियाँ] गेस का चढ़ना, पैदा होना, मन्दाग्नि, बादी, वायु पेट में पवन का घुंचवाना, भूख की कमी, दिमाग़ में अशांति हो जाना, घबराहट, थकावट, हृदय की कमज़ोरी, प्लपीटेशन ब्लडप्रेसर, दस्त की रुकावट, नींद की कमी वग़ैरह को दूर कर, दस्त हमेशा साफ और खुलासा लाती है। अन्न पाचन करके कड़ाके की भूख लगाती है, शरीर में रुधिर बढ़ाकर शक्ति प्रदान करती है, लिवर, आँत, प्लीहा और पेट की हर एक शिकायत के लिए, अद्वितीय इलाज है। की० १।) रु० तीन की ३।।) रु० पोस्टेज अलग।

कुव्वत देनेवाली दवा

दुग्धानुपान [गोलियाँ] धातु क्षीणता, स्वप्नदोष, बन्धकोष्ठ, पुरुषत्व की कमी, पेशाब की शिकायतें, दिमाग़ की कमज़ोरी, बीमारी के बाद की निर्बलता, रुधिर की कमी, शरीर में दर्द का होना, सुस्ती थकावट का आना, छाती में दर्द का होना, इत्यादि शारीरिक और मानसिक रोगों को दूर करके, शक्ति और उत्साह तथा स्फूर्ति प्रदान करती है। वज़न बढ़ता है, शरीर तंदुरुस्त बनता है। की० १।) रु० तीन के ३।।) रु०। वी० पी० खर्च अलग। तीन शीशियों से संपूर्ण आराम।

कामविलास [गोलियाँ] वीर्य ज्यादा अरसा तक रोककर युवकों और वृद्धों को संसार-सुख में सचा आनन्द देती हैं। की० १।) रु०

आँखों की तमाम शिकायतों के लिए शर्तिया

न० प्र० सुरमा सच्चे मोतियों के इस सुरमे से मोतिया-बिंद, फुला खील, जाला, शोर्ट-साईट (Short Sight) सुर्खी, रतौंधी, पानी निकलना वगैरह दूर होकर रोशनी बढ़ती है, फी शीशी का १।) रु० तथा २।।) रु०।

प्रमेहहर [गोलियाँ] सुजाक, प्रमेह, पेशाब में जलन, पीप आना वगैरह मूत्रमार्ग के भयंकर रोगों के लिए अकसीर। की० १।।) रु०

खील, दाग के लिए

खीलोन लोशन

मुँह पर के खील, भद्दे व काले दाग आदि मिटाकर चर्म को मुलायम व कोमल बनाता है। काली चमड़ी को सफेद बनाकर सौंदर्य व कांति में वृद्धि करता है। फी शीशी १।) रु० तीन शी० ३।।) रु०

गर्भांकुश [पिल्स] दवा के सेवन से हमेशा के लिए गर्भ नहीं रहता। मासिक धर्म नियमित जारी रहता है, गर्भ निरोध होता है, हानिरहित है, संतति नियमन के लिए उत्तमोत्तम उपाय है। कीमत प्रति शीशी ४) रुपया।

दिव्यांगना [गोलियाँ] स्त्रियों के लिए खास शक्तिवर्धक दवा है। प्रदर, रक्तप्रदर, गर्भ न रहना, गर्भपात हो जाना इत्यादि दूर होकर शरीर तन्दुरुस्त बनता है। की० १।) रु० तीन शीशी ३।।)।

बालकुसुम छोटे बच्चों को ताकत देनेवाली अद्वितीय दवा है, बच्चों के हर प्रकार के रोग, दुर्बलता आदि दूर कर बालक को हृष्ट-पुष्ट बनाता है। फी शीशी १) रु०

बहिरापन

कान में से पीप-मवाद निकलना, चसका-शूल होना, पर्दे में तकलीफ, सीं-सीं आवाज़ होना, बधिरता-बहिरापन इत्यादि कान के भयंकर रोगों के लिए

'रसिक' कर्णबिन्दु [ईयर ड्राप्स]

इस्तेमाल करें। कीमत शीशी १।) रु० तीन शीशी ३।।) रु०। तीन शीशी के सेवन से पुनः श्रवण-शक्ति प्राप्त होती है।

वी० पी० से मँगाने का पता— **दुग्धानुपान् फार्मेसी** सी०, ४ जामनगर (काठियावाड़)

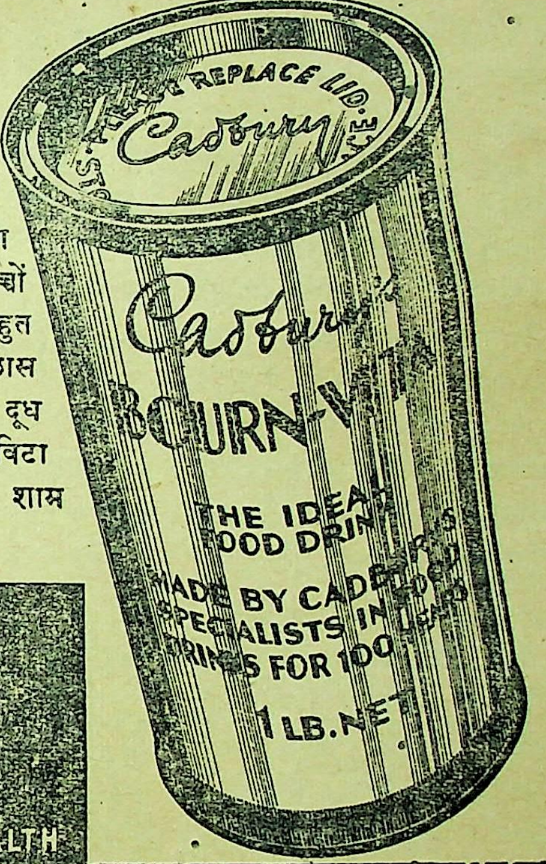
एजेन्टस—

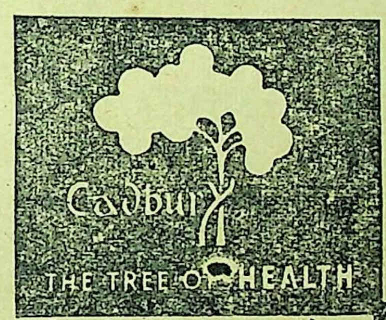
इलाहाबाद—अग्रवाल मेडीकल हॉल, ६६ जॉनस्टोनगंज।
लखनऊ—हन्द्रचन्द एण्ड कं०, चौक केमीस्ट।
बनारस—राधेलाल एण्ड सन्स चौक बेटरीवाला।
देहली—जमनादास एण्ड कं०, चाँदनी चौक।
नागपुर—अनन्तराय ब्रदर्स, किराना ऑल इतवारी।
जबलपुर—दिगम्बर जनरल स्टोर्स जवाहीरगंज।
बम्बई—वेल्जी ब्रदर्स एण्ड कं० ७६ प्रीन्सेस स्ट्रीट।
अयोध्या—हमारा दवाखाना बाबू बजार।
पटना—अशोक फार्मेसी, मखनीआँ कुआँ बाँकीपुर।
जयपुर—डॉ० आर० पी० गुप्ता, चाँदपोल बाजार।
कलकत्ता—वनेचन्द मावजी, १८ मलीक स्ट्रीट
कानपुर—गुजरात मेडीकल स्टोर्स जनरलगंज
अजमेर—महेता स्टोर्स नयाबाजार।

गोरखपुर—भैषज्य भंडार, अलीनगर

इसे पीजिए और तन्दरुस्त बनिए

तन्दरुस्त व बीमार—दोनों के लिए ही लाभदायक। बोर्न-विटा विशेषरूप से स्वादिष्ट तथा पौष्टिक होने के कारण अधिक स्फूर्तिदायक है। बच्चों को चाकलेट की महक बहुत पसन्द होती है। एक ग्लास अथवा प्याले गर्म या ठण्डे दूध में दो चम्मच बोर्न-विटा मिलाकर सुबह और शाम सेवन कीजिए।





केडबरी वृक्ष स्वास्थ्य का प्रतीक



CFY-1 HIN

केडबरी का बोर्न-विटा

केलशियम तथा विटेमिन ए ब डी से पूर्णतयः युक्त

केडबरी फ्राय (इण्डिया) लिमिटेड

पो. ओ. बॉक्स १४१७ बम्बई - पो. ओ. बॉक्स २५१ कलकत्ता - पो. ओ. बॉक्स १७२५ मद्रास



हृदय की सर्दी (सर्दी और कफ)—लापरवाही करने से मामूली हृदय की सर्दी फेफड़े की सूजन (ब्रांकैटिस) हो जाएगी। इससे बचे रहने का रास्ता बड़ा आसान है। थोड़ा-सा अमृतांजन लेकर छाती पर मलिए। बस, उसकी गरमी सीधे हृदय पर पहुँचती है और कफ को पिघला देती और तुरन्त आराम मिलता है।

अमृतांजन—हमेशा जल्दी से जल्दी आराम पहुँचाता है।

अमृतांजन लिमिटेड, बम्बई और मद्रास

शाखा—कलकत्ता, कराची, दिल्ली

हकीम तुलसी प्रसाद अग्रवाल अलीगढ़ की

असली-मीठी

बाल जीवन घुट्टी (रजिस्टर्ड)

बच्चों की हर एक बीमारी को दूर करती कमज़ोर बच्चों को ताक़तवर बनाती. ज़रा सी रोजाना चटा देने से बच्चे कभी बीमार नहीं होंगे. दाँत आसानी से निकल आवेंगे।

— मू० शी० ।ﾉ दर्जन २॥ﾉ डा०व्य०अ० — सब जगह बिकती है. नक़ली घुट्टियों से बचो। नए सौदागर नमूना मुफ़्त मंगावें।

मुफ़्त लो १० प्रतिष्ठित लोगों के नाम व पते भेजने पर स्वास्थ्य साधन पुस्तक मुफ़्त भेजेंगे

पता. बाल जीवन कार्यालय अलीगढ़. यू.पी.

जुकाम सर्दी पर अकसीर उपाय

स्थापना १९२६

आरोंदा

सुरज १९९६ छाप

नीलगिरि तैल

प्रो. खांडालेकर बंधु बम्बई ४.

१०००) रु० माहवार कमाइए

इस 'दौलत की खान' पुस्तक में १९२ हुनर छपे हैं, जिससे लोग लखपती हो गये, जो बेकार थे। इस पुस्तक में हर तरह के तैल, साबुन, बाल उडाने का साबुन, बाल काले करने का खिजाब, हर तरह के अचार, खानी तम्बाकू, कुलफी की बर्फ, पेटेंट दवाएँ आदि बनाने का नुस्खा छपा है। इन्हें लोग हजारों खुशामद करने पर मरते वक्त तक नहीं बतलाते हैं। कीमत फी पुस्तक २॥) डाक-खर्च व पैकिंग माफ।

अमेरिकन पिस्तौल

यह पिस्तौल अमेरिका से बनकर आई है। बिलकुल असली पिस्तौल के मानिन्द मालूम होती है। इसे बखूबी कोट की जेब में रख सकते हैं। इसमें ६ खाने हैं। घोड़ा दबाते ही चरखी खुद घूमती है। इसकी आवाज निहायत डरावनी है। चोर, डाकू, शत्रु और जंगली खूँख्वार जानवर इसकी शक्ल ही देखकर भाग जाते हैं। इसके रखने में सरकार से लाइसेन्स लेने की जरूरत नहीं पड़ती। बाज वक्त यह पिस्तौल जान-माल की रक्षा करने में बहुत अच्छी साबित हुई है। इसको हर एक मनुष्य रख सकता है। मूल्य मय ५० स्पेशल कारतूस के फी पिस्तौल ४) डाक-खर्च प्रतिपिस्तौल १।-) अलग। कारतूस फी सैकड़ा ३)।

असली कलीद सट्टा

यदि आप सट्टा-लाटरी का शौक रखते हैं और लाटरी सट्टा का नम्बर जानकर फायदा उठाना चाहते हैं, तो हमारी असली कलीद सट्टा नामक पुस्तक मँगाकर मालामाल बनिए। इसका नम्बर कभी खाली नहीं जाता। सिर्फ गुणा-भाग करने से ही नम्बर निकल आता है। कीमत फी पुस्तक २) डाक खर्च व पैकिंग माफ।

ओटो पुष्पलता

यह ओटो तमाम सैंटों का सरताज है। लगाते ही आपकी तबीअत मस्त हो खुशबू से बागबाग हो जायेगी। इस ओटो को लगाकर आप जिस रास्ते निकल जाएँगे पास के लोगों को ताज्जुब होगा कि यह खुशबू किस बगीचे से आ रही है। रूमाल में लगा लेने से महीनों खुशबू नहीं जाती है। कीमत प्रतिशीशी ।॥) दर्जन का ६) डाक-खर्च १।-) एक दर्जन एक साथ मँगाने पर एक जोड़ी हाथ व गले के बटनों का सेट व एक बम्बई फैशन सोने की तरह चमकनेवाली अँगूठी, एक फैन्सी रूमाल व एक खूबसूरत शीशा मय कंघी के इनाम में मुफ़्त दिया जाएगा। इस ओटो का प्रचार करने की वजह से यह ऐलान निकाला है। दो दर्जन एक साथ मँगाने पर ऊपर दिए हुए सामान के अलावा एक बढ़िया फाउन्टेनपेन और दिया जाएगा।

आजाद कम्पनी, नं० १ धनकुट्टी, कानपुर

वन्दना

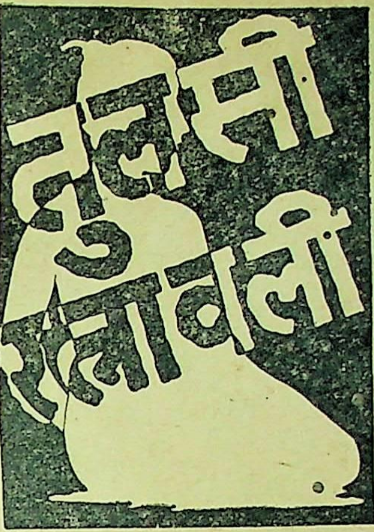
लेखिका, श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा'

हिन्दी की प्रसिद्ध कवियित्री श्रीमती चन्द्रमुखी ओझा के गीत और कविताएँ बहुत लोकप्रिय हैं। इस संग्रह में श्रीमती जी की ५२ सर्वोत्कृष्ट, मधुर तथा मर्मस्पर्शी कविताएँ संगृहीत हैं। पुस्तक की भूमिका हिन्दी के सिद्धहस्त कवि पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने लिखी है। आवरण पृष्ठ अत्यन्त आकर्षक और छपाई-सफाई नयन-मनोहर है। मूल्य सजिल्द पुस्तक का २) दो रुपये।

हिन्दी-साहित्य

प्रणेता, रा० ब० डाक्टर श्यामसुन्दरदास

यह हिन्दी-साहित्य का परिवर्द्धित संस्करण है। कवियों के विषय में जो नये अनुसन्धान हुए हैं उन सबका समावेश इसमें किया गया है। साहित्यिक स्थिति के वर्णन में भी आवश्यक परिवर्तन किये गये हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य के प्रत्येक विद्यार्थी के पास होनी चाहिए। मूल्य ३) तीन रुपये।



गोस्वामी तुलसीदासजी के विचार उनके बारह-तेरह छोटे-बड़े ग्रन्थों में बिखरे पड़े हैं। उनका संकलन इस रत्नावली में प्रिंसपल केदारनाथजी अग्रवाल एम० ए० ने बड़े परिश्रम से किया है। एक पुस्तक ही अनेक ग्रन्थों का काम देगी। मूल्य १।।) एक रुपया आठ आने।

छप गया! छप गया!

सचित्र महाभारत

रचयिता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

यह विशाल महाभारत पुराण का सार है। इसमें महाभारत के सभी महत्त्व के अंश आ गये हैं। सारी प्रधान घटनाएँ इसमें हैं। बोलचाल की सीधी-सादी भाषा है जिसे बालक, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी, आसानी से, समझ लेते हैं। कथानक भाग बहुत ही रोचक है। पुस्तक बड़े आकार में, अच्छे कागज पर, सफाई से छापी गई है। पूरे पृष्ठ के सादे और रंगीन चित्र हैं। अच्छी जिल्द है। मूल्य केवल ६) छः रुपये।



लंका के युद्ध में लक्ष्मणजी को मेघनाद की शक्ती लगने और उनकी चिकित्सा होने का सुन्दर वर्णन कवि राजाराम श्रीवास्तव, बी० एस्-सी०, एल्-एल० बी० ने इस खण्ड-काव्य में बड़ी सफलता से किया है। मूल्य ।।।) बारह आने।



चित्तौर भारतवासियों की शूरता का प्रसिद्ध तीर्थ है। इसे क्षत्रिय वीरांगनाओं ने अपने बलिदान से अनुप्राणित किया है। इसका पुनीत वर्णन हमारे मन में वीरता का संचार कर पुरानी स्मृतियों को जाग्रत् कर देता है। इसकी कथा प्रत्येक भारतवासी को जाननी चाहिए। ढाई सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।



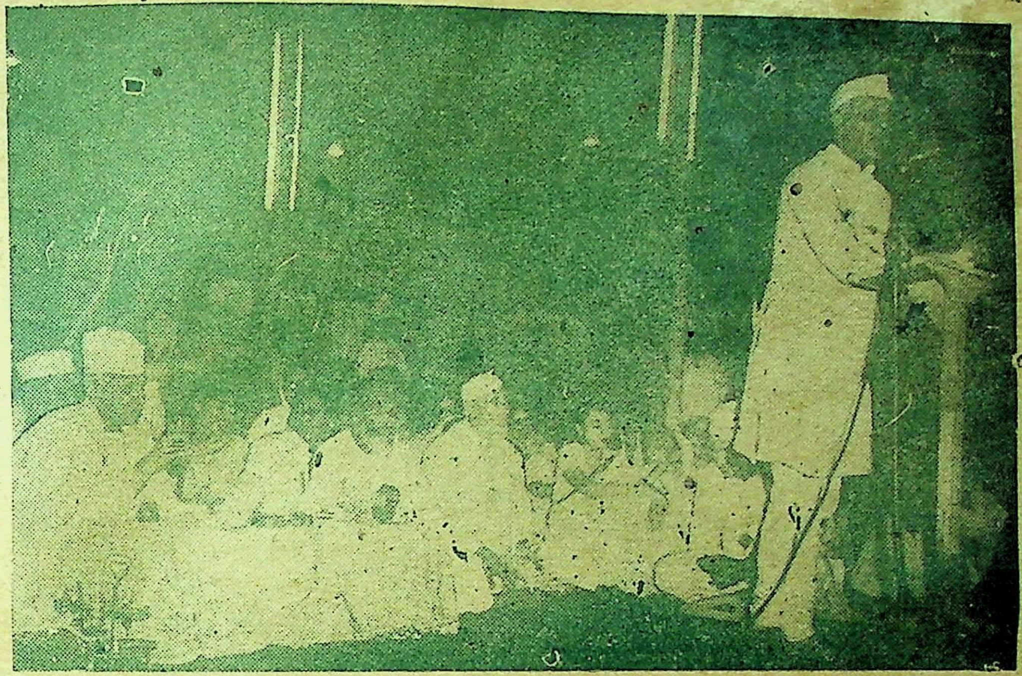
इस संग्रह में श्री चैतन्य महाप्रभु, गो० नित्यानन्द, भक्त हरिदास, रघुनाथदास और श्री शंकराचार्य, रामानुज स्वामी, सन्त तुकाराम, कबीर साहब आदि १७ सुप्रसिद्ध महापुरुषों के जीवन चरित हैं। ४०० से अधिक पृष्ठों की सचित्र, सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३।-) तीन रुपये पाँच आने।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड प्रयाग,

लेख-सूची

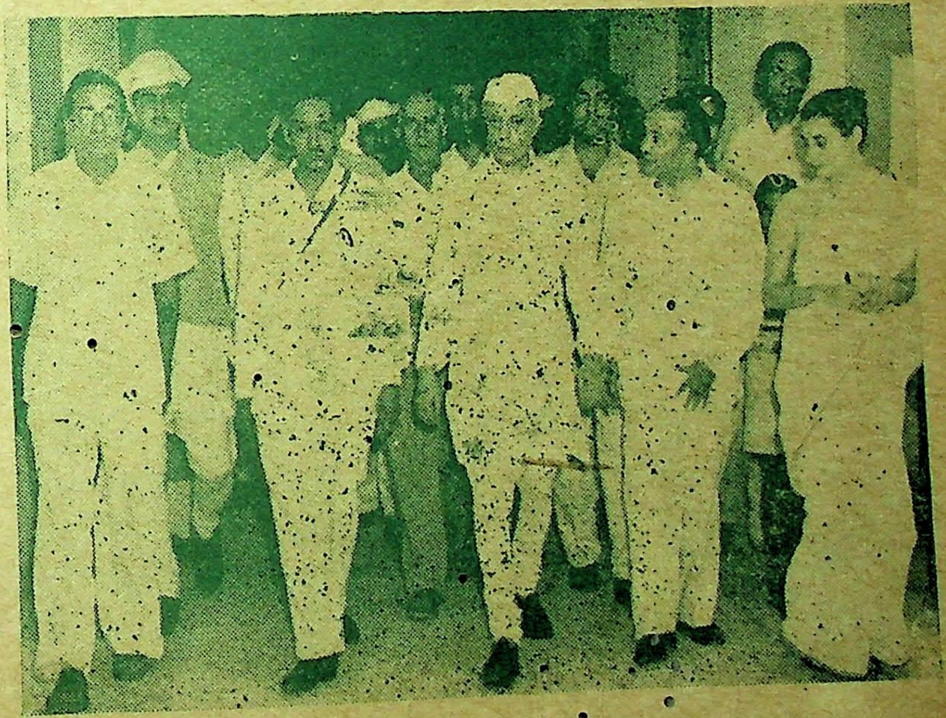
चित्र-सूची

राजनैतिक सभा में पं० नेहरू



कुछ ही समय हुए दिल्ली में एक राजनैतिक सभा आयोजित हुई थी। इसी सभा में भाषण करते हुए पंडित नेहरू चित्र में दिखाई दे रहे हैं। सभामंच पर श्री ब्रजलाल नेहरू, राजर्षि टण्डनजी और सभापति डा० किचलू विराजमान हैं।

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला



दिल्ली में राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला का निर्माण प्रारंभ हो चुका है। पिछले दिनों पंडित नेहरू उसके निरीक्षणार्थ गए भी थे। उक्त अवसर का एक दृश्य चित्र में अंकित है।



सम्पादक—हरिकेशव घोष : उमेशचन्द्र मिश्र

सितम्बर १९४९ भाद्रपद २००६ ; भाग ५० खण्ड २; संख्या ३ पूर्ण संख्या ५९७

हिन्दी-नागरी का भाग्य निर्णय

केन्द्रीय कांग्रेस पार्टी ने बड़ी खींच-तान के बाद अन्ततः यह तो मान लिया कि देश की राष्ट्रभाषा का नाम 'हिन्दी' और उसके लिए अधिकृत लिपि 'नागरी' रहे, पर इस सम्बन्ध में अड़ंगेवाजी की प्रवृत्ति फिर भी शेष रह गई। कांग्रेस दल में इस प्रश्न का निर्णय अन्तिम रूप से होते न देखकर इसके लिए एक उपसमिति नियुक्त की गई थी। इस उपसमिति का निर्णय अब प्रकाशित हो चुका है। उपसमिति में कुछ सदस्य ऐसे भी थे, जो हिन्दी के धुरंधर पक्ष-समर्थक थे। पर निर्णय से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनकी कुछ चलने नहीं पाई। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि जहाँ पहले अंग्रेजी को पन्द्रह वर्ष का समय और दिया गया है, वहाँ यह अवधि घटाकर दस वर्ष करने को कहा जा रहा है।

अवधि पन्द्रह वर्ष की रहे या घटाकर दस वर्ष को कर दी जाए, इससे हमारी समझ में न हिन्दी का कुछ बनेगा और न अंग्रेजी का कुछ बिगड़ेगा। विधान-परिषद् में इस सम्बन्ध में जो वाद-विवाद चला था, उससे विदित हुआ कि हमारे देश में कुछ ऐसे देशभक्त अभी विद्यमान् हैं, जो अंग्रेजी का मोह छोड़ने में स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रहे हैं। एक पीढ़ी की औसत अवधि बीस वर्ष मानी जाती है। विधान परिषद् ने जब ऐसा रुख अख्तियार किया कि अभी पन्द्रह वर्ष तक राजभाषा के रूप में अंग्रेजी को प्रतिष्ठित रहने दिया जाए, और इससे आगे भी यदि आवश्यकता समझी जाए तो अवधि को और भी बढ़ा दिया जाए; और उन विधानशास्त्रियों ने इसका यह अर्थ लगाया कि इन पन्द्रह वर्षों तक हिन्दी को राजकार्यों में पास तक न फटकने दिया जाए—न आगे भी उसके लिए कोई द्वार खुला रहने दिया जाए; तभी हम समझ गए कि स्वयं को कांग्रेसी ही कहने-माननेवाले इन विद्वानों ने कम-से-कम अपनी जीवनावधि के लिए अंग्रेजी को सुरक्षित कर लिया है; आगे की बात उनके उत्तराधिकारी जानें।

राजकाज और जनसाधारण के कार्यों में प्रयुक्त होनेवाले अंग्रेजी शब्दों के समानार्थक हिन्दी शब्द ढूँढ़ने में पन्द्रह वर्ष या उससे भी अधिक समय लगेगा, इसे जैसे नेताओं की इस वयोवृद्ध पीढ़ी ने स्वयंसिद्ध मान लिया है। फिर आवश्यकता पड़ने पर इस अवधि को भारतीय पार्लियामेण्ट और भी बढ़ा सकती है! इससे यही अर्थ लगाया जा सकता है कि हमारा यह नेतृवर्ग जनता को बहकाने भर के लिए हिन्दी नाम को स्वीकार कर रहा है, इसकी इच्छा यह नहीं है कि सरकारी काम वस्तुतः हिन्दी में किए जाएँ।

अन्तर्राष्ट्रिय व्यवहार के लिए पार्लियामेण्ट को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह जब तक चाहे, अंग्रेजी को कायम रक्खे। यही नहीं, अन्तर्राष्ट्रियता की दुहाई देकर यह निर्णय भी किया जा रहा है कि अङ्क अंग्रेजी के ही प्रयोग किए जाएँ। संख्या लिखने में राजकार्यों में अंग्रेजी अङ्कों का प्रयोग किया जाना भारतीय आत्मा के कहाँ तक अनुकूल है, इसे सम्भवतः निर्णायक अच्छी

तरह जानते होंगे। सम्भव है, अङ्क-लेखन की निर्भ्रान्त अँग्रेजी प्रणाली ने उन्हें ऐसा मानने को बाध्य किया हो; फिर अन्ताराष्ट्रियता तो ऐसे अवसरों पर उनकी रक्षा के लिए प्रस्तुत है ही; कारण, आज का भारतीय नेता और स्वयं को कांग्रेसी माननेवाला विद्वान् अपने दृष्टिकोण में पहले अन्ताराष्ट्रिय है, पीछे कुछ और! राष्ट्रिय तो जैसे अब वह अपने को मानता ही नहीं है। यदि वह राष्ट्रिय होता, उसे अपनी राष्ट्रियता का अभिमान होता, तो उसे यह भी गर्व रहता कि 'अङ्क' का आविष्कार सर्वप्रथम हिंद ने किया था। उसी ने अरबों को संख्या लिखना सिखाया—जिसे अरबों ने कृतज्ञतापूर्वक 'हिंदसा' नाम दिया। अरब से यह विद्या योरप में गई जहाँ इस अङ्क-शैली को 'अरेबिक' विशेषण दिया गया। आज हम अन्ताराष्ट्रियता की झोंक में अपनी नकल की नकल अरेबिक अङ्कप्रणाली को अपनाना चाहते हैं—अपनाने का निर्णय कर रहे हैं, यह भाग्य की नहीं, बुद्धि की बिडम्बना है। पर जो 'भारत' और हिंद को 'इण्डिया' नाम देने में गौरव का अनुभव करते हैं, जो टिकटों और लिफाफों पर अशोक-चिह्न अङ्कित करते हुए भी उसका शेष विवरण अँग्रेजी अक्षरों में छापना ही उचित समझते हैं, उन अँग्रेजों के मानस-पुत्रों के सम्बन्ध में क्या कहा जाए! उनकी राष्ट्रियता अन्ताराष्ट्रियता की तुला पर तुले बिना पूरी कब उतरती है!

काश्मीर-कमीशन की असफलता

काश्मीर का झगड़ा निबटाने के लिए सुरक्षा-परिषद् की ओर से जो कमीशन नियुक्त किया गया था, जो पिछले कई महीनों से दिल्ली, श्रीनगर और कराँची की अनवरत उड़ानें भर रहा था तथा अनेक बार सफलता-असफलता की मृग-मरीचिका में भटकता हुआ भी जो अपने ढङ्ग से अपने ऊपर ली हुई जिम्मेदारी को पूरा करने का भरसक प्रयत्न करता दिखाई दे रहा था, उसके मार्ग में फिर एक नया रोड़ा अटक गया है। अब एक बार फिर ऐसा प्रतीत होने लगा है कि वह असफल हो रहा है और उसकी अब तक की सारी दौड़-धूप निष्फल होने जा रही है।

अभी पिछले दिनों राष्ट्रसङ्घ के एक विशेष वायुयान ने कराँची तथा नई दिल्ली की उड़ान भरी थी। उद्देश्य था दोनों सरकारों को एक गोलमेज सम्मेलन के लिए निमंत्रण देना, जिसमें भारत तथा पाकिस्तान के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त काश्मीर-कमीशन के प्रतिनिधि भी सम्मिलित होते और विचार-विमर्श करके काश्मीर-समस्या का एक सर्वसम्मत हल ढूँढ़ निकालते। निमंत्रण के साथ अस्थायी कार्यसूची भी दोनों सरकारों के पास भेजी गई थी।

इससे कुछ ही दिन पूर्व कराँची में भारत और पाकिस्तान के बीच एक 'सैनिकवार्त्ता' हुई थी, जिसमें काश्मीर में सीमारेखा निर्धारित करने के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त स्थिर कर लिए गए थे। इन सिद्धान्तों को कार्यरूप देने के लिए उक्त सम्मेलन का प्रस्ताव किया गया था।

काश्मीर-कमीशन की जो नई घोषणा अभी हाल ही में पत्रों में प्रकाशित हुई है, उसमें कहा गया है कि भारत-पाकिस्तान-काश्मीर-कमीशन का जो अधिवेशन दिल्ली में होनेवाला था, वह स्थगित कर दिया गया है। क्यों? इस पर घोषणा में प्रकाश नहीं डाला गया है। संभव है, कमीशन इस संबंध में कोई दूसरा वक्तव्य निकट भविष्य में ही प्रकाशित करे!

इस सम्बन्ध में बहुत कुछ अटकल अवश्य लगाए जा सकते हैं। एक अटकल यह है कि कमीशन ने जो अस्थायी कार्यसूची दोनों देशों के पास भेजी थी, उसके संबंध में भारत और पाकिस्तान ने जो विचार पहले प्रकट किए थे और अपनी ओर से जो सुझाव दिए थे, उन्हें भी दूसरी सरकार को दिखा दिया गया था। सम्भवतः इस कार्यसूची में मतभेद उत्पन्न हो गया, इसी कारण कमीशन को सम्मेलन स्थगित कर देना पड़ा!

काश्मीर के सम्बन्ध में भारत और पाकिस्तान की नीति सर्वविदित है। पाकिस्तान ने काश्मीर में आक्रामक के रूप में प्रवेश किया था और भारत ने रक्षक के रूप में। किसी देश पर आक्रमण करना संयुक्त राष्ट्रसङ्घ की नीति को चिनौती देना था, पर काश्मीर पर आक्रमण हुआ और संयुक्त राष्ट्रसङ्घ एक प्रेक्षक के रूप में उसे देखता रहा। सुरक्षा-परिषद् को इसके विरोध में एक शब्द कहने का भी साहस नहीं हुआ। भारत ने अपनी ओर से भी यह मामला वहाँ उपस्थित किया, संसार के सामने अपनी नैतिकता प्रमाणित करने के लिए, पर उसकी भी कोई अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हुई। संयुक्त राष्ट्रसङ्घ और सुरक्षा-परिषद् कितने गहरे पानी में हैं, इसका पता तो तभी चल गया था जब आक्रामक, आक्रान्त और रक्षक को उसने समान सम्मान प्रदान किया था।

कमीशन समझौता कराने में जिस सिद्धांत को आधार-भूत मान रहा है, वह सम्भवतः यह है कि काश्मीर पर पाकिस्तान का भी उतना ही हक है, जितना कि भारत का। वह बधिक और डाक्टर को अपनी न्यायतुला के दोनों पलड़ों पर बराबर तौलना चाहता है।

संयुक्त राष्ट्रसङ्घ, सुरक्षा-परिषद् और कमीशन के इस असन्तुलित व्यापार ने पाकिस्तान सरकार के दिमाग को सातवें आसमान पर चढ़ा दिया है। धमकी और धपसट उसका विश्वस्त सिद्ध अस्त्र है। भारत युद्धबन्दी को शान्ति-रक्षा की दृष्टि से यदि तैयार हो जाता है और सीमाबन्दी के मसले पर समझौता करने को तैयार हो जाता है, तो इसका अर्थ पाकिस्तान की दृष्टि में यह है कि भारत कमजोर पड़ रहा है, अतएव और तने रहो। इस प्रकार वह सब प्राप्त हो जाएगा, जो पाकिस्तान का अभीष्ट है। अभी कल ही मियाँ लियाकत अली ने कहा था कि "हमारी मैत्री भारत के साथ तभी पक्की हो सकती है, जब काश्मीर का मसला ठीक-ठीक तय हो जाए।" अर्थात् काश्मीर में पाकिस्तान जहाँ जितना चाहे, वहाँ उतना उसे चुपचाप दे दिया जाए, तो पाकिस्तान भारत का दोस्त, नहीं तो वह दुश्मन तो बना-बनाया है ही!

ऐसे पड़ोसी की मित्रता किस काम की, जो सदैव फाड़ खाने की घात में रहता हो! इतनी मँहगी दोस्ती मोल लेकर होगा भी क्या? भारत का विश्वास है कि निष्पक्ष मत-गणना होने पर काश्मीर का प्रबल बहुमत भारत के पक्ष में जाएगा। पाकिस्तान भी यह अच्छी तरह समझता है; पर साथ ही वह इस प्रकृत सत्य को भी पहचानता है कि जब तक पाकिस्तानी सेनाएँ और प्रचारक काश्मीर की भूमि पर मौजूद हैं, तब तक मत-गणना होने से रही, और यदि होगी भी तो डण्डे के जोर से काफी से अधिक मत प्राप्त कर लिए जाएँगे। जो काश्मीरी भारत के पक्ष में मत देंगे, वे अभी तक शरणार्थी के रूप में काश्मीर से बाहर ही पड़े हैं। जब तक पाकिस्तानी सेनाएँ काश्मीर की भूमि नहीं छोड़ देतीं, उक्त निष्क्रान्तों का साहस नहीं हो सकता कि वे अपने छोड़े हुए घरों में जाकर फिर बसें और भारतीय सङ्घ में मिलने के पक्ष में मत दें।

भारत शान्ति चाहता है, पर शान्ति मिलती दिखाई नहीं देती! वह न्याय चाहता है, पर न्याय आजकल माँगने से नहीं मिलता, डण्डे के जोर से मिलता है। आततायी आक्रामक सदैव विपक्ष की सहनशीलता और न्यायपरायणता से अनुचित लाभ उठाना चाहता है। संयुक्त राष्ट्रसङ्घ पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा और शक्ति-सन्तुलन की लहरों में बह रहा है। वह किसी राष्ट्र को सन्तुलित न्याय दे सकेगा, इसकी अधिक आशा हमें नहीं है। अपनी-अपनी दाढ़ी का मसरका है। काश्मीर ने भारतीय-सङ्घ में सम्मिलित होने की घोषणा पहले की थी, परिस्थितियों से विवश होकर और स्वयं को भेड़ियों से बचाने के लिए, भारतीय सेनाएँ बाद को काश्मीर की भूमि पर उतारी गई थीं, काश्मीर के लुटेरे आततायियों के दाँत तोड़ने के लिए। काश्मीर की स्वतंत्रता और एकता की रक्षा करने के लिए भारतीय सङ्घ प्रतिज्ञाबद्ध है। उसे अपने वचन का पालन करना है। पाकिस्तान जैसे राष्ट्र की मित्रता सार्वभौम नैतिक सिद्धांतों के मूल्य पर नहीं खरीदी जा सकती।

भारतीय स्वाधीनता की तीसरी वर्षगाँठ

१५ अगस्त, १६४६ को भारतीय स्वाधीनता दो वर्ष की हो गई। इन दो वर्षों में हमने जो कुछ प्राप्त किया है, वह कम नहीं है, यद्यपि अभी बहुत कुछ प्राप्त करना शेष है। सन् १६४६ में पराधीनता का रोग अपनी चरम परिणति पर पहुँच चुका था। लगातार चलनेवाले कर्फ्यू-आर्डरों के बीच, शाम के सात बजे से घर के भीतर घुसे-घुसे हम सड़क पर पाशविकता के मद से सीने उभारे हुए फौजी सिपाहियों के और उनके नायक किसी गोरे के फौजी बूटों की समवेत ध्वनि सामने की सड़कों पर रात भर सुनते थे और अपनी बेबसी पर दिल मसोसकर रह जाते थे। सबेरा होने पर एक घण्टे के लिए कर्फ्यू खुलता था, तब सबसे पहला अनुभव हमें यह होता था कि भारत आज भी पराधीन है; हम इस समय भी पराधीनता के वातावरण में साँस ले रहे हैं; हम आज भी गुलाम हैं।

गुलामी का—दो सौ वर्षों से चली आनेवाली गुलामी का—पाप-भरा घड़ा पहली बार और अन्तिम बार १५ अगस्त, १६४७ को आधी रात के बारह बजते ही फूटा था। अपने राष्ट्रिय जीवन में पहली बार उस क्षण में हमने अनुभव किया था कि हम स्वतन्त्र हैं; हमारे अपने देश में अपना राज है। हमारे सीने पर

अब गोरों की संगीनें नहीं हैं, उनके भारी फौजी बूट हमारे सिर कुचलने के लिए, हमारी तिल्लियाँ और जिगर फाड़ने के लिए, अब लालायित नहीं हैं। अब नागरिकता का, मनुष्यता का, प्रथम प्रकृत अधिकार हमें मिल गया है; अब हमारी गणना कुत्तों और निरीह पशुओं में नहीं होगी। जलियानवाले की, हैलटशाही की, पुनरावृत्ति अब यहाँ न होगी।

दासता के अभिशाप से चिर अभिशप्त के लिए यह भावना एक दैवी प्राप्ति थी। इस भावना में एक नागरिक के 'अहं' की चिर तृप्ति थी। उस दिन हम स्वाधीन हो गए थे। अपना देश, अपनी जमीं और अपना आसमान! अपना हिमगिरि और अपना महासागर!

पाप का घड़ा फूटा पर उसमें भरा विषैला द्रव्य सारे भारतीय वातावरण में छितरा गया। इधर दिल्ली में रोशनी हुई, भारतीय संघ का प्रत्येक नगर रोशनी से जगमगाया, लाल किले पर तिरङ्गा फहराया और उधर लाहौर धू-धू करके जल उठा, रावलपिण्डी में सीता और सावित्री की इज्जत पर हमला हुआ; पद्मिनी के जौहर की पुनरावृत्ति हुई; हकीकत राय के सहस्रशः उदाहरण प्रस्तुत हुए! हर्ष और शोक का, देवता और दानव का जैसे द्वन्द्व छिड़ गया। बिना खून बहाए मिलनेवाली आजादी का मूल्य इस शोणित तर्पण-द्वारा हमें पहले ही दिन नकद चुकाना पड़ा।

उसके बाद निष्क्रमण की समस्या उपस्थित हुई। पर हमारे कुशाग्रबुद्धि नेताओं ने उसे भी अविचल भाव से हल किया।

और तब से हम आगे ही बढ़ते जा रहे हैं—स्थिर पदों से उस लक्ष्य विन्दु की ओर, जहाँ सच्ची स्वाधीनता है, जहाँ निर्बन्ध नागरिकता है, जहाँ सच्चा स्वराज्य है और जहाँ गांधी जी का मनोनीत रामराज्य प्रतिष्ठित है।

इन दो वर्षों में ही हमारे कांग्रेसी नेताओं ने, हमारे अग्रणियों ने, यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित कर दिया है कि उनमें शासनतन्त्र चलाने की अभूतपूर्व क्षमता है और देश का सबसे बड़ा, सर्वाधिक शक्तिशाली संगठन कांग्रेस है, जिस पर भारतीय संघ की कोटि-कोटि जनता की अटूट आस्था है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के कुछ ही महीने बाद राष्ट्रपिता की हत्या हमारे नवोदित राष्ट्र के लिए एक भयानक आघात था, पर अपने कुशल नेताओं के नेतृत्व में देश ने उसे भी सह लिया। हमारी संस्कृति पार्थिव शरीर के नाश को मृत्यु नहीं मानती; व्यक्ति अमर है। भौतिक शरीर को त्याग देने के पश्चात् भी बापू हमारे बीच मौजूद हैं, हम प्रतिक्षण उनकी उपस्थिति का अनुभव कर रहे हैं और उनके निर्देशित पथ पर परम आस्था के साथ अग्रसर हो रहे हैं। वे प्रकाश-स्तम्भ हैं, हमारे लिए और हमारी सरकार के लिए। वे हमें बराबर प्रेरणा दे रहे हैं। हमारी उलझनें सुलझा रहे हैं, ठीक उसी प्रकार, जैसे कि वे पांचभौतिक शरीर रहते हुए करते थे। उनकी प्रेरणाएँ शाश्वत हैं, उनकी वाणी चिरन्तन है; बापू अमर हैं। भारतीय संघ अमर रहेगा।

जाते-जाते ब्रिटिश राज्य ने हमारा अङ्ग-भङ्ग कर दिया था और उस विभक्त अङ्ग को जहरबाद के रूप में हमें सदा चिन्तित रखने को प्रतिष्ठित कर दिया था। दूषित अङ्ग का उपचार भी अब हम सीख चुके हैं। हमारा वह अङ्ग भले ही पूर्ण-स्वस्थ न हो सके, पर अवशिष्ट अङ्ग को वेदना-प्रसारण-द्वारा रात-दिन व्याकुल न रख सकेगा, यह निश्चित है। अभी हम प्राकृतिक चिकित्सा-द्वारा उसका प्रतिकार कर रहे हैं, पर यदि आवश्यकता ऐसी ही हुई तो हम 'मेजर सर्जरी' और 'एम्पूटेशन' को भी आजमा सकते हैं। काश्मीर और हैदराबाद में हमने जो कार्यवाही की है, वह 'माइनर आपरेशन' से अधिक कुछ नहीं है।

देश के सर्वांग पर विसर्प की भाँति फैले हुए देशी रजवाड़ों को सार्वभौम सत्ता समर्पित करते हुए विदेशी कूटनीतिज्ञों ने सोचा होगा कि इन जहरीले फोड़ों से यह नवोदित शिशु अवश्य ही अकाल-मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। पर हमारे विचक्षण चिकित्सक ने वह कर्तब कर दिखाया कि सारा संसार दाँत तले उंगली दबाने लगा। रजवाड़े अब भारत-जनतंत्र में भासमान् हो गए हैं। अब कहीं कोई बेरंग दाग-धब्बा शेष नहीं है। सारा शरीर स्वस्थ है; स्वरूप है।

दो वर्ष की इस अल्प अवधि में ही हमारे जवाहर ने भारत की प्रतिष्ठा को अन्ताराष्ट्रिय क्षेत्र में कितना बढ़ा दिया, इसकी नाप-जोख कौन कर सकता है! आज समस्त दक्षिणी-पूर्वी एशिया दासता के बन्धन से मुक्ति पाने के लिए भारत की ओर देख रहा है और जवाहर के तत्त्वावधान

में भारत उसका उचित दिशा की ओर नेतृत्व भी कर रहा है। डाक्टर हाटा अभी कल ही तो भारत होते हुए उस कान्फ्रेन्स में भाग लेने गए हैं, जिसमें उनके राष्ट्र का भाग्य निर्णय होनेवाला है। डच सरकार इतनी सरलता से झुकनेवाली कब थी! यह तो उस अधिवेशन का असर है, जो पिछले वर्ष दिल्ली में वीर जवाहर के नेतृत्व में हुआ था और जिसमें दक्षिणी-पूर्वी एशिया के सभी देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। ऐसी कार्यवाहियाँ हमारे राष्ट्र की नेतृत्व-क्षमता और गतिविधि की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं। इनसे सिद्ध होता है कि भारतीय संघ की दिलचस्पी अटलांटिक के मामलों में है। पर उतनी नहीं, जितनी कि हिन्दमहासागर से संबन्धित देशों में है। वह स्वयं आजाद हो चुका है तो अपने इन अच्छे पड़ोसियों को भी अविलम्ब आजाद देखना चाहता है।

अन्ततः 'समानशीलव्यसनेषु सख्यम्' ही तो मंगलकारी होता है! एशियायी देश हमारे सांस्कृतिक शिष्य रहे हैं और समानधर्मा तो हैं ही। योरपीय साम्राज्यवाद की ऊँची दीवाल एशियायी देशों की हड्डियों और रक्त के योग से चिनी गई है। एशिया की सम्मिलित शक्ति ही इस दीवाल को ढा सकती है, और इस दीवाल को जब तक भूमिसात् न कर दिया जाएगा, तब तक कोई एशियायी देश स्वच्छन्द वायु और स्वस्थ प्रकाश का आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता। भारतीय नेताओं ने इस तथ्य को हृदयंगम कर लिया है और दूसरे एशियायी नेताओं को भी करा दिया है; भले ही हमारा लायक पड़ोसी पाकिस्तान इसे न सीखना चाहे। पर आखिर कब तक?

ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से सम्बन्धित होकर हमारे महात्म्य ने भारत की प्रतिष्ठा को बढ़ाया ही है, घटाया किसी अर्थ में नहीं है। देश में चलनेवाली विकास-योजनाओं के लिए हमें उक्त राष्ट्रमंडल के सदस्य राष्ट्रों की सहायता अनिवार्य रूप से अपेक्षित है। दूसरी दिशा से यह सहायता प्राप्त नहीं हो सकती थी! फिर सदस्यता-पत्र पर हस्ताक्षर करने के पूर्व यह साफ-साफ कह दिया गया है कि 'भारत की अपनी स्वतंत्र वैदेशिक नीति है। इस मामले में वह किसी योरपीय देश से प्रभावित नहीं हो सकता।'

इन्हीं दो वर्षों के भीतर हमने अपना शासन-विधान भी बना लिया है, जो सभी दृष्टियों से पूर्ण और गौरवशाली है। इस विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सिद्धान्तवादी नहीं है। इसमें प्रान्तीय सरकारों को वे समस्त अधिकार प्रदान किए गए हैं, जिनकी आवश्यकता उन्हें जनोपयोगी मामलों में पद-पद पर पड़ती थी, और जिनके लिए अब से पहले उन्हें केन्द्रीय सत्ता की ओर देखना पड़ता था। फिर भी केन्द्र का नियंत्रण अक्षुण्ण रक्खा गया है। भारतीय इतिहास हमें बतलाता है कि केन्द्रीय सत्ता के निर्बल होते ही, प्रान्तीय सत्ताओं की प्रवृत्ति स्वेच्छाचार की ओर हो जाती है, जिससे सम्पूर्ण शासनतंत्र छिन्न-भिन्न और अव्यवस्थित हो जाता है। सत्ता का बँटवारा करते हुए इस पाठ को स्मरण रक्खा गया है। साथ ही चीन में घटनेवाली घटनाओं से भी शिक्षा ली गई है।

कांग्रेसी शासन को जहाँ पिछले दो वर्षों में व्यापक सफलता मिली है, वहाँ दो-एक ऐसे उदाहरण भी मिले हैं जिनसे आभास मिलता है कि हमारी कांग्रेस अपनी लोकप्रियता को उत्तरोत्तर खो रही है। यह परिस्थिति निस्सन्देह चिन्ताजनक है। कलकत्ते के चुनाव में श्री शरच्चन्द्र बोस की विजय कांग्रेसी उम्मीदवार के मुकाबले इतने भारी बहुमत से हुई कि इससे न केवल बंगाल के कांग्रेसियों में, समस्त भारत में एक तहलका मच गया। इस अप्रत्याशित पराजय का समाधान अनेक दृष्टिकोणों से किया गया है। पर इसका एक सुफल भी हुआ है और वह यह कि अब कांग्रेस के पुनःसंगठन और विशुद्धीकरण की ओर प्रत्येक देशभक्त का ध्यान आकर्षित हो गया है और उन कारणों को ढूँढ़-ढूँढ़कर दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है, जो कांग्रेस की लोकप्रियता को कम करने में जिम्मेवार हैं। कांग्रेस के प्रधानमंत्री की एक ताजी विज्ञप्ति से पता लगा है कि वे उन सभी चुने गए कांग्रेसी पदाधिकारियों की सूची तैयार करा रहे हैं, जिन्होंने अपने नाम परमिट और लाइसेन्स प्राप्त किए हैं। उच्च अधिकारियों के जो भाई-भतीजे ऊँचे सरकारी ओहदों से चिपका दिए गए हैं, उन्हें भी धो-छुटाने का प्रबन्ध हो रहा है। इस आँच से कांग्रेस अचिरकाल में ही शुद्ध सौ टंच की बन जाएगी।

दो-एक अपवादों को छोड़कर शेष समस्त भारतीय संघ में शासन-कार्य शान्ति के साथ चल रहा है; फिर भी कुछ प्रान्तीय सरकारों ने 'आर्डिनेन्सों' का बोझ अपने ऊपर लाद रक्खा है; यह परिस्थिति अधिक सुखकर नहीं दिखाई देती। नागरिक स्वाधीनता प्रजातंत्र का प्रथम आकर्षण है। राज्य की ओर से उसमें तभी हस्तक्षेप होना

चाहिए जब सार्वजनिक हित और सार्वजनिक शान्ति के लिए कोई बड़ा खतरा हो। अधिक आर्डिनेन्सों की सृष्टि और प्रयोग, या उन्हें अमोघ अस्त्र की भाँति पहले से ही सँजोकर रख लेना, विचक्षणता का परिचायक हो सकता है, पर वह शासक-वर्ग की आभ्यन्तरिक निर्बलता को भी प्रदर्शित करता है। सरकारी अधिकारी ऐसे आर्डिनेन्सों-द्वारा प्राप्त विशेष शक्ति का दुरुपयोग नहीं करेंगे, ऐसी गारण्टी देना किसी सरकार के लिए संभव ही कब है! अधिकारियों की व्यक्तिगत कमजोरी सरकार की बदनामी का कारण बनती है, और अन्ततः उस दल की, जिसकी सरकार होती है। स्वतंत्रता के इस तृतीय वर्ष में आर्डिनेन्सों का बोझ जितना हल्का कर दिया जाए, और नागरिक स्वतंत्रता को जिस मात्रा तक अछूता छोड़ा जा सके, उतना ही अच्छा!

सम्पूर्ण राशनिंग

युक्तप्रान्त में सम्पूर्ण राशनिंग फिर से लागू कर दिया गया है। 'सरस्वती' का यह अङ्क जिस तारीख को पाठकों के हाथ में पहुँचेगा, उससे एक या दो दिन पहले ही गल्ले का खुला बाजार बन्द हो जाएगा और प्रान्त के पचहत्तर नगरों के निवासी खाद्यान्न के लिए सम्पूर्णतया राशन की दूकानों पर निर्भर हो जाएँगे। छूट केवल इतनी दी गई है कि जिन कुटुम्बों का पेट राशन की निर्धारित मात्रा [५ छटाँक गेहूँ + एक छटाँक चावल + दो छटाँक मोटा अनाज या ४ छटाँक गेहूँ + ३ छटाँक मोटा अनाज कुल सात छटाँक, जिसमें चावल एक छटाँक से अधिक नहीं होना चाहिए] से न भरे, वह बाजार से मक्का, बेझर (जौ-चना या जौ-मटर का मिश्रण) लइया या चिउरा लेकर अपना काम चलाएँ।

इस प्रान्त में अन्न की राशन-व्यवस्था के दूसरी बार लागू हुए लगभग एक वर्ष का समय हो चुका है। अब तक इस संबंध की जो दूकानें थीं, वे 'रिलीफ कोटा शाप' कहलाती थीं। सरकार का मंशा यह था कि अधिकारी नागरिक इन दूकानों से निर्धारित मात्रा में खाद्यान्न नियंत्रित भाव पर खरीद सकें। उस निर्धारित मात्रा को देने की अन्तिम जिम्मेदारी भी सरकार ने अपने ऊपर नहीं ली थी क्योंकि उसका अन्न-भाण्डार उस समय लबालब भरा नहीं था। मोटा अन्न कभी मिलता था और प्रायः नहीं मिलता था। सरकार के पास बहाना यह था कि हमारे पास जो कुछ है, या जितना और जिस प्रकार का अन्न हमें प्राप्त होता है, हम वितरण के लिए भेज देते हैं। वह अच्छा या सड़ा-गला है, इसकी जिम्मेदारी सरकार पर नहीं है। जो नागरिक उस अन्न को पसन्द करें, लें और जो न पसन्द करें, वे जाकर खुले बाजार से अपनी पसन्द का अनाज ले आएँ, बाजार बन्द नहीं किया गया है—'सम्पूर्ण राशनिंग' नहीं है। 'रिलीफ कोटा' का अभिप्राय नागरिक को थोड़ी-सी अन्न-सम्बन्धी सुविधा पहुँचाना ही है, इस अभिप्राय से कि अन्न की चोरबाजारी, मुनाफाखोरी या संग्रह-प्रवृत्ति को रोका जा सके।

तब सरकार को विश्वास था कि 'रिलीफ कोटा' प्रणाली का प्रभाव बाजार-भाव पर अवश्य पड़ेगा और प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से अन्न का भाव बाजार में लगभग उतना ही चलेगा, जो सरकारी दूकानों पर है। पर वैसा हुआ नहीं। सरकारी दूकान पर गेहूँ एक रुपये का ढाई सेर मिलता रहता तो मण्डी में वह रुपए का पाँच पाव या छः पाव बराबर मिलता रहा। हाँ एक अन्तर अवश्य था और वह यह कि इन 'रिलीफ कोटा' की दूकानों पर जो गेहूँ बिकता था, वह प्रायः बदबूदार होता था, उसकी रोटी चीमड़ होती थी, उसमें पेचिश और उदरशूल पैदा करने के उत्तम गुण थे और पोषकतत्त्व तो जैसे उसमें से पहले ही निकाल लिए जाते थे। जौ की अवस्था इससे भी बुरी थी। वह तो सचमुच जानवरों के खाने योग्य भी नहीं था, मनुष्य की कौन कहे! चना भी पुराना और घुना-सड़ा था, पर मिलता ही वह कब और कितना था; उसके लिए तो दूकानों पर प्रायः हाथापाई की नौबत आ जाती थी।

यह सब देखते हुए नगर के कुछ सम्भ्रान्त नागरिकों ने, जो 'अच्छा खाने-खाने' के आदी थे, राशनकार्ड बनवाया ही नहीं था। इस सरकारी 'रिलीफ' से लाभ उठाना पारिवारिक स्वास्थ्य के मूल्य पर उन्हें कैसे स्वीकार हो सकता था!

सम्पूर्ण राशनिंग की घोषणा होते ही ऐसे सम्भ्रान्त कुलीनों के पेट में अन्न पानी हो गया है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध दैनिकों में उनके पत्र छपने लगे हैं। 'सम्पूर्ण राशनिंग' के लागू होने पर उन्हें राशनकार्ड लेना अनिवार्य हो जाएगा। अतः वे सरकार से चाहते हैं कि राष्ट्रिय सरकार होने के नाते 'सम्पूर्ण राशनिंग' या तो सरकार लागू ही न करे और यदि लागू करती ही है तो इस बात की गारण्टी करे कि जो गल्ला दिया जाएगा, वह दूषित

नहीं होगा; साथ ही उसके राशनिंग कर्मचारी इस बार अपनी पिछली भलमनसाहत का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

क्या सरकार ऐसी गारण्टी दे सकेगी ?

सरकार से अन्न के सम्बन्ध में गारण्टी माँगने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को है, यह हम मानते हैं। पर क्या सरकार इस प्रकार की गारण्टी दे सकती है, इस पर सरकारी दृष्टिकोण से विचार करना भी आवश्यक है।

'सम्पूर्ण राशनिंग' की विवशता पर प्रकाश डालते हुए प्रान्तीय सरकार के माननीय रसद-मन्त्री ने जो वक्तव्य दिया है, उससे स्पष्ट होता है कि युक्तप्रान्तीय-सरकार मण्डियों को बन्द करने के पक्ष में नहीं थी। ऐसा उसे केवल केन्द्रीय सरकार के अनुरोध पर करना पड़ा है। गत अन्न-संग्रह-योजना के अनुभवों से यह सिद्ध होगया है कि किसान अपना अनाज सरकार के हाथ निर्धारित मूल्य पर बेंचना नहीं चाहता क्योंकि मण्डीवाले उसे अपेक्षाकृत कहीं अधिक मूल्य पर क्रय करने को तैयार रहते हैं। इससे संग्रह-योजना के मार्ग में भारी रुकावट आती है। सरकार बाहर से अन्न मँगाना अब चाहती नहीं, क्योंकि इससे एक तो देश का पैसा भारी तादाद में विदेश जाता है, दूसरे वहाँ से जो अन्न मिलता है, वह भी अच्छा नहीं होता और तीसरे अन्न जैसे मामले में परनिर्भर होना राष्ट्रिय निर्बलता का सूचक है। वर्त्तमान परिस्थिति में आत्मनिर्भरता या तो अधिक अन्न उपजाकर प्राप्त की जा सकती है या अन्न-संग्रह करके व्यवस्थानुसार उसे वितरित करके। बनिए माल ऊँचे मूल्य पर खरीदकर संग्रह-प्रवृत्ति और मुनाफाखोरी का परिचय देते हैं, जिससे राष्ट्र को प्राणसंकट उपस्थित हो जाता है और सरकार के पैर डगमगाने लगते हैं।

फिर एक नगर में एक ही वस्तु के भाव में इतना अन्तर रहना राजकीय अर्थव्यवस्था के लिए घातक है। एक नगर ही में क्यों, समस्त राष्ट्र में प्रत्येक उपभोग्य वस्तु के मूल्य में एकरूपता रहनी चाहिए, यही उत्तम अर्थ-व्यवस्था है, जो सुशासन का परिचायक है। बनियों की दुष्प्रवृत्ति रोककर अन्न का भाव जब तक गिराया नहीं जाता, आवश्यकता की दूसरी वस्तुओं का मूल्य भी तब तक बराबर बढ़ता ही जाएगा, वह कभी समान स्तर पर नहीं आ सकता। प्रान्तों, केन्द्र और रियासतों के पारस्परिक सहकार से ही यह सम्भव है। समस्त भारत में भावों का समान स्तर पर लाने के लिए अनाज के खुले बाजार को रोकना केन्द्रीय सरकार के लिए, इसी कारण प्रान्तीय सरकारों के लिए, आवश्यक हो गया है।

रही सड़े-गले अनाज की बात! बाहरी अनाज बन्द कर देने और देशी अनाज पर्याप्त मात्रा में संगृहीत हो जाने पर यह गारण्टी आप-से-आप हो जाएगी। अन्न की जो क्षति सरकारी कर्मचारियों की अदक्षता या काहिली के कारण होती है, उसे भी दूर करना ही होगा। किसी नगर-विशेष में खत्तियों में भरा पचास हजार रुपए का गल्ला यदि वृष्टिजल के भीतर भर जाने से सड़ जाता है तो उन अधिकारियों को निश्चय ही राष्ट्रिय सरकार पारितोषिक नहीं देगी, जिनकी रक्षा में वे खत्तियाँ थीं और इसी कार्य के लिए जो करदाता की ओर से प्रतिमास भारी पुरस्कार पाते हैं।

जो हो, पहली सितम्बर से युक्तप्रान्त में सम्पूर्ण राशनिंग शुरू हो जाएगा, यह एक स्थापित सत्य है। पर इस सिलसिले में कुछ अन्य स्थापित सत्यों की घोषणा भी सरकारी पत्रों में पढ़ने को मिली थी, जो प्रमाणीभूत दिखाई नहीं देती। उदाहरणार्थ कहा तो यह गया था कि सरकार एक विशेष आर्डिनेन्स लागू करके मंडियों में संचित धान्य की सारी राशि को जब्त कर लेगी, जिससे वह लाखों-करोड़ों टन अन्न अँधेरे में न पहुँच जाए। पर वैसा कुछ हुआ नहीं! सम्भवतः कुछ बैंकों पर इसका घातक प्रभाव पड़ता और इस भोंड़ी परिस्थिति को बचाने के लिए ही सरकार ने यह कदम उठाना उचित नहीं समझा। इस बुद्धिमत्ता से संबंधित बैंक निस्सन्देह चिरायु हो गए; पर वह अन्नराशि, जो अब खुले बाजार में बिक नहीं सकेगी, खत्तियों के मालिकों के खाए चुक नहीं सकेगी और सरकारी अन्न-भाण्डारों के भार को बढ़ाने को स्वेच्छा से उनमें जाकर मिलेगी नहीं, आखिर जाएगी कहाँ? यदि वह दबी-दबी सड़ गई तो भी राष्ट्र की हानि ही होगी! उचित यही है कि बनियागण उसे स्वेच्छा से सरकार के हाथ बेंच दें और चलते-चलाते राष्ट्रसेवा का महत् पुण्य सस्ते में लूट लें। वे समझ लें कि उनमें से प्रत्येक ने एक-एक धर्मशाला बनवा दिया है, जिसमें सदावर्त भी बँटता है। हमारा धर्मप्राण और धर्मभीरु वणिक् समुदाय हमारे इस सुझाव पर समय रहते ध्यान देगा तथा प्रान्तीय सरकार और शान्त की कठिनाई

दूर करने में अपना योग देगा, इसकी हमें पूरी आशा है; अन्यथा गेहूँ-जौ-चना सोने की ईंटें नहीं हैं, जिन्हें भूगर्भ में दबाकर आगामी सन्तति का भविष्य सुरक्षित किया जा सके।

सरकारी नौकरों से

सरकार कितनी ही अच्छी हो, उसके संचालक कितने ही न्यायनिष्ठ, लोकसेवक और ईमानदार हों, पर यदि सरकारी नौकर नेक, ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठ नहीं हैं तो जनता को सुख नहीं मिलता और अन्ततः सारी बुराई सरकार पर आती है। भारत में कुछ ऐसा ही हो रहा है, जिससे हमारे मनस्वी विचारक और राष्ट्र के हितचेता चिन्तित हो उठे हैं। 'हरिजन सेवक' के ताजे अंक में, इसी सम्बन्ध में, श्री मशरूवाला ने सरकारी नौकरों को कठोर चेतावनी दी है। अच्छा होता यदि उच्च सरकारी नौकर कभी-कभी 'हरिजन सेवक' भी पढ़ते होते; इससे और अधिक नहीं तो उन्हें यह तो ज्ञात ही होता रहता कि उनके संबंध में जनता के क्या विचार हैं और उनके कारनामें स्वराज्य और कांग्रेस जैसे शब्दों की प्रतिष्ठा बढ़ाने में कहाँ तक सहायक हो रहे हैं। उक्त चेतावनी का मुख्य अंश श्री मशरूवाला के ही शब्दों में इस प्रकार है :—

"× × मैं चाहता हूँ कि यह सब मुझे न लिखना पड़ता। लेकिन मेरे पास देश के लगभग प्रत्येक हिस्से से जो शिकायतें बारंबार आती रहती हैं, उनके बारे में आपसे सीधे बात करने के सिवा मुझे कोई रास्ता ही नहीं दीखता।

हमारी आजादी का तीसरा साल शुरू हो गया है। विदेशी अफसरों के चले जाने, मुसलमान अफसरों के पाकिस्तानी नौकरी पसन्द कर लेने, अनेक अफसरों के विदेश में राजदूत नियुक्त हो जाने या नए खुले मुहकमों में लग जाने से आपमें से कई को छोटे पदों से उठाकर जिम्मेदारी के बड़े पदों पर रख दिया गया है, इससे आपकी तनख्वाहें भी बढ़ गई हैं और भत्ते भी। × × × सरकार अगर चाहती तो ऊँची जिम्मेदारी की जगहों पर नई नीतियों पर अमल करने और नए हिन्द का निर्माण करने के लिए बिल्कुल नए आदमी रख सकती थी। चरखा-संघवाली सरकार तो आपकी तनख्वाहों और आराम में बहुत कमी कर देती।

"आप लोगों को 'नौकरशाही' का नाम दिया गया था। आप जानते हैं कि इस नाम में घृणा भरी है—बेईमान मूर्ख जड़, दकियानूसी, कामचोर, घमंडी, धृष्ट, जनता के हितों का शत्रु, तथा ऐसे ही विशेषण कांग्रेसी नेता आपको दिया करते थे, जिनमें से अधिकांश आज मंत्रिमण्डलों के सदस्य भी हैं। सर्वसाधारण 'स्वतंत्र हिन्द' का अर्थ 'नौकरशाही से मुक्त देश' समझते थे।........ कांग्रेस का तरुणवर्ग ऐसे ही परिवर्त्तन की आशा में था। उस वर्ग के और जनता के कांग्रेस से आज असन्तुष्ट हो जाने का एक कारण यह भी है कि नेताओं ने ऐसा उलट-फेर नहीं किया और पुरानी पद्धति को ही जैसे-का-तैसा कायम रक्खा।........ अभिप्राय यह है कि अंग्रेजों ने जो परम्परा चलाई थी, और जिसे आपने पचा लिया था, उसमें और इस दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं आया। व्यावहारिक रूप में तो अंग्रेजी शासन ही चालू रहा।........ विविध सरकारों के मंत्रिगण आपकी कार्य-कुशलता से कितने ही सन्तुष्ट क्यों न हों पर मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि आपके बारे में लोकमत इसके सर्वथा विपरीत है। यही नहीं, ऐसी शिकायतें आई हैं कि जनता के साथ आपका व्यवहार अंग्रेजी जमाने से भी अधिक असन्तोषकारक है। आप ज्यादा रूखे, ज्यादा रिश्वतखोर, कम कुशल, ज्यादा ढीले-पोले, पैसे के सामने ज्यादा झुकनेवाले और ज्यादा पक्षपात करनेवाले हो गए हैं और आपका शासन प्रबन्ध आपके ही द्वारा चलनेवाले सन् १९४७ के पूर्व के शासनप्रबन्ध की अपेक्षा जनता को कहीं अधिक दुःखदायी लग रहा है।

"+ + + मेरे पास जो शिकायतें आई हैं, वे खुद सरकारी नौकरों की ओर से भी आती हैं। रेलवे-विभाग और रसद-विभाग आदि में जो लुच्चई, रिश्वतखोरी और बेईमानी चलती है, वह सब उन विभागों में काम करनेवाले नौकरों के द्वारा ही मुझे मालूम होती है।

"+ × × × × आप समझते हैं कि इसका परिणाम क्या होगा? आप सरकार और जनता के बीच में हैं। × × सरकार का आप पर पूरा काबू है। इसलिए आपकी हर बुराई अनिवार्य रूप में कांग्रेस के सिर चली जाती है। + + खुद कांग्रेसियों में भी ये बुराइयाँ फैली हुई हैं, उसके लिए यदि कांग्रेस सुधरेगी नहीं तो दिन भर जाने पर कांग्रेस को सरकार से हटकर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। पर इससे ही मौजूदा नीति और दुराचरण के परिणाम नहीं रुक जाएँगे। उनका प्रभाव आप पर भी पड़ेगा। अगर जनता के नेतृत्व के लिए कोई दूसरा गांधी आ जाए तो बात दूसरी है, अन्यथा अर्धजाग्रत् जनता के पास अन्याय के प्रतिकार का एक ही तरीका है—फ्रांस की राजक्रान्ति को दोहराना। + + क्या आप चाहते हैं कि वे बातें फिर दुहराई जाएँ?

"मेरी आपसे अपील है कि आप भगवान् को अपने जीवन और आचरण में स्थान दें, जिसे आपने अपने घर और दफ्तर से यह समझकर निकाल दिया है कि बुढ़ापे और आपत्ति में भगवान् की अपेक्षा पैसा अधिक सहायक होता है। लेकिन आपकी समझ झूठी है। भगवान् आपको सुबुद्धि दें।"

एशिया की नवोदित शक्ति इजराएल

अन्ताराष्ट्रिय राजनीति का एक विद्यार्थी

"यह इजराएल राज्य के लिए एक महान् अवसर है। इस ऐतिहासिक अवसर पर हम आज संसार के यहूदियों की बात सोचते हैं। 'इजराएल' अन्य राष्ट्रों में बसनेवाले यहूदियों की राजभक्ति का दावा नहीं करता, वह एक सार्वभौम इकाई है और एकमात्र अपने नागरिकों की राजभक्ति पर ही आधारित है। यद्यपि उसका द्वार समस्त गृह-विहीन यहूदियों के लिए खुला हुआ है।" गत ११ मई १९४९ को नव-निर्मित इजराएल के वैदेशिक मंत्री डा० शरटोक ने संयुक्त राष्ट्रिय संघ असेम्बली के समक्ष भाषण करते हुए उक्त उद्गार प्रकट किए। अभी तक यहूदी-समस्या पूर्ण रूप से हल नहीं हुई है, वहाँ चलनेवाले यहूदी-अरब संघर्ष का अंत नहीं हो सका और न फिलस्तीन-विषयक राजनीतिक विवादों में ही कोई न्यूनता आने पाई है। वहाँ अब तक इजराएली दलों और अरब सैन्य-पक्षपाती दलों की मुठभेड़ें चालू हैं। गत २८ अप्रैल को ही अरब सैन्यदलों के समर्थकों और इजराएलियों में लड़ाई हो जाने के फलस्वरूप एक इजराएली सैनिक भीषण रूप से आहत हुआ और दो को चोटें आईं।

फिलस्तीन भूमध्यसागर के पूर्वी किनारे पर स्थित अरब प्रायद्वीप से सम्बद्ध उत्तरी-पश्चिमी भाग है। यह सागरतटीय प्रदेश उत्तर-पूर्व से उत्तर-पश्चिम तक फैला लम्बा भूभाग है। प्रथम महासमर के अनन्तर प्रायः समस्त संसार के मानचित्र में, विशेषतः योरप, एशिया और अफ्रीका के मानचित्र में पर्याप्त परिवर्तन हुआ। फिलस्तीन महायुद्ध के पूर्व तुर्क-साम्राज्य के प्राचीन शान-प्रदेश का एक भाग था। तुर्क-साम्राज्य तो मिट गया परन्तु उसके अधीनस्थ प्रदेश की समस्याओं का अंत नहीं हुआ। सीरिया, साऊदी अरब, फिलस्तीन इत्यादि प्रदेशों की कुछ अपनी समस्याएँ हैं, जो सुलझाने के प्रयास में और भी उलझती जा रही हैं।

फिलस्तीन यहूदी, ईसाई और मुसलमानों के सुनहरे स्वप्नों की भूमि रहा है। यहीं की पवित्र शिला पर पैगम्बर इब्राहीम ने अपने पुत्र को ईश्वर के आदेश पर बलिवेदी पर समर्पित किया था; इसी देश के पवित्र नगर 'बैतलहम' में ईसा का जन्म हुआ था और जेरुसलम में वे शूली पर चढ़े थे। न केवल इतना, मुसलमानों के 'दारूल इस्लाम' का प्रतीक बन सदियों तक यह भूमि रणस्थली बनी रही है। इस प्रकार यह भू-प्रदेश तीन धर्मों के लोगों के रक्त से अनेक बार सींचा गया है। यही बात इस भूमि की महत्ता की द्योतक है, और इसकी वह ऐतिहासिक विशेषता है, जिसके लिए आज भी वहाँ युद्ध बन्द नहीं हुआ है। परन्तु आज इजराएल का ईश्वर दीर्घकालीन निद्रा के अनन्तर जाग उठा है। रोमन सम्राट् हडरियन के द्वारा भगाए गए यहूदी, जो विश्व के प्रत्येक भाग में बिखर फैल गए थे, आज इजराएल में फिर इकट्ठा हो रहे हैं। सदियों पूर्व की उस दुर्घटना का प्रतिकार आज प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहा है। अनेक शताब्दियों पूर्व महोवा (ईश्वर) के सर्वोच्चारित कथनों की ओट में यहूदी मोएल की कल्पना साकार हो पुकार उठी थी—"इस देश के रहनेवालो, सुनो! ऐसी बात क्या तुम्हारे पुरखों के समय में हुई थी। अपने बाल-बच्चों से इसका वर्णन करो और वे अपने बाल-बच्चों से इसका वर्णन करते जाएँ कि जो कुछ गाजाम (राजा) नामक टिड्डी से बचा, उसे 'अर्बे' नामक टिड्डी ने खा लिया। जो उससे बचा, उसे 'मेलेक' नामक टिड्डी ने खा लिया और जो कुछ उससे भी बचा; उसे 'हलील' नामक टिड्डी ने खा लिया। इसलिए हे मतवालो, जाग उठो और हे मद्यपो, अब नए मद्य के लिए रोओ; क्योंकि वह अब तुम्हें नहीं मिलेगा। वह दिन निकट आ रहा है क्योंकि नियत दिन पर सर्वशक्तिमान् की ओर से सत्यानाश का दिन होकर आएगा। रोओ और हाहाकार करो! क्या हमारे देखते-देखते भोज्य पदार्थ नष्ट नहीं हो गए? क्या हमारे ईश्वर के भवन का आनन्द जाता नहीं रहा? बीज ढेलों के तले झुलस गए! भांडार

शून्य पड़े हैं और खत्तियाँ भी नष्ट हो गई हैं! खेती मारी गई है, और ग्रामपशु भीषण दुःख से भरे कराह रहे हैं!'

यहूदी मोएल ने चरम दुःख के दिग्दर्शन कराने के साथ-साथ भविष्य के उस सुख का भी चित्रण बड़ा सुन्दर किया है, जब यहूदियों के सुख के दिन वापस लौटेंगे। उसने ऐसी भावी संतानों की कल्पना की, जो ईश्वरी इच्छा का प्रतिनिधित्व करेंगी; युवकों को दिव्य दृष्टि मिलेगी तथा वे सिय्योन पहाड़ तथा जेरुसलम में पुनः वापस लौटेंगे। उस यहूदी ने अदम्य उत्साह और शौर्य का जो चित्र, ईश्वर की वाणी के आह्वान के साथ कल्पित किया था, वही आज पूर्ण रूप से दिखाई देता है। देश-देश की यहूदी जनता आज यरूसलम की ओर जा रही है और उसके युद्ध-गीतों से फिलस्तीन प्रतिध्वनित हो उठा है।

यहूदी आन्दोलन का मूल कारण

अनेक राजनीतिज्ञ एवं जनसाधारण की धारणा 'इजराएल' के प्रति अच्छी नहीं। वे समझते हैं कि यहूदी राष्ट्रिय गृह की कल्पना को ब्रिटिश प्रोत्साहन मिलने से ही वह कार्यान्वित और सफल हो सकी है। यहूदी ब्रिटिश समर्थन पाकर ही अपनी माँगों पर अड़े रहे हैं किन्तु वास्तविकता यह नहीं है।

मध्य युग में कैथोलिक (सार्वदेशिक) और प्रोटेस्टेंट (विरोधी) मतावलम्बियों में ऐसा संघर्ष चला था कि वैसा उदाहरण विश्व के इतिहास में न मिलेगा। जहाँ कैथोलिकों का प्राधान्य होता, वहाँ प्रोटेस्टेंट छिपकर प्राण बचाते और जहाँ प्रोटेस्टेंट की अधिकता होती, वहाँ कैथोलिकों को भागे ठिकाना न मिलता। जो जिसे पाता, जीवित ही जलवा देता। पोपों ने प्रसिद्ध कर रखा था कि प्रोटेस्टेंट शैतान के चेले हैं और इसी कारण उन पर जादूगरी का आरोप लगाकर कोरी कल्पना के आधार पर 'धर्मपरीक्षक न्यायाधीश' उनको शूली पर चढ़ा देते या जीवित जला देते। कोई अनिष्ट होते ही लोग उसका दोष जादू-टोने पर मढ़ देते। समुद्र में तूफान उठा देने, राज्य में अवर्षण करा देने और मरी फैलाने सरीखे अपराधों पर जादूगर और जादूगरिनें मार डाली जातीं। वैज्ञानिक खोज करनेवाले रासायनिकों, भौतिक विज्ञान तथा किसी भी आश्चर्यजनक खोज को करनेवालों को शैतान का चेला मान लिया जाता था। अठारहवीं सदी तक इस मूढ़ता का योरप में ऐसा प्राबल्य रहा कि प्रसिद्ध रासायनिक प्रीस्टले का घर जला दिया गया था और राजर बेकन नामक एक वैज्ञानिक इसी आरोप पर बहुत दिनों तक पेरिस में बन्दी रहा था। स्पेन में 'धर्मपरीक्षा' की प्रथा १८२० ई० में कानून-द्वारा सबसे पहले रद्द की गई किन्तु वहाँ तब तक (१४७८ से १८२० तक) साढ़े तीन लाख मनुष्य इस पाखंड के शिकार हो चुके थे। 'धर्मपरीक्षा' की ओट में राजा और पादरी अपने शत्रु सरदारों से बदला लेने का कार्य बेखटके करते थे। ऐसी अवस्था में इस बीच यहूदियों के साथ ईसाइयों का कैसा व्यवहार रहा, इस बात की सरलतापूर्वक कल्पना की जा सकती है। सन् ७० ई० में यरुसलम के नष्ट होने पर यहूदी आस-पास के देशों में बिखरकर जहाँ सुविधा हुई, वहाँ बस गए थे परन्तु योरप में ईसाई धर्म का प्राधान्य ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, ईसाइयों के यहूदियों पर अत्याचार भी बढ़ते गए। यहूदियों के मुहल्ले अलग कर दिए गए, उनको नगरों के बाहर विशेष स्थानों पर रहना पड़ता था और वे समाज में स्वतंत्रतापूर्वक सम्मिलित नहीं हो सकते थे। अपनी जाति की सीमा में बँधे रहकर किसी प्रकार लेन-देन, व्यवसायादि के द्वारा यहूदी शान्त प्रतिकार करते हुए अत्याचार सहन करते रहे। उनको ईसाइयों ने योरप से खदेड़ने का बड़ा प्रयत्न किया, तब भी वे बिना नागरिक अधिकार पाए ही योरप में सन् १७८९ ई० तक रहते रहे। फ्रांस की राज्यक्रान्ति के पीछे, सन् १७८९ में, योरप में यहूदियों को सर्वप्रथम नागरिक अधिकार मिले।

इंग्लैंड में तो पार्लमेंएट में प्रवेश करने के लिए निर्वाचित होकर, तीन बार के व्यर्थ प्रयत्नों के अनन्तर कहीं चौथी बार सन् १८३७ में डिसरायली मेम्बर हो सके परन्तु कानून के द्वारा यहूदियों को राजनैतिक अधिकार सन् १८५८ में भारतीय विद्रोह के अनन्तर मिले। पीछे यहूदी डिसराएली ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री ही नहीं लार्ड बेकन्स फील्ड भी हो गए थे परन्तु तो भी शैमारियों का आंदोलन, जो उन्नीसवीं सदी से प्रारम्भ हुआ, प्रकाश्य रूप से अरबी, मिस्री, तुर्क आदि सबके विरुद्ध

होने पर भी कुछ और ही अर्थ रखता था। यहूदी व्यवसाय-द्वारा धनी न बनने पाएँ, यह उसका प्रमुख उद्देश्य था। इस आन्दोलन से यहूदियों के कष्टों का पार न रहा। रूस, हंगरी और जर्मनी से सन् १८८१ से १८८४ तक अनेक यहूदी अर्जेण्टाइन और अन्य अमेरिकन राज्यों में जाकर बस गए। तभी रूस और मध्य योरप में यहूदियों पर होनेवाले अत्याचारों को देखकर बैरन एडमण्ड दी रोथ सिल्ड नामक एक व्यक्ति ने सन् १८८० में फिलस्तीन में यहूदियों को पुनः बसाने की माँग की। उस समय फिलस्तीन में शांतिपूर्वक यहूदियों के रह सकने एवं उपासना विषयक अधिकारों की ही माँग की गई थी। सन् १८९७ में डा० थियोडोर हर्जल नामक आष्ट्रिया के एक यहूदी नेता ने फिलस्तीन में यहूदियों के राष्ट्रीय गृह बनाने के छिन्न-भिन्न प्रयत्नों को केन्द्रीभूत करके एक सुसंगठित आन्दोलन का रूप प्रदान करके राजनैतिक महत्त्व दिया। हर्जल के पत्रकार और नाटककार होने और उसकी अपूर्व नेतृत्वशक्ति के कारण यह आन्दोलन ऐसा फैला कि शीघ्र ही इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक संगठन (जियोनिज्म) बन गया। हर्जल का विचार था कि यहूदी योरपीय राष्ट्रों में नहीं मिल सकते और जब तक उनका अपना एक अलग देश नहीं होगा, तब तक वे फूल-फल नहीं सकते। अतएव यहूदी जाति की उन्नति और उसकी रक्षा के लिए उनका विचार था कि यहूदी पहले कहीं एक स्थान पर बसकर अपना राष्ट्रिय गृह स्थापित करें और जब उनकी शक्ति सुसंठित हो जाए तब वे अपने तीर्थ और अपने राष्ट्र फिलस्तीन के उद्धार का प्रयत्न करें। सन् १८९७ में ही इन जियोनियर लोगों की पहली कांग्रेस हुई और हर्जल की योजना स्वीकार कर ली गई। प्रति तीसरे वर्ष इसकी कांग्रेस होने लगी और उसने समस्त राष्ट्रों से अपने उद्देश्य की स्वीकृति एवं सहायता चाही। योरपीय राष्ट्र तो यहूदी से छुटकारा चाहते ही थे। १० वर्ष में ही इस आन्दोलन की नींव सुदृढ़ हो गई। इसके परिणामस्वरूप सन् १९०३ में ब्रिटिश सरकार ने पूर्वी अफ्रीका में यहूदी उपनिवेश बसाकर यहूदी राष्ट्र बनाने के लिए अपनी स्वीकृति दे दी। 'शैमारियों' की आनन्दोलन उन दिनों पूरे वेग से था। ड्रैक्स नामक एक यहूदी पर, जो साधारण सैनिक पद से बढ़ता-बढ़ता फ्रेंच सेना-विभाग का एक बड़ा अधिकारी हो गया था, सन् १८९४ में यह अभियोग लगाया गया कि उसने फ्रांसीसी सेना के गुप्त रहस्य जर्मनी के हाथ बेचे हैं। फलतः फ्रांसीसी लोकमत अत्यधिक क्षुब्ध हो उठा। ड्रैक्स को देशनिकाला होने पर भी फ्रांस में शांति न हुई। शैमारियों का आन्दोलन जर्मनी, आस्ट्रिया और फ्रांस में राजनैतिक आन्दोलन में मिल गया परन्तु इस परिस्थिति को सुधारकों और प्रजातन्त्रवादियों ने प्रजातन्त्र के विरुद्ध समझा। अतएव दो दल हो गए, एक ने ड्रैक्स और यहूदियों का पक्ष लिया, दूसरा लड़ने के लिए तैयार हो गया। ऐसी अशान्ति फ्रांस में फैल गई कि वहाँ विप्लव की आशंका अत्यधिक बढ़ गई। प्रजातन्त्र को उलटने का भी प्रयत्न किया गया, राष्ट्रपति का अपमान हुआ। तब ड्रैक्स के मामले पर पुनर्विचार किया गया, जिसमें वह निर्दोष प्रमाणित हुआ, तब भी उसे दस वर्ष का कारावास का दंड मिला। इस पर बहुत चिल्ल-पों मची, अन्त में राष्ट्रपति ने उसे छोड़ दिया। सन् १९०२ में फ्रांस में प्रजातन्त्रवादियों के अनेक प्रयत्नों के अनन्तर 'सम्प्रदायों की शक्ति घटानेवाला कानून' पास हो गया किन्तु ड्रैक्स के विरुद्ध लोक-संक्षोभ न मिटा। अतएव ड्रैक्स ने विशेष प्रार्थना करके अपने अभियोग की पुनः जाँच कराई और १९०६ में वह पूर्णतः निर्दोष प्रमाणित हो गया।

पूर्वी अफ्रीका में यहूदी उपनिवेश स्थापित करने के ब्रिटिश प्रस्ताव के समय जियोनिष्ट और शैमारियों दोनों ही के आन्दोलन पूरे वेग से थे। सन् १९०४ में इसी से जियोनिष्ट कांग्रेस ने ब्रिटिश प्रस्ताव को अस्वीकार करके स्पष्ट कह दिया—"फिलस्तीन यहूदियों की सभ्यता, संस्कृति और उनकी राष्ट्रीय आकांक्षा का गृह है, अतः वे वहीं अपना राष्ट्रिय गृह बनाएँगे।"

मध्यपूर्व में वज्र की कड़कड़ाहट

फिलस्तीन पश्चिमी एशिया का सबसे छोटा देश है। उसका क्षेत्रफल केवल एक लाख वर्गमील है। पिछली गणना के समय वहाँ की जनसंख्या १४ लाख थी, जिसमें १ लाख ईसाई, ५ लाख यहूदी और शेष अरब थे। परन्तु फिलस्तीन में सात वर्षों के अन्दर, १९३९ से सन् १९४६ तक, लगभग डेढ़ लाख जनसंख्या, प्रवासी यहूदियों के द्वारा और लगभग इतनी ही बालकों की उत्पत्ति से बढ़ी है।

कठिनाई तो यह है कि वर्तमान शताब्दी में जो लोग अन्ताराष्ट्रिय विवादों में मध्यस्थ बनाए गए, उन्होंने 'तटस्थ न्याय' सम्बन्धी अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं किया एवं जितने वादे गत ५० वर्षों के अन्दर किए गए, उनमें न्याय को उठा कर ताख पर रख दिया गया। २ नवम्बर १९१७ को, यहूदी कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के २० वर्ष के अनन्तर इङ्गलैंड के तत्कालीन वैदेशिक मन्त्री लार्ड बाल्फोर ने एक घोषणा-द्वारा घोषित किया—"यहूदी लोग फिलस्तीन में अपना जो राज्य स्थापित करना चाहते हैं, उसे ब्रिटिश सरकार अच्छा समझती है और वह उनके उद्देश्य की सिद्धि में यथासाध्य सुभीते उत्पन्न करने का प्रयत्न करेगी किन्तु साथ ही लोगों को यह विश्वास होना चाहिए कि इस सम्बन्ध में यहूदियों की सहायता करते समय ब्रिटिश सरकार कोई ऐसा कार्य नहीं करेगी, जिससे फिलस्तीन में बसनेवाली दूसरी जातियों के धार्मिक अथवा नागरिक अधिकारों में किसी प्रकार की बाधा पहुँचे।...इस समय दूसरे देशों में जा बसनेवाले यहूदियों को जो राजनैतिक अधिकार प्राप्त हैं, उन अधिकारों पर भी इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

इस घोषणा के एक माह बाद ही ब्रिटिश सेनापति लार्ड एलनबी की सेना ने जेरुसलम पर अधिकार कर लिया। महायुद्ध में फिलस्तीन एकदम उजाड़ हो गया था, सहस्रों एकड़ भूमि परती पड़ गई थी। न वहाँ अच्छी सड़कें थीं, न तार थे और न रेल थी। आवागमन के मार्ग में असंख्य कठिनाइयाँ थीं। संसार भर के यहूदियों ने वहाँ की औद्योगिक तथा कृषि-सम्बन्धी उन्नति के लिए धन दिया और 'जियोनिष्ट संगठन' ने जेरुसलम की उन्नति का सारा कार्यभार अपने ऊपर उठा लिया। सन् १९२६ तक इस देश में असंख्य शिक्षा-गृहों, अनाथ निवासगृहों और अन्य सुधारक-संस्थाओं का जाल-सा बिछ गया। स्वच्छता का प्रबन्ध करके, दलदली भूमि के कारण फैलनेवाले मलेरिया को मार भगाने के उद्योग में सैकड़ों यहूदी युवकों ने सदैव के लिए अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर डाला। विद्युत् प्रकाश के लिए जार्डन नदी से प्रबन्ध किया गया। सहयोग समिति और वाटर वर्क्स खोले गए, विशाल औषध-सहायता का प्रबन्ध किया गया और यह सब यहूदियों ने पूरे देश के लिए किया। सन् १९२५ में जब प्रथम हाई कमिश्नर सर हरबर्ट फिलस्तीन से हटे थे, उस समय फिलस्तीन की आनुमानिक आय व्यय से दस लाख डालर अधिक थी। संरक्षित कोष में २५ लाख डालर से ऊपर निधि संगृहीत थी। इस बचत का उपभोग किसानों पर से कर-भार कम करने में किया गया। चूँकि अरब जनसंख्या अधिक थी और किसान अधिकतर अरब थे, फलतः इस लाभ का अधिकांश उन्हीं के भाग में आया। इतने पर भी वे सन्तुष्ट न हुए तो इसमें यहूदियों का दोष क्या था?

सैनिक अड्डे की दृष्टि से तो फिलस्तीन का महत्त्व कभी भी कम नहीं रहा है। प्राचीनकाल में बाबेल और मिस्र साम्राज्यों के मध्य का शक्ति-संतुलन 'यहूदा' पर अवलम्बित था। आज भी स्वतंत्र और शक्तिमान् इजराएल मध्यपूर्व का शक्तिबिन्दु बन सकता है। फिलस्तीन से होकर योरप से भारत के लिए सबसे छोटा सुगम हवाई मार्ग आता है। स्वेज नहर का नियन्त्रण दक्षिणी फिलस्तीन से होता है। हैफा से मिस्र और सीरिया को रेलगाड़ियाँ जाती हैं। 'इम्पीरियल एयरवेज' का प्रधान अड्डा 'गाजा' नगर के पास है। इजराएल की स्थापना के अनन्तर अब तो भूमध्यसागर पर यहूदी प्रभाव अवश्य ही बहुत अधिक बढ़ जाएगा। भूमध्यसागर के तटवर्ती प्रदेशों में इटली, टर्की, मिस्र और यूनान मुख्य हैं। इटली तो इस समय द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों के बंधनों में बुरी तरह जकड़ा हुआ है और यूनान में वैयक्तिक विकास तथा नागरिक स्वतंत्रता की पूरी अवहेलना हो रही है। अमेरिकन आर्थिक सहायता के बिना यूनान की अर्थ-व्यवस्था का उचित रूप से बने रह सकना तक संभव नहीं है जैसा कि अमेरिकन अर्थ-विशेषज्ञों का कथन है और जिसके कारण अमेरिका को ८० करोड़ डालर की आर्थिक सहायता भी यूनान को देनी पड़ी है। वहाँ की परिस्थितियाँ इतनी गिरी हुई हैं कि ३ अप्रैल १९४९ की एक यूनानी विज्ञप्ति में सरकार की ओर से दावा किया गया कि इसी वर्ष पहली जनवरी ३१ मार्च तक, तीन महीने के अन्दर, ४,०३० ग्रीक गुरल्ले मारे गए और ५९३४ बन्दी बनाए गए हैं, जिनमें १३ महत्त्वपूर्ण ग्रीक नेता भी हैं। टर्की सदैव से अपनी घात में रहा है। अरब-साम्प्रदायिकता और इस्लाम के खतरे के चक्कर में वह कभी नहीं पड़ा है। इस

देशबन्धु-स्मृति-दिवस

(१)

देशबन्धु चितरञ्जन दास की चौबीसवीं पुण्य-स्मृति का दिवस कलकत्ते में पिछले दिनों धूमधाम के साथ मनाया गया। चित्र में देशबन्धु की मूर्ति मालाओं से अलंकृत दृष्टिगत हो रही है।

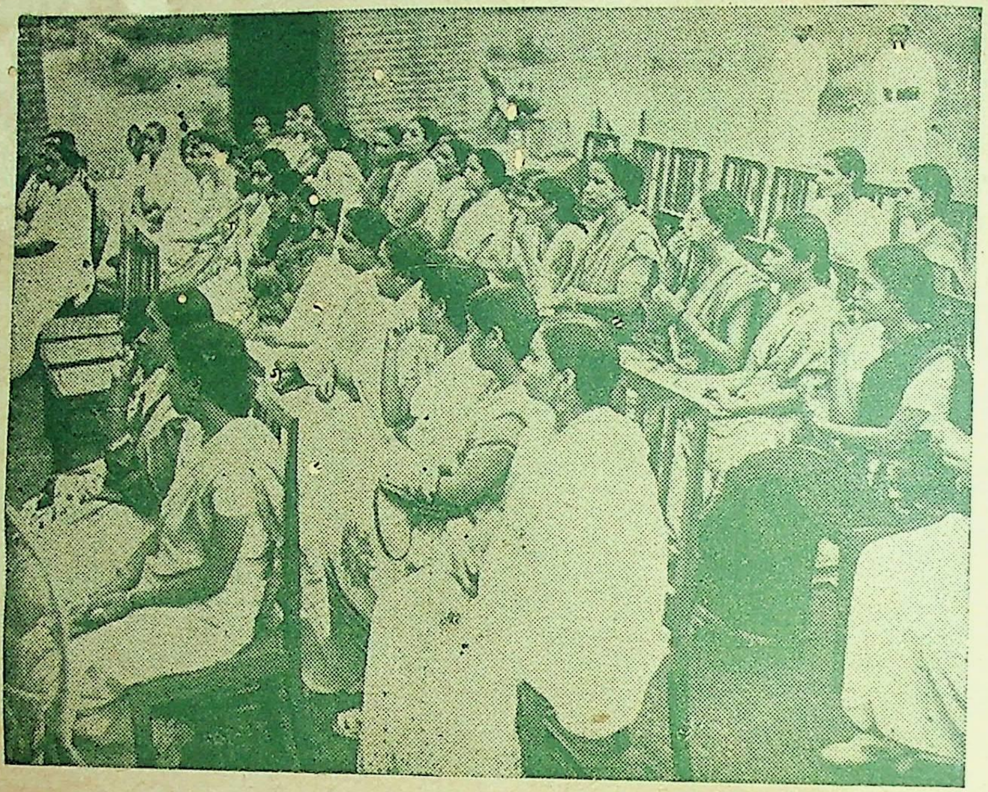


(२)



कलकत्ते के क्योरताला घाट पर जन-समुदाय देशबन्धु के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहा है।

हिन्दू-कोड-बिल



हिन्दू-कोड-बिल की क्रांतिकारी धाराओं पर विचार करने के लिए एकत्र महिला-समाज।

जमींदारी-विघटन-बिल



युक्तप्रान्त के प्रधान मंत्री माननीय पंतजी पत्रकारों के एक सम्मेलन में जमींदारी-विघटन बिल के सम्बन्ध में प्रकाश डाल रहे हैं।

सम्बन्ध में जब टर्की में 'फैज' टोपी न पहनने का आदेश निकाला गया था, एक मनोरंजक घटना घटित हो गई थी। नवम्बर १९३२ ई० में जब एक सरकारी उत्सव के अवसर पर मिस्र का प्रतिनिधि फैज टोपी पहनकर आया, तब कमालपाशा ने बिगड़कर उससे उस टोपी को उतार डालने के लिए कहा। प्रतिनिधि ने टोपी उतारना अस्वीकार कर दिया और उत्सव से चला गया। पीछे मिस्र की सरकार के लिखा-पढ़ी करने पर राष्ट्रिय अपमान का प्रश्न उठने पर कमालपाशा ने खेद-प्रकाश करके माफी माँग ली। टर्की की नीति से इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। गत १३ मई को जब संयुक्त राष्ट्र-संघ का इजराएल १२ के विरुद्ध ३७ मतों से सदस्य मान लिया गया और इजराएली प्रतिनिधि श्री मोशे शरटोक भाषण करने के लिए उठे, तब सब अरब देशों के प्रतिनिधि उठकर चले गए—परन्तु समाचार मिले हैं कि टर्की अब स्वयं भी 'इजराएल' की मान्यता स्वीकार करने के प्रश्न पर विचार कर रहा है। पिछली दशाब्दियों में टर्की प्रायः विश्व समस्याओं से तटस्थ आत्म-निर्माण में ही संलग्न रहा है। ब्रिटेन और अमेरिका से उसने ऋण और सहायताएँ तथा अस्त्र-शस्त्र की माँग बराबर जारी रखी है और किसी अज्ञात भीषण परिस्थिति के लिए अपने को तैयार करता रहा है। अतः वह शक्तिशाली इजराएल के सहयोग को, अन्य अरब राष्ट्रों के निर्बल राज्यों की अपेक्षा अधिक महत्त्व देगा, इसमें सन्देह नहीं है। शेष रह गया मिस्र, सो शाह अब्दुल्ला ने गत २३ मई को मिस्र के नेतृत्व में विश्वास प्रकट करते हुए यह तो कहा है कि यदि समुचित साधनों का प्रयोग किया जाए तो मिस्र का नेतृत्व पर्याप्त लाभदायक सिद्ध होगा, परन्तु मिस्र की शक्ति तो उसी समय विदित हो गई थी, जब प्रत्याक्रमण करती हुई यहूदी सेनाएँ मिस्र के अन्दर ६०-७० मील घुस गईं थीं और उसके फलस्वरूप ब्रिटिश सिंहासन डोल उठा था।

लगभग २८ वर्षों तक फिलस्तीन ब्रिटिश संरक्षण में रहा। इस बीच उसने यहूदियों को सहायता देने का वचन देकर भी पग-पग पर बाधाएँ ही पहुँचाईं और केवल स्वार्थ-नीति को आगे बढ़ाकर कभी तो अरबों के लिए सब न्याय उडेल देना चाहा और कभी यहूदियों को अपनी सदयता का विश्वास दिलाने के लिए यहूदी प्रवास-नीति का समर्थन किया। इस बीच योरप से हिटलर के आधिपत्य-काल में आंग्ल-अमेरिकन-फिलस्तीन रिपोर्ट के अनुसार ५७ लाख १२ हजार ६०० यहूदियों को स्वर्ग-लोक पहुँचा दिया गया। इनमें उन यहूदियों की भी संख्या सम्मिलित है, जिन्हें नाजियों ने भूखों मार डाला। इससे फिलस्तीन की समस्या में भी वृद्धि हुई और अब भी दो लाख यहूदी शरणार्थी योरप में भीषण परिस्थितियों का सामना कर रहे हैं।

दिसम्बर, १९३८ में लन्दन में जो सम्मेलन हुआ था, उसमें फिलस्तीन की समस्या पर विचार करने के लिए मिस्र, ईराक, साऊदी अरब और ट्रांसजोर्डन के नेताओं को निमंत्रित किया गया था; परन्तु वह सम्मेलन सफल नहीं हो सका और फिर नूतन प्रयत्नों के होने के पूर्व ही योरप की तेजी से बिगड़ रही परिस्थितियों ने द्वितीय महायुद्ध की विभीषिकाएँ ला पटकीं। उसके अनन्तर फिर यहूदियों के प्रति ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने बाल्फोर घोषणा के वादों को नए सिरे से दोहराया और अनेक अरब-यहूदी भिड़न्तों, अंगरेजों के विरुद्ध यहूदी आतंकवादी कार्रवाइयों से तङ्ग आकर ३१ जुलाई १९४६ को ब्रिटिश लोक-सभा और लार्ड सभा में फिलस्तीन की समस्या का हल घोषित किया गया। उसमें कहा गया कि फिलस्तीन की समस्या सुलझाने के लिए ब्रिटेन और अमेरिका के विशेषज्ञों ने प्रस्ताव किया है कि फिलस्तीन के चार भाग कर दिए जाएँ। यहूदी प्रान्त में अधिकांश भूमि वह होगी, जिसमें आजकल यहूदी रहते हैं। यरूसलम का जिला, नेगेव का जिला और अरब प्रदेश अलग होंगे। चारों प्रान्तों की अलग सीमाएँ केवल शासन प्रबन्ध की सुविधा की दृष्टि से निश्चित की जाएँगी और प्रत्येक प्रान्त की अपनी अलग-अलग धारा सभा होगी। एक बार जो सीमा निश्चित हो जाएगी, उसमें तब तक कोई परिवर्तन न होगा, जब तक दोनों प्रान्तों में समझौता न हो जाए। राष्ट्र-रक्षा, यातायात एवं व्यापार की दृष्टि से इन सीमाओं का कोई महत्त्व न होगा'। प्रान्तीय सरकारों के मातहत, शासन और व्यवस्था, पुलिस और न्यायालय आदि रहेंगे और जो अधिकार प्रान्तों को न दिए जाएँगे, वे केन्द्रीय सरकार के हाथ में रहेंगे। सब लोगों के नागरिक अधिकार समान रहेंगे और वे कानून के सम्मुख बराबर माने जाएँगे। धारा सभाओं के द्वारा स्वीकृत

कानूनों, बिलों आदि पर हाई कमिश्नर की स्वीकृति लेनी पड़ेगी और यदि कोई बिल सरकार की दृष्टि में न्यायोचित न होगा और अल्पसंख्यकों की दृष्टि में असंगत होगा तो उसे स्वीकार न किया जाएगा।

अरब राष्ट्रों को यह योजना पसन्द न आई। साऊदी अरब, ट्रांसजोर्डन, सीरिया और लेबनान आदि अरब राष्ट्रों ने विचार-विनिमय के लिए ब्रिटिश आमंत्रण तो स्वीकार कर लिया परन्तु अपनी दो शर्तें सामने रखीं। पहली तो यह कि वे यहूदी प्रतिनिधियों के साथ सम्मेलन में भाग न लेंगे; दूसरी यह कि फिलस्तीन की पूरी समस्या पर विचार किया जाए, न कि केवल संघ-योजना पर, जिसे ब्रिटेन और अमेरिका ने मिलकर तैयार किया है। इससे अरबों की यहूदी-विरोधी घृणात्मक प्रवृत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। ऐसी अवस्था में नवम्बर १९४७ में संयुक्त राष्ट्रों के फिलस्तीन-विभाजन के निर्णय पर अरब राष्ट्रों की उच्च समिति के जनरल सेक्रेटरी हुसेनी खालिदी के इस कथन का अर्थ अच्छी तरह समझ में आ जाता है—"फिलस्तीन में हो रहे युद्ध को रोकने से तब तक कोई लाभ न होगा, जब तक संयुक्त राष्ट्रसंघ के फिलस्तीन के विभाजन के प्रस्ताव को एकदम रद्द न कर दिया जाए और यहूदी लोग अरबों के देश में अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित करने की आकांक्षा त्याग न दें तथा कानूनी और गैरकानूनी ढङ्ग से यहूदियों का वहाँ पहुँचना रुक न जाए।"

गत २३ मई १९४९ को ट्रांसजोर्डन के शाह अब्दुला ने एक प्रेस प्रतिनिधि से कहा था कि "यदि अमेरिका ने मध्यपूर्व की नीति के सिद्धान्तों को बदला नहीं, तो अरब के लोगों को कम्यूनिज्म से प्रभावित होने में अधिक समय नहीं लगेगा। मध्यपूर्व में जबरदस्ती इजराएल राष्ट्र को ठूँस दिया गया और इस प्रकार फिलस्तीन को बालकन प्रदेश बना देने का प्रयत्न किया जा रहा है। प्रतिदिन एक हजार यहूदी इजराएल में आ रहे हैं। यदि यह प्रवेश इसी प्रकार चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं है, जब अरब-यहूदी झगड़े दिन-दिन बढ़ते जाएँगे और अन्त में तीसरे महायुद्ध की ज्वाला भड़क उठेगी।"

परन्तु ऐसा कहते समय शाह अब्दुला को सम्भवतः यह स्मरण न रहा कि संयुक्त राष्ट्रों के निर्णय को रूस ने यह कहते हुए स्वीकार कर लिया था कि—'यहूदी राष्ट्र का निर्माण और फिलस्तीन-विभाजन ही एक ऐसा हल हो सकता है, जिससे यहूदी शान्तिपूर्वक बैठ पा सकते हैं।"

न केवल इतना वरन् बाल्फोर घोषणाकर्ता ब्रिटेन ने इजराएल को एक वर्ष तक मान्यता प्रदान न की, जब रूस ने केवल तीन दिनों के अन्दर नवनिर्मित इजराएल को स्वीकार कर लिया था। अरबों की समस्या का हल कम्यूनिज्म नहीं है, इसे चाहे शाह अब्दुल्ला न जानें, अमेरिकन राजनीतिज्ञ भली-भाँति समझते हैं। पेरिस में २२ नवम्बर, १९४७ को संयुक्त राष्ट्रसंघ में रूसी प्रतिनिधि ने काउंट बर्नाडाट (स्वर्गीय) के प्रस्ताव को यह कहते हुए ठुकरा दिया था—"प्रस्ताव ब्रिटिश और अमरीकी स्वार्थों को दृष्टि में रखते हुए तैयार किया गया है। रूस अरब और यहूदियों में समझौता चाहता है किन्तु इसके लिए वह आवश्यक समझता है कि सभी विदेशी शक्तियाँ इस क्षेत्र से अपनी सेनाएँ हटा लें। यदि यहूदियों की राज्यसीमा पुनः निर्धारित की गई तो उससे यहूदी राज्य के अस्तित्व का प्रश्न उठने लगेगा।"

न केवल इतना, वरन् रूस के सब पत्रों ने मार्च १९४८ में अमेरिकन प्रेसीडेण्ट पद के तृतीय आकांक्षी श्री हेनरी वालेस का यह लिखते हुए अभिनन्दन किया था—"अमेरिका भर में यह एक व्यक्ति ऐसा है, जो सोवियत रूस से सहयोग स्थापित कर, विश्वशांति की रक्षा कर सकता है। जार्ज मार्शल और ट्रूमैन तो वहीं कार्य कर रहे हैं, जो कभी हिटलर तथा एकतंत्र शाहों ने किए थे किन्तु वालेस का व्यक्तित्व निराशा के क्षितिज पर एक चमकती हुई रजत आशा है।"

किन्तु १४ मई को, विदेशी ब्रिटिश प्रभुत्व फिलस्तीन से हटते ही यहूदियों ने अपने राष्ट्र की स्थापना की घोषणा कर दी और रूसी 'रजतआशा' हेनरी वालेस ने एक प्रेस सम्मेलन में १८ मई को कहा—"फिलस्तीन में यहूदियों को, अरब फौजों से, जिन्हें ब्रिटेन ने अस्त्र-शस्त्रों से लैस किया है तथा आर्थिक सहायता दी है, बचाया जाए। इजराएल को दूसरा स्पेन न बनने दिया जाए, भले ही इससे ब्रिटेन को अमेरिकन आर्थिक सहायता बन्द करनी पड़े।"

तीन शक्तियों की संघर्ष-भूमि

वास्तविकता क्या है ? रूस के लिए सबसे बड़ा लाभ इस समय यह है कि उसके दो चिर वैरी, जर्मनी और

जापान, भूमिशायी हैं। अब पूर्व और पश्चिम में उसके दो ही विरोधी शेष रह गए हैं, ब्रिटेन और अमेरिका। आज रूस की पश्चिमी सीमा बर्लिन और पूर्वी प्रभाव-सीमा पोर्टआर्थर है और सारा चीन अब उसके प्रभाव-क्षेत्र में आनेवाला है। मास्को, लेनिनग्राड, कीव, खारकोव और स्मोलेन्स्क पश्चिम दिशा का संरक्षण और आक्रमण करनेवाले युद्धकेन्द्र हैं, जिन्हें रूस ने आत्म-रक्षा और आक्रमण दोनों उद्देशों से संगठित कर रखा है। रूस की दक्षिणी सीमा भारत और अफगानिस्तान को स्पर्श करती है। इस दिशा से आक्रमण का कोई भय नहीं किन्तु रूस इस ओर से भी सतर्क है। इधर भी उसके पाँच युद्धकेन्द्र हैं, जिनसे आक्रमण किया और रोका जा सकता है—काकेशस की सुन्दर राजधानी टिफलिस और रोस्टोव, समारा, स्वेरड्लोवस्क तथा ताशकन्द। यूराल के वृहत् उत्पादन-क्षेत्र इन सब सैनिक-केन्द्रों में सहज ही रण-सामग्री पहुँचा सकते हैं। वायुयानों से, पैराशूटों के द्वारा शत्रुसेना के पीछे सेना उतारने का प्रबन्ध, रूस ने पामीर के पठार पर किया है। रूसी सेना एशिया के दुर्गम-से-दुर्गम पर्वतों पर युद्ध करने के लिए पूर्ण शिक्षित की गई है। द्वितीय महायुद्ध के समय बोरोशिलोव जैसे दक्ष सेनापति के अधिनायकत्व में रूसी सेना काकेशस से लेकर याब्लोनाई, स्टानोवाई आदि पर्वतों पर युद्ध का अभ्यास करती हुई घूमती रही है। जर्मनी, पोलैंड, रूमानिया, हंगरी और आस्ट्रिया आदि से लूट-कर लाई गई यंत्रसामग्री रूस 'यूराल क्षेत्र' में पहुँचा रहा है। वहाँ से उसे पश्चिमी और पूर्वी दोनों ओर से होनेवाले आक्रमणों का सामना करने में सुविधा हो सकती है। सामरिक दृष्टि से जितना आवश्यक पश्चिमी आक्रमणों से उत्पादक क्षेत्रों को सुरक्षित रखना है, उतना ही आवश्यक पूर्वी सीमा पर रण-सामग्री पहुँचाना है। यूराल के उत्पादक क्षेत्र दोनों माँगों की पूर्ति करेंगे।

परन्तु यह स्पष्ट है कि तृतीय महायुद्ध छिड़ने की दशा में यूराल के उत्पादक क्षेत्रों पर केवल तीन ओर से ही आक्रमण हो सकते हैं। टर्की की ओर से, ईरान की ओर से और अफगानिस्तान-भारत से। टर्की, ईरान और अफगानिस्तान अभी तक रूस-विरोधी रहे हैं, कारण अपने स्वार्थ ही उनको रूस-समर्थक बनने से रोकते हैं। टर्की इनमें सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न है किन्तु टर्की को यदि बाह्य मार्गों से रसद पहुँचाने की आवश्यकता आ पड़े तो उसके पीछे के प्रदेश में ऐसा कोई क्षेत्र वर्तमान नहीं है, जहाँ भारी रणसामग्री का उत्पादन होता हो। केवल सीरिया, फिलस्तीन, मिश्र के स्थलमार्गों से कुछ रण-सामग्री मित्रराष्ट्र पहुँचा सकते हैं। ग्रीक के रूसी प्रभाव में चले जाने की संभावना ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों अरब राष्ट्र रूस के प्रभाव-क्षेत्र के तले स्वतः आते जाते हैं। प्रश्न केवल यह है कि क्या यह प्रभाव अरब राष्ट्रों के स्वार्थ का साधक है?

विश्व के विभिन्न भागों में यहूदी फैले हुए हैं। फिलस्तीन के साढ़े छः लाख यहूदियों के अतिरिक्त एशिया में और सवा आठ लाख यहूदी हैं, अफ्रीका में ६ लाख, अमेरिकन राज्यों में पौने ५४ लाख और आस्ट्रेलिया एवं प्रशान्त द्वीपों में ३३ हजार। सब मिलाकर संसार भर में यहूदी जनसंख्या प्रायः ७५ लाख है। उधर अरबी जनसंख्या (मिस्र-सहित) लगभग साढ़े चार करोड़ है। परन्तु इस अल्प यहूदी जाति ने केवल एक शताब्दी में ही विश्व को अनेक महापुरुष प्रदान किए हैं। जर्मन यहूदी अलबर्ट आइन्स्टीन पदार्थ-विज्ञान के जैसे अद्भुत ज्ञाता थे, शैव बीजमैन रसायनशास्त्र में वैसे ही पारंगत हैं। रीडिंग (लार्ड), मार्शल और ब्रैंडियन संसार के प्रसिद्ध कानूनविज्ञ थे। लुई मार्शल और लुई ब्रैंडियन अमेरिकन यहूदियों में अति प्रसिद्ध हैं। इंगलैंड के इसराइल जैगविल विश्वप्रसिद्ध लेखकों में, फ्रांस के ट्रेनरी वर्गसन श्रेष्ठ तम दार्शनिकों में, रूसी बयानीक काव्य-रचना के लिए रूसी साहित्य में और आस्ट्रियन आर्थर शिलज़र अपने पांडित्य के लिए विश्वप्रख्यात हैं। लोक-सेवा के लिए सदैव प्रस्तुत रहनेवाले अमेरिकन नार्मन स्ट्रास महोदय का नाम तो पाश्चात्य संसार में सदैव अमर रहेगा और हेनिश जार्ज ब्रेड्ज भी साहित्य-मर्मज्ञों के द्वारा सदा स्मरण किए जाएँगे। यह सूची अपूर्ण रह जाएगी, यदि मार्क्स, लेनिन और फ्राइड का नाम न लिया जाए। शाह अब्दुल्ला को संभवतः यह नहीं स्मरण रहा होगा कि यहूदी राष्ट्र के विरुद्ध कम्यूनिज्म का शस्त्र सफल नहीं हो सकता। विश्वराष्ट्र के प्रवर्तक मार्क्स और रूस के भाग्य-निर्माता लेनिन दोनों यहूदी थे। यहूदी संसार में अपने श्रम और विद्या-बुद्धि के बल पर ही जीवित बने रह सके हैं। श्रमजीवी विश्व में वे पिछड़नेवाले नहीं हैं। वालेस पर रूसी अनुकंपा तथा वॉलेस

की 'इजराएल' के प्रति बढ़ी हुई भावना रूसी दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देती है। यहूदी पाश्चात्य विधि के सक्रिय समर्थक हैं परन्तु वे अपने हितों और मित्रों को अच्छी तरह पहचानते हैं। अमेरिकन यहूदी एजेन्सी में अच्छे-अच्छे धनी पुरुष हैं और वे सब ब्रिटेन को प्राधान्य न देंगे, जिन्होंने प्रत्येक संभव उपाय से 'इजराएल' राष्ट्र की स्थापना में रोड़े अटकाए हैं। फिलस्तीन में लगी हुई कुल सम्पत्ति का ४० प्रतिशत भाग दो अंग्रेज कम्पनियों के हाथ में है, जिन पर उन्हें न कोई रायल्टी देनी पड़ती है, न चुंगी न कोई कर। साथी देशों की जाँच-कमेटी के सामने यहूदियों के उद्योग-व्यापार-विभाग ने बताया था—"सन् ४० से ४६ तक फिलस्तीन ने साढ़े १६ करोड़ ८८ हजार डालर कमाए, जिनमें लगभग ७ करोड़ पालिश किए हुए हीरों के निर्यात से मिले और शेष अमरीकी यहूदी एजेन्सी ने यहूदियों के सहायतार्थ भेजे थे, जिन पर ब्रिटेन ने अधिकार कर लिया। इस प्रकार हमारे आयात-निर्यात पर नियन्त्रण करके ब्रिटेन ने यहूदियों का बहुत शोषण किया है।"

जहाँ तक अमेरिका के विभिन्न दलों के राजनीतिज्ञों के मतों का सम्बन्ध है, यहूदी राष्ट्र की उपयोगिता एवं उसकी आवश्यकता के सम्बन्ध में वालेस से लेकर ट्रूमैन तक एकमत हैं। आर्थिक सहायता और निर्माण-योजनाओं के सम्बन्ध में यहूदी एजेन्सी 'इजराएल' की सहायता करने की शक्ति रखती है। यदि अमेरिका का लक्ष्य वास्तव में भूमध्यसागर पर वर्चस्व स्थापित करने का हो तो यहूदी 'इजराएल' की उग्र राष्ट्रीयता उसकी कामना की पूर्ति न होने देगी, यह निश्चित है। रूस इस बात को भली-भाँति जानता है। वह कभी इजराएल की बढ़ती शक्ति के मार्ग में काँटे न बिछाएगा।

'इजराएल' को एक अच्छा जलबेड़ा निर्माण करने में अधिक वर्ष नहीं लगेंगे। उसकी हवाई शक्ति तो अब भी अरब राष्ट्रों की सम्मिलित शक्ति से अच्छी प्रमाणित हुई है। ब्रिटेन ने अतीतकाल में यहूदी राज्य की स्थापना करने के लिए अनेक वचन यहूदियों को दिए थे। पर यह जानकर कि वह अरब राष्ट्रों के समान 'इजराएल' को अपने प्रभाव में न रख सकेगा, वह अपनी नीति बदल चुका है। वह भूमध्यसागर से अपना प्रभुत्व खोना नहीं चाहता, इसीलिए मिश्र, ट्रांसजोर्डन, सीरिया, टर्की आदि का पल्ला उसने दृढ़ता से पकड़ रखा है। वह यथासंभव इजराएल के विरुद्ध अपनी कूटनीतिक चालों का उपयोग करने से चूकेगा नहीं, इसे इजराएल और रूस दोनों भली-भाँति जानते हैं और उसके प्रतिरोध के लिए तत्पर हैं। ऐसी अवस्था में इजराएल के विरुद्ध रूस तो कभी नहीं जाएगा। विशेषतया उस स्थिति में, जब कि वह जानता है कि शक्तिसम्पन्न अरबराष्ट्र युद्ध-काल में अमेरिका और ब्रिटेन के अगले आक्रमणकारी दस्तों का काम कर सकते हैं। दर्रेदानियाल, अजरबेजान तथा आर्मेनिया के दो जिले, जो टर्की के अधिकार में हैं, रूसी माँगों के अन्तर्गत आते हैं, जो टर्की और ईराक को स्वीकार नहीं हैं। फलतः फिलस्तीन तीन शक्तियों की संघर्ष-भूमि बना हुआ है। इजराएल एक प्रबल शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र के रूप में ही फिलस्तीन को 'तृतीय महा-समर' की युद्ध-भूमि बनने से रोक सकता है। यदि अरब राष्ट्रों ने इस महती शक्तिसम्पन्न इजराएल के सहयोग के महत्त्व को न पहचाना तो वे सब बलि के बकरे बन रूस, ब्रिटेन और अमेरिका के सङ्घर्ष की भेंट चढ़ जाएँगे।

इजराएल का भविष्य

'इजराएल' नवोदित राष्ट्र है परन्तु उसका भविष्य बहुत ही सुन्दर है। यद्यपि अरब राष्ट्र 'इजराएल' के साथ एक गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए अब भी तैयार नहीं हैं, जैसा कि संयुक्त राष्ट्रिय फिलस्तीन-समझौता-कमीशन से उनकी बातचीत से प्रकट होता है। संयुक्तराष्ट्रिय सदस्यों को इससे गहरी निराशा हुई क्योंकि उनकी धारणा थी कि इजराएल यद्यपि अरब देशों के साथ व्यक्तिगत रूप से विचार-विनिमय करना अधिक पसन्द करता है तथापि वह सम्मेलन में उपस्थित होने को तैयार हो जाता। फिर भी अब तक इजराएल कई अरब राष्ट्रों से फिलस्तीन-सम्बन्धी विराम-संधि करने में सफल हो चुका है। मिस्र और लेबनान के बाद एक मास की राजनैतिक वार्ता के अनन्तर गत ३ अप्रैल को विराम सन्धि पर ट्रांसजोर्डन ने भी अपने हस्ताक्षर कर दिए। सीरिया के साथ गत आठ सप्ताहों से वार्ता चालू है।

१६ जुलाई, १९४८ के समाचार के अनुसार अरब राष्ट्रों ने विराम-सन्धि को स्वीकार करते हुए जो शर्तें दी थीं, उनमें कहा गया था कि फिलस्तीन में यहूदियों का आगमन रोका जाए और तीन लाख अरब शरणार्थियों

को वापस फिलस्तीन भेजा जाए तथा विराम-सन्धि की अवधि निश्चित कर दी जाए।

इनमें से प्रथम शर्त तो यहूदी मान ही नहीं सकते थे। दूसरी शर्त में शरणार्थी-संख्या के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है, जो अब तक बना हुआ है। 'संयुक्त राष्ट्रसङ्घ' के मध्यस्थ स्वर्गीय काउण्ट बर्नाडोट ने ३१ जुलाई, ४८ वाले अपने वक्तव्य में इस सम्बन्ध में कहा था—"संयुक्त राष्ट्रसङ्घ के सामाजिक विभाग के सञ्चालक सर राल्फ सिलेक्ट फिलस्तीन के शरणार्थियों की समस्या हल करने के लिए जेनेवा से यहाँ आए हैं और उनके कथनानुसार कुल १० लाख अरब शरणार्थी हैं।"

परन्तु काउंट बर्नाडोट के वक्तव्य के अनुसार १० लाख अरब शरणार्थी आए कहाँ से, जब पूरे फिलस्तीन की अरब जनसंख्या १० लाख नहीं है? यहूदी राज्य के अन्तर्गत देश में तो यहूदी ही दो-तिहाई से अधिक हैं। फिर भी यही बहुत है कि 'प्रस्तावित सम्मेलन' में मुख्यतः अरब शरणार्थियों का जो प्रश्न उठाया जाने को था, वह स्थगित कर दिया गया। ईराक ने यह सुझाव देकर कि शांति-वार्ता के समय अरब शरणार्थियों की समस्या पर विचार करने से, वह व्यावहारिक प्रश्न के बदले, राजनैतिक प्रश्न बन जाएगा, अरबों का प्रातिनिधिक विचार प्रकट किया। इस समस्या पर शांति-वार्ता के क्षेत्र से बाहर विचार करने का विचार निस्सन्देह एक शुभ विचार है।

जहाँ तक इजराएल का प्रश्न है, उसको अपने पड़ोसी राष्ट्रों से कोई द्वेष अथवा वैर नहीं है। अतीत काल में यहूदी राज्य 'यूहूदा' के सम्बन्ध अपने पड़ोसी राज्यों के साथ यथेष्ट मित्रतापूर्ण थे। यहूदियों का सौभाग्य है कि आज न केवल 'इजराएल' की मान्यता समस्त विश्वशक्तियों द्वारा स्वीकृत है वरन् अन्तर्राष्ट्रिय सहानुभूति भी उसे प्राप्त है। यद्यपि भारत ने अब तक यहूदी राष्ट्र को राजनैतिक मान्यता नहीं दी है तथापि आज बहुसंख्यक भारतीय विचारक 'इजराएल' के प्रति हार्दिक सहानुभूति रखते हैं। अब वे 'इजराएल' के साथ सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उत्सुकता प्रकट कर रहे हैं। भारतीय सरकार अब अधिक समय तक लोकमत की उपेक्षा न कर सकेगी, यह निश्चित है।

'इजराएल' एक शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र के रूप में जहाँ मध्यपूर्व का केन्द्र विन्दु बन जाएगा, वहाँ उत्तरोत्तर भारत और इजराएल के सम्बन्ध भी सदाशयतापूर्ण और घनिष्ठ होते जाएँ, इसकी सम्भावना बढ़ती जाएगी, क्योंकि जिस प्रकार भारत तृतीय महासमर में न पड़ने के लिए तटस्थता की नीति अपनाए हुए है और वह ब्रिटेन, अमरीका अथवा रूस के हाथ की कठपुतली बनकर अपना सर्वनाश नहीं करना चाहता, उसी प्रकार इजराएल विश्वशक्तियों के शक्ति-सन्तुलन को बनाए रखकर अपने महत्त्व को अक्षुण्ण रखेगा। 'इजराएल' और भारत की मैत्री की सुदृढ़ता पर ही एशिया के ऐश्वर्य एवं शांति की भूमिका बन सकती है। पर क्या इस ओर दोनों देशों के राजनीतिज्ञ ध्यान देंगे?

छः लाख यहूदियों अथवा इजराएलियों के साथ मूसा ने एशिया में प्रवेश किया था। आज 'इजराएल' भी छः लाख यहूदियों को लेकर जीवन और स्वतंत्रता के पथ पर प्रवेश कर चुका है। इस समय उसे युद्ध की नहीं, सहयोग की आवश्यकता है। यदि अरब-राष्ट्रों ने उसे इस समय युद्ध के लिए विवश किया तो एक प्रवक्ता के अनुसार इजराएल उस समस्त भूमि को अपने अधीन कर लेगा, जिसके लिए उसे लड़ना पड़ेगा। प्राचीन इजराएल राष्ट्र में वर्तमान शाम, लेबनान और फिलस्तीन के नीचे का काफी बड़ा भूभाग सम्मिलित था। अरबों की स्वार्थपरता इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि यहूदियों को एक बार अधिकार-च्युत करने के अनन्तर चाहते हैं कि वे शताब्दियों बाद भी उसी प्रकार हारे हुए लोगों के समान घूमते रहें; परन्तु यहूदी इसे स्वीकार न करेंगे। ब्रिटिश वैज्ञानिक अणुबम के रहस्यों से अब तक वञ्चित हैं परन्तु अमेरिका के यहूदी वैज्ञानिक उस रहस्य को जानते हैं। उन्होंने अणुबम के निर्माण में सहयोग दिया है और वे उसे अमेरिका से प्राप्त भी कर सकें तो आश्चर्य नहीं। निश्चय है कि यदि अरबवाद अपना युद्ध बन्द न करेगा तो अपने लिए स्वयं कब्र तैयार करेगा। भारत का यहूदियों ने क्या बिगाड़ा है, जो भारतीय सरकार निरन्तर उनकी उपेक्षा करे?

सत्य

श्री भिक्खु

स्रष्टा ने सृष्टि-योग से पूर्व मानस संकल्प से विश्वास का साक्षात्कार किया। विश्वास शून्य में शब्द-रूप में प्रकट हुआ। स्रष्टा ने प्रकृति की विपुल पदार्थ-माया की ओर इंगित करके पूछा—इस सबका प्रयोजन समझ पा रहे हो, देव विश्वास!

देव विश्वास ने देखा—अनन्त जल-संघात। शून्य में वीचियों के कक्ष बनाने में प्रयत्नशील। मानों स्व की परिभाषा में बँधकर आनेवाला कोई निर्माण। उसने उत्तर दिया—हाँ प्रभो! तरल में कोई इच्छा ज्वालामय हो रही है। वही इस जलसंघात में कर्मोत्प्रेरिणी आकुलता बन किसी स्व विशिष्ट निर्माण का योग करना चाहती है। यही इसका प्रयोजन भी है, प्रभो!

स्रष्टा ने कहा—पर विश्वास, प्रकृति में शुद्धावस्था में इच्छामयी होने का सामर्थ्य तो नहीं। फिर तुमने विचार किया कि यह सब क्यों? कैसे?

विश्वास ने जिज्ञासा की—तब स्वयं स्रष्टा ही स्पष्ट करें इस रहस्य को प्रभो!

स्रष्टा ने समझाया—वत्स, आज स्वयं मेरा हृदय निर्माण के आग्रह से व्याकुल हो रहा है। इस महाजल-राशि में जो तुम सतत आलोडन-विलोडन देख रहे हो, यह मेरे मानस की चिन्ता का मात्र प्रतिफलन तो ही है। मैं प्रकृति की इस विपुल पदार्थ-माया में सोद्देश्य कृतित्व भर देना चाहता हूँ। इसके लिए तुम्हें मेरी सहायता करनी होगी।

विश्वास ने विनम्र शब्दों में पूछा—किन्तु हे आदि-पुरुष, मैं इस अभूतपूर्व योग-सिद्धि में किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकता हूँ? आज्ञा करें देव!

आदिपुरुष ने बताया—तो देव विश्वास, तुम सत्य बनकर मेरी सहायता करो। मेरी सृष्टि का रहस्य, इसका आत्मा-सत्य ही होगा। वह सत्य तुम्हीं बनोगे, पुत्र!

विश्वास मूक था, चकित था। उसकी समझ में न आ रहा था कि इस विराट् का साधन मेरे द्वारा भला कैसे संभव हो सकेगा। स्रष्टा उसकी चिन्ता समझकर ही बोले—देव विश्वास, तुम इस त्रिगुणात्मिका प्रकृति को तो देखते हो न। इसमें जो प्रकाशपुञ्ज-सा प्रतीत हो रहा है, वह सतोगुण है। इसी के निकट वह देखो अनुराग आभा के समान चालक रजोगुण है। यही स्व से विभूषित निर्माण की प्रवृत्ति है, जिसका अवरोध यह अंधकार, जिसे तमोगुण कहते हैं, निरन्तर करता रहता है। मेरे निर्माण की ये ही अन्यतम शक्तियाँ हैं। किन्तु......

विश्वास ने स्रष्टा को रुकते देख उत्सुकतापूर्वक पूछा—किन्तु क्या, देव?

स्रष्टा ने गम्भीर होकर कहा—किन्तु यही कि इन आदिशक्तियों में अभी तक पारस्परिक सहयोग एवं सहकारिता का अभाव है। इनके सहयोग के अनपेक्षी इस भाव ने ही आजतक मेरे निर्माण की विडम्बना की है। अब तुम्हीं मेरी सृष्टि की इस विडम्बना से रक्षा करोगे, वत्स!

विश्वास ने अनुभव किया कि सच ही स्व से परिपुष्ट एवं पर से निवृत्त प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व स्वार्थ-साधन ही में लिप्त था। योगभ्रष्ट के तत्त्व-विधायक शक्ति से शून्य हो विश्वरूपी परमार्थ का साधन न कर स्वतः निरर्थक प्रमाणित हो रहे थे। इतनी प्रबल पदार्थ-माया का प्रयोजनहीन होकर पड़े रहना सच ही खेद का विषय था।

विश्वास सद्भावना से भरकर बोल उठा—तो फिर मुझे निश्चित आदेश दो, प्रभु! मैं सृष्टि-लक्ष्य का साधक कैसे हो सकूँगा।

स्रष्टा ने प्रसन्न होकर आशीर्वचन करते हुए कहा—वत्स, तुम्हारा कल्याण हो। सृष्टि में तुम आदि-अन्त से मुक्त होकर कालजित् के समान अनादि और अनन्त होकर विचरण करो। जाओ पुत्र, सर्वप्रथम सृष्टि में तुम्हारा सत्य स्वरूप ही प्रकट हो। तुम्हीं उसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के भी कारण बनो। सत्य के बिना सृष्टि का कोई प्रयोजन न रह जाएगा और न कोई ब्रह्म-मनोरथ ही सिद्ध होगा। अच्छा तो अब विलम्ब क्यों?

और इस क्यों के उत्तर में ही शून्य का प्रत्येक रन्ध्र सत्य की तेजोमय आभा से भर गया। ब्रह्मापत्य विश्वासगोत्री सत्य का अवतरण इस लोक में हुआ किन्तु सत्य ने प्रकृति के इस क्षेत्र में आकर देखा कि

यहाँ उसकी स्थिति के उपयुक्त तो कुछ भी नहीं। सत्य का इस सहयोग-शून्य पदार्थ-माया में अवस्थान कहाँ हो? सहयोग...और तत्क्षण ही उसके कानों में ब्रह्मवाणी प्रणव के समान गूंज उठी—किन्तु यही कि इन आदि-शक्तियों में अभी तक पारस्परिक सहयोग और सहकारिता का अभाव है। इनके सहयोग के अनपेक्षी इस भाव ने ही आज तक मेरे निर्माण की विडम्बना की है।

ये ही पूर्वश्रुत शब्द सत्य के कानों में बारंबार गूंजते रहे। अधर इनका पारायण करते रहे। मानो इन्हीं शब्दों में सत्य का आत्म-निर्देश छिपा हो—सहयोग... सहकारिता...। सहयोग...सहकारिता...

तभी सहसा सत्य की कान्ति बढ़ चली। उसकी स्थिति की प्रथम समस्या का समाधान हो चला था। प्रणव की प्रतिध्वनि के समान वह कह उठा—हे सृष्टि-पिता, मैंने तुम्हारे ही शब्दों में अपना आदेश ढूँढ़ लिया। सर्वप्रथम सत्य इस विश्व में सहयोग और सहकारिता का भाव बनकर ही प्रवर्तन करेगा। सहयोग सृष्टि का आदि सत्य बने! सहयोग सृष्टि का अन्तिम सत्य हो, प्रकृति की आदिशक्तियों का अनपेक्षी भाव नष्ट हो।

सत्य के इस संकल्प के साथ ही प्रकृति का अणु-अणु अपूर्व कर्त्तव्य से भर उठा। त्रिगुण का विश्लिष्ट व्यापार संश्लिष्ट हो उठा। सत-रज-तम की त्रिवेणी एकधारा ही प्रवाहित हो उठी। मानो इसी के तट पर विश्व-तीर्थ का निर्माण होना था। प्रकाश और छाया के वर्णों से चित्रित सृष्टि अनुराग से सञ्जीवी हो उठी।

तब प्रकाश को किसी ने सत नहीं कहा और न प्रकाश केवल प्रकाश के लिए ही रहा।

......छाया को किसी ने तम नहीं कहा और न छाया केवल छाया के लिए ही रही।

... राग को किसी ने रज नहीं कहा और न राग केवल राग के लिए ही रहा।

सबने देखा और स्वीकार किया कि गुण-संयुक्त होने पर भी यह सब कुछ त्रिगुण विलक्षण है। यही सृष्टि है। यह सृष्टि का तत्त्व है—सहयोग!

सृष्टि प्रायः सम्पूर्ण होती गई। उसकी सम्पूर्णता के साथ ही सत्य के मन में विलक्षण शंका उत्पन्न हुई। वह आप ही कह उठा—इस जड़ में तो मैं सहकारिता का भाव, सहयोग की इच्छा बनकर स्थिति पा सका, किन्तु इस भावमय, इस इच्छामय अधोजात जीवसृष्टि में कैसे स्थिति धारण करूँगा।

और सत्य के सामने ही खड़ा विधाता का अन्यतम निर्माण मानव कह रहा था—सत्यदेव, अब यह विश्व मेरा है। मैं इसके लिए और यह मेरे लिए रहेगा। मैं इसकी जड़ सम्पदा का उपयोग करूँगा और यह मेरी जीव-शक्ति से अनुप्राणित होगा। और तुम सत्य, विश्वास के आदि मानस संकल्प, तुम्हें आज से मेरे आश्रित होकर मेरी इस विश्वक्रीड़ा को मर्यादा, स्थिति और आयु देनी होगी।

इतना कहकर मानव सृष्टिपथ पर बढ़ चला। विकास-सरणि में उसके उमड़ते हुए पदचिह्न कह रहे थे कि आज से सत्य मानव का अनुगत हुआ।

सत्य के कानों में भी यह ध्वनि तप्त-लौह-शलाका-सी पड़ी। मानों उसके कानों में कोई चीत्कार, सतत चीत्कार करता हुआ कह रहा था—सत्य मानव का अनुगत! सत्य मानव का अनुगत!

सच ही इस उपहास से सत्य विचलित हो उठा—सत्य, स्रष्टा का आदिपूत सङ्कल्प। आदि और अन्त से मुक्त। कालजित्। अनादि और अनन्त! किन्तु आज प्रायः वायु से परिचालित जड़-पुद्गल का आश्रित। अमृत होकर भी मृत का अनुगत। मैं शुद्ध और वह मिश्रित! आह, दिव्य दिव्य-कृत का पराधीन।

और तभी सत्य कातर हो विश्वात्म को पुकार उठा—त्राहि माम्, त्राहि माम्, विश्वदेव, त्राहि माम्!

विश्वदेव ने सत्य को आश्रित बनाकर रखने की मानव की उस घोषणा को सुना और सुना मानव के आतङ्क से विचलित अनाहत सत्य का विह्वल क्रन्दन! मैत्री-करुणा से उनका हृदय भर उठा। उन्होंने ब्रह्मबल से सत्य के उस विचलन को रोका। मानव सतत गतिमय ही रहा। वे सत्य में संकल्प बनकर बोले—सत्यदेव! धैर्य धारण करो। तुम ब्रह्मभक्त हो। विश्वासगोत्री। आत्मविश्वास से हीन होकर स्वयमेव अपनी विडम्बना न करो। विश्वास की प्रतिष्ठा करो। उसी से तुम्हारा कल्याण होगा!

उसने आश्वस्त होकर पूछा—सो कैसे, परमपिता?

विश्वदेव ने समझाया—बताता हूँ, पुत्र! दत्तचित्त होकर सुनो। तुम जानते हो कि सहयोग से ही यह सृष्टि

हुई है। सहयोग के उस परम मन्त्र को तुम आज भूलते जान पड़ते हो। मानव का तुम सहयोग करो। वह समझे कि तुम उसके आश्रित हो किन्तु सहयोग में आश्रित-भाव कदापि नहीं।

विश्वदेव की कृपा से सत्य का विचार विचलित होता जा रहा था। वह अधिकाधिक आत्मस्थ होता हुआ सुनता रहा—किन्तु वत्स, इसके पूर्व तुम्हे विश्व-विज्ञान को समझना होगा। मानव इच्छामय और ज्ञानमय है। यह इच्छा और ज्ञान मेरा ही अंश है, वैसा ही जैसा कि तू। अतएव इनसे अमैत्री के भाव की सम्भावना नहीं रहती; किन्तु मानव का ज्ञान प्रायः जड़ की छाया से धूमिल और ग्रस्त रहता है। उसकी अवस्था अज्ञान और माया-भ्रम की अवस्था है। इसी भ्रम में प्रायः अज्ञान ज्ञान हो उठता है। मानव उसे अपना अनुगत समझता है, और कहता है कि सत्य यही है—इसी से मैं सत्य का प्रभु हूँ, सत्य मेरा आश्रित है।

सत्यदेव ने कहा—यह कैसा घोर असत्य है, पिता!

विश्वात्मा बोले—ठहरो वत्स! नई कल्पना न करो। यह सत्याभास है। सत्य भी मेरा अंश है और ज्ञान भी और शुद्ध ज्ञान भी इस प्रकार सत्य और ज्ञान एकमेव हैं—अभिन्न हैं। मैं शुद्ध ज्ञानी हूँ अतएव तुम सत्य एकमात्र मेरे आश्रित हो। मानव भी ज्ञान और माया की संकर सृष्टि होने के कारण कभी-कभी अपने मिश्रित ज्ञान को ही परज्ञान समझ लिया करेगा। इसी सत्याभास के वशीभूत हो वह शरीर अहंता में सोच लिया करेगा कि 'सत्य मेरा अनुगत है।' उसे सोचने दो, वत्स, पर तुम उससे सहयोग करने से विमुख न होना। इसी में सृष्टि का कल्याण है। तुम विश्वहिताय-प्रयुक्त भी हो।

सत्य बोला—किन्तु यह क्योंकर साध्य होगा, देव! इतनी कामना तो मुझे स्वयं में जान ही नहीं पड़ती!

विश्वदेव ने कहा—अवश्य है, वत्स, अवश्य है। इस विश्वमाया को कुछ और समझ लो। शुद्ध-ज्ञान में अभेद की दृष्टि होती है। विश्व की रुद्ध दृष्टि को यह अज्ञान ही प्रतिभास होगा। इसका प्राणी तो निरन्तर वर्गीकरण, विश्लेषण और भेद-प्रभेद करता चलेगा। और उसी भेद-दृष्टि को वह परज्ञान समझेगा—उसके आगे कुछ भी नहीं। उसके समर्थन में उसके पास कुछ तर्क भी होंगे—उसके अपने ज्ञान के रक्षा-शस्त्र! बस इन्हीं से तुम अपनी रक्षा भी करोगे।

सत्यदेव ने सविस्मय कहा—इनसे मेरी रक्षा!

उत्तर मिला—हाँ, वत्स! अज्ञानी अपने विश्वास को ही सत्य मानेगा और ज्ञानी अपने ज्ञान-तर्क को। पुत्र, तुम विश्वहितार्थ अज्ञानी में विश्वास और ज्ञानी में तर्क बनकर ही अवस्थित होओ। इस सत्याभास की भूमिका से ही कदाचित् इस लोक का प्राणी शुद्ध सत्य को समझ भेद से ऊपर उठ मेरा ज्ञानकर अपने अज्ञान रूप को विनष्ट कर सके। बस, जाओ वत्स, तुम विश्व में विश्वास और तर्क के इन्हीं दो मार्गों से निर्द्वन्द्व होकर विचरण करो।

विश्वदेव शुद्ध रूप में प्रविष्ट हो गए। सत्य की मानो तन्द्रा टूटी। विश्व-प्राङ्गण उसके विहार के लिए मुक्त होकर आगे पड़ा था। मानव उसके विकास की श्रेणियाँ निर्धारित करता हुआ आगे बढ़ रहा था। सत्य ने प्रसन्नमना उसका अनुगमन ही किया, अज्ञानी में विश्वास बनकर ज्ञानी में तर्क।

आज भी सत्य इस लोक में इन्हीं दो रूपों में प्रतिष्ठित है।

★

प्रान्तिक राजस्व

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद प्रान्तों के आर्थिक ढाँचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। यद्यपि वह पूर्णतः बदला नहीं है, केन्द्र के समान प्रान्तों के सम्मुख भी मुद्रास्फीति, शरणार्थी और पुनर्वासन, सन्तुलित बजट बनाने और अन्न-संकट की समस्याएँ हैं और इनको हल करने में इनकी शक्ति लगी हुई है। प्रान्तिक बजटों का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट रूप से ज्ञात होती है कि युद्ध-काल में चलनवृद्धि और मुद्रास्फीति के कारण आय में कृत्रिमरूप से वृद्धि हुई और चलन-वृद्धि के बने रहने और नवीन करों-द्वारा बढ़ी आय कायम

रही। इसके साथ प्रान्तों का व्यय भी बढ़ा है। युद्ध-काल में अनेक नए महकमे और विभाग खुले। जनतंत्र के विकास के साथ भी इनमें अनिवार्य रूप से वृद्धि हुई। वेतन और भत्तों में मँहगाई के कारण वृद्धि हुई और शासन-व्यय बढ़ा। खर्च बढ़ने का एक कारण शरणार्थियों को बसाने, अधिक अनाज उपजाओ आन्दोलन सदृश विकास की योजनाओं को पूरा करना और सामाजिक और सुरक्षा-सर्विसों का विस्तार है। प्रान्तों ने किसी भी लागत पर १९४९-५० का बजट सन्तुलित करने का प्रयत्न किया है और घाटा होने से अपने को बचाया है। पर उन्होंने जिन उपायों से बचत--यद्यपि वह साधारण है-- दिखाई है और घाटा पूरा किया है, उससे उन्होंने मुद्रास्फीति के विरुद्ध चल रही लड़ाई को जोरदार और बलवान् नहीं बनाया है। अक्तूबर १९४८ में हुई अर्थ-मन्त्रियों की परिषद् ने दो बातों पर जोर दिया था कि सब प्रान्त दो बातों को अपने सामने रखें—(१) मुद्रास्फीति को बढ़ने से रोका जाए और इसके लिए सब आवश्यक उपाय काम में लाए जाएँ, (२) अर्थनीति में एकसूत्रता और एकीकरण कायम किया जाए। इस समय की प्रथम आवश्यकता चलनवृद्धि के दबाव को कम करने और शासन-व्यय में कमी करने की है। निस्सन्देह निरक्षरता-निवारण, दारूबन्दी आदि असाधारण और आवश्यक काम हैं पर सामाजिक प्रगति और सुधार के ये काम राष्ट्रिय राजस्व की वैज्ञानिक पद्धति के विकास पर निर्भर हैं। आसाम, उड़ीसा आदि छोटे प्रान्त पुराने पथ पर सावधानी के साथ चल रहे हैं। वे डरते हुए बड़ी सतर्कता के साथ पांव आगे बढ़ा रहे हैं। पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब की छाती विभाजन के कारण आज भी क्षतविक्षत है और बजट पर यह स्पष्ट रूप से अंकित है। मध्यम आकार के बिहार जैसे प्रान्त अपने राजस्व का बुद्धिमानी और कौशल के साथ प्रबन्ध कर रहे हैं। बड़े प्रान्तों में युक्तप्रान्त ने एक साल में चार करोड़ रु० के कर लगाए हैं और इस प्रकार अपनी महानिधि--रेवेन्यू-रिजर्व--को बढ़ाया है। मद्रास और बम्बई ने भी वर्ष में चार करोड़ रु० के कर लगाए हैं। नए करविषय अनुपात में बिक्री-कर पर पड़े हैं। प्रान्तों ने इसको कामधेनु और अलाउद्दीन का लैम्प मान रखा है। यह उनके लिए 'खुल समसम' के समान है। बम्बई और मद्रास प्रान्त ने अपना तीन चौथाई घाटा बिक्री-कर से पूरा किया है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष कर लगाने का व्यापार-व्यवसाय की वृद्धि, उद्योगों के विकास और जनता की कर देने की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना सम्भव है। केन्द्र से प्रान्तों को अनुदान (ग्रांएट) देने की वर्तमान पद्धति, केन्द्र और प्रान्तों के बीच वितरण-योग्य आय-कर, उत्पन्न धनाभार और प्रान्तिक कर-ढांचा में आमूल-चूल परिवर्तन करने और इसका वैज्ञानिक ढंग पर पुन:संङ्गठन करने की आवश्यकता है।

प्रान्तों की आर्थिक स्थिति

विभिन्न प्रान्तों के १९४९-५० के बजट से उनकी आर्थिक स्थिति पर जो प्रकाश पड़ता है, वह निम्न तालिका से प्रकट है—

करोड़ रुपए में

	आय	व्यय	बचत (+) घाटा (-)
युक्तप्रान्त	५५.७३	५५.५८	+०.१५
मद्रास	५१.७५	५५.६६	-३.९१
बम्बई	४८.८१	५२.४१	-३.६०
पश्चिमी बङ्गाल	३१.८३	३२.९४	-१.११
बिहार	२४.४०	२१.५२	+२.८८
मध्यप्रान्त	१८.९९	१८.७९	+०.२०
पूर्वी पञ्जाब	१४.३७	२२.९२	-८.५५
आसाम	८.९१	९.५२	-०.६१
उड़ीसा	८.९०	८.७६	+०.१४

इस आर्थिक स्थिति में भी मितव्ययिता और व्यय कम करने की ओर ध्यान नहीं दिया गया है और न महत्त्वाकांक्षापूर्ण सामाजिक सुधारों को स्थगित किया गया है। मद्रास प्रान्त ने १ अक्टूबर, १९४८ ई० से सारे प्रांत में दारू बन्द कर दी। बम्बई १ मार्च, १९५० से सारे प्रान्त में पूर्ण मद्य-निषेध करने के लिए कृत-संकल्प है। बम्बई ने इसके अतिरिक्त केन्द्रीय वेतन मान और दर स्वीकार करके और दो करोड़ रु० खर्च बढ़ा लिया है।

आय-कर की आय में से यद्यपि अब प्रान्तों को ५३ करोड़ रु० से अधिक मिलने लगा है, और इससे प्रांतों की आय बढ़ने में भारी मदद मिली है, पर फिर भी प्रांत

सन्तुष्ट नहीं हैं और हरेक प्रान्त के अर्थमन्त्री ने केन्द्र से और अधिक अंश देने की माँग की है। बिहार को यद्यपि बचत हुई है पर उसने 'प्रान्तों में सबसे अधिक गरीब होने और पिछड़े होने' पर, बम्बई ने आय-कर में सबसे अधिक भाग देने, युक्तप्रान्त ने सबसे अधिक आबादी होने, पश्चिमी बङ्गाल ने शरणार्थी-समस्या और विभाजन के नाम पर अधिक अंश आय-कर में पाने का दावा किया है। इस माँग में कोई प्रान्त किसी से पीछे नहीं रहना चाहता। यदि प्रान्तों की माँग पूरी की जाए, तो दिल्ली के पास कुछ न बचेगा और प्रान्त फिर भी पूर्णतया सन्तुष्ट न होंगे।

अन्न-सहायता में मद्रास ने और मदद माँगी है। मद्रास सरकार १९४८ के अन्त तक पाँच वर्षों में १५ करोड़ रु० खर्च कर चुकी है। अक्टूबर, १९४८ से केन्द्रीय सरकार ने अन्न-सहायता दो-तिहाई से बढ़ाकर तीन-चौथाई कर दी है, और अन्न-सङ्कट में प्रति मन आठ आना बोनस देने का वादा किया है। इससे १९४८-४९ में १.३२ करोड़ रु० और १९४९-५० में १.९१ करोड़ रु० और उसको मिल गए हैं। इस पर भी मद्रास सरकार ने किसानों को रकम देने में और सहायता देने की माँग की है। पर प्रान्तों ने केन्द्र-द्वारा दिए गए सुझावों की ओर ध्यान देने की जरा भी चिन्ता नहीं की है। युक्तप्रान्त ने कृषि-आय पर मामूली कर लगाया है। मद्रास ने यह लगाने से इनकार कर दिया है और कारण बताया है, इसका खेती पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। प्रान्तिक करों में एकरूपता और एकसूत्रता तथा प्रान्तों और केन्द्र में आर्थिक विषयों के अन्दर एकीकरण की आवश्यकता की ओर प्रान्तों का ध्यान आकर्षित किया गया था पर इस ओर उन्होंने बिलकुल ध्यान नहीं दिया।

नवीन अर्थ-नीति

प्रान्तों का व्यय अवश्य बढ़ा है। पर एक बात इस सम्बन्ध में स्मरण रखने की है कि जनतन्त्रता के विकास के साथ गवर्नमेंट का उत्तरदायित्व बढ़ गया है, और इसके साथ राष्ट्रिय राजस्व की कल्पना में भी परिवर्तन हो गया है। 'पब्लिक फाइनेंस' के लेखक फिलिप ई० टेलर ने अपने ग्रन्थ में प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री एडोल्फ वैजनर के 'राज्य के क्रियाकलापों की वृद्धि का नियम' इस नाम के एक नूतन सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए एडोल्फ वैजनर ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में लिखा था—विभिन्न देशों—सभ्य और प्रगतिशील देशों—के, और हमारा यहाँ केवल उन्हीं से सम्बन्ध है, विभिन्न समयों के क्रियाकलापों की व्यापक तुलना करने से पता चलता है कि केन्द्रीय और प्रान्तिक सरकारों के क्रियाकलापों का उत्तरोत्तर विस्तार होता जाता है। यह वृद्धि व्यापक भी है और परिमाण में भी है। निरन्तर नए-नए कार्य हाथ में लेती रहती हैं और वे पुराने और नए कार्यों को अधिक प्रभावशाली ढंग से करती हैं। सरकारें इस ढङ्ग से जनता की आर्थिक आवश्यकताएँ अधिकाधिक मात्रा में और अधिक सन्तोषजनक रीति से केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों-द्वारा पूरी की जाती हैं।

राष्ट्रिय राजस्व में व्यापक क्षेत्र के सम्बन्ध में डा० अल्फ्रेड जी० ब्रिशलर का मत भी उल्लेख योग्य है। आपने अपने ग्रंथ 'पब्लिक फाइनान्स' में लिखा है—कुछ लोगों की दृष्टि में सरकारी व्यय में वृद्धि एक महान् आपत्ति मालूम होती है, कुछ के लिए यह आह्लाद का एक कारण है, और अन्य कुछ के लिए यह उदासीनता और उपेक्षा का विषय है। राष्ट्रिय आय का इतना प्रतिशत सरकारी व्यय होना चाहिए, इस विषय में कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि इस प्रकार की सीमा सापेक्षिक परिस्थितियों पर निर्भर है। व्यय की उचित सीमा समाज की इच्छा और आवश्यकताओं, सरकारी व्यय का प्रभाव और व्यय की पोषक आय, जनता पर कर किस सीमा तक लगाया जाए इस विषयक इच्छा और क्षमता, वर्तमान कर-भार, समाज के आय-स्रोत और आबादी, सम्पत्ति आय का वितरण, आर्थिक विकास की अवस्था और अन्य बातों पर निर्भर है। वास्तविक बात यह है कि एक विशेष समय पर एक विशेष गवर्नमेंट का एक विशेष कर लगाना उचित है।

इस दृष्टि से बम्बई के अर्थमन्त्री श्री वैकुण्ठ मेहता का यह कथन ध्यान देने योग्य है—सब व्यय इस अनुभूति के साथ किया गया—जनता की परिस्थिति और वातावरण के बदलने को लिए; जिनमें से अधिकांश दुर्भाग्य से सभ्य जीवन के स्वीकृत जीवनमान से अत्यधिक निम्नतम स्तर पर जीवनयापन कर रहे हैं; सामूहिक कार्रवाई

करने के लिए उद्देश्यपूर्ण योजना बनाने की जिम्मेदारी राज्य को प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथ में लेनी चाहिए। मानव-जीवन की आवश्यकताओं और इच्छाओं को आधुनिक राज्य आज जिस मात्रा में पूरा कर रहे हैं, उस पर कोई सीमा नहीं लगाई जा सकती। सन्तानोत्पत्ति को छोड़कर सम्भवतः भविष्य में मनुष्यों की आवश्यकता-पूर्ति के सब काम गवर्नमेंएट करेगी। इस अवस्था में उनका खर्च बढ़ना अनिवार्य है। इस दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र अमरीका और उसके स्टेटों (प्रान्तों) के व्यय का अध्ययन अप्रासंगिक न होगा। नीचे १६१३ से १६४५ के बीच के कुछ वर्षों का व्यय दिया गया है :—

१६१३-४५ (लाख डालरों में)

वर्ष	फेडरल	स्टेट
१६१३	७२५	३८३
१६१६	१८५१५	६४०
१६२३	८२६५	१२०८
१६२६	३२६६	१६४३
१६३३	३८६४	२०६७
१६३७	८१७७	३४६३
१६४१	१२७११	५५५१
१६४५	१००४०५	६०२६

इसलिए केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यय के बढ़ने मात्र से चिन्ता प्रकट नहीं करनी चाहिए।

घाटे का

केन्द्रीय गवर्नमेंएट और अर्थमन्त्रियों की परिषद् द्वारा किए गए निर्देशों का ख्याल करके प्रत्येक प्रान्त ने अपना बजट मुद्रास्फीति-विरोधी बनाया है और आय-व्यय के घाटे को नए करों-द्वारा बचत में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया है। मद्रास का घाटा ३.६१ करोड़ रु० का है, पर नए कर ४ करोड़ रु० के लगाए गए हैं। बम्बई का घाटा ३६८.४८ लाख रु० का है, पर अतिरिक्त करों द्वारा इस घाटे को ११.५२ लाख की बचत में बदल दिया गया है। पश्चिमी बङ्गाल को १११ लाख रु० का घाटा है। इसमें से ८० लाख बिक्री-कर और कृषि-आय-कर बढ़ाने से पूरा होगा और २० लाख मनोरञ्जन-कर बढ़ाने से पूरा होगा। घाटा को पूरा करना चाहिए, यह निर्विवाद है। पर उसको जिस प्रकार पूरा किया गया है, वह जनहित की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता और जिस उद्देश्य से घाटे को हर सम्भव उपाय से पूरा करने की कोशिश की गई है, न वह उसको ही पूरा करता है। बिक्री-कर का मुख्यतः आश्रय लिया गया है। बिहार ने अन्न-धान्य पर बिक्री-कर लगाया है। मद्रास गवर्नमेंएट ने खेती की पैदावार की पहली बिक्री पर बिक्री-कर लगाया है। मूंगफली और काजू के क्रय पर ५० प्रतिशत कर बढ़ा दिया है, काफी हाउसों और बोर्डिङ्ग हाउसों पर आय-कर लगाया गया है। आलू और लाल मिर्च एक भी कर से नहीं बचे हैं। इन सबका परिणाम क्या होगा ? खाद्य पदार्थों का दाम बढ़ जाएगा। चलन-वृद्धि को रोकने के लिए खाद्य पदार्थों का दाम बढ़ाना नहीं अपितु घटाना अभीष्ट और वांछनीय है। समाचार-पत्रों की बिक्री और उनके विज्ञापन और पहेली भी बिक्री-कर के अन्दर आ गए हैं। बम्बई सरकार ने समाचार-पत्रों के विज्ञापन पर ही कर लगाया है। उसने प्रान्त से निर्यात होनेवाले प्रत्येक माल पर प्रति रुपया ३ आना कर लगाया है। और इससे २¾ कोटि रुपया आय होने की आशा है। मद्रास ने भी इसी तरह चाय और रुई पर भी कर लगाया है। फलतः इनसे मुद्रास्फीति का दबाव बढ़ेगा ही। प्रान्तों-द्वारा निर्यात-कर लगाना भविष्य में बुरे परिणाम उत्पन्न करेगा। रियासतों के विलय हो जाने, मिल जाने या उनका एकीकरण हो जाने से चुंगियों और भू-जकात की अवरोधक दीवारें एक के बाद एक गिर रही हैं। इस अवस्था में प्रान्तों-द्वारा निर्यात-कर लगाकर अन्तः-व्यापार में अवरोधक दीवारें खड़ी करना उचित नहीं कहा जा सकता। मद्रास-सरकार ने शहरी अचल सम्पत्ति के १६३८ से बढ़े मूल्य पर कर लगाया है। यह कर केन्द्रीय गवर्नमेंट के क्षेत्र का है। म्युनिसिपैलिटियों और पंचायतों-द्वारा लिए जानेवाले गृह-कर पर १२ प्रतिशत अधिभार (सरचार्ज) लगाया है। मद्रास सरकार का यह कर स्वायत्त शासन संस्थाओं के अधिकार-क्षेत्र का अतिक्रमण करना है। जमींदार-उन्मूलन और दारूबन्दी योजना ने प्रान्तिक सरकारों को इस अवस्था के लिए बाध्य कर दिया है।

सम्बन्ध है

आबकारी आय और बिक्री-कर में परस्पर गहरा संबंध है। १६३७ में भारत के वर्तमान गवर्नर-जनरल मा० श्री राजगोपालाचारियर ने मद्रास में अर्थमन्त्री के नाते सर्वप्रथम इसका सूत्रपात किया था। दारूबन्दी का भी

उपक्रम आपने ही किया था। उस समय यह स्वीकार किया गया था कि प्रान्तिक राजस्व अंकों का मिलाना भर नहीं है, न आय-व्यय का सन्तुलन करना है, बल्कि जनता की सामाजिक और आर्थिक प्रगति का निर्धारण करना है। उड़ीसा का बजट बनाते हुए श्रीहरेकृष्ण मेहताब ने कहा है—बजट के अन्दर निहित लेखा वस्तुतः राष्ट्र की उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है, अपितु राष्ट्र की उन्नति और उसके विकास-द्वारा बजट का लेखा नियन्त्रित होना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखकर पश्चिमी बंगाल ने ४.२८ कोटि रु० और पूर्वीय पंजाब ने ८.३० कोटि रु० शरणार्थियों के पुनर्वासन और रिलीफ पर खर्च करने का निश्चय किया है। बम्बई ने १९४७ में ४ कोटि रु० वेतन बिल का बढ़ाया था और अब पुनः उसमें और दो करोड़ रु० की वृद्धि की है। युक्तप्रान्त में भी मंहगाई का भत्ता इसी सीमा पर पहुँचेगा। आसाम का वेतन-बिल ४३ लाख रु० है। रियासतों के विलय के कारण बम्बई का घाटा १९४८-४९ में ३८५ लाख और उड़ीसा का ८२.९८ लाख तक पहुँच गया है। इसलिए आय बढ़ाने की चिन्ता में प्रान्तों ने बिक्रीकर का आश्रय लिया है और अन्न-धान्य, नारियल, गन्ना, काफी, चाय, आलू, मिर्च, बिजली, वाहन, मनोरंजन, सस्ते कपड़े, स्कूली छात्रों की आवश्यक वस्तुएँ भी कर के भार से नहीं बची हैं। दारूबन्दी के कारण मद्रास ने आबकारी की ३४१ लाख रु० और बम्बई ने २ करोड़ रु० छोड़ दिए हैं। निम्न सारिणी से पता लगेगा कि एक प्रान्त को आबकारी से क्या आय होती थी और दारूबन्दी के कारण एक महान् आदर्श का अनुसरण करते हुए उन्होंने अपनी कितनी बड़ी आय का परित्याग किया है :—

प्रान्तिक उत्पादबलि (एक्साइज) की आय
(लाख रुपयों में)

प्रान्त	१९३८-३९	१९४५-४६	१९४९-५० बजट
मद्रास	३.७२	१९.८०	४००
बम्बई	२.९०	८.९१	४.९५
युक्तप्रान्त	१.३३	५.९५	५.९०
विहार	१.२०	४.६२	४.००
मध्यप्रान्त	.६४	२.४४	१.७८
उड़ीसा	.३३	.८८	१.२५

दारूबन्दी का परीक्षण मद्रास और बम्बई में ही पूरी शक्ति के साथ किया जा रहा है। इसलिए इन दोनों प्रान्तों को ही आय का एक बड़ा स्रोत छोड़ देना पड़ा है।

एकरूपता और एकसदृशता

आय-व्यय और नवीन करों की दृष्टि से प्रान्तिक बजटों में एकरूपता और एकसदृशता है। कुछ प्रान्तों की शरणार्थी समस्या और अन्न संकट ने सब प्रान्तों के राजस्व को प्रभावित किया है। रिलीफ और पुनर्वासन पर पश्चिमी बंगाल दो वर्षों में १० करोड़ और मध्यप्रान्त ३.२७ करोड़ रु० व्यय कर चुका है। अन्न-सहायता और 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन को सफल बनाने में बम्बई ८॥ कोटि, मध्यप्रान्त ४॥ करोड़ रु०, बिहार ८९ लाख रु० (अधिक अनाज उपजाओ आन्दोलन) व्यय कर रहे हैं। पुलिस और ग्राम शासन का व्यय बढ़ा है। पूर्वीय पंजाब की पुलिस का व्यय संयुक्त पंजाब के पुलिस-व्यय से भी अधिक है। बम्बई के अर्थमंत्री ने भी पुलिसव्यय की वृद्धि पर चिन्ता प्रकट की है। यथा:—

	परिमाण (करोड़ रु० में)	आय का प्रतिशत
१९४५-४६	३.१०	८.९
१९४६-४७	४.९२	१२.२
१९४७-४८	५.७२	१३.१
१९४८-४९ (संशोधित)	६.८६	१३.५
१९४९-५० (बजट)	७.०२	१४.४

प्रान्तों के आय के मुख्य स्रोतों पर निम्नसारिणी से अच्छा प्रकाश पड़ेगा :—

प्रान्तिक आय के मुख्य स्रोत
(लाख रुपयों में)

प्रान्त	भूमिआगम	उत्पादबलि (एक्साइज)	बिक्री-कर
युक्तप्रान्त	७०६.६	५९०.३	६००
मद्रास	८२२.४	४०.०	१२२५
बम्बई	३९६.९	४९४.९	६८३
पश्चिमी बंगाल	१७८.७	५९६.५	४००
बिहार	१३७.०	४००.०	२६५
मध्यप्रान्त	३४०.०	१७८.३	१७५
पूर्वीय पंजाब	१६१.७	२०९.२	[illegible]५
आसाम	१६२.३	६३.२	२०
उड़ीसा	५४.१	१२५.०	५७

इससे प्रकट है कि भविष्य में प्रान्तों की आय का मुख्य स्रोत भू-आगम और उत्पादबलि न होकर बिक्री-कर होगा। प्रान्तों के आगत व्यय पर निम्न सारिणी से प्रकाश पड़ेगा :—

प्रान्त	सुरक्षा-व्यय (करोड़ रु० में)	आबादी के प्रति व्यक्ति (रु० में)	विकासीय व्यय (क० रु० में)	आबादी के प्रति व्यक्ति (क० रु० में)
युक्तप्रान्त	१३.९	२.५	२२.७	४
मद्रास	१४.५	३	२२.५	४.५
बम्बई	११.४	५	१८.६	८
पश्चिमी बंगाल	८.५	४	१२.६	६
बिहार	६.१	२	६.९	२
मध्यप्रान्त	४.४	२.५	.२.४	३
पूर्वीय पंजाब	५.०	४	५.०	४
आसाम	१.५	२	३.१	४
उड़ीसा	१.६	२	२.०	२.५

बढ़ता व्यय—

सुरक्षा-व्यय में पुलिस, जेल, आम शासन और न्याय-प्रबन्ध का व्यय सम्मिलित हैं। खेती, शिक्षा, सिंचाई, स्वास्थ्य, चिकित्सा, पशुचिकित्सा, वैज्ञानिक विभाग, विकासीय व्यय के अन्तर्गत हैं। निस्सन्देह विकासीय व्यय बढ़ा है। पर सुरक्षा-व्यय भी बढ़ा है। ३१ मार्च १९५० को समाप्त होनेवाले ग्यारह वर्षों की तुलना करें तो हम निम्न परिणाम पर पहुँचते हैं :—

निर्देशिका संख्या

(१९३८-३९ का व्यय = १००)

कुल आयगत व्यय =	३४०
सुरक्षा-सर्विस व्यय =	२६०
समाज-सर्विस व्यय =	४११

सुरक्षा-सर्विस का व्यय घटा है। कुल आय में उसका प्रतिशत भी घटा है। पर आम शासन-प्रबन्ध का व्यय बहुत बढ़ गया है। यह बढ़ता व्यय कितना चिन्ताजनक है, इसका निम्न सारिणी से पता लगेगा :—

आम शासन-प्रबन्ध के व्यय की दिशा

प्रान्त	१९३८-३९ = १००		१९४५-४६ = १००
	१९४५-४६	१९४९-५०	१९४९-५०
मद्रास	१५५	२५४	१६४
बम्बई	१९८	३१३	१५८
युक्तप्रान्त	१५०	३३७	२२४
बिहार	१४०	२५७	१८३
मध्यप्रान्त	१४५	२१७	१५०
उड़ीसा	१४०	२४६	१७५

१९४५-४६ युद्ध का अन्तिम वर्ष था। उसकी तुलना में भी खर्च चढ़ा है। शेष तीन प्रान्तों की स्थिति, जिनका अंग-भंग हुआ है—इस विषय में इस प्रकार है:—

००० रुपयों में

नाम प्रान्त	१९३८-३९	१९४५-४६*	१९४९-५०
पश्चिमी बंगाल	१५६१२	२८६३४	२२१७२
पूर्वी पंजाब	११७६२	२०८४६	१५००८
आसाम	३४३८	५७८३	६६६६

१९४५-४६ के बाद के चार वर्षों में प्रान्तों का साधारण शासन-व्यय आशा के विपरीत १९४९-५० में इस प्रकार बढ़ गया है :—

	प्रतिशत
बम्बई	१२४
बिहार	८३
उड़ीसा	७५
मद्रास	६४
बंगाल	५८
मध्यप्रान्त	५०

आसाम संयुक्त आसाम की १९४५-४६ की कुल आय से १५ प्रतिशत अधिक व्यय कर रहा है। समाज-सेवा-विभागों का खर्च १९३८-३९ की तुलना में २५-३० प्रतिशत बढ़ा है। नीचे की सारिणी में प्रान्तों का राष्ट्र-निर्माण के विभागों में व्यय और आबादी में प्रति व्यक्ति व्यय दिखाया गया है। यथा :—

*अविभक्त भाग के आँकड़े

राष्ट्र-निर्माण के विभागों पर प्रान्तों का व्यय

प्रान्त	वर्ष	शिक्षा (१) कुल व्यय का प्रतिशत	प्रति व्यक्ति व्यय रु०	आ०	पा०	चिकित्सा (२) कुल व्यय का प्रतिशत	प्रति व्यक्ति व्यय रु०	आ०	पा०	खेती (३) कुल व्यय का प्रति०	प्रति व्यक्ति व्यय रु०	आ०	पा०	उद्योग कुल व्यय का प्रतिशत	प्रति व्यक्ति व्यय रु०	आ०	पा०	
बम्बई	१९३८-३९	१५	०	१५	०	६	०	६	०	२	०	९	०	१	०	१	०	
	१०४९-५०	१८	३	१२	०	७	१	६	०	९	१	१३	०	१	०	४	०	
पश्चिमी	१९३८-३९*	१२	०	४	०	८	०	३	०	३	०	१	०	१	०	१	०	
बङ्गाल	१९४९-५०	९	१	५	०	१२	१	१५	०	९	१	५	०	४	०	९	०	
												...		...		...		
युक्त-	१९३८-३९	१६	०	६	०	५	०	२	०	५	०	२	०	१	०	१	०	
प्रान्त	१९४९-५०	१४	१	५	०	६	०	९	०	११	१	१	०	२	०	३	०	
						...		...		...		...		...		..		
मद्रास	१९३८-३९	१६	०	९	०	८	—०	४	०	३	०	२	०	२	०	१	०	
	१९४९-५०	१७	१	१२	०	६	०	११	०	४	०	७	०	५	०	८	०	
पूर्वी	१९३८-३९*	१४	०	९	०	६	०	४	०	६	०	४	०	२	०	१	०	
पञ्जाब	१९४९-५०	८	१	६	०	३	०	९	०	५	०	१५	०	१	०	३	०	(अ)
विहार	१९३८-३९	१४	०	३	०	७	०	२	०	४	०	१	०	२				
	१९४९-५०	७	०	५	०	१०	०	८	०	७	०	५	०	२	०	१	०	(अ)
		...		...		...		...		...		...		...				
मध्य-	१९३८-३९	१२	०	५	८	५	०	२	०	४	०	२	०	१				
प्रान्त	१९४९-५०	१५	१	९	०	५	०	८	०	७	०	१२	०	१	०	१	०	(अ)
		...		...		...		...										
आसाम	१९३८-३९	१२	०	६	०	८	०	४	०	३	०	१	०	१				
	१९४९-५०	१३	१	११	०	८	०	१५	०	९	१	२	०	१	०	३	०	(अ)
		...		...		...		...										
उड़ीसा	१९३८-३९	१४	०	५	०	६	०	२	०	३	०	१	०	१				
	१९४९-५०	९	०	१५	०	७	०	१०	०	८	०	१२	०	२	०	३	०	

(१) वैज्ञानिक विभाग सम्मिलित है, (२) सार्वजनिक स्वास्थ्य भी अन्तर्गत है, (३) पशु-चिकित्सा सहोद्योग और ग्रामोद्धार भी सम्मिलित हैं, (...) ०·५ प्रतिशत से कम, * विभाजन से पहले, (अ) * छः पाई से कम।

इससे स्पष्ट है कि कुल प्रान्तों में शिक्षा का भाग कम हो गया है, यद्यपि प्रति व्यक्ति खर्च बढ़ गया है। खेती के भाग में वृद्धि हुई है। पर उद्योग का कुल खर्च में और प्रति व्यक्ति खर्च में सब प्रान्तों में कमी आई है। बम्बई को छोड़कर वार्षिक प्रतिव्यक्ति व्यय कोई प्रान्त १ रु० ९ आना से अधिक नहीं कर रहा है। शिक्षा में यह १ रु० १३ आने है, चिकित्सा और स्वास्थ्य में यह १ रु० १३ आना है और खेती में यह केवल ९ आना ही है। शिक्षा के क्षेत्र में मद्रास सरकार ने हरिजनों की शिक्षा सर्वथा निःशुल्क कर दी है। यह रियायत प्रथम श्रेणी से लेकर एम० ए० तक के लिए दी गई है।

युद्धोत्तर योजनाएँ

प्रान्तिक सरकारें युद्धोत्तरकालीन योजनाओं में बहुत रस ले रही हैं। १९४४ में ख्याल था कि युद्धोत्तर योजनाओं को पूरा करने के लिए चार साल बाद ५०० कोटि रु० मिल सकेगा। इसमें से प्रान्तों को आधा भाग मिलता। पर एक शर्त थी। केन्द्रीय गवर्नमेंट से वे

जितनी राशि पाएँगे, उतनी ही मात्रा में अपनी ओर से लगाएँगे। पर ये आशाएँ धूल में मिल गईं। देश-विभाजन के बाद भारत सरकार ने सारी परिस्थिति का विवेचन किया और प्रान्तों को सूचित किया कि २०३.७८ करोड़ रु० प्रान्तों को युद्धोत्तर योजनाओं के लिए मिल सकता है। १९४८-४९ से यह भी निर्णय हुआ कि केन्द्रीय गवर्नमेण्ट-द्वारा स्वीकृत अधिकतम योजना-व्यय की मर्यादा के अन्दर प्रान्त जितना खर्च करेंगे, उसका आधा केन्द्रीय सरकार देगी। १९४८-४९ में प्रान्तों को २० कोटि रु० अनुदान दिया गया था पर बाद में वह कम करके १८ कोटि रु० कर दिया गया। यह मुद्रास्फीति को रोकने के लिए किया गया था। असल बात यह नहीं कि विकास-योजनाओं पर कितना खर्च किया गया, पर यह है कि जो कुछ खर्च किया जाए, वह योजना-पूर्वक और पूर्ण विवेक से किया जाए। १९४७-४८ में २०-३० कोटि रु० केन्द्र से प्रान्तों को विकास-योजनाओं के लिए अनुदान दिया गया। प्रान्तों ने भी लगभग इसी मात्रा में खर्च किया। प्रश्न यह है कि इस भारी राशि में किए गए खर्च का फल क्या हुआ? क्या उत्पादन में वृद्धि हुई? अब तक की ज्ञात बातों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि उत्पादन बढ़ा है। अन्न-उपजाओ आन्दोलन के होते हुए भी खेती की पैदावार आज भी युद्ध-पूर्व से कम है। अकेले बम्बई प्रान्त ने सस्ता अनाज जनता को देने के खातिर अन्न-सहायता में १६ करोड़ रु० खर्च किए हैं, जिसमें से १३ करोड़ रु० केन्द्र ने अनुदान किया है। अन्य प्रान्तों की भी यही स्थिति है। १९४८-४९ और १९४९-५० में क्रमशः ३३ कोटि रु० केन्द्रीय आय से अन्न-सहायता में दिए गए हैं। प्रान्तों की ओर से इसका एक-चौथाई खर्च किया जाएगा। प्रान्तों की प्रवृत्ति यह दीखती है कि केन्द्र से योजनाओं को पूर्ण करने के लिए जितनी रकम देने का वचन दिया गया है, वह सारी-की-सारी किसी तरह ले ली जाए। इसी विचार से कुछ प्रान्तों ने कुछ विकास-योजनाएँ आयगत लेखे के अन्तर्गत बनाई हैं, जो साधारणतः पूँजीगत लेखे में बनाई जानी चाहिए थीं। मद्रास के अर्थमन्त्री ने तो स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार किया है कि युद्धोत्तर योजनाएँ और अधिक अनाज उपजाओ आन्दोलन को इस वर्ष बजट में इसी कारण अधिक राशि दी गई है, जिससे केन्द्र से स्वीकृत ५ करोड़ रु० का पूरा-का-पूरा अनुदान मिल सके।

प्रान्तों का जितना ध्यान अपना खर्च बढ़ाने की ओर है, उतना खर्च घटाने और मितव्ययिता की ओर नहीं है। उन्होंने केन्द्र-द्वारा दिए गए इस सुझाव की भी अवहेलना की है कि जमींदारी-उन्मूलन, दारूबन्दी, घुड़दौड़ पर रोक आदि सामाजिक और आर्थिक सुधार धीरे-धीरे क्रमिक रूप से किए जाएँ और पुनर्निर्माण और विकास की योजनाओं के व्यय की भली-भांति परीक्षा की जाए और अनावश्यक व्यय रोका जाए। केन्द्रीय सरकार ने भी इस सम्बन्ध में प्रान्तों के सामने कोई उत्तम आदर्श नहीं रखा है। अतः केन्द्र प्रान्तों को दोष नहीं दे सकता।

कुछ योजनाएँ

प्रेसीडेण्ट विल्सन का कहना है कि राजस्व एक महान् नीति है। (१) शासन-प्रबन्ध में मितव्ययिता करने की आवश्यकता और (२) औद्योगिक साहसों को महत्त्व प्रदान किया गया है। मद्रास-गवर्नमेण्ट के बजट में ६० लाख रु० तक स्टाफ में कमी करने, यात्रा व अन्य भत्तों में कमी करने, २५ लाख रु० सचिवालय के व्यय में कमी करने और २५ लाख रु० दफ्तरी व्यय में कमी करने का प्रस्ताव किया गया है। बम्बई गवर्नमेण्ट ने छटनी कमेटी की मई १९४८ में दी गई रिपोर्ट के अनुसार कार्य करने का वचन दिया है। मध्यप्रान्त में कमिश्नरों का अन्त कर दिया गया है। स्व० अ० गोखले कमिश्नरों को शासन-रथ का पाँचवाँ पहिया कहा करते थे। राग्लैण्ड-कमेटी ने इनकी तुलना 'पोस्टआफिस' से की थी, जो सार्वजनिक कार्य में विलम्ब करा देते हैं। युक्तप्रान्त में कमिश्नरों की संख्या आधी कर दी गई है। यात्रा-भत्ता, दफ्तरी व्यय, पुलिस और सूचना-विभाग का व्यय घटाने का आश्वासन दिया गया है।

मद्रास गवर्नमेण्ट ने सिंधरी में खुल रही सेण्ट्रल फर्टीलाइजर फैक्टरी में २६ लाख रु० के शेयर लेने का निश्चय किया है। फर्टीलाइजर एण्ड केमीकल्स, लि० में और २५ लाख रु० के शेयर खरीदे हैं। आंध्रपेपर

मिल्स, लि० को पिछले साल मद्रास गवर्नमेंट ने २५ लाख रु० में खरीदा था। युक्तप्रान्त की सरकार अपनी अलग सीमेंट फैक्टरी खोल रही है। यह पिपरी में खोली जाएगी। नवम्बर में सम्भवतः यह खुल जाएगी। स्विस विशेषज्ञ नियुक्त किया गया है, जो रेडियो बल्ब, वैज्ञानिक उपकरण और अन्य उपकरणों को तैयार करने के विषय में परामर्श और सहायता देगा। मध्यप्रान्त की सरकार ६०२.४३ लाख रु० उद्योगों में लगा रही है। इसमें से नेशनल न्यूज़ प्रिंट एण्ड पेपर मिल्स में ४० लाख रु० लगाया गया है, न्यू हिन्दुस्तान सीमेंट में २५ लाख रुपया लगाया गया है और कोरबा और काम्परी कोल खानों को खोलने में १५ लाख रु० लगाया गया है। उड़ीसा जर्मन और अमरीकी विशेषज्ञों की सहायता से सिन्थेटिक फ्युल (रासायनिक तेल) बनाने की सोच रहा है, ब्रिटिश विशेषज्ञों की सहायता से एक फैक्टरी ट्रैक्टर (लोहे के हल) बनाने का विचार कर रहा है, ब्रिटिश फर्म के सहयोग से मिश्रित और इस्पात फैक्टरी स्थापित कर रहा है और डालमिया कम्पनी के साथ मिलकर सीमेंट फैक्टरी खोलने का विचार कर रहा है। आसाम सरकार ने प्रान्त के पाँच मुख्य उद्योगों का राष्ट्रीकरण करने का निश्चय किया है। इसके अतिरिक्त मध्य परिमाण के अनेक उद्योगों में साझा किया है।

एक स्तर पर नहीं

प्रान्तों के राजस्व को देखने से एक बात स्पष्ट है कि सब प्रान्त आर्थिक दृष्टि से एक स्तर पर नहीं हैं। रियासतों के आ जाने से यह अन्तर अधिक बढ़ गया है। मद्रास सरकार आय के नवीन स्रोत ढूँढ़ रही है। मगर उड़ीसा नाज़ुक आर्थिक स्थिति का अनुभव कर रहा है और सोच रहा है कि किसी भी समय आर्थिक संकट आ सकता है। बिहार का बजट बचत का है पर उसके अर्थमन्त्री की घोषणा है कि "आर्थिक दृष्टि से बिहार भारत भर में सबसे अधिक गरीब है। प्रति-मील प्रान्तों की आय को देखते हुए यह बात गलत नहीं कही जा सकती। यथा :—

प्रान्त	प्रति मील आय (रु० में)
बिहार	११६०६
उड़ीसा	६७७३
मद्रास	१०१५०
बम्बई	१८५६०

आसाम के अर्थमन्त्री ने असन्दिग्ध शब्दों में स्वीकार किया है कि जनता की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने की शक्ति प्रान्त में नहीं है। पूर्वी पंजाब ने यद्यपि अपना घाटा इस विश्वास पर पूरा नहीं किया है कि पश्चिमी पंजाब से मिलनेवाली राशि से पूरा हो जाएगा पर साहस के साथ कहा है कि प्रान्त की आन्तरिक स्थिति स्वस्थ है और कोई चिन्ता की बात नहीं है। युक्तप्रान्त का बजट इस बात का प्रमाण है कि प्रान्त समृद्धि के पथ पर अग्रसर हो रहा है। उसका बजट इस बारे में अनुपम है कि उसने कोई नया कर इस वर्ष नहीं लगाया है, और इसके साथ ही समाज का कोई आवश्यक खर्च छोड़ा भी नहीं है। मध्यप्रान्त की आर्थिक स्थिति साधारणतः सन्तोषजनक कही जा सकती है। इसने अपना घाटा नया कर लगाकर नहीं, बल्कि विद्यमान करों की दर बढ़ाकर बचत में परिणत कर लिया है। पश्चिमी बङ्गाल का बजट मामूली घाटे का है, यदि उसकी कठिनाइयों पर विचार किया जाए। युद्ध के कारण प्रान्त को जो भार सहना पड़ा है, उसके चिह्न अब भी मौजूद हैं। फिर विभाजन और शरणार्थी-समस्या ने भी उसको परेशान किया है। इस पर भी प्रान्त की आर्थिक स्थिति साधारणतः सन्तोषजनक कही जा सकती है। यदि देश में आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो जाए, कम्युनिस्टों का आतङ्क समाप्त हो जाए और देश के सब दल और धर्म पार्लिमेंटरी और वैधानिक पथ का अवलम्बन कर लें, तो पुलिस और शासन-प्रबन्ध-व्यय कम हो सकता है और जनता की आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति पर और व्यय किया जा सकता है। पर इसके लिए देश के अन्दर पूर्ण शान्ति और व्यवस्था का होना और श्रम और पूँजी के हितों में सामंजस्य का होना आवश्यक है। कम्युनिज्म का आतङ्क आज जिस रूप में फैल रहा है, उसको देखते हुए शासन और पुलिस-व्यय में कमी की आशा नहीं की जा सकती। शान्ति के बिना उत्पादन भी पूर्ण क्षमता की स्थिति तक नहीं बढ़ाया जा सकता है। यदि इस सत्य को जनता अनुभव करे तो शासन-व्यय में मित-व्ययिता सम्भव है।

दार्जिलिंग में डा० काटजू



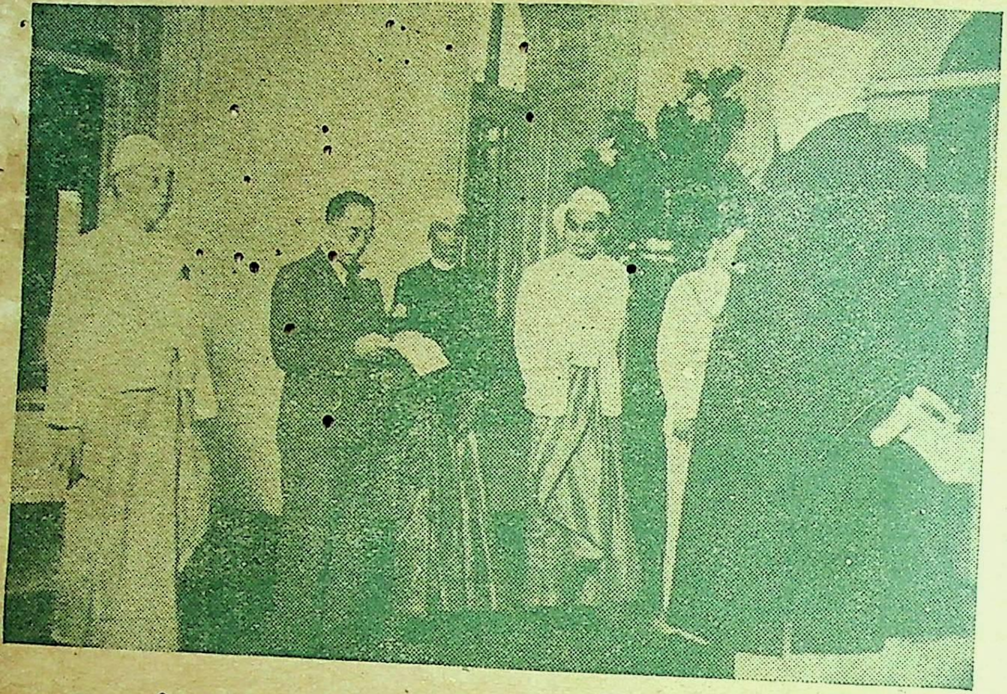
दार्जिलिंग की अपनी पिछली यात्रा में बंगाल के गवर्नर माननीय डा० कैलाशनाथ काटजू वहाँ के सामाजिक सेवा-कार्य की प्रगति का निरीक्षण कर रहे हैं।



सम्मानित उपाधि

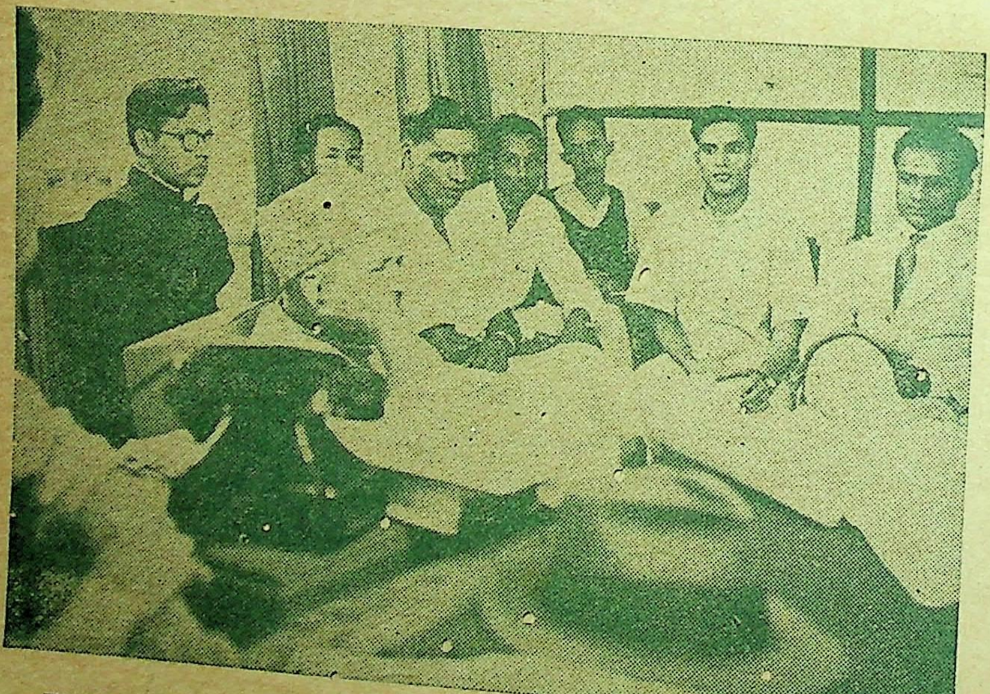
मांट्रियल के विश्वविद्यालय ने प्रोफेसर प्रमथनाथ बनर्जी को 'डाक्टर आफ ला' की उपाधि देकर सम्मानित किया। चित्र में प्रो० बनर्जी कनाडा के गवर्नर जनरल लार्ड एलेक्जेण्डर के साथ दिखाई दे रहे हैं।

बर्मा में पाक-राजदूत



बर्मा-संघ के प्रधान पाक-राजदूत के प्रमाण-पत्र स्वीकार कर रहे हैं।

पाक-राजदूत बर्मी पत्रकारों के बीच



प्रमाण-पत्र उपस्थित करने के बाद बर्मा-स्थित पाकिस्तानी राजदूत बर्मा के पत्रकारों के सम्मुख वक्तव्य दे रहे हैं।

समानान्तर रेखाएँ

श्री शान्तिनन्दन, एम० ए०

दूसरे दिन गोरों की पलटन आ गई। सारे शहर में कर्फ्यू की आज्ञा हो गई। ताजिए अभी तक उसी स्थान पर रक्खे थे। बाजार में सन्नाटा छाया हुआ था। जो घर से बाहर निकलता, मारा जाता। गोरों की दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नहीं था। न जाने कितने हिन्दू मारे गए और कितने मुसलमान। नगर-निवासियों पर क्या बीती, यह वही बिचारे जानते थे। एक के घर आटा नहीं था तो दूसरे के घर लकड़ी नहीं थी। बच्चे दूध न मिलने से तड़प रहे थे। इतनी गर्मी में पानी का प्रबन्ध भी न हो सका। सारा शहर मुस्लिम लीग के सदर शेख मकसूद हुसेन को धिक्कार रहा था।

अड़तालीस घंटे पश्चात् कर्फ्यू खुला। केवल दिन में काम करने की आज्ञा थी। सप्ताह इसी तरह निकल गया। झगड़े की जाँच होने लगी। कुछ हिन्दू पकड़े गए और कुछ मुसलमान। कांग्रेस के प्रधान बलवन्तसिंह भी पकड़े गए। हिन्दू कहते थे कि सबसे पहले मस्जिद की ओर से ईंटें आनी आरम्भ हुईं। मुसलमान कहते थे कि चमारों के मुहल्ले में ढोलक बज रही थी।

मियाँ मकसूद हुसेन के पूर्वजों में लगभग दो सौ वर्ष हुए दो भाई थे। मुगल बादशाह को प्रसन्न करने के लिए छोटा भाई मुसलमान हो गया। बड़े भाई ने छोटे भाई की सुविधा के लिए अपने घर पास ही एक मस्जिद बनवा दी थी। वह उसी में पड़ा रहता था और उसके बाल-बच्चे अलग एक कोठरी में। दोनों भाइयों की मृत्यु होगई। छोटे भाई के बच्चे मुसलमान नहीं हुए थे परन्तु फिर भी बिरादरीवाले उनसे बचाव रखते थे। वैसे वे सदा बिरादरी के कामों में सम्मिलित होते थे। धीरे-धीरे उनके नाम मुसलमानों के से रक्खे जाने लगे, पर वे बिरादरी के कामों में अभी आठ-दस बरस पहले तक आते-जाते थे। छोटे भाई की सन्तान में से मियाँ मकसूद हुसेन और बड़े भाई की सन्तान में से बलवन्तसिंह हैं। जब से शहर में मुस्लिम लीग स्थापित हुई है तभी से मकसूद हुसेन और बलवन्त सिंह का परस्पर एक-दूसरे के घर आना-जाना बन्द है।

बलवन्तसिंह पकड़े तो गए पर मुसलमानों में भी उनके विरुद्ध गवाह नहीं मिल रहे थे। केवल मकसूद हुसेन गवाही को तैयार थे। बुड्ढे-बुड्ढे हिन्दू और मुसलमानों ने उन्हें समझाया कि बलवन्तसिंह के विरुद्ध गवाही मत देना पर वे न माने। कहने लगे, "बड़ी जात के लोग, ढोलक बजाएँ तो बजाएँ पर ये चमार, जो हमें देखकर अभी तक थर-थर काँपते थे, इतने बढ़ जाएँ कि इन्हें ताजियों के दिनों भी ढोलक बजाने की हिम्मत पड़ जाए। यह सब बलवन्तसिंह की ही कारस्तानी है, उन्होंने ही इन्हें सिर पर चढ़ाया है। नहीं तो भला इनकी इतनी हिम्मत? क्या शादी-ब्याह के लिए साल भर के और सब दिन मारे गए हैं, यही ताजियों के दिन छूटे हैं? अगर भाई साहब ने उन्हें नहीं सिखाया है तो वे खुद ही आकर क्यों नहीं कहते कि मैंने उन्हें नहीं सिखाया?"

अन्त में वही हुआ। कई व्यक्तियों को सजा हुई। हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। बलवन्तसिंह को भी क साल की सजा हुई।

न मियाँ मकसूद के घर पर विशेष सम्पत्ति थी और न बलवन्तसिंह के घर। बलवन्तसिंह के केवल एक ही लड़का था, नवलसिंह। इस समय इसकी उम्र १३ वर्ष की थी। किसी तरह दिन कटने लगे, इस आशा पर कि बलवन्तसिंह थोड़े दिनों में छुटकर आ ही जाएँगे। मियाँ मकसूद ने आते-जाते नवल को रोक-कर कई बार अकेले में पूछना चाहा, "बेटे, कोई तकलीफ तो नहीं है?" पर साहस न हुआ। एक बार मन में आया कि चलो, भाभी के पास चलकर माफी माँगें। रात में छिपकर घर तक पहुँचे भी पर अन्दर न घुस सके। सोचा, "किसी ने देख लिया तो?"

अन्त में एक दिन जेल से समाचार आया कि एका-एक बलवन्तसिंह की मृत्यु हो गई। लोग नवल के घर समवेदना प्रकट करने आने लगे। शहर के बूढ़े और जवान सभी की आँखों में आँसू थे। सभी के दिल में था, "मकसूद, तूने बुरा किया।"

नवल अपनी माता-सहित क्रिया-कर्म करने बरेली पहुँचा और तीन दिन में वहाँ से लौटकर आया।

आज लोग नवल के घर इकट्ठे हुए। सबको नवल के भविष्य की चिन्ता थी। घर में जो कुछ था, उसे इसी सहारे पर बेंच-बेंचकर माँ-बेटे खा गए थे कि बलवन्त सिंह के आने पर घर की दशा फिर ठीक हो जाएगी। अब किस आशा पर घर का व्यय चले? कोई कुछ कहता और कोई कुछ। सबके पास सान्त्वना, संतोष और धैर्य धारण करने के लिए पूर्व-परिचित शब्द थे, पर वास्तविक सान्त्वना, संतोष और धैर्य का मार्ग कोई भी न दिखा सका।

रात हो गई। रोना-पीटना समाप्त हुआ। सब अपने-अपने घर चले गए। अब घर में केवल दो ही प्राणी थे एक नवल और दूसरी उसकी विधवा माँ। किसी ने दर्वाजे की कुण्डी खटखटाई। रात के ग्यारह बजे थे। पहले तो नवल को डर लगा, पर माँ ने कहा, 'बेटे, अब डरोगे कब तक? अब तो रात में और दिन में, दुख में और सुख में सब काम तुम्हीं को करने पड़ेंगे। जाओ, देखो कौन है?"

नवल डरते-डरते किवाड़ खोलने गया। एक काला-सा भयानक मनुष्य खड़ा था। बोला, "बेटे', मैं बरेली जेल का सिपाही हूँ, छुट्टी लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। मरने से पहले बलवन्तसिंह ने यह डिब्बा दिया था और कहा था कि इसे घर पहुँचा देना। लो, इसे सम्हालकर रखना। मेरे आने की किसी को खबर न हो।"

दूसरे ही क्षण में सिपाही चल दिया और आँखों से ओझल हो गया। माँ-बेटे दोनों को उत्सुकता थी। न जाने डिब्बे में क्या है? बेटे ने चाहा कि अभी खोलकर देखा जाए, पर माँ ने सोचा न जाने इस डिब्बे में क्या छिपाकर छोड़ गए हैं। उसने उसे लड़के सामने न खोलना ही उचित समझा। बेटे को समझा-बुझाकर सुला दिया। बेटे के सो जाने पर माँ ने डिब्बा खोला—"अरे! ये तो नोट हैं, पूरे दो हजार के।"

बिचारी विधवा अपने पति की इस सुबुद्धि को याद कर-करके रोने लगी—"इतने रुपए उन्होंने जमा कहाँ से किए और फिर मुझसे छिपाए कैसे?"

सोचते-सोचते ध्यान आया, कहीं कांग्रेस के रुपए तो उन पर जमा नहीं और वही उन्होंने भेजे हो? प्रातःकाल नवल उठा। फिर वही प्रश्न, 'अम्मा, इस डिब्बे में क्या है?"

माँ ने उसके सामने फिर डिब्बा खोला। १००) के एक नोट था। बोली, "बेटे, पहले कांग्रेस के कार्यालय में जाकर तो पूछो कि उन पर कांग्रेस का कुछ रुपया तो नहीं चाहिए।" पर कांग्रेस कार्यालय से उत्तर मिला कि ठाकुर साहब पर कुछ भी नहीं चाहिए। बिचारी विधवा समझ गई, "कांग्रेस......मृत्यु......।" इसीलिए उन्होंने धीरे-धीरे रुपए जोड़े होंगे। मुझे इसलिए नहीं बताए क्योंकि वे मुझे सदा बहुत खर्चीला समझते थे।

मकसूद मियाँ के मकान पर भी उस दिन मुस्लिम लीगी जमा हुए। कोई साफ-साफ यह न कह सका कि "अच्छा हुआ।" मकसूद मियाँ ने कहा, "अल्लाह की शान है। कांग्रेसियों के हौसले पस्त हो गए हैं। कोई आदमी कांग्रेस का सदर बनने को तैयार नहीं। सब डरते हैं। हमारी फतह में कोई शक नहीं। किसी दिन इस सर जमीन पर मुस्लिम लीग का झण्डा लहराएगा।"

पास बैठे हुए काजी जी बोले, "हाँ, इसमें शक ही क्या है? तभी तो गांधी कायदे आजम की खुशामद करता फिरता है। अब देखें, बलवन्त के बीबी-बच्चों की मदद कौन करता है? जनाब, हिन्दू को रुपया प्यारा है और मुसलमान को मजहब। गांधी-नेहरू सबकी हालत मालूम है।"

सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए पीरजी बोले, "ताजियों की हतक करने का नतीजा तो यही होना चाहिए था।"

गहरी साँस लेकर मिर्जा जी बोले, "फिर भी बलवन्त की मौत बड़ी दर्दनाक हुई। वह काफिर था, इसमें कोई शक नहीं, पर वह मेरा बचपन का साथी था। उसके खूबसूरत लड़के पर वही झलक है, जो बलवन्त में बचपन में थी।"

मकसूद मियाँ ने कहा, "अच्छा अभी आया। जरा जनानखाने में से अखबर उठा लाऊँ।" यह कहकर मकसूद मियाँ अन्दर चले गए।

(२)

भारत स्वाधीन हो गया। आज प्रत्येक नगर और प्रत्येक ग्राम में इसी कारण हर्षोत्सव बनाए जा रहे हैं। स्थान-स्थान पर जुलूस निकल रहे हैं। हिन्दू और मुसलमान सब मिलकर प्रसन्नता के गीत गाते चले जा रहे

हैं। कल तक जो मकसूद मियाँ के साथ मुस्लिम लीगी होने का दम भरते थे, वे ही आज सबसे आगे हैं। पर मकसूद मियाँ की तबियत कई दिन से खराब है इसलिए वे इस जुलूस में शामिल न हो सके। जुलूस उनकी बैठक के सामने से होकर गुजरा।

कुछ मनचले जवानों ने चिल्लाकर कहा "ठाकुर बलवन्तसिंह की जय।"

जय का शब्द सुनकर अन्दर पलँग पर लेटे हुए मकसूद मियाँ रो पड़े। पास बैठा हुआ उनका लड़का मकबूल बोला "अब्बाजान, हिरास होने की क्या बात है? मुसलमान चुपचाप नहीं बैठ सकता।"

एक महीना बीत गया। आधी रात व्यतीत हो चुकी थी। एक साथ बड़े जोर का धड़ाका हुआ। सब लोग सोते से जाग गए। हर एक व्यक्ति अपने पड़ोसी से पूछने लगा, "क्या हुआ?" किसी ने डर के मारे कह दिया, "मुसलमान चढ़ आए।" बस फिर क्या था, चारों ओर से यही आवाज आने लगी, "मुसलमान चढ़ आए, मुसलमान चढ़ आए।" जवान और मजबूत आदमी घर से बाहर लाठी लेकर निकल पड़े और लगे चिल्लाने, "बजरंग बली की जय, महात्मा गांधी की जय, हर हर महादेव।" कई मिनट प्रतीक्षा की पर किसी भी ओर से आक्रमण होता दिखाई न दिया। कुछ मनचले जवान आगे बढ़े। मुसलमानों के मुहल्ले तक पहुँचे। वहाँ भी शोर था, "हिन्दू चढ़ आए, हिन्दू चढ़ आए।"

हिन्दू जवानों ने दूर से देखा, सैकड़ों मुसलमान लाठियाँ लिए खड़े हैं और चिल्ला रहे हैं, "अल्लाहो अकबर, मुस्लिमलीग ज़िन्दाबाद, पाकिस्तान जिन्दाबाद।"

इतने में पुलिस आती हुई दिखाई दी। सब भाग-भागकर अपने-अपने घरों में छिप गए, न कोई जयवाला रहा न जिन्दाबादवाला। लगभग आध घंटे पश्चात् नवल के एक पड़ोसी ने कहा, "फसाहत हुसैन थानेदार मकसूद के घर में हैं।"

कुछ मनचले जवान फिर घर से निकले और घटना-स्थल पर पहुँचे। ज्ञात हुआ कि मकबूल एक तोप को ठीक कर रहा था। गलती से बारूद में आग लग गई और अपनी तोप से मरनेवाला वह स्वयं ही सबसे पहला व्यक्ति था। पास-पड़ोस के तीन और लड़के भी उसके साथ ही जलकर भस्म हो गए थे। कई एक जख्मी हुए थे। उनमें कुछ भाग गए! दो रह गए थे, उन्हें पुलिस पकड़कर ले गई। साथ में तोप और बारूद भी पुलिस ले गई।

थानेदार साहब का यह ख्याल था कि इसमें मकसूद मियाँ का हाथ नहीं था। यह केवल लड़कों की शरारत थी। सचमुच मकसूद मियाँ अपने दूसरे मकान में सोते हुए पाए गए। मकबूल मर ही चुका था, अब उसे इससे अधिक और क्या सजा मिलती?

प्रतिदिन खबरें फैला करती थीं कि लाहौर में मुसलमानों ने हिन्दुओं की स्त्रियों को नंगी करके उनका जुलूस निकाला। कोई कहता कि ९० हिन्दू स्त्रियाँ अपनी इज्जत बचाने के लिए एकदम कुएँ में कूद पड़ीं। किसी ने कहा कि माँ-बाप के सामने अमुक स्थान पर बेटियों पर अत्याचार हुए। किसी ने कहा बच्चे मारे गए; किसी ने कहा बूढ़े मारे गए। जितने मुँह उतनी ही बातें थीं। जोश आता था कि हम भी यहाँ हिन्दुस्तान में इन मुसलमानों से बदला लें। यदि पाकिस्तान मुसलमानों के लिए है तो हिन्दुस्तान भी हिन्दुओं के लिए है। कुछ लोगों ने प्रयत्न भी किया, आस-पास के जाट चढ़कर भी आए पर कुछ हो न सका।

नवल ने इसी वर्ष एम० ए० की परीक्षा पास कर ली थी और स्थानीय विद्यालय में अध्यापक हो गया था। अभी चार-पाँच महीने हुए, उसका विवाह भी हो गया है।

मूसलाधार पानी बरस रहा था। नवल अभी विद्यालय के खेलों से वापिस नहीं आया था। अँधेरा हो चला था। मकसूद मियाँ चारों ओर देखते हुए चले आ रहे थे। नवल की माँ भी दरवाजे पर नवल की प्रतीक्षा में खड़ी थी। उन्हें देखकर मकसूद मियाँ बोले, "भाभी, अन्दर चलो, तुमसे कुछ कहना है।"

अब नवल की माँ ने पहचाना कि यह मकसूद है। कुछ हिचकिचाई पर न जाने क्यों अन्दर चली आई। उसके पीछे-पीछे मकसूद मियाँ भी चले आए। अन्दर आकर बोले, "भाभी, भाई साहब की और मेरी लड़ाई थी। तुमसे और नवल से तो लड़ाई नहीं थी। मुझे तुमने नवल की शादी में क्यों नहीं बुलाया?"

भाभी इसका उत्तर दे ही क्या सकती थी, केवल यही कहकर चुप रह गई कि "भैया, गलती हुई।"

मकसूद मियाँ ने कहा, "नवल कहाँ है ? उसे मैं बधाई देने आया हूँ, और यह लो बहू की मुँहदिखाई। लड़ाई चाहे जितनी हो जाए पर बिरादरी का काम तो करना ही पड़ता है।"

यह कहते-कहते उसने दो छोटे-छोटे डिब्बे भाभी के हाथ पर रख दिए। भाभी बिचारी कुछ भी न बोल सकी। इस हत्यारे के सामने 'हाँ' और 'ना' दोनों ही कठिन हैं। कहना चाहती थी कि "मकबूल की सुनकर बहुत दुख हुआ," पर कह न सकी। मकसूद मियाँ जल्दी बाहर चले गए।

थोड़ी ही देर में नवल आया। माँ ने सारी कथा सुनाई और वे दोनों डिब्बे दिखलाए। कहने लगी, "न जाने इन दोनों डिब्बों में क्या है ? साँप, बिच्छू, संखिया, न जाने क्या है !"

नवल ने कहा, "अम्मा ऐसा ही एक डिब्बा जेल का सिपाही दे गया था।"

माँ ने धीरे-धीरे कहा, "हाँ बेटा, था तो ऐसा ही। लाओ, फिर इसे खोल ही लें।"

पहले बहू का डिब्बा खोला गया। सोने का जड़ाऊ हार था। दूसरे में एक पत्र और कुछ नोट निकले। पत्र में लिखा था—

बेटे नवल,

मकबूल के मरने के बाद अब दुनिया में सिवा तुम्हारे मेरा कौन है ? जो कुछ मेरा है, वह सब तुम्हारा है। तुम्हारी राय हो तो कभी दो रोटी दे दिया करना।

—मकसूद

माँ और बेटे खत पढ़ लेते थे और रो लेते थे। दोनों की आँखों में आँसू एक से ही थे पर शायद माँ के आँसुओं का कारण कुछ और था और बेटे का कुछ और।

(३)

डेढ़ महीना पाकिस्तान में रहकर मकसूद मियाँ हिन्दुस्तान को लौट आए। उनके कुछ साथी पाकिस्तान में ही रह गए पर वे वहाँ न रुक सके। साथियों ने बहुतेरा समझाया पर उनका मन वहाँ न लगा। जाते समय वे अपना और मुस्लिम लीग का सात हजार रुपया अपने साथ ले गए थे पर कहते हैं कि उसे पठानों ने लूट लिया। वे घर वापिस आ गए हैं और अपने उसी घर में पड़े रहते हैं।

ऋग्वेद की ऋक्संख्या

श्री युधिष्ठिर मीमांसक

[गताङ्क से आगे]

स्वामी दयानन्द सरस्वती और ऋक्संख्या

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ऋग्वेदभाष्य के उपोद्घात में ऋग्वेद की ऋक्संख्या का उल्लेख किया है। उन्होंने प्रति मण्डल जो ऋक्संख्याएँ लिखी हैं, उनका योग क्रमशः निम्न प्रकार है—

१६७६+४२६+६१७+५८९+७२७+७६५+८४१+१७२६+१०९७+१७५४ ॥ १०५२१

इस प्रतिमण्डल ऋक्संख्या में लेखक के प्रमाद से दो अशुद्धियाँ हुई हैं। प्रथम—ऋग्वेद के आठवें मण्डल के २४वें सूक्त की मन्त्रसंख्या २६ के स्थान में ३६ लिखी है, अतएव उसका योग भी १७१६ के स्थान में १७२६ हो गया है। अर्थात् यहाँ १० संख्या अधिक गिनी गई है। वस्तुतः इस मण्डल की ऋक्संख्या १७१६ होनी चाहिए। द्वितीय—नवम मण्डल की प्रतिसूक्त लिखित संख्या के योग में ११ संख्या न्यून है। प्रतीत होता है योग करते समय किसी सूक्त की ११ ऋचाएँ गिनने से रह गईं। अतः इस मण्डल की ऋचाओं का योग १०९७ के स्थान में ११०८ होना चाहिए। इस प्रकार यदि अष्टम और नवम मण्डल के योग को शुद्ध कर लिया जाए तो पूर्णयोग १०५२२ होगा।

यह योग मैक्समूलर के ऋक्संस्करण के अनुसार है। हम पूर्व लिख चुके हैं कि मैक्समूलर के ऋक्संस्करण में प्रथम मण्डल की ६० नैमित्तिक द्विपदाएँ ३० चतुष्पदा बनाकर छापी गई हैं (शेष ८० द्विपदारूप में ही छापी हैं)। अतः १०५२२ संख्या में प्रथम मण्डलस्थ द्विपदाओं की शेष ३० संख्या और सम्मिलित कर ली जाए तो सर्वयोग १०५५२ होगा। इसमें नित्य नैमित्तिक द्विपदाएँ तथा बालखिल्य ऋचाएँ सम्मिलित हैं। यह संख्या ऋक्सर्वानुक्रमणी, उसके टीकाकार जगन्नाथ, चरणव्यूहटीकाकार महीदास और छन्दः-संख्या-परिशिष्ट की दी हुई ऋक्संख्या से पूर्णतया मिल जाती है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्रतिमण्डल ऋक्संख्या का पृथक्-पृथक् उल्लेख करके अन्त में समस्त ऋचाओं का योग अक्षरों और अङ्कों दोनों में १०५८६ लिखा है। इस अशुद्धि का कारण भी लेखक-प्रमाद ही है। प्रतीत होता है प्रतिलिपि करते समय लेखक ने अङ्कों में लिखी हुई १०५२१ संख्या में २ को ८ और १ को ६ पढ़ लिया होगा और पूर्णयोग १०५८६ लिख दिया होगा।

श्री० पं० भगवद्दत्त जी ने "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" के प्रथम भाग पृष्ठ १३७ पर स्वामी दयानन्द सरस्वती की १०५२१ और १०५८६ दोनों संख्याओं में सामञ्जस्य दर्शाने का प्रयत्न किया है। उनका लेख निम्न प्रकार है—

"स्वामी दयानन्द सरस्वती की १०५२१ गणना में यदि नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं का आधा अर्थात् १४०/२ = ७० और इनमें से ऋ०.५।२४ की २ कम करके (जो पहले ही द्विगुणित हैं) ६८ जोड़ी जाएँ तो कुल संख्या १०५८६ हो जाती है।"

यद्यपि यह समाधान साधारण दृष्टि से पूर्ण संतोषजनक प्रतीत होता है। तथापि इस पर गहराई से विचारने पर इसमें दो भूलें उपलब्ध होती हैं। प्रथम—पण्डितजी ने उक्त समाधान करते समय इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि १०५२१ (१०५२२), संख्या में कितनी द्विपदाएँ द्विपदारूप में गिनी गई हैं और कितनी द्विपदाएँ चतुष्पदाएँ बनाकर आधी गिनी गई हैं। उन्होंने भी मैक्समूलर-सम्पादित ऋक्संस्करण या तदाश्रित अन्य संस्करण को ही प्रमाण मानकर सामञ्जस्य दर्शाने का प्रयत्न किया है। वस्तुतः जिस प्रकार उन्होंने ऋ० ५।२४ के दो मन्त्रों को, जिन्हें प्रथम ही द्विपदा मानकर ४ ऋचाएँ गिना गया है, पुनः द्विगुणित करने में छोड़ दिया। इसी प्रकार प्रथम और पञ्चम मण्डलातिरिक्त ७६ नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं को (जिन्हें मैक्समूलर के ऋक्संस्करण में द्विपदारूप में ही छापा है) भी पुनः द्विगुणित नहीं करना चाहिए था। केवल प्रथम मण्डल की द्विपदाएँ, जो ३० चतुष्पदा बनाकर छापी गई हैं, पुनः द्विगुणित करनी चाहिए थीं।

द्वितीय—पण्डित जी ऋ० ५।२४ के विषय में लिखते हैं—

"ऋग्वेद ५।२४ में दो ऋचाएँ हैं, वे द्विपदा हैं परन्तु ऋग्वेद में प्रथम के आगे १।२ और दूसरी के आगे ३।४ लिखा गया है अर्थात् ये पहिले ही द्विगुणित कर दी गई हैं।"

इस लेख में उन्होंने ऋग्वेद ५।२४ की मैक्समूलरीय संस्करण में यथामुद्रित दो ऋचाओं को द्विपदा लिखा है वह अयुक्त है। ये मन्त्र जिस रूप में छापे हैं, उस रूप में द्विपदा नहीं हैं। इन मन्त्रों का मुद्रित पाठ निम्न प्रकार है:—

"अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तम रयिं दाः॥१।२॥
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्याणो अघायतः समस्मात्।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः॥३।४॥

यहाँ प्रत्यक्ष ही दोनों मन्त्रों में चार-चार पाद विद्यमान हैं, अतः ये ऋचाएँ चतुष्पदा हैं। यदि इन्हें दो ऋचाएँ माना जाए तो वे द्विपदा नहीं हो सकतीं और यदि द्विपदा मानी जाएँ तो इन्हें दो के स्थान में चार ऋचाएँ मानना होगा। ऋक्सर्वानुक्रमणी में इन्हें चार द्विपदाएँ माना है। मैक्समूलर ने यहाँ भी प्रथम मण्डल के सदृश ४ द्विपदाओं को २ चतुष्पदा बनाकर छापा है, परन्तु सर्वानुक्रमणी-प्रतिपादित बन्धु आदि ४ ऋषियों का प्रतिद्विपदा-संबन्ध दर्शाने के लिए प्रथम मन्त्र के आगे १।२ और द्वितीय मन्त्र के आगे ३।४ संख्या छाप दी। अतएव इस संख्या से इन दो मन्त्रों

को द्विपदा मानकर प्रथम ही द्विगुणित समझना ठीक नहीं है। सम्भव है पण्डित जी को यह भ्रान्ति वेद-सर्वस्व पृष्ठ ६७ के लेख से हुई हो। पण्डित जी की इस भ्रान्ति में प्रो० मैकडानल भी सम्मिलित हो गए, यह हम आगे दर्शाएँगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती की १०५२१ और १०५८६ संख्या में कोई सामञ्जस्य नहीं बनता। वस्तुतः दोनों विभिन्न संख्याओं का कारण लेखक-प्रमाद ही है जैसा हम ऊपर दर्शा चुके हैं। इसीलिए स्वामी दयानन्द सरस्वती का सर्वयोग भी १०५२२ होना चाहिए।

प्रो० मैकडानल और ऋक्संख्या

प्रोफेसर मैकडानल ने स्वसम्पादित ऋक्सर्वानुक्रमणी की भूमिका पृष्ठ १७,१८ पर ऋग्वेद की ऋक्संख्या के विषय में कुछ विस्तार से लिखा है। उस लेख में प्रो० मैकडानल ने ऋग्वेद की ऋग्गणना में सबसे अधिक भूलें की हैं।

पहली भूल—मैकडानल ने प्रति छन्द ऋक्संख्या का निर्देश करके सर्वयोग १०४४२ लिखा है। इस प्रतिछन्द संख्या में द्विपदा ऋचाओं का योग १२७ है। प्रथममण्डल में ३१ द्विपदाएँ लिखी हैं। कात्यायनकृत सर्वानुक्रमणी के अनुसार प्रथम मण्डल के ६५-७० सूक्त तक ६१ द्विपदा ऋचाएँ हैं। इन ६१ द्विपदाओं में ७० वें सूक्त की ११ वीं ऋचा नित्य द्विपदा है, शेष ६० नैमित्तिक हैं। मैकडानल ने मैक्समूलर के ऋक्संस्करण के अनुसार ६१ ऋचाओं को ३१ गिन लिया। मैक्समूलर ने ६० द्विपदाओं को ३० चतुष्पदा बनाकर छापा है, यह हम पूर्व लिख चुके हैं। अतः मैकडानल की लिखी हुई ३१ द्विपदाओं में ३० चतुष्पदाएँ हैं और १ द्विपदा। आश्चर्य की बात तो यह है कि मैकडानल ने ऋक्सर्वानुक्रमणी का सम्पादन करते हुए प्रथम मण्डल के ६५-७० सूक्त तक ऋक्सर्वानुक्रमणी और मैक्समूलर-मुद्रित ऋग्वेद में प्रतिसूक्त ऋक्संख्या में भेद देखकर भी मैक्समूलर की द्विपदा ऋचाओं की मुद्रण-सम्बन्धी भयानक भूल का परिशोध नहीं किया। इससे भी अधिक आश्चर्य इस बात पर है कि उसने मैक्समूलर के ऋक्संस्करण में चतुष्पदा बनाकर छापी गई ऋचाओं को द्विपदा समझकर द्विपदाओं में गणना कर ली। यह है पाश्चात्य विद्वानों का पाण्डित्य, जिन्हें द्विपदा और चतुष्पदा ऋचाओं के भेद का भी ज्ञान नहीं! अतः प्रथम मण्डल के ६५-७० सूक्त की ऋचाओं को द्विपदा मानकर गिना जाए तो उनकी संख्या ३१ के स्थान में ६१ होगी और द्विपदाओं का सर्वयोग १२७ न होकर १५७ होगा। अतएव मैकडानल का सर्वयोग भी १०४४२ के स्थान में १०४७२ हो जायगा, जो कि सर्वसम्मत है। इसमें बालखिल्य ऋचाएँ सम्मिलित नहीं हैं।

दूसरी भूल—मैकडानल लिखता है—"छन्दःसंख्या (परिशिष्ट) में १२७ के स्थान में १७ द्विपदाएँ गिनी हैं। सम्भव है छन्दःसंख्या की गणना में मध्यवर्ती २ संख्या खण्डित हो गई हो।" मैकडानल की इस कल्पना के विषय में हम पूर्व ही लिख आए हैं। अतः यहाँ पुनः लिखना पिष्टपेषणवत् होगा। प्रतीत होता है कि मैकडानल को द्विपदाओं के नित्य और नैमित्तिक भेदों का कुछ भी ज्ञान नहीं था अन्यथा वह छन्दःसंख्योक्त १७ नित्य द्विपदाओं के विषय में इस प्रकार की कल्पना कदापि न करता।

तीसरी भूल—मैकडानल लिखता है—"ऋग्वेद की शाकल संहिता की ऋचाओं का सर्वयोग १०४४२ होता है जब कि छन्दःसंख्या में १०४०२ है।" ऋक्सर्वा० की भूमिका पृष्ठ १७।

छन्दःसंख्या-परिशिष्ट का १०४०२ योग १४० नैमित्तिक द्विपदाओं को ७० चतुष्पदा गिनकर लिखा गया है, यह हम पूर्व दर्शा चुके हैं। तदनुसार द्विपदापक्ष में वह योग १०४७२ होगा। मैकडानल के योग में प्रथम मण्डलस्थ द्विपदाओं की गणना में जो ३० संख्या की भूल हमने ऊपर दर्शाई है, उसे ठीक करने पर उसका योग भी १०४७२ होगा। अतः छन्दःसंख्या-परिशिष्टोक्त १०४०२ संख्या के गणना-प्रकार को न समझकर उसमें भिन्नता दर्शाना तीसरी भूल है।

चौथी भूल—मैकडानल लिखता है—"१२७ द्विपदाओं को दूसरी बार गिनकर मेरा योग (१०४४२ + १२७) = १०५६६ होता है।" ऋक्सर्वा० भूमिका पृष्ठ १८।

कात्यायन के "द्विर्द्विपदास्त्वृचः समामनन्ति" इस परिभाषा-सूत्र का षड्गुरुशिष्य की वृत्ति-सहित शुद्ध अर्थ हम पूर्व लिख चुके हैं। तदनुसार यज्ञकाल में द्विपदारूप में प्रयुक्त होनेवाली (१४० ऋचाएँ) दो-दो ऋचाएँ मिलकर अध्ययन-काल में एक चतुष्पदा ऋक् बनती है। मैकडानल के उपर्युक्त लेख को देखने से विदित होता है कि उसने कात्यायन के इस सूत्र का वास्तविक अर्थ ही नहीं समझा, अतएव उसने द्विपदारूप से गिनी गई ऋचाओं को पुनः द्विगुणित करके १०४४२ में १२७ संख्या और जोड़ दी, जो सर्वथा अयुक्त है।

पाँचवीं भूल--पं० भगवद्दत्त जी को ऋग्वेद की ५।२४ के विषय में जो भ्रान्ति हुई, उसका उल्लेख हम पूर्व कर आए हैं। उन्होंने ऋग्वेद ५।२४ के विषय में १९-७-१९१९ को एक पत्र प्रो० मैकडानल को लिखा था। उसके उत्तर में ८-८-१९१९ को मैकडानल ने लिखा है--

"मुझे यह प्रश्न समझ में नहीं आता कि ऋ० ५।२४ की दो द्विपदा ऋचाओं को सर्वानुक्रमणी में ही क्यों द्विगुणित कर दिया......किसी दशा में ५।२४ की द्विपदाओं को द्विगुणित करना ठीक प्रतीत नहीं होता। ऐसा करने से मेरी मन्त्रगणना (१०५६७ के स्थान में) १०५६५ हो जाएगी।" देखो वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग १, पृष्ठ १३६।

इस लेख से स्पष्ट है कि मैकडानल ने भी पं० भगवद्दत्त जी के कथन को स्वीकार कर लिया। सम्भव है उसने ऋ० ५।२४ की ऋचाओं को पुस्तक खोलकर नहीं देखा या उसे भी द्विपदा और चतुष्पदा के भेद का बोध न रहा हो। "सर्वानुक्रमणी में ५।२४ की दो द्विपदाओं को क्यों द्विगुणित कर दिया" यह लिखना भी अयुक्त है। सर्वानुक्रमणी में द्विपदाओं को द्विगुणित नहीं किया अपितु उन्हें ४ द्विपदा लिखा है, जो उचित है। प्रो० मैकडानल को यह भूल मैक्समूलर के ऋक्संस्करण से ही हुई है, इसका वर्णन हम विस्तार से पूर्व कर चुके हैं। यहाँ पर मैकडानल ने एक और भारी भूल की है। उसके कथनानुसार ऋक्सर्वानुक्रमणी में ५।२४ की दो ऋचाओं को द्विगुणित किया है अतः उसे द्विगुणितत्व को हटाने के लिए दो संख्या न्यून करनी चाहिए थी। परन्तु उसने दो के स्थान में ४ चार संख्या न्यून कर दीं।

पाठक इस प्रकरण को भली प्रकार समझें और देखें कि योरप के प्रामाणिक माने हुए वैदिक विद्वानों ने द्विपदा ऋचाओं का वास्तविक स्वरूप न समझकर कितनी भयङ्कर भूलें की हैं। भूल होना मनुष्य का स्वभाव है, यह सर्वथा दोषावह नहीं। हमारा कहना तो इतना ही है कि जो लोग योरपियन विद्वानों के लेख को प्रामाणिक मानकर स्वयं आँख मींचकर उनका अन्ध अनुकरण करते हैं, वे स्वयं भी धोखे में रहते हैं और अपने देशवासियों को भी धोखे में रखते हैं, इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं। यह ठीक है कि इन योरपियन विद्वानों ने वेद के विषय में जितना परिश्रम किया, उतना एतद्देशीय विद्वानों ने नहीं किया और न ही करते हैं परन्तु इस विषय में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि योरपियन विद्वानों को कार्य करने में जितनी सुविधाएँ प्राप्त हैं, एतद्देशीय विद्वानों को उनका शतांश भी प्राप्त नहीं है। यहाँ के विद्वानों को तो हर समय रोटी की ही चिन्ता लगी रहती है, फिर वे रोटी के लिए प्रयत्न करें या वेद के लिए। यह प्रत्येक विज्ञ पाठक विचार सकता है।

पं० सत्यव्रत सामश्रमी और ऋक्संख्या

पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने ऋग्वेद की ऋक्संख्या के विषय में ऐतरेयालोचन के पृष्ठ १४२, १४३ पर कुछ लिखा है। उसमें उन्होंने भी अनेक भूलें की हैं। उनमें से सबसे प्रधान भूल छन्दःसंख्या-परिशिष्ट-उल्लिखित ऋग्गणना के विषय में है। इसके विषय में हम पूर्व लिख चुके हैं। उसका यहाँ पिष्टपेषण करना उचित नहीं।

ऐतरेयालोचन पृष्ठ १४३ पर लिखा है—

"अस्मत् परिगणनया त्वाश्वलायनसंहितायाम् १०५२२ ऋचो दृश्यन्ते।"

पुनः आगे लिखा है—

"तद्वालखिल्यसहिता १०५२२ ऋचः श्रूयन्ते इति त्वस्माभिः सुनिश्चितम्।"

अर्थात् ऋग्वेद की आश्वलायन शाखा में बालखिल्य-सहित १०५२२ ऋचाएँ हैं, यह सुनिश्चित है।

पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने यहाँ दो भूलें की हैं। एक—ऋग्वेद की वर्तमान संहिता को आश्वलायनी लिखा है, वह अयुक्त है, वस्तुतः यह शाकल संहिता है। इस पर हम पुनः कभी लिखेंगे। दूसरी—पण्डित जी ने बालखिल्य-

सहित जो १०५२२ सुनिश्चित ऋक्संख्या लिखी है, वह भी अयुक्त है। उनकी गणना का आधार भी मैक्समूलर-सम्पादित या तदाश्रित अन्य ऋक्संस्करण है। मैक्समूलर के ऋक्संस्करण में प्रथम मंडल की ६० द्विपदाओं को ३० चतुष्पदा बनाकर छापा है, यह हम पूर्व लिख चुके हैं। अतएव उसके अनुसार ऋग्गणना करने में पं० सत्यव्रत सामश्रमी की सुनिश्चित ऋक्संख्या में भी ३० की न्यूनता रह गई। अतः उसकी पूर्ण संख्या भी १०५५२ होनी चाहिए।

पं० हरिप्रसाद और ऋक्संख्या

हरिप्रसाद ने अपने वेदसर्वस्व ग्रन्थ में पृष्ठ ६५-६८ तक ऋग्वेद की मन्त्रसंख्या के विषय में लिखा है। उनका समग्र लेख प्रायः पं० सत्यव्रत सामश्रमी के संस्कृत लेख का भाषानुवाद मात्र है। अतः उनके लेख में भी वे समस्त दोष विद्यमान हैं, जो उनके आधारभूत पं० सत्यव्रत सामश्रमी के लेख में हैं। अतएव उन पर पुनः लिखना पिष्टपेषणवत् होगा। उनके लेख में जो नए दोष हैं, उनका कुछ निदर्शन हम यहाँ कराते हैं—

पं० हरिप्रसाद ने वेदसर्वस्व पृष्ठ ६७ पर लिखा है—

"चरणव्यूह के टीकाकार महीदास ने ऋग्वेदमन्त्रों की संख्या दस हजार चार सौ बहत्तर (१०४७२) लिखी है परन्तु यह नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं सहित है, जिनकी संख्या एक सौ चालीस होती है। यदि वह निकाल दी जाए तो शेष संख्या दस हजार तीन सौ बत्तीस (१०३३२) रह जाती है।"

इस लेख से विदित होता है कि पं० हरिप्रसाद ने न तो द्विपदा ऋचाओं का स्वरूप ही समझा और नही महीदास का ऋग्गणना-प्रकार। १४० नैमित्तिक द्विपदाओं की ७० चतुष्पदा ऋचाएँ बनती हैं। अतः यदि नैमित्तिक द्विपदात्व ही न्यून करना है तो ७० संख्या न्यून करनी चाहिए। पूरी १४० द्विपदाओं को निकालना किसी प्रकार उचित नहीं है।

पुनः आगे लिखता है—

"वर्तमान ऋग्वेद संहिता में मन्त्रों की संख्या दस हजार चार सौ चालीस (१०४४०) है। पाँचवें मण्डल में चौबीसवाँ सूक्त दो मन्त्रों का है। सर्वानुक्रमणी के मतानुसार वह चार मन्त्रों का है। सर्वानुक्रमणी के मतानुसार दो संख्या बढ़ा दी जाए तो १०४४२ संख्या हो जाती है।"

पं० हरिप्रसाद ने १०४४० संख्या मैक्समूलर के ऋक्संस्करण के अनुसार दी है। अतः उसके कारण होने-वाली ३० संख्या की भूल इसमें भी है। इसी प्रकार ऋ० ५।२४ के मन्त्रों का क्या स्वरूप है, यह भी उन्होंने स्पष्ट नहीं किया। पं० हरिप्रसाद ने उन्हें दो ही मन्त्र गिना है अतः उसमें भी द्विपदापक्ष में दो संख्या की कमी है। यदि इन सब न्यूनताओं को पूरा कर दिया जाए तो वही १०४४० + ३० + २ = १०४७२ संख्या उपलब्ध होती है। यह संख्या बालखिल्य ऋचाओं के बिना है, यह हम पूर्व लिख चुके हैं।

श्री पं० विश्वबन्धुजी और ऋग्गणना

यद्यपि श्री पं० विश्वबन्धु जी ने ऋग्वेद की ऋग्गणना पर साक्षात् कुछ नहीं लिखा तथापि उनके द्वारा सम्पादित और विश्वेश्वरानन्द वैदिक अनुसन्धान-विभाग (भूतपूर्व लाहौर, वर्तमान होशियारपुर) द्वारा प्रकाशित संहिता-पदानुक्रम-कोष के अवलोकन से प्रतीत होता है कि उन्होंने भी मैक्समूलर के ऋक्संस्करण को प्रामाणिक मानकर अपना कोष बनाया है। अतएव उनके कोष में भी ऋग्वेद प्रथम मण्डल के ६५-७० सूक्त तक की ६० नैमित्तिक द्विपदा ऋचाओं के सब पदों के पते अशुद्ध हो गए। यथा—

पद	पदानुक्रम का स्थाननिर्देश	शुद्ध स्थाननिर्देश
अप्सु	१।६५।५।।	१।६५।६।।
अज:	१।६७।३।।	१।६७।५।।
अमृतम्	१।६८।२।।	१।६८।४।।
अग्निः	१।६९।३।।	१।६९।६।।
अद्रौ	१।७०।२।।	१।७०।४।

इसका कारण यह है कि उन्होंने मैक्समूलर के ऋक्संस्करण के आधार पर प्रथमण्डल की ६० नैमित्तिक द्विपदाओं को ३० चतुष्पदा मानकर स्थान-निर्देश किया है, परन्तु अन्य मण्डलों की अवशिष्ट ८० नैमित्तिक द्विपदाओं के पदों का स्थाननिर्देश द्विपदा मानकर ही किया है। आश्चर्य का विषय तो यह है कि श्री पं० सातवलेकर जी द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद का सर्वोत्तम संस्करण उक्त पदानुक्रम-कोष के प्रकाशित होने से कई वर्ष पूर्व मुद्रित हो चुका था। और उस में मैक्समूलर के इस महान् दोष का परिमार्जन भी किया जा चुका था तथापि पं० विश्वबन्धुजी ने इस ओर

कुछ ध्यान नहीं दिया और मैक्समूलर-द्वारा आश्रित अर्धजरतीय न्याय को ही अपना लिया।

वस्तुतः हम लोग अपनी भारतीय प्राचीन परिपाटी को छोड़कर योरपियन विद्वानों का सर्वत्र एकान्त प्रमाण मानकर इस प्रकार की एक नहीं अनेक भयङ्कर भूलें प्रतिदिन कर रहे हैं। इनका परिमार्जन तभी होगा जब हम योरपियन दृष्टि-कोण को छोड़-कर और उनके लेखों को एकान्त प्रमाण न मानकर प्रत्येक विषय में अपने भारतीय दृष्टिकोण से विचार करेंगे।

उपसंहार

इस प्रकार हमने ऋग्वेद की मन्त्रगणना के सम्बन्ध में प्राचीन और अर्वाचीन सब विद्वानों के मतों की समालोचना, उनकी भूलों का निदर्शन और उनका परिशोधन करते हुए ऋग्वेद की शुद्ध ऋक्संख्या दर्शाने का प्रयत्न किया है। हमारे सारे लेख का सार निम्न प्रकार है--

कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी के अनुसार बालखिल्य और नैमित्तिक द्विपदाओं-सहित समस्त ऋग्वेद की ऋक्संख्या १०५५२ है। यदि अध्ययन-काल में १४० नैमित्तिका द्विपदाओं को चतुष्पदा बनाकर गिना जाए तो १४०÷२=७० संख्या न्यून करके १०४८२ ऋक्संख्या होगी। यद्यपि इन दोनों ऋक्संख्याओं में ७० संख्या का अन्तर दीखता है तथापि पद, अक्षर, मात्रा आदि के परिमाण में कुछ भी न्यूनाधिक्य नहीं है। केवल ऋचाओं के गणना-भेद से ७० संख्या का भेद दिखाई पड़ता है।

ऋग्वेद का शुद्ध संस्करण

हम प्रथम लिख चुके हैं कि मैक्समूलर का ऋक्संस्करण उसके महान् परिश्रम का फल है परन्तु उसमें कई दोष हैं। उनमें सबसे महान् दोष नैमित्तिक द्विपदाओं को तीन प्रकार से छापना है। इसी दोष के कारण कई विद्वान् ऋग्वेद की शुद्ध ऋक्संख्या का निर्णय नहीं कर पाए। हमें यह कहते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि पं० सातवलेकरजी (औंध) द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद का द्वितीय संस्करण अभी तक प्रकाशित समस्त संस्करणों में श्रेष्ठतम है। इसके लिये पं० सातवलेकरजी वस्तुतः धन्यवाद के योग्य हैं।

ऋग्वेदीय देवता-निर्देश में पं० सातवलेकरजी ने कहीं-कहीं कात्यायनीय ऋक्सर्वानुक्रमणी की व्यवस्था में जानबूझकर परिवर्तन किया है, यदि वह परिवर्तन न किया होता तो ऋग्वेद का यह संस्करण कात्यायन सम्प्रदायानुसार आदर्श संस्करण होता। इतनी न्यूनता होने पर भी यह कहना ही पड़ेगा कि यह संस्करण सर्वोत्तम है, मन्त्रपाठ अत्यन्त शुद्ध है। जिस प्रकार प्रो० मैक्समूलर का ऋक्संस्करण लगभग ६०-७० वर्ष तक प्रामाणिक माना जाता रहा तद्वत् यह संस्करण भी तब तक गुणग्राही योग्य विद्वानों के हाथ का भूषण रहेगा जब तक कोई इससे भी उत्तम संस्करण प्रकाशित न कर दे। वस्तुतः मैक्समूलर का ऋक्संस्करण पं० सातवलेकर के ऋक्संस्करण के आगे विशेष आदरणीय नहीं रहा।।

पं० सातवलेकर के द्वितीय संस्करण में मन्त्र-पाठ की शुद्धता के अतिरिक्त अनेक विशेषताएँ हैं। आद्यन्त में अनेक ऋग्वेद-संबन्धी ज्ञातव्य विषयों का सन्निवेश परिशिष्टों में किया है। सबसे अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि ऋग्वेद के इस संस्करण में ऋचाओं का पूर्ण योग वही १०५५२ दिया है, जो कि इस लेख में पूर्ण विवेचना-द्वारा निश्चित किया गया है।

अन्त में वैदिक विद्वानों से प्रार्थना है कि इस लेख में यदि कोई त्रुटि रही हो तो कृपा करके उसे दर्शाने का प्रयत्न करें, जिससे यह विषय विस्पष्ट हो।

ॐ शम्।

राम-लक्ष्मण

[विश्वामित्र के साथ]

श्री नागार्जुन

सरयू के सैकत तट पर आसीन
बोले रघुकुल-कमलः-दिवाकर राम,
दृष्टि सुमित्रानन्दन के प्रति डाल

तात, यही है बस अपना सीमान्त।
नदी-पार से होता है आरम्भ
शूर-वीर मागध लोगों का राज्य;
बाईं करवट, वाम बाहु उपधान,
दंडप्रलम्बित, रखे पैर पर पैर,
डाले दक्षिण कटि पर दहिना हाथ,
करते हैं गुरुवर थोड़ा विश्राम।
मध्याह्नोत्तर भोजन के पश्चात—
किसकी झिपती नहीं, बताओ आँख ?
अभी अभी कुछ ही क्षण के उपरान्त,
नदी पारकर हम रक्खेंगे पैर—
उसी भूमि पर; उद्यत ही है नाव।
किन्तु पूछता हूँ मैं तुमसे, वत्स!
होगा फिर कब स्वजन-समागम, हंत ?
होंगे फिर कब हम अपनों के बीच ?
कहाँ मिलेगा ऐसा सुन्दर देश ?
धन्य हमारा कोसल जनपद धन्य!
सुजल सुफल बहुविध धन्य धान्य समेत!
लता-गुल्म-तृण-तरु-वल्ली परिव्याप्त!
सरयू जल-अभिसिंचित स्फीत समृद्ध!
सुर-नर-मुनि-मनमोहन परम ललाम!
कहाँ मिलेगी ऐसी उर्वर भूमि ?
कहाँ मिलेगा इतना सुन्दर देश ?
ऐसी माटी कहाँ मिलेगी वत्स!
भीतर-ही-भीतर पा करके क्लेश,
विह्वलता से हो करके अभिभूत,
दिया अनुज ने उत्तर

सच है, तात!
नहीं मिलेगा ऐसा सुन्दर देश...
नहीं मिलेगी ऐसी उर्वर भूमि...

धन्य हमारा कोसल जनपद धन्य!
सुजल सुफल बहुविध धन्य धान्यसमेत!
लता-गुल्म-तृण-तरु-वल्ली-परिव्याप्त!
सरयूजल-अभिसिंचित स्फीत समृद्ध!
सुर-नर-मुनि-मनमोहन परम ललाम!
नहीं मिलेगी ऐसी उर्वर भूमि—
नहीं मिलेगा ऐसा सुन्दर देश—
कहीं चराचर किंवा त्रिभुवन-मध्य,
ऐसी मिट्टी नहीं मिलेगी तात!
धन्य हमारा कोसल जनपद धन्य!
हैं ही यद्यपि हम दोनों के साथ
गाधिपुत्र कौशिक मुनि विश्वामित्र;
अति रुचिकर है यद्यपि इनका संग,
यद्यपि होते चलते हैं मालूम—
देश-काल के और पात्र के तथ्य;
सुन-सुन यद्यपि नानाविध आख्यान,
तिल-तिल करके बढ़ता जाता ज्ञान;
फिर भी यह जो अपना अभिजन छोड़,
दूर जा रहे हम पहली ही बार,
सत्य-सत्य कहता हूँ, इससे तात!
मुझको तो होता है बहुत कचोट!
याद आ रहे मुझको बारंबार
वृद्ध पिता के सजल स्निग्ध वे नेत्र!
शिशिर निशा के हिमाच्छन्न शशितुल्य—
माताओं के मुँह आते हैं याद!
बिदाकाल के वे मर्मान्तक दृश्य
भूल गए हैं हम जो इतना शीघ्र,
तरुण-सुलभ कौतूहल था वह हेतु
हुआ न जिससे धैर्य हमारा भंग;
और नहीं कुछ, वही एक था हेतु!

हिला-हिलाकर करपल्लव अभिराम,
किया राम ने लक्ष्मण को संकेत—
तत्क्षण ही चुप हो जाने के हेतु!
लगा टूटने जब धीरज का बाँध,

शतदल नीलकमल पर से जलविन्दु
ढुलक पड़े दो बार, श्वास-क्रम दीर्घ
नासापुट कम्पित निस्तेज कपोल !
अग्रज की यह दशा देख सौमित्र
हुए और भी व्यथित हुए निःशब्द।

हंसाकृति उस नौका पर आरूढ़,
करते सरयू-गंगा-संगम पार
सावधान हो सुनने लगे कुमार...
सरयू-उद्गम, तब सुरसरि माहात्म्य—
किस प्रकार गंगाजी की यह धार
भू पर उतरी तज हिमगिरि की गोद ?
किस प्रकार पा सके परम पद, हंत,
कपिल-कोप-परिदग्ध-सगर सन्तान ?
भागीरथी पड़ा क्यों इसका नाम ?
...सुना उन्होंने यह समग्र इतिहास।
मुनि-मुख-पद्म-विनिःसृत सुधा समान,
अपने वंशधरों का यह आख्यान
सुना उन्होंने, फिर-फिर देकर ध्यान।
पूर्वजनों का सुन-सुनकर गुण-गान,
अरे, भरे हैं कभी किसी के कान ?

दक्षिण तट से जा टकराई नाव।
उतर पड़े उस पर से तीनों व्यक्ति।
नाविक भी पा करके आशीर्वाद
विदा हुआ; तब मुनि ने कहा कि राम,
संमुख हो सुरसरि को करो प्रणाम !
क्या जाने, फिर कब यह पुण्य प्रवाह
हमें मिलेंगे स्नान-आचमन हेतु !

लिए राम ने तब दोनों कर जोड़।
मन-ही-मन कर दिया स्तवन आरंभ...
त्रिविध-तापहारिणि गंगे, तुम धन्य !
देवि तुम्हारी महिमा अपरम्पार !
पाकर तेरे जल-कण का संस्पर्श
कट जाते हैं युग-युग-संचित पाप।
हट जाते हैं बड़े-बड़े अभिशाप।
सुर-नर-मुनि-किंनर-विद्याधर यक्ष—
कौन नहीं रहता लालायित, हंत,
दरस-परस-मज्जन-अवगाहन हेतु ?
क्षुधित जनपदों को करते हैं शान्त,
देवि, तुम्हारे ये उर्वर तट-प्रान्त !
रिक्त न रहता जगजननी का अंक,
धन्य, तुम्हारा महिमामय यह पंक !
तुम्हें सौंपते आए हैं हम, अम्ब,
अपने अपने वंशधरों की अस्थि !
साक्षी है पृथ्वी साक्षी आकाश !
देवि दयामयि, करता तुम्हें प्रणाम !
अनुज-सहित यह सांजलि राघवराम...

जोड़ पाणियुग, हो करके नतशीर्ष,
किए आचमन दोनों ने तत्काल !
मुनि को देख विलम्ब गए कुछ दूर;
लगे टहलने तट पर राजकुमार।
देख दिगन्त प्रसन्न, गगन निर्मेघ
कहा राम ने लक्ष्मण से—
ऊपर ताको, नभ है कैसा स्वच्छ !
नीरजनील निरभ्र परम रमणीय—
ज्यों हो शरद् प्रकृति का विजय-वितान !
सड़ी घास की सड़े पात की गंध,
अधसूखे कर्दम की गीली वास,
ध्यान खींच लाती है भू पर ओह !
धीरे-धीरे बच बच चलना, वत्स !
बिछे पड़े हैं खुरकंटक सब ओर।
पशुओं के खुर, चरवाहों के पैर,
छोड़ गये हैं अपनी-अपनी छाप
कल, परसों, तरसों, या चौथे रोज;
सो सब परिलक्षित होता है स्पष्ट;
आस-पास ही, निश्चय, हैं कुछ गाँव।
क्रमशः घटती क्रमशः होती क्षीण—
इस धारा की शान्त चपल हिलकोर,
देखो लक्ष्मण ! करती है किस भाँति
सिकतामय सितपट पर बारंबार
ऋजु कुटिला दोनों लिपि का व्यवहार !

हुए निवृत्त, किया इंगित चुपचाप,
आगे-आगे चले महामुनि आप;

पीछे-पीछे दशरथ के दो लाल ।
तनिक दूर पर मिला विपिन विकराल—
पग-पग पर थे विकट झाड़-झंखाड़ !
डग डग पर वृद्ध वनस्पति ठाढ़ !
डालों से लिपटी थीं मोटी बेल,
मानो अजगर दिखा रहे हों खेल !
क्षुद्र झींगुरों की अविरत झंझकार
रही विधाता को मानो ललकार !
श्वापद उठते थे रह-रह चीत्कार !
सड़ी लाश की आती थी दुर्गंध !
दिवस-निशा में था अभेद सम्बन्ध !

धरकर पगडंडी आगे की ओर,
बढ़े जा रहे थे तीनों ज्यों चोर—
चलते हैं पैरों की आहट मार !
नहीं थूकना खांसी नहीं खखार !
इस प्रकार जैसे-तैसे वे लोग
सकुशल पहुँचे महारण्य के पार ।
वहीं ठहर जाने का हुआ विचार...

लक्ष्मण लाए ढूँढ़ कन्द-फल-मूल !
जल औ ईंधन ले आए श्रीराम ।
चकमक पत्थर से निकालकर आग,
चेता दी गई धूनी बस तत्काल ।
किया कुमारों ने व्यालू, जलपान ;
हुए स्वस्थ, पथ-क्रान्ति हो गई दूर ।
हाथ-पैर धो, पीकर पानी मात्र,
मृगछाला पर रहे महामुनि लेट ।
लगे चापने दोनों उनके पैर···
हुई ताड़का की चर्चा आरम्भ···

कहने लगे महर्षि शान्त गंभीर—
सुनो दाशरथि, इस वन का वृत्तान्त···
महाविकट राक्षसी ताड़का एक,
दस हजार हाथी की जिसमें शक्ति ।
इस वन पर है उसका ही अधिकार !
चारों ओर मचा है हाहाकार !

नहीं इधर से आते-जाते पान्थ ।
पशु-पक्षी भी उससे, रहते दूर ।
आस-पास के ग्राम निगम देहात
उस दुष्टा ने डाले सभी उजाड़ !
लगा हुआ है कंकालों का ढेर !
राम, देखना दिन में यह अंधेर !
दुर्गम कानन, आतंकित कान्तार,
इसने जो चुपचाप किया है पार;
और नहीं कुछ, यही एक था हेतु···

बाल, वृद्ध, रोगी अथवा विकलांग
नहीं किसी को वह सकती है छोड़ ।
गर्भभार से मन्थर यद्यपि चाल,
पुलकित यद्यपि नव शिशु से प्रति रोम,
फिर भी स्त्रियाँ न पातीं उससे त्राण !
ले लेती है सबके ही वह प्राण ।
अशुचि पूति दुर्गंधि अमेध्य अवद्य—
वस्तु-जात से सहजा उसकी प्रीति ।
है न भक्ष्य किंवा अभक्ष्य का भेद···

कहते-कहते कथा अनेक प्रकार,
आधी से भी अधिक हो गई रात ।
तमसाऽऽवृत अग, जग, तृण, तरु, निष्पंद ।
खग मृग उरग सभी निद्रा में लीन—
अथवा आतंकित बैठे दम साध !
कोटि-कोटि नक्षत्रखचित आकाश,
अमित नेत्रमय मानो श्याम शरीर···
लगे घूमने हो करके निःशंक
भूत, प्रेत, राक्षस—रजनीचर जन्तु ।
वृद्ध वनस्पति का लेकर वह ओट
उगा क्षीणप्रभ प्रियदर्शन शीतांशु !
कृष्णपक्ष की दशमी का शृङ्गार,
नहीं हर्ष का कर पाया संचार !
मुनि ने कहा कि सो जाओ अब तात !
आधी से भी अधिक हो गई रात ।❋

❋"राम-कथा" (प्रबंधकाव्य) का एक अंश ।

एक मनोवैज्ञानिक एकांकी नाटक

गोद

श्री जनार्दन मुक्तिदूत

पात्र-परिचय—

रंजन--नायक, उम्र २४ वर्ष, मातृ-भ्रातृ एवं भगिनीविहीन अकेला शिकारी युवक।

शालिनी--रंजन के पड़ोसी की पुत्री, उम्र ३४ वर्ष। रंजन उसे दीदी कहता है। बाद को प्रोफेसर मदन की पत्नी।

प्रो० मदन--शालिनी के पति, उम्र ४४ वर्ष। रंजन के होस्टल के वार्डन।

हेमा--प्रो० मदन की बहन, उम्र १७ वर्ष। बाद को रंजन की वाग्दत्ता पत्नी।

कल्लू—रंजन को पालनेवाला नौकर, उम्र ४० वर्ष।

स्थिति-स्थान

(जंगल में एक कैम्प के बाहर साफ जमीन पर तीन कुर्सियाँ और एक छोटी-सी मेज पड़ी हुई है। कैम्प के पीछे सघन झाड़ियाँ दिखाई दे रही हैं। एक कुर्सी पर शालिनी और दूसरी पर प्रो० मदन चिंतित-से बैठे हैं। कल्लू चाय की ट्रे हाथ में लिए कैम्प से बाहर आता है। नेपथ्य में जंगली तीतर-बटेरों की आवाज सुनाई देती है)।

कल्लू—चाय की ट्रे मेज पर रखते हुए ध्यान बाँटने की नीयत से) साब, चाय पी लीजिए—

मदन--चाय ? हाँ शालिनी!

शालिनी--जी !

कल्लू--साब, सोच करने से क्या फायदा ? मैं भी सोच कर-करके हार गया। जब कुछ समझ में नहीं आया तो रञ्जन बाबू को भगवान् के भरोसे छोड़ आप लोगों को खबर देने गया था।

शालिनी—(समवेदना से) कल्लू, शायद तुमने अच्छा किया हो। आखिर तुम रञ्जन के नौकर ही हो। भगवान् के भरोसे न छोड़ते तो और क्या करते ?

कल्लू—(गहरी और लम्बी साँस लेकर) बीबी जी, आप ऐसा क्यों कहती हैं ? आपको तो मालूम है कि दुनियाँ में रञ्जन के सिवा मेरा और रञ्जन का मेरे सिवा और कोई नहीं है। (पुरानी स्मृति में डूबा हुआ) जब रानी मां मरी थीं तब रञ्जन कुल सात महीने का था। उसके बाद रञ्जन को मां की गोद नसीब नहीं हुई, किसी स्त्री की गोद नसीब नहीं हुई और रञ्जन अकेला था, एकदम अकेला। अकेला ही मेरी गोद में पला, अकेला ही बाहर की कठोर दुनियाँ में पला, अकेला ही बाहर की कठोर दुनियाँ में भटका।

शालिनी—पर ?

मदन—पर क्या, शालिनी······?

शालिनी—जी, कुछ नहीं, कुछ भी नहीं—वैसे ही।

मदन—शालिनी, मैं जानता हूँ, तुम्हारे अन्दर कुछ घुट रहा है। जैसा कि कुछ हमेशा घुटा किया है और मैं जानता हूँ कि तुम मेरी पत्नी होने के नाते तक मुझसे भी उस घुटने का कारण नहीं कहोगी। तुमने अपने मन की बात कभी किसी से नहीं कही और विशेषतः जब रञ्जन को लेकर हम उलझे हैं तब-तब तुम्हारे चेहरे पर उदासी-सी छा गई है और तुम टाल गई हो।

शालिनी—जी······? कुछ···

मदन—मुझे कहने दो शालिनी--तुम रञ्जन को बचपन से पहचानती हो। तुमने उसे धूल में खेलते भी देखा है और शायद रञ्जन की किसी बड़ी कमी को तुमने परोक्षरूप में अनायास पूरा कर देने की कोशिश भी की है। या तुम जानती हो कि उसकी कमी एक बहुत बड़ा गड्ढा है, जिसे भरा नहीं जा सकता और तुमने अपना हाथ उधर से खींच लिया है।

शालिनी—जी, कल्लू ! (कल्लू की उपस्थिति का ज्ञान कराके)

मदन—कल्लू, तुम जाओ कैम्प के अन्दर। हेमा की कुछ मदद कर देना। वह अकेली है। क्यों न शालिनी?

शालिनी—हाँ, वह अकेली है।

मदन—और शालिनी, तुम्हें मालूम है कि रञ्जन के जीवन में जो शून्य उपस्थित है, उसे तुम भरने आई हो और सो भी उस लड़की को लेकर, जो स्वयं अपने में शून्य है—शून्य से शून्य भर सकोगी तुम—

शालिनी—क्या? हेमा अपने में शून्य है? नहीं शून्य नहीं है। वह भरी है। उस श्याम घटा की तरह, जो पश्चिम से उठकर भी पानी बरसाती है। आप समझते हैं कि हेमा केवल धुआ है। हाँ, मैं माने लेती हूँ कि तुम्हारी बहन होते हुए भी हेमा भोली है, अल्हड़ है। और मैं समझती हूँ कि रञ्जन के पागलपन के सामने टिकनेवाली अगर कोई चीज है तो केवल किसी का भोला चेहरा, किसी का मासूम प्यार, किसी की कोमल गोद।

मदन—और तुम इसी विचार से बेचारी हेमा को इस बीहड़ वन में घसीट लाई हो। मैं कहता हूँ कि अब तक रञ्जन पूर्ण पशु बन गया है। और उसे किसी भोली लड़की पर गोली दाग देने में भी संकोच न होगा—

शालिनी—क्या कह रहे हैं आप? मैं अधिक कुछ नहीं जानती पर इतना जरूर जानती हूँ कि रञ्जन एक पुरुष है, मानव है और उसके अन्दर भी एक कमजोर जगह है, जहाँ छू देने से रञ्जन एक पालतू हिरन के बच्चे की तरह घुटने टेक देगा और मैं जानती हूँ, मैंने उसे हमेशा ऐसा ही मासूम पाया है।

मदन—पर मैं इस खतरनाक प्रयोग के लिए हेमा के जीवन की बाजी नहीं लगा सकता?

शालिनी—आप रञ्जन को प्यार करते हैं पर आप उससे डरते हैं। मुझे उससे प्यार है पर मैं उससे डरती नहीं हूँ।

मदन- तुम्हारे कहने का मतलब क्या है शालिनी—? यही न कि औरत दिलेर और मर्द बुजदिल होते हैं?

शालिनी—(हल्की हँसी) मैं शब्दों को पकड़ती नहीं। बाल की खाल नहीं निकालती।

मदन—शालिनी, तुम स्वयं भी कम भोली नहीं हो। रञ्जन को गृहस्थ बना देना हाथियों से गन्ने माँगने से कम हास्यास्पद नहीं है।

शालिनी—शायद आप ठीक कह रहे हैं।

मदन—फिर वही पहेली, वही अवगुण्ठन! और सदा की तरह तुमने फिर जिन्दगी के एक पेचीदा मोड़ पर आकर आत्म-समर्पण कर दिया—शायद तुम नहीं जानती कि रञ्जन अब वह रञ्जन नहीं रह गया है।

शालिनी—क्या हो गया है?

मदन—एक पशु—जब से उसके पिता का देहान्त हुआ है तभी से वह शहर छोड़ इस जंगल में आ बसा है। साथ में कल्लू भी रहता है। कल्लू किसी तरह जबरदस्ती उसका पेट भर देता है और रञ्जन का कल्लू से बस इतना ही सम्बन्ध है। या जब रञ्जन को पैसे की जरूरत होती है तब कल्लू को बैंक तक जाना होता है—!

शालिनी—पैसे की जरूरत?

मदन—हाँ, पैसे की जरूरत उसे पड़ती है—

शालिनी—लेकिन क्यों? जंगल में तो मनोरञ्जन के कोई साधन नहीं हैं—

मदन—शायद तुम नहीं जानतीं कि वह आदमी के शिकार के लिए अपनी सारी स्टेट की बाजी लगा देने को तैयार है।

शालिनी—आदमी का शिकार? स्टेट की बाजी! कल्लू तो कहता था कि वह दिन भर जंगली जानवरों का शिकार खेलते हैं और रात भी किसी पेड़ पर या शेर की माँद के ऊपर बैठे-बैठे बिता देते हैं, यही कुछ तो बूढ़े कल्लू की चिन्ता का कारण है।

मदन—और तुम्हें याद नहीं कि वह कल्लू से कहता था कि वह जानवरों के शिकार से ऊब गया है। उसे खतरनाक शिकार चाहिए। ऐसा जो, शिकार उसका मुकाबिला कर सके; ऐसा शिकार नहीं, जो चार गोली खाकर ढेर हो जाए।

शालिनी—तो खतरनाक शिकार से आदमी के शिकार का मतलब क्योंकर लगाया जा सकता है?

मदन—उसने कई लोगों को बड़ी बड़ी रकमें देकर अपना शिकार बनाने के लिए राजी करना चाहा था।

शालिनी—तो यह क्या बड़ी बात है। वह जंगल में किसी को भी मारकर अपनी इच्छा पूरी कर सकता है।

मदन—सो बात नहीं। वह बराबरी का जोड़ चाहता है। वह चाहता है, उसका शिकार उससे बन्दूक लेकर लड़े।

शालिनी—अब समझी ! वह किसी से द्वन्द्व लड़ना चाहता है । द्वन्द्व तो अब फैशन और कानून के विरुद्ध है ।

मदन—नहीं द्वन्द्व नहीं, शिकार चाहता है । वह चाहता है ऐसा आदमी, जो भाग्य से या तो अकेला हो या अपने बाल-बच्चों के पीछे अपने प्राणों को एक बड़ी रकम में बेंच सके, इस जंगल में आए और उससे आकर कहे कि वह रंजन को पछाड़ मारेगा, फिर वह इस घने जङ्गल में शिकार करने के ठीक बारह घण्टे पहले छिप जाए । नियत समय पर रंजन बाकायदा हाँका करे । फिर या तो शिकार उसे मार दे या वह शिकार को मार डाले । वह पूर्ण पशु बन चुका है । वह नीरो की तरह अपनी राजधानी में आग लगाकर अपना मनोरंजन करना चाहता है । और तुम मानने को तैयार नहीं हो कि रंजन अब भी पागल नहीं हो गया है । मैं कहता हूँ कि एक दिन वह जब देखेगा कि कोई मनुष्य मरने का तैयार नहीं है तो अपने आपका शिकार कर डालेगा और बहुत ही निर्दय तरीके से ।

शालिनी—ऐसा कैसे हो गया रजन ?

मदन—ऐसा क्योंकर हुआ करता है ?

शालिनी—वह धुँधलके में पला है । कुहासे में बड़ा हुआ है । रोशनी के सुकुमार चंचल बच्चे उसे छलते रहे हैं और वह उसे अच्छे लगे हैं । जिन्होंने रंजन को मोह लिया है, रंजन उन रोशनी के बच्चों के पीछे भाग रहा है । और इस दुनियाँ में वह देखता है कि ये शेरनी के बच्चे खुले आसमान के नीचे कुलाँचे मारा करते हैं और पकड़ाई नहीं देते क्योंकि वे रंजन के विचार से किसी पहाड़ी की गुफा में रहते हैं, जहाँ अँधेरा है, जहाँ रंजन को खोजे से वे नहीं मिलते । रंजन गुफा की दीवारों से सर टकरा रहा है ।

मदन—और तुम्हारे स्नेह-सिंचित आँचल के नीचे मोमबत्तियाँ हैं, जिन्हें तुमने सदा रंजन से छिपाकर रक्खा है । तुम आतिशबाजी के समय रंजन को दूर हटाती रही हो ।

शालिनी—कहाँ-से-कहाँ बहे जा रहे हैं हम ?

(शेर के बच्चे की आवाज आती है)

यहाँ तो ठहरना खतरे से खाली नहीं है । सुन रहे हैं शेर के बच्चे की आवाज । पास ही कहीं शेरनी भी होगी—

मदन—मैं कल्लू से बन्दूक मँगवा लूँ । संकट आने से पहले ही उसके मुकाबिले के लिए तैयारी कर लेना ही हितकर है । (धीरे से) कल्लू...श...श...श...श...

कल्लू—क्या है, साब ?

मदन—शेर है आसपास—

कल्लू—(हँसता है) शेर ! (हँसता है)

शालिनी—भला इसमें हँसने की क्या बात है !

कल्लू—शालिनी बीबी जी आपके चरणों के परताप से रंजन बाबू सब शेर चीते मार चुके हैं । बस एक बच्चा बच गया है । रांम जाने, अब तो दवाई के लिए भी मिलने मुश्किल हैं शेर-चीते ।

मदन—(हँसते हैं । कल्लू कैम्प में वापस जाता है)

शालिनी—कितना हँसमुख है कल्लू !

मदन—और उससे कुछ ज्यादा बातूनी—बूढ़ा हो गया पर बातें करने का अवसर आए तो यह कल्लू सारी रात बैठा बातें करता रहता है । बातें, कोरी बातें—

शालिनी—और उन बातों में परीदेश के सपने—कहानी बन छाए रहते हैं, जिन्होंने आधी-आधी रात तक रंजन का जी बहलाया है । उसकी बातों में साँझ रानी की लोरियाँ हैं, जिन्हें सुन रंजन ने चाँद को मामा कहना सीखा है । वह कोरी बातें ही करता होता तो बेबस बिना माँ, बिना बहन का छोटा रंजन कैसे पल पाता ? सपने—कहानी—लोरी ने ही उसके कमजोर पाँवों में शक्ति भरी है । उसकी मांस-पेशियों में फड़कन पैदा की है । परीलोक जाने के लिए । राजकुमारी का प्यार पाने के लिए । लोरी ने भूल-भुलैयों में डाल उसे सुलाया है । उसे सिखाया है कि सपना अन्धेरे की सबसे बड़ी देन है ।

मदन—और इसीलिए क्या रंजन ने उजाले से मुँह मोड़ लिया है ?

शालिनी—नहीं ! भटक गया है । सपने की धरती जीवन की तंग घाटियों में बिछी पड़ी है । उसे संकेत मिला, सहारा न मिला कि उस धरती पर खड़ा होकर पुकारकर कहे कि सपना सत्य हो गया है । सहारा उसे देना होगा ।

मदन—जितनी उलझन रंजन है, उससे कम तुम भी नहीं हो, शालिनी; और मैं ठीक तरह से सोच नहीं पाता कि रंजन को तुमने किस उलझन का रूप बनाकर

छोड़ दिया है। या रंजन और तुम दोनों ही अपने में अलग और स्वतन्त्र उलझन हो।

शालिनी--कुछ भी समझ लो, मैं बाधा उपस्थित नहीं कर रही हूँ।

मदन—बहुत से लोग दुनियाँ में शायद अभागे ही पैदा होते हैं।

शालिनी--आप इसे बदनसीबी पुकारते हैं। मैं शायद इसे दुनियाँ का अन्यार्थ पुकारूँगी क्योंकि हर व्यक्ति को भाग्य का हिस्सा यहीं इसी दुनियाँ से लेना होता है, जो शायद हम जानते हुए भी कि हमें किसी को कुछ देना है, दे नहीं पाते या कंजूसी कर जाते हैं।

मदन—विवशता का दूसरा नाम संतोष तुमने सीखा ही नहीं है, शालिनी, यह मैं समझता हूँ। वह जब होस्टल में पढ़ने आया था तभी मैंने समझ लिया था कि यह व्यक्ति स्वयं अपने में एक पूरी-की-पूरी इकाई है। और तुम्हारे अनुरोध के कारण मैं कभी उससे अधिक बातें भी नहीं कर सका।

शालिनी उसने मुझे या कल्लू को छोड़कर जीवन में और किसी से बातें शायद ही की हों और ऐसी बातें, जिन्हें हम सचमुच बातें कहते हैं!

मदन--तुमसे कितना छोटा है रंजन?

शालिनी--लगभग दस साल। जब मेरी शादी हुई थी तब रंजन की सातवीं वर्षगाँठ थी। उस साल मैं ही रंजन के घर की मेजबान थी और मैंने ही रंजन के पिता की ओर से मेहमानों का स्वागत किया था। कितना नटखट था रंजन! मैं अक्सर उसे झिड़क भी दिया करती थी। (डूबे स्वर में) मैं इसे शैतान कहकर टाल दिया करती थी।

(एकदम बात रोककर चुप हो जाती है)

मदन—कहो शालिनी, आज तो पूरी बात कह दो--

शालिनी--क्यों शरमिन्दा करते हैं?

मदन--नहीं। मैं समझौता चाहता हूँ। समर्पण करके।

शालिनी--मैं रंजन के बाग में माँ की पूजा के लिए फूल लेने जाया करती थी। रंजन के कमरे की खिड़की बाग में खुलती थी, जैसे ही रंजन मुझे देखता, खिड़की से कूद नंगे पैरों मेरे पास आ खड़ा होता और मेरे साथ बगीचे में घूमा करता। मुझे ऐसा महसूस होता, जैसे मैं किसी पालतू खरगोश के बच्चे के साथ किसी नकली वन-प्रान्त में घूम रही हूँ। वह खरगोश का बच्चा, जो उच्छृंखल है पर पालतू है। उसे आशा देने का प्रयास विफल नहीं जाएगा।

मदन--और तुम उससे खेली कम, आशा अधिक थी!

शालिनी--हाँ, मैं सोचती थी कि वह केवल एक अबोध बच्चा है। एक दिन--अंगूरों के गुच्छों को देखकर बोला--दीदी, ये गोल-गोल अंगूर कितने सुन्दर हैं। यह जो सेबों पर लाली आ रही है, कितनी अच्छी है। और जो यह सेब के पेड़ों से नीचे की तरफ आकाशबेल लटक रही है, कितनी कोमल है!

मदन—फिर?

शालिनी—मैंने पूछा, तुझे यह सब चीजें अच्छी लगती हैं तो बोला, दीदी, तुम्हारी आँखे अंगूर की किटकिन्नेदार पत्तियों की तरह हैं। तुम्हारे गालों पर अँगूर की गोलाई और सेबों की लाली है दीदी, मैं तुम्हारी आँखों और गालों को छू लूँ?

मदन—और तुमने कह दिया होगा—नहीं, भले लड़के अपनी दीदी को छूते नहीं।

शालिनी--हाँ। फिर निराश होकर बोला--अच्छा दीदी, यह जो तुम्हारे लम्बे बाल आकाशबेल की तरह ही तुम्हारे कन्धों पर झूलते रहते हैं। मैं बेल नहीं छू सकता, वह बहुत ऊँची है। मैं तुम्हारे बाल छू लूँ दीदी?

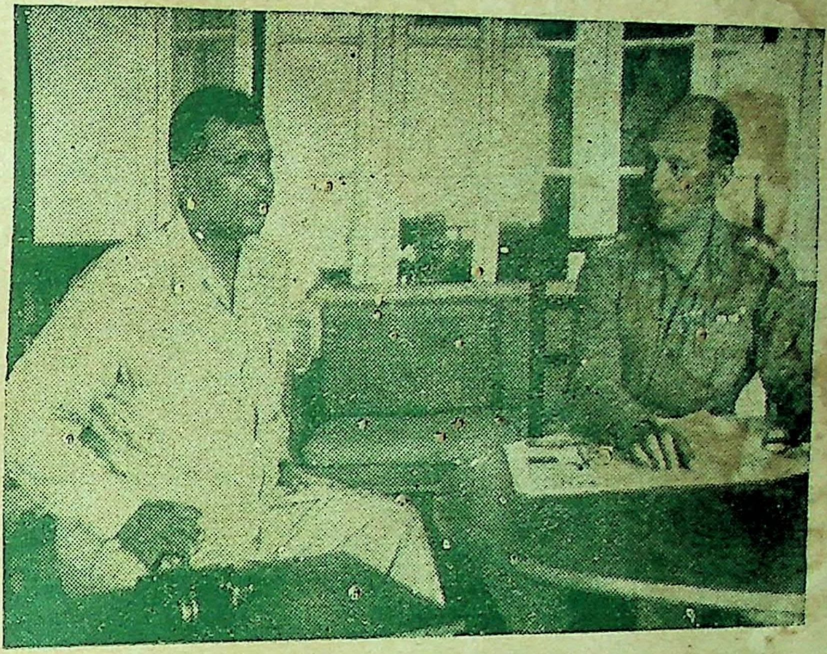
मदन—और तुमने कह दिया होगा—नहीं—तुम्हारे हाथ धूल से भरे हैं। तुमने धोकर सुखाने की गरज से कन्धे पर डाल रखे होंगे, जिन्हें तुम मैला नहीं होने देना चाहती थीं।

शालिनी—ऐसा कुछ मैंने नहीं कहा था। मैं उसे बहला ले गई थी। मैंने उसे खिलौने और मिठाइयाँ दी थीं, जिन्हें वह मेरे पास से ले गया और रास्ते में खड़ी मुहल्ले की एक लड़की को देकर घर में जा घुसा। उस दिन वह बहुत रोया था। वह मुझ पर क्रोधित था। फिर हमारा मेल हो गया पर उस दिन से रंजन कुछ और अधिक खामोश रहने लगा।

मदन--तुमने उसे अकेले की आदत सोचकर टाल दिया होगा?

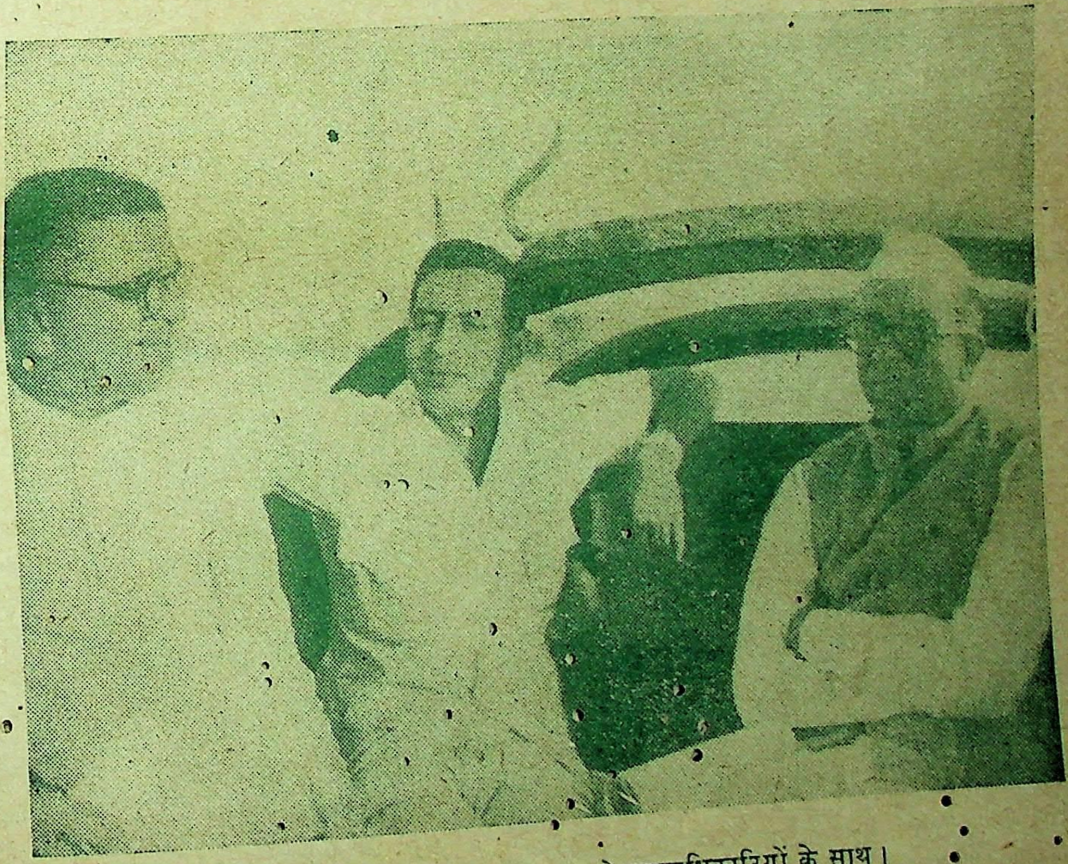
शालिनी--एक दिन मुहल्ले में शादी थी। जब लड़की दूल्हे के साथ पालकी में विदा हुई तो फूट-फूट-

भारतीय सैन्यशक्ति और उड़ीसा



भारत के प्रधान सेनापति मेजर जनरल कैरिअप्पा और उड़ीसा के प्रधान मंत्री माननीय हरेकृष्ण मेहताब भारतीय सैन्य-शक्ति में उड़ीसा के सहयोग के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण वार्त्तालाप कर रहे हैं।

मंत्री संथानम्



समुद्रतट के किनारे मंत्री संथानम् दो उच्चाधिकारियों के साथ।



यज्ञोपवीत-संस्कार

काश्मीर की महारानी अपने सुपुत्र महाराजकुमार श्री कर्णसिंह के शुभ यज्ञोपवीत-संस्कार के अवसर पर उन्हें आशीर्वाद दे रही हैं।



- स्वागत

बेगम लियाकत अली खां पाकिस्तान-स्थित ब्रिटेन के राजदूत की धर्मपत्नी श्रीमती ग्रैफे स्मिथ का स्वागत कर रही हैं।

कर रोती जाती थी। रंजन मेरे पास खड़ा था। रंजन मुझसे चिपट-चिपटकर रोने लगा। मैं उसे उसके कमरे में ले गई। मैं जितना उसे पुचकारती थी, वह उतना ही और फफक-फफककर रोता जाता था।

मदन—फिर? रोने का कारण बताया था उसने?

शालिनी—किसी के रोने से उसे रोना आता है। फिर पूछने लगा, 'वह लड़की रोती क्यों थी?' मैंने कहा कि उसकी शादी होगई है। वह अपने दूल्हे के साथ ससुराल गई है। वह पूछने लगा—'किसी ने उसे मारा था?' मैं हँस पड़ी। नहीं मारा किसी ने नहीं था। उसे अपनी माँ से बिछुड़ने का अफसोस था। वह पूछने लगा, 'तो क्या वह फिर लौटकर नहीं आएगी?' मैंने कहा, आएगी क्यों नहीं पर जब उसका दूल्हा आने देगा। फिर पूछने लगा, 'अगर उसका दूल्हा नहीं आने देगा तो वह कभी नहीं आएगी?' मैंने कहा, नहीं। "ऐसा क्यों होता है, दीदी?" मैंने कहा, लड़की पराया धन होती है जिसे सहेज कर धरा जाता है और बाद को किसी के हाथ सौंप दिया जाता है।

मदन—तब क्या कहने लगा?

शालिनी—'तो दीदी तू भी एक दिन चली जाएगी? तू भी तो लड़की है, पराया धन है।' और वह फिर सुबकने लगा। मैंने कहा, नहीं मैं नहीं जाऊँगी। बोला—'नहीं कैसे जाएगी? तू जरूर जाएगी, फिर तू कभी लौटकर नहीं आएगी—तू कभी अपनी माँ से नहीं मिलेगी। तू कभी मुझसे नहीं मिलेगी। तू कभी बाग में फूल चुनने नहीं आएगी। मैं रोता ही रह जाऊँगा। तू मुझे चुपाने भी नहीं आएगी।'

मदन—तुमने क्या कहा था?

शालिनी—कि नहीं रे मैं कहीं नहीं जाऊँगी। तो बोला, 'अच्छा चल बाग में कसम खाएँ।'

मदन—तो तुमने खाई कसम?

शालिनी—वह रोता ही जाता था। मैं उसे बाग में ले गई। बोली, मैं कसम खाती हूँ। पूछने लगा, 'किसकी कसम खाई जाती है?' मैंने कहा, अपनी सबसे प्यारी वस्तु की। तो बोला, 'अच्छा, खा इन अंगूरों के पीले गुच्छों की कसम, खा इन लाल सेवों की कसम—खा इन लटकती हुई आकाशबेलों की कसम!'

मदन—(हल्की हँसी) और तुमने कसम खाई उन प्यारी वस्तुओं की, जो तुम्हें नहीं उसे प्यारी थीं! यह छल नहीं था तो और क्या था।

शालिनी—ऐसा भी कहीं हुआ है! भला मैं भी उसके बचपन के खेलों को सच्चा समझ एक पागलपन कर बैठती, जिस पर मेरा कोई अधिकार न होता...

मदन—उस दिन जब तुम्हारी विदा हुई थी तब वह स्टेशन पर तुम्हें पहुँचाने आया था। बड़ा उदास-सा लगता था...।

शालिनी—पहले तो मुझसे जिद करता रहा कि मैं घूँघट ऊँचाकर दूँ, क्यों मुँह ढाँके बैठी हूँ। जब मैंने कहा 'बाहर लोग खड़े हैं' तो पूछने लगा, 'तो क्या हुआ?' मैंने कहा, मैं बहू होगई हूँ, रंजन मैं पराया धन थी, अब सुसराल जा रही हूँ। उफ, कितना फूट-फूटकर रोया था रंजन! हाय दीदी! तू मुझे छोड़कर मत जा। बोल दीदी, तेरा जाना सह नहीं सकता।'

मदन—तुमने क्या कहा था?

शालिनी—मैंने कहा, 'अभी तो नहीं, कभी-कभी आती रहूँगी।' तो बोला, "तेरा दूल्हा मुझे मालूम है मास्टर है। वह तुझे मारेगा और कभी घर नहीं आने देगा।"

मदन—हाँ, उस जमाने में मैं टीचर ही तो था। उससे किसने कहा?

शालिनी—बच्चे हर बात को बड़े ध्यान से देखते और सुनते हैं। किसी को कहते सुना होगा। फिर बोला, 'देख, तूने उन गोल अंगूरों की कसम खाई है। उन लाल सेवों की कसम खाई है। उन लटकती हुई आकाश-बेलों की कसम खाई है। वे सब तेरे जाने के बाद मुर्झा जाएँगे।'

मदन—बात बड़ी समझदारी की थी। फिर किस तरह माना?

शालिनी—मैंने उससे कहा कि अबकी बार मैं लौट-कर आऊँगी तो तेरे लिए बहू लेती आऊँगी! तुनककर बोला—'दीदी, मैं तुम्हारी तरह झूठा नहीं हूँ। मैं पराई लड़की को दुख नहीं पहुँचाऊँगा। मैं उसे उसकी माँ से नहीं छुड़ाऊँगा। उसको घर से अलग नहीं करूँगा। मैं शादी नहीं करूँगा। मैं कसम खाता हूँ' और उसने कसम खाई।

मदन—क्या कसम खाई?

शालिनी--उसने अपनी कसम खाई।

मदन--अपनी कसम ?

शालिनी--हाँ, मैंने कहा 'भले बच्चे कसमें नहीं खाते।', तो बोला, 'हर चीज भले बच्चों के नाम पर तू मुझसे छिपाया करती है।' फिर मैंने कहा, 'अच्छा, तू मेरी कसम खा ले।' बोला, 'नहीं, तेरी कसम नहीं खाऊँगा।

मदन--तुमने पूछा था क्यों ?

शालिनी--बोला, 'तूने झूठी कसम खाई थी। उन पीले अंगूरों के गुच्छों की--उन लाल सेवों की, उन लटकती हुई आकाशबेलों की। वह तो अब मुर्झा ही जाएँगी। पर जो तेरी आँखें हैं न अंगूर के किटकिन्नेदार पत्तों की तरह। तेरे गाल हैं न अंगूरों की तरह पीले, सेवों की तरह लाल और तेरे लम्बे बाल हैं न आकाशबेलों की तरह, सो मुझे उन असली चीजों के मुरझाने के बाद मेरा मन जो बहलाएँगे, पर तू जा जो रही है। खैर, तू जा, पर तुझे मेरी कसम है। कभी अपनी इन चीजों की कसम मत खाना। नहीं तो ये सब मुरझा जाएँगी और तू मर जाएगी। मैं बहुत रोऊँगा। अब तू जा। झूठी कहीं की।'

मदन--बेचारा रंजन !

शालिनी--मैंने पूछा 'रंजन, तू आज बार बार क्यों अपनी कसमें खा रहा है ?' बोला, 'मुझे मैं खुद बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। क्योंकि मैं अकेला हूँ और मेरे मर जाने से किसी की सुन्दर चीज नहीं मुर्झाएगी क्योंकि मैं सुन्दर नहीं हूँ। मेरा चेहरा बिल्ली की तरह बदनुमा है और मेरे दाँत एक के बाद एक टूटते जा रहे हैं और ये जो दाँत उग रहे हैं टूटे घड़े के ठीकरों की तरह हैं। अब तू जा न, झूठी कहीं की।'

मदन--उस दिन शायद वह पहली बार तुमसे लड़ा था !

शालिनी--शायद जीवन में पहली बार किसी इन्सान से उलझा था। मैंने कहा, तू मुझे झूठी क्यों बार-बार पुकारता है। तो बोला--'तो क्या सभी लड़कियाँ तेरी तरह ही झूठी होती होंगी। मेरी बहू भी किसी रंजन से लाखों झूठ हजारों कसमें खाकर रोती हुई मेरे घर में आएगी। मैं झूठ पर गुस्सा करता हूँ। मैं सब लड़कियों को झूठा समझता हूँ। सब लड़कियों पर गुस्सा हूँ।'

मदन--तो उसका लड़कपन, जब वह होस्टल में रहता था, तब भी गया नहीं था। मैंने एक दिन उससे तुम्हारे कहने पर कहा कि क्या वह अपनी शालिनी दीदी से मिलेगा--तो बोला 'शालिनी ? हाँ, उसकी ही तो मुझे याद है। वह थी एक हमारे भले पड़ोसी की बुरी लड़की।'

शालिनी--क्या उसने बुरी लड़की कहकर मुझे पुकारा था।

मदन--हाँ, कहता था कि वह मुझे बहुत प्यार करती थी पर प्यार से अधिक झिड़कती थी और हर बात मुझसे छिपाती थी और बार-बार झूठ बोलती थी।

शालिनी--तो आपने क्या कहा ?

मदन--मैंने कहा रंजन, आज हम नए सिरे से परिचय करें। मैं तुम्हारा वार्डन पीछे और शालिनी का पति होने के नाते जो कुछ भी तुम पुकारना चाहते हो या जो कुछ भी मैं हूँ, वह हूँ।

शालिनी--तो फिर क्या कहने लगा ?

मदन--कहता था, 'वार्डन साहब, मुझे क्षमा करें। मैं किसी शालिनी नाम की लड़की या पत्नी को नहीं जानता। क्षमा करें, मैं आपसे झूठ बोला था।' और वह अपने कमरे में जाकर बहुत देर तक अपनी किताबें पटकता-फाड़ता रहा था।

शालिनी--उफ् !...और जब दूसरे दिन मैंने फिर उससे खाने पर आने के लिए कहलवाया तब भी तो ऐसा ही कुछ कहा था।

मदन--हाँ, कहता तो था, उसे स्त्रियों के सामने भोजन करने में शर्म आती है।

हेमनलिनी--(इस बीच कैम्प से निकलकर आती है) भैया, खाना तैयार है।

मदन--हाँ हेमा, चलते हैं, बैठो। (हेमा एक कुर्सी पर बैठ जाती है)

शालिनी--रिजर्व-सी तबीयत तो उसकी बचपन से थी।

हेमनलिनी--और कुछ रिजर्व वे बन भी जाते थे।

शालिनी--वह किसी से बात करना कम ही पसन्द करता था शायद। या वह अपनी जान-पहचानवालों का दायरा बहुत सीमित रखना चाहता था।

मदन--एक दिन मैंने कहा था कि शायद तुम शालिनी से नाराज हो तो मैं वादा करता हूँ कि वह तुमसे बोलेगी नहीं। चुपचाप बैठी रहेंगी। तो बोला क्या झूठ बोलना शालिनी से सीख रहे हैं आप ? जब सामने आएगी तो वह जरूर बोलेगी—और ?

शालिनी - और···और क्या ?

मदन -बोला, 'आप मुझे अधिक तंग न करें। मेरी कुछ अपनी टेकनिकल कठिनाइयाँ हैं।'

शालिनी—मैंने कई बार हेमा को भी उसके रूम में भेजा था कि वह बुला लाए। एक दफा हेमा तुम गईं थीं तो क्या कहता था ?

हेमनलिनी—कि आखिर आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हैं ? दूसरी बार बोले —कहिए तो कहीं भाग जाऊँ। मैंने पूछा था कि भागकर कहाँ जाएँगे ? तो कहने लगे डिगरी लेने के बाद वनवास करेंगे—

मदन—डिगरी के बाद वनवास ?

हेमनलिनी—हाँ, कहते थे कि जैसे तुम्हारे मास्टर भैया प्रोफेसर या वार्डन हो जाने में उन्नति समझते हैं, ऐसे ही मैं इन्सानों की आबादी से दूर जंगली जीवन को महत्व देता हूँ। इन्सान का असली घर जंगल है। शहर की जिन्दगी नकली और गन्दी है।

मदन—पढ़ने से वह बाकपटु तो जरूर हो गया था।

शालिनी--हाँ, मैंने कहलवाया था कि फिर उसमें और पशु में क्या अन्तर रह जाएगा ? तो बोला--इन्सान भी तो हैवान ही है और उसे इन्सान केवल इसलिए कहते हैं कि वह दो टाँगों से चलता है।

मदन--और, एक दिन वह तुम्हें और हेमा को बाजार में भी तो मिल गया था; क्यों न हेमा ?

हेमनलिनी—भाभी ने कहा, तुम्हारे अन्तर में क्या अपनी दीदी के लिए इतना भी प्यार नहीं है कि दो मिनट को आकर उसका चेहरा भी देख जाते। रंजन बाबू ने पलक झुकाए-झुकाए कहा--'दीदी, ऐसा तो मैंने न कभी सोचा, न सोचूँगा।'

मदन--फिर ?

शालिनी—तो मैंने दुखी होकर कहा, रंजन, मैं उन औरतों की तरह नहीं हूँ, जो किसी दूसरे घर के जवान लड़कों को देखकर यह सोचने लगती हैं कि इसका विवाह कुबे की किस लड़की के साथ कराया जा सकता है।

मदन-- तब क्या बोला ?

हेमनलिनी--भाभी से कहने लगे--'झूठ तो मैं बोला नहीं करता, दीदी ! पर इतना जानता हूँ कि मैं उन चारदीवारों के बीच जाना पसंद नहीं करता, जहाँ स्त्रियाँ भी रहती हैं' और वे उसी तरह आँखें नीची किए पलक झुकाए आगे बढ़ गए। हमने उन्हें मुड़कर देखा। उन्होंने रूमाल निकाला। आँखों पर लगाया। उनके कन्धे हिल रहे थे। वे बुरी तरह रोते-सिसकते चले जा रहे थे। अरे ! (ध्यान बँटते हुए) वह कल्लू क्या देख रहा है। उधर ? वह कौन आ रहा है ?

मदन--किस तरफ ? (अपना चश्मा लगाते हुए) जरा चश्मा लगा लूँ। दूर-दृष्टि जरा कमजोर है।

शालिनी—यह क्या कहने की बात है। वह तो है ही।

मदन—ठीक कह रही हो, मैं पुरानी बातों को अक्सर दोहराया करता हूँ और तुमने अपनी पुरानी बातों की जीवन-झाँकी आज पहली बार दी है। (गौर से दूर की झाड़ियाँ देखते हुए) अरे, यह तो कोई पागल-सा आदमी है। बड़ी दाढ़ी है। बड़ी-बड़ी मूछें। सर के बाल जैसे बढ़ रहे हैं।

कल्लू--अरे साब, रंजन बाबू लौटे आ रहे हैं !

शालिनी – सच ?

हेमनलिनी—हाँ भाभी, रंजन बाबू ही तो हैं।

मदन—चलो, तुम्हारी मेहनत सफल होती दिखाई देती है। उसके हाथ में बन्दूक नहीं है।

शालिनी--देखिए, वह उलझ रहे हैं कल्लू से। शायद रुपया माँग रहे होंगे या कारतूसें। मैं बुलाती हूँ। रंजन-रंजन-इधर आ रंजन !

रंजन—(दूर से) कौन पुकार रहा है ? पास आकर-- कौन तुम ? शालिनी (रुककर) दीदी, वार्डन साहब और आपकी बहन हेमा·····।

(ऊँची आवाज में बिगड़ते हुए) मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप लोगों का इस तरफ आना केवल एक घटना है या आप लोग जान-बूझकर मेरी शान्ति भंग करने यहाँ तक आए हैं ? मैं आप लोगों से कहे देता हूँ कि मैं एक निहायत खतरनाक आदमी हूँ और मैं नगर, समाज या इन्सान के बनाए किसी कानून को नहीं मानता।

शालिनी—(आशा के स्वर में) रञ्जन ! इस कुर्सी पर बैठ जाओ। (हेमा एक तरफ खड़ी हो जाती है)

रंजन—दीदी, मैं बैठने नहीं आया हूँ। मुझे बन्दूक की जरूरत थी। वह मैं कल्लू से लेने आया हूँ।

शालिनी—तुम्हारी अपनी बन्दूक क्या हुई ?

रंजन—एक भील चुरा ले गया। कहता था कि वह शिकार बनने को तैयार है। मैं उसे पैसा आज कल्लू से दिला देता। सुबह वह मेरे सब कारतूस और बन्दूक लेकर चम्पत हो गया। शायद वह तीर-कमान से मुझसे शिकार नहीं खेलेगा, इसलिए बन्दूक उठा ले गया है और बारह घण्टे बाद वह मुझे खोजता हुआ आकर मुझसे लड़ेगा—आप लोगों के पास एक बन्दूक होगी ?

शालिनी—हाँ है, तू बैठ तो जा। मैं दूँगी तुझे बन्दूक। (रंजन जमीन पर बैठता है)

रंजन—पर कब ? मुझे जल्दी जंगल में वापस लौट जाना है। आज इतनी मेहनत के बाद खतरनाक शिकार मिला है।

कल्लू—रञ्जन भैया, वह भील बन्दूक मुझे दे गया है और वह कभी भी इस तरफ नहीं आएगा—काहे को पागल हुए हो ?

रञ्जन—(आश्चर्य से, क्या ?

शालिनी—रञ्जन ?

रञ्जन—(डूबी आवाज में) उफ दीदी, अब क्य करूँ ?

शालिनी—(रंजन के सर पर हाथ फेरती हुई) मैं दूँगी खतरनाक शिकार। क्यों व्याकुल होता है। हाय तेरे बाल कैसे बेजा तरीके से बढ़े हुए हैं। अरे राम ! इन बालों की लटें बन गई हैं।

रञ्जन—और उसमें काँटे भी हैं। दीदी, मत बीन काँटे। मुझे फूलों से प्यार नहीं है।

शालिनी—क्यों रे, कब से ऐसा कठोर हो गया है ?

रञ्जन—जब से दुनिया को पहचाना है।

शालिनी—अरे, देखिए तो, कितने घाव हैं इसके बदन पर। बड़ी कँटीली हैं इस वन की झाड़ियाँ। (शालिनी हाथ फेरती हैं, फिर नीचे आ बैठती है।)

रञ्जन—ओह ! (दर्द के मारे)

शालिनी—क्या है रञ्जन ?

रञ्जन—शायद कोई काँटा है पैर में। रहने दो, क्या लेगा काँटा।

शालिनी—ला पैर, इधर देखूँ, (रंजन पैर नहीं फैलाता) कहना मानो—

(रंजन पैर फैलाता है)

रंजन—(शालिनी काँटा खींचती है) आह—ओह—ओह दीदी काँटे मत खींचो, दीदी। काँटा निकल जाने पर बड़ा दर्द होता है।

शालिनी—हेमा ! जरा सुई तो ले आ—(मदन से) देखिए, कितने काँटे हैं इसके तलुओं में (शालिनी स्वयं रोने लगती है)

रंजन दीदी, तू रो रही है ? तू क्यों रो रही है। तू मत रो। यह सब कुछ मेरा दुर्भाग्य नहीं है दीदी, सुभाग्य है। इन्सान की इच्छा दुनियाँ में पूरी कब होती है। मैं एक भाग्यवान् आदमी हूँ। अच्छा, अब मैं चला, दीदी ! (ऊँची आवाज से) कल्लू ! तुम पैसे ले आए ! गाँव बेच दिए !

शालिनी—कल्लू को क्यों परेशान कर रहा है रंजन, कहाँ उठकर चला ?

रंजन—दीदी, मुझे मत रोको !

शालिनी—(उठ खड़ी होती है) नहीं, तू अभी कैसे जाएगा ! अभी तो तू खाना खाएगा। हेमा ने तेरे लिए बहुत अच्छा खाना बनाया है।

रंजन—पर दीदी, मैं खाना जो नहीं चाहता।

शालिनी—नहीं, तुझे आज दीदी के हाथ से खाना ही होगा। फिर तू खतरनाक शिकार जो खेलेगा। तेरे मस्तक पर मंगल तिलक जो करूँगी।

रंजन—तो कहाँ है वह शिकार ?

शालिनी—मैं दूँगी ?

रंजन—तुम दीदी, झूठ बोला करती हो।

शालिनी—आज झूठ नहीं बोलूँगी। आज ही तो तुझे स्वयं को खोलकर दिखाना है। आज तुझे छोड़ूँगी नहीं। चल तू खाना खा ले।

रंजन—पर मेरा वह शिकार कहाँ है ?

शालिनी—वह भी तेरे सामने आ खड़ा होगा।

रंजन—पर कब ?

शालिनी—जब तू मेरे इम्तहान में पास हो जाएगा।

रंजन—अगर न पास हुआ तो ?

शालिनी – तुझे हेमा से विवाह करना होगा।

रंजन – यह शर्त बहुत कड़ी है। मैं इस शर्त पर तुम्हारे इम्तहान में...

शालिनी – तो फिर तुम्हें इस धरती पर शिकार नहीं मिलेगा।

रंजन – नहीं मिलेगा! नहीं दीदी, मिलेगा। मैं किसी भी कीमत पर तैयार हूँ।

शालिनी – और तू झूठ और झूठ बोलनेवालों से घृणा करता है। याद रख, तू वचन दे रहा है कि तू इम्तहान में फेल होने पर हेमा से विवाह कर लेगा और घर वापस लौट चलेगा।

रंजन – अच्छी बात है, मैं तैयार हूँ।

शालिनी--अच्छा तो चल, खाना खा ले।

रंजन – नहीं दीदी, पहले इम्तहान ले लो न?

शालिनी – कल्लू (पुकारकर) रंजन को बन्दूक ला दो। (कुछ देर बाद) -- अच्छा, चल उस झाड़ी में।

मदन – प्रोफेसर मदन हमेशा की तरह इन्तजार करता रहेगा। क्यों न हेमा?

(हेमा सर झुका लेती है)

शालिनी – चलो रंजन, उठाओ बन्दूक।

रंजन – दीदी!

शालिनी – क्या?

रंजन – क्या इम्तहान यहाँ नहीं हो सकता?

शालिनी – हो सकता है। आप लोग कैम्प में बैठिए।

(कल्लू, मदन और हेमा कैम्प में जाते हैं)

रंजन, उठाओ बन्दूक! (रंजन बन्दूक उठाता है) लो, लगाओ निशाना। हाँ हाँ, मेरे सीने पर मारो गोली।

रंजन – (दूर से) दीदी! (व्यथित स्वर में)

शालिनी – (अपना आँचल तनिक सरका लेती है) लो, मैंने तुम्हारी गोली की राह सरल बना दी है।

रंजन – (चीखकर) दीदी –

शालिनी – (आज्ञा के स्वर में) मारो गोली; मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ; मारो गोली –

रंजन -- (दूर से) नहीं दीदी! यह मुझसे न होगा। दीदी, ईश्वर के लिए अपना यह रूप मुझे न दिखाओ। मैं सदा तुमसे हारता आया हूँ।

शालिनी – डर गए क्या?

रंजन – डर नहीं रहा हूँ। (बन्दूक फेंककर पास आता है) दीदी; यह तुम्हारी अंगूर के पत्तों जैसी किट-किन्नेदार आँखें, सेब की तरह लाल गाल, आकाशबेल जैसे केश, सब मिटाए नहीं जाएँगे। दीदी, यह मिटाने की चीज नहीं है। नहीं दीदी, मुझे क्षमा करो दीदी। मैं हारा, दीदी – फिर एक बार हारा और हेमा से भी हारा – संसार की हर झूटी लड़की के आगे हार मानता हूँ।

शालिनी--(वस्त्र ठीक करती है) अजी, सुन रहे हो। बाहर आओ। अपने होनेवाले बहनोई के गले में फूलों की माला तो डाल जाओ--

(मदन, कल्लू और हेमा बाहर आते हैं। प्रो० मदन के हाथ में फूलों का हार है; वह उसे रंजन के गले में डालना चाहते हैं)

शालिनी – आप नहीं, हेमा डालेगी पहले हार!

(हेमा शरमाती है और गर्दन झुका लेती है)

मदन—शालिनी, हार तो डालने ही हैं इसके गले में। अब जल्दी करो। शहर पहुँचना है। उधर जंगल के दूसरे किनारे पर मोटर रुकी है।

कल्लू—साब, खाना लगा दूँ, खा लीजिए। फिर शहर तो चलेंगे ही, तैयार है खाना।

मदन—तो चलो भाई डेरे में। आज शरमाओगे तो नहीं--रंजन?

रंजन—मैं भी झूठ बोलना सीख गया हूँ--जरूर शरमाऊँगा!

(पर्दा गिरता है)

★ ★ ★

गीता का मनोवैज्ञानिक कायाकल्प

श्री कुमार योगी, एम० ए०

आत्माभिव्यक्ति जीवन की शर्त है। अपने आस-पास की परिस्थिति के प्रति वैयक्तिक जीवन की जो प्रतिक्रिया होती है, उसमें अहंकार के साथ-साथ व्यक्तित्व के भी तकाजे होते हैं। सारा चेतन जगत् जिस अनुभूति क्षेत्र को अपनी पार्श्वभूमि मानकर चल रहा है, उसमें व्यक्ति के अहंकार के सिवाय और कौन-सा प्रदर्शन है! और जैसे-जैसे हम जीवन की गहराई के समझने का प्रयत्न करते हैं, हमारी चेतना पर यह स्पष्ट होने लगता है कि प्रत्येक व्यक्ति का जीवन अपना निजी जीवन है और यह भी कि सारा जीवन कर्मों के ताने-बाने की कृति है। दूसरे शब्दों में कर्म ही जीवन है। कर्म से इन्कार अपने अस्तित्व से इन्कार है। अतः कर्म-जीवन 'धर्म' है। गीताकार तो कर्म को स्वाभाविक मानकर जीवन का पर्याय बना देते हैं :—

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

गी० अ० ३ श्लोक ५

भारतीय विज्ञानानुसार प्रकृति में तीन गुणों की स्थापना है। इन तीन गुणों की संयुक्त स्थिति पर ही देह की स्थिति है। इनमें से किसी गुण के नितान्त अभाव से देह का रहना भी असम्भव है। यही इस सृष्टि का स्वभाव है।

किन्तु सांख्य एवं कर्मसंन्यास को प्रधानता देनेवाले अन्य दार्शनिक कर्म को बंधन-स्वरूप मानते हैं और कर्म-संन्यास को परमानन्द की प्राप्ति का साधन मानते हैं। यह विचार-धारा मनस्तत्त्व के सूक्ष्म विश्लेषण पर आधारित है और वैज्ञानिक तर्क की अपेक्षा इसमें हृदय को स्पर्श करनेवाले रागात्मक हेतु का अभाव सा रहा है। यही कारण है कि सामान्य जन-समाज को इसने भ्रम में डाल दिया और इस भ्रान्तिमूलक दृष्टिकोण से हमारी निवृत्तिमार्गीय दर्शन-परम्परा तिरस्कार का लक्ष्य बन गई। अर्जुन जैसा जिज्ञासु और श्रद्धालु विद्वान् भी इस भ्रांति से अछूता नहीं रह सका। तीसरे अध्याय का प्रथम श्लोक अर्जुन की भ्रांत धारणा की ही अभिव्यक्ति करता है :

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥

—गी० अ० ३ श्लो० १

गीता का दर्शन मूलतः कर्मदर्शन का ही भाष्य है। इसमें कर्म के अंग की सूक्ष्म विवेचना की गई है—प्रत्येक लड़ी को मनोविज्ञान की पारदर्शी आँखों से देखा गया है। कर्म को गीताकार जीवन की मूल इकाई मानकर चलते हैं। उसे स्वाभाविक मानते हैं। अतः कर्म से पलायन उनके तर्क में स्वभाव-विरुद्ध है। उससे स्वभाव की अवहेलना होती है। और प्रकृति के विरुद्ध जाना किसी प्रकार श्रेयस्कर नहीं हो सकता। उसकी प्रतिक्रिया मानसिक स्वास्थ्य के लिए बड़ी भयानक होती है। आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान ने मानसिक रोगों की उत्पत्ति और विकास के क्षेत्र में जो नई-नई खोजें की हैं, उन सबका यही निर्देश है कि कर्मों के प्रतिकूल आचरण करने से व्यक्ति की मनोवृत्ति ही विकृत नहीं हो जाती, बल्कि उसकी प्रवृत्तियाँ भी विषाक्त हो जाती हैं। क्योंकि व्यक्ति का स्वास्थ्य संतुलन पर आधारित है। मन और शरीर की क्रियाओं में सामञ्जस्य शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य की ही शर्त नहीं है वरन् आनन्दमय जीवन की भी बुनियाद है। दोनों में विपर्यय खतरे की घंटी है शक्ति का अपव्यय है और जीते जी मृत्यु है। क्योंकि शरीर के निश्चेष्ट रहने से मन की क्रियाएँ तो रुकने से रहीं। जो शरीर बलात् छोड़ेगा, मन पर उसकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी; मन उसकी पूर्ति अपने ढंग से करेगा। इस प्रतिक्रिया में चेतना के लिए एक आघात रहता है, जिससे उसमें विकार पैदा होता है। हठपूर्वक व्यक्ति बाहर के संसार से पृथक् होने की चेष्टा करता है किन्तु इसके साथ ही-साथ उसके अन्तःकरण में एक नया संसार बनने लगता है। अजीब द्वन्द्व की हालत पैदा हो जाती है। व्यक्ति जिसका निषेध बाह्यरूप से करता है, आंतरिक रूप में उसी का निर्माण भी करता है—बाहर से वह सुलझता है किन्तु भीतर से उलझन की गांठें दृढ़ होती जाती हैं। मनोविश्लेषण की दृष्टि से ऐसा व्यक्ति स्वयं अपने लिए ही क्षतिप्रद नहीं है वरन् समस्त समाज के लिए बुनियादी खतरा है। गीताकार ने 'मिथ्याचारी' और 'विमूढात्मा' कहकर ऐसे हठधर्मियों की जो निन्दा की, वह सर्वांश में

उचित है। गीता-कर्मदर्शन के विवेचन में यह श्लोक बड़ा महत्त्वपूर्ण है। गांधीजी के कर्मदर्शन का तो सारा तात्त्विक आधार यह श्लोक ही है। मनोविज्ञान की जटिल गुत्थी को यहाँ बड़ी सरलता से समझा दिया गया है :—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इंद्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

इस श्लोक में गीताकार ने कर्मदर्शन के सारे सूत्र सुलझाकर सामान्य जन समाज के सामने रख दिए हैं। सरल भाषा में, कर्म गुणदोषमय है ज्ञान-संचालित कर्म बंधन से मुक्त करता है और अज्ञान-प्रेरित कर्म बंधन में बाँधता है। अज्ञान-प्रेरित कर्म इसलिए बाँधता है कि वह आचरण के नतीजों को भली-भाँति नहीं तोल पाता है। उसमें अनावश्यक प्रयत्न खर्च होता है और बाह्य संसार से बहुत ज्यादा प्रतिक्रियाएँ वह आमंत्रित करता है।

कर्म के साथ ज्ञान और अज्ञान का संयोग बुद्धि के निमित्त से है। बुद्धि ही कर्म की जननी है। अर्थात् बुद्धि जीवन की अभिव्यक्ति का साधन है, यंत्र है। हमारा क्षण-क्षण का जीवन आत्म-साक्षात्कार की मंजिलें तय करता हुआ आगे बढ़ता है। अतः हमारी प्रत्येक इच्छा, हमारा प्रत्येक कर्म जीवन की आत्माभिव्यक्ति के तकाजे की पूर्ति है। जीवन की इस इच्छा को, इस तकाजे को अनुभव न करना ही अज्ञान है। इस अनुभूति के अभाव में ही बुद्धि अज्ञान के कीचड़ में फँस जाती है और लक्ष्य खोकर कई बाहरी और भीतरी सीमाओं एवं द्वन्द्वों से आघात पाती है तथा जीवन में दुःख और मालिन्य उड़ेलती है। किन्तु जीवन के तकाजे को वहन करनेवाली बुद्धि प्रेय के सभी प्रलोभनों से निर्लिप्त रहकर, सारे अवरोधों का अतिक्रमण करती हुई आत्ममुक्ति के पथ पर बिना उद्वेग के बढ़ती जाती है। इस प्रकार का कर्म ही जीवन को हानिप्रद प्रतिक्रियाओं से बचा सकता है क्योंकि यहाँ बुद्धि या इच्छाओं का दमन नहीं, परिमार्जन है। उनके प्राकृतिक धर्म को अक्षुण्ण रखते हुए उन्हें अज्ञान-जन्य विकारों से मुक्त किया गया है। यहाँ मनुष्य की इन्द्रियों का बुद्धि पर अधिकार नहीं है, वरन् स्वयं बुद्धि इंद्रियों की स्वामिनी है। इस परिधि पर पहुँचकर व्यक्ति आत्मतत्त्व या उपनिषद् के 'अमृतत्व' को समझ लेता है। कठोपनिषद् में ऐसी परिमार्जित बुद्धि से सम्पन्न व्यक्ति का बड़ा मार्मिक विश्लेषण है :—

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नांतरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्व-मिच्छन् ॥
पराचः कामाननुयंति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥

अर्थात् "स्वयम्भू ने इंद्रियों के छिद्रों को बहिर्मुख बनाया है। यही कारण है कि व्यक्ति बहिर्द्रष्टा है, अंतर्द्रष्टा नहीं। कोई-कोई धीर व्यक्ति ही इंद्रियों से निःसंग होकर अंतरात्मा को देखने का सामर्थ्य प्राप्त करता है। अज्ञानी लोग इंद्रियों के वशीभूत होकर बाह्य विषयों में फँस जाते हैं और मृत्युपाश से मुक्त नहीं हो पाते। किन्तु विवेकी व्यक्ति 'अमृतत्व' का अनुभव करता हुआ क्षणभङ्गुर विषयों की भी आकांक्षा नहीं रखता।"

गीताकार ने बुद्धि-परिष्कार के इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देकर सर्वसाधारण के लिए काफी बोधगम्य बना दिया है। श्रीकृष्ण ने कर्म को आत्मशुद्धि की साधना का रूप दे दिया है, जिससे आत्मसाक्षात्कार का मार्ग सर्व-साधारण जन-समाज के लिए भी सुलभ हो गया है। ज्ञान-मार्ग का सम्बन्ध विद्वत्ता के अवलम्ब पर है, भक्ति मार्ग में भावना का विरागपरक अध्यवसाय है। सर्वसाधारण इन दोनों मार्गों का अवलम्बन निरापद रूप से नहीं कर सकते। अर्जुन इसी वर्ग के बेबस व्यक्तियों का प्रतीक है। गीता का मूल ध्येय ऐसे ही निरवलंब वर्ग को बलवान् और सीधा-सादा जीवन-दर्शन देना है। गीताकार कर्म एवं अकर्म का भेद दिखलाकर नियत कर्म पर जोर देते हैं। स्वधर्म को वे जीवन की आधार-शिला मानकर आगे बढ़ते हैं। स्वधर्म का महत्त्व समाज-विज्ञान के क्षेत्र में स्पष्ट है; सामाजिक स्वास्थ्य वैयक्तिक स्वास्थ्य का अन्योन्याश्रय है। स्वधर्म की तुला के पलड़ों में वैषम्य पैदा होता है तभी वैयक्तिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक जीवन में भी विकार फैलने लगता है। स्वधर्म को आत्म-कल्याण की उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित करते हुए श्रीकृष्ण ने वैयक्तिक जीवन को अनाचार से बचाने के साथ-साथ सामाजिक अराजकता को भी निर्मूल कर दिया है। गीता की 'ईश्वरार्पण बुद्धि' 'स्थितप्रज्ञ' की एकाग्रता

आदि शब्दावली परिष्कृत बुद्धि की ही द्योतक है। स्वधर्म में भी ईश्वरार्पण बुद्धि रखकर गीताकार ने मनुष्य के कमज़ोर भावपक्ष पर रक्षा का आवरण डाल दिया है। 'काम' के भीषण वेग को रोकने की शक्ति प्रायः मनुष्यों में नहीं होती। गीता में काम को दुर्जेय तक कहा है। ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म-क्षेत्र में विचरण करने के आदेश के पीछे श्रीकृष्ण का काम के विध्वंसक रूप की ओर ही संकेत है। किन्तु गीता का कर्मदर्शन यहीं समाप्त नहीं हो जाता। ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने से बुद्धि का परिष्कार और अज्ञानमूलक अहंकार का दमन निश्चित है। किन्तु अन्तःकरण पूरी तरह निर्मल नहीं हो पाता। क्योंकि इस स्थिति पर भी कर्त्ता एवं कर्म का भेद नहीं मिट पाता, द्वैत का विकार बना ही रहता है। लोकसेवा-संग्रहार्थ कर्म करने का उपदेश देकर श्रीकृष्ण इस द्वैत की जड़ें काट देते हैं। वास्तव में फलासक्ति के दोषों का पूरी तरह परिहार इसी भूमि पर होता है।

इस परिणति पर बुद्धि निर्विकार हो जाती है। लोक-जीवन और वैयक्तिक सुखभोग की शर्तों को यहाँ तृप्ति मिल जाती है किन्तु गीता का यही मूल उद्देश्य नहीं है। गीता लौकिक जीवन की सफलता को ही अंतिम नहीं मानती। ईश्वरानुभूति गीता का उद्देश्य है। गीता का लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार है। बिना उस लक्ष्य के लोकसंग्रह के उद्देश्य की भी पूर्ति नहीं हो सकती। जीवन में निश्चित विश्वास की आवश्यकता है। जीवन के प्रति श्रद्धालु दृष्टि के बिना जीवन और लोकसंग्रह का अर्थ ही क्या? मनोविज्ञान के अनुभवी पंडित श्रीकृष्ण तत्कालीन दार्शनिक परम्परा के इस प्रवाह को पहचान गए थे।

कर्म को स्वाभाविक मानकर गीताकार कर्मों के परित्याग को दम्भ और आत्म-भ्रांति का रूपान्तर करार देते हैं। कर्म तो करना ही होगा, कर्म-चक्र से बचकर निकलना मृत्यु द्वारा ही सम्भव है, जीवन में नहीं। अतः अब समस्या यह आती है कि कर्म को इस प्रकार ग्रहण किया जाए कि जाल की भाँति बिछे हुए उसके आस-पास के बन्धन जीवन को अपने काबू में न कर सकें। विष को शोधकर अमृतोपम औषध बनाना होगा। श्रीकृष्ण कर्म-फल की इच्छा एवं कर्त्तव्य-सम्बन्धी अहंभाव के त्याग को नैष्कर्म्य की स्थिति के लिए आवश्यक मानते हैं। मुक्तसंग व्यक्ति की वे हृदय से प्रशंसा करते हैं और फल में आसक्ति रखनेवाले व्यक्ति को 'कृपण' कहते हैं। वस्तुतः गीताकार का अभिप्राय यह है कि कर्म अपने-आप में किसी को नहीं बाँधते। बन्धन का सम्बन्ध तो कर्मों के फलों एवं कर्तृभाव के साथ अहंकार-जन्य आसक्ति से है। इन्द्रियों का धर्म ही क्रियाशीलता है। अतः उनसे निश्चेष्टता की आशा करना भ्रांति है। वस्तु का स्वाभाविक धर्म नितान्त निर्मूल नहीं हो सकता। अतः इन्द्रियों की चेष्टा के मूल में जो हमारा दृष्टिकोण है, उसमें ही परिवर्तन करना होगा। कर्म को प्रकृति अपने तीन गुणों से सहायता करती रहती है। व्यक्ति तो एक पार्श्वभूमि या आधार-क्षेत्रमात्र है। अतः कर्म-चक्र में व्यक्ति का क्या योगदान? व्यक्ति कुछ भी नहीं करता। गीताकार इसी सत्य को अनुभव करने की चेतावनी देते हैं। इन्द्रियों के त्रिगुणात्मक कार्यों के मूल में व्यक्ति अपना कर्तव्य, अपना दायित्व, मानता है। गलती यहीं से होती है। त्रिगुणात्मक प्रकृति के जाल में फँसने का यहीं से प्रारम्भ होता है। इन्द्रियों एवं उनके विषयों का पारस्परिक सम्बन्ध राग-द्वेष पर आधारित है। यह राग-द्वेष फल के सम्बन्ध में अभिव्यक्त होता है। अतः यदि व्यक्ति फलासक्ति से मुक्त हो जाता है तो परिणामतः वह राग-द्वेष से भी परे हो जाएगा। राग-द्वेष ही व्यक्ति को अपने पथ से विचलित करते हैं:—

> इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
> तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ॥
>
> गी० ३ अ०, ३४ श्लोक

यहाँ श्रीकृष्ण प्रचलित दार्शनिक सिद्धान्तों का बड़ा मधुर समन्वय कर डालते हैं। त्रिगुणात्मक प्रकृति सांख्य की देन है और वेदान्त की माया उसका नामान्तर है। त्रिगुणातीत होने का उपदेश देकर श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृति की समन्वय-साधना को मूर्त कर देते हैं। कर्म-संन्यास के मार्ग को भी यहाँ समुचित मान्यता मिल जाती है। प्रवृत्ति और निवृत्ति का परस्पर भेद तिरोहित हो जाता है। भारतीय दर्शन-परम्परा का यही यथार्थ है। विश्व में जो अनैक्य दीखता है, उसके भीतर ऐक्य का ही मूलाधार है। यहीं सिद्ध होता है कि सत्य एक है और अविभाज्य है।

मनोविश्लेषण की दृष्टि से भी यह मार्ग श्रेयोन्मुखी है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों एक दूसरे के परस्परपूरक हैं, एकान्त रूप में दोनों अपरिहार्य हैं। दोनों में से एक भी मिटाई नहीं जा सकती। कर्म-फलासक्ति के परित्याग में दोनों को एक-दूसरे की शुद्धि का महत्त्व दिया है। विष को विष से बुझाया गया है। कर्मों की प्रतिक्रिया के बीज यहाँ नष्ट हो जाते हैं। अर्जुन के मानसिक रोग का निदान श्रीकृष्ण ने बड़ी चतुराई से किया है। अर्जुन में समता-भावना का अभाव था। समत्व-भावना के अभाव में व्यक्ति के मनोभाव प्रतिगामी हो जाते हैं, जिसका परिणाम मानसिक अशांति एवं अन्य सहयोगी रोग होते हैं। जरा-जीर्ण रूढ़ियाँ, शास्त्रों का बाह्य अर्थवाद और कर्मकांड के क्रिया-चक्र इन रोगों को और दारुण बना देते हैं। महाभारत काल में हमारे समाज के अंतर्गत ये सारे दोष विद्यमान थे। गीता के कर्म-दर्शन में इन सबका परिहार है। युग की यह आवश्यकता थी।

अर्जुन की मानसिक अवस्था का विश्लेषण करने से हमें ज्ञात होता है कि जीवन भर अभावों से घिरे रहने के कारण उसमें घोर नैराश्य का प्रवेश हो गया था। अर्जुन इस प्रतिक्रिया को अनुभव नहीं कर पा रहा था। वह इसे सन्तोष समझ रहा था। यह भ्रांत सतोष ही उसे विवश कर रहा था कि युद्ध न करे, उसे स्वर्ग या राज-भोग की इच्छा नहीं होनी चाहिए। मानसिक संतुलन और अस्वास्थ्य का यह स्पष्ट उदाहरण है। काफी संताप और संकट झेलने के बाद वह जीवन से भयभीत हो गया था। परिवर्तन से वह डरता था। उसे आशंका थी कि कहीं परिवर्तन और अशान्ति और अधिक संताप न ले आएँ। स्पष्ट है कि यह विवेक की दृष्टिकोण नहीं है। पराजित मनोवृत्ति का ही यह नग्न चित्र है। अर्जुन इसे चाहे जितना श्रेयस्कर समझ रहा हो किन्तु जीवन का यह प्रकृत सम्मान नहीं था, उपेक्षा थी। स्वाभाविक चेतनाओं के तकाजों को न सुनना क्या जीवन का अपमान करना नहीं है? शरीर के अनिवार्य आवाहनों को न सुनना क्या पाखंड नहीं? अर्जुन अपने को तपस्वी और सच्चा मानकर स्वयं को धोखा दे रहा था। भीष्म, द्रोण एवं अन्य बन्धु बान्धवों को न मारकर वह और भी धर्मचेता बनने का ढोंग कर रहा था। श्रीकृष्ण ने इस रोग का बड़ी सफाई से उपचार किया। उन्होंने अर्जुन को पौरुष का मार्ग बताया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को राजी कर लिया कि बलपूर्वक अपने स्वत्व को छीन लेना कोई पाप नहीं है। आततायी मनुष्य-वर्ग से हिसाब समझना अन्याय नहीं है। गीता की विशाल इमारत के शिलान्यास का मूलभूत आधार यही है। यहाँ जीवन के आध्यात्मिक कायाकल्प के साथ-साथ श्रेयोन्मुख सामाजिक निर्माण और उत्कर्ष के तत्त्वों का भी बड़ा हृदयग्राही विश्लेषण हो गया है।

रेडियो रूपक

त्याग या ग्रहण

श्री चन्द्रशेखर नागर

मुख्य पात्र

१—लाला बिशुनदयाल ... ... उम्र लगभग ६० वर्ष
२—मनोहरदयाल (बिशुनदयाल का पुत्र) ,, ,, ३० वर्ष
३—पार्वती (बिशुनदयाल की पत्नी और मनोहर की माँ) ,, ,, ५० वर्ष
४—लीला (मनोहर की पहली पत्नी) ... ,, ,, २१ वर्ष
५—आनन्दी (,, ,, दूसरी पत्नी) ... ,, ,, १९ वर्ष

इनके अतिरिक्त, शरणार्थी कैंप के स्वयंसेवक, अस्पताल का चपरासी, आदि।

लाला बिशुनदयाल [आप ही आप]—"आज पूरा साल भर हो गया पर अभी तक दो में से किसी का पता न चला। नहीं, इस जीने में अब कोई लुत्फ नहीं रह गया। इससे तो मौत अच्छी। कैसी मनहूस घड़ी थी वह? इन्सान इन्सान के खून का प्यासा बन गया। अपने बेगाने हो गए। घर-बार सब

छूट गया। कल जो महलों में रहते थे, आज तकदीर की गर्दिश में पड़कर सड़कों पर भिखमंगों की तरह पड़े हुए हैं—और वे आवारा, शोहदे और हमारे टुकड़ों पर पलने-वाले बुर्दाफरोश भिखमंगे आज हमारे घरों पर कब्जा जमाए बैठे हैं। पुश्त-दर-पुश्त की हमारी मिल्कियत आज उनकी है। उन मकानों की एक-एक ईंट में हमारे बुजुर्गों की दुआएँ बसी हैं, जिनके साए में पलकर हम इतने बड़े हुए। कैसे सुख और शान्ति से रहते थे? लेकिन एक जलजले ने हमारे सब अरमानों को कुचल दिया। बीबी गई; बेटे की बहू गई और साथ-ही-साथ इज्जत भी गई। अब क्या लुत्फ रह गया इस जीने में? इससे तो मौत अच्छी।"

[आनन्दी का प्रवेश]

आनन्दी—'बाबूजी!'

बिशुनदयाल—'हाँ, बेटा, क्या है?'

आनन्दी—'यह आज का अखबार आया है बाबूजी।'

बिशुनदयाल—'लाओ, देखूँ, शायद भगवान् ने हमारी सुन ली हो।'

(लाला बिशुनदयाल के हाथ में आनन्दी अखबार देती है। वे उसे उलट-पुलटकर पढ़ते हैं और मोड़कर मेज पर रखते हुए कहते हैं।)

लाला बिशुनदयाल—"नहीं, आज भी कुछ नहीं। दुनिया भर के नाम छपते हैं इन अखबारों में पर हमारी दुहाई अभी भगवान् के कानों में नहीं पहुँची।"

[आनन्दी से]

बिशुनदयाल—"मनोहर आया, बहू?"

आनन्दी—"अभी नहीं आए, बाबूजी, आते ही होंगे।"

बिशुनदयाल—"आए तो उसे मेरे पास भेजना।"

आनन्दी—"जी, अच्छा।"

[मनोहर के ऊपर आने की आहट आती है।]

आनन्दी—"बाबूजी, वो आ गए।"

बिशुनदयाल—"अरे मनोहर!"

मनोहर—"जी, आया बाबूजी।"

[मनोहर दूसरे कमरे से चलकर आता है]

बिशुनदयाल—"बेटे, कहीं कुछ खबर मिली?"

मनोहर—"नहीं, बाबूजी, शहर के सभी शरणार्थी कैंपों और अस्पतालों में रोज जाकर तलाश करता हूँ—पर कहीं कुछ पता नहीं चलता।"

बिशुनदयाल—"अच्छा, जैसी ईश्वर की मर्जी। कभी तो सुनेंगे ही।"

* * *

[आनन्दी मनोहर को भोजन करा रही है]

आनन्दी—"आपने तो कुछ भी नहीं खाया।"

मनोहर—"खा तो रहा हूँ। थोड़ा पानी दो। (आनंदी गिलास में पानी देती है)।

आनन्दी—"कहाँ खाया? आपको तो लीला बहिन की चिन्ता नहीं खाने देती। न जाने कहाँ होंगी बिचारी! और पता नहीं, जिन्दा हैं भी या मर गईं।"

मनोहर—"नहीं आनन्दी, वह मरी नहीं, जिन्दा है। मेरी आत्मा कह रही है, वह एक दिन हमें जरूर मिलेगी।"

आनन्दी—"अच्छा, एक बात पूछूँ तुमसे। बुरा तो नहीं मानोगे?"

मनोहर—"पूछो खुशी से। तुम लीला से कम थोड़े ही हो। वह भी खाना खिलाते वक्त कभी-कभी बड़े अट-पटे सवाल पूछा करती थी।"

आनन्दी—"लीला बहिन की बात और थी। वह तो आज भी आपके मन में रमी हुई हैं। उनकी बराबरी मैं थोड़े ही कर सकती हूँ।"

मनोहर—'नहीं, ऐसा मत सोचो, आनन्दी। तुम्हें भी मैं लीला के समान ही चाहता हूँ। यह सच है कि मैं लीला को कभी भुला नहीं सकूँगा; पर जब तुम मेरी जिन्दगी में लीला का रूप लेकर आ ही गई हो तो तुम्हारी भाव-नाओं और तुम्हारे प्रेम का प्रतिदान मुझे देना ही पड़ेगा। हाँ, तुम कुछ पूछ रही थीं न?"

आनन्दी—'जो पूछना चाहती थी, उसका जवाब मुझे मिल गया।'

मनोहर—"मैं समझा नहीं आनन्दी।"

आनन्दी—'वाह! सब कुछ तो कह गए और अभी अनजान ही बने हैं।'

मनोहर—'तुम्हें मेरी सौगंध, आनन्दी। बताओ न क्या बात थी?"

आनन्दी—(कुछ भरे हुए गले से कहती है)—'कुछ नहीं। अक्सर सोचा करती हूँ—लीला बहिन अगर

आ गई तो मुझे विश्वास है कि आप उन्हें पहले की ही तरह अपने दिल में बसा लेंगे--लेकिन बाबूजी तो उनका जिक्र आते ही तीखे होने लगते हैं। कहते हैं—जो एक बार चला गया, वह फिर लौटकर नहीं आता। औरत की आबरू ही उसका सब कुछ है। मोती की आब एक बार गई सो गई। वह क्या अब हमारे काम की रह गई है ?"

मनोहर—"मैं जानता हूँ। मुझे भी यह उपदेश कई बार दे चुके हैं। अपने स्वार्थ-साधन में मनुष्य दूसरे के अधिकारों का गला भी घोंट देता है। लीला के लिए उनके घर में जगह नहीं है। लेकिन माँ के लिए कितने बेचैन रहते हैं। यह मुझे अच्छी तरह मालूम है कि एक दिन खुल्लम-खुल्ला मुझे उनसे लड़ना पड़ेगा। अपने संकल्पों और आदर्श की रक्षा में मुझे घर भी छोड़ना पड़े तो पीछे नहीं हटूँगा।"

आनन्दी– 'और तब मेरा क्या होगा ?"

मनोहर-- तुम भी मेरे साथ चलोगी। तुम्हें कैसे त्याग सकता हूँ ? और तब मैं एक मन्दिर में दो देवियों की उपासना करूँगा। (कुछ रुककर कहता है) अच्छा अब मैं चला। मुझे एक जगह जाना है।" [मनोहर का निष्क्रमण]

आनन्दी--"हे ईश्वर ! क्या दुनिया के सारे पुरुष इनकी तरह नहीं बन सकते ?"

* * *

[लाला बिशुनदयाल लिहाफ में लिपटे अखबार पढ़ रहे हैं। आप-ही-आप कहते हैं-]

बिशुनदयाल--"उफ रे ! दिल्ली की सर्दी। आज तो उंगलियाँ अखबार पढ़ने ही में ऐंठी जा रही हैं। उस पर अब ऊपर से घिरा है। धूप में कम-से-कम उँगलियाँ तो नहीं ऐंठतीं। (अखबार को खोलने और उलटने-पलटने की आवाज आती है--फिर यकायक पढ़ते हुए चौंककर कहते हैं—] ऐं! यह क्या ?' (पढ़ते हैं) -"लीलावती धवन, पत्नी मनोहरदयाल धवन, कटरा बाबा जयमल अमृतसर की रहनेवाली— शरणार्थी शिविर के अस्पताल में बीमार पड़ी है। उसके घरवाले सुना है-दिल्ली में हैं। इन्सानियत के नाते सरकार उनसे तकाजा करती है कि वे इस वीर महिला को, जिसने अपनी अस्मत बचाने के लिए जान की बाजी लगा दी-इज्जत से घर ले जाकर रक्खें।"

(अखबार को लपेटने और मरोड़ने की आवाज आती है) फिर कहते हैं--"हुँ, इज्जत से घर ले जाकर रक्खें। सब कुछ हो जाने पर भी यह मरी नहीं। मनोहर बाहर गया है। परसों आएगा। यह अखबार उसके हाथ पड़ गया तो......नहीं, यह नहीं हो सकता। (अखबार फाड़ डालते हैं) फिर कहते हैं—"लीला जो पामाल हो चुकी थी और जो मरी करार दी जा चुकी है, जिन्दा है और पार्वती का पता नहीं। नहीं...इस घर में पार्वती आएगी--लीला नहीं आ सकती। (तभी आनन्दी आती है और कहती है)

आनन्दी –"बाबूजी, खाना खा लीजिए।"

बिशुनदयाल—"यहीं ले आओ।"

[दूसरा दिन : समय सवेरे]

आनन्दी आती है और कहती है—

आनन्दी – "बाबूजी, शरणार्थी कैंप से दो-तीन आदमी आपसे मिलने आए हैं। उनके साथ एक औरत भी है।"

(लाला बिशुनदयाल) – "आखिर आ ही गई। नहीं वह इस घर में नहीं आ सकती। मैं लीला के नापाक कदम इस घर में नहीं आने दूँगा।"

[नीचे उतरते हैं]

एक आदमी – 'लाला बिशुनदयाल आप ही हैं ?"

बिशुनदयाल – (कुछ कठोर स्वर में) "जी, कहिए क्या काम है ?"

वही आदमी – "मुसम्मात पार्वती आपकी बीबी है ?"

बिशुनदयाल – "(कुछ उतावली और खुशी के स्वर में) हाँ-हाँ, कहाँ है वह ? क्या आपके साथ आई है ?"

वही आदमी —"जी, घबराइए नहीं। वे अच्छी खासी बाहर गाड़ी में हैं। मगर देखिए, उन्होंने बहुत तकलीफ पाई है। हम लोग आपसे मनुष्यता के नाते केवल इतनी भीख माँगते हैं कि उन्हें आप ठुकराइए नहीं। उन्हें ग्रहणकर, आप समाज का मस्तक ऊँचा करेंगे और एक आदर्श......

बिशुनदयाल--"अरे रे रे ! यह सब क्या धर्म और

आदर्श आप गाए जा रहे हैं। वह मेरी पत्नी है। जीवन के बत्तीस वर्ष हम लोग साथ रहे। मैं उसे ग्रहण नहीं करूँगा तो क्या वह किसी और के घर जाएगी ? आज साल भर से उसका इंतजार करते-करते......

वही आदमी—"तब आइए, हमारी कामना सफल हुई।" [सब नीचे उतरते हैं]

बिशुनदयाल—"अरे बहू, इधर आओ बेटा, यह तुम्हारी सास हैं।"

(आनन्दी सास के पैर छूती है—पार्वती आशीर्वाद देती है) "बस-बस दूधों नहाओ, पूतों फलो। मनोहर कहाँ गया है, बहू ?"

आनन्दी--"जी, कहीं बाहर गए हैं। कल आएँगे।"

बिशुनदयाल--"मनोहर बहुत उदास रहता था। लीला की याद उसे रात-दिन घुलाए डालती थी। और लीला का पता नहीं क्या हुआ ?"

पार्वती –"होता और क्या ? उसका इतने दिन का ही संजोग था। पता नहीं, दुष्टों ने उसके साथ क्या-क्या किया होगा ? हाय ! मेरी फूल-सी बहू को जालिम कैसी बेदर्दी से घसीट ले गए थे। भगवान् की ऐसी ही मर्जी थी। तुमने अच्छा किया, जो मनोहर का दूसरा ब्याह कर दिया। जीती भी होगी तो हमारे किस काम की ?"

[किसी के दरवाजा खटखटाने की आवाज आती है]

बिशुनदयाल--"बहू, जरा देख तो कौन है ?"

[आनन्दी नीचे आती है।--]

[आनन्दी दरवाजा खोलती है और मनोहर को देखकर साश्चर्य कहती है]

आनन्दी--'अरे ! आप तो कल आनेवाले थे !"

मनोहर--"हाँ, काम पूरा हो गया तो चला आया। कोई खास बात ?'

आनन्दी--"हाँ, अम्मा आ गई। बाबूजी बड़े खुश हैं तब से।"

मनोहर--"अच्छा, मां आ गईं। कब आईं ? कहाँ हैं ?"

आनन्दी—"ऊपर हैं कमरे में। आइए।"

[दोनों ऊपर जाते हैं। मनोहर माँ को देखकर]

मनोहर—"अम्मा, प्रणाम !

पार्वती—"जीते रहो बेटा।"

मनोहर--"बड़ी दुबली हो गई हो अम्मां !"

पार्वती--"अरे बेटा, कैसा हमारा दुबलापन और कैसा मुटापा ? अब तो चला-चली की बारी है। पर तू अपना शरीर तो देख। आधा भी नहीं रहा पहले से।"

लाला बिशुनदयाल--"अरे, इन बातों को छोड़ो। बहू, ये लोग बाहर से थके-माँदे आए हैं। इन्हें कुछ खिलाओ-पिलाओ तो।"

[सबके जाने की आवाज आती है। मां खाना खा चुकी हैं। आनन्दी अब मनोहर को खाना खिला रही है।]

आनन्दी—"मां तो खाकर गईं; अब आप शान्ति से बैठकर कुछ पेट में डाल लीजिए और बताइए कि कुछ पता चला।"

मनोहर–"नहीं आनन्दी, मुझसे नहीं खाया जाता। उठा लो थाली।"

आनन्दी--"आपको मेरी सौगंध। अच्छा, यह एक समोसा और ले लीजिए।"

मनोहर—"मेरा दिल जल रहा है, आनन्दी।"

आनन्दी—"अच्छा, जाने दीजिए। एक बात कहना चाहती थी। कहूँ ?"

मनोहर--"कहो ?"

आनन्दी--"आज तीन-चार दिन से लीला बहिन रोज मुझे सपने में दिखती हैं। आपके कमरे में लगी हुई उनकी फोटो से सपनेवाली शकल हूबहू मिलती है। किसी अस्पताल में हैं। बैसाखी के सहारे लँगड़ाकर चलती हैं। रोज-रोज एक-सा ही सपना दिखे तो जरूर सच्चा होता है। आप एक बार सब अस्पतालों में फिर से देखें-मेरा मन कह रहा है-वे ही हैं।"

मनोहर--"तुम कहती हो तो फिर एक बार सारे अस्पतालों में देख आऊँगा लेकिन लीला मिलेगी-ऐसी अपनी तकदीर कहाँ ?"

आनन्दी--"निराश न होइए। कहिए तो मैं भी चलूँ।"

मनोहर--"नहीं, मैं ही जाऊँगा। तुम भी साथ चलोगी तो मां और बाबूजी कहीं कुछ गलत न समझ बैठें। पर आनन्दी, तुम भी लीला को उतना ही चाहती हो-यह देखकर मुझे कितनी खुशी हुई।"

* * *

[अस्पताल में]

चपरासी--"मनोहरदयाल धवन कौन साहब हैं ?"

मनोहर--"हाँ, मैं हूँ भाई ।"

चपरासी--"लीलावती धवन से आपकी मुलाकात नहीं हो सकती ।"

मनोहर--"नहीं हो सकती ! क्यों ?"

चपरासी--"आपकी भेजी हुई चिट पढ़कर उन्होंने कहा—मेरा इस दुनिया में कोई नहीं है। जो मिलने आए हैं, उनसे कहो कि तुम्हारी लीला मैं नहीं हूँ और बस ....."

मनोहर---"और बस क्या ?"

चपरासी --"मैं जब उनका संदेसा लेकर आने लगा तो वे पलंग पर रोती हुई गिर पड़ी थीं ।"

मनोहर---"भाई, तुम्हारा एहसान कभी नहीं भूलूँगा। बस यह एक चिट्ठी और उन्हें दे दो। अगर तब भी वे मिलना मंजूर न करेंगी तो मैं लौट जाऊँगा ।"

चपरासी --"अच्छा, लाइए ।"

[जाने की आहट आती है ।]

मनोहर ·(आप-ही-आप)---"आखिर आनन्दी का सपना सच्चा ही निकला । लेकिन लीला को क्या उस घर में रख सकूँगा ? मां और बाबूजी क्या उसे रहने देंगे ? नहीं, लीला निर्दोष है । मैं उसे नहीं त्याग सकता । अपने अधिकारों के लिए मुझे लड़ना ही पड़ेगा ।"

चपरासी---"बाबू साहब !"

मनोहर---"हाँ, भाई ।"

चपरासी--"चलिए, मगर आप ही को बुलाया है । और तो कोई नहीं है आपके साथ ?"

मनोहर---"नहीं, मैं अकेला ही आया हूँ, चलो ।"

[दोनों जाते हैं ।]

(वार्ड में दोनों जाते हैं--चपरासी लीला के पलंग के पास जाकर कहता है)

चपरासी---"बीबीजी, उठिए----आपके मालिक आए हैं ।"

लीला---"(कुछ भरे हुए गले से आश्चर्य-मुद्रा से कहती है)—"ओ आप ! आप इन्सान हैं या देवता ?"

मनोहर—"मैं देवता नहीं हूँ, लीला इन्सान ही हूँ। मैं तुम्हें लेने आया हूँ। खुश देखना चाहता हूँ। नहीं, ये आँसू अब नहीं गिरने दूँगा । बहुत रो चुकी हो ।"

लीला—(भरे हुए गले से कहती है)---"मैं जानती थी, मेरे देवता, लाख भ्रष्ट होकर भी आपके पास आऊँगी तो आप मुझे ठुकराएँगे नहीं । लेकिन माँ और बाबूजी...

मनोहर—"दोनों ही तुम्हें त्याग चुके हैं--और किसी भी हालत में ग्रहण न करेंगे । पर मैं यह सब सोच-समझकर ही आया हूँ । उस घर में गुजारा नहीं होगा; न सही । मैं दूसरा इन्तजाम करूँगा । मुझे दुनिया की परवाह नहीं । तुम्हारा इसमें क्या दोष है ? डूबते को बचाना धर्म है । मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं । आनन्दी तुम्हारी सेवा करेगी । तुम्हें देखने के लिए कितनी बेचैन है वह ? लो उठो अब ।"

* * *

[मनोहर लीला को लेकर घर आता है--दरवाजे पर दस्तक देता है]

[पार्वती भीतर से आवाज देती है —]

पार्वती—"कौन ?"

मनोहर—"मैं हूँ, मां । दरवाजा खोलो ।"

(पार्वती किवाड़ खोलती है,—और लीला को देखकर चौंकती हुई कहती है —)

पार्वती—"अरे ! यह क्या मनोहर ? इसे कहाँ से ले आया ? यह अभी जिन्दा है ?"

मनोहर--"यह सब बाद में बताऊँगा, माँ ! पहले अन्दर आकर हम लोगों को बैठने तो दो ।"

पार्वती—"नहीं-नहीं, बेटा । पहले अपने बाबूजी से तो पूछ लो । इतने दिन बाहर रही हुई बहू को कहीं घर में रखा जा सकता है ? दुनिया क्या कहेगी ?"

मनोहर—"तुम भी तो इतने दिन बाहर रहीं, मां । तुम्हारे लिए न तो बाबूजी ने कुछ कहा और न दुनिया ने ही उंगली उठाई । फिर इस बेचारी का क्या कसूर है ?"

पार्वती—"मेरी बात और थी । पर जवान लड़की इतने दिनों तक बाहर रहे और......

(शोरगुल सुनकर लाला बिशुनदयाल ऊपर से पूछते हैं...)

बिशुनदयाल--"क्या है, मनोहर की मां, कौन आया है ?"

पार्वती--"तुम्हारा सपूत, साल भर तक बहत्तर घाटों का पानी पी हुई अपनी चहेती बहू को लेकर आया है ।"

(ला० बिशुनदयाल नीचे उतरते हैं। नीचे आकर गुस्से से कहते हैं--)

बिशुनदयाल--"कौन लीला ? नहीं, इसके लिए इस घर में जगह नहीं है। मनोहर, यह क्या नादानी है ? इसे लाने के पहले मुझसे पूछ तो लिया होता।"

मनोहर--"इसमें पूछने की क्या जरूरत थी। लीला मेरी पत्नी है। भाग्य ने हम दोनों को साल भर के लिए जुदा कर दिया था। अब इतने दिनों के बाद मिली है तो क्या इसे फिर भटकने के लिए छोड़ दूँ ? आखिर इसका है ही कौन सहारा......

बिशुनदयाल--"चुप रहो, गुस्ताख कहीं के। मेरे सामने इस तरह बोलते हुए शर्म नहीं आती।"

मनोहर--"शर्म काहे की ? कैसी शर्म ? मैंने कोई पाप नहीं किया। डूबते को बचाना धर्म है। लीला निर्दोष है। वह इस घर में रहेगी और अधिकारपूर्वक रहेगी।"

बिशुनदयाल--"नहीं, वह इस घर में एक मिनट भी नहीं रह सकती।"

मनोहर--"अच्छा, तो फिर मैं भी जाता हूँ। लीला, चलो और आनन्दी तुम भी।"

बिशुनदयाल--"नहीं, आनन्दी नहीं जाएगी। तुम दोनों जा सकते हो।"

[आनन्दी बीच में बोलती है]

आनन्दी--"बाबूजी, आखिर लीला बहिन का दोष क्या है ? ये अपनी मर्जी से तो कहीं गई नहीं थीं ? आज हिन्दुस्तान में जाने कितनी लीलाएँ अपने पति, पुत्र और घरवालों से बिछुड़कर तरह-तरह की नारकीय यातनाएँ भोग रही हैं। क्या अपराध है उनका ? है कोई उनका दुखड़ा सुननेवाला ?"

बिशुनदयाल--"चुप रह। मुझे उपदेश देती है कल की लड़की। तुझे उनसे बहुत हमदर्दी है तो तू भी चली जा।"

आनन्दी--"बाबूजी, हिन्दू-स्त्री अपने पति के साथ पिछले कदम की तरह चलती है। उनका रास्ता मेरा रास्ता है। उनका दुःख-सुख मेरा दुःख-सुख है। उनकी आज्ञा मानना मेरा धर्म है।"

बिशुनदयाल--"तब जाओ तुम भी। सब जाओ। दूर हो जाओ मेरी आँखों के सामने से। मैं समझ लूँगा मेरा कोई नहीं है।"

मनोहर--"आओ आनन्दी ! चलो, यहाँ की जहरीली हवा में कहीं बेहोश न हो जाऊँ !"

(आनन्दी, लीला और मनोहर चले जाते हैं)

[समाप्त]

गीत

निविड़ संध्या की अँधेरी,
स्वप्न अब संसार, रे खग !
स्वप्न अब उद्यान, कानन
पल्लवित, मंजरित द्रुम-दल;
लता-गुल्मों के सुमनमय----
हास और विलास के पल।
चूमना पर शूल हँसकर जो सुमन से प्यार, रे खग !
डूबती रंगस्थली तेरी;
प्रकाश-दुकूल डूबा !
लाल लहरों की पलक में
पुलकता यह फूल डूबा !
पङ्ख डूबे, प्राण डूबा डूबता सुकुमार, रे खग !

प्यार का अस्तित्व है चिर
सत्य, सुन्दर और चिरन्तन;
नापता यह एक ही स्वर
व्योम का निस्सीम आँगन।
डालियों की सेज तज, आया कुसुम-संसार, रे खग !
जड़-जगत के हास-रोदन,
पुलक-आँसू, लास तन्मय--
की अमर निधियाँ लुटाकर
चाहता सुधि का मधुर क्रय।
एक सुधि तारा-तरी में कर निविड़ तम पार, रे खग !
निविड़ सन्ध्या की अँधेरी,
स्वप्न अब संसार, रे खग !

----उमानन्दन चतुर्वेदी

सत्रह सौ उनतीस

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

[गताङ्क से आगे]

उसी समय भीड़ दरवाजों पर आ गई और उसने कुल्हाड़ों से फाटकों का तोड़ना आरम्भ कर दिया। इधर-उधर से बन्दूकें भी चलीं।

शबनम ने देवकी से कहा, "दीदी, मेरे साथ आओ। हम लोग बन्दूक चलाना जानते हैं।"

गुलाबखाँ ने आँसूभरी आँखों से कहा, "शबनम, जब तक गुलाबखाँ जिन्दा है तुमको हथियार नहीं उठाना पड़ेगा। मैं फाटक बन्द करवाकर यहाँ आया हूँ। अगर फाटक खुले होते तो बलवाई कभी के यहाँ आ पहुँचते। अच्छा आखिरी सलाम है शबनम, मैं जिल्लत की दुनिया से जन्नत की दुनिया में जाता हूँ, सलाम बहिन देवकी। शबनम का आसरा पाकर अब आपको किसी चीज की जरूरत नहीं है।"

धीरे से शबनम की जबान से "सलाम" निकला, और, बहुत धीरे से देवकी के मुँह से।

गुलाबखाँ खिड़की के पीछे खड़े हुए एक सिपाही के पास पहुँच गया। गुलाब के पास पिस्तौल थी।

भीड़ मतवाली हो रही थी। कुल्हाड़ियाँ और बन्दूकें चल रही थीं। आग लगाने की क्रिया भी जारी थी। गुलाबखाँ ने पिस्तौल का प्रयोग किया।

भीतर अन्य बेगमों ने शबनम से गुलाबखाँ के सम्बन्ध में प्रश्न किए।

"कौन है? क्यों आया? कहाँ गया?" शबनम ने धड़कते कलेजे से उत्तर दिया, "मेरा मौसेरा भाई है, मेरे बचाने के लिए आया और बचाने के लिए चला गया।"

"धायँ-धायँ", गुलाबखाँ की विलायती पिस्तौल ने भीड़ पर आग बरसाई।

"धायँ-धायँ," शेर अफगन के सिपाहियों ने बन्दूकों की बाढ़ दागी।

"धायँ-धायँ" शुभकर्ण के सिपाहियों ने हवेली के दूसरे भाग से ध्वनि को प्रतिध्वनित किया।

अनेक बलवाई धराशायी हुए, परन्तु हवेली के एक भाग में आग लग उठी। कुछ सिपाही उसके बुझाने के लिए अपना मोर्चा छोड़कर चले गए। उन्होंने आग बुझा भी ली, परन्तु मोर्चा के छोड़ने से बलवाई समझे कि हवेली के रक्षक मारे गए। इसलिए वे सिमटे। गुलाबखाँ ने इस मोर्चे से उस मोर्चे पर दौड़कर पिस्तौल के वार किए। भीड़ भागी, परन्तु भागते-भागते एक गोली गुलाबखाँ की छाती पर छोड़ गई। गुलाबखाँ धड़ामसे गिरा। उसके मुँह से केवल ये शब्द निकले :—

"अल्लाह .....अल्ल..." कुछ ही क्षण में हवेली सुरक्षित हो गई। शबनम ने गुलाबखां की मृत्यु की सूचना पाकर आँसू डाले। परन्तु वह यह नहीं चाहती थी कि गुलाबखां का शव हवेली के ऊपरी भाग में पाया जाए। इसलिए उसको ड्योढ़ी में पहुँचा दिया। सिपाही अपने-अपने मोर्चों पर आ बैठे। फाटक बंद थे। हवेली शान्त।

(२६)

मसजिद के भीतर दंगा करनेवालों की काफी संख्या मरी और घायल हुई। पठानों को एक ओर ढकेलकर वजीर की इस बाहरी सेना ने कहर मचा दिया। मसजिद के भीतर खून के नाले बह उठे। पठानों ने बड़ी देर तक मुगलों का सामना किया। पठानों के कई सरदार मारे गए। बाजी उनके हाथ से निकल गई। अब उन्हें जान बचाने की पड़ी। शेर अफगन की कलाई में घाव लगा। तलवार हाथ से छूट कर नीचे

गिर गई। उसके अनेक साथी हताहत हुए; बाक़ी दक्षिणी दरवाजे से निकल भागने में प्रयत्नशील हुए। शेर अफ़गन भी उन्हीं के साथ निकल गया। इस दुर्घटना के सम्पूर्ण काल में रोशनुद्दौला को उसके पठान सजीव ढाल की तरह घेरे और बचाए रहे। परन्तु वह इतना मोटा था कि अब भाग निकलने के एकमात्र साधन, अपने पैरों, का ठीक-ठीक उपयोग नहीं कर पा रहा था। इसलिए, उन स्वामिभक्त सिपाहियों ने रोशनुद्दौला को अपने कन्धों पर लिया और लड़ते-मरते दरवाज़े की ओर बढ़े। हाँफते-हाँफते, दरवाज़े पर पहुँच गए और रोशनुद्दौला को लेकर शेर अफ़गन के बड़े भाई दिलदिलेर खां की हवेली में जो जुमा मसजिद से कुछ कदम की ही दूरी पर थी, जा घुसे। शेर अफ़गन और उसके बचेखुचे साथी पहले ही इस हवेली में पहुँच गए थे। मसजिद के भीतर अब भी जो पठान युद्ध में व्यस्त थे, अपने दोनों सरदारों के बच निकलने का समाचार सुनकर मारते-काटते निकल भागे, और शरण के उसी स्थान में जा पहुँचे।

कमरुद्दीन के सिपाहियों ने और सथियों ने कसमें खाईं:—

"दिलेर खां की हवेली में आग लगाएँगे।"

"हवेली को धूल में मिला देंगे!"

रोशनुद्दौला और शेर अफ़गन के टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।"

"एक को भी नहीं छोड़ेंगे।"

वज़ीर ने इन लोगों को समझाया। पहले तो वे अनसुनी करते रहे, परन्तु जब उन्होंने वज़ीर को दृढ़ देखा तब मान गए।

कई सरदार जिनको वास्तव में लड़ाई का शौक नहीं था और जो केवल ज़बान की तलवार चलाते थे, मसजिद के ऊपरी खंडों और गुमटियों में जा छिपे। जब सब दिशाओं में गोलियाँ बरसीं, वे कंगूरों और छज्जों पर से रिपट-रिपटकर सड़क पर आ गिरे। लुंजपुंज, लष्टं-पष्टं किसी तरह घर की राह पकड़ी और प्राण बचाए।

जो कूदकर सड़क पर न गिर सके उनमें से एक आजमख़ाँ था।

मसजिद से लगा हुआ कुम्हार का एक टपरा और घर था। टपरे के नीचे कुम्हार के मिट्टी के बर्तन भरे पड़े थे। आजमखाँ ने सोचा, पहले इस टपरे पर और फिर टपरे से सड़क पर पहुँच जाऊँगा। आजमखाँ टपरे पर कूदा या टपका। टपरा ऐसे भारी भरकम शरीर को झेलने के लिए नहीं बनाया गया था। आजमखाँ के टपकते ही उसका छान-छप्पर टूटा। आजम के मोटे पैरों ने छप्पर में दो बड़े छेद कर दिए। उन समानान्तर छेदों में होकर दोनों पैर निकल कर मिट्टी के बर्तनों पर पहुँचे। मिट्टी के बर्तन छप्पर से भी अधिक कमज़ोर थे। भड़-भड़ा गए। कुछ टूटे, कुछ का कचूमर निकला और कुछ लड़खड़ाकर इधर-उधर औंधे-सीधे जा गिरे। आजमखाँ ने इस दुन्द से छुटकारा पाने की बेहद कोशिश की परन्तु—मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की। जैसे-जैसे आजमखाँ ने ताबड़तोड़ हाथ-पैर फेंके, वैसे-वैसे छप्पर और झुका और कुम्हार के बर्तन और टूटे, उनमें हड़बड़ी फैली।

कुम्हार परेशान होगया। अपनी इतनी बड़ी हानि को देखकर, और हानि का असली कारण न समझकर, उसने एक डंडा उठाया और तड़ातड़ लगा ठोकने आजमखाँ के पैरों को। कुम्हार कहता जाता था,

"आदमियों के सिर फोड़ो, मेरे बर्तनों ने क्या किया है, जो मजे में ऊपर बैठे-बैठे सत्यानाश किए जा रहे हो?"

थोड़ी देर में आजमखाँ के पैर टूट गए और बेहद सूज गए। जब कुम्हार को असली कारण समझ में आया तब उसने आजमख़ाँ को टपरे पर से उतार लिया और माफ़ी माँगी। आजमखाँ को गुस्सा नहीं आया—शरम आई। जब कुम्हार अपने गाड़ी-बैल से उसे डरते-डरते हवेली पहुँचाने लेगया तब आजमखाँ सोचता था कि कोई हालत पूछेगा तो कह दूँगा बलवे में हथियारों से घायल होगया हूँ—परन्तु मार्ग में किसी ने नहीं पूछा।

(२७)

वज़ीर ने उस दिन की घटना में हाथ-पैर बिलकुल नहीं हिलाया था। मुफ्त में लोकप्रिय बन गया—काफ़िरों के खिलाफ़ इसलाम का रक्षक!

दंगा लगभग ३ घंटे रहा। लाशों के हटाने और मसजिद को धोने का प्रबन्ध करके वज़ीर कदम शरीफ़ की तरफ़ जाने को ही था कि मुहम्मदशाह का भेजा हुआ एक

ख्वाजा बुलाने के लिए आया। तुरन्त हाजिरी की आज्ञा थी। ख्वाजा बादशाह की पगड़ी साथ लाया था। ख्वाजा ने कहा, "जहाँपनाह ने यह पगड़ी अपने सिर से उतार कर हुजूर के लिए इनाम के तौर पर भेजी है और फौरन बुलाया है।"

वजीर ने आदरपूर्वक पगड़ी को ग्रहण करके सिर-आँखों लगाया। ख्वाजा को साथ लिया और पहले सीधा कदमशरीफ पहुँचा। वहाँ असिर की नमाज पढ़ी, अल्लाह को धन्यवाद दिया और कदमशरीफ के रक्षकों को दान-पुण्य किया, वहाँ से बादशाह को हाजिरी देने के लिए लौट पड़ा।

रोशनुद्दौला का तुर्रा जूताफरोशों और अरबों-तुर्कों के हमलों से नीचा पड़ गया था। शेरअफगन मसजिद से बाल-बाल बचकर आया था। पठानों ने उस दिन नीचा देखा और वजीर की पार्टी का बोलबाला हुआ। शहर भर में वजीर के गुट के लोगों की प्रशंसा करते हुए जूताफरोश और उनके हिमायती घूमें। कितनी जानें यों ही बरबाद हुईं, इसकी परवाह भीड़ को कम थी। फिर उन लोगों ने शुभकर्ण की हवेली के खंडहर पर हाजी की कब्र तैयार कर दी—और कुछ दिनों बाद उसके ऊपर मसजिद।

रोशनुद्दौला और शेर अफगन शाम के बाद अपनी-अपनी हवेली पर गए।

शेर अफगन ने गुलाबखाँ की बहादुरी पर दो आँसू चढ़ाए। सम्मान के साथ उसकी अन्तिम क्रिया की।

शुभकर्ण और उसके बाल-बच्चों को शेर अफगन ने सुरक्षित पहरे में दिल्ली से बाहर कर दिया। बिदा करते समय शेर अफगन का गला भर आया। बोला,

"राजा साहब, अफसोस है कि मैं आपके लिए ज्यादा कुछ न कर पाया। अगर कभी हिन्दुस्तानियों के अच्छे दिन आए तो देखूँगा।"

शुभकर्ण बहुत रोया। देवकी भी। परन्तु उनसे ज्यादा शबनम उस रात रोई।

(२८)

वजीर ख्वाजा के साथ दीवानखास में पहुँचा। उसकी कुल्लें मुस्करा रही थीं, परन्तु वह चेहरे पर हठात् गंभीर भाव को लाने का प्रयत्न कर रहा था। बादशाह तख्त पर था। परिचारिकाएं सेवा में थीं। कोकीजू पर्दे के पीछे थी। मुहम्मदशाह ने वजीर को बधाई दी। कहा, "भाई कमरुद्दीन, तुमने तो कमाल कर दिया। भीम अर्जुन, रुस्तम और मीर हमजा जो न कर सके होंगे वह तुमने कर दिखलाया। आज की बात तो अलिफलैला में दर्ज कर देने के काबिल है।* खूब इन्साफ किया तुमने!"

वजीर ने नीचा सिर किए हुए बड़ी नम्रता के साथ कहा, "जहाँपनाह का इकबाल है।"

मुहम्मदशाह—"म्याँ, मैं समझा था आज के भूकंप में दिल्ली अब गई, और तब गई। मगर वाह! तुम्हारी दिलेरी ने खूब किया। पठान क्या बहुत तादाद में आ गए थे? सुना है मसजिद के बाहर राजपूत भी जमा हो गए थे?"

वजीर—"जहाँपनाह, राजपूत तो जमा नहीं हुए, मगर पठानों ने बहुत जोर मारा। नवाब रोशनुद्दौला बिचारे चुप थे। शेर अफगन ने कुछ बेअदबी की। उनके सिपाहियों ने बहुत शरारतें की। तलवारें चलाईं, पिस्तौलें दागीं और क्या अर्ज करूँ, जहाँपनाह, दुनिया सिर पर उठा ली। इशारा पठान सरदारों का था वरना खूनखराबी की नौबत न आती। मसजिद में बेतरह हथियार चले, खून की नदी बह निकली।"

मुहम्मदशाह—"तोबा, तोबा। म्यां, खून और हथियारों की चर्चा मत करो। यह बतलाओ कि इन जंगली आदमियों को तुमने दबा कैसे पाया?"

वजीर—"जहाँपनाह, हथियार का जवाब हथियार होता है। पठानों को नीचा देखना पड़ा। दुम दबाकर भागे। हुजूर का इकबाल।"

मुहम्मदशाह—"मेरे पास जो खबरें आ रही थीं, उनसे मैं तो बहुत परेशान हो गया था। कोकीजू बहुत सहारा दिए रहीं।"

पर्दे के पीछे से कोकीजू ने कहा, "अच्छा हुआ; गुनहगारों को सजा मिल गई। इसलिए जहाँपनाह ने इनाम में आपके पास अपनी निज की पगड़ी फौरन भेजी।"

वजीर ने अहसान प्रकट किया। मन में कहा, "इस कम्बख्त औरत का ही भरोसा तो पठान सरदारों को रहता है।"

---

* परिशिष्ट देखिए।

मुहम्मदशाह बोला, "जूताफ़रोश अब तो शान्त हो गए होंगे ?"

वजीर ने उत्तर दिया, "जहाँपनाह, बिल्कुल।"

कोकीजू ने कहा, "शुभकर्ण की हवेली तोड़ने और हाजी मरहूम की वहाँ लाश दफ़नाने की तो इजाजत थी ही। वे लोग अब बहुत खुश होंगे।"

मुहम्मदशाह—"शुभकर्ण मारा गया या नहीं ?"

वजीर—"जहाँपनाह, वह लापता है। शायद शेर अफ़गन की हवेली में हो, मगर अब और कार्रवाई करने की जरूरत नहीं मालूम पड़ती। आगे जैसा हुआ हो।"

मुहम्मदशाह—"म्यां, तुमने सारा मामला खूबसूरती के साथ ठिकाने लगा दिया। अब और इन्साफ़ क्या होगा ? स्वर्ग में जाए शुभकर्ण चाहे नरक में, आगे और कुछ मत करो। अगर वह दिल्ली छोड़कर कहीं चला जाए तो बरकत समझूँगा। यहाँ रहेगा तो जूताफ़रोश फिर झल्ला उठेंगे।"

वजीर—"जूताफ़रोशों की एक-दो माँगें हैं। जहाँपनाह का हुक्म हो तो अर्ज करूँ ?"

मुहम्मदशाह—"कहो, कहो। शौक से सुनूँगा।"

वजीर—"वे लोग और उनके हिमायती मुग़ल, अरब, तुर्क, कुर्द वग़ैरह चाहते हैं कि जिजिया फिर से जारी कर दिया जाए।"

मुहम्मदशाह—"शौक से जारी करो। मेरी तो आमदनी ही बढ़ेगी, मगर राजपूत, सिख, जाट, बुन्देलखंडी और पुरबिए मेरी जान को आ जाएँगे, और मराठों के मारे तो बिना जिजिया के ही नाकोंदम है।"

कोकीजू—"मेरी राय है, जहाँपनाह, जिजिया के जारी करने का ऐलान तो कर दिया जाए, मगर वसूली न की जाए; इस तरह दोनों फ़रीक सध जाएँगे, कोई खास दिक्क़त पेश नहीं आएगी।"

मुहम्मदशाह—"भाई, मुझको यह राय बहुत पसन्द आई। क्या बात है कोकीजू, मैं तुम्हारी समझदारी पर इसीलिए तो फ़िदा हूँ।"

वजीर—"जहाँपनाह ने दुरुस्त फ़रमाया। आजकल की नाजुक हालत में यही अमल सही मालूम होता है। पठान भी, जो हिन्दुओं के हिमायती हैं, इस कार्रवाई को मुनासिब समझेंगे।"

मुहम्मदशाह—"रोशनुद्दौला को भी कोई चोट आई ?"

वजीर—"नहीं तो जहाँपनाह !"

मुहम्मदशाह—"और मैं यह पूछना तो भूल ही गया था कि तुम भी सहीसलामत रहे न ?"

वजीर—"हुजूर की दुआ और इक़बाल से।"

मुहम्मदशाह—"और रोशनुद्दौला के तुर्रे का क्या हुआ ?"

वजीर—"जहाँपनाह, अर्ज करने काबिल नहीं है बात।"

मुहम्मदशाह—"अच्छा, अब यह नखरा ! मैं जरूर सुनूँगा। बतलाओ भी।"

वजीर—"जहाँपनाह, जूताफ़रोश बिना हथियारों के थे। हथियार चलते देखकर उन लोगों ने नालदार जूते फेंके। शेर अफ़गन को भी लगे और रोशनुद्दौला के लम्बे तुर्रे पर भी पड़े। तुर्रा झुक गया।"

मुहम्मदशाह हँसा।

बोला, "यह तमाशा तो देखने काबिल था। एकाध बार जी चाहा भी, मगर कोकीजू ने नहीं निकलने दिया। बोली, वहाँ खूनखराबा हो रहा है। भई, खून की बात सुनकर मैं कोकी की सलाह मान गया, वरना आता। मैं वहाँ होता तो शायद खूनखराबी की नौबत न आती।"

वजीर ने सचेत होकर कहा, "जहाँपनाह, पठान लोग धींगामस्ती और बेअदबी के लिए बिलकुल लैस होकर आए थे। मेरे और रोशनुद्दौला के पहुँचने के पहले ही काजी, मुअज्जिन और पेशइमाम के पास पठानों का इशारा पहुँच गया था। इसलिए ये लोग जूताफ़रोशों के साथ गुस्ताखी से पेश आए। वे बेचारे सताए हुए तो थे ही, उखड़ पड़े। पठानों ने मसजिद में आते ही हथियार उठाए। जूताफ़रोशों ने जूतों और ईंट-पत्थरों से जवाब दिया, फिर तलवारें और पिस्तौलें चलीं। पठान दिलेरी के साथ कट मरे; झगड़ा खत्म हुआ।

मुहम्मदशाह—"मुझ तक मुक़दमा करने की नौबत नहीं आई, मैं तो इसको ग़नीमत समझता हूँ। गवाही, सबूत, कसम हलफ़, और दिन भर इजलास में बैठे-बैठे बेकार वक्त खराब करना ! मुफ़्त की माथा-पच्ची ! म्याँ, यह तो बतलाओ राजा शुभकर्ण का माल-जेवर वग़ैरह कहाँ है ? जूताफ़रोश वह सब तो नहीं उठा ले गए ?"

[क्रमशः



अमेरिका के विश्वविद्यालय और उच्च शिक्षा

अमेरिका को स्वतंत्र हुए दो सौ से भी कम वर्ष हुए हैं। जब वह एक उपनिवेश था, उसमें उच्च शिक्षा का विशेष प्रबन्ध न था; और उस समय जो उच्चशिक्षण संस्थाएँ थीं भी, उनको 'कॉलेज' संज्ञा दी जाती थी—युनिवर्सिटी या विश्वविद्यालय शब्द का प्रयोग बहुत बाद में हुआ। जब देश स्वाधीन हो गया, उस समय ये कॉलेज धार्मिक दृष्टि से खोले जाते थे। इनका उद्देश्य युवकों को सांस्कृतिक और धार्मिक शिक्षा देना अथवा उनको कुछ व्यवसायों—प्रधानतः ईसाइयत—के लिए तैयार करना था। अठारहवीं सदी तक अमेरिका में उच्चशिक्षा की यही दशा रही, किन्तु क्रांतिकारी युद्ध के पश्चात् जब अमेरिका को एक नया रूप मिला तब से शिक्षण-संस्थाओं के कर्त्तव्यों और कार्यक्षेत्रों में प्रसार और विभेद हुआ। अब नए राष्ट्र के समक्ष व्यवसाय, कृषि, उद्योग और शासन-संबंधी कई समस्याएँ थीं। अतः उसमें शिक्षा की उस पुरातन प्रणाली का कुछ मूल्य न रह गया था, जिसका उद्देश्य अभिजात वर्ग को ज्ञान, धर्म, गुण तथा आचार-व्यवहार सिखाना मात्र था।

अमेरिका की जनता के लिए स्वाधीनता-युद्ध के पश्चात् का समय उच्चशिक्षा के सर्वतोमुखी विकास का समय है। स्वाधीनता युद्ध से पूर्व की सूची में कुल १८२ शिक्षण-संस्थाओं का उल्लेख है और इनमें से भी अधिकांश धर्म के नेताओं के नाम से ख्यात थीं। उन पर चर्च का पूर्ण आधिपत्य होता था। उनका संचालन धार्मिक लोगों की एक समिति के द्वारा होता था। पर समयांतर में जैसे-जैसे वहाँ लौकिक भावनाएँ बढ़ती गईं, शिक्षण-संस्थाएँ चर्च और राजकीय प्रभावों से मुक्त होती गईं। आज भी वहाँ ऐसी संस्थाएँ हैं, जिन पर चर्च का आधिपत्य है किन्तु उनकी व्यवस्था और शिक्षा-प्रणाली में यथेष्ट परिवर्तन कर दिया गया है। प्रधानता उन कालेजों और विश्वविद्यालयों की है, जो या तो व्यापारियों की समिति अथवा कुछ निजी आर्थिक साधनों से चलाए जाते हैं या जिन्हें राजकीय सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। पहले जॉर्जिया, नॉर्थ कैरोलिना तथा वरमाउण्ट विश्वविद्यालय ही राजकीय थे किंतु अब ४३ स्टेटों में प्रत्येक का अपना एक-एक विश्वविद्यालय है और शेष दो स्टेटों में अर्द्ध राजकीय विश्वविद्यालय हैं। एक अन्य प्रकार के विश्वविद्यालय वे हैं, जो म्युनिसिपैलिटी के टैक्सों-द्वारा हुई आमदनी से चलाए जाते हैं। ऐसे विश्वविद्यालयों की संख्या इस समय १४ है।

टॉमस जेफर्सन, फिलिप लैण्ड्स्ले आदि की योजनाओं के अनुसार कालेज और युनिवर्सिटियों की शिक्षा और कार्यक्षेत्र पहले की अपेक्षा अधिक विस्तृत कर दिया गया है। पहले धर्म और आचार की बातों को ही प्रमुखता दी जाती थी पर स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् विज्ञान, साहित्य, दर्शन, राजनीति, इतिहास, भूगोल आदि कई उपेक्षित विषयों पर भी ध्यान दिया जाने लगा। यद्यपि तब भी बहुत समय तक उनमें शिक्षा का पुराना ढंग ही रहा किंतु शिक्षा-शास्त्रियों ने उच्च शिक्षा का समर्थन प्रजातंत्र के विकास और सामाजिक उपयोगिता के लिए ही किया।

इसके अतिरिक्त उपाधि-वितरण की प्रणाली आज जिस रूप में वर्तमान है, वह अमेरिका में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक न थी। हाँ, कुछ औपनिवेशिक कॉलेजों में मास्टर्स डिगरी—एम० ए०—दी जाती थी पर उसका स्वरूप कुछ भिन्न था। ललित कलाओं के अध्ययन के लिए इस प्रकार प्रोत्साहन अवश्य मिला था पर उन छात्रों के लिए, जो व्यावसायिक शिक्षा के

अतिरिक्त ज्ञान-विज्ञान का अन्वेषण करना चाहते थे, कोई विधान न था।

उन्नीसवीं सदी में, जर्मन शिक्षा-प्रणाली से प्रभावित अमेरिका शिक्षा-शास्त्रियों ने यह इच्छा प्रकट की कि विश्वविद्यालयों का शिक्षा देना ही एक कार्य नहीं वरन् वहाँ अन्वेषण (रिसर्च) की भी व्यवस्था होनी चाहिए। इस आदर्श की पूर्ति १८७६ में जान हाप्किन्स युनिवर्सिटी के खुलने पर हुई। यद्यपि हावर्ड ने १८२५ में ऐसी व्यवस्था के लिए प्रयत्न किया था, किन्तु इलियट का विचार है कि १८६३ से पूर्व उसे कार्यरूप में परिणत नहीं किया गया। इस प्रकार, १८६१ में पहले-पहल पी-एच० डी० की डिगरी दी गई।

वहाँ के आधुनिक विश्वविद्यालय एक बहुत बड़े कारखाने की भाँति हैं, जिनके अनेक कार्य तथा विभाग हैं और जिनका ढाँचा बहुत पेचीदा है। प्रायः विश्वविद्यालयों के अधिकार में कई अंडर ग्रेजुएट कालेजों और डिगरी कालेजों के अतिरिक्त 'स्कूल' (जिन्हें कालेज या डिविजन भी कहते हैं) भी होते हैं; जैसे—कानून, औषधि, धर्मशास्त्र, कला, व्यवसाय, इंजीनियरिंग आदि के 'स्कूल', जिनके अपने अलग व्यवस्थापक, अध्यापक तथा इमारत, संग्रहालय, प्रेस और लाइब्रेरियाँ होती हैं। इस पर भी कुछ स्वतन्त्र नहीं होते हैं। हाँ, कुछ डिगरी कालेज ऐसे अवश्य हैं, जो स्वतन्त्र हैं किन्तु ऐसे कालेजों की संख्या अधिक है, जो विश्वविद्यालय के ही अङ्ग होते हैं और उन्हीं के अन्तर्गत उनकी व्यवस्था की जाती है। शिक्षा-शास्त्रियों ने सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है कि विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत कालेजों की उपयोगिता स्वाधीन कालेजों की अपेक्षा कहीं अधिक है। किन्तु इन दोनों कोटि के कालेजों के छात्रों, अध्यापकों और पाठ्यक्रम में विभेद है। स्वाधीन कालेजों की शिक्षा विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत कालेजों की शिक्षा से भिन्न होती है। वह शिक्षा कला के विद्यार्थियों की आवश्यकता की ही पूर्ति कर सकती है—किसी पेशे के लिए अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों के लिए वहाँ कोई चारा नहीं। दूसरी ओर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कालेजों में विद्यार्थियों को अपनी भिन्न-भिन्न रुचि के विषय लेने के अतिरिक्त पुस्तकालय, प्रयोगशाला और अन्य कार्यों में भाग लेने की भी सुविधा मिलती है।

गत वर्षों में कालेज और विश्वविद्यालयों में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं, उनमें से एक यह भी है कि अब अध्यापकों को बड़ी सावधानी से चुना जाने लगा है। पहले हाई स्कूल को पढ़ाने के लिए बी० ए० उपाधि प्राप्त अध्यापक पर्याप्त समझा जाता था किंतु पिछले २० वर्षों में यह निश्चित कर दिया गया है कि हाई स्कूल के लिए एम० ए० और कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों के लिए डाक्टर होना अनिवार्य है। इससे एक लाभ यह अवश्य हुआ कि विश्वविद्यालयों में योग्य तथा धुरंधर विद्वान् ही घुस पाए। उनकी योग्यता की दृष्टि से ही उनको इन्सट्रक्टर, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, असोशिएट प्रोफेसर और प्रोफेसर का स्थान दिया जाता है।

वहाँ के विश्वविद्यालयों में विशेषतः दो दृष्टियों से शिक्षा दी जाती है—एक, छात्र को किसी पेशे के लिए तैयार करना; दूसरी उसकी प्रतिभा को किसी एक विशेष क्षेत्र में अन्वेषण के लिए। पेशे के लिए प्राप्त शिक्षा के लिए कुछ निश्चित पाठ्य सामग्री होती है। अध्यापक उसी को विद्यार्थी-समुदाय को पढ़ाता है। किंतु अन्वेषण का कार्य वैयक्तिक होता है, जिसमें कुछ सीमा तक विद्यार्थी अपना अध्यापक स्वयं होता है।

विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्रधानतः भाषणों के माध्यम से दी जाती है। एक-एक कक्षा में १००० या इससे भी अधिक छात्र होते हैं। उनकी वैयक्तिक योग्यता अथवा त्रुटियों को जाँचने के लिए बड़ी-बड़ी कक्षाओं के २५-२५ विद्यार्थियों को छोटे-छोटे समुदायों में बाँट दिया जाता है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को वाद-विवाद करने तथा अपनी कमियों को दूर करने का अवसर मिलता रहे। विद्यार्थी की वैयक्तिक तर्क और लेखन-शक्ति के विकास के लिए उनसे किसी विषय पर निबंध लिखाए जाते हैं, जिन्हें कक्षा में पढ़ा जाता है। उसके पश्चात् सब मिलकर उस विषय पर वाद-विवाद करते हैं।

इस प्रकार शिक्षक प्रत्येक विद्यार्थी की वैयक्तिक योग्यता जानने का प्रयत्न करता है। बहुत से विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी के व्यक्तित, चरित्र, स्वास्थ्य, अन्य कार्यों तथा शिक्षा-संबंधी उन्नति के पूरे पूरे विवरण रखे जाते हैं, जिनका उपयोग उसकी त्रुटियों का दूर करने के लिए किया जाता है। प्रत्येक छात्र की उन्नति कुछ

प्रतीकों-द्वारा प्रकट की जाती है। इसका एक सर्वसाधारण तरीका यह है कि कुछ अक्षरों-द्वारा छात्र की उन्नति को दिखाया जाता है। योग्यता का स्तर दिखाने के लिए प्राय: अ, ब, स, द, फ श्रेणियों का प्रयोग किया जाता है। जिस विद्यार्थी का स्तर आवश्यकता से भी नीचे होता है, उसे दंड का भागी होने के अतिरिक्त विश्वविद्यालय के कई गौरवों से वंचित होना पड़ता है और विशेष परिस्थितियों में उसे निकाल भी दिया जा सकता है।

बी० ए० की डिगरी के लिए ४ साल का कार्य-क्रम होता है। पहले दो वर्ष मुख्यत: सामान्य शिक्षा के लिए दिए जाते हैं। यह सामान्य शिक्षा दो रूपों में दी जाती है—एक, निश्चित कोर्स अथवा पाठ्य पुस्तकों-द्वारा और दूसरा, प्रमुख विषयों पर सिंहावलोकन के द्वारा। इन दो आरंभिक वर्षों की शिक्षा को 'लोअर डिविजन' या 'जूनियर कालेज' कहा जाता है और इन दो वर्षों की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् विद्यार्थी से आशा की जाती है कि वह प्रमुख विषयों तक ही अपने को केंद्रित रखे और उसी का वह विशेष अध्ययन भी करे। यद्यपि कहीं प्रमुख विषय के साथ कुछ सहायक विषय लेना भी अनिवार्य होता है पर यह नियम व्यापक नहीं। इस प्रकार आरंभिक दो वर्षों की और बाद के दो वर्षों की पढ़ाई में एक निश्चित अन्तर कर दिया जाता है। कई जगह तो दोनों प्रकार की शिक्षा के लिए अलग शिक्षक होते हैं।

कुछ विश्वविद्यालयों अथवा ग्रेजुएट कालेजों में तीसरे वर्ष से पेशा-सम्बन्धी अध्ययन की सुविधाएँ भी दी जाती हैं और उसके लिए उन्हें डिगरियाँ भी मिलती हैं। इस योजना का उपयोग विशेषत: कानून, डाक्टरी और इंजीनियरिंग में होता है। इस प्रकार उक्त समय में एक विद्यार्थी को ३ से ६ विभिन्न विषयों का साथ-साथ अध्ययन करना पड़ता है। हिरम कालेज में 'सिंगल कार्स'—योजना के आधार पर कुछ नए प्रयोग किए जा रहे हैं, जहाँ विद्यार्थी एक समय एक ही विषय का अध्ययन करता है और अल्प समय में ही उसे समाप्त कर दूसरे विषयों को ले लेता है।

इसके अतिरिक्त कुछ विश्वविद्यालयों में नए-नए विद्यार्थियों को एक अतिरिक्त व्यावहारिक शिक्षा भी दी जाती है। विश्वविद्यालय में पहली बार प्रवेश करनेवाले छात्र को विश्वविद्यालय के संबंध में पूरी-पूरी जानकारी दी जाती है। यही नहीं, विश्वविद्यालय के शिक्षा-संबंधी उद्देश्य, पाठ्य सामग्री, पुस्तकालय, उसका अधिक-अधिक उपयोग करने की विधि, प्रयोगशालाओं, अध्ययन विधि, असफलता के कारण, उनको दूर करने की आवश्यकता, अध्ययन के लिए काल-विभाजन, स्वास्थ्य-रक्षण, सामाजिक संबंध, साहित्य और कला में रुचि-उत्पादन आदि कई विषयों पर छात्रों का ध्यान आकर्षित किया जाता है।

कई विश्वविद्यालयों में 'फ्रेशमैन वीक' मनाया जाता है। इस अवधि में नए विद्यार्थियों की पुराने विद्यार्थियों-द्वारा कुछ मौखिक परीक्षाएँ, जिनका संबन्ध पाठ्य पुस्तकों से नहीं होता, ली जाती हैं और उसके पश्चात् योग्यता के अनुसार उनका स्थान-निर्धारण किया जाता है।

इस बात की ओर भी विश्वविद्यालयों का ध्यान जाने लगा है कि निश्चित पाठ्य सामग्री के अतिरिक्त भी विद्यार्थी जो कार्य करते हैं, उसका बहुत बड़ा महत्त्व है। बहुत से छात्र ऐसे होते हैं, जिनका कार्यक्षेत्र विश्वविद्यालय से बाहर होता है किन्तु उनको अपनी शिक्षण संस्था की भी सेवा करनी पड़ती है। इन सेवाओं को 'स्टूडंट पर्सनल सर्विस' के नाम के पुकारा जाता है। इसके अन्तर्गत कई कार्य आते हैं; जैसे नए छात्रों को भर्ती करना, उनको विश्वविद्यालय के संबन्ध में जानकारी देना, अध्ययन में एक-दूसरे की सहायता करना, व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक समस्याओं पर सम्मति देना, अध्ययन के अतिरिक्त अन्य कार्यों में भाग लेना, गरीब विद्यार्थियों की आर्थिक सहायता करना, निवास और भोजन का प्रबन्ध करना; आदि, आदि। यह विद्यार्थियों की एक सेवा-समिति-सी होती है। उसका एक प्रमुख व्यक्ति होता है, जिसको 'डीन आफ स्टूडंट' कहा जाता है।

विद्यार्थियों के स्वास्थ्य का सबसे अधिक ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी को इस सम्बन्ध में कुछ शिक्षाएँ और सूचनाएँ दी जाती हैं। इसके लिए एक निश्चित कार्यक्रम होता है। इसके अन्तर्गत हायजीन, फर्स्टएड अथवा छोटे-मोटे रोगों की चिकित्सा आती है। स्वास्थ्य का एक अलग विभाग होता है, जिसमें एक नर्स, डाक्टर तथा मनोवैज्ञानिक आदि कई सदस्य होते हैं। विद्यार्थी के प्रवेश होने के पहले उसका स्वास्थ्य देख लिया जाता है। प्रवेश होने पर प्रतिवर्ष उसकी डाक्टरी परीक्षा की

जाती है। शारीरिक दुर्बलताओं को दूर करने के लिए विशेष व्यायामों की योजना की जाती है। विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-सम्बन्धी कई संस्थाएँ होती हैं, जो रोग-ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता करती हैं।

विद्यार्थियों की संस्थाएँ, जो उनके बौद्धिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक विकास या सामाजिक सेवा के लिए होती हैं, विशेषतः दो प्रकार की हैं—एक, जिनमें अध्यापक भी विद्यार्थियों का साथ देते हैं और दूसरी, जिनकी सदस्यता विद्यार्थी-वर्ग तक ही सीमित रहती है। पहली प्रकार की संस्थाएँ प्रधानतः विश्वविद्यालय से संबंधित होती हैं, जैसे—इंग्लिश क्लब, हिस्ट्री क्लब आदि। दूसरी प्रकार की संस्थाएँ नाट्य, पत्रकारिता, व्यायाम, रुचि, वक्तृता राजनैतिक वाद-विवाद आदि से संबंधित होती हैं।

उन विद्यार्थियों ने, जिन्हें अध्यापकों से यथेष्ट सहायता मिली है, नाटक लिखने और खेलने में पर्याप्त सफलता पाई है। पहले-पहले १९१३ में अभिनय का एक विद्यालय पिट्सबर्ग में खुला था। उसके पश्चात् इस कला की बहुत उन्नति हुई और अब प्रत्येक विश्व-विद्यालय में एक अलग नाटक-विभाग तथा रंगमंच होता है। उनकी ओर से विद्यार्थी स्वयं नाटक लिखते, खेलते और स्वयं उनका निर्देशन करते हैं।

एम० ए० में प्रवेश करने से पूर्व विद्यार्थी को इन सब बातों में पारंगत होना अनिवार्य माना जाता है। बी० ए० की ४ साल की अवधि के पश्चात् एम० ए० के लिए १ साल (या कहीं-कहीं दो साल भी) पर्याप्त माना जाता है। यह डिगरी विविध विषयों पर दी जाती है, जिसके ३४ विभेद हैं। साधारणतः इस डिगरी तक शिक्षा पानेवाले लोग ६० प्रतिशत शिक्षक बनते हैं, शेष राजकीय विभागों में कार्य करते हैं। एम० ए० के लिए अपने विषय के अतिरिक्त एक या एक से अधिक विदेशी भाषा का ज्ञान आवश्यक होता है। जहाँ तक विषय का प्रश्न है, वह एक विषय अथवा उसके किसी एक अंश का भी किया जा सकता है और उसमें एक से अधिक विषयों की सामग्री भी आ सकती है। कहीं-कहीं 'थीसिस' का भी रिवाज है। इसका उद्देश्य विद्यार्थी की सामग्री जुटाने की शक्ति, उसके विश्लेषण की विधि और अभिव्यक्ति की प्रतिभा का परिचय पाना है। किंतु कई विश्वविद्यालयों में यह प्रथा छूट गई है। वहाँ इस कमी की पूर्ति निबन्ध-रचना कर लेती है।

एम० ए० के पश्चात् वहाँ की विशेष डिगरी 'डाक्टरेट' है। शिक्षा के क्षेत्र में इसे बहुत महत्त्व दिया जाता है। यद्यपि डाक्टरेट के लिए भी आवश्यक वस्तु वही है, जो एम० ए० के लिए; पर डाक्टरेट के लिए बहुत उच्च कोटि का ज्ञान अपेक्षित होता है। डाक्टरेट के पानेवाले से यह आशा की जाती है कि वह अपने विषय का पूरा-पूरा ज्ञान रखता हो। यद्यपि वह थीसिस' के लिए किसी एक विषय का एक अंश लेता है परन्तु उतने का उसे पूरा विद्वान् माना जाता है। इस प्रकार, पी-एच० डी० का कार्य-क्रम दो भागों में बँटा दिखाई देता है—एक, उस विषय से सम्बन्धित सामग्री जुटाना और दूसरा उसे उचित रूप से सजाकर रखना।

कई विश्वविद्यालयों में डाक्टरेट के लिए ३ वर्ष पर्याप्त माने जाते हैं, जिनमें से १ वर्ष उसी स्थान पर रहना अनिवार्य माना जाता है। पर अधिकांश विद्यार्थियों को तीन से भी अधिक वर्ष लग जाते हैं। थीसिस के अतिरिक्त दो और परीक्षाएँ पी-एच० डी० के पूर्व होती हैं। एक उस विषय में विद्यार्थी का सामान्य ज्ञान देखने के लिए होती है और दूसरी में उस विषय से संबंधित अन्य विषयों में उसका ज्ञान देखा जाता है। ये परीक्षाएँ लिखित और अलिखित दोनों रूपों में हो सकती हैं। इसके पश्चात् खुले रूप से एक मौखिक परीक्षा होती है, जिसमें विद्यार्थी को अपने थीसिस के विषय पर अन्य विद्वानों से बहस करनी पड़ती है। इतनी कठिन और दीर्घकालीन परीक्षा होने पर भी वहाँ प्रति वर्ष ३००० विद्वान् डाक्टरेट प्राप्त करते हैं।

शिक्षा की जिस प्रणाली का ऊपर वर्णन किया गया है, वह बौद्धिक विकास से ही अधिक संबंध रखती है और ऐसी शिक्षा का महत्व केवल ज्ञान की दृष्टि से ही अधिक है। दूसरी ओर ऐसे लोगों की संख्या ही अधिक है, जो शिक्षा ज्ञान के लिए नहीं वरन् पेशे अथवा व्यवसाय के लिए प्राप्त करते हैं। अमेरिका में इस प्रकार की शिक्षा का भी यथेष्ट विकास हुआ है। और यह सब विश्वविद्यालय के अंतर्गत ही है। यहाँ एक-एक कर प्रत्येक विषय से संबंधित सूचना दी जाती है:—

(१) कृषि-विज्ञान — विश्वविद्यालयों के अंतर्गत कई कालेजों में इस विषय की शिक्षा दी जाती है। ४ साल का कोर्स होता है और उसके पश्चात् बी० एस-सी० की उपाधि मिलती है। संक्षेप में इसका उद्देश्य शिक्षार्थी को कृषि तथा उसके आधारभूत विज्ञानों की पूरी-पूरी जानकारी कराना होता है, जिसके फलस्वरूप वे कृषि-जीवन में रुचि लेने के अतिरिक्त इसके द्वारा कुछ सामाजिक हित भी कर सकें। एक छोटे से समय म ही यह विषय इतना लोक-प्रिय हो गया कि करीब ५१ नगरों में कृषि-विद्यालय खोले गए हैं।

(२) शिल्पकला — शिल्प का सबसे पहला विद्यालय १८६५ में खुला था और १८६० तक इस क्षेत्र में इतनी प्रगति हुई कि इस समय के अंतर्गत ६० विद्यालय खोले गए। १६१४ की एक सभा में शिल्पकला के लिए एक निश्चित पाठ्य सामग्री का निर्धारण किया गया। इस विषय का कोर्स भी ४ साल का रखा गया है।

(३) व्यापार-संचालन — अमेरिका में व्यापार की उत्तरोत्तर उन्नति के फलस्वरूप बहुत से लोगों की रुचि व्यापार की ओर हुई। उसका प्रभाव विश्वविद्यालयों पर यह हुआ कि उन्हें इसके लिए छोटे स्कूल खोलने पड़े, जिनके द्वारा शिक्षार्थियों को व्यापार करने की विधि की शिक्षा की जाती है। इस विषय के लिए ह्वार्टन स्कूल, जो पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय के अंतर्गत है, सबसे पहला और पुराना स्कूल है। इस समय ऐसे विद्यालयों की संख्या ५६ है।

(४) शिक्षण — अमेरिका में शिक्षकों की माँग कम नहीं। ३० छात्रों में से १८ भविष्य में अध्यापक का पेशा चुन लेते हैं। उन्हें विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त 'टीचर्स कालेजों' में भी ट्रेनिंग दी जाती है। उसके लिए २ से ४ वर्ष तक का कोर्स होता है।

(५) इंजीनियरिंग — इस विषय की शिक्षा वहाँ सर्व-प्रथम १८२८ में प्रारंभ हुई। फिर १८६२ के मोरिल कानून के द्वारा इसको अत्यधिक प्रोत्साहन मिला, जिसके फलस्वरूप आज वहाँ १६० इंजीनियरिंग स्कूल हैं और प्रतिवर्ष २,५०,००० छात्र इस विषय का अध्ययन करते हैं। इस विषय की कई शाखाएँ हैं, जिनमें प्रत्येक का ४ वर्ष का कोर्स होता है।

(६) फौरेस्ट्री (जंगल-संबंधी विषय) — इस विषय की शिक्षा पहले १८६८ में कार्नेल विश्वविद्यालय के द्वारा प्रारंभ की गई थी। कुछ समय उक्त विश्वविद्यालय ने यह काम छोड़ दिया और येल विश्वविद्यालय ने इस विषय की शिक्षा आरंभ की और अब चैपमैन की रिपोर्ट के अनुसार इस विषय की १४ शिक्षण-संस्थाएँ हैं।

(७) गृह-अर्थशास्त्र — विषय के रूप में उक्त शास्त्र की आयु अभी करीब चालीस-पचास वर्ष की है। इसका प्रारंभ स्त्रियों के विद्यालयों से हुआ। और अब तो बी० ए० तक यह विषय अनिवार्य-सा है। आरंभ में इस विषय का क्षेत्र भोजन, वस्त्र, स्वास्थ्य आदि बातों तक ही सीमित था किन्तु १६१३ में एक नई पाठ्य सामग्री निश्चित की गई, जिसके अनुसार गार्हस्थ जीवन, परिवार का पारस्परिक संबंध, आय-व्यय आदि विषय भी इसके अंतर्गत जोड़े गए। यद्यपि गृहअर्थशास्त्र बहुत सी सामग्री अपने सहयोगी-विषयों से ग्रहण करती है किन्तु इससे नई-नई खोजें होनी प्रारंभ हो गई हैं। इस विषय के ५०० विद्वान् रिसर्च में लगे हुए हैं। उनमें से आधे भोजन संबंधी विषय पर लगे हैं। कुछ पारिवारिक जीवन, बच्चे के विकास और घरेलू आर्थिक समस्याओं पर। इस समय इस विषय की प्रतिनिधि संस्थाएँ ६० हैं।

(८) पत्रकारिता — इस विषय को प्रारंभ हुए करीब ५० वर्ष हुए हैं। पत्रकारिता का सबसे पहला स्कूल १६०८ में मिसौरी विश्वविद्यालय के अंतर्गत खुला था। इससे पहले भी प्रयत्न हुए थे पर वे असफल ही रहे परन्तु अब वहाँ पत्रकारिता अपने चरम विकास को प्राप्त हो गई है और ३४ विश्वविद्यालयों में इस विषय की शिक्षा भी दी जाती है।

(९) पुस्तकालय-संबंधी शिक्षा — पहले किसी पुस्तकालय का अध्यक्ष बनने के लिए किसी विशेष शिक्षा की आवश्यकता न समझी जाती थी किंतु १६२५ के करीब पुस्तकाध्यक्ष बनने के लिए एक निश्चित पाठ्य-क्रम का ज्ञान आवश्यक माना गया, अतः कई लाइब्रेरी स्कूल खोले गए और अब तक इस विषय का इतना विकास हो चुका है कि इसमें एम० ए० और डाक्टरेट की डिगरियाँ भी दी जाने लगी हैं। कोर्स भी कई स्कूलों में कम और अधिक अवधि के हैं। कई विद्यालयों में बी० ए० के पश्चात् प्रवेश हो सकते हैं और शिक्षा की

अवधि १ साल से अधिक होती है तो कुछ में बी० ए० से भी पूर्व भर्ती होकर केवल १ साल की शिक्षा दी जाती है। इस समय वहाँ 'लाइब्रेरी स्कूलों' की संख्या हमसे अधिक है।

(१०) नर्सिंग—यह जनस्वास्थ्य के लिए एक उपयोगी और आवश्यक विषय है। इसलिए अमेरिका ने अन्य विषयों के साथ नर्सिंग को भी स्थान दिया है। कहीं यह विषय विश्वविद्यालयों में अन्य विषयों के साथ ही पढ़ाया जाता है, कहीं स्वतंत्र स्कूल और कालेज खोले गए हैं या वे अस्पतालों से संबंधित हैं। इन सबकी संख्या इस समय ५० से भी अधिक है। और सबको इस विषय में डिप्लोमा, बी० ए० या बी० एस सी० या मास्टर्स डिगरी देने का अधिकार है।

(११) समाज-सेवा—यह एक नया विषय है, जिसका प्रारंभ हुए अभी वहां ३५ या ४० साल हुए हैं। फिर भी इतने-से कम समय में वहाँ ४७ शिक्षण-संस्थाओं में इस विषय का प्रवेश हो गया है। पाठ्यक्रम कहीं एक, कहीं दो वर्ष का है।

(१२) वक्तृता—यह बहुत ही आवश्यक और उपयोगी विषय है। फिर भी कई देशों में इस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। अमेरिका में भी इसको विषय रूप में बीसवीं शती के प्रारम्भ में स्वीकार किया गया। १९०२ में पहले-पहल इस विषय में मास्टर्स डिगरी दी गई और १९२६ में पी-एच० डी०। इस समय ४६ शिक्षण-संस्थाओं में यह विषय विश्वविद्यालय की ऊँची कक्षाओं में पढ़ाया जाता है।

जब विश्वविद्यालयों में यह विषय आरम्भ किया गया था तो पहले-पहल केवल भाषण देना, वाद-विवाद करना या अभिनय करना आदि तक ही इसकी सीमा थी। परन्तु निकट भूत में कुछ विषय और जोड़े गए हैं, जिनमें ध्वनि-विज्ञान, ध्वनि-संशोधन, तथा वक्तृता में दोषों के निवारण की विधि विशेषतः उल्लेखनीय है। रेडियो के विकास के कारण ब्राडकास्टिङ्ग का कोर्स भी इसी विषय के अंतर्गत रखा गया है और शब्दार्थ-शास्त्र (सेमैंटिक्स), वार्तालाप तथा केवल अधरों की गति से ही कहने का आशय समझने की कला समावेश हुए कुछ ही समय हुआ है।

इनके अतिरिक्त और भी कई विषय हैं, जिनका उल्लेख यहाँ पर इसलिए नहीं किया गया कि एक तो उनकी संख्या बहुत अधिक है, साथ ही उनमें कोई स्थानीय विशेषता नहीं, किन्तु इतने से ही स्पष्ट है कि अमेरिका में शिक्षा सर्वतोमुखी विकास पर है और ऐसे विषयों का भी वहाँ वृहद् अध्ययन होता है, जिनका प्रारम्भ अभी हमारे भारतीय विश्वविद्यालयों में हुआ ही नहीं।

गोविन्द चातक

गीत

मेरे मोती ले जाना!
　　रोते-रोते गिर जाती
　　रजनी की चादर काली;
कलियों के अधर-अधर पर मिलते ले ताना-बाना
　　धुल-धुलकर बह-बह जाते
　　दृग-कोष हुए हैं रीते;
कानों में धुलता जाता, फिर, कैसा नीरव गाना
　　दो बूँद सयत्न सँजोए
　　अपनी इस दुर्बल निधि में;
ये ढुलक न जाएँ हौले, कर-पल्लव से सहलाना
　　परिलक्षित कर दो, इनका
　　इतिहास न जाने कोई;
झंझा-सा जीवन मेरा—आ जाना, जाकर आना
　　एकाकीपन में हिल-मिल
　　दिक्वधुएँ नहला जातीं;
पर, लास व्यथा में भूला वह विद्रुम-हास छिपाना
　　धाराओं से टकराता
　　निर्वाण रुका क्रन्दन में;
भावों की रजत-तरी का होता चढ़ना-उतराना
　　रज को रस-रञ्जित करने
　　आँखों में सावन आया;
इस वर्तमान ने सीखा मधुमय अतीत बिसराना
　　दुर्गम, दुस्तर घाटी में
　　पाथेय बनी ये लड़ियाँ;
कब छोर मिलेगा, कह दो, मेरा वह चिर पहचाना

—सुरेशकुमार 'सुमन'

विचार विमर्श

'दुनिया की छत' के संबंध में

श्री धर्मवीर, एम० ए०

"दुनिया की छत पर रहनेवाले लोग रात को क्या ओढ़कर सोते होंगे ?"—यह प्रश्न मुझसे मेरी छोटी लड़की ने कर दिया। मैं उस समय दिल्ली के एक दैनिक के अग्रलेख की उलझन में पड़ा हुआ था। बे-सिर-पैर की ऐसी बातें लिखी थीं कि हँसी के साथ गुस्सा आ रहा थाः। पहले तो मैंने प्रश्न-कर्त्री को टालने का यत्न किया परंतु जब वह न मानी और अड़ी रही तब उसे दोबारा प्रश्न करने को कहा। और पूछा—"तुम इस समय क्या पढ़ रही हो ? भूगोल या और कुछ।" "भूगोल," उसने उत्तर दिया।

मैंने उसे 'दुनिया की छत' के विषय में कुछ बातें बतलाई परंतु ऐसा मालूम होता है कि जन-साधारण में से कितने ही इस प्रदेश के महत्त्व से अनभिज्ञ हैं। और आजकल जब कि भारत के प्रधान मंत्री भी वहाँ जा रहे हैं (यह बात उन्होंने वहाँ से आए हुए शिष्ट-मंडल से कही है) इसके विषय में जानना शायद आवश्यक होगया है।

लद्दाख को दुनिया की छत संभवतः इस कारण कहा गया है कि इसके कई भाग बहुत बड़ी ऊँचाई पर स्थित हैं और वहाँ के लोग संसार भर में सबसे अधिक ऊँचाई पर निवास करते हैं।

लद्दाख बड़ा विस्तृत पहाड़ी प्रदेश है। काश्मीर की वादी के पूरब में स्थित है। इसका कोई स्थान समुद्रतट से ८ हजार फुट से कम ऊँचाई पर नहीं है। इसके पर्वत तो बीस से पचीस हजार फुट की ऊँचाई पर होने से आकाश से बातें करते हैं।

लद्दाख में पहले बहुत से यात्री जाते थे। शिकार के शौकीनों को यहाँ बहुत-से जंगली जानवर मिल जाते हैं; उदाहरणार्थ मारखोर, ल्येक्स, बरफ में रहनेवाला चीता तथा हिरन।

मध्य-एशिया और भारत के बीच व्यापार का केन्द्र भी लद्दाख ही है। इसकी सीमाएँ पाकिस्तान, अफगानिस्तान, रूस और चीन से मिलती हैं। इसी कारण इसका महत्व भारत के लिए बहुत ज्यादा है। एक समय यहाँ अँगरेजों की ओर से ज्वाइंट कमिश्नर रहा करता था। वह भी गरमियों में।

क्षेत्रफल की दृष्टि से काश्मीर का यह सीमावर्ती जिला जम्मू-काश्मीर राज्य का दो तिहाई भाग है। इसका कुल क्षेत्रफल ६३५६० वर्गमील है। भूगोल की दृष्टि से लद्दाख में बलितस्तान और दर्दस्तान के प्रदेश भी सम्मिलित हैं। लद्दाख के उत्तर में कराकोरम पर्वत पूर्व में तिब्बत, दक्षिण में हिमालय और पश्चिम में बलतस्तान हैं। इसकी राजधानी लेह है, जहाँ जम्मू-काश्मीर की ओर से वजीर-वजारत प्रतिनिधि के रूपमें रहता है।

लेह समुद्रतल से ११ हजार फुट ऊँचा है। लद्दाख में अधिकतर बौद्ध रहते हैं। विदेशी यात्री प्रायः इनके गुंफाओं, मंदिरों, को देखने जाते हैं। लेह का गुंफा सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

संसार के उन स्थानों में, जहाँ आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के प्रभाव नहीं पाए जाते, लद्दाख की गणना भी है। एक योरपीय लेखक का कहना है—

"यह वह प्रदेश है, जहाँ मोटरकार, टेलीफोन आदि का नाम भी नहीं पाया जाता। मैं हैरान हूँ गांधी जी ने लद्दाख की सैर क्यों न की। गांधी जी जो कुछ चाहते थे, वह सब लद्दाख में मौजूद है।"

लद्दाख के इर्द-गिर्द प्रसिद्ध स्थान ये हैं—

झील पंकांग—यह ६० मील लंबी और ३ मील चौड़ी है। इसका पानी खारा है। लेह से यह ७५ मील की दूरी पर है।

चंग छन्मू की वादी— यह सुंदर वादी चंग छन्मू

नदी के किनारे स्थित है। यहाँ तिब्बती बारहसिंगा का शिकार होता है।

रनगन-पर्वत—इसकी सबसे ऊँची चोटी समुद्र-तल से २३००० फ़ुट ऊँची है।

बाटलोरो हिम-खंड—कराकोरम-पर्वत के दामन में यह एक बहुत बड़ा हिम-खंड है। यहाँ भी बहुत से हिम-वासी पशुओं का शिकार होता है।

कराकरम-पर्वत—जम्मू-काश्मीर राज्य में सबसे ऊँचा स्थान कराकरम की चोटी मौंट गाड्विन आस्टन है। यह समुद्रतल से २८२०० फ़ुट ऊँची है। संसार भर में यह ऊँचाई की दृष्टि से दूसरे दरजे पर है। इस तक पहुँचने का बहुत प्रयत्न किया गया है परन्तु अभी तक किसी को सफलता प्राप्त नहीं हुई। यहाँ प्रायः अमरीकन जाया करते हैं।

नंगा पर्वत—यह संसार के सर्वोच्च स्थानों में आठवें दरजे पर है। इसकी सबसे ऊँची चोटी समुद्र-तल से २६६२७ फ़ुट है। प्राकृतिक दृश्यों के सौंदर्य की दृष्टि से यह पहाड़ सर्वोत्तम समझा जाता है। इस तक पहुँचने के लिए जर्मनों ने कई बार कोशिश की है तो भी उन्हें सफलता नहीं मिली।

बलतस्तान—यह प्रदेश सिंधु नदी के दोनों किनारों पर स्थित है। क्षेत्रफल १५० मील। खपलो, शिगर, अस्कर्दू और रोंडो—ये सब बलतस्तान में सम्मिलित हैं।

दर्दस्तान—इसमें अस्टोर, बोंजी, चिलास, गिलगित, हुंजा नगर, पोनियास, यासीन और चित्राल के प्रदेश सम्मिलित हैं।

* * *

लद्दाख का सम्बन्ध जम्मू-काश्मीर से किस प्रकार हुआ—यह एक मनोरंजक इतिहास है। इसको समझने के लिए हमें यह मालूम होना चाहिए कि इस राज्य में किस-किसने शासन किया। वर्तमान महाराजा हरिसिंह को अपने राज्य से एक प्रकार से निर्वासित कर दिया गया है यद्यपि निर्वासित-शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। उनका स्थान महाराजकुमार कर्णसिंह को दिया जा रहा है। परन्तु कौन जान सकता है कि इनको कितने दिन राजगद्दी पर बैठने को मिलेगा। फिर आजकल राजगद्दी केवल गद्दी ही है। वास्तव में शासक तो अलीगढ़ विश्वविद्यालय को उपज शेख अब्दुल्ला हैं। शासन ने स्कूलों में कुरान के पढ़ाने का प्रबन्ध करते हुए इस बात पर बड़ा गर्व प्रकट किया है कि जम्मू-काश्मीर अब सेकुलर स्टेट (असाम्प्रदायिक) का अंग है!

यह वंशावलि महाराज हरिसिंह की है—

राजा ध्रुवदेव
(१७६०—१७८५ विक्रमी)
|
सूरतसिंह
|
मियाँ जोरावरसिंह
|
राजा किशोरसिंह
(१८१६-१८७८ वि०)
|
महाराजा गुलाबसिंह
(१८७१—१९१२)
|
महाराज रणवीरसिंह
(१९१२—१९४४)
|
राजा अमरसिंह — महाराजा प्रतापसिंह (१९४४—१९८२)
|
महाराजा हरीसिंह
|
महाराजकुमार कर्णसिंह

जम्मू-प्रदेश पर राजा ध्रुवदेव के वंशज चिरकाल से राज्य करते चले आ रहे थे। महाराज गुलाबसिंह के हाथ में काश्मीर सन् १८४६ में आया। महाराज रणजीतसिंह और उनके उत्तराधिकारियों के राज्यकाल में काश्मीर का नाज़िम ही लद्दाख का हाकिम समझा जाता था। महाराज गुलाबसिंह के राज्य-काल में उनका प्रसिद्ध सेनापति वजीर जोरावरसिंह विद्रोहियों को ठीक रास्ते पर लाया करता था। महाराज रणजीतसिंह के उत्तराधिकारियों का पूर्ण अधिकार काश्मीर पर कभी न हुआ था। जब काश्मीर पर महाराज गुलाबसिंह का पूर्ण अधिकार हो गया और उनके सुप्रबंध एवं सुव्यवस्था पर प्रजा मुग्ध हो गई तब उन्होंने वजीर रत्नू और वजीर जोरावरसिंह को लद्दाख की ओर भेजा। छोटी-छोटी कई लड़ाइयों के पश्चात् इसको जीता गया। फ्रेडिक डियू ने 'रूफ आव् दि वर्ल्ड' में लिखा है—"यह वह प्रदेश है, जहाँ बाहर के लोग बहुत मुश्किल से पहुँच सकते हैं। इस दूर देश पर

वजीर जोरावरसिंह ने एक बार नहीं, चार बार आक्रमण किए।" कनिंघम ने एक अन्य बात भी कही है—"लद्दाख में सरदी इतनी अधिक होती है कि तापमान कभी-कभी बरफ के जमने के दरजे से भी नीचे चला जाता है। डोगरा सेना ने सचमुच बड़ी वीरता का प्रमाण दिया।"

गिलगिट के राजा करीमखाँ ने लाहौर दरबार के साथ जो संधि की थी, उसके अनुसार वह लाहौर के अधीन था और सरदार नत्थेशाह वहाँ लाहौर-दरबार की ओर से रेजिडेंट नियुक्त हुआ था। महाराज गुलाबसिंह ने जब काश्मीर पर अधिकार किया तो उन्होंने सरदार नत्थेशाह को बहाल रखा।

उन्हीं दिनों हुंजा के राजा ने गिलगित पर आक्रमण कर दिया। नत्थेखाँ मारा गया और गिलगित पर हुंजा के राजा का कब्जा हो गया। परंतु जम्मू की सरकारी सेनाओं ने अस्कदू और अस्टोर से गिलगित पर आक्रमण कर दिया और हुंजावालों को मार भगाया। बाद में यासीन के राजा गोहर रहमान ने बड़े जोर का हमला कर दिया, जिससे डोगरों के पाँव उखड़ गए। यह युद्ध आठ वर्ष तक जारी रहा। अंत में हुंजा मुसलमान राजा गिरफ्तार करके जम्मू लाया गया और चिलास, अशकोमन, हुंजा और नगर के राजाओं के अधीनता स्वीकार की और गिलगित पर महाराज गुलाबसिंह का प्रभुत्व सबने मान लिया।

पावस

श्री रघुवीर सिंह, एम० ए०

पावस के एक धुँधले परन्तु मधुर प्रभात में बुलबुलों की मस्त टोली कनेर के कुञ्ज में छूल-छुलैया खेल रही थी। नर-मादा, मादा-नर सभी खेल में मस्त तथा लापरवाह थे। अचानक वज्रपात हुआ। लुब्धक के कम्पे में कुछ बुलबुल बद्ध हो गए। शेष अपने प्राणों की बाजी लगाकर आकाश की ओर तीव्र गति से उड़ गए। परन्तु एक मादा बुलबुल, जिसका जीवन-साथी बंदी हो गया था, लुब्धक के सिर पर प्राणों का मोह त्यागकर मँडराने लगी। प्रिय के बिना उसका जीवन सूना था। जब उसकी मूक प्रार्थना व्यर्थ हो गई तब हृदय के सभी तार एक साथ ही मुक्त हो गए और सारा वातावरण एक ही बुलबुल के क्रन्दन से क्षुब्ध हो उठा। प्रकृति के भी प्राण भर आए और आकाश के बादल एक साथ ही पृथ्वी पर टूट पड़े।

* * *

बुलबुल बंदी था। उसके सुख की दुनिया उजड़ चुकी थी। उसके जीवन की सारी मस्ती—सारे उन्माद—पर तुषारपात हो गया था। आज भी वही प्रभात था; वही ऋतु, वही समीर; परन्तु वह अपने जनपद से दूर नगर के एक कोलाहलपूर्ण कोने में रखा गया था। ग्राहक आते, उसे देखते, मोल-तोल होता और फिर चले जाते। डेली में घिरे अन्य बन्दी आपस में लड़-भिड़कर दाना-पानी प्राप्त कर लेते परन्तु उस बुलबुल की आँखें बन्द थीं। वह एक कोने में चुपचाप अतीत का चित्र सङ्कलित कर रहा था। सपना चल रहा था। गुलाब के कुञ्ज में अपनी टोली के साथ वह आँख-मिचौनी खेल रहा है। सब मस्ती में सने एक दूसरे से उलझ रहे हैं। इतने में दूसरे खेड़े का एक जवान बुलबुल उसकी प्रेयसी के निकट आ गया है और गर्दन फुला-फुलाकर छेड़खानी करने लगा है। उस पर दृष्टि पड़ते ही बुलबुल आग-बबूला हो जाता है और दौड़कर अपने प्रतिद्वन्द्वी को एक ठोकर लगाता है। ठोकर लगते ही वह बुलबुल चीखकर अपनी टोली की ओर भाग जाता है। दोनों टोलियों में युद्ध छिड़ जाता है। एकाएक डेली के सभी पंछी चिल्ला उठे और इसी कोलाहल में बुलबुल का मधुर स्वप्न बिखर गया। ज्योंही वह पंखों को सीधीकर गर्दन ऊँची करने लगा कि लुब्धक की कठोर उँगलियाँ उसकी गर्दन में लिपट गईं। फिर बेबसी……।

* * *

स्मृतियाँ किसी घटना के घटित होने पर सजग होतीं और क्रम से जीवन को सुखी और दुखी बनाती हैं। मादा बुलबुल के जीवन का अब नवीन पृष्ठ खुला था। तीन दिनों तक उसने निराहार रहकर अपने प्रियतम की बाट देखी। यह तीन दिन कैसे बीते, कौन बता सकता है।

जब आशा की वह पतली डोर भी जिसके सहारे उसका चञ्चल मन अब तक बँधा था, टूट गई तब वह अपनी टोली के साथ आने-जाने लगी। जब कभी वह मुक्त आकाश में अकेले-अकेले उड़ान भरने को तत्पर

होती और अन्य बुलबुलों को अपने जोड़ों के साथ उड़ते देखती तो उसका हृदय बैठने लगता था और वह, पीछे लौट पड़ती। अतीत के चित्र उसके मानस में खिंच जाते। जलन और वेदना से उसका सारा शरीर भस्मीभूत होने लगता था। उसके प्राण विकल होकर कंठ तक आ जाते परन्तु न जाने क्यों रुक जाते।

* * *

संसार परिवर्तनशील है। आज प्रभातकाल से ही एक दूसरी टोली के एक जवान किन्तु अल्हड़ बुलबुल ने उसपर अपना प्रेम-पाश डालना प्रारम्भ किया था। वह नाच-नाचकर उसके निकट जाता और प्रेम-याचना करता। मादा कभी-कभी खीझ उठती परन्तु वह तिल भर भी डिगने का नाम नहीं लेता था।

चंचु के लगातार प्रहार पर भी जब वह नहीं हटा तब मादा उड़कर दूर नदीतट के बरगद की बरोह पर जाकर बैठ गई। फिर अतीत और वर्तमान की गंगा-यमुना में गोता लगने लगा। प्राणों को राहत मिली।

* * *

बुलबुल लड़ाका नहीं निकला। इसलिए वह मानव-बंधन से मुक्त हो गया। उसे अपने भाग्य पर अचानक विश्वास नहीं हुआ। जब उसे चेतना हुई तब अपनी सारी शक्ति बटोरकर वह जनपद की ओर उड़ चला, जहाँ उसे विश्वास था कि उसकी प्रेयसी वियोग में घुल-घुलकर मृतप्राय हो गई होगी। कई दिनों के बँधे बुल-बुल के पङ्ख लड़खड़ा जाते थे परन्तु उमंगों की बाढ़ उसकी सारी शिथिलता को बहा देती थी। वह तीव्र गति से जनपद की ओर बढ़ा चला जा रहा था।

पावस के बादल दौड़-दौड़कर एक-दूसरे से आलिंगन करते और एक-दूसरे से मिलकर प्रेम के आँसू धरती पर छोड़ रहे थे।

जनपद की उस छोटी-सी तलैया पर पहुँचकर बुल-बुल नीम के उस पेड़ पर बैठ गया, जहाँ पर उसके प्रणय के कितने ही दिन और कितनी ही रातें बीती थीं। डाल पर स्थिर होकर उसने अपनी गर्दन ऊँची की और अपने तीव्र स्वर से वहाँ पर कोलाहल उत्पन्न कर दिया।

वहाँ से दो सौ गज की दूरी पर उसकी प्रेयसी अर्ध-मूर्छित अवस्था में मौन बैठी थी। सारे शरीर में मानों बिजली की लकीर खिंच गई। स्वर पूर्व-परिचित था। उसके दोनों पङ्ख आप-से-आप खुल गए और वह तलैया की ओर आप-से-आप उड़ चली।

दो बिछुड़े हृदय मिले। धैर्य का बाँध अस्त-व्यस्त हो गया। दो कण्ठों की करुणा को बाँधने में वह असमर्थ था।

पावस के संयोग में विशाल अम्बर के वक्षस्थल पर केलि करती हुई बुलबुलों की जोड़ी, चकित, विस्मित और मुग्ध दृष्टि से इधर-उधर देखती अपने नीड़ की ओर चली जा रही थी। सूर्य ने न जाने क्यों बादलों में अपना मुँह छिपा लिया। उस दिन रात भर मूसलधार वर्षा हुई। धरती-आकाश एक सूत्र में बँध गए और साथ-ही-साथ जगत के जीवन का नवीन पृष्ठ खुला।

———

गीत

श्री नीरव एम० ए०

आ गई है रात।
बुद्ध तारक दीप स्वागत कर रहे
मोतियों के गान बुद-बुद झर रहे
चन्द्रिका की मुक्त निर्झरिणी बनी
अमृत की बरसात।

एक जीवनज्वाल प्राणप्रदायिनी
गहन तम के पंथ की अविरामगामिनी
पलक की लघु परिधियों में बाँधकर
स्वप्न वे अज्ञात।

नियति का शासन नियति-सा मौन है
कर रहा चित्रित व्यथित यह कौन है
कल्पना के—अमिट सुख अभिषेक से
करुण गीले गात

प्राणियों के राग जीवन से धुले
और बन्दी भाव के बन्धन खुले
यह अँधेरा दो पलों में कर रहा
एक युग की बात।

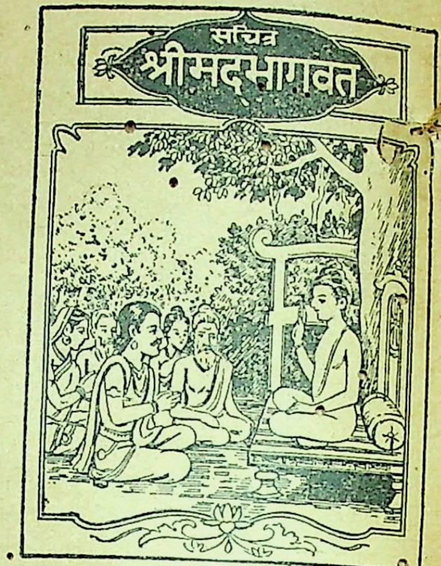
मुद्रक और प्रकाशक —के० मित्रा, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग



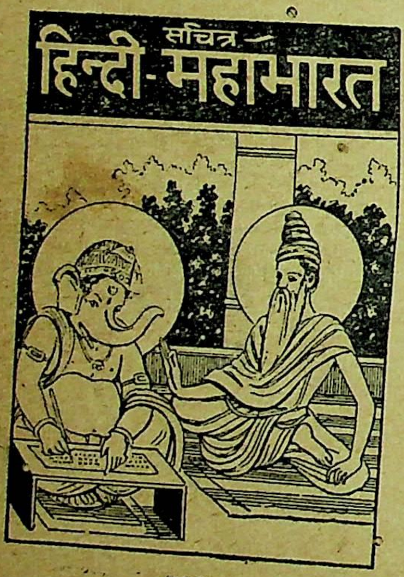
टीकाकार—रायबहादुर डाक्टर श्यामसुन्दरदास। यह संस्करण अपने ढंग का एक ही है। प्रामाणिक पाठ है। सीधी सरल भाषा में अर्थ है। रंगीन और सादे चित्रों की भरमार है। बढ़िया जिल्द है। मूल्य १२) बारह रुपए।



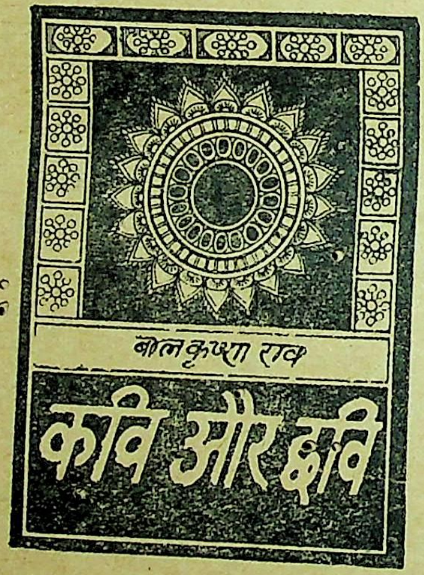
यह आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि के प्रसिद्ध ग्रन्थ का हिन्दी रूप है। हिन्दुओं में तो इसका मान है ही, संसार के विद्वानों में भी इसका आदर है। भाषा सुबोध और मनोहर है। दो भागों में ग्रन्थ समाप्त हुआ है। सजिल्द प्रति का प्रत्येक भाग का मूल्य ६।।) छः रुपए आठ आने।



(दो जिल्दों में) महर्षि वेदव्यास के श्रीमद्भागवत का सरल सुबोध भाषा में रूपान्तर। स्त्री, पुरुष, बूढ़े और युवक, सभी के लिए उपयोगी। अच्छे कागज पर बढ़िया छपाई। सैकड़ों सादे और रंगीन चित्रों से युक्त सजिल्द पुस्तक का मूल्य १६) सोलह रुपए



यह व्यास भगवान् के प्रसिद्ध महाभारत का हिन्दी रूप है। सरल भाषा में कठिन विषय समझाया गया है। रंगीन और सादे चित्र मन को मुग्ध कर लेते हैं। पुस्तक १० जिल्दों में पूर्ण हुई है। मूल्य ८०) अस्सी रुपए।



यह प्रसिद्ध कवि श्री बालकृष्ण राव के नये गीतों का संग्रह है। प्रत्येक गीत 'भावना, अनुभूति, आकांक्षा, कल्पना और अन्तर्द्वन्द्व से पूर्ण है। छपाई सफ़ाई नयनाभिराम। सचित्र सजिल्द प्रति का मूल्य २) दो रुपए।



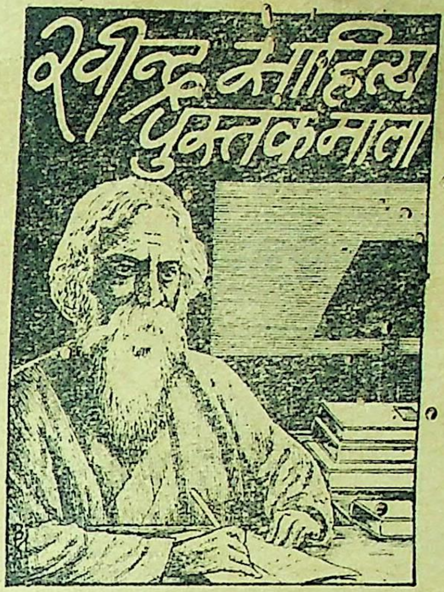
यह श्री श्यामनारायण पाण्डेय की प्रसिद्ध रचना है। इसमें महाराणा प्रताप के हल्दीघाटीवाले समर का वीरतापूर्ण वर्णन श्रेष्ठ छन्दों में है। सजिल्द प्रति का मूल्य २।।।) दो रुपए बारह आने।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

हमारे अनुपम प्रकाशन



कवि अंचल की मादक-मधुर कविताओं का अनूठा संग्रह। भाषा-सौष्ठव, अनुभूति की तीक्ष्णता और कल्पना की उड़ान की दृष्टि से ये कविताएँ अनुपम हैं। सजिल्द प्रति का मूल्य ३) तीन रुपये।



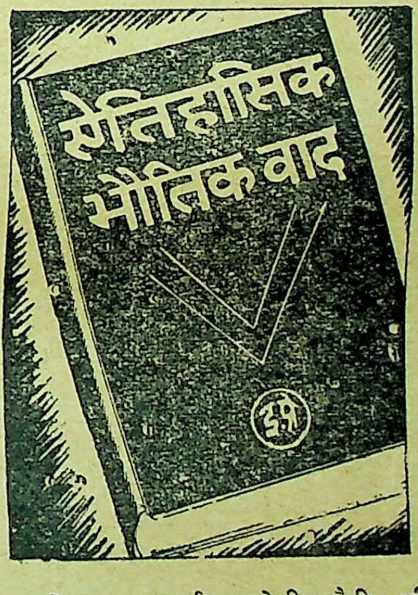
रवीन्द्र-साहित्य पुस्तक-माला के (१) योगायोग, (२) विश्व-परिचय, (३) रूस की चिट्ठी और (४), चार अध्याय का ब्योरा विज्ञापन में अन्यत्र पढ़िए।



शान्त शिष्ट सत्याग्रही प्रताप ने अपने मधुर व्यवहार से विरोधियों को किस प्रकार कट्टर देशभक्त बना दिया और उनको अपना अनुगत बना लिया, इस उपन्यास में पढ़िए। मूल्य १॥) एक रुपया आठ आने।



किस प्रकार उन्नति करने पर पुण्डरीकाक्ष पूतितुण्ड के साथ राजा बहादुर की बेटी एना का विवाह हो सका, इसका विचित्र वर्णन इस उपन्यास में पढ़िए। सजिल्द प्रति का मूल्य २॥≈) दो रुपये ग्यारह आने।



लेखक भूतपूर्व काकोरी कैदी श्री मन्मथनाथ गुप्त और रमेन्द्र वर्मा। समाजवाद के अध्ययन के लिए इसे अवश्य पढ़िए। मार्क्सवाद के दर्शनों में यह सबसे महान है। एक दर्जन अध्यायों में विषय का प्रतिपादन हुआ है। मूल्य ६) छः रुपये।



लेखक कुँवर सुरेशसिंह। यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। मन-बहलाव के साथ-साथ विविध जानवरों की जानकारी के लिए इसे पढ़िए १०० से अधिक चित्र। सजिल्द प्रति का मूल्य ४) चार रुपये।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

हमारे अनुपम प्रकाशन

अपनों की खोज में

(बुकसेलर की डायरी)

लेखक, श्रीयुत रामप्रसाद विद्यार्थी (रावी)

यह ऐसा भ्रमण-वृत्तान्त है जिसमें लेखक ने काफी सूझ-बूझ से काम लिया है। लेखक ने बुकसेलर न होने पर भी बुकसेलर बनकर ही इसके लिखने का अधिकार कमाया है। मनुष्य को पहचानने की कला और दूसरे को अपने अनुकूल करने की युक्ति पाठक को इस पुस्तक के वर्णन में मिलेगी जो बड़े काम आवेगी। मूल्य १) एक रुपया।

संसार का संक्षिप्त इतिहास

(प्रथम व द्वितीय भाग) अनुवादक, श्री मदनगोपाल, बी० ए० एल्-एल० बी०। यह पुस्तक अँगरेजी के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक एच० जी० वेल्स के इतिहास का हिन्दी अनुवाद है। इसमें पृथ्वी के आदिकाल से लेकर जीसस के निर्माण के पूर्व तक की कथा सक्रम वर्णित है। द्वितीय भाग में जीसस के निर्माण से लेकर संसार के पुनर्निर्माण तक का वर्णन आ गया है। मूल्य प्रत्येक भाग का ४) चार रुपये।

गांधी-मीमांसा

लेखक, पंडित रामदयाल तिवारी। गांधीजी के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की ऐसी तर्कपूर्ण विवेचना आज तक किसी ने नहीं की है। इसे एक बार आद्योपान्त पढ़ जाने पर गांधीवाद पूर्ण रूप से हृदयङ्गम हो जाता है। विद्वानों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। ८५० पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४) चार रुपये।

रणभेरी

(चार मौलिक एकांकी)

रचयिता श्रीयुत वैकुण्ठनाथ दुग्गल की इस पुस्तक में (१) आन, (२) पुनर्संगठन, (३) राष्ट्रधर्म और (४) अजेय भारत नाम के एकांकी हैं। पहले में वीर चम्पतराय और उनकी रानी सारन्धा की एक महत्त्वपूर्ण घटना है; दूसरे में महाराज शाहू की, तीसरे में हर्षवर्धन की बहनवाली प्रसिद्ध घटना और चौथे में युवराज अग्निमित्र के यूनानी नरेश मीनेंडर को जीतने की रोचक कथा है। संग्रह की भाषा सुलझी हुई, कथानक बढ़िया और बीच-बीच में सुन्दर कविताएँ हैं। मूल्य केवल १) एक रुपया।

बाल-नाटक-माला

(चार भाग)

श्री दशरथ ओझा बी० ए० के प्रस्तुत किये इन एकांकी नाटकों में इतिहास, राजनीति, समाज-विज्ञान, चरित्र और मनोविकारों का सफल प्रदर्शन है। शैली सरल और आकर्षक है। मूल्य प्रत्येक भाग का ।।) आठ आने।

सन्त कबीर

प्रणेता—प्रो० साधुराम शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०

यह सचित्र नाटक है। कबीर साहब का जीवन हिन्दू-मुसलमानों के मन से असहिष्णुता और वैमनस्य को हटाकर एकता और भाईचारे की स्थापना में बीता था। पांच सौ वर्ष पहले हिन्दू-मुस्लिम-एकता की जितनी जरूरत थी उससे आज अधिक ही है। कबीर का उद्देश्य समझने में यह नाटक बहुत काम देगा। इसमें प्रणेता ने कबीर साहब की जीवन-घटनाओं का आश्रय लेकर देशवासियों के सामने सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। मूल्य ।।।) बारह आने।

भूख

(सामाजिक नाटक)

लेखक श्रीयुत वीरदेव 'वीर' बी० ए०

लेखक ने इस नाटक में भूख से होनेवाले कष्टों का करुण चित्र उपस्थित किया है। हिन्दू-मुस्लिम-एकता, व्यापारियों के जनता को निर्दयता से लूटने और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं के सेवा भाव के अनोखे दृश्य इस नाटक में हैं। बीच-बीच में गीत भी बढ़िया हैं। मूल्य १) एक रुपया।

देवयानी

यह नाटिका कुमारी तारा वाजपेयी की रचना है। इसमें शुक्राचार्य की बेटी देवयानी के कन्यात्व का आदर्श बड़ी सफलता से उपस्थित किया गया है। कथा महाभारत से ली गई है। इसमें आर्यों के व्यापक वैवाहिक सम्बन्ध के इस एक अपवाद—क्षत्रिय वर और कन्या ब्राह्मणपुत्री—का स्पष्टीकरण बड़ी सतर्कता से हुआ है। पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। मूल्य केवल १) एक रुपया।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारी बढ़िया पुस्तकें

'रवीन्द्र-साहित्य पुस्तक-माला'

लेखक, डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

योगायोग

कवीन्द्र का यह उपन्यास जैसा कवित्वमय है वैसा ही मनोविज्ञान की बारीकियों से परिपूर्ण। इसमें बंगाल के समाज का अपूर्व चित्रण है। नायिका है धर्म-प्राण कुमुद और नायक है राजा बहादुर मधुसूदन घोषाल जो गरीब घर का लड़का होकर अपने पौरुष से बहुत बड़ा मालदार हुआ है। अपने विरोधी घराने की बेटी से विवाह करने पर उसके चित्त में जो विरोध के बादल उमड़ते हैं उनका गर्जन और नई दुलहिन कुमुद का शान्त-शिष्ट प्रतिकार देखकर बरबस लेखक की सराहना करनी पड़ती है। इसमें गृहिणी की क्षमता का अपूर्व उदाहरण है। भाषा, भाव और कथानक सभी दृष्टियों से 'योगायोग' कवीन्द्र के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ है। इसे एक बार पढ़कर दुबारा तिबारा पढ़ने को जी चाहता है। अच्छा कागज, बढ़िया जिल्द, पृष्ठ सवा तीन सौ से अधिक। मूल्य केवल ४) चार रुपये।

विश्व-परिचय

यह विज्ञान-विषयक पुस्तक है। इसमें परमाणुलोक, नक्षत्रलोक, सौरजगत्, ग्रहलोक और भूलोक आदि शीर्षकों में विषय का विशद विवेचन है। एक स्थान पर लेखक ने लिखा है "वस्तुएँ सब रंगों को ग्रहण नहीं कर सकतीं, किसी किसी को वापस कर देती हैं। वह लौटाया हुआ रंग ही हम देखते हैं। ब्लॉटिंग पेपर जिस रस को सोख लेता है वह किसी काम नहीं आता--जिस रस को वह ले नहीं सकता वही बचा हुआ रस हमारा प्राप्य है।" इस प्रकार सरल रीति से कठिन विषय समझाया गया है। पुस्तक बालकों के लिए होने पर भी वयस्क विद्वानों को कम आनन्द न देगी। अच्छे कागज पर छपी हुई सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

रूस की चिट्ठी

डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर वृद्धावस्था में रूस गये थे। वहाँ का आँखों देखा हाल उन्होंने चिट्ठियों में लिखकर भेजा था। वह बड़ा विचित्र है। इधर तो रूस के सम्बन्ध में बहुत सी बातें प्रकट हो गई हैं पर जिस समय रवि बाबू वहाँ गये थे, रूस का हाल हमें विकृत रूप में बताया गया था। उसको कवि ने सुन्दर भाषा में प्रकट किया है। पुस्तक सचित्र और सजिल्द है। अच्छे कागज़ पर छपी पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

चार अध्याय

इस पुस्तक का कथानक चार अध्यायों में समाप्त है। मुख्य नायिका कालेज की सुशिक्षित युवती एला ने विवाह न करके देशोद्धार के काम में जीवन लगाने का प्रण किया। अनेक विप्लवपन्थियों से उसकी घनिष्ठता बढ़ी। उसके कई प्रेमी खड़े हुए। राजनीति, समाज और स्त्री-पुरुष-समस्या आदि के विचार बड़े अच्छे रूप में इसमें हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥) एक रुपया आठ आने।

माँ और बच्चा

इसके लेखक नामी चिकित्सक डाक्टर बोधराज चोपड़ा, एम० बी०, सी-एच० बी० (एडिनबरा) हैं। यह पुस्तक अपने ढंग की अनुपम है। इसके ११ प्रकरणों में छोटे बच्चों की मृत्यु और उसके कारण, गर्भिणी माता, जन्म के समय से बालक की रक्षा, बच्चों को दूध पिलाना, दूध पिलानेवाली दाई, दूध छुड़ाना आदि आवश्यक विषयों की शिक्षा दी गई है। लेखक ने स्त्रियों की मृत्यु और रोगों को कम करने तथा छोटे बच्चों को मृत्यु से बचाने की दृष्टि से पुस्तक लिखी है। यों विद्वान् लेखक ने मनुष्यमात्र का उपकार किया है। अच्छे कागज पर छपी ढाई सौ से भी अधिक पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) दो रुपये।

भारतभ्राता के पुजारी

इसमें वैदिक काल से लेकर गांधी-युग तक के प्रतिनिधि-महात्मा के जीवनचरित्र के साथ-साथ यह दिखलाया गया है कि उस महापुरुष ने भारतीय जनता की विचार-धारा में क्या और कैसे परिवर्त्तन किया। इसमें १५ महापुरुषों का वर्णन है। पुस्तक समयोपयोगी और शिक्षाप्रद है। मूल्य १॥।) एक रुपया बारह आने।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

हमारी नई पुस्तकें

सङ्गति

आकाशरंजन मेहता नामी डाक्टर थे। उनकी खासी आमदनी थी। किन्तु उनकी अर्द्धाङ्गिनी सुशिक्षित हेमप्रभा यह समझती थी कि डाक्टर मेहता सिर्फ आविष्कार की धुन में रहते हैं; मेरे पिता के दिये धन से ही गुजर होता है। इससे वह सिर-चढ़ी स्त्री बन गई थी। और डा० मेहता उसकी फटकार सुनकर भी भीगी बिल्ली बने हुए अपने काम में लगे रहते थे। उनका मित्र जौहरी कई वर्ष विलायत में रह आया था। उन्होंने हेमप्रभा से उसका परिचय करा दिया। परिचय इतना घनिष्ठ हो गया कि उससे बचने को डा० मेहता आँखों का इलाज कराने के बहाने दूसरे प्रान्त में चले गये। इधर उसका रंग गहरा होता गया। कई महीने बाद डा० मेहता नकली अन्धे बनकर लौटे और इसी रूप में उन्होंने हेमप्रभा के खोये हुए प्रेम पर अधिकार किया। लेखक ने विलक्षण कथानक की सृष्टि करके गिरते हुए चरित्र को समुन्नत बनाया है। मूल्य १।।) एक रुपया आठ आने।

यात्री

श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी बी० ए० ने इस पुस्तक में लिखा है कि हम सभी अनन्त पथ के यात्री हैं। यह जीवन-यात्रा कब आरम्भ हुई और कहाँ इसकी समाप्ति होगी। लेखक ने क्यों लिखूँ, जीवन-पथ पर, स्मृति और शिक्षक-जीवन आदि २० शीर्षकों में विभिन्न विषयों पर परिमार्जित भाषा में उच्च विचार प्रकट किये हैं। यात्री अपने ढंग की अनुपम पुस्तक है। सचित्र आवरण की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) दो रुपये।

अनातोले फ्रांस की चुनी हुई कहानियाँ

फ्रांस के इस नामी कहानी लेखक की प्रतिभा का अनुमान पाठकों को छाया-सुन्दरी, उसका पति, रूप की परी, मदारी, पेरिस की सुन्दरी और माल आदि कहानियों से लगेगा। प्रत्येक कहानी बेजोड़ है। ये कहानियाँ मनोरंजन के साथ ही उपकार भी करेंगी। मूल्य १) एक रुपया।

विषवृक्ष

यह सुप्रसिद्ध उपन्यास-प्रणेता रायबहादुर बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का बढ़िया उपन्यास है। इसका हिन्दी रूपान्तर किया है कृतविद्य श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने। इस उपन्यास में विषवृक्ष है कुन्दनन्दिनी जो थोड़ी अवस्था में अनाथ हुई और नगेन्द्र बाबू का आश्रय पाकर उनके रिश्तेदार से ब्याही गई। फिर सत्रह साल की उम्र में विधवा हो गई। इसके रूप पर नगेन्द्र बाबू ऐसे रीझे कि उसके साथ विधवा-विवाह कर लिया। उपन्यास की भाषा और कथानक सभी विचित्र है। मूल्य २) दो रुपये।

नवदुर्गा

नवदुर्गा बंगाली पण्डित की बेटी थी। उसके विवाह की चिन्ता में माँ-बाप और बेटी तीनों घर से कलकत्ते के लिए चले। रास्ते में केदारेश्वर तीर्थ में ठहर गये। वहाँ के महन्त अम्बिकाचरण पुरी ने नवदुर्गा को प्राप्त करने के लिए जाल रचा। अन्त में महन्त का चपट चाकर अधरचन्द्र मुखोपाध्याय 'मियाँ की जूती और मियाँ का सिर' की कहावत के अनुसार महन्त जी से खासी रकम ऐंठकर और नवदुर्गा को विधि से पत्नी बनाकर चलता हुआ। लेखक ने महन्त जी की जो दुर्गति काशी में लाकर कराई है उससे पाठक विस्मित और खिन्न हुए बिना न रहेंगे। मूल्य १।) एक रुपया चार आने।

हार या जीत

इस उपन्यास में लेखक डा० ब्रजेश्वर वर्मा एम० ए०, डी० फिल० ने एक देहाती लुहार की अल्पवयस्क बेटी को घटनाक्रम से, अनाथ दशा में, देहात से महराजगंज की रानी पृथ्वीकुंवरि के आश्रय में पहुँचा दिया है। वहाँ रानी की कृपा से इस लड़की ने विद्या पढ़ी। फिर इसमें उन गुणों का विकास हुआ जिससे मनुष्य सभ्य होकर सम्मान पाता है। इसने असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और अन्त में कलकत्ता जाकर नौकरी कर ली। कई पुस्तकें लिखीं, विदेश-यात्रा के बाद रानी के कुँवर की प्रार्थना पर उससे विवाह किया। मूल्य २) दो रुपये।

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद